







ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥ भोर

गुरुमण्डलमन्त्रपात्राष्टादशपुष्पम्

## पद्मपुराणम्

श्रीमन्महर्षि कृष्णद्वैपायनव्यासे विरचितं  
सृष्टिसृष्टात्मकं  
प्रथमो भागः

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।  
सिद्धीपं वटुकप्रसन्नपदयुगं दूतीकमं मण्डलम् ( शाश्वतम् ) ॥  
वीरान्द्वयप्रभुत्कपटिनवकं वीरावलीपथकम् ।  
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

५, कृष्ण रो,  
कलकत्ता-१

वैद्यमासः  
२०१३

प्रथमं संस्करणम्  
१०००

संस्कारः  
१६६७



କଳକଳା-୧

୧, ବିଜୟାସ ଚୈତ୍ର

ଦି ପ୍ରମାଣ ମିଳିତା ବାସୁ,

—୧୫—

ଅବଶିଷ୍ଟ ବିଷୟ-ସୂଚୀ, ମୂଲ୍ୟା, ଶିଳ୍ପା, ଶିଳ୍ପା, କବିତା ଶିଳ୍ପା, କବିତା ଶିଳ୍ପା

କଳକଳା-୧

୧୫, ମାର୍ଚ୍ଚ ୧୯୧୫ ଚୈତ୍ର

ମୂଲ୍ୟା ମିଳିତା ବାସୁ,

—୧୫—

ମୂଲ୍ୟା ମିଳିତା ବାସୁ



GURUMANDAL SERIES No XVIII

# PADMA PURANAM.

( *Containing Srishti Khandam* )

Shrīman Mahārshi ~~Krishna~~ Dwaipayan  
Vyasdeva.

Volume I

5, CLIVE ROW,  
CALCUTTA-1

no Kru  
13.

First Edition  
5000

A. D.  
1957.



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

## सादरं समर्पणम्

श्रीमतां विविधविद्यानिष्णातानां श्री ल श्री ६ पूज्यवर्णां महामहोपाध्याय-  
गिरिधरराम-चतुर्वेद-महाभागानां सर्वेन्द्रस्वतन्त्राणां राजस्थानविद्वन्मण्डल-  
मण्डनानां जयपुरराजधानीवास्तव्यानां सम्प्रति विद्वन्नाथनगर्यां वसति-  
कुरतां पण्डितमान्यानां करणमलेषु गुणमण्डलयन्धमालाष्टादश-  
पुण्योपहारीभूतं "श्रीपाद्ममहापुराणं" सादरं समर्प्यते  
श्रीमद्भगवत्प्रबोधावगते  
भगवत्प्रीत्यर्थ-  
मिति ।

कालीक्षेत्रम्

कार्तिक शुद्धा प्रबोधिनी ११

सुपवासरः

२०१३

बटाविनयान्वितो

मनसुखराय मोरः

२, हाइव रो

जयपुरम् ।



नारदपुराण के अनुसार दी गई विषयानुक्रमिका में हमारे विभाग क्रम के निर्दिष्ट ऋद्ध खण्ड का स्वर्णखण्ड में और कियामयोगसार का उत्तरखण्ड में अन्तर्गोचर कर दिया है। संक्षेप में, सारे पद्यपुराण की विषयसूची नारदीय पुराण से द्रष्टु कर पाठकों की सेवा में अवलोकनार्थ दी जाती है—

हे द्विज ! पुलस्त्य ने भीष्म को सृष्ट्यादि के क्रम से नाना प्रकार के आख्यान और इतिहास आदि से युक्त धर्मविस्तार का वर्णन किया है, फिर गुरुवर तीर्थ का माहात्म्य विस्तार से ब्रह्मवृद्ध विधान, वेद-पाठादि का लक्षण, दीनों का विवरण, और नाना वृत्तों का प्रतिपादन, पार्वती का विवाह, तारक का आख्यान, जलधेनु, तिलधेनु आदि दशविध धेनु-दानों का सम्पूर्ण पुण्यों का देनेवाला आख्यान कीर्तित है। फिर कालकेय आदि दैत्यों का वृषक-वृषक वध वर्णित है। इन्हों के वरेण्य से पूजन और दान कथित है यह महात्मा व्यासदेव के द्वारा किया गया सृष्टिखण्ड का संक्षेप में वर्णन है।

२—माता-पिता एवं गुरुजन की पूज्यता अनन्यप्रज्ञा से दिखलाने के लिये शिवरामा कथा से आरम्भ कर गुरुजन आदि की कथा बही गई है; फिर ब्रह्मागुरु का वध, इन्द्राक्ष का वरिष्ठ, धर्मोत्थान, पिता की शुभ्रूपा ( विद्रुमलि ) का आख्यान, नटप की कथा, ययाति वरिष्ठ, गुरुतीर्थ-निरूपण, राजा और जैमिनि का बहुत आश्चर्यकारक कथाओं से युक्त सम्वाद, द्रुण्ड दैत्य के वध से युक्त अशोक सुन्दरी की कथा, कामदेव का आख्यान, माध्व ही बिद्रुण्ड का वध बुद्धल तथा वधवन महर्षि का सम्वाद, मिट्टों का आख्यान और द्वितीय खण्ड के पठन-अवधन के पक्ष का वर्णन, इस प्रकार मूल एवं शौनक के सम्वादवाले द्वितीय भूमिखण्ड का संक्षिप्त वर्णन है।

३—इसमें सौमि द्वारा भूविदों के प्रति बही गई ब्रह्माक्षर की कथा, मूर्ति और छोकरास्तानों से युक्त तीर्थकथान, बर्मेरा की कथा तथा इन्द्र-इन्द्र वसन्त



वसुकी महाद्वादशी का व्रत, २४ चौबीस एकादशी विष्णुविधियों का माहात्म्य-वर्णन, विष्णुधर्मसमाख्यान, विष्णुके हजार नामों का निरूपण, कार्तिक व्रत का माहात्म्य, माघ स्नान का फल, जम्बु द्वीप के तीर्थों का पापनाशक माहात्म्य, साधु भक्ति का माहात्म्य, मृसिहोत्पत्ति-वर्णन, देवशर्मादि का गीता-माहात्म्य के वर्णन, आख्यान, भक्तारव्यन और श्रीमद्भागवत का माहात्म्यवर्णन, बहुतीर्थों की कथा से युक्त इन्द्रप्रस्थ का माहात्म्य, मन्त्र रत्न का अभिधान, त्रिपाद्मूर्ति का वर्णन, मतस्य आदि अवतारों की पुण्य कथा, सौ राम के नाम और उनके दिव्य माहात्म्य और भी विष्णु के वैभव की भृगु द्वारा परीक्षा यह पञ्चम वचन खण्ड का सा पुण्य को देनेवाला वसमें वर्णित विषयों के अनुक्रम का वर्णन है।

इसकी षष्ठ भुक्ति। पांच खण्डों से युक्त इस षष्ठपुराण की जो सुनता है वह इस लोक के ईप्सित भोगों को भोग कर बेप्पन्न वह को प्राप्त करता है। यह पंचपन हजार श्लोकों का षष्ठ नामक महापुराण है। इसे श्रेष्ठ पूर्णिमा के दिन लिखाकर मुखर्ष और अम्नादि के साथ विद्वान् पुराणज्ञ की जो देना है, सा देवों से पूजित वसन्धति को बेप्पन्नधाम मिलता है। इस षष्ठपुराण के विषयों का अनुक्रमणिका की जो बढ़ता और सुनता है उसे भी षष्ठपुराण के सुनने का पूरा फल मिलता है।

यह पुराण पुराणरासीरबाड़े पुराणावयव बिराद पुराण भगवान् का हस्तकारी है “आद्यं मूर्धं हरेरेव हृदयं षष्ठमप्युत्तरम्”।

( षष्ठपुराण स्कन्ध खण्ड १२ अष्टादश २२ श्लोक )

इस विद्या की महत्ता का वर्णन सम्पादित है फिर भी भगवान् बादरायण का पुनरावर्णन हमारे दिले विशेष है जिसकी अकारण कल्पना से ही आज तक यह सारी पुराण विद्या अपने मार्ग पर चलने के लिये मिली है।



[illegible]

द्वारा रक्षा करते हैं। हम मानवों पर इस प्रकार अकारण कृपा कर किये गये उपकारों का बदला वे हमसे इन ग्रन्थों की ज्ञानसामग्री को खूब अध्ययन, मनन, आलोचन एवं अनुभव कर प्राणिहित के लिये स्वयं को उत्सर्ग कर पृथ्वी को स्वर्णमय बनाने में सम्पूर्ण मानव शक्ति, इस रूप में चाहते हैं। अपनी श्रद्धा सुमनोऽञ्जलि को इस पवित्र अवसर पर समर्पित करते हुए मैं ऐसे महाप्राण विश्ववन्द्यविभूति के प्रति कृतज्ञताज्ञापन करता हूँ और उन्हीं से शुभाशीर्वाद की कामना करता हूँ कि सर्वत्र उनकी ज्ञानराशि के प्रसार से हमलोगों का जीवन आलोकित होकर मनुष्यता के सद्गुणों से हम विश्व को लाभान्वित करें। वे तो साक्षात् त्रिमूर्ति के ही अवतार हैं।

अथतुर्वन्दनो ब्रह्मा त्रिबाहुरपरो हरिः ।

अमालोचनः शम्भुर्भगवान्वाद्रायणः ॥

इसने विशालकाय ग्रन्थ का सम्पादन जिस असाधारणतरेक से हुआ है उसमें धर्म, प्रमाद, आलस्य अपाटवादि दोष से युक्त अशुद्धियाँ अवैधित हैं। कृपालु पाठकबुन्द इस दोष को प्रत्येक भाग के साथ दिये गये शुद्धिपत्रक से ठीक करने का कष्ट करें। इस भाग में विषयसूची का राष्ट्रभाषा हिन्दी में दिया जाना कुछ-कुछ सन्तोषापायक है; कारण ग्रन्थमाला और प्रकाशित पुराणों से इसमें विषयसार को सरलता व सन्दर्भ स्पष्टता से व्यक्त किया गया है। सदा की भाँति अपने इस कार्य में मोरप्राध्यापकसंस्थान के व्याकरणाचार्य श्री पं० ब्रह्मदत्त त्रिवेदी एम० ए० लक्ष्मणगढ़ ( जयपुर ) श्री पं० कजोड़ीलालजी मिश्र, श्री पं० रामनाथजी दाधीच शास्त्री ( नवलगढ़ जयपुर ) का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है। ये सब तो इस कार्य के लिये नियुक्त हैं उन्हें अपने कर्तव्यपालन के लिये ग्रन्थवाद प्रकाशन के रूप में कुछ बदना अनुचित है।

1. 11111111

2. 11111111

3. 11111111

4. 11111111

5. 11111111

6. 11111111

7. 11111111

8. 11111111

9. 11111111

10. 11111111

11. 11111111

12. 11111111

13. 11111111

14. 11111111

15. 11111111

16. 11111111

17. 11111111

18. 11111111

19. 11111111

20. 11111111

मातरं गमयितुं

उद्दीय

शुक्लसुखराय मौर

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

॥ श्रीपुराणपुरुषोत्तमायनमः ॥

# पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड

की

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठांक
	श्रीहस्तामरताम्रश्रीकराभारताश्विनपारम्पर्ये । भोगिभोगरायनीयराशिने माधवाय मधुविद्विषे नमः ॥	
१	तत्रादौ महन्नाभयम् नैश्विनाम्नोन्मभिद्रव्तावः द्युताम्ननिर्गन्तव्यम्	३

[illegible]

धर्म की शक्ति—  
 मुझे बुद्धिमान व्यक्त के विचार में से प्रिया की आशा है कि नीतिमार्ग पर मैं  
 मित्रों की सेवा करे एवं उनके संशयनाशक प्रयोगों का उत्तर दूँ। अब आगे  
 लोग कहिये आपकी प्रमाण, दीर्घास अथवा अन्य प्रमाणों में से क्या कहें।  
 क्षमियाँ में प्रवृत्ति की मनुष्याणी सुनकर उनके प्रमाण अवगम्य विज्ञान की।  
 विश्वमूर्त्य प्रवृत्ति की अति विशाल देखकर हम सब में प्रेरणा से सब साक्षात् में  
 परमेश्वर विज्ञानकी आराध्यक में एक बुद्धिमान शौनिक में प्रमाणों की सुनने की

शक्ति के कर्त—  
 देव ! देवताओं के समान शक्तिवाले ! इस शक्ति का नाम है 'शक्ति'  
 यह शक्ति ही कर्म का कर्त है ।

[illegible]

पूर्ण दीर्घसत्र में मुनियों को पुराणोक्त अंशों को सुनाओ। हे महामते ! पुराण का आख्यान कहिये पद्म कैसे उत्पन्न हुआ, उसमें ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, उत्पन्न हुए ब्रह्माने कैसे सृष्टि रचना की इसका वर्णन करो। प्रकार शौनक के पूछने पर रोमहर्षण के पुत्र ने सूक्ष्म एवं व्यवसंयुक्त कहा आपकी प्रेरणा से मैं प्रसन्न हूँ। सब धर्मों में परायण को जाननेवालों से पुराणार्थ जैसे मैंने सुना है वह सम्पूर्ण कहता हूँ। वेदों के द्वारा सूत के लिये यह सनातनधर्म कहा गया है कि देवता, ऋषि तथा मित पराक्रमी राजाओं तथा महात्माओं की स्तुति तथा वंशकारण बतलाना। तेहास एवं पुराणों में ब्रह्मवादी ऋषियों ने भी यही कहा है कि वेदों में कहीं सूत का अधिकार नहीं है। वेन पुत्र पृथु के यज्ञ में मागध एवं सूतों राजा की स्तुति की तब प्रसन्न हुए राजा ने उनको वरदान में सूतों को भविष्य तथा मागधों को मगधविषय दिया वहाँ पर सूती के गर्भ से सूत की उत्पत्ति हुई। ( "एन्द्रे सग्रे प्रवृत्ते तु तमिवेन्द्रं वृहस्पतिं" ३३ बार्हस्पत्य यज्ञ शिष्य द्वारा छोड़ी हुई हवि की अपरोत्तर धार से सूत की उत्पत्ति हुई। ) हाँ पर क्षत्रिय पिता और माता ब्राह्मणी के योग से ही सूत की उत्पत्ति पड़ी उस क्षेत्र में जाजीविका करनेवाले के लिये यह मध्यम धर्म कहा है इमलिये ब्राह्मणों के द्वारा मुझे पुराणों में अधिकार मिला है। आप ब्रह्मवादी महर्षियों द्वारा पूछा गया मैं यथाविधि ऋषिपूजित पुराण को कहता हूँ। पितरों की आत्मसी कन्या वासय को प्राप्त हुई और पितरों के द्वारा प्यान की गई मत्स्यगर्भ की उत्पत्ति हुई उसी सत्यवती में अग्नि में अरणी की तरह पुण्यजन्मा महर्षि पराशर के व्यासदेव की उत्पत्ति हुई उन व्यासदेव ब्रह्मवाच्य के अनुवर्त्ता पुराणपुरुष के लिये नमस्कार है। भगवद्रूप व्यासदेव को उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण वेद प्राप्त हो गये जिन व्यासजी ने अनिरूपी मंथन दण्ड से वेदरूपी मागर से महाभारतरूपी चन्द्रमा पंदा किया। भारत, सूर्य, चन्द्र यदि ये तीन नहीं होते तो अज्ञानरूपी



से वेद ढरता है कि यह मुझे मागेगा - विमंथनप्रभृताद्वेषो मामवग्रहति  
अतः मनुष्य को बहुभुत होने की आवश्यकता है। शृंगियों ने मृतजी से  
भीष्म एवं पुलस्त्यजी का सम्मिलन कैसे हुआ उनका रसन परम दुर्लभ  
गया है अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि अत्रिष भीष्म ने पुलस्त्यजी की  
आराधना की तथा उन्होंने जैसे महूर्ण पुराण सुनाया। त्रिम स  
जैसे पुलस्त्यजी का समागम हुआ यह महूर्ण वर्णन कीजिये। मृत  
कहा गङ्गा द्वार पर पितृभक्त भीष्मजी रहते थे ब्रह्माजी के आदेश से पुल  
का भीष्म के पास गमन। पुलस्त्यजी ने भीष्म से कहा हे भीष्म ! तुम्हारे  
प्रसन्न हूँ तुम्हारी मनोकामना पूर्ति होगी मैं ब्रह्माजी के आदेश से तुम्हारे  
आया हूँ। पुलस्त्यजी के वचन सुन भीष्मजी ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया  
पाचाष्ठादि से पूजन किया। पुलस्त्यजी ने कहा तुम सत्यवक्ता हो  
दानशील हो—

सत्यवान् दानशीलोऽसि सत्यसन्धिर्नरेश्वरः ।

ह्योमान् मैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तः शत्रुशसने ॥

मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ जो पूछना हो कहो—भीष्म ने कहा हे भ  
ब्रह्माजी ने कैसे देवादिकों की रचना की तथा कैसे विष्णु व रुद्र की स्थिति  
पृथिवी, जल, तेज, आकाश, द्वीप, समुद्र तथा नदियां एवं कैसे सूर्यादि का  
रचना की। भीष्मजी के वचन सुनकर पुलस्त्यजी का परब्रह्म परमात्मा के  
सह



३	कालपरिमाणवर्णनम्	११
	पृथ्वीकृतवराहस्तुतिवर्णनम्	१३
	ब्रह्मकृतनवविधसृष्टीनांवर्णनम्	१५
	सुरादिस्थावरान्तचतुर्विधप्रजानां विस्तरेण सृष्टिवर्णनम्	१७
	सृष्टिप्राणिनां स्थानवर्णनम्	१८

भीष्मजी ने पूछा कि निर्गुण व शुद्ध ब्रह्माजी के मनमें संसार रचने की भावना कैसे उत्पन्न हुई तब पुलस्त्यजी ने सर्व प्रथम काल के परिमाण का वर्णन किया। ६० घड़ी का एक दिन-रात होता है। २ पक्षों का एक मास और छः मासों से एक अयन दक्षिणायन देवताओं की रात्रि व उत्तरायण दिन कहा है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग बताये हैं। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। इसे वाराहकल्प कहते हैं। भीष्मजी ने पूछा ब्रह्माजी ने कल्प के आदि में कैसे सब प्राणियों की रचना की सो कहो पुलस्त्यजी बोले ब्रह्माजी ने कल्प के अन्त में शून्य स्थान को देखकर पृथ्वी देवी को जल में निमग्न जान बिष्णु का ध्यान किया। भगवान् वाराह रूप धारण कर जल में निमग्न पृथ्वी के पास गये। पृथ्वी ने भीविष्णु की स्तुति की हे परमात्मन् ! मेरा उद्धार करो आप सम्पूर्ण संसार के कर्ता हर्ता एवं पाता है इत्यादि अनेक वचन कहे। पृथ्वी के वचन सुनकर महावराह ने गर्जना की और पृथ्वी को समान कर द्वीप एवं पहाड़ों की रचना की तथा ब्रह्मा द्वारा प्राकृत बैकृतादि नौ तरह की सृष्टि की रचना करवाई। नवविध सृष्टि का विस्तार से वर्णन करने का भीष्मजी का आग्रह सुन पुलस्त्यजी ने कहा—ब्रह्माजी सर्व प्रथम मानसी सृष्टि रचना की पश्चात् देव, अमुर, पितर एवं मनुष्यों की रचना की। ब्रह्मा के जपन प्रदेश से अमुरों की उत्पत्ति हुई पुनः उस शरीर को छोड़ दिया तब वह रात्रि

यक्ष एवं राक्षसों की उत्पत्ति का वर्णन । गो, महिषी, अश्व, मातङ्ग एवं  
मादिकों की उत्पत्ति का वर्णन । रोम से फल्गुमूत्र औषधि आदि की उत्पत्ति ।

भीष्मजी ने पूछा - हे ब्रह्मन् ! विस्तारपूर्वक विप्रादि वर्णों के गुण तथा  
का वर्णन कीजिये तथा पुलस्त्यजी बोले—सृष्टि की रचना की इच्छावाले  
मुख से सत्त्वगुणयुक्त प्रजा की उत्पत्ति हुई । ब्रह्मा के पञ्चस्थल से रजोगुण  
प्रजा की उत्पत्ति हुई एवं रजोगुण, तमोगुणयुक्त जह्वा से अन्य प्रजाओं की  
उत्पत्ति हुई । ब्रह्माजी के मुख, वक्षस्थल, जह्वा एवं पैरों से ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य एवं  
शूद्र की उत्पत्ति हुई । यह सब यक्ष पूर्ति के लिये रचना हुई । ब्रह्मा ने चराचर  
जन्तुओं के लिये अलग-अलग स्थान भी बताया । ब्राह्मणों का प्राजापत्य,  
क्षत्रियों का ऐन्द्रस्थान, वैश्यों का मारुत स्थान एवं शूद्र जातियों के लिये गान्धर्व  
स्थान कहा है । यज्ञ में विघ्न करनेवालों तथा वेदनिन्दकों के लिये तामिस्र,  
वितामिस्र, असिपत्रवन, कालसूत्र और अवीचिमानस्थान बतलाये हैं ।  
इन्हीं के अन्य मानसपुत्रों की उत्पत्ति । भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरस,  
अत्रि, दक्ष, अत्रि एवं वसिष्ठ ये नौ ब्रह्मा के मानस पुत्र पुराणों में निश्चित किये  
गये हैं । ब्रह्माजी ने सर्व प्रथम जो चार सनकादिकों की उत्पत्ति की वे संसार  
का सत्क न हुए । ब्रह्मा के क्रोध से दीप्तिमान् रुद्र की उत्पत्ति हुई । स्वायम्भुव  
मनु एवं शतरूपा की उत्पत्ति का वर्णन । मनु के प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक  
पुत्र एवं आकूति व प्रसूति नाम के दो पुत्रियां हुईं । आकूति का विवाह रुचि  
साथ एवं प्रसूति का विवाह दक्ष के साथ हुआ । दक्ष के प्रसूति के गर्भ से  
तीस कन्याओं की उत्पत्ति हुई उनमें अद्वा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा,  
वृद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, श्रद्धा एवं कीर्ति ये तेरह कन्या धर्म को देदी गईं ।  
शिष्ट एकादश कन्याओं के विवाह का वर्णन भृगु का ख्यातिसे, भवका सती

स्वाहा से तथा स्वधा का पितरों के साथ हुआ। इनकी सन्तानों का सविस्तर वर्णन। रुद्रसर्ग का वर्णन। कल्प के आदि में नीललोहित नामक कुमार की उत्पत्ति हुई। होते ही वह बालक रोने लगा इससे उसका नाम रुद्र हुआ। ब्रह्माजी ने उस बालक के लिये और भी सात नाम बतलाये भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव। इन नामों के अलग-अलग स्थानों का वर्णन। रुद्र को सती नामक स्त्री की प्राप्ति हुई यह पहले कह चुके हैं वह सती दक्ष के क्रोध से शरीर को त्यागकर हिमालय के पर मेना से उत्पन्न हुई। भृगुजी के कथाति नामक स्त्री से धाता एवं विधाता दो पुत्र और श्री नाम की लड़की हुई जो भगवान् नारायण की पत्नी हुई।

४	समुद्रमन्थनप्रस्तावे दुर्वात्म इन्द्राय शापदानवर्णनम्	२१
	मध्यमानात्समुद्रात्सुरभ्यादिरत्नात्पतिः	२३
	भृगुणा विष्णोः शापदानम्	२५

भीष्मजी ने कहा मैंने सुना है कि लक्ष्मी क्षीरसमुद्र से उत्पन्न हुई है आपने भृगु के सकारा से कथाति में उत्पत्ति बतलाई है यह कैसे हुआ य दक्ष-पुत्री सती ने क्यों शरीर छोड़ा और मेना के गर्भ से कैसे उत्पत्ति हुई? देवाधिदेव शङ्कर ने उसे पत्नीत्व से क्यों स्वीकार किया एवं दक्ष के साथ शङ्कर का विरोध क्यों हुआ सो कहिये। पुलस्त्यजी बोले—हे राजन् ! भीष्म लक्ष्मी के विषय की बातें तुम्हें कहता हूँ भ्रमण करते हुए अत्रि पुत्र द्युवांसा ने विद्याधरी के हाथ से सुगन्धिध माला की वाचना की विद्याधरी ने माला श्रृंगि को दे दी। माला को जटाजूट में धारण करने से श्रृंगि उन्मत्त हो गये तथा उनका मन भी चलायमान हो गया तथा मुनि मतवाले की तरह पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे। श्रृंगि ने माला को अमरराज इन्द्र के लिये दे दिया इन्द्र ने उसे गजराज के मस्तक पर छोड़ दिया। माला की गन्ध से मत्त हाथी ने उसे पृथ्वी पर गिरा दिया।

माला को पृथ्वी पर गिरते देखकर ऋषि ने इन्द्र को शाप दिया कि मेरी दी हुई माला को तुमने धरणीतल पर गिरवाया है इसलिये तुम्हारी लक्ष्मी नष्ट हो जायगी। इन्द्र ने ऋषि से प्रार्थना की परन्तु क्रोधित मुनि ने क्षमा नहीं किया उसी दिन से तीनों लोक निःश्रीक होगये यज्ञ दान एवं तप भी नष्टप्राय हो गये दानवगण देवों को कष्ट देने लगे। दुःखित देवों का ब्रह्मा के पास गमन। ब्रह्माजी देवों के साथ विष्णु के पास गये एवं प्रार्थना की तब विष्णु बोले—हे देवो! दैत्यों के साथ सन्धि कर क्षीरसमुद्र में औषधियों को छोड़ मन्दराचल को मथनदण्ड एवं बामुकि को रज्जु बना मथन करो मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। दैत्य केवल क्लेशभागी होंगे आपलोगों को अमृत मिलेगा उससे अमर होजाओगे। विष्णु के आदेश से देव दैत्यों द्वारा समुद्र-मथन। सर्वप्रथम समुद्र से कामधेनु पुनः पारुणी, ऋषयश्च, अप्सरा, चन्द्रमा, विष, अमृत, अश्व, ऐरावत, लक्ष्मी आदि चौदह रत्न प्रकट हुए ब्रह्माजी के आदेश से लक्ष्मी का विष्णु के पास गमन। अमृत के लिये देवदानवों का विवाद अन्त में विष्णु ने मोहिनी रूप धारणकर दैत्यों को यन्त्रित रख देवों को अमृत पान करवाया। देव, दानवों का स्वस्थानगमन। फिर लक्ष्मी की ख्याति में भृगु के सकाश से उत्पत्ति। लक्ष्मी अपने नामवाले पुर का निर्माण कर पिता को दे पुनः स्वर्ग में आ गई। कुछ दिन बाद पिता से अपने नगर की याचना की। क्रोधित भृगु ने नकारात्मक उत्तर दिया यह सुन लक्ष्मी ने वैकुण्ठ में जाकर अपने पति से कहा लक्ष्मी के वचन गुन विष्णु ने निर्भयपूर्वक भृगु से कहा लक्ष्मी को अपना पुर दे दीजिये इतना गुन भृगु बोले श्री के पक्षपात से मुझे बाधित करते हो अतः मनुष्यलोक में तुम्हारे दश जन्म होंगे तथा श्री वियोग से दुर्लभ होओगे तदनन्तर विष्णु ने भृगु को शाप दिया कि तुम्हें लक्ष्मी का गुन नहीं प्राप्त होगा। ब्रह्मा एवं विष्णु का वार्तालाप क्रिममें विष्णु ने कहा आगे के पुर ने मुझे शाप दिया है अतः मैं दश लोक को छोड़ समुद्र में शयन करूँगा। ब्रह्मा ने विष्णु को सान्त्वना दी कि आपको कौन शाप दे

सकता है आपका जन्म संसार के हितार्थ मनुष्यलोक में होगा ब्राह्मणों का प्रति दिन सम्मान करना ही उत्तम है क्योंकि ब्राह्मण आपके ही अङ्ग हैं। ब्रह्मा के वचन सुन विष्णु का स्वस्थान गमन। ब्रह्मा द्वारा पुनः सृष्टि की रचना। नारदजी ने ब्रह्माजी की स्तुति की और कहा मेरी तपस्या का फल आज मिल गया जो कि आपके दर्शन प्राप्त हुए। ब्रह्मा ने नारद से कहा—जो इच्छा हो घर मांगो। नारद बोले मैं आप से क्या कहूँ आप सब जानते ही हैं आपकी सृष्टि को देखकर मुझे बड़ा ही कौतुक है। ब्रह्मा ने कहा—हे नारद ! मेरी कृपा से तुम कलियुग में मेरी कथा के प्रेमी एवं तुम्हारी अप्रतिहत गति होगी। यह छत्रिका एवं बीणा तुम्हारे अलङ्कार के लिये उत्तम है एवं सदैव विष्णु, रुद्र एवं शक्र के पास तुम्हारा सम्मान होगा।

५	दक्षयज्ञविध्वंसकथानकम्	२७
	दक्षकृतसतीसान्त्वनम्	२८
	दक्षकृताशङ्करस्तुतिः	३१

भीष्मजी ने पूछा—दक्षपुत्री सती ने शरीर क्यों छोड़ा एवं त्रिपुरारि शङ्कर के क्रोध कैसे पैदा हुआ तथा दक्ष यह को किस कारण से ध्वंस किया। तब पुलस्त्यजी ने कहा—हे भीष्म ! दक्ष ने हरिद्वार में यज्ञारम्भ किया वहाँ देवता, असुर, पितर, महर्षि, नाग, यक्ष एवं सुपर्ण आदि आये। वेदी को समान बना वशिष्ठजी होता, अङ्गिरा अश्वर्यु, बृहस्पति उद्गाता एवं नारदजी ब्रह्मा हुए। इन्द्रादि सभी देवों को आये हुए देखकर सती ने विनयपूर्वक प्रजापति से कहा—इन्द्र प्रचेता, कुबेर, उनचास मरुद्गण, सूर्य, चन्द्रमा, विद्याधर, करयप, अत्रि, वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, एवं राजागण अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ यज्ञ में आये हैं तथा अधिक क्या कहूँ सम्पूर्ण सृष्टि ही यहाँ आ गई है एवं आये हुए सम्पूर्ण सज्जनों का सत्कार भी भलीभाँति किया है परन्तु मेरे पति को निमन्त्रित नहीं

किया उसके बिना सम्पूर्ण शून्य की तरह मालूम हो रहा है इसका कारण कहे। सती के वचन सुनकर दक्ष ने अपनी प्यारी पुत्री से कहा - हे पुत्री ! जिस कारण से शङ्कर को निमन्त्रित नहीं किया है वह कहता हूँ। शङ्कर नम्र व कपालों की माला धारण करते हैं, तथा अङ्ग में भस्म रमाते हैं, सर्पों का आभूषण एवं नम्र पिशाचों के साथ रहते हैं यह स्वरूप मुझे लज्जाकर मालूम हुआ अतः यज्ञ की समाप्ति के बाद तुम्हारे साथ शङ्कर की पूजा करूँगा इस विषय में तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये पूर्व जन्म में किया हुआ शुभाशुभ कर्म इस जन्म में भोगना पड़ता है। दूसरे की लक्ष्मी को देखकर आत्मा की निन्दा नहीं करनी चाहिये। रूप, कान्ति, सौभाग्य, आभरण एवं अच्छे कुल में जन्म पूर्व भाग्य से मिलते हैं। इतना वचन सुनकर क्रोधित पार्वती ने पिता की निन्दा करते हुए कहा—सम्पूर्ण मनुष्य पुण्य के भागी हैं पुण्य से लक्ष्मी प्राप्ति होती है शङ्कर सम्पूर्ण जगत् के मालिक हैं उन्हीं के विये हुए सब स्थान हैं शङ्कर के गुणों का वर्णन ब्रह्मा भी नहीं कर सकते शङ्कर सम्पूर्ण संसार के पालक-पोषक एवं हरण करनेवाले हैं यदि रुद्र में देवत्व है और मेरे तप का बल है तो शङ्कर तुम्हारे यज्ञ को नष्ट करेंगे तथा तुम्हारा गर्व भी नष्ट होगा इतना कहकर योगामि से सती का शरीर त्यागना। जहाँ सती ने देह त्याग किया वह गङ्गा के पश्चिम तटपर शौनक तीर्थ नाम से विख्यात है। पत्नी वियोग से दुःखित शङ्कर ने यज्ञ नष्ट करने के लिये गणों को भेजा। गणों द्वारा दक्षयज्ञ का विध्वंस। दक्ष द्वारा शङ्कर की स्तुति। प्रसन्न हुए शङ्कर का दक्ष को वरदान कि तुम्हें यज्ञ का फल मिलेगा। दुःखित शङ्कर को नारद की सान्त्वना देना कि सती का जन्म हिमालय के घर होगा वह आप ही को वरण करेगी।

६	दक्षात्प्राक्संकल्पदर्शनस्पर्शजन्या सृष्टिः	३२
	दक्षादूध्व मैथुनतः सृष्टिः	३३
	दानवगरुडमर्पादीनां समुत्पत्तिः	३४

भीष्मजी ने पूछा कि हे गुरो ! देव, दानव, गन्धर्व, सर्प, एवं राक्षसों की उत्पत्ति विस्तार से वर्णन कीजिये। पुलस्त्यजी ने सर्वप्रथम सङ्कल्प, दर्शन एवं स्पर्श से सृष्टिक्रम का वर्णन कर दक्ष के पश्चात् मैथुनी सृष्टि का प्रकरण बतलाया दक्ष के असिक्ती नामक स्त्री में हर्यश्च नामवाले पुत्र हुए उन्हें दक्ष ने आदेश दिया कि प्रजा की रचना करो नारदजी ने उन्हें प्रजा की रचना करने में उत्तम देखकर कहा सर्वप्रथम पृथ्वी एवं ऊर्ध्वलोक, अधोलोक का प्रमाण जानकर सृष्टि रचना करो नारदजी के वचन सुन हर्यश्चों का दिशाओं में प्रस्थान पुनः दक्ष ने वीरिणो स्त्री में शचलाश्व नामक हजार पुत्रों की उत्पत्ति की वे भी नारदजी के उपदेश से अपने ज्येष्ठ भाईयों के मार्ग में चले गये। पुत्रों के नष्ट होने से दक्ष ने साठ कन्याओं को उत्पन्न किया। उनमें से दस धर्मराज के लिये, तेरह करयपजी के लिये, सत्ताईस चन्द्र के लिये, चार अरिष्टनेमिके लिये, दो भृगुपुत्र के लिये, दो अक्रिरा के लिये एवं दो कृशाश्व के लिये अर्पित की।

धर्म के अरुन्धतो, वसु, जामि, लम्बा भानु, मकरवी, सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या एवं विश्वा नाम की स्त्रियां थी तथा उनके पुत्रों का वर्णन इस तरह किया है कि विश्वार्क विश्वेदेव, साध्या के साध्य, मरुत्यती के मरुत्वान्, वसु के वसुगज, भानु के भानव, मुहूर्ता के मुहूर्तज, लम्बा के घोष, जामि के जामवीधी, सङ्कल्पा के सङ्कल्प और वसु के ज्योतिष्मान् आदि आठ वसु उत्पन्न हुए।

करयपजी के अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, मुरमा, मुरभि, विनवा, नाघा, प्रोषवरा, शरा, षट्, रामा एवं मुनि नामक स्त्रियां थीं। अदिति के द्वादश आदित्य, दिति के द्दिरण्यकशिपु एवं द्दिरण्यश्व, दनु के विप्रचिति आदि दानव,

ताम्रा के शुक्ली आदि छः कन्यायें, विनता के अरुण एवं पश्चिराज गरुड़, सुरम के सर्प, कद्रू के नागराज शेष चामुकि आदि, क्रोधवशा के रश्मोगण, सुरभि के गोमायु सुरभि आदि, मुनि के मुनिगण एवं अश्वमेध के यश्व राक्षस आदि उत्पन्न हुए इस तरह कश्यपजी के पुत्र पौत्रादिकों का सविस्तर वर्णन स्वारोचिष मन्वन्तर के बाद कश्यपजी के सकाश से दिति ने उनचास मरुद्गणों को पैदा किया उनकी देवों के साथ मित्रता हुई।

७	मरुदुत्पत्तिकथानकवर्णनम्	३६
	गर्भिणीधर्मवर्णनम्	३७
	प्रतिसर्गवर्णने पृथुग्रभृतीनामाधिपत्यवर्णनम्	३८
	चतुर्दशमनूनामुद्देशेनतत्तदन्तरवर्णनम्	४१

भीष्मजी ने पूछा कि दिति के पुत्र मरुद्गणों की देवों के साथ मित्रता कैसे हुई तब पुलस्त्यजी ने कहा—देवासुर युद्ध में दैत्यों के मारे जाने पर पुत्रों के वियोग से दुःखित हुई एवं पतिसेवा में तत्परा दिति ने पुष्कर में सरस्वती नदी के तटपर तपस्या की सौ वर्ष तप करने के बाद वशिष्ठादि ऋषियों से पूछा कि पुत्रशोक को नाश करनेवाला व सौभाग्य फल देनेवाला व्रत कही उत्तर में उन्होंने ज्येष्ठ की पूर्णिमा का व्रत पुत्र दुःख को मिटानेवाला बतलाया।

भीष्मजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! ज्येष्ठ पूर्णिमा का व्रत श्रवण करना चाहता हूँ तब पुलस्त्यजी बोले—ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को अच्छिद्र कलश की स्थापना कर माना फल, पुष्प, वस्त्र पूजोपयुक्त सामग्री को संग्रह कर पद्म पर सुवर्णमयी ब्रह्मा की मूर्ति एवं शर्करायुक्त सावित्री की उसके अभाव में गुड़ की बनाकर पोड़रोपचार से पूजन करे। समाप्ति में हवन, गोदान, ब्राह्मणभोजन एवं दक्षिणादान करे। इस तरह करने से सुन्दर पुत्र और सौभाग्य की प्राप्ति होती है। दिति ने भी वैसा ही किया। व्रत के माहात्म्य से कश्यपजी ने दिति से कहा चर मांगो उत्तर में उसने इन्द्र को मारनेवाला पुत्र मांगा कश्यपजी ने कहा—आपस्तम्ब से



प्रणीत पुत्रेष्टि यज्ञ करो जिससे तुम्हारे शत्रु को मारनेवाला पुत्र होगा तदनन्तर कश्यप द्वारा दिति को गम रहने का योग । कश्यपजी ने गर्भिणी दिति के लिये एक वर्ष के नियम बतलाये गर्भिणी को सन्ध्या समय भोजन नहीं करना चाहिये एवं वृक्षमूल में न ठहरना न जाना चाहिये । उलूखल एवं मुसल पर नहीं बैठे । शून्य स्थान का त्याग करे । अङ्गार, भस्म एवं भूमि पर नखों से न लिखे । उत्तर की तरफ शिर करके व नीचा शिर कर न सोवे । कलह न करे । अशुभ घाणी न थोले मिथ्या भाषण न करे । पति की कभी भी निन्दा न करे ऐसी बहुत-सी बातें कह कश्यपजी अन्तर्धान होगये । यह सब जान देवस्थान छोड़ इन्द्र का दिति के पास आगमन । दिति के कार्यों में छिद्र देखते हुए इन्द्र ने जब कि वर्ष के तीन दिन शेष रह गये थे दिति ने अपने पैरों को नहीं धोया वह खुले केशों से सो गई इस अन्तर को जान इन्द्र ने योगबल से उसके उदर में प्रवेश किया । इन्द्र ने गर्भ के सात खण्ड कर दिये तब ये सातों बालक रोने लगे पुनः एक एक के सात-सात टुकड़े किये किन्तु पूर्णिमा के व्रत के प्रभाव से वे मरे नहीं किन्तु उनचास मरुद्गण हो गये । इसके लिये इन्द्र ने दिति से प्रार्थना की एवं पुत्रों सहित दिति को विमान में बैठाकर स्वर्ग में ले गया एवं मरुद्गणों को यज्ञ का भागी बनर दिया ।

भीष्मजी ने कहा—आदि सर्ग का वर्णन तो आपने किया किन्तु प्रतिसर्ग का वर्णन कीजिये तब पुलस्त्यजी बोले—जब सम्पूर्ण पृथिवी का पति पृथु हुआ तब औपधि, यज्ञ, व्रत, तप, नक्षत्र, तारागण, द्विज, वृक्ष, एवं लताओं के मालिक चन्द्र, जलों के अधिपति वरुण, धन के मालिक कुबेर, पितरों के मालिक यम, गन्धर्वादिकों के चित्ररथ, दैत्य व दानवों के अधिष्ठाता प्रह्लाद तथा पिशाच, यक्ष एवं राक्षसों के प्रभु शूलपाणि शङ्कर, मृगों के सिंह एवं अन्यान्य प्राणियों के अन्यान्य देव, पशु, पक्षी राक्षस एवं मनुष्य स्वामी हुए । चतुर्दश मन्वन्तरों का वर्णन ।



पृथुगजः कथानकम्

पृथ्वीदोहनम्

सूर्यवंशवर्णनम्

वैवस्वतमनुवंशवर्णनम्

भीष्मजी ने पूछा कि हे ब्रह्मन् ! पृथिवी को बहुत से राजाओं ने भोगा है अतः पार्थिव शब्द पृथिवी के योग से है परन्तु पृथिवी किस योग से नाम हुआ तथा उसकी यह गौ संज्ञा कैसे हुई ? तत्र पुलस्त्यजी ने कहा—कृतयुग में अन्न नामक राजा था उसने मृत्यु की पुत्री सुनीया के साथ विवाह किया था उसके वेत नामक पुत्र हुआ वह अधर्मरत, कामी एवं परस्त्रीहरण करनेवाला हुआ। संसार के हितार्थ महर्षियों ने उसे शाप से मार दिया पुनः राजा के बिना दुःखित ब्राह्मणों ने उसके शरीर को मथन किया उस अन्न में माता का अंश होने से कृष्ण अर्जुन के समान म्लेच्छ जाति के पुरुष उत्पन्न हुए पुनः पिता के अंशवाले दक्षिण हस्त से महान् तेजस्वी कयच को धारण किये धार्मिक पृथु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। विप्रों ने उसका अभिषेक किया तदनन्तर पृथु तपस्या कर विष्णु के घर से सय का प्रभु हो गया। पृथिवीतल को स्वाध्याय य धर्म से हीन देख वाण से मारने के लिये उद्यत हुआ तब पृथिवी गोरूप धारण कर भागने लगी पुनः पीछे छोड़ हुए पृथु को देख एक देश में पृथिवी ने कहा क्या करूं कहो। पृथु बोले सम्पूर्ण संसार का हितकर कार्य करो। पृथिवी ने कहा—मेरा दोहन करने से ईप्सित फल प्राप्त होगा तब पृथु ने स्वायम्भुव मनुको वत्स बना अपने हाथ में अन्नरूप दुग्ध का दोहन किया पुनः सय देव, दानव, पशु, पक्षी आदियों ने अलग-अलग वत्स बना पृथिवी को दूहा। पृथुरात्र्य में सम्पूर्ण प्रजा वीधांयुवाली, धनी व सुखी थी भीष्मजी ने कहा—सूर्यवंश य सोमवंश का यथावत् वर्णन कीजिये

प्रत्यजी बोले - अदिति के कश्यप से विवस्वान् नामक पुत्र हुआ उसके न रानियां थी संज्ञा, राक्षी एवं प्रभा। रैवतपुत्री राक्षी के रेवत नामक पुत्र, प्रभा प्रभात व संज्ञा के त्वाष्ट्र, मनु, यम नाम के पुत्र और यमुना नाम की पुत्री हुई। तेज के तेज को नहीं सहन करती हुई संज्ञा ने अपने शरीर से छाया को उत्पन्न कर दिया कि मेरे पति की सेवा करो तथा मेरे पुत्रों का माता की तरह पालन करो पिता कह संज्ञा का प्रधान। भगवान् सूर्य उसको संज्ञा ही मानते हुए उसके साथ गये लगे तदनन्तर उसके गर्भ से सायणि मनु, तपती व त्वाष्ट्री नामक सन्तानें हुई। छाया का अपने सन्तानों में अधिक प्रेम देख यमराज ने दक्षिण पैर से पड़ना दी। छाया ने उसे शाप दिया कि तुम्हारा पैर किमियुक्त हो जायेगा। यमराज ने पिता से कहा कि हे देव ! माता ने मुझे शाप दिया है कि तुम्हारा पैर किमियुक्त होगा मैंने बालभाव से चरण ठठा लिया था। तदनन्तर पिता ने कहा तुम्हारे पैर के कीड़ों को ककयाकु ( मुर्गा ) भक्षण करेगा। संज्ञा के कर्म को जान क्रोधित विवस्वान् का त्वष्टा के पास गमन। त्वष्टा ने कहा हे विवस्वान् ! संज्ञा तुम्हारे रूप को नहीं सहन करती हुई मेरे पास आई थी मैंने तुम्हारे भय से यहाँ से वापस भेज दिया यह इस समय बड़वा के रूप में मरुस्थल में है। अतः हे विवस्वान् मैं मन्त्र द्वारा तुम्हारे तेज को दूरकर संसार को आनन्द देनेवाला रूप बना दूँगा तदनन्तर सूर्य के अत्यधिक तेज से चक, त्रिशूल एवं इन्द्र का वज्र तैयार हुआ। रवि के चरण स्वरूप को कोई नहीं देख सकता। सूर्य की तरफ किसी को भी पैर नहीं करना चाहिये जो करता है वह कुछ रोग को प्राप्त होता है। संज्ञा के बड़वा रूप में अश्वरूप सूर्य भगवान् से अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति पुनः वैश्वानर में बैठकर दोनों का स्वर्गगमन। वैवस्वत मनु के दश पुत्रों का वर्णन। इन्द्र को राज्य देकर वैवस्वत मनुका तपस्या के लिये प्रस्थान। एक समय रथारुद्र इन्द्र घूमता हुआ शङ्ख के बगीचे में चला गया वहाँ उमा का यह नियम किया हुआ था कि पुनामका कोई भी यहाँ आयेगा वह स्त्री हो जायेगा। इन्द्र इस

पृथुगम् । कथानरुम्

पृथ्वादीदहनम्

सूर्यवंशार्णनम्

वैवस्वतमनुवंशार्णनम्

भीष्मजी ने पूछा कि हे ब्रह्मन् ! पृथिवी को पृथु से राजाओं ने भोगा अतः पार्थिव शब्द पृथिवी के योग से है परन्तु पृथिवी किम योग से नात हुआ तथा उसकी यह गौ संज्ञा कैसे हुई ? तब पुलस्त्यजी ने कहा कृतयुग में अनामक राजा था उसने मृत्यु की पुत्री मुनीधा के साथ विवाह किया था उस वन नामक पुत्र हुआ वह अधर्मरत, कामी एवं परमश्रीहरण करनेवाला हुआ संसार के हितार्थ महर्षियों ने उसे शाप से मार दिया पुनः राजा के बिना दुःखि ब्राह्मणों ने उसके शरीर को मथन किया उस अङ्ग में माता का अंश होने कृष्ण अर्जुन के समान म्लेच्छ जाति के पुरुष उत्पन्न हुए पुनः पिता के अंशवा दक्षिण हस्त से महान् तेजस्वी कबच को धारण किये धार्मिक पृथु नामक पुत्र व उत्पत्ति हुई । पिता ने उसका अभिषेक किया तदनन्तर पृथु तपस्या कर विष्णु के वर से सब का प्रभु हो गया । पृथिवीतल को स्वाध्याय व धर्म से हीन देख बाण से मारने के लिये उद्यत हुआ तब पृथिवी गोरूप धारण कर भागने लगी पुनः पीछे लगे हुए पृथु को देख एक देश में पृथिवी ने कहा क्या करूँ कहो । पृथु बोले सम्पूर्ण संसार का हितकर कार्य करो । पृथिवी ने कहा—मेरा दोहन करने से ईप्सित फल प्राप्त होगा तब पृथु ने स्वायम्भुव मनुको वत्स बना अपने हाथ में अन्नरूप दुग्ध का दोहन किया पुनः सब देव, दानव, पशु, पक्षी आदियों ने अलग-अलग वत्स बना पृथिवी को दूहा । पृथुराज्य में सम्पूर्ण प्रजा दीर्घायुवाली, धनी व सुखी थी भीष्मजी ने कहा—सूर्यवंश व सोमवंश का यथावत् वर्णन कीजिये

अस्थिजी घोले -अदिति के कश्यप से विवस्वान् नामक पुत्र हुआ उसके न रानियां थी संज्ञा, राक्षी एवं प्रभा । रैवतपुत्री राक्षी के रैवत नामक पुत्र, प्रभा प्रभात य संज्ञा के त्वाष्ट्र, मनु, यम नाम के पुत्र और यमुना नाम की पुत्री हुई । सूर्य के तेज को नहीं सहन करती हुई संज्ञा ने अपने शरीर से छाया को उत्पन्न करा कि मेरे पति की सेवा करो तथा मेरे पुत्रों का माता की तरह पालन करो अना कह संज्ञा का प्रधान । भगवान् सूर्य उसकी संज्ञा ही मानते हुए उसके साथ होने लगे तदनन्तर इसके गर्भ से सार्यणि मनु, तपती व त्वाष्ट्री नामक सन्तानें हुई । छाया का अपने सन्तानों में अधिक प्रेम देख यमराज ने दक्षिण पैर से मड़ना दी । छाया ने उसे शाप दिया कि तुम्हारा पैर किमियुक्त हो जायेगा । यमराज ने पिता से कहा कि हे देव ! माता ने मुझे शाप दिया है कि तुम्हारा पैर किमियुक्त होगा मैंने धातुभाव से चरण उठा लिया था । तदनन्तर पिता ने कहा तुम्हारे पैर के कीड़ों को ठकुराकु ( मुर्गा ) भक्षण करेगा । संज्ञा के कर्म को जान क्रोधित विवस्वान् का त्वष्टा के पास गमन । त्वष्टा ने कहा हे विवस्वान् ! संज्ञा तुम्हारे रूप को नहीं सहन करती हुई मेरे पास आई थी मैंने तुम्हारे भय से यहाँ से वापस भेज दिया यह इस समय बड़वा के रूप में मरुस्थल में है । अतः हे विवस्वान् मैं मन्त्र द्वारा तुम्हारे तेज को दूरकर संसार को आनन्द देनेवाला रूप बना दूंगा तदनन्तर सूर्य के अत्यधिक तेज से चक्र, त्रिशूल एवं इन्द्र का वज्र तैयार हुआ । रवि के चरण स्वरूप को कोई नहीं देख सकता । सूर्य की तरफ किसी को भी पैर नहीं करना चाहिये जो करता है वह कुछ रोग को प्राप्त होता है । संज्ञा के बड़वा रूप में अश्वरूप सूर्य भगवान् से अधिनीकुमारों की उत्पत्ति पुनः विमान में बैठकर दोनों का स्वर्गगमन । वैवस्वत मनु के दश पुत्रों का वर्णन । इन्द्र को राज्य देकर वैवस्वत मनुका तपस्या के लिये प्रस्थान । एक समय रथारुद्ध हुआ शङ्कर के वगीचे में चला गया वहाँ उमा का यह नियम किया हुआ था कि पुनामका कोई भी यहाँ आयेगा वह स्त्री हो जायेगा । इस

पात को नहीं जानता था। उस वन में जाते ही सम्पूर्ण पुरुष स्त्री होगये व पोंडे घोड़ी रूप में हो गये। इल का स्त्री रूप देव चन्द्र-पुत्र युध का आगमन एवं परस्पर वार्तालाप। इक्ष्वाकु ने इनके विषय में यमिष्ठजी से पूछा—यमिष्ठजी ने मय शत्रु यथावत् कह शङ्करजी की पूजा से इसका निराकरण बनलाया। पुनः शङ्करजी की सेवा, पूजा करने से और अभ्यसेध यज्ञ करने से शङ्करजी ने वरदान दिया कि तुम एक महीने पुरुष और एक महीने स्त्री रूप में रहोगे। इल के स्त्री रूप में युध से पुरुरवा की उत्पत्ति व पुरुष रूप में मुष्मन्, गय और हरिताश्व नामक पुत्र हुए। इल के पुत्र पौत्रादिकों का वर्णन।

६	पितृवंशानुचरितम्	४६
-	श्राद्धकर्मवर्णनम्	५१
...	श्राद्धविधिवर्णनम्	५५
...	शूद्रस्यामन्त्रकं श्राद्धम्	५७

भीष्मजीने पितृवंश, रवि, धातृदेव और सोम वंश के विषय में पूछा—उत्तर में पुलस्त्यजी ने कहा—स्वर्ग में सात पितृगण हैं तीन अमूर्त्तिक एवं चार मूर्त्तिवाले हैं अमूर्त्तिक पितरों की ही मानसी कन्या मेना हुई जिसका विवाह हिमालय के साथ हुआ उसके उमा, एकपर्णा एवं अपर्णा तीन कन्यायें हुईं हिमालय ने एक उनमें से रुद्र के लिये, दूसरी भृशु के लिये व तीसरी जैगीपन्थ के लिये प्रदान की। जहाँपर सोमपथ नामक लोक है तथा अग्निष्वात्ता नाम के यज्ञवा है उनके अच्छोदा नामक कन्या हुई। उसने दिव्य हजार वर्ष तक तपस्या की पितरेश्वर उसे वरदान देने के लिये आये तो उनमें से अमावसु नामक पितर को विवाहार्थ अपनी इच्छा प्रकट की। अमावसु ने उसकी इच्छा भी न की उसके धैर्य से उसका नाम अमावास्या हुआ। तपस्या श्रम होने से अच्छोदा ने पितरों से प्रार्थना की उन्होंने कहा देव-शरीर से जो कार्य किया जाता है वह मरने पर मनुष्यलोक में तत्काल फल देता है। अब तुम यहाँ मुकृत करो जिससे द्वापर में पितरों के व्यतिक्रम

कारण मत्स्य योनि से राजा वसु को पुत्री रूप में प्राप्त होओगी । वहां यावस्था में दुर्लभ देवलोको की प्राप्ति होगी तथा पराशरजी के अंश से व्यास उत्पत्ति तुम्हारे से होगी एवं लोग तुम्हें संसार में सत्यवती नाम से पुकारेंगे ।

आद्ध में रजत पात्र की विशेषता स्वधा शब्द का प्रयोग पितरों को तृप्त होनेवाला है । दक्षिण दिशा ही पितरों के लिये मुख्य स्थान है तथा इर्भा, कुप्य एवं फल, गोक्षीर, मधु और घृत ही पितृकार्य में प्रशस्त दत्तलाये हैं ।

मसूरराजनिष्ठावा राजभापाः कुलस्थकाः ।

पद्मविल्वार्कधत्तूरपारिमन्नाढरूपकाः ॥

न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा ।

कोद्रबोदारचटक कपित्थं मधुकातसी ॥

एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः श्रियमिच्छता ॥

आद्ध में मसूर, राज, निष्ठाव, राजभाप, कुलस्थ, पद्म, विल्व आक धत्तूर, गोक्षी, कैध, मधुआ एवं चकरी, मेड़ का दूध आदि वर्जनीय हैं । जो पितरों ने प्रसन्न करता है उसे पितर शरीरारोग्य एवं पुष्टि प्रदान करते हैं । देवकार्य से विशेष प्रधानता पितृकार्य की है । “देवकार्यादपि पुनः पितृकार्यं विशिष्यते ।”

शीघ्रप्रसादास्त्वक्रोधाः निःसंगाः स्थिरसौहृदाः ।

शान्तात्मानः शौचपराः सततमप्रियवादिनः ॥

भक्तानुरक्ताः सुखदाः पितरः पर्वदेवताः ॥

पितर शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले, क्रोधरहित, निःसङ्ग, स्थायी सौहार्द (कृपा) वाले, शान्त, शुद्ध, प्रिय बोलनेवाले, भर्त्ता के प्रेमी, सुखदेनेवाले और पर्व में देवता स्वरूप हैं ( पर्वों के अवसर पर उन्हें आद्ध सहित तर्पण आद्धादि से प्रीणन करने से सिद्धि होती है । )

भीष्मजी ने पूजा आद्धकाल, विधि एवं आद्ध में त्याज्य व ग्राह्य विप्र और आद्ध का समय वर्णन कीजिये तथा उन्हें आद्ध में दिया हुआ अन्न कैसे प्राप्त होता

है यह बताया है। पुलस्त्यजी ने कहा—श्राद्ध, नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य तीन तरह के यतलाये हैं। नित्यश्राद्ध अर्घ्य एवं आवाहन से वर्जित है। पर्व में होनेवाले कं पार्वण कहते हैं पार्वण में पञ्चाग्नि तपनेवाला, स्नातक, त्रिसुपर्ण, वेद के छठों अङ्गों को जाननेवाला, श्रोत्रिय, श्रोत्रियपुत्र, विधिवाक्य को जाननेवाला, सर्वज्ञ, वेदविद मन्त्रों को जाननेवाला, पुराण जाननेवाला, ब्रह्मज्ञ, स्वाध्यायी, जप में तत्पर, ब्रह्मभक्त पितृभक्त, सूर्यभक्त, वैष्णव, योगनिष्ठ और विजितात्मा विप्र को निमन्त्रित करने चाहिये। पतित, पतितपुत्र, स्त्रीव (नपुंसक), चुगल और न्यूनाधिक अङ्गवाल एवं रोगी को नहीं। विप्रों को पहले दिन अथवा श्राद्ध दिन निमन्त्रण के वायुभूत हुए पितर घंटे हुए विप्रों की उपासना करते हैं। दक्षिणाभिमुख होकर मध्याह्न समय में श्राद्ध करे आशीर्वाद मांगे वैश्वदेव तर्पणादि करे। श्राद्ध करनेवाला व भोजन करनेवाला उस दिन दो बार भोजन, यात्रा, परिभ्रम, मैथुन, स्वाध्याय, कलह, सवारी पर चढ़ना और दिन में शयनन करे। कृष्णपक्ष में कन्या, वृष और कुम्भ के सूर्य में इसी विधान से श्राद्ध करना चाहिये। अब साधारण श्राद्ध कहते हैं—साधारण भुक्ति व मुक्ति को देनेवाला है, अयन, विषुव, अमा, अर्क संक्रान्ति, अष्टका कृष्णपक्ष की पञ्चदशी, आर्द्रा, मघा, रोहिणी, गजच्छाया, व्यतीपात, विष्टि, वैधृति इस भाग विशेष का विधान है और जब द्रव्य व योग्य ब्राह्मण मिले तब यह श्राद्ध सदा शुद्ध है। वैशाख शुद्धा तृतीया, कार्तिक शुद्धा नवमी, माघ शुद्धा पूर्णिमा, भाद्र शुद्धा त्रयोदशी, आश्विन की नवमी, कार्तिक की द्वादशी, चैत्र व भाद्र की तृतीया, फाल्गुन की अमायास्या, पौष की द्वादशी, आषाढ़ की दशमी, माघ की गजती, भाद्रपद की अष्टमी, आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन की पूर्णिमा को श्राद्ध करना चाहिये इन दिनों दिया हुआ तिलयुक्त जल भी हजार बार श्राद्ध करने के समान फलदायक बनता है। श्राद्ध में पात्र-वस्त्रपत्रि, पर्ण (पत्ता), चांदी सुवर्ण और नाथ का होना चाहिये। चांदी के पात्र से दिया हुआ जल भी अथर्व हो जाता है। महाभारत का अध्ययन पितरों



वृत्ति कारक बतलाया है। पितरों की तुष्टिहेतु पृथिवी, गौ, हिरण्य और इर वस्त्र देवे। वित्त की शठता न करे यथाशक्ति द्रव्य का सङ्कोच नहीं हो।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये यह कर्म बतलाया है। शूद्र भी मन्त्र-त आर्द्र कर सकता है। भार्या रहित भी अमन्त्रक आर्द्र करे। अभ्युदयिक द्रु जिसे वृद्धि ( नांदी ) आर्द्र कहते हैं वह उत्सव, यज्ञ और विवाहादि मङ्गल र्प में किया जाता है। माताओं की पहले पूजा पीछे पिता आदि की होती है। न द्विजातियों की पूजन करने का विधान बतलाया है। शूद्र के लिये दान ही ान कहा है उससे सब कामों की फल प्राप्ति है।

० . एकोद्दिष्टआर्द्रविधिः ५८

लेपभाक्सपिण्डपितृगणनिर्णयः ५९

आर्द्रविषये कौशिकमुक्तकथानकम् ६१

एकोद्दिष्ट आर्द्र का वर्णन—ब्राह्मण को जननाशौच एवं मरणाशौच दश न का, क्षत्रिय को बारह दिन का, वैश्य को पन्द्रह दिन का तथा शूद्र को एक ास का होता है। सपिण्डों में बूढ़ासंस्कारपर्यन्त एक रात्रि का इसके बाद ान रात्रि का अशौच होता है। अश्विसंचय के बाद बारह दिन पिण्ड दिया ता है यह उसे पाथेय ( फलेवा ) के रूप में मिलता है। प्रेतदाह की शान्ति लिये व मार्ग के परिभ्रम को दूर करने के लिये आकारा में दस रात्रि तक जल पना चाहिये। एकादशाह के दिन ग्यारह विप्रां को भोजन करावे। दूसरे ान एकोद्दिष्ट करे उसमें एक पवित्र, एक पिण्ड व एक ही अर्घ होता है। सूक्त के ान्व में शय्या दान करे। नव भाद्र में कभी भोजन न करे करने से चान्द्रायण व करने से शुद्धि बतलाई है। वृषोत्सर्ग करे। जलपट का दान करे। पूर्ण ाश्वरसर में भाद्र करने के बाद पार्वय का अधिकारी होता है। मृताह के दिन एकोद्दिष्ट ही करना चाहिये पार्वय नहीं। सात पुरुषों तक सपिण्ड संज्ञा कही है ामीमाजी ने पूजा - हव्य-अव्य पितरों को कैसे प्राप्त होते हैं। मर्त्यलोक में दिया

हुआ पितृलोक में कैसे प्राप्त होता है ? पुलस्त्यजी बोले—पितर वसुध  
 पितामह रुद्रस्वरूप एवं प्रपितामह आदित्यस्वरूप बनलाये हैं इनकी दृष्टि, नाम, प  
 गोत्र वधारण से ही हो जाती है एवं किया हुआ आद्व प्राप्त हो जाता है। आद्व  
 पितर जिस रूप में होता है उसे उसी रूप से मिल जाता है जैसे पिता देवस्वर  
 है तो उसे वह अन्न अमृतरूप में मिलता है दैत्यरूप में है तो दैत्यों के भोगरूप  
 पशु मोनि में हो तो पास आदि के रूप में मिल जाता है। प्रसन्न हुए पितृ  
 राज्य, आयु, धन, पुत्र एवं विद्या देते हैं। इसी कारण से कौशिक पुत्रों की मो  
 पाँचवें जन्म में हुई। भीष्मजी ने पूछा कौशिक पुत्र पाँच जन्मों से कैसे वो  
 को प्राप्त हुए तब पुलस्त्यजी ने कहा—कुरुक्षेत्र में कौशिक नामक महान् ऋषि  
 उनके स्वरूप, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, वाग्दुष्ट एवं पितृवर्त्ती ये सात पुत्र हुए  
 पिता के मरने के बाद वर्षा न होने के कारण महान् अकाल पड़ा। ये सा  
 गर्ग के शिष्य थे गर्गजी की आज्ञा से वन में गौ की रक्षा करते थे। भूख  
 पीड़ित होकर उन्होंने यह विचार किया कि इस कपिला का भक्षण करें उनमें  
 छोटे ने कहा यदि ऐसा विचार है तो आद्वरूप में मारो तब उन्होंने ने दो भाई  
 को देवकार्य में तीन को पितृकार्य में एक को अतिथिरूप में तथा सातवें को आ  
 देनेवाले के रूप में समझ गौ को मार दिया और गुरुजी से झूठ ही कहा व्याघ्र  
 गौकोमार दिया इस वल्लभ को आप ग्रहण कीजिये। मरने के बाद वे सातों वर  
 में व्याध जन्म में तीर्थ स्थान में अनशन कर प्राणों को त्यागकर कालखुर पर्व  
 पर मृग हुए। वहाँ भी विज्ञान योग से मृत्यु को प्राप्त हो मानस सरोवर  
 वक्रवाक के रूप में प्रकट हो अन्त में सातों योगिराज हुए। सातों योगियों  
 आरुयान का वर्णन। अन्त में वे सब नन्दारंध्र से परमपद को प्राप्त हुए।

एवमायुर्धनं विदां स्वर्गमोक्षमुखानि च।

प्रयच्छन्ति मुतं राज्यं नृणां तुष्टाः पितामहाः ॥

इस आरुयान के पठन एवं श्रवण का फल।

११

आद्ययोग्यप्रशस्तदेशगणनम् श्री बुधिली नागरी मन्त्रालय ६४

सत्यदयेन्द्रियनिग्रहशमानामपि तीर्थस्मिन् ६५

भीष्मजी ने पूछा कि आद्व करनेवाला आद्व किसके कौन से भाग में करे (वे कहाँ किया हुआ आद्व बहुफल देता है पुलस्त्यजी बोले पृथ्वी तीर्थ में किया हुआ आद्व पितरों को अनन्त फल देता है ? नन्दा, ललितो, गङ्गा, यमुना, तागद, ब्रह्म सरोवर, शतद्रुतट, नैमिषारण्य, गङ्गोद्भेद वही घराह का ध्यान है इन स्थानों में किया हुआ आद्व उत्तिकारक है। श्शुमती, कुरुक्षेत्र, नीलकण्ठ तामक पितृतीर्थ, भद्र सरोवर, मानससरोवर, मन्दाकिनी, अच्छोवा, विपाशा, सरस्वती, वैद्यनाथ, क्षिमा, कालञ्जरगिरि, तीर्थोद्भेद, गङ्गोद्भेद, हरोद्भेद, महालय, भद्रेश्वर, विष्णुपद एवं नर्मदाद्वार ये गया आद्व के समान बतलाये हैं। इन पितृतीर्थों का स्मरण करने से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं जो यहाँ पर आद्व करते हैं उनका तो कहना ही क्या। ओंकारेश्वर, कावेरी, कपिलोदक, शुक्लतीर्थ, सोमेश्वर, शूलतापी, पयोष्णी, पयोष्णीसंगम, गोमती, वरुणा, भैरव, भृगुतुङ्ग, महावेणा, गौरीतीर्थ, वैनायक तीर्थ, वेन्नवती, महारुद्र, महालिङ्ग, दशाणां, शतकद्रा, शताङ्गा, अङ्गारवाहिका, शोण, घर्घर, कालिका और पितरा नदी ये पितृतीर्थ स्नान-दान में प्रशस्त हैं यहाँ पर आद्व करने से अनन्त फलदायक है-

पतानि पितृतीर्थानि शस्यन्ते ज्ञानदानयोः ।

आद्वमेतेषु यद्वत् तद्वन्तफलं स्मृतम् ॥

शतावटा, द्वारका, मालवती, धूतपापेश्वर, गोकर्ण, गजकर्ण, भीमशैल, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, कावेरी, अञ्जना, गोदावरी, त्रिसन्ध्या, श्र्यम्भक, श्रीपर्णा, भवतीर्थ, रामेश्वर, गोवर्धन, सहस्राक्ष, कदली नदी, पञ्चतीर्थ, जामदग्न्य, सहस्रलिङ्ग, रापवेश्वर, लोहदण्ड, भाण्डेश्वर, चिन्मय, लोहार्गल, वसुधारा, विजया, रामतीर्थ आदि बहुतसे तीर्थ हैं उनकी गणना विस्तार से बृहस्पति भी वर्णन नहीं

कर सकते यहां पर किया हुआ श्राद्ध, जप, तप, सब अनन्त फल देनेवाला है। मनुष्यको बहुत-सी सन्तानों की इच्छा करनी चाहिये उनमें से यदि एक भी सन्तान गया श्राद्ध, वृषोत्सर्ग और अश्वमेध कर देवे तो पितर बहुत खुशी मनाते हैं। पितर कीर्त्तन करते हैं कि हमारे कुल में ऐसा पुत्ररत्न हो गया श्राद्ध करे तथा पुष्करारण्य, नैमिपारण्य, एवं धर्मारण्य में श्राद्ध करे। गया, धर्मपू, ब्रह्मसरोवर और गयाशीर्षवट पर श्राद्ध करनेवाले के पितर भी स्वर्ग में चले जाते हैं। गया में पिण्डदान के समान और कोई दान नहीं है—

धान्यप्रदानं प्रवरं वदन्ति वसुप्रदानञ्च तथा मुनीन्द्राः ।

गयासुतीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुम्प्रवरम्बदन्ति ॥

सत्यं तीर्थं द्वातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।

घर्णाभमाणाङ्गेहेऽपि तीर्थं शम उदाहृतम् ॥

येषु तीर्थेषु यच्चाद्धं तत्कोटिगुणमिष्यते ।

गयायां यत्तु वै भाद्रं तच्चाद्धमपवर्गदम् ॥

इसलिये तीर्थभाद्र का ही माहात्म्य अत्यधिक फल देनेवाला कहा है। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल एवं सायंकाल के तीन मुहूर्तों में भाद्र न करे क्योंकि इसे राक्षसी पेशा बतलाई है। दिनके पन्त्रह मुहूर्त होते हैं उनमें अष्टम मुहूर्त को कुतपकाल कहते हैं इसमें भाद्र करना उत्तम है। मध्याह्न में सूर्यगति उसी बल मन्द होती है। भाद्र में गेहा का पात्र कुतपकाल, नैपाल कम्पल, सुयर्ग, दर्भा, दिड, गी एवं दौहित्र ये आठ पवित्र वस्तु कही गई हैं। जो इस तीर्थभाद्र के माहात्म्य को पढ़े एवं पढ़ावे तो उसके सब पापों की शान्ति एवं कुलक्ष्मी का नाश हो जाता है।

२	सोमवंशवर्णनम्	६८
	चन्द्रकृतयज्ञवर्णनम्	६९
	चन्द्रवीर्याचारायां बुधोत्पत्तिः	७१
	बृहस्पतिकृतं रजिपुत्रमोहनम्	७३

भीष्मजी ने पूछा कि सोमवंश में कौन-कौन से राजा हुये उनका वर्णन गीजिये। पुलस्त्यजी ने कहा—अत्रि ने सृष्टि के लिये तपस्या की। अत्रि के त्रजल को दिशाओं ने ग्रहण किया वह जल उनके गर्भरूप हो गया उसे दिशाएँ गहन न कर सकी तब उन्होंने उसे त्याग दिया। ब्रह्माजी उसे रथ में बैठाकर गये। ब्रह्मर्षियों ने कहा यह हमारा स्वामी होना चाहिये तदनन्तर उसके ज से दिव्य औपधिगण हुये रात्रि में चन्द्रमा के उदय होने से उसका तेज मृदा है अतः चन्द्रमा औपधियों के भी प्रभु हो गये। दक्ष ने चन्द्रमा को तत्ताईस कन्यायें अर्पण की। चन्द्रमा ने हजारों वर्षों तक विष्णु की आराधना (तपस्या) की। भगवान् नारायण उसे वर देने आये। वरदान में उसने एकलोक में राजसूय यज्ञ करूँ और आप सब प्रत्यक्ष में भाग लें ऐसा वर मांगा। चन्द्रयज्ञ का वर्णन—यज्ञ में अत्रि होता, भृगु अध्वर्यु, ब्रह्मा उदुगाता एवं विष्णु स्वयं ब्रह्मा बने तथा शङ्कर रक्षपाल व अन्य देव सदस्य बने। चन्द्रमा ने ऋषियज्ञों को तीन लोक वक्षिणा में दिये पुनः चन्द्रमा सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सात लोकों का मालिक बन गया। ऐश्वर्य से मदोन्मत्त चन्द्रमा द्वारा बृहस्पति की स्त्री तारा का अपहरण। बृहस्पति ने चन्द्रमा से तारा की याचना की परन्तु उसने नहीं दिया। तारा के निमित्त चन्द्रमा और शङ्कर का युद्ध अन्त में क्रोधित रुद्र ने ब्रह्म-शिराख छोड़ा और चन्द्रमा ने अमोघ सोमाख छोड़ा। उनसे समुद्र, भूमि एवं आकाश भी भयभीत हो गये। ब्रह्माजी ने चन्द्रमा से कहा तुमने परस्त्री हरण कर युद्ध किया है अतः तुम पापग्रह होओगे अब युद्ध शान्त करो और मेरे कहने से

तारा को गुरु के लिये अर्पण करो तदनन्तर तारा का बृहस्पति के पास गमन एवं  
 रुद्र का स्स्थान गमन । तारा के गर्भ से बुध की उत्पत्ति । पुत्रांतस्य में प्रजापति  
 देवताओं का गुरु गृह गमन । देवों ने पूजा यह किमका पुत्र दे लज्जित तारा ने  
 चन्द्रमा का दे पेसा उत्तर दिया । बुध का चन्द्र के पास गमन । बुध के इला के गर्भ  
 से पुरुरवा नामक पुत्र की उत्पत्ति । पुरुरवा के आख्यान का वर्णन पुरुरवा के उर्षी  
 के गर्भ से आयु, रुद्रायु, यश्यायु, बलायु, भृतिमान, यमु, दिव्यजायु और शत्रु  
 नामक आठ पुत्र हुये आयु के नहुप, वृद्धशर्मा, रजि, दण्ड और विराट् ये पांच  
 पुत्र हुये । रजि के सौ पुत्र हुये वे राजेय कहलाये । रजि ने विष्णु की आरा-  
 धना की परदान में विष्णु ने देव, असुर और मनुष्यों में विजयी बनो ऐसा  
 कहा । प्रह्लाद एवं इन्द्र का युद्ध । देवामुरों ने प्रह्लाद से पूछा कि इन दोनों  
 में विजयी कौन होगा प्रह्लादजी ने कहा रजि जिस तरफ होगा उसकी विजय  
 होगी । देवों ने रजि से प्रार्थना की रजिने इन्द्र के शत्रुओं को मार दिया  
 इस कर्म से इन्द्र रजि का पुत्र हो गया । इन्द्र को राज्य दे रजि का तपस्या के  
 लिये जाना । रजि पुत्रों द्वारा बलात्कार से इन्द्र राज्य का अपहरण । इन्द्र की  
 बृहस्पति के साथ मन्त्रणा । बृहस्पति द्वारा रजि पुत्रों को जिन धर्म का उपदेश  
 कर मोहित करना । इन्द्र द्वारा उनकी मृत्यु । नहुप के सात पुत्रों का वर्णन ।  
 नहुप पुत्र ययाति के दो रानियां थीं शुक्रपुत्री देवयानी एवं धृपपर्वा की पुत्री  
 शर्मिष्ठा । देवयानी के यदु एवं तुर्वसु और शर्मिष्ठा के दुष्ट, अनु और पूरु नामक  
 पुत्र हुये । पूरु के वंश का वर्णन । कार्तवीर्य के आख्यान का वर्णन । कार्तवीर्य  
 ने दत्तात्रेय की आराधना कर हजार भुजाओं को प्राप्त किया । उसने बहुत  
 दक्षिणावाले बहुत यज्ञ किये । उसके यज्ञ में नारद द्वारा गाथा का गान । जिसने  
 रावण को मोहित कर माहिष्मती में बांध दिया था तब मैंने ( पुलस्त्य ) उसे  
 छुड़वाया । जिसको वशिष्ठजी ने शाप दिया था कि जैसे मेरे वन को तुमने  
 नष्ट किया वैसे ही तुम्हारा दुष्कृत कर्म को अन्य कोई नष्ट करेगा तथा तपस्वी

प्राज्ञान तुम्हें नष्ट करेगा । परशुरामजी द्वारा उसकी मृत्यु । कार्तवीर्य के सौ पुत्र थे परन्तु उनमें पाँच ही महारथी थे । कार्तवीर्य का प्रातःकाल स्मरण करने से वित्त नाश नहीं होता एवं नष्ट हुआ धन प्राप्त हो जाता है ।

१३	क्रोष्टुवंशविस्तारवर्णनम्	७५
	वंशानुवंशस्थस्त्रीपुरुषाणां संक्षिप्तचरित्रम्	७७
	स्यमन्तकमणिसंक्षिप्तचरित्रम्	७९
	देवक्यां कृष्णोत्पत्तिवर्णनम्	८१
	भगवदयतारकारणवर्णनम्	८३
	शुकतपश्चर्यावर्णनम्	८५
	भृगुणा विष्णवे श्रापदानम्	८७
	बृहस्पतिना शुकवेपेण दैत्यमोहनम्	८९
	गुरुणा दैत्यान्प्रति धर्मभ्रंशकरोपदेशदानम्	९१
	गुरुणा दिगम्बरजैनधर्मदीक्षादानम्	९३

पुलस्त्यजी ने कहा हे राजेन्द्र ! क्रोष्टु के वंश का चरित्र भवण करो जिसमें साक्षात् विष्णु भगवान् अवतरित हुये हैं । क्रोष्टु के वृजिनीवान् नामक पुत्र हुआ उसके स्वाति उसके कुराङ्ग नामक पुत्र हुआ । कुराङ्ग के वंश का वर्णन । ज्यामघ के आरुयान का वर्णन । इसी वंश में वभ्रु ( देवावृध ) के आरुयान का पश्चन । देवावृध के महातेजा भोज उसके कुकुर, भजमान, श्याम एवं कम्बलवर्हिष नामक पुत्र हुये । कुकुर के वंश का वर्णन । राजा आहुक के उपसेन एवं देवक दो पुत्र हुये । देवक के देववान्, उपदेव, सुदेव, देवरक्षित नामक पुत्र एवं देवकी, धृतदेवा, यशोदा, भृतिभवा, श्रीदेवा, उपदेवा और सुरुपा ये सात कन्यायें हुईं ।

तारा को गुरु के लिये अर्पण करो तदनन्तर तारा का बृहस्पति के पास गमन ए  
रुद्र का स्वस्थान गमन । तारा के गर्भ से बुध की उत्पत्ति । पुत्रोत्सव में ब्रह्मा  
देवताओं का गुरु गृह गमन । देवों ने पूछा यह किसका पुत्र है लज्जित तारा ने  
चन्द्रमा का है ऐसा उत्तर दिया । बुध का चन्द्र के पास गमन । बुध के इला के गर्भ  
से पुरूरवा नामक पुत्र की उत्पत्ति । पुरूरवा के आख्यान का वर्णन पुरूरवा के उर्वर  
के गर्भ से आयु, दृढायु, वश्यायु, यलायु, धृतिमान, वसु, दिव्यजायु और शत  
नामक आठ पुत्र हुये आयु के नहुष, वृद्धरामा, रजि, दण्ड और विशाल ये पाँच  
पुत्र हुये । रजि के सौ पुत्र हुये वे राजेय कहलाये । रजि ने विष्णु की आरा  
धना की वरदान में विष्णु ने देव, असुर और मनुष्यों में विजयी बनो ऐसा  
कहा । प्रह्लाद एवं इन्द्र का युद्ध । देवासुरों ने ब्रह्मा से पूछा कि इन दोनों  
में विजयी कौन होगा ब्रह्माजी ने कहा रजि जिस तरफ होगा उसकी विजय  
होगी । देवों ने रजि से प्रार्थना की रजिने इन्द्र के शत्रुओं को मार दिया  
इस कर्म से इन्द्र रजि का पुत्र हो गया । इन्द्र को राज्य दे रजि का तपस्या के  
लिये जाना । रजि पुरों द्वारा यलात्कार से इन्द्र राज्य का अपहरण । इन्द्र की  
बृहस्पति के साथ मन्त्रणा । बृहस्पति द्वारा रजि पुरों को जिन धर्म का उपदेश  
कर मोहित करना । इन्द्र द्वारा उनकी मृत्यु । नहुष के सात पुरों का वर्णन ।  
नहुष पुत्र ययाति के दो रानियाँ थी शुक्रपुत्री देवयानी एवं वृषपरा की पुत्री  
शर्मिष्ठा । देवयानी के यष्ट एवं तुंगु और शर्मिष्ठा के दुष्ट, अनु और पूरु नामक  
पुत्र हुये । पूरु के वंश का वर्णन । कार्तवीर्य के आख्यान का वर्णन । कार्तवीर्य  
ने वृथाप्रेय की आराधना कर हजार भुजाओं को प्राप्त किया । उसने बहुत  
वशिष्ठावाले बहुत यज्ञ दिये । उसके यज्ञ में नारद द्वारा गाथा का गान । जिसने  
रावण को मोहित कर माहिष्यनी में बांध दिया था तब मैंने ( पुच्छत्य ) उसे  
मुद्राया । जिसको वशिष्ठजी ने शाय दिया था हि भूमे मेरे यन को तुमने  
नष्ट किया है वैसे ही तुम्हारा दुष्टन कर्म को अन्य कोई नष्ट करेगा तथा तपस्वी



राक्षण तुम्हें नष्ट करेगा । परशुरामजी द्वारा उसकी मृत्यु । कार्तवीर्य के सौ  
त्र थे परन्तु उनमें पांच ही महारथी थे । कार्तवीर्य का प्रातःकाल स्मरण करने  
से विघ्न नारा नहीं होता एवं नष्ट हुआ धन प्राप्त हो जाता है ।

१३	क्रोष्टुवंशविस्तारवर्णनम्	७५
	वंशानुवंशस्थस्त्रीपुरुषाणां संधिस्तचरित्रम्	७७
	स्यमन्तकमणिसंधिस्तचरित्रम्	७६
	देवक्यां कृष्णोत्पत्तिवर्णनम्	८१
	भगवदचतारकारणवर्णनम्	८३
	शुक्रतपश्चर्यावर्णनम्	८५
	भृगुणा विष्णवे द्वापदानम्	८७
	बृहस्पतिना शुक्रवेपेण दैत्यमोहनम्	८६
	गुरुणा दैत्यान्प्रति धर्मभ्रंशकरोपदेशदानम्	६१
	गुरुणा दिगम्बरजैनधर्मदीक्षादानम्	६३

पुलस्त्यजी ने कहा हे राजेन्द्र ! क्रोष्टु के वंश का चरित्र श्रवण करो जिसमें  
प्राधान्य विष्णु भगवान् अवतरित हुये हैं । क्रोष्टु के वृजिनीवान् नामक पुत्र हुआ  
उसके स्त्राति उसके कुरांकु नामक पुत्र हुआ । कुरांकु के वंश का वर्णन । ज्यामघ  
आख्यान का वर्णन । इसी वंश में बभ्रु ( देवावृध ) के आख्यान का कथन ।  
बावृध के महातेजा भोज उसके कुकुर, भजमान, श्याम एवं कम्बलबर्हिष नामक  
पुत्र हुये । कुकुर के वंश का वर्णन । राजा आहुक के उपसेन एवं देवक दो  
पुत्र हुये । देवक के देववान्, उपदेव, सुदेव, देवरक्षित नामक पुत्र एवं देवकी,  
वदेवा, यशोदा, भुतिभवा, श्रीदेवा, उपदेवा और मुरुषा ये सात कन्यायें हुईं ।

उप्रसेन से कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कट्ठ, शङ्ख, सुभ्रू, राष्ट्रपाल, वदमुष्टि, समुष्टि ये नौ पुत्र एवं कंसा, कंसवती, सुरी, राष्ट्रपाली और कट्ठा पांचपुत्रियां हुईं। भजमान के वंश का वर्णन। अन्धकों के वंश का कीर्त्तन करने से विपुल वंश की प्राप्ति होती है। क्रोष्टु के गान्धारी एवं माद्री दो स्त्रियां थी। गान्धारी के सुमित्र एवं माद्री के युधाजित उसके देवमीठुष एवं अनमित्र, अनमित्र के निग्र पुत्र उसके प्रसेन एवं शक्तिसेन दो पुत्र हुये। प्रसेन के पास स्थमन्तक नामक मणिरत्न था। कृष्ण ने मणि रत्न को उप्रसेन के लिये मांगा उसने नहीं दिया। एक समय प्रसेन उस मणि को धारण कर शिकार खेलने गया। प्रसेन ने बिल में किसी प्राणी का शब्द सुना। प्रसेन एवं जाम्बवान् का युद्ध एवं जाम्बवान् द्वारा प्रसेन की मृत्यु। सत्राजित् ने यादवों से कहा मणि के कारण प्रसेन मारा गया है श्रीकृष्ण ने प्रसेन को मारकर मणि ग्रहण की है। बहुत दिन के बाद श्रीकृष्ण भी अपनी इच्छा से उसी वनमें गये वहां यथापूर्व शब्द सुनाई दिया। श्रीकृष्ण का जाम्बवान् के बिल में प्रवेश। क्रोडित कृष्ण का जाम्बवान् को पकड़ना। जाम्बवान् ने विष्णु को पहिचान विष्णुसूक्त से स्तुति की। जाम्बवान् ने कहा कि आपके हाथ से मेरी मृत्यु अति उत्तम है इस कन्या को मणि सहित ग्रहण करें यह मणि प्रसेन को मारकर मैंने हनगन की है। श्रीकृष्ण ने शृधराजकी मुक्ति कर मणि सहित कन्या को ग्रहण कर सम्पूर्ण यातां यादवों से कही और मणि को सत्राजित के लिये अर्पण कर दिया। यादवों ने कहा हमारे मन में ऐसा था कि श्रीकृष्ण ने प्रसेन को मारकर मणि ली है। सत्राजित के सन्तानों का वर्णन। युष्णिग्वंश में विश्वराज अनमित्र के वंश का वर्णन। जो पुरुष श्रीकृष्ण के इस मिथ्या कलह को जानता है वह निष्ठा कलह का भागी नहीं होता है। मीदूप के वंश का वर्णन। मीदूप के सर्वप्रथम वसुदेव हुये तब आकाश में नगारे बजे इससे उसका नाव ध्वनिकुन्दुभि हुवा। मीदूप के अन्य नौ पुत्र एवं भुनडीर्नि, दूधा, भुनदेयी, भुनदुर्गा, राधाविदेवी ये पांच पुत्रियां हुईं। भुनदेवी के काश्यप, भुतिडीर्त्ति के

सन्तर्दन, श्रुतश्रवा के सुनीथ एवं राजाधिदेवी की शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुआ। शूर एवं कुन्तीभोज की मित्रता थी अतः पृथा को कुन्तिभोज के लिये पुत्रीरूप में समर्पित किया। कुन्तिभोज ने कुन्ती को पाण्डु के लिये दिया। पाण्डु को शाप लगने के कारण कुन्ती के गर्भ, वायु एवं इन्द्र के अंश से युधिष्ठिर, भीम व अर्जुन पुत्र हुये। माद्री के अधिनीकुमारों के अंश से नकुल और सहदेव हुये। वसुदेव के देवकी के गर्भ से साक्षात् श्रीकृष्ण पैदा हुये। श्रीकृष्ण के चतुर्भुज रूप को देखकर वसुदेव ने कहा आप शिशु रूप को ही धारण कीजिये मैं कंस से डरता हूँ मेरे छः पुत्र कंस ने मार दिये हैं इतना सुनकर श्रीकृष्ण ने चतुर्भुज रूप का संहार कर लिया। वसुदेव ने श्रीकृष्ण को नन्दगोप के लिये अर्पण कर कहा इसकी रक्षा करो इससे सम्पूर्ण यादवों का कल्याण होगा यह कंस को मारेगा तथा और भी राजाओं का नाश करेगा। अर्जुन का सारथी बनकर कौरवों का संहार करेगा अन्त में यदुकुल को देवलोक पहुँचायेगा।

भीष्मजी ने पूछा वसुदेव, देवकी, नन्द एवं यशोदा कौन थे ? पुलस्त्यजी बोले वसुदेव कश्यप के अंश से एवं देवकी अदिति के अंश से तथा द्रोण के अंश से नन्द व धरा के अंश से यशोदा उत्पन्न हुई। देवकी ने पूर्वजन्म में जो-जो वरदान मांगे थे उनकी पूर्ति के लिये भगवान् श्रीकृष्ण ने अवतार लिया। श्रीकृष्ण के दक्षिण आदि आठ पट्टमहिषी ( पटरानी ) एवं १६ हजार रानियाँ थीं। श्रीकृष्ण के सन्तानों का वर्णन। सम्पूर्ण यादवों का देवों के अंशों से उत्पन्न होने का वर्णन।

भीष्मजी ने पूछा कि सप्तर्षि, कुबेर, सात्यकि, नारद, यक्ष, मणिधर, शिष एवं धर्म्यन्तरि के साथ आदि देव विष्णु का पृथ्वीतल में उत्पन्न होने का कारण पतलाइये तथा पृष्णिकुल में उत्पन्न होने का भी उद्देश्य क्या था वह भी वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी ने कहा युगान्त में समय के शिथिल होनेपर विष्णु स्वयं देव, अमुर एवं मनुष्यों में अवतरित होते हैं। हिरण्यकशिपु के बाद बलि त्रिलोकी का राभ्य

करने लगा । धामन द्वारा बलि का बन्धन होने से देवासुरों का परस्पर युद्ध । देवासुरों के निमित्त विष्णु को भृगु का शाप । भीष्मजी ने देवासुरों के निमित्त भगवान् की उत्पत्ति का कारण पूछा तब पुलस्त्यजी बोले मन्वन्तर में द्वादश अयतारों का वर्णन संक्षेप में कहता हूँ ।

प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयाऽपि वामनः ।

तृतीयस्तु वराहश्च चतुर्थोऽमृतमन्धनः ॥

संप्रामः पञ्चमश्चैव सुषोरस्तारकामयः ।

षष्ठो ह्याडीवकारुयश्च सप्तमस्त्रीपुरस्तथा ॥

अष्टमश्चान्धकवधो नवमो वृत्रघातनः ।

ध्वजश्च दशमस्तेषां हालाहलस्ततः परम् ॥

प्रथितो द्वादशास्तेषां घोरः कोलाहलस्तथा ।

देव एवं दानवों का भीषण संप्राम । दैत्यों को पराजित देख उनकी रक्षार्थ शुक की तपस्या करना । इसी बीच देवों ने दैत्यों के साथ बहुत युद्ध किया । दुःखित दैत्यों ने देवों से कहा हम न्यस्त राक्ष हैं गुरु शुक्याचार्य जबतक नहीं आयेंगे तबतक नहीं लड़ेंगे अन्तवो गत्वा देवों ने स्वीकार नहीं किया तब दैत्यों ने काव्य की माता की शरण ली । माता ने उन्हें अभयदान दिया फिर भी देवों ने बलात्कार से युद्ध किया । काव्य-माता ने क्रोधपूर्वक कहा मैं तपोबल से सबको नष्ट कर दूंगी । तदनन्तर इन्द्र के आदेश से विष्णु द्वारा शुकमाता का बध । भृगु का विष्णु को शाप कि तुमने अवध्या स्त्री का बध किया है अतः सात जन्म तक मनुष्य योनि में जन्म लेना होगा । भृगु द्वारा माता को मन्त्र बल से जीवदान । तपस्या पूर्ण होनेपर शुक को महादेव का परदान । शुक का जयन्ती के साथ सौ वर्ष तक अदृश्य रूप में सहचार । वृहस्पति का शुक वेप से दैत्यों को मोहित करना । अवधि समाप्ति के बाद शुक्याचार्य का शिष्यों के पास आगमन । वही शुक्ररूप गुरु को देखकर कहा हे मछन ! यह कार्य उत्तम नहीं है जो आप

मेरे शिष्यों को मोहितकर उपदेश करते हो। गुरु ने कहा संसार में परद्रव्य हरनेवाले तो देखें गये हैं परन्तु शरीर को हरनेवाले नहीं। इस प्रकार दोनों का विवाद। शुक का दानवों को शाप। बहुत दिन के बाद दानवों ने गुरु से कहा कि यह संसार असार है कुछ ज्ञानोपदेश कीजिये जिससे मोक्ष मिले। शुकस्वरूपी गुरु द्वारा दैत्यों को धर्म नष्ट करनेवाला उपदेश। मायामोहित दैत्यों ने कहा हे गुरु! हमें दीक्षा दीजिये इस संसार से हम विरक्त हो गये हैं आपही की शरण में हैं। तब गुरु ने विचार किया कि इन्हें किस तरह से नरक का मार्ग दिखाया जाये। गुरु ने विष्णु का ध्यान किया विष्णु ने कहा यह मायामोह अखिल दैत्यों को नष्ट करेगा इतना कहकर विष्णु का अन्तर्धान। तपस्या में लगे हुये दैत्यों के पास मायामोह का आगमन। बृहस्पति ने कहा आपलोगों की भक्ति से प्रसन्न हो योगिराज दिगम्बर मुण्ड एवं मयूरपत्र की धारण करनेवाले आये हैं। मायामोह ने कहा तुम्हारी तपस्या ऐहिक फल प्राप्ति के लिये है अथवा पारलौकिक फल के लिये? दानवों ने कहा हमारी तपस्या पारलौकिक फल प्राप्ति के लिये है। दिगम्बर ने कहा यदि मुक्ति की इच्छा करते हो तो मेरे वचनों का पालन करो। बौद्धधर्म सबसे उत्तम है एवं मुक्ति का मार्ग है। इस प्रकार वेद बहिष्कृत कर्मों का उपदेश कर दैत्यों को मुक्तिमार्ग से वञ्चित करना। दिगम्बर ने कहा यही मार्ग दिगम्बरों एवं श्वेताम्बरों का है। मायामोह द्वारा दैत्यों को अन्य बहुत-से दिगम्बर जैन धर्मों का उपदेश। मायामोह ने दैत्यों से कहा यह गुरु आपलोगों को दीक्षा देंगे। दैत्यों ने गुरु से कहा हमें संसार से मोक्ष पानेवाली दीक्षा दीजिये। गुरुजी बोले नर्मदा तटपर वस्त्र त्यागकर ठहरो दीक्षा दूंगा। तदनन्तर दैत्यों को दिगम्बर एवं मुण्डित कर परम धर्म (जैनधर्म) का उपदेश कर कहा अन्य देव को प्रणाम नहीं करना चाहिये इस प्रकार उपदेश कर गुरु बृहस्पति का स्वर्गलोक में गमन। बृहस्पति ने सम्पूर्ण बात इन्द्र से कह सुनाई। इन्द्र ने प्रह्लाद से रहित नमुचि आदि दानवों को

देखकर कहा हे दानवो ! यह वेद को लोप करनेवाला व्रत कैसे आरम्भ किया है दानव बोले हमलोगों ने आसुर भाव त्याग दिया है एवं ऋषियों के धर्म को धारण किया है अतः हे इन्द्र ! त्रिलोकी के राज्य को भोगो इतना सुनकर इन्द्र का स्वर्गलोक गमन । शुक्राचार्य द्वारा दानवों को प्रबोधन । शुक्र के वचन सुनकर दानवों ने फिर त्रिलोकी के हरण करने की क्रूर बुद्धि की ।

१४	अर्जुनकर्णयोरुत्पत्तिकथनपुरस्सरं वैरकारणकथनम्	६५
	स्वेदरजस्तजयोः पुरुषयोर्युद्धवर्णनम्	६७
	शिवकृतब्रह्मशिरश्छेदकारणम्	६६
	ब्रह्माज्ञया शिवकृतविष्णुस्तोत्रम्	१०१
	शिवप्रति विष्णुना ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तकथनम्	१०३

भीष्मजी ने पूछा कि तीन पुरुषों से अर्जुन की उत्पत्ति कैसे व कर्ण की उत्पत्ति कन्या से एवं दोनों का परस्पर वैर का कारण वर्णन कीजिये । पुलस्त्यजी ने कहा ब्रह्माजी के पञ्चम मुखा नष्ट होने से ललाट द्वारा स्वेद की उत्पत्ति । ब्रह्मा ने जलम स्वेद को दृष्यी पर छोड़ दिया उमी स्वेद से कुण्डलयुक्त एवं धनुषधारी व राक्षस कवचयुक्त पुरुष की उत्पत्ति । ब्रह्माने उसे रत्न को मारने के लिये कहा तब वह पुरुष पाग हाथ में ले रत्न को मारने के लिये दौड़ने लगा इस व्यथा से पीड़ित राक्षस का विष्णु के पास गमन । विष्णु ने राक्षस को शान्ति प्रदान कर उस पुरुष को दृष्टार से मोहित कर दिया । विष्णु द्वारा राक्षस को कपालपात्र में दक्षिण नुसारसी भिन्ना दान । राक्षस द्वारा त्रिशूल से भुजा का काटना भुजा से रक्त का प्रवाह । रक्त को कपाल में ग्रथन करने से अग्नि के समान कान्तिवाले पुरुष की उत्पत्ति । विष्णु ने पूछा हे भव ! यह कपाल में कौन गर है इसपर बोले आदने नर रक्त का स्मारक किया है अतः इसका नाम नर होगा

आप दोनों नर नारायण नाम से विख्यात होंगे। ब्रह्मा के दीप्त तेज, आपकी भुजा के रक्त तथा मेरी दृष्टि इन तीनों (तेजों) से यह उत्पन्न हुआ है अतः शत्रुओं को युद्ध में जीतेगा। नारायण के समश्रु ही नर द्वारा वाम पाद से स्वेदज को मारना। स्वेदज एवं रक्तज का परस्पर युद्ध। दोनों का युद्ध [स्र विष्णु ने ब्रह्मा से कहा हे ब्रह्मन् ! रक्तज ने स्वेदज को मार दिया है। तब ब्रह्मा गोले इस जन्म में इसे जीवनदान दीजिये पुनः विष्णु ने तथाऽस्तु कह स्वेदज और रक्तज को कहा द्वापर की सन्धि में तुम दोनों का युद्ध होगा। विष्णु ने सूर्य एवं इन्द्र से कहा मेरी आज्ञा से इन दोनों का पालन करो। हे सूर्यदेव ! यह स्वेदज [हारे अंश से पृथा कुमारी के गर्भ से उत्पन्न होगा। पुनः हे इन्द्र ! यह रक्तज [हारे अंश से पाण्डु के शापित होने के कारण पाण्डुपत्नी कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न होगा। इन्द्र ने विष्णु से कहा अतीव मन्वन्तर में सुग्रीव के निमित्त मेरे पुत्र रावण को आपने मारा था अतः मैं पुत्र को ग्रहण नहीं करूँगा विष्णु गोले : इन्द्र ! मैं सूर्यलोक में सूर्यपुत्र को नष्ट करने के लिये एवं तुम्हारे पुत्र की विजय : लिये अवतार धारण करूँगा इतना सुन प्रसन्न हो इन्द्र का स्वस्थान-गमन। विष्णु ने ब्रह्मा से कहा आपके द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की गई है अतः आपके ही द्वारा नष्ट होना उचित नहीं जैसे कहा भी है कि “विष्वक्करोऽपि स्वयच्छेत्तुमसाम्प्रतम्” इसलिये रावण को नष्ट करने के लिये जो पुरुष गोला उस निमित्त बह्नित्रय को धारण करते हुये पुण्यतीर्थ में पत्नी सहित यज्ञ : रो। विष्णु द्वारा यज्ञ विषयक उपदेश।

अग्निहोत्रात्परन्नान्यत्पवित्रमिह विद्यते।

विनाऽग्निना द्विजेनेह गार्हस्थ्यन्न तु लभ्यते ॥

भीष्मजी ने पूछा जो धनुर्धारी पुरुष कपाल से उत्पन्न हुआ था उसकी उत्पत्ति विष्णु से अथवा अपने कम से या रुद्र से हुई एवं ब्रह्मा के पञ्चम मुख कैसे उत्पन्न हुआ ? सर्व में रज का एवं रज में सर्व का नहीं प्रवेश होता सर्वस्व ब्रह्मा ने

महादेव को मारने के लिये पुरुष क्यों छोड़ा ? तब पुनस्त्यज्जी बोले हरि एवं महेश  
 दोनों ही सत्पथ में स्थित हैं एवं उनसे कोई भी वस्तु छिपी हुई नहीं ब्रह्मा का पञ्च  
 मुख ऊपर की तरफ था उसी से ब्रह्मा में रजोगुण रूप अहंकार प्रवेश हुआ  
 ब्रह्माजी समझने लगे कि मेरे समान अन्य कोई नहीं है मैंने ही सृष्टि की रचना  
 की है। ब्रह्मा के पञ्चम मुख से सम्पूर्ण देवों का हवतेज होना। तदनन्तर  
 देवों का शङ्कर से प्रार्थना करना। देवों की प्रार्थना पर शङ्कर द्वारा ब्रह्मा के शिर  
 का छेदन। देवों द्वारा शङ्कर की स्तुति। शङ्कर ने ब्रह्मा की प्रार्थना पर  
 हे ब्रह्मन् ! मुझे ब्रह्महत्या लगी है अतः आप मेरी रक्षा करो। ब्रह्मा बोले  
 भगवान्नारायण आपको पवित्र करेंगे। ब्रह्मा की आज्ञा से शङ्कर द्वारा विष्णु की  
 स्तुति। शङ्कर ने कहा हे विष्णो ! ब्रह्महत्या से मेरा शरीर काळा हो गया  
 तथा शव की गन्ध मेरे शरीर में आती है मेरे आभरण लोहे के हो गये हैं  
 क्या कहूँ जिससे मेरा शरीर पूर्ववत् हो। विष्णु बोले ब्रह्महत्या अत्यन्त उग्र  
 एवं फलप्रद है ऐसे पाप की धारणा मनमें भी न करे। हे रुद्र ! ब्रह्मा के कथन  
 अनुसार सम्पूर्ण शरीर में भस्म धारण कर शिखा, कर्ण (कान) एवं हाथ में हड्डियों का  
 धारण करने से फल नहीं होगा इतना कह विष्णु का अन्तर्हित होना। शङ्कर ने तीर्थ  
 का भ्रमण कर पुष्कर में ब्रह्मा की आराधना की। ध्यान करते हुए शङ्कर  
 पास ब्रह्मा का आगमन एवं वरदान के लिये कहना। ब्रह्मा बोले हे रुद्र  
तुम्हारा पुरातन स्थान अविमुक्त है वहाँ कपालमोचन तीर्थ होगा वहाँपर ब्रह्मा  
विष्णु एवं शिव का दर्शन करने से महापातकी भी शुद्ध हो जाते हैं वरणा एवं  
असी के बीच क्षेत्र में ब्रह्महत्या प्रवेश नहीं कर सकती इतना कह ब्रह्मा द्वारा  
 वाराणसी क्षेत्र का माहात्म्य कथन एवं पिण्डदान का माहात्म्य कह ब्रह्मा  
 अन्तर्धान करना व शङ्कर का पार्वती सहित काशीक्षेत्र में निवास।



मेरोरुपरि बैराजनामभवनवर्णनम्	१०५
वृक्षवरदानप्रसङ्गेन तत्र वासवर्णनम्	१०७
विष्णुना सह सर्वदेवानां गमनम्	१०६
पुष्करतीर्थोत्पत्तिकारणवर्णनम्	१११
पुष्करक्षेत्रवासविधिवर्णनम्	११३
त्रिविधभक्तिभेदवर्णनम्	११५
पुष्करमरणनिवासफलम्	११७
आश्रमधर्मवर्णनम्	११६

भीष्मजी ने पूछा ब्रह्मा ने शङ्कर को धाराणसी में जाने की आज्ञा दे कैसे एवं उसे तीर्थ में यज्ञ किया तथा वहाँ श्रुतिम् एवं सवस्य कौन थे व जनार्दन एवं शङ्कर ने युक्त होकर कौन कर्म किया सो वर्णन कीजिये । पुलस्त्यजी ने कहा—मेरु के शिखर रत्नों से चित्रित, अनेक आश्रमों के निवास, उतावितानों से युक्त एवं अनेक स्नान समूहों की ध्वनि से निनादित बैराज नामक ब्रह्म भवन है । वहाँ पर अन्तिमती नामक देवसुखकरी सभा का वर्णन । उस सभा में बैठे हुए ब्रह्माजी को बुद्धि उत्पन्न हुई कहा यज्ञ करना चाहिये काशी आदि तीर्थ रुद्र से सेवित हैं । जैसे मैं सब देवों में आदिदेव माना गया हूँ उसी तरह मैं जहाँपर उत्पन्न हूँ उस पुष्कर तीर्थ में यज्ञ कर उसे आदितीर्थ बनाऊँ ऐसा विचारकर ब्रह्माजी का पुष्कर तीर्थ में गमन । वहाँ पर नानाविध वृक्षों का वर्णन एवं वृक्षों द्वारा ब्रह्मा की सेवा । वृक्षों द्वारा पुष्प वर्षा करने से ब्रह्मा ने उन्हें वरदान देने को कहा । वृक्षों ने कहा हे देवेश ! आप यहीं निवास कीजिये यही हमारी कामना है । ब्रह्मा ने कहा—

उत्तमं सर्वक्षेत्राणां पुण्यमेतद्भविष्यति ।

नित्यम्पुष्पफलोपेता नित्यं सुखिरयौवनाः ॥

कामगाः कामरूपाश्च कामरूपफलप्रदाः ।

कामसन्दर्शनाः पुंसां तपः सिद्ध्युज्ज्वला नृणाम् ॥

श्रिया परमया युक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यति ।

वृक्ष वरदान के बाद एक हजार वर्ष के अनन्तर कमल का गिरना उस पृथ्वी का कम्पित होना एवं नानाविध उत्पातों का होना । उस महान् शब्द मुर, अमुर, मानव एवं त्रिलोकी के सम्पूर्ण प्राणी व्याकुल हो गये । विष्णु देवों के पास गमन । देवों का विष्णु के साथ सम्वाद । विष्णु ने कहा भूप्रदेश में यह करने गये हैं वहाँ पर उनके हाथ से कमल गिर गया है उस यह शब्द हुआ है अतः पुष्करक्षेत्र में मेरे साथ चलकर ब्रह्मा को प्रसन्न का यह तुम्हें वरदान दूँगे । विष्णु के साथ देवों का पुष्कर गमन । देवगण पुष्कर क्षेत्र में ब्रह्मा को खोजने लगे तब वायु ने कहा तप के बिना ब्रह्मा की तप देवसबसे अतः कर्म, मन एवं वाणी से ब्रह्मा की आराधना करो एवं ब्रह्मा दीक्षा ग्रहण करो । वायु के कथनानुसार गुरु बृहस्पति द्वारा देवों का ब्रह्मा दीक्षा ग्रहण एवं त्रिमुपनिषत्, त्रिमय, पावमानी एवं पावनी श्रुचाओं का जप कर के लिये उपदेश । त्रिकाळ स्नान कर देवों का ब्रह्मदर्शन निमित्तक ब्रह्मा की आराधना करना । देवों द्वारा ब्रह्मा की स्तुति । ब्रह्मा ने देवों को वरदान पर मांगने को कहा तब देवता बोले आपके हाथ से कमल गिरने से भयङ्कर शब्द हुआ उससे भूमि एवं धन्यलोक चलायमान क्यों हुए यह सब निरर्थक नहीं इसका कारण कहिये । ब्रह्मा ने कहा रसातल के नीचे आग दिया हुआ बाटकों के जीवों को अपहरण करनेवाला राज्य एवं ऐश्वर्य के पर से पुत्र वसनाभ नामक दानव रहता है उसे मारने के लिये कमल गिराया है । संसार में वेदपाठी भक्त ब्राह्मण दुर्गति को प्राप्त न हों मैं देव

दानव, मनुष्य, सर्प, राक्षस एवं सम्पूर्ण प्राणीमात्र के लिये समान हूँ मैंने आप लोगों के कल्याणार्थ उसे मारा है। मैंने यहांपर कमल छोड़ा है इसलिये इस तीर्थ का नाम पुष्करतीर्थ पावन एवं पुण्यद होगा। जो ज्ञानी विप्र के साथ द्वेष करता है वह कोटि जन्म पर्यन्त पापों से नहीं छूट सकता इसलिये ब्राह्मणों से कभी भी द्वेष न करे। वेदवेदान्त को जाननेवाले एक भी ब्राह्मण को भोजन कराने से कोटि ब्राह्मण भोजन के समान पुण्य होता है। जो सन्यासियों को पात्रपूर्णी भिक्षा देता है उसका सध पापों से छुटकारा हो जाता है। जो अग्निहोत्र को धारण कर छोड़ देता है वह रौरव नरकगामी होता है। ब्रह्मा ने देवों के साथ चन्द्रनदी के उत्तर जहां प्राची सरस्वती हैं एवं नन्दन से पूर्व यज्ञ हैं वैदी बनाई। ज्येष्ठ पुष्कर ब्रह्मदेवत्य एवं मध्यम पुष्कर विष्णुदेवत्य व कनिष्ठ पुष्कर रुद्रदेवत्य कहा गया है। कर्म, मन, वचनों से शुद्ध आचरण को पालनेवाले एवं दम्भ और मोह से रहित तथा ब्रह्मभक्त स्त्री पुरुषों को बड़ा रहना चाहिये।

भीष्मजी ने पूछा कि क्या कर्म करने से ब्रह्मभक्त होता है तथा कौनसे पुरुष ब्रह्मभक्त कहे गये हैं तब पुलस्त्यजी बोले मन, वचन एवं शरीर से उत्पन्न हुई तथा लौकिकी वैदिकी और आध्यात्मिकी तीन प्रकार की भक्ति कही गई है। ध्यान एवं धारणा को ज्ञान वेदार्थ स्मरण करना यह ब्रह्म-प्रीति-करी मानसी भक्ति कही गई है। मन्त्र, वेद और नमस्कारों से, अग्नि आद्यादि के चिन्तन से और आवश्यकीय जाप करने से वाचिकी भक्ति बतलाई गई है।

प्रव, उपवास, इन्द्रिय निरोध, कृच्छ्र, सान्त्वन, तथा अन्य चान्द्रायणादि करना कायिकी भक्ति का मुख्य उद्देश्य बतलाया है।

पुष्कर क्षेत्र में रहनेवाला ब्रह्मभक्त मनइच्छाविचरण करनेवाले देदीप्यमान विमान से ब्रह्मलोक जाता है। ब्रह्मलोक से प्युत होने से विष्णुलोक को तथा वहां से प्युत होने के बाद रुद्रलोक को जाता है। रुद्रलोक से प्युत होने से अन्य द्वीपों में जन्मग्रहण कर स्वर्ग के समान भोगों को भोगता है। वहां ऐश्वर्य

भोगकर फिर मृत्युलोक में राजा अथवा राजपुत्र, धनी, सुख एवं भाग्यवान् अर्थात् कीर्तिमान् उत्पन्न होता है। जो पुष्कर क्षेत्र में जल में प्राणों को त्यागते हैं अथवा अश्वय म्रदलोक की प्राप्ति होती है। पुष्कर क्षेत्र में रहनेवाले परमधार्मिक अर्थात् जितेन्द्रिय एवं सदाचारी पुरुष तो म्रदलोक को जाते ही हैं परन्तु स्त्री, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी एवं मृगादिक भी यहां मरने से म्रदलोक को जाते हैं। महाभारत कलिकाल में पापी पुरुषों को पुष्कर क्षेत्र के बिना धर्म एवं स्वर्ग की प्राप्ति साधन नहीं है। पुष्कर क्षेत्र में रहनेवाला मिष्टान्न एवं शुद्ध भोजन त्रिकाश भी करने से वायुभक्ष के समान कहा है जैसे महोदधि के समान कोई जलाशय नहीं वैसे ही पुष्कर के समान कोई तीर्थ नहीं। जैसे देवों में सर्वोपरि ब्रह्मा हैं वैसे पुष्करारण्य गुणों में सब तीर्थों से अधिक है। इस पुष्कर क्षेत्र में विष्णु सहित इन्द्रादि देवता, गजवक्त्र, कुमार रेवन्त, शिवदूती और क्षेमङ्करी आदि ब्रह्म के पास संसार के हित के लिये निवास करते हैं। जो फल सत्ययुग में १२ वर्ष व्रता में एक वर्ष से और द्वापर में एक मास से वह फल कलियुग में एक दिन पुष्कर में रहनेवालों को मिल जाता है। इससे बढ़कर कोई क्षेत्र नहीं है इसलिये पुष्करारण्य में अवश्य ही जाना चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ एवं सन्यासियों के धर्मों का वर्णन। ब्रह्मचारी को चाहिये कि गुरु की श्रद्धाभक्ति पूर्वक सेवा करे गुरुजी के सोने के पीछे सोये तथा उनके बैठने के पहले उठे गुरु के भोजन करने के पहले भोजन न करे। दिन के कृत्यों का वर्णन करे कि अमुक कार्य किया है अमुक करना है जो नियम शिष्य एवं भक्त के लिये विस्तार से वर्णन किये गये हैं उन सबको ग्रहण करे। आयु के द्वितीय भाग में गृहस्थाश्रम का सेवन करे गृहस्थों के लिये चार तरह की वृत्तियां बतलाई हैं जैसे—

कुशलधान्या प्रथमा कुम्भीधान्या द्वितीया ।

अश्वत्थानी तृतीयोक्ता कापोत्यथ चतुर्थिका ॥

इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मानी गई हैं। गृहस्थी केवल अपने लिये ही अन्न न

पकावे। हिंसा न करे दिन में न सोये रात्रि के पूर्व एवं अन्तप्रहर में न सोये। स्वदार-निरत ही रहे। श्रुतिवक्, पुरोहित, आचार्य तथा अपने से बड़ों की सेवा करे। वृद्ध, बालक, आतुर, वैद्य, जाति, सम्बन्धी, बान्धव, माता, पिता, जबाई, भाई, पुत्र, स्त्री, पुत्री एवं दासवर्गों के साथ विवाद न करे। गृहस्थाश्रम के नियम पालनेवालों के लिये स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।

जब गृहस्थ अपनेको चलीपलित (चेहरे और शरीर पर झुर्रियाँ) देखे तो उसे वानप्रस्थ का आश्रय लेना चाहिये। पुत्र के पुत्र होने से गृहस्थी वन का आश्रय ले। आयु के तृतीय भाग में वानप्रस्थ के नियमों का पालन करे। वानप्रस्थाश्रम में भी चारवृत्तियाँ बतलाई हैं जैसे—

सद्यः प्रभक्षकाः केचित् केचिन्मासिकसन्ध्यान् ।

वार्षिकान्सन्ध्यान् केचित् केचिद् द्वादशवार्षिकान् ॥

कुर्वन्त्यतिथिपूजार्थं यज्ञतन्त्रार्थमेव च ।

जिनमें कई उसी धृण भक्षण करनेवाले कई अतिथि पूजार्थ मासभर के लिये सन्ध्या करनेवाले, कई एकवर्ष तक ही सन्ध्या करनेवाले तथा कईएक बारह वर्ष सन्ध्या करनेवाले वानप्रस्थी अतिथि पूजा एवं यज्ञ सन्त्र के लिये होते हैं। इन तीनों आश्रमों के नियमों का पालन कर सन्यासाश्रम का सेवन करे। सन्यास में कापाय यज्ञ का धारण करे। किसी का सहारा न ले केवल अकेला ही धर्म का आचरण करे। मान व अपमान से न प्रसन्न होवे, न दुःखी होवे। सम्पूर्ण प्राणियों के लिये अभय दान दे। जैसे हाथी के पैरों में सम्पूर्ण पैदल चलनेवालों के पैर समा जाते हैं वैसे ही सम्पूर्ण ज्ञान चित्त में लीन हो जाते हैं।

यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पथगामिनाम् ।

सर्वाण्येवाऽवलीयन्ते तथा ज्ञानानि चेतसि ॥

इसी तरह सम्पूर्ण धर्म अहिंसा के अन्तर्गत है। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति

रोप और मोह का त्याग करे, लोह एवं काश्चन में समान दृष्टि रखे, शोकद्विष  
सन्धि य विमह का त्याग करे एवं निन्दा, स्तुति, प्रिय एवं अप्रिय से रहित हुआ  
भिन्नु सन्यासी ब्रह्मवेत्ता उदासीन की तरह रहे ।

१३

ब्रह्मदेवकृतयज्ञवर्णनम्

१२४

ब्रह्मदेवकृतगोपकन्यारूपगायत्रीपरिणयनम्

१२५

ब्रह्मणः सहस्रयुगपर्यन्तं यज्ञकरणम्

१२६

भीष्मजी ने महर्षि पुलस्त्यजी से कहा कि हे ब्रह्मन् ! आपने कमल के  
गिरने से उत्पन्न हुये पुष्करतीर्थ का उत्तम माहात्म्य कहा । वहाँ पर स्थित  
भगवान् विष्णु और शङ्कर ने जो किया वह सम्पूर्ण बतलाइये । ब्रह्माजी ने कैसे  
यज्ञ किया उसमें कितने सदस्य, कितने ब्राह्मण, उस यज्ञ के कितने भाग, क्या  
द्रव्य, क्या दक्षिणा एवं कैसा तप, कितने प्रमाण की वेदी की रचना की गई।  
ब्रह्माजी ने किस कामना के उद्देश्य से यज्ञ आरम्भ किया । अग्निहोत्र के लिये  
ही वेद एवं औपधियों की उत्पत्ति हुई एवं अन्य पशु-पक्षी आदि की उत्पत्ति  
भी यज्ञ के कारण हुई । आपका कहा हुआ सुनकर मुझे कौतूहल है कि जिस  
पवित्र कामना एवं भावना को लेकर यह यज्ञ किया सो सबसे प्रशंसनीय है  
परन्तु ब्रह्माजी की पत्नी सावित्री कही है जो कि ऋषियों एवं पुलस्त्यादि सप्तमुनि  
दक्षादि प्रजापति और स्वायम्भुवादि मनुओं की जननी है ऐसी पतिव्रता सुन्दर  
धर्मपत्नी को त्यागकर अन्य भार्या को ब्रह्मा ने कैसे ग्रहण किया ? वह (दूसरी स्त्री)  
किसकी लड़की थी क्या नाम था उसे किसने प्रदर्शित किया ? उसको ब्रह्माजी के  
पार्श्व में देखकर सावित्री ने क्या कहा ? वह सम्पूर्ण कहिये । इस प्रकार भीष्मजी  
के प्रश्नों को सुनकर पुलस्त्यजी ने कहा कि आपके प्रश्न महान् हैं फिर भी मैं  
यथाशक्ति कहूँगा । ब्रह्मदेवकृत उस यज्ञ में वेद को जाननेवाले ब्राह्मणों को  
निराश किया गया क्योंकि यज्ञ ही साधन प्रभु है । ब्रह्माजी ने देवताओं और

मनुष्यों के हित के लिये तथा लोक कल्याण के लिये यज्ञ किया। उस यज्ञ में कपिलजी, सप्तश्रृषि, त्र्यम्बक, सनत्कुमार आदि महानुभाव, प्रजापति मनु तथा पुराणपुरुषोत्तम भगवान् आये। ध्रुतिमुख भगवान् चराह का सबकी सहायता के लिये ब्रह्माजी से प्रादुर्भूत हो वेदरूपी पृथ्वी का यज्ञस्तम्भ बनाया। इस प्रकार आदित्यराह ने यज्ञार्थ अपनी दंष्ट्रा से समुद्र में गयी हुई पृथ्वी का उद्धार किया। तत्पश्चात् ब्रह्माजी द्वारा भगवान् की स्तुति करना प्रभो! आप ही मेरे परमदेव, परमगुरु एवं परमधाम हैं अतः आप मेरे यज्ञ की दानवों से रक्षा कीजिये आपको नमस्कार है। तब भगवान् ने कहा—भद्र! निर्भय रहो मैं दानवों से यज्ञ विध्वंस नहीं होने दूंगा। विघ्न करनेवालों को नष्ट कर दूंगा। इस प्रकार कह कर भगवान् सहायतार्थ वहीं स्थित हो गये। तदनन्तर कल्याणप्रद वायु बहने लगी एवं सम्पूर्ण दिशायें स्वच्छ हो गईं। महर्षिगण निर्भय हो वेदध्वनि करने लगे। सम्पूर्ण देव, दानव, भूत, प्रेत, पिशाच आदि एवं गन्धर्व, अप्सरोगण, नाग, विद्याधरगण, वनस्पति, औपभ्यादिकों का वहां आना। उस यज्ञ को देखने पशु-पक्षी आदि भी आये। ब्रह्माह्वत यज्ञार्थ धरुण ने रत्न, प्रजापति दक्ष ने अन्न दिया। इस प्रकार उस यज्ञ में नद-नदी, कूप, तालाब एवं लवणेषु मुरासर्पि आदि सप्तसमुद्र तथा वेद, भाष्य, सूत्र एवं धर्मशास्त्रादि मूर्तिरूप हो आये। ब्रह्माजी के दक्षिण पार्श्व में सनातन विष्णु, वाम पार्श्व में भगवान् शङ्कर स्थित हुये। वहां पर ब्रह्माजी ने ऋत्विजों का धरण किया जिसमें भृगुजी को होता, पुलस्त्यजी को अध्वर्यु, मरीचि को उद्गाता एवं नारदजी को ब्रह्मा का आसन दिया एवं सनत्कुमारादिकों को सदस्य बनाया। इस प्रकार उनकी कल्पना कर कुबेरजी ने उनको वस्त्राभरणादिकों से युक्त किया। पश्चात् ब्रह्माजी द्वारा सबकी नमस्कारपूर्वक पूजा। विश्वकर्मा को आवाहित कर क्षौर कर्म करवाया गया। उस यज्ञ की शोभा को देख ब्रह्माजी बहुत संतुष्ट हुए। क्षत्रिय रथार्थ, वैश्य विविध प्रकार के

रसवाहुल्ययुक्त भक्ष्य देनेवाले एवं शूद्र सेवाकर्म पर नियुक्त हुए। द्वार का अभ्यर्थ इन्द्र, रस को देनेवाला बरुण, धन दाता कुवेर, गन्ध देनेवाला पवन, प्रकार देनेवाला सूर्य एवं प्रभुत्व में भगवान् माधव स्थित हुए। वराङ्गनाओं सहित अग्न्या प्रकार सजी हुई सावित्री को अभ्यर्च्यु ने शीघ्र ही यज्ञ मण्डप में बुलाया। स्त्री स्वभाव से गृहकार्य में व्यग्र हुई सावित्री नहीं आई। उधर दीक्षाकाष्ठ आगया सावित्री ने कहा कि अभीतक तो भगवान् नारायण की पत्नी छस्मी, अग्निपत्नी स्वाहा, षरुनानी, गौरी, अरुन्धती एवं अनसूयादि नहीं आई हैं मैं अकेली नहीं आऊँगी तबतक ठहरो। तब अभ्यर्चु ने कहा कि अतिकाळ हो रहा है जैसा आपको ज्ञेय करें। इस प्रकार कहने पर क्रोधयुक्त हो मर्यादा ने इन्द्र से कहा कि मेरे लिये शीघ्र ही अन्य पत्नी की व्यवस्था करो जिससे यज्ञ में काळकोप न हो। मर्यादा के ऐसा कहने पर इन्द्र पृथिवी पर कन्या खोजने गया। वही पर एक ऋत्विग्व्य से युक्त आभीर कन्या को देख इन्द्र ने कहा कि इसके सदृश और कन्या नहीं है। यह स्त्रियों में रत्नरूप है ऐसा विचार कर इन्द्र ने उस कन्या में पूजा—गुम कौन हो कहा से आई हो एवं अकेली इस मार्ग में कैसे चलती फिर रही हो? तब उस आभीर कन्या ने कहा— मैं गोपकन्या हूँ तथा इस वेष में को पून रही हूँ। यदि आप क्रुध, दही, अधवा यक्षजन की शपथ रत्न हो तो यथेच्छ मह्य कर सकते हैं। ऐसा कहती हुई उस कन्या को दाहिने पैरु इन्द्र जहाँ मण्डपका होता था वहाँ ले गये। इन्द्र द्वारा केवली हुई यह कन्या मान में अपने माना-पिता को गुहारती रही कि हे दाता, पिता, हे नन्द, मुझे यह बटानूँ जारहा है तथा इन्द्र से कहती रही कि वेद वेदों से कब है तो आज मेरे माता-पिता से भाग सकते हैं वे मुझे आपको भक्त कर दान मेरे पिता चलेकनक हैं। इस प्रकार कहती हुई उस कन्या को इन्द्र ने कन्या के नामने स्थापित कर दिया। गोपकन्या ने भी देखा कि जो कन्या को देख अपने को अन्य माना एवं मर्यादा ने भी



उसका गायत्री नामकरण कर भगवान् विष्णु से यज्ञार्थ अनुमति मांगी । तब भगवान् विष्णु ने कहा कि अभी गान्धर्वविधि से इसके साथ पाणिप्रहण कीजिये तदनन्तर ब्रह्माजी का गायत्री से विवाह करना एवं अभ्वर्यु से कहना कि मैंने इसको पत्नीरूप से स्वीकार कर लिया है मुझे यज्ञ सदन में ले चलो । तत्पश्चात् ब्रह्माजी औदुम्बरदण्ड और मृगचर्म से युक्त हो यज्ञ में शोभित हुए । वेदपारंग ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ का आरम्भ ।

१७	ब्रह्मदेवकृतयज्ञे शिवस्य भिक्षोर्दशेनाऽऽगमनम्	१३२
	सदस्यकृतोपहासक्रुद्धेन शिवेन कपिलोद्वरणम्	१३३
	ब्रह्मरुद्रसम्वादः	१३४
	उपहासकृतब्राह्मणेभ्यः शिवशापवर्णनम्	१३७
	यज्ञकृद्ब्रह्माणम्प्रति सावित्रीकृतनिर्भर्त्सनम्	१३८
	ब्रह्मविष्णवादिदेवान्प्रति सावित्रीशापः	१४१
	सावित्र्या विष्णवे घरदानम्	१४३
	गायत्र्या ब्रह्मव्रतकथनम्	१४४
	गायत्र्यावरप्रदानम्	१४७
	रुद्रकृतगायत्रीस्तोत्रम्	१४८

भीष्मजी ने पुलस्त्यजी से पूछा कि हे द्विजसत्तम ! उस यज्ञ में आशुतोष भगवान् शङ्कर एवं विष्णु की स्थिति क्यों हुई ? पत्नी रूप में स्थित गायत्री ने क्या किया तथा उन आभीरों ने उस रहस्य को जानकर क्या किया ? इन सब बातों को आप यथावृत्त कहिये मुझे बड़ा कौतूहल है । उत्तर में पुलस्त्यजी ने कहा हे नराभिष ! एकाम्र चित्त होकर सुनिये उस यज्ञ का सम्पूर्ण वृत्तान्त

कहता हूँ। निन्द्यरूपधारी रुद्र ने सदन में जाकर बड़ा आश्चर्य दिखाया। गोपगण अपनी कन्या का नाश जान अपनी स्त्रियों सहित ब्रह्माजी के समीप आये वहाँ पर अपनी कन्या को यज्ञ में दीक्षित देख माता-पिता ने विलाप कर कहा हा पुत्रि ! हा पुत्रि ! तुमको यहाँ कौन लाया है एवं किसने इस कर्म में दीक्षित किया है इस बात को सुनकर इन्द्र ने कहा कि इसे मैंने लाकर पत्न्यर्थ नियुक्त किया है। आपलोग प्रलाप मत कीजिये। यह बड़ी भाग्यशालिनी है एवं बहुत पुण्यवती है अतः आप लोग कोई सोच न करें। तदनन्तर भगवान् विष्णु ने कहा हे गोप लोगो ! तुम्हारी यह कन्या बड़ी भाग्यशालिनी है जो ब्रह्माजी को प्राप्त हुई है। जिसको वेद जाननेवाले योगी लोग प्रार्थना करने पर भी प्राप्त नहीं कर सकते उस गति को तुम्हारी दुहिता (पुत्री) ने प्राप्त किया है। आपलोगों को धार्मिक सदाचारी जान मैंने ही यह कन्या ब्रह्माजी को दी है। इसने आपके कुल को तार दिया है। मैं भी देवकार्य के लिये आपके कुल में अवतार ग्रहण करूँगा। ऐसा मुन गोपों ने कहा हे देव ! आपका यह वर सत्य हो आप हमारे कुल में धर्मसाधन के लिये अवतार धारण करें। आपके दर्शनमात्र से हमलोग कृतार्थ हो जायेंगे। पश्चात् लज्जायुक्त गायत्री ने अपनी माता से कहा मुझे सबका आद्य जगत्पति पतिरूप में प्राप्त हुआ है आप किसी प्रकार का सोच मत कीजिये। मझकृत् उस यज्ञ में भिक्षार्थ कपर्दी शङ्कर का उपस्थित होना। बृहत्कपाल को लिये पाँच मुण्डों की माला पहने शङ्कर को देव ऋत्विजों ने कहा दूर रहो। वेदवादियों ने निन्दित तुम यहाँ क्यों आये हो ! इस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा निन्दित पर दृष्टिभृन् हास्ययुक्त भगवान् शङ्कर ने कहा—हे द्विजो ! इस पिनामह के यज्ञ में सबको मन्नुष्ट किया जाता है अतः मुझे क्यों निन्दा रहें हो ! यह उन्होंने कहा अच्छा, भोजन कर चले जाओ। शङ्कर ने कहा ठीक है मैं भोजन कर चला जाऊँगा। ऐसा कह शिव अपने सामने कपाल रख उभयो कुटिल ई देव कोउ कि मैं गुप्तर में स्नान के लिये जारहा हूँ। पश्चात्

शङ्कर का सदन में कपाल रखकर जाना। अपवित्र कपाल को देख देवताओं ने  
 कहा यज्ञ कैसे होगा ऐसा सुन एक सदस्य ने कपाल को फेंक दिया इतने में  
 वही दूसरा एक कपाल स्थित होगया। इस प्रकार फेंकते रहने पर भी निरन्तर  
 कपाल स्थित होते रहे। इस महान् आश्चर्य को देख सम्पूर्ण देवादिकों ने पुष्करारण्य  
 में जा भगवान् शङ्कर की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। तब भगवान् शङ्कर ने उनसे  
 कहा—पुरोडाश की निष्पत्ति के बिना कपाल के नहीं होती। मेरा स्मिष्टकृत  
 भाग करो ऐसा करने से मेरा शासन हो जायगा। तब ब्राह्मणों ने कहा ऐसा  
 ही होगा। पश्चात् भगवान् कपालपाणि ने पितामह ब्रह्माजी से कहा जो  
 तुम्हारी इच्छा हो वैसा (वही) बर मांगो। ब्रह्माजी ने कहा मैं यज्ञ में वीक्षित हूँ  
 अतः मैं आपका बर ग्रहण नहीं करूँगा। उसी समय में शिव का उन्मत्त रूप में  
 सभा में आना। सभासदों द्वारा शिव का उपहास। शिवजी द्वारा उपहास  
 करनेवाले ब्राह्मणों को शाप। यज्ञान्त नियर्मा का वर्णन। इसके बाद ब्रह्माजी  
 के साथ सावित्री का विवाद। सावित्री के साथ सम्पूर्ण देवस्त्रियों का  
 आगमन। सावित्री को आती हुई देव इन्द्र का भयभीत होना। ब्रह्माजी  
 उज्जा से नवमस्तरु हो सोचने लगे कि यह मुझे क्या कहेगी, इसी प्रकार  
 विष्णु, रुद्र आदि देवों और ब्राह्मणों का भी भयभीत होना। सावित्री द्वारा  
 ब्रह्माजी को निन्दना। ब्रह्माजी ने सावित्री से कहा—दीक्षाकाल उपरिधत्त  
 होने पर कृतिवर्जों ने शीघ्रता की कि बिना पत्नी के यज्ञ नहीं होगा अतः  
 शीघ्र ही पत्नी को लाओ। तब इन्द्र द्वारा यह लाई गई एवं विष्णु ने मुझे सौंप  
 दी। हे मुनये! ऐसा कार्य फिर नहीं होगा। तदनन्तर दुपित सावित्री का  
 ब्रह्माजी को शाप कि तुम्हारी कार्तिकी पूजा के सिवा अन्यत्र पूजा नहीं होगी।  
 इसी प्रकार इन्द्रादि देवों को धृक्-धृक् शाप। विष्णुहृत् सावित्री मुनि  
 एवं सावित्री का विष्णु को वरप्रदान। सावित्री का प्रस्थान। गायत्री द्वारा  
 ब्रह्मा की पूजा की प्रशंसा। पुलस्त्यजी ने कहा कि कार्तिक की पूर्णिमा को

सावित्री सहित प्रह्लादी की रथयात्रा का महोत्सव करनेवाले को धनधान्य की पुत्रादि की प्राप्ति होती है। गायत्री द्वारा प्रह्लादन का विधान। सावित्री से शक्ति देवों एवं देवपत्नियों को गायत्री का वरदान। रुद्रकृतगायत्रीस्तोत्र का वर्णन।

१८	ब्रह्मदेवकृतयज्ञस्य विस्तरेण वर्णनम्	१५०
	विष्णुदानवर्षरवर्णनम्	१५४
	ग्राचीसरस्वतीचरित्रम्	१५७
	ग्राचीसरस्वतीमाहात्म्यवर्णनम्	१५६
	पुष्करस्थसरस्वतीमाहात्म्यम्	१६१
	नन्दाभिधानकरणे प्रभञ्जनराजकथानकम्	१६३
	खजूरीवनान्नन्दाया गमनम्	१६४
	नन्दायाउपाख्यानम्	१६७

भीष्मजी कहा है ब्रह्मन् ! सदस्यों द्वारा गायत्री का अभिषेक एवं सावित्री का विरोध व शाप दान। रुद्र द्वारा वरवर्णिनी गायत्री की स्तुति इन सब बातों को सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ अब उस यज्ञस्थल में जो कार्य हुआ उसको आद्योपान्त कहिये। इस पर पुलस्त्यजी ने कहा है राजन् ! पुष्कर में यज्ञ करते हुए प्रह्लादी को मरीचि आदि श्रृपियों एवं प्रजापति दक्ष ने नमस्कार किया। देदीप्यमान पुरुषों एवं अप्सरोगण द्वारा नृत्य तथा बहुत-से गन्धर्वों के साथ नारदजी का गायन। इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, पर्जन्य, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, पराजित, भव, विश्वेश्वर, अश्विनीकुमार, अष्टवसु, विश्वेदेव, . . . और वामुकि प्रमुख नागादिकों का अञ्जली बांधे हुए स्तुति करना।

उसी समय ब्रह्मा के यज्ञ में विघ्न करने के लिये दानवों का उपस्थित होना तथा विष्णु की सम्मति से ब्रह्मा द्वारा विघ्नकर्त्ता दानवों का सन्तोष करना और आगत यज्ञ के प्रेक्षकों के रूप में सभी का पाव. अर्घ्य, आचमन, आसनादि द्वारा नाना देयगण तथा ऋषियों द्वारा सत्कार उनके विकृत मुख और अङ्गों का तीर्थ के माहात्म्य से सुगठित शरीर हो जाना फिर ब्राह्मणों और सत्पात्रों को यथेच्छ दान। यज्ञ दर्शक ऋषियों के आगमन एवं प्रसन्नता से वहाँ सरस्वती का आह्वान फिर मंजुक नामक ब्राह्मण के कुराके अग्रभाग से क्षत होने पर उसके हाथ से शाक के रस का स्रवण होना जिससे उसका हृदय 'से नाचना और और स्थावर जङ्गम प्राणियों का भी नाचना ब्रह्मा के द्वारा रुद्र को इसका पता लगाने भेजना रुद्र के पूछने पर ब्राह्मण ने कहा कि हे देव ! क्या आप नहीं देखते हैं कि मेरे हाथ से शाकरस टपक रहा है जिसे देख मैं विस्मय एवं हृदय से नाचता हूँ। इस पर भगवान् शङ्कर ने हँसकर कहा मुझे आश्चर्य नहीं मेरी तरफ देखो। ऐसा कह अङ्गुली के अग्रभाग से अंगूठे का ताड़न किया जिससे हिमपाण्डुर गिरने लगा। उसे देख लज्जित हुआ ब्राह्मण भगवान् शङ्कर के पैरों में प्रणत होकर स्तुति करने लगा। प्रसन्न हुए शङ्कर का ब्राह्मण को वरदान। प्राची सरस्वती का माहात्म्य। सरस्वती का ब्रह्माजी की आज्ञा से बड़धामि को समुद्र में फेंकना फिर पुष्कर में गुरुरूप से प्रगट होना। इस कारण से सरस्वती में स्नान करनेवालों को सम्पूर्ण तीर्थों का फल प्राप्त होता है। यह प्रसिद्ध तीर्थ विश्व में विख्यात है यहाँ सब धर्म एवं अपवर्ग की लीलायें निधि रूप में हैं यह इसलिये प्रसिद्ध है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों का साधक है जो इसे छोड़ दूसरे तीर्थ को खोजता है वह हाथ में रखे हुए अमृत को छोड़ विष पी डूँडा करता है, जैसे;

आदिवीर्यमिदं तस्मात्तीर्थानां भुवि विश्रुतम्।

धर्मापवर्गयोः क्रीडानिधिभूतमवस्थितम्॥

तत्तीर्थं सर्वतीर्थानां प्रवरम्बिहितम्बुवि ।  
 धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामपि साधकम् ॥  
 प्राचीं सरस्वतीम्प्राप्य योजन्यत्तीर्थं हि मार्गते ।  
 स करस्थं समुत्सृज्य ह्यमृतम्बिषमिच्छति ॥

पुष्कर के निकट ही तीनों लोकों में श्रेष्ठ सरस्वती ही पुनः नन्दा नाम से प्रकट हुई। सूतजी ने आगे कहा—पुलस्त्यजी का ऐसा वचन सुनकर भीष्मजी ने पूछा कि हे मन्त्रन् ! नन्दा शब्द से सरस्वती ही है या अन्य कोई श्रेष्ठ नहीं है। इस पर पुलस्त्यजी ने कहा कि क्षत्रियव्रतधारी प्रभञ्जन नामक एक राजा हुआ। यह शिकार के लिये वन में गया जहाँ बन्धे को स्नान पिलाती हुई एक हरिणी को देव्य वीक्षण घाण से उसका वेधन किया। तब हरिणी ने राजा से विलाप करते हुए कहा कि तुमने मुझे घण्टा घाण से मारा है अतः हे दुर्बुद्धे ! तुम भी राक्षसत्व को प्राप्त होओगे। क्योंकि शास्त्र में ऐसा कहा है—

दूध पीते यः पिलाते द्रुणं, गर्भधारणं किये हुए, मैथुन रत, दूर से भागकर आये द्रुण और धृष्टि ऐसे युग की हिंसा न करे हे राजन् ! यह मैंने सुना है।

विषमं गुणवत्तमं च गृहमैथुनमागतम् ।

एवम्बिषमृणं राजन् हन्यात्प्राक्कृमया भुजम् ॥

इस प्रकार मृगी से शापित राजा ने पश्चात्तापपूर्वक कहा—मैंने तो भ्रष्टाचार में तुम्हें जान में बेचिन किया है अब मेरा शाप से छुटकारा कैसे होगा ? तब मृगी ने कहा कि मी वर्ष बाद नन्दा धेनु से सम्भाव होने पर तुम्हारा छुटकारा होगा। तदनन्तर राजा का वन में व्याघ्रका होने एवं मी वर्ष होने पर उसी वन में गोदूध से गायों के पुण्ड्र का

के लिये आना। उन गायों में श्रेष्ठ नन्दा नाम की गाय जो सबसे चर रही थी उसका गायों के यूथ से छूट कर चरते-चरते खर्जूरी जाना जहाँ उसका व्याघ्र के सामने उपस्थित होना। उसे देख व्याघ्र ठहर-ठहर आज मुझे स्वयं ही आहार मिला है। इस प्रकार उसका वचन सुनकर व्याकुलता से अपने प्राणप्यारे बत्स का स्मरण कर रोती हुई उस गाय से यह बोला कि देव से अनायास ही आई हुई तुम भक्षण हो। क्योंकि—

विहितम्भुज्यते लोके स्वयम्प्राप्ताऽसि बेनुके !।

मृत्युस्ते विहितोऽयं वृथा किमनुरोचसि ॥

अतः तुम वृथा शोक क्यों करती हो। पुनः व्याघ्र ने नन्दा से पूछा क्यों रोती हो कहो। तब नन्दा ने कहा मुझे जीने-मरने की चिन्ता है। यथा—

जातस्य हि भुवो मृत्युभुवं जन्म मृतस्य च ।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न शोचामि मृगाधिप ! ॥

देवेऽपि यथा सर्वमर्तं व्यमथरौर्भूयम् ।

तस्मात्तु नाऽहनेवैका व्याघ्र ! शोचामि जीवितम् ॥

किन्तु मैं तो बत्स के स्नेह से दुःखित हो रोती हूँ क्योंकि मेरे नवजात शिशु अभी मेरा स्तनपायी है वह भुधार्थ (भूख से व्याकुल) हो मेरी माँ देखता है। मुझे उसीका सोच-दुःख है कि वह कैसे जीवित रहेगा। अतः उसको स्तन पान कर उसे मैं अपनी सत्ती को समझला कर आजाऊँगी फिर मुझे तुम भक्षण करोगे। नन्दा के इन वचनों को सुन व्याघ्र ने कहा तुम वापिस जाकर देखलोक रूपणरूप स्मर्गनुच्य उस गोकुल की छोड़कर कैसे आओगी। तब नन्दा ने कहा—

में सखी, सुत, गोप तथा पालनेवालों को देकर उनसे सझाह लेकर आज्ञा  
आप यदि मेरे वचनों को नहीं मानते हैं तो मैं शपथ खाकर कहती हूँ—

यत्पापं ब्रह्महत्यायां मातृपितृवधेषु च । तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहन्नागमे पुनः ।

यत्पापं लुब्धकानान्तु म्लेच्छानाद्भरदायिनाम् ।

तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥

गोपु विन्नाश्च ये कुर्युः स्वपन्तीन्ताडयन्ति च । तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहन्नागमे  
सकृदत्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति । तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहन्नागमे

यत्तवनर्हान्यलीवर्दान्विपमे बाह्येत्युमान् ।

कथायाङ्गुध्यमानायां विघ्नङ्कारयते तु यः ॥

तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहन्नागमे पुनः । गृहे यस्याऽऽगतं मित्रं निराशम्प्रतिगच्छ  
तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहन्नागमे पुनः । इत्येतैः पातकैर्घोरैरागमिष्याम्यहमुन

जो पाप ब्रह्महत्या एवं माता-पिता के मारने में होता है मैं उस पा  
लिप्त होऊँ यदि फिर तुम्हारे पास न आऊँ । जो पाप लुब्धकों, म्लेच्छों, वि  
देनेवालों को, गौ के कार्य में विघ्न करने वालों को, सोई हुई गौ को मारनेवालों  
को, एक बार कन्यादान कर फिर उसी कन्याको दूसरे के लिये देनेवालों को  
अयोग्य वीलों को जोतनेवालों को, कथा में विघ्न करनेवालों को तथा जिनके  
घर से मित्र निराश होकर जाते हों वह पाप मुझे लगे यदि फिर मैं तुम्हारे पास  
नहीं आऊँ इत्यादि शपथों को सुन व्याघ्र ने कहा—ठीक है मुझे तुम्हारी शपथ  
पर विश्वास है परन्तु तुम यह मत मान लेना कि यह मूर्ख है मैंने इसे ठग लिया ।  
क्योंकि इसपर भी कोई कहते हैं कि शपथ में पाप नहीं है, यथा—

कामिनीषु पिबाहेषु गवांशुषु च धैव ॥ प्राणत्यागे समुत्पन्ने अद्वातव्यं न च त्वया

लोकेऽस्मिन्नास्तिकाः केचिन्मूर्खाः पण्डितमानिनः ।

भ्रामयिष्यन्ति ते चित्रं चकारुदमिव क्षणान् ॥



प्रकहेतुवृत्तान्तरैरज्ञानावृतचेतसः । मोहयन्ति नराः क्षुद्रा आगमार्थविशारदाः ॥

अतध्यान्यपि तद्ध्यानि दर्शयन्त्यतिपेशलाः ।

स मे निम्नोन्नतानीव चित्रकर्मविदो जनाः ॥

प्रायः कृतार्थो लोकोऽयं मन्यते नोपकारिणम् ।

वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम् ॥

न तन्पश्यामि लोकेऽस्मिन्कृते प्रतिकरोति यः । सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते  
स्त्रियों में बिबाहों में प्राणिमात्र के रक्षार्थ प्राण त्याग का अवसर  
उपस्थित होनेपर किसी प्रकार से शपथ में झूठा न करे ।

विद्वानों ने कहा है कि इन परिस्थितियों में शपथ का दोष नहीं है परन्तु  
हे मातः ! तुम्हारी बुद्धि इनसे न ठगी जाय । सब नन्दा ने कहा आपको  
ठगने में कौन समर्थ है । जो दूसरेको ठगता है वह स्वयं ही बन्धित हो जाता  
है । इस प्रकार धेतु के वचन सुनकर व्याघ्र ने कहा हे पुत्रवत्सले ! आओ पुत्र  
को देखो । वत्स को स्तन पिलाकर व मुख चूमकर सखी स्त्रजन बान्धवों को  
देखकर सत्य को ध्यान में रखती हुई शीघ्र आओ । इस प्रकार व्याघ्र से आह्ला  
लेकर रोती, कांपती, दुःखित हिकार से निःश्वास छोड़ती हुई शोकसागर में निमग्न हुई  
यमुना के तट पर स्थित गोकुल में पहुंची । उसके शब्द को सुनकर वत्स सामने  
बौढ़कर आया । माता को उदास देख वत्स ने कहा मैं तुमको स्वस्थ नहीं  
देखता हूँ तथा उद्विग्न एवं भीत देखता हूँ । पुत्र के वचन सुन नन्दा ने कहा  
हे पुत्र ! स्तन पीओ कारण बताने में असमर्थ हूँ अब तुम्हारा मेरा दर्शन दुर्लभ है  
क्योंकि मैं वचनों में ( शपथ ) बन्धकर आई हूँ । भूखे व्याघ्र को आत्मजीवन  
दे दिया है । इसपर वत्स ने कहा मेरा भी मरण तुम्हारे जैसा स्वाधनीय  
होगा मैं भी साथ ही जाऊँगा । यदि व्याघ्र मांस के लिये मारेगा तो  
“या गतिमातृभक्तानां भुवं सा मे भविष्यति” जो गति मातृभक्तों की होती है वह  
निश्चय ही मेरी भी होगी । बिना जननी के जीने का क्या प्रयोजन है । माता

के समान क्षीरपायी बालकों के कोई भी बन्धु नहीं है। न माता के समानाथ है न गति है न स्नेह है न मातृ सम सुख है न देव है इस लोक एवं परलोक में माता के सदृश कोई भी नहीं है जो माता की सेवा में तत्पर है उन्हें परमात्मा की प्राप्ति होती है। प्रजापति (ब्रह्मा) ने ऐसा परम धर्म बनाया है—

नास्ति मातृसमो बन्धुर्बालानां क्षीरजीविनाम् ।

नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृ समागतिः ॥

नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्तिमातृसमं सुखम् ।

नास्तिमातृसमो देव इहलोके परत्र च ॥

एवं है परमो धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः । ये तिष्ठन्ति सदा पुत्रास्ते यान्ति परमात्माम् ।

तदुपरान्त नन्दा ने कहा मेरी ही सृष्टि है तुम मत जाओ। तुम यहीं स जलस्थल में विचरण करो प्रमाद मत करो क्योंकि प्रमाद से ही सम्पूर्ण प्राण विनाश को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार शोकयुक्त बारम्बार दीर्घ निःश्वास छोड़ती पुत्र से हीन संसार को शून्य देखती हुई विलाप करती हुई नन्दिनी ने पुनः पुत्र कहा पुत्र के समान कोई भी स्नेह, सुख, प्रीति व गति नहीं है। अपुत्र के विषय जगत् शून्य है एवं पर में भी सुख नहीं है। पुत्र से स्वर्ग प्राप्ति है तथा अपुत्र नरकों की प्राप्ति है। इस प्रकार नन्दा ने अपनी माता, सखी, व गोपियों शीघ्र ही सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन कर कहा कि मैं वचनों में बन्धक बन चुका हूँ अतः छिड़ जाऊँगी। तब उन लोगों ने नन्दा से कहा प्राण जाने की परिस्थिति में शपथ का दोष नहीं है अब तुम्हें नहीं जाना चाहिये। नन्दा ने शपथ के बाद अनेक वचन दूम्बरों की प्राणरक्षा के लिये कहे जाते हैं स्वर्ग के विषय नहीं। क्योंकि लोक एवं धर्म सत्य में ही प्रतिष्ठित है। समुद्र भी सत्यवाक्य सत्यादा को उलटन नहीं करता। देखो, भगवान् विष्णु ने राजा बलि को उलटने से बाधा दित भी बलि ने सत्य को नहीं छोड़ा। अभिप्राय यह है

सने वचनों का लोप कर दिया उसका सब कुछ लोप हो गया। ऐसा कहकर दा गोपीजनों को देख गोकुल की परिक्रमा कर दिग् देवताओं को नमस्कार र सम्पूर्ण वन के देवताओं को अपने पुत्र की रक्षा के लिये कह शोकामि से लती हुई पद-पद पर रुकती हुई जहां वह व्याघ्र था वहां पहुंची। इतने ही में पूछा। ऊपर की ओर किये हुए अतिवेगवान् बरस माता के पहिले व्याघ्र के सामने आ जा। व्याघ्र को देख नन्दा ने कहा हे सृगेन्द्र ! सत्यधर्म में स्थित मैं आई हूं मेरे सिसै यथेच्छ हृत्ति करो। मेरे बाद इस बालक को भक्षण करना। ऐसा कहने पर राघव ने कहा हे कल्याणि ! तुम्हारा स्वागत है “न हि सत्यवती किञ्चिदशुभम्भवति चित्” सत्य कहनेवालों का कोई भी अशुभ नहीं होता है। मैंने ही सत्यान्वेपण। लिये ही तुम्हें भेजा था नहीं तो मेरे को प्राप्त होकर जीती हुई कैसे जा सकती थी। इस सत्य से मेरे द्वारा तुम मुक्त हो। तुम मेरी बहिन हो यह मेरा गानजा है। ऐसा कह व्याघ्र का पूर्वकृत कर्मों के लिये पश्चात्ताप करना। धेतु का याग को सद्गमों का उपदेश। नन्दा नाम सुनने से व्याघ्र की शाप से मुक्ति। नन्दा ही सत्यनिष्ठा से प्रसन्न धर्मराज का आगमन एवं नन्दा को वरप्रदान। नन्दा ने अपने पुत्र सहित उत्तमलोक की प्राप्ति तथा उसके द्वारा सरस्वती की नन्दा गम से उपाति हो यह वरदान मांगना। उसी दिन से सरस्वती नन्दा नाम से वेख्यात हो गई। नन्दा सरस्वती का माहात्म्य।

१६

ऋषिभिर्यज्ञोपवीतैः पुष्करस्य तीर्थविभागकरणम्

पुष्करक्षेत्रस्य माहात्म्यवर्णनम्

वृत्रासुरवधाश्रितकथानकम्

वृत्रहत्याभीतस्य शक्रस्य सरःप्रवेशः

देवकृतं विष्णुस्तोत्रम्

अगस्त्यकृतं समुद्रप्राशनम्

पुष्करक्षेत्रे श्राद्धादिवर्णनम्

प्रतिग्रहदोषवर्णनम्

अप्रतिग्रहफलम्

दममहस्ववर्णनम्

मध्यपुष्करप्रशंसावर्णनम्

भीष्मजी ने कहा कि पुष्कर तथा नन्दा का माहात्म्य सुना । अब प्र  
पूर्वकथित महर्षियों द्वारा विभाजित तीर्थों का माहात्म्य कहिये । उन महर्षि  
यज्ञोपवीतों से कैसे तीर्थों का विभाग किया एवं विष्णुप्रदान के लिये बापी  
परिष्ठे हिमने निरूपण किया तथा सरस्वती और गङ्गा उत्तरवाहिनी हो कैसे भूमि  
गई । त्रिपुष्कर यात्रा का फल कहिये ।

भीष्मजी के प्रश्न को सुन महर्षि पुत्रभीष्मजी ने कहा आपके द्वारा वि  
दुष्ठा प्रश्न महान् है ध्याय पढ़ाप्रमत्ता हो तीर्थ के महाफल को सुनिये । त्रि  
हास, पैर, मन, विद्या, तप और यश सुमंगल हैं यह तीर्थफल को प्राप्त करना  
प्रतिष्ठा से रहित स्वयं प्राप्त से मनुष्य एवं भद्धार ने निरूप को तीर्थ का  
बिन्दु है । हे राजेन्द्र ! कौशरहित, सत्यशील, दृढव्रत तथा प्राणीमात्र से सम्

नेवाले को तीर्थ का फल प्राप्त होता है। हे भरतसत्तम ! यह ऋषियों से परम गोपनीय है। पितामह ब्रह्माजी के यज्ञ में उम्र तपवाले एक करोड़। आये जो ज्येष्ठ पुष्कर में मुख दर्शन से सुरुपता को प्राप्त हो प्रसन्न हुए। जिने अपने यज्ञोपवीतों से भूमि को मापकर तीर्थ का विभाग किया एवं वहाँ कपरायण हो स्थित हुए। उनको इस प्रकार स्थित देख ब्रह्माजी ने प्रसन्न हो । आज तुम्हारी धर्म में वृद्धि होगी। इस प्रकार उन महर्षियों ने तीर्थ का माप किया। हे राजेन्द्र ! पुष्कर में गमन करने से ही राजसूय और अश्वमेधों का फल मिलता है। महापुण्या सरस्वती का ज्येष्ठ पुष्कर में प्रवेश। वहाँ शुद्ध चतुर्वर्ती को जो जाता है एवं पितृ-देवार्चन में रत रहता है उसको मेघ यज्ञ का फल मिलता है। महापातकों को नाश करनेवाले पुष्कर का हास्य। पुष्कर में नाना ऋषि मुनियों के आश्रमों का वर्णन।

अमित प्रभावशाली अगस्त्यजी के महर्ष का वर्णन। इस कथा को ऐप से कहता हूँ सावधान हो सुनिये। हे भीष्म ! पहिले सत्ययुग में परम कृष्ण कालेय नाम के दानव हुए। उन्होंने वृत्रासुर का आश्रय ले देवताओं से युद्ध किया। युद्ध में देवताओं का पलायन व वृत्रवध के लिये ब्रह्माजी के पास जाना। ब्रह्माजी ने वृत्रवध के लिये उपाय बतलाया कि उदार हृदय महर्षि दधीचि के पास जाओ वह प्रसन्न होकर अपनी अस्थि देकर त्रिलोकी के रक्षार्थ शरीर त्याग देंगे जिनसे आपलोग दृढ़ महाघोर बल शत्रु के नाशार्थ बनाओ। ब्रह्माजी ऐसा कहने पर देवराज इन्द्र को आगे कर देवता लोग महर्षि दधीचि के आश्रम में गये। वहाँ जाकर देवताओं ने ब्रह्माजी के कथनानुसार घर मांगा। तब दधीचि ने कहा मैं आपलोगों के हितार्थ शरीर छोड़ता हूँ। ऐसा कह महर्षि दधीचि ने सहसा शरीर को त्याग दिया। तब देवताओं ने उनकी अस्थि लेकर बट्टा से कहा। त्वष्टा ने भयङ्कर बल बना देवताओं से कहा इस शस्त्र से शत्रु का नाश कीजिये। तत्पश्चात् देवदानवों का युद्ध तथा बलसे वृत्रासुर का वध। वृत्रहत्या

के भय से इन्द्र का सरोवर में प्रवेशार्थ दौड़ना । दैत्यों का प्राणरक्षार्थ रत्नाक्षर (समुद्र) में प्रवेश तथा देवताओं को हराने के लिये मन्त्रणा जो विद्या एवं तपोशक्ति से युक्त हैं उनका ही पहिले विनाशकरना चाहिये क्योंकि “लोकाश्च सर्वे तपसा प्रियन्ते तस्मात्स्वरध्वन्तपसा ध्वयाय” अर्थात् सम्पूर्ण लोकों की तपसे ही स्थिति है अतः तपस्वियों का तप नष्ट करना चाहिये । ऐसा विचार कर समुद्र को दुर्ग बना रात्रि में मुनियों के आश्रमों को नष्ट करना । पुनः दानवों से दुःखित हुए इन्द्रादि देवताओं का वैकुण्ठ में भगवान् नारायण के पास जाना । देवदूत विष्णुलोक सुन प्रसन्न हो विष्णु ने देवताओं से कहा कि आपलोगों के दुःख को मैं जानता हूँ । आपलोग समुद्र के शोषण का उपाय चिन्तन कीजिये । तदनन्तर देवताओं का ब्रह्माजी को साथ ले अगस्त्यजी के आश्रम में जाना । विन्ध्यचल के आश्रम का वर्णन देवों के वचन सुन महर्षि ने उन्हें वर मांगने के लिये कहा तब देव बोले हे महर्षे ! आप समुद्र का पान कीजिये । यही अक्षुब्ध वर मांगते हैं । तब अगस्त्यजीने कहा लोककल्याणार्थ आपका कहना फलूँगा । ऐसा कह समुद्र तट पर जाकर अगस्त्यजी का समुद्र पान करना । पुनः देवदानवों का युद्ध । शोषितसमुद्र में सुरक्षान देख दानवों का पाताल में प्रवेश । देवताओं की अगस्त्यजी से प्रार्थना कि हे महाविप्र ! जिस जल को आपने पान किया उसे छोड़ दीजिये । तब अगस्त्यजी ने कहा वह तो पाचन हो गया अन्य उपाय विचारिये । पश्चात् विष्णु को साथ लेकर देवताओं का ब्रह्माजी के पास जाना एवं समुद्र के पूरणार्थ कहना । देवताओं के ऐसा कहनेपर ब्रह्माजी ने कहा बहुत वर्षों के बाद राजा भगीरथ द्वारा गङ्गाजल से पुनः समुद्र पूर्ण होगा । प्रसन्न हुए भगवान् का अगस्त्यजी को वरदान । पुष्करक्षेत्र में ब्राह्मादि का माहात्म्य । उक्त समय के याद धर्मनिष्ठसदाचारपरायण और कामक्रोधादि से रहित महर्षियों के पुण्डर निवास में कालयोग से अनावृष्टि का योग हुआ । जिसमें सम्पूर्णलोक प्रायः क्षुधा तथा से पीड़ित हो गये । महर्षियों को अत्यन्त दुःखित देखकर राजा ने कहा

कि हे मुनिश्रो ! ब्राह्मणों के लिये प्रतिग्रह अति निन्दनीय है अतः आपलोग से ग्राम अन्नवस्त्रादि ग्रहण करें। तब ऋषियों ने कहा हे राजन् ! प्रति महापोर हे स्वाद में तो मध है परन्तु वस्तुतः है विष ऐसा जाननेवाले हम क्यों लोभ दे रहे हैं। ऐसा कह मुनियों का वन में जाना। प्रतिग्रह और डा प्रायश्चित्त के विषय में “अरुणस्मृति” में विस्तृत वर्णन किया गया है। पक्ष राजा की आज्ञा से मन्त्रियों का हेमगर्भित वडुम्बरों का वृक्षी पर केंकन क्षुधार्ति ऋषियों का वहां अन्न की खोज में आना एवं वृक्षी पर गिरे वडुम्बरों को देख अग्नि ने कहा हम मृदु व मन्दबुद्धि नहीं जो इन सुषणों को न पहिचानते हैं इसलिये अनन्त सुख की इच्छावाले को यह ग्रहण नहीं कर चाहिये। इसी प्रकार अन्य ऋषियों ने भी प्रतिग्रह की निन्दा की। यथा—

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम् ।

ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति शाश्वतान् ॥

प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्राह्मणं तेजः प्रशाम्यति ।

प्रतिग्रहसमर्थानां निवृत्तानां प्रतिग्रहान् ॥

य एवं ददतां लोकास्त एवाऽप्रतिगृह्णताम् ॥

प्रतिग्रह देने में समर्थ भी हो तो भी प्रतिग्रह न ले। प्रतिग्रह देने से तेज का ह्रास हो जाता है जो लोक दान देनेवालों को मिलते हैं वे ही न ले बालों को मिलते हैं। ऋषियों के पश्चात् अरुण्यवी ने वृष्णा को प्राणान्तक रोग बतलाया। इतना कह हेमगर्भित कर्षों को त्याग ऋषियों का भव्य पुच्छर में गमन। वही सहसा पुनः सरत की प्राप्ति। उसके साथ ऋषियों का पनान्तः में जाना जहां पद्मयुक्त सरोवर को देख उमके तट पर पिन्ता करते दूर बैठना पुनः सरत का क्षुधा की वेदना के विषय में पूछना। ऋषियों का उत्तर—जो दुःख, लहण, चोमर और गद्ग आदि से दूर हो जाते हैं वे भी मुरा से हार जाते हैं। श्वास, दुष्ट, उदर, अपत्यार आदि रोगों से भी क्षुधा अधिक दुःखदायी है। जैसे

सूर्य भूमिगत जल को अपनी किरणों से रींचता है वैसेही ध्रुवा जठराग्नि से अन्न रस के पाक से बने सभी धातु आदि को सुखा देती है। भूतल से पीड़ित प्राणी को दिशाओं का व ऊँचे-नीचे का भी ज्ञान नहीं रहता। ध्रुवादित मनुष्य माता-पिता स्त्री-पुत्र स्वजन बान्धवादि को भी त्याग देता है। इस प्रकार अन्नविहीन की दुर्गति होती है। अतः अन्न ही संसार का मूल है अन्न से ही जगत् की स्थिति है। पक्षि वैवताओं ने जल, भूमि, गौ, अन्न आदि को तुला ( तराजू ) में रखकर तौला तो अन्न ही भारी हुआ। अन्न से ऊँचा तत्त्व न तो संसार में हुआ और न होंग। सारे जगत् का अन्न ही मूल ( आधार ) है सम्पूर्ण अन्न में प्रतिष्ठित है। कुआ, धाग, वृषोत्सर्ग ( साण्ड छोड़ना ) बाघड़ी बनाना, धर्मशाला आदि अन्न दान की १६ चीं फला की बराबरी नहीं कर सकते। अन्न प्राण है, अन्न बल है, अन्न तेज और पराक्रम है, अन्न से तेज की उत्पत्ति होती और अन्न से ही सम्पूर्ण प्राणिमात्र की वृद्धि होती है ( अन्न के उत्पादन में शुद्धता रख ज्ञानपूर्वक पराशर महर्षि के बचनों के अनुसार इसकी प्राप्ति के लिये विधिवत् कार्य हो तो सात्त्विक भावों का प्रसार होकर वास्तव में शुद्ध अन्न के आहार से सदा सत्ययुग आ सकता है )। यथा—

अन्नात्परमतो लोके न भूतं न भविष्यति । अन्नमूलं जगत्सर्वमन्ने चैव प्रतिष्ठितम् ॥  
 कूपारामवृषोत्सर्गवाप्यध्यायतनानिष । अन्नदानस्य चैतानि कलां नार्हन्ति पोद्गरीम् ॥  
 अन्नप्राणो यल्लस्तेजो ह्यन्नमैव पराक्रमः । अन्नात्सम्बभूते तेजो ह्यन्नेनैव विवर्धते ॥

अर्थात् अन्न ही संसार का मूल है। अतः सर्व प्रयत्न से अन्न का दान करना परम कल्याणप्रद है। दम-महत्त्व-वर्णन। यथा—

दमस्तेजो वर्द्धयति पश्चिन्नो दम उत्तमः । विषाप्या चैव तेजस्वी पुरुषो दमतो भवेत् ॥

ये केचिन्नियमा लोके ये च धर्माश्शुभान्वयाः ।

मर्वयन्नफलश्चापि दमस्तेभ्यो विशिष्यते ॥

तपो यश्चक्षुषादानं दमादेवप्रवर्त्तते । अकार्पण्यमपारुष्यं सन्तोषः सुविधानता ॥



अनसूया गुरोः पूजा दया भूतेष्वपैशुनम् ।

पद्भिरेव दमः प्रोक्त ऋषिभिः शान्तबुद्धिभिः ॥

दमेन हीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह पद्भिरङ्गैः ।

साङ्ख्यश्च योगश्च कुलश्च जन्म तीर्थाभिषेकश्च निरर्थकानि ॥

दम (इन्द्रियदमन) तेज को बढ़ाता है। दम से ही पापरहित एवं तेजस्वी होता है अतः दमन सबसे पवित्र है। तप, यज्ञ एवं दान सय दम से ही सिद्ध होते हैं। रागी पुरुष को घन में जाने से भी क्या लाभ तथा स्थायी पुरुष को गृहस्थाश्रम में रहते हुए सय कार्य सिद्ध हो जाते हैं “वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति-रागिणो निवृत्तरागस्य गृहस्तपोधनम्” । सय आश्रमों में इन्द्रियदमन ही सबसे उत्तम प्रत है। तप, यज्ञ, एवं दान दम से होता है किसी प्रकार से हीन भावना का न होना, किसी को कटुवचन न कहना, सन्तोष, दक्षता, किसी के गुणों में दोष न देखना, गुरुजनों का सम्मान, प्राणियों में दया पिशुनता (नीच वृत्ति) न करना ये दम के अपरिहार्य है अङ्ग है। इन्द्रियदमनरहित पुरुष को साङ्गोपाङ्ग पढ़े हुए वेद, सांख्य, योग, सत्कुल में जन्म और तीर्थस्नान भी पवित्र नहीं करते हैं। इन्द्रियदमन के साथ मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह को भी अपने वश में करें दमाध्याय के पढ़ने का महसूस। सम्पूर्ण धर्मों का सार अपने लिये जो प्रतिकूल हों उन्हें दूसरे के लिये नहीं करना चाहिये परस्त्री को माता के समान, दूसरे के धन को लोभ के समान और आत्मा के सनान ही सम्पूर्ण प्राणियों को देखनेवाला ही सत्पुरुष है जो व्यक्ति बलि बेश्वदेव के लिये भोजन बनाता है, परोपकार के लिये जीवन लगाता है और पुत्रोत्पत्ति के लिये सोसङ्गम करता है वह धात्तव में दिव्य जीवन बिताता है और वह जैसे धातुओं में सुवर्ण श्रेष्ठ है वैसे ही मनुष्यों में श्रेष्ठ है। ऐसी बातें करते हुए सभी ऋषिगण कमल के खिले हुए पुष्पों से पूर्ण तालाब के ऊपर अपनी क्रियायें सम्पादन करने के लिये आगये वहाँ पर कमलनालों को तीर के ऊपर रखकर दैनिक क्रिया में लग गये और जब बाहर निकले तो उन्होंने देखा

कि वे कमलनाल वहां नहीं हैं। ऋषियों ने उनकी चोरी करनेवाले के लिये बहुत बुरा-भला कहा और आशङ्का से ही अपने दिल में एक दूसरे से पूछने लगे। कश्यप, वसिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि ने नाना पापों को बतला कर उन कमलनालों की चोरी करनेवाले को उनके प्रायश्चित्त का अधिकारी बताया तथा शुनःसख ने उनके लेनेवाले का पक्ष कर उसे सद्गृहस्थ वेदाधिकारी और सत्यवादी कहा, इस पर शुनःसख को ही कमलनाल के लिये चोरी का दोषी सचने ठहराया शुनःसख ने कहा कि धर्म की सूक्ष्म गति को जानने के लिये ही मैंने इन्हें छिपाया है मुझे आप लोग इन्द्र समझें हे मुनीन्द्रगण! आप लोभ त्याग कर अक्षयलोक के अधिकारी बने हैं आप विमान पर चढ़िये जिससे सुरपुर चला जाय। इस पर ऋषियों ने मध्य पुष्कर का माहात्म्य प्रगट करते हुए कहा कि जो यहां तीन रात तक आवास करेगा उसे आवश्यक फल प्राप्त होगा ऐसी व्यक्ति के लिये कोई भी इष्ट वस्तु दुर्लभ नहीं पुलस्त्यजी ने कहा ऋषिलोग अपने अलोभ द्वारा इन्द्र के साथ स्वर्ग चले गये इस माहात्म्य को जो ऋषियों के चरित्र के साथ सुनेगा वह पाप कर्मों से छूटकर स्वर्गलोक का अधिकारी वन्दनीय पुरुष होगा।

२०

पुष्पवाहननृपाख्यानम्

१६८

विभूतिद्वादश्यादिपट्टिव्रतकथनम्

२००

भीष्म के पूछने पर पुलस्त्यजी ने पुष्पवाहन नामक तेजस्वी चक्रवर्ती राजा का वर्णन किया वह पुष्करवाहन भगवान् ब्रह्माजी द्वारा यान के पाजाने से अन्वर्थ नामवाला हुआ। उसीके अनुरूप सद्गुणशालिनी लावण्यवती नाम की रानी थी। उसके दस हजार पुत्र हुए उन्हें देख राजा को बहुत विस्मय हुआ। वह राजा इस सारी विभूति का कारण जानने के लिये प्रचेता ऋषि के पास गया और ॥ आश्चर्य कह सुनाया तथा इन सबका कारण भी पूछने लगा।

राजा के अनुरोध पर ऋषिने तत्काल योगविष्ठ हो ध्यान लगा दिव्यदृष्टि से उसके पूर्व-जन्म की सारी बातें जानली और वह इस प्रकार बोले हे राजन् ! पूर्वजन्म में तुम हिंसक वृत्ति से जीवन बितानेवाले व्याघ्र के घर में पैदा हुए थे। अधम जीवन के साथ-साथ तुम्हारा शरीर दुर्गन्धि कालेच्छले रंगवाला और केश तथा नख तुम्हारे बड़े हुए थे परिवार कोई इतना बड़ा न था केवल पतिपरायण यह सुन्दरी नारी ही तुम्हारे साथ थी। एक बार भयङ्कर अनावृष्टि से पीड़ित होकर तुम इधर-उधर आहार की खोज में गये परन्तु किसी प्रकार का भी साधन न पाकर तुम्हें निराशा हुई। आगे जाकर देखने पर तुम्हें कमलों से भरापूरा कीचड़वाला सरोवर मिला उन्हें एकत्रित कर तुम वैदिक नगर में बेचने चले। दुर्भाग्य से संयोग ऐसा हुआ कि यह सौदा तुम्हारा बिका नहीं इसलिये भूख से थके अपनी स्त्री के साथ तुम एक भवन के आग्नन में लौट गये रात्रि में तुम्हें निकट ही मङ्गलध्वनि सुनाई पड़ी। तुम उधर ही स्त्री को साथ लेकर चले गये। उस स्थान पर पहुँचकर तुमने मण्डल में स्थापित भगवान् विष्णु की पूजा का समारोह देखा। वहाँ कोई एक अनङ्गवती नाम की बेश्या माघ मास की द्वादशी का व्रत समाप्त कर अपने गुरु को उपकरण से कुछ शय्यादि दे रही है यह देखा। वहाँ तुम्हें भी पत्नी सहित भद्रा उत्पन्न हुई कि ये कमल के पुष्प भगवान् विष्णु को ही समर्पित किये जाय और देखते-देखते सध पुष्प भगवान् विष्णु को वहाँ अर्पित कर दिये। बेश्या ने उन्हें कई प्रकार के भोजन एवं सूया अन्न देने का प्रस्ताव किया परन्तु उन्होंने दूसरे दिन ही सारा कार्य करने की बात फही। उस दिन में सारे चौबीस घण्टों तक वे दोनों निराहार रहे और रात्रि में जागरण किया। दूसरे दिन बेश्या ने गुरु द्रव्य देकर अपने गुरु को प्रसन्न किया और वे भी वहाँ से चले गये। ऋषिने कहा कि उम पुष्प के प्रताप से यह अलण्ड राज्य, आज्ञाकारिणी रानी तथा मर वैभव तुम्हें मिला है।

तब मुनि ने राजा को चारण द्वादशी के व्रतों का संक्षेप विवरण कर प्रभु के चरणों में स्वयं को अर्पित करने का उपदेश दिया जिससे प्राप्तिमात्र का व्रत फलदायक हो। विभूति द्वादशी का माहात्म्य और वेनेयोग्य सभी सामग्रियों का विवेचन तथा फल का सुन्दर निरूपण नष्टव्रत करनेवाला कुटुम्बी विप्र के लिये गो, सुवर्ण, चक्र, वस्त्र एवं त्रिशूल देवे ऐसा करने से शिवलोक में सुख भोगता है यह व्रत महापापों को नाश करनेवाला है इसी व्रत को महापातकनाशन व्रत कहते हैं। जो एक व्रत भोजन करता है वह धृष सहित गौ का दान करे गौ तिलमयी होनी चाहिये यह रुद्रव्रत है तथा भय, शोक का नाश करनेवाला है। नीलव्रत का विधान—इस व्रत में एक दिन उपवास एवं दूसरे दिन रात्रि में भोजन कर नीलकमल, सुवर्ण, शर्करापात्रयुक्त देवे। आपाङ्ग आदि चतुर्मास में अभ्यङ्ग त्याग करनेवाला भोजन व वस्त्र देवे इसे प्रीतिव्रत कहते हैं। चैत्र में वही, क्षीर घृत एवं शङ्खुत्यागनेवाला शङ्खु युक्त पायस एवं सूक्ष्म (उत्तम) वस्त्रों का दान करे तथा विप्र मिथुन (स्त्री-पुरुष) की पूजन करे यह भवानी-लोक को देनेवाला गौरी व्रत है। कामव्रत का विधान इसमें पुष्य नक्षत्र में त्रयोदशी के दिन रात्रि में भोजन करे तथा ब्राह्मण को प्रशुम्न की प्रसन्नता के लिये अशोक, काञ्चन तथा दश अङ्गुल ईख व वस्त्र का दान करे। आपाङ्ग आदि चतुर्मास में फलत्यागनेवाला समाप्ति में घट, घृत, गुड़ एवं जिस फल का त्याग करे उस फल को सुवर्णयुक्त अथवा सुवर्ण बनाकर देवे ऐसा करने से रुद्र लोक की प्राप्ति होती है इसका नाम है शिवव्रत। हेमन्त एवं शिशिर ऋतु में पुष्य त्याग कर फाल्गुन पूर्णिमा को तीन पुष्य तथा शक्वयनुसार काञ्चन सायं काल के समय शिव-केशव के प्रसन्नार्थ देवे इसे सौम्यव्रत कहते हैं। फाल्गुन की तृतीया से अन्य समस्त मासों की तृतीया में लवण त्यागने से विप्र-मिथुन का पूजन कर सम्पूर्ण सामग्री सहित गृहदान करे इससे गौरीलोक की प्राप्ति होती है इसे सौभाग्य-व्रत कहते हैं। सारस्वतव्रत का विधान—सन्ध्या समय मौन रहकर एक वर्ष

के अन्त में घृत कुम्भ, जोड़ा वस्त्र, तिल एवं घण्टा ब्राह्मण को देवे इससे सारस्वत लोकरूप विद्या की प्राप्ति होती है। पञ्चमी के दिन लक्ष्मी की पूजन कर उपवास रखे एक वर्ष के बाद गौ एवं सुवर्ण का कमल बनाकर देवे इसे लक्ष्मी-व्रत कहते हैं। इससे अन्त में विष्णुपद की प्राप्ति एवं जन्मजन्मान्तर पर्यन्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। आयुर्व्रत का वर्णन—केशव के सामने शम्भु का उपलेपन एक वर्ष पर्यन्त कर धेनु एवं जलघट का दान करने से १० हजार वर्ष तक राजा होता है तथा अन्त में शिवपुर में जाता है। एक वर्ष पर्यन्त एकाम्रचित्त हो पीपल, सूर्य एवं गङ्गा को प्रणाम कर एक वृक्ष भोजन करे व्रतान्त में तीन धेनु सहित विप्रमिथुन की पूजन कर सुवर्ण का वृक्ष बनाकर देवे उसे अश्वमेध यज्ञ के समान फल होता है। इसको कीर्त्तिव्रत कहते हैं। सामव्रत का विधान—पुष्पाक्षत युक्त गोमय से मण्डल बना विष्णु अथवा शङ्कर को घृत से स्नान करा सामवेद का गान कर एक वर्ष के बाद सुवर्ण का कमल, तिल, धेनु एवं अष्टाङ्गुल त्रिशूल देने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। नवमी के दिन एक वृक्ष भोजन कर शक्त्यनुसार कुमारी कन्याओं की पूजन कर उन्हें भोजन करावे तथा सुवर्ण एवं कन्बुकी वस्त्र व सुवर्ण का सिंह ब्राह्मण को देवे इससे अनेक जन्म पर्यन्त मुरूप की प्राप्ति व शत्रुओं पर विजय होती है इसे वीर-व्रत कहा है। चैत्र आदि चार मास पर्यन्त जल देनेवाला व्रतान्त में मणिक ( बड़ा जलपात्र ) अन्न, वस्त्र, तिलपात्र व सुवर्ण दान करे इसे आनन्दव्रत कहते हैं। धृतिव्रत का विधान—एक वर्ष तक भगवान् को पञ्चामृत से स्नान करा अन्त में पञ्चामृतयुक्त गौ तथा शङ्ख ब्राह्मण को देवे इससे शङ्करलोक की प्राप्ति तथा कल्पान्त में राजा होता है। मांस त्याग ( नवान्न त्याग ) करनेवाला व्रत समाप्ति में गोदान तथा सुवर्ण मृग का दान करे इससे अश्वमेध-यज्ञ के समान फल होता है इसको अहिंसाव्रत कहते हैं। सूर्यव्रत विधान में उपः काल में स्नान कर द्विजदम्पति की पूजन, भोजन, वस्त्र व आभूषणों से करने से सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।

आपाढ़ आदि चतुर्मास में प्रातःकाल स्नानकर ब्राह्मण को भोजन करावे प्रशान्त में गोदान करे इसे विष्णुव्रत कहते हैं। शीलव्रत का वर्णन—अयन से अयन पर्यन्त पुष्प एवं घृत का त्याग करने से घृत घेनु सहित पुष्प एवं अन्न देने से शिवपद की प्राप्ति होती है। पूर्णिमा के दिन दूध पानकर अन्त में ब्राह्मण पाँच गौ, सुन्दर वस्त्र एवं जलकुम्भ का दान करे इसे पितृव्रत कहते हैं। एक वर्ष पर्यन्त सायंकाल घृत से दीपदान करनेवाला समाप्ति में दीपक, चक्र, त्रिशूल एवं जोड़ा वस्त्र ब्राह्मण को दे इसे वींति-व्रत कहते हैं ऐसा करने से रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। रुद्रव्रत का विधान—इसमें कार्तिक की तृतीया से गोमूत्र से शुद्ध यव ( जौ ) का प्राशन रात्रि में करे अन्त में गोदान करे इस कल्याणकारक व्रत करने से गौरीलोक की प्राप्ति होती है। चार मास पर्यन्त गन्धासुलेपन त्याग करनेवाला समाप्ति में दो सफेद वस्त्र शुक्ति ( सीप ) व गन्धाक्षत ब्राह्मण को देवे इससे वरुणलोक की प्राप्ति होती है इसे दृढ़व्रत कहते हैं। शान्तिव्रत का वर्णन—इसमें वैशाख में पुष्प एवं लवण का त्याग कर अन्त में गोदान करे। ब्रह्मव्रत के विधान में बतलाया कि तिलराशियुक्त सुवर्ण का ब्रह्माण्ड बना ब्राह्मणों सहित घृत से अग्नि को वृत्त कर विप्रमिथुन की पूजन मातृपयस एवं आभूषणों से कर शक्यनुसार तीन पल से अधिक सुवर्ण पुण्य दिन में दान करे। अभयमुखी ( प्रसन्नकालयुक्त ) गौ का सम्पूर्ण आभूषणों सहित दान करे दिन भर दूध ही पीवे इसे मुन्न कहा है। तीन दिन दूध पान कर एक पल से अधिक सुवर्ण का वृक्ष बना एक घेर पावला सहित दान करे इसे भीमव्रत कहते हैं। जो एक मास उपवास कर ब्राह्मण के लिये सुन्दर गोदान दे उसे वेज्जवपद की प्राप्ति होती है इसे भी भीमव्रत ही बतलाया है। धनप्रद-व्रत का वर्णन—इसमें शीत पल से अधिक सुवर्ण की भूमि बना उस दिन केवल दुग्ध ही पान करे। माघ अथवा फेब्रुवरी मास में ग्राह्य को धारण करता हुआ ॥ धेनु का दान करे यह परमावन्द देनेवाला महाव्रत बतलाया है। एक पक्ष ( पन्द्रह दिन )

उपवास करनेवाला दो कपिलाओं का दान करे इसे प्रभातव्रत कहते हैं। एक वर्ष पर्यन्त एक समय भोजन करनेवाला अन्त में जलकुम्भ का दान करे इसे प्राप्ति व्रत कहा है। अष्टमी में रात्रि में भोजन करने से एक वर्ष बाद गोदान करे इसको सुगति व्रत यतलाया है इसको करने से पुरन्दरलोक की प्राप्ति होती है। वर्षा आदि चार ऋतुओं में इन्धन ( लकड़ी ) देने से वैश्वानर नामक व्रत कहा जाता है अन्त में घृत घेनु का दान करे। यह सम्पूर्ण पापों को नाश करनेवाला है। एकादशी में रात्रि में भोजन कर चक्र अर्पण कर समाप्ति में सुवर्णचक्र दान करे इसे कृष्णव्रत कहा है। देवीव्रत करनेवाला एक वर्ष दुग्धाहार करे अन्त में गोयुग ( दो गाय अथवा दो बैल ) का दान करे। इससे लक्ष्मीलोक की प्राप्ति कही है। सप्तमी में रात्रि में भोजन करने से दुग्धवती गौ का दान करे इसे भानुव्रत कहा है। चतुर्थी को रात्रि में भोजन करनेवाला हेमन्त ऋतु में गोयुग दे यह शिवलोक प्रदान करनेवाला वैनायक व्रत है। चातुर्मास्य में महाफलों को त्यागनेवाला कार्तिक में हवन कर सुवर्ण के फल व गोयुग प्रदान करे यह सौरव्रत कहा गया है। वारह द्वादशियों को उपवास कर शक्यनुसार गौ, बख्श एवं सुवर्ण से ब्राह्मणों की पूजन करे इसे विष्णुव्रत कहा है। चतुर्दशी को रात्रि में भोजन करने से समाप्ति में गोयुग प्रदान करे यह शिवपद को देनेवाला त्रैयम्बक व्रत है। सात रात्रि उपवास कर ब्राह्मण के लिये घृतकुम्भ प्रदान करे इसे वरव्रत कहते हैं वही ( सात रात्रि उपवासी ) कारी में जा पयस्विनी घेनु दान करे इस व्रत का नाम है मन्त्रव्रत इससे राक्षसलोक की प्राप्ति होती है। मुखवास ( पान-सुपारी ) त्यागकर एक वर्ष बाद गोदान करे यह वारुण व्रत है। चान्द्रायण व्रत करनेवाला सुवर्ण का चन्द्र देवे यह चन्द्रलोक को देनेवाला चन्द्रव्रत है। ज्येष्ठ में अष्टमी व चतुर्दशी को पञ्चाग्नि तप करने-वाला अन्त में सुवर्ण घेनु का दान करे यह रुद्रव्रत है इससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। शिवालय में तृतीया के दिन सकृद्विधानक ( एकाहार ) करनेवाला

अन्त में धेनुदान करे इसे भवानी व्रत कहते हैं। माघ मास में रात्रि में गीले वस्त्र रहे और सप्तमी को गोप्रदान करे वह एक कल्प स्वर्ग में रह वृषी राजा होता है यह पयन व्रत है। तीन रात्रि उपवास करनेवाला फाल्गुन पूर्णिमा को गृहदान करे यह आदित्यलोक को देनेवाला धामव्रत नाम से विख्यात है। मोक्षव्रत के वर्णन में बतलाया कि उपवासी रह त्रिकाल व एवं आभरणों से द्विजदम्पती का पूजन करे इससे मोक्ष मिलता है। शुक्ल की द्वितीया को चन्द्रोदय के समय लवणपात्र दे समाप्ति पर गोदान करने से शिवलोक में जाता है तथा काश्यपाय दक्षिणा एवं वस्त्र सहित देनेवाला समाप्ति में गोदान करे वह कल्पान्त में राजराट् होता है इसे सोमव्रत कहा है। प्रतिपदा को एक समय भोजन करनेवाला समाप्ति में फलप्रदान करे वैश्वानर पद को प्राप्त होता है तथा इसका नाम शिखिव्रत है। उपवास करनेवाला अश्वयुग सहित दो पल से अधिक सुवर्णरथ का दान करे उसे अश्वव्रत कहते हैं तथा हाथियों से युक्त सुवर्णरथ का दान करने से करिव्रत होता है व्रत करनेवाले को सत्यलोक की प्राप्ति होती है। दशमी को एक समय भोजन करनेवाला समाप्ति में दश गौ, दीप तथा सुवर्ण दान करे यह विश्वव्रत है। जो कार्तिक पूर्णिमा को पुष्कर में कन्यादान करता है वह इक्कीस गुणों से युक्त हो ब्रह्मलोक को जाता है कन्यादान से अधिक कोई दान नहीं इसका पुष्कर में अधिकाधिक पुण्य है। जो तिलों के गूर्ण से युक्त तथा रत्नों सहित गजदान जल में स्थित हो करते हैं उन्हें अक्षय लोकों की प्राप्ति होती है इस पट्टिव्रत (६० व्रत) को सुननेवाला एक सौ मन्वन्तर पर्यन्त गन्धर्वों का पति होता है। स्नान एवं तर्पणादि की विधि का वर्णन। सूर्य को नमस्कार एवं तीन प्रदक्षिणा कर ब्राह्मण, गौ एवं सुवर्ण को देस तथा स्पर्श करे। इस तरह सम्पूर्ण ऋषि सिद्धि को प्राप्त हुए।



२१	धर्ममूर्तिराजकधानकम्	२०७
	विशोकद्वादशीव्रतकथनम्	२०६
	गुडादिदशविधधेनुदानविधिवर्णनम्	२११
	धान्यादिदशविधशैलदानविधिवर्णनम्	२१३
	सौरधर्मवर्णने विशोकादिसप्तमीनां वर्णनम्	२१६

पुलस्त्यजी ने भीष्मजी से कहा पहिले वृहत्कल्प में धर्ममूर्ति नामक राजा हुआ जो इन्द्र का मित्र था जिसके तेज से सोमसूर्यादि भी कान्तिहीन हो गये। राजा धर्ममूर्ति के त्रैलोक्यसुन्दरी लक्ष्मी सदृशा भानुमती नाम की भार्या थी। किसी समय राजा ने वशिष्ठजी को नमस्कारकर उनसे पूछा कि हे ऋषिसत्तम ! मेरे किन कर्मों से उत्तम लक्ष्मी प्राप्त हुई एवं किस कारण से मेरे शरीर में विपुल तेज हुआ। इसपर वशिष्ठजी ने कहा पहिले शिवभक्त लीलावती नाम की वेश्या हुई। जिसने पुष्कर में चतुर्दशी को विधिपूर्वक हेमवृक्ष के साथ लवणाचल का दान किया। उसी वेश्या के घर में आप भूत्य थे। आपने ही उसके यहाँ सुवर्ण का वृक्ष हेम पुष्पों से युक्त श्रद्धायुक्त हो बनाया एवं उसको धर्म कार्य जानकर उससे वेतन भी नहीं लिया तथा तुम्हारी पत्नी ने उस वृक्ष को उज्ज्वलित किया। वह भी तुम्हारे साथ उस वेश्या की परिचर्या में नियुक्त थी। आप-छोगों ने निःस्वार्थ भाव से द्विजों की सेवाशुभ्रपा की। कुछ काल बाद लीलावती वेश्या का सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो शिवपुर में जाना। आप निःस्वार्थ सेवा करने से राजराजेश्वर हुए एवं आपकी पत्नी उस सुवर्णवृक्ष को उज्ज्वलित करने से यहाँ भानुमती हुई। इसी कारण से आपको यह सम्पूर्ण तेज एवं वैभवं प्राप्त हुआ। अतः आप विधानपूर्वक धान्याचलादि का दान कीजिये। तदुपरान्त राजा का धान्याचल दान एवं वैकुण्ठ गमन।

गुनः भीष्मजी ने पुलस्त्यजी से प्रश्न किया कि वियोग और शोकरूपी अन्त (अग्नि) को शान्त करनेवाला एवं स्थिर लक्ष्मीप्रद कौनसा व्रत वा उपवास है। तब पुलस्त्यजी ने कहा आपने संसार के कल्याणार्थ बहुत सुन्दर प्रश्न पूछा है आपके भक्ति को देखकर इन्द्रादि देव एवं असुर मानवों में यह गुप्त है वे इसे नहीं जानते परन्तु आपके लिये कहता हूँ। पवित्र आश्विन के महीने में विशोक द्वादशी म करे। दशमी को लघु आहार कर विधिपूर्वक आरम्भ करे। एकादशी को निराहार रहकर अच्छी तरह धी एवं केशव की पूजा करे। पश्चात् प्रातःकाल उठकर पञ्चगव्य और सर्षपपत्र से स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण कर भगवान् की लक्ष्मी सहित कमलों से अङ्ग पूजा करे। पश्चात् मिट्टी की वेदी बनाकर उसपर नदी की पालुका मयी लक्ष्मी की एवं सूर्य की मूर्ति स्थापित कर षोडशोपचार से पूजा करे। रात्रि में जागरण कर प्रातःकाल माद्वन्द्वम्पती की पूजा कर उनकी पञ्चाभूषण से मञ्जित करे एवं यथाशक्ति भोजन कराकर व्रतान्त में गुह्येन से गुप्त राध्याशन करे। इस प्रकार विधानपूर्वक करने से लक्ष्मी स्थिर होकर घर में निवास करती है।

पुत्रभयत्री के ऐसा कहने पर भीष्मजी ने गुनः प्रश्न किया हे मुनीश्वर! गुह्येन का विधान मध्यम प्रकार से कहिये। पुलस्त्यजी ने कहा—सम्पूर्ण चारों को नाश करनेवाला गुह्येन का विधान कहता हूँ। चार हाथ मृगधर्म की गी का निर्माण कर उन्हे पूजाभिमुख स्थापित करे एवं छोटे मृग के धर्म का वस्त्र पहिना करे। गोबर से छोटी भूमि पर दूर्वा बिजाकर उन्हे स्थापित करे अथवा बिड़ी की मज्जागो बनावे। दिनवान् दो नौ चार भार क्षण की गी और वाम १ भार का बनावे। उन्हे मध्य मूत्रन वस्त्रों से सुमञ्जित करे मीन के कर्ण, ईश के मुख के नेत्र, लक्ष्मण के अन्तर्कोण, राम के नाभ के पीठ, मन्दोदरी के चंद्र के मुख के चक्षुः नोहे, नवनील के स्तन और भीम वस्त्र की पूजा बनावे।

१ के मुर इत प्रकार

रचना कर धूप, दीप से उनकी पूजा करे। पश्चात् भगवती धेनु की प्रार्थना कर ब्राह्मण को निवेदन करे। सम्पूर्ण धेनु दान का यही विधान है। जो पापों को विनाश करनेवाली दश धेनु कही गई हैं उनका स्वरूप कहता हूं। प्रथम गुड़धेनु, घृतधेनु, तिलधेनु, जलधेनु, क्षीरधेनु, मधुधेनु, शर्कराधेनु, दधिधेनु, रसधेनु और धेनु (कपिला) इस प्रकार दस धेनुओं का विधान बताया है। धेनु-दान का माहात्म्य। भीष्मजी से दान माहात्म्य पूछने पर पुलस्त्यजी द्वारा धान्यादि दशविध पर्वतों के दान का महत्त्व वर्णन। धान्यादि दशविध पर्वतों का वर्णन। धान्याचल, लवणाचल, गुडाचल, हेम पर्वत, तिल पर्वत, कापांस(कपास)पर्वत, घृतशैल, रत्नाचल, रजताचल और दशम शर्कराचल है। इन पर्वतों का अयनों में, व्यतीपातादि पुण्यकालों में, अक्षयतृतीया, द्वादशी आदि पुण्य तिथियों में एवं शुक्लपक्ष की पूर्णिमा आदि तिथियों में विधानपूर्वक भूमि को गोबर से लीप कर कुशा बिछाकर अच्छी तरह पूजाकर दान करे। जो विधानपूर्वक इन शैलों का पूजन करता है वह सम्पूर्ण पापों से निवृत्त हो विमानारूढ़ हो ब्रह्ममन्दिर ( लोक ) को जाता है।

भीष्मजी ने फिर पुलस्त्यजी से कहा—संसाररूपी समुद्र से तारनेवाले एवं स्वर्गारोग्य फल देनेवाले कुछ धर्मों को और कहिये। तब भीष्मजी को पुलस्त्यजी थोड़े सुनिये और धर्म कहता हूं। कल्याण सप्तमी, विशोक सप्तमी, फल सप्तमी, शंकर सप्तमी, कमल सप्तमी, मन्दार सप्तमी, सूर्य यष्टी, सूर्य सप्तमी और शुभ सप्तमी ये सम्पूर्ण शुभकल देनेवाली एवं देवियों से पूजित हैं। इनके विधान को यथावत् कहता हूं। जब शुक्लपक्ष की सप्तमी को रविवार हो तो उसे कल्याण सप्तमी या बिजया सप्तमी कहते हैं। उस दिन प्रातःकाल गन्ध और दूध से नदी में स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख हो अष्टदल बना पुष्पाक्षत से पूर्वादि क्रम से उपन, मार्तण्ड, दिवाकर, विधात्र, वरुण, भास्कर, अनिल, विकर्तन आदिकों का पूजन करे। तिलपात्र और स्वर्ण ब्राह्मण को देवे। इस प्रकार प्रति मास करे। तेरहवें महीने में स्वर्णशृङ्ग से युक्त गोदान करे। इस प्रकार जो कल्याण

सप्तमी का व्रत करता है वह सम्पूर्ण पापों से छूटकर सूर्यलोक में जाता है। दूसरी विशोक सप्तमी जिसका उपवास करने से मनुष्य कभी भी शोक को प्राप्त नहीं होता। माघ शुक्लपक्ष की पञ्चमी को तिल से स्नान करे तथा त्रिवेणी का आहार कर पशु को उपवास करे एवं सप्तमी को स्वर्ण की सूर्य की मूर्ति बना पूजन कर गुड़पात्र से युक्त ब्राह्मण को दे तथा मौन रहकर बिना तैल उरत का भोजन करे। इसी प्रकार अन्य फल सप्तमी आदि का विधान वर्णन। इन व्रतों को विधानपूर्वक करनेवाले को विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है एवं जन्म-जन्म में अतुल कीर्ति मिलती है।

यावत्समास्सप्त मरः करोति यः सप्तमी सप्तविधानयुक्ताम्।

स सप्तलोकाधिपतिः क्रमेण भूत्वा पदं याति परम्पुरारेः ॥

अर्थात् जो इस प्रकार बराबर इन सप्तमियों को विधान से करता है वह क्रम से सप्तलोकाधिपति होकर भगवान् मुरारि के पद को प्राप्त होता है।

२२	इन्द्रदत्तापेनाग्निमारुतयोः पृथिव्यां जन्मवर्णनम्	२२४
	मंक्षितयाऽगस्त्यचरित्रवर्णनम्	२२७
	गौरीतृतीयाव्रतविधानम्	२२६
	रमकल्याणिनीतृतीयाव्रतविधानम्	२३१
	पापनाशिनीतृतीयाव्रतविधानम्	२३३
	गारुडव्रतविधानकथनम्	२३४

भीष्मजी ने पूवा भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक इन सब का आधिपत्य कैसे हो तथा इन संसार में रूप, आयु-आरोग्य एवं विपुल लक्ष्मी कैसे प्राप्त हो या कहिये तब गुडसपत्नी बोले—पक्षे इन्द्र ने अग्नि और वायु को मुखैरी दानवों को मारने की आज्ञा दी। इन्द्र के

आज्ञानुसार दोनों ने दानवों का संहार किया। अशक्त अवशिष्ट दानवों ने समुद्र की शरण ली उस दिन से दानव रात्रि में समुद्र से निकल देव मनुष्यादिकों को भक्षण कर दिन में समुद्र में चले जाते इस प्रकार सहस्रों युगों तक यह कार्य चला जलदुर्ग से तीनों लोकों को पीड़ित करने रहे। फिर इन्द्र ने आज्ञा दी कि समुद्र को सुखाओ। तब अग्नि, मारुत बोले यह अभ्याय है इसके सिवा अन्य उपाय सोचिये। इतना सुन क्रोधित इन्द्र ने दोनों को शाप दिया कि तुम्हारा मनुष्य योनि में जन्म होगा। जब मनुष्य योनि में गण्डूपों (कुहों) से समुद्र पान करोगे तब देवत्व को प्राप्त होओगे। इन्द्र से शापित दोनों देवों का मित्रावरुण द्वारा उर्वशी दर्शन से घट में वशिष्ठ एवं अगस्त्य नाम से उत्पन्न होना। मलयखल के एक देश में अगस्त्यजी का वपस्या करना। क्रोधित अगस्त्यजी का यवणालय (समुद्र) पान। अगस्त्यजी को वरदान देने के लिये ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्कर का आगमन। अगस्त्यजी ने वरदान में मांगा कि मेरा विमान दक्षिण दिशा में उदय हो उस समय जो कोई पूजन करेगा वह सप्तलोकों का मालिक होगा तथा पुष्कर में मेरे आश्रम के पास जो अपने पितरों के निमित्त पिण्ड दान करेंगे उनके पितरों को स्वर्गलोक की प्राप्ति होगी। इसलिये अगस्त्यजी को अर्घ्यदान देना चाहिये। अर्घ्यदान की विधि—अगस्त्योदय में मत्स्य समय शुक्ल तिलों से स्नान कर शूद्र वस्त्र पहन अश्विद्वय कलशों को मातृवय वस्त्रों से युक्त तथा पञ्चरत्न एवं धृतपात्र से युक्त स्थापित करे। चार भुजा सहित अंगुष्ठ प्रमाणवाले सुवर्ण का मध्यभाग एवं भुजवृण्डवाला पुरुष ब्राह्मण को दे तथा वस्त्रों से युक्त गौ का दान करे ऐसा उदय से सात रात्रि तक करे। इस तरह सात वर्ष अथवा दश वर्ष वा इससे भी अधिक विधान कई आचार्य बतलाते हैं। साथ-साथ एक वर्ष फल त्याग करे तथा हवन करे इस तरह सात रात्रि करने से सातों लोकों की प्राप्ति होती है।

भीष्मजी ने सौभाग्य एवं आरोग्यप्रद व्रत के विषय में पूछा वृत्तर में

पुलस्त्यजी ने महादेव पार्वती के सम्भाव्य रूप वृत को बनताया पार्वती वंश  
 हे महादेव ! सावित्री ने मुझको तथा लक्ष्मी को शाप दिया है अतः मैं लक्ष्मी के  
 समान प्रधानता को प्राप्त होऊँ ऐसा वृत कहिये । शङ्कर ने कहा—महा  
 वैशाख या मार्गशीर्ष के महीने में शुक्लपक्ष की तृतीया को सकृद सरसों से तिल  
 जल से स्नान कर गौरोचन, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोघृत, एवं दधि चन्दनबुद्धि हस्त  
 में तिलक करे । प्रतिपक्ष तृतीया के दिन पुरुष अथवा गुयासिनी स्त्री रत्न  
 एवं सफेद पुष्पों को धारण करे विधवा एक सकृद वस्त्र कुमारी सकृद लाल  
 दो वस्त्रों को धारण करे । तथा षोडशोपचार से देवी का पूजन कर गुरु का  
 पूजन करे । गुरु की पूजा न करने से सम्पूर्ण क्रियायें असफल हो जाती हैं ।  
 सम्पूर्ण मासों में नाना पुष्पों से पूजा का विधान । प्रतिपक्ष तृतीया में विप्रनिन्द  
 को भोजन दे वस्त्रानुलेपनों से पूजन कर पुरुष को पीताम्बर एवं स्त्री को रेखा  
 दो वस्त्र देवे । कुमुदा आदि नामों का उच्चारण कर व्रतान्त में शय्या दान को  
 तथा चौबीस स्त्री-पुरुषों को भोजन करावे अथवा वारह या आठ को करावे ।  
 पहले गुरु की पूजन कर पश्चात् अन्यो की पूजन करे यह अनन्त तृतीया का  
 विधान है । रसकल्याणिनी तृतीया का विधान—माघ मास में शुक्लपक्ष की  
 तृतीया को गन्ध, दुग्ध एवं तिलों से स्नान करे । देवी की पूजा मधु तथा ईश के  
 रस से करे । विधान से पूजन कर विप्रदाम्पत्य को भोजन करावे दो शुक्ल वस्त्र  
 एवं सुवर्ण कमल प्रदान कर लवण वृत ग्रहण करे । माघ में लवण, फाल्गुन में गुड़,  
 चैत्र में मक्खन, वैशाख में शहद, ज्येष्ठ में जल, आषाढ़ में जीरा, भाद्रपद में क्षीर  
 भाद्रपद में दही, आश्विन में घृत, कार्तिक में माक्षिक (मधु), मार्गशीर्ष में धनियाँ  
 एवं पौष में शर्करा का त्याग करे । व्रतपूर्ति में करक (मिट्टी का पूर्णपात्र) प्रदान करे  
 तथा दिन की द्वितीय चेला में मक्ष्यपात्र से युक्त लड्डू, सेब आदि क्रमशः सब  
 मासों में प्रदान करे । नित्य उपवासी रहे अशक्त हो तो रात्रि में भोजन करे ।  
 माघ में कलश के ऊपर शर्करा एवं सुवर्ण की गौरी की मूर्ति को प्रदान करे ।

पाप नाशिनी तृतीया का वर्णन-इसका आरम्भ अपाङ्ग, ब्रह्मा (अभिजित) मघा, हस्त एवं मूल नक्षत्र से होता है इसमें भी देवी पूजा का ही विधान है। वृत्तान्त में सपत्नीक ब्राह्मण की वस्त्राभरणों से पूजन करे तथा शय्या-दान करे। इन वस्तुओं के सुनने तथा सुनानेवाला कल्प पर्यन्त शक्र (इन्द्र) लोक में पूजित होता है। शङ्करजी बोले हैं पार्वति ! इस तरह व्रतपरायण स्त्री के लिये सावित्री का शाप क्या वस्तु है। विष्णु की स्त्री होने से लक्ष्मी यन्त्रनीय है उसके लिये क्षीरसमुद्र का मथन किया मैंने भी तुम्हारे लिये दक्षयज्ञ नष्ट किया तुम दोनों की हम आह्वा करनेवाले हैं कोई तरह का भय मत करो। इतना कह शङ्कर का विष्णु के पास जाना। शङ्करजी ने वैष्णवधर्म सुनने के लिये कहा किन्तु विष्णु ने कहा कि मैं अपना धर्म अभी कथापित नहीं करूँगा। आपका बताया हुआ माहात्म्य सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाला है। भीष्मजी के द्वारा मधुरवाणी, जन सौभाग्य बुद्धि एवं विद्या में शृंगारदा, स्त्री-पुरुष में अभेद, वस्तुओं में सङ्ग (मेल) एवं विपुल आयु किस व्रत से प्राप्त होता है ऐसा पूछने पर पुलस्त्यजी ने सारस्वत व्रत का विधान बतलाया कि सरस्वती की पूजन कर स्तुति करे रविवार वा मङ्गलवार बल से इसे आरम्भ करे। लक्ष्मी, मेधा आदि नामों का उच्चारण कर प्रतिपक्ष पञ्चमी को गोदान करे। पुस्तक एवं कमण्डलुयुक्त सरस्वती का ध्यान कर मौनव्रत से सायं प्रातः भोजन करे। सारस्वतव्रत के पठन एवं श्रवण का माहात्म्य।

२३	वैष्णवधर्मवर्णनम्	२३६
	भीमद्वादशीव्रतविधानवर्णनम्	२३७
	वैश्याधर्मग्रस्तावः	२४१
	वैश्याव्रतविधानम्	२४३

भीष्मजी ने पूछा हे विप्रेन्द्र ! शङ्करजी ने कौन-से वैष्णवधर्म बतलाये उनका क्या फल है वर्णन कीजिये। पुलस्त्यजी ने कहा पहले रथन्तर कल्प में ब्रह्मा ने

महादेवजी से पूछा कि अल्प तप से ही अनन्त ऐश्वर्य एवं आरोग्य व मोक्ष कैसे प्राप्त होता है। महादेवजी बोले—चाराह कल्प में द्वापर युग में विष्णु तीन रूप से अवतार धारण करेंगे। द्वैपायन ऋषि, बलराम और कृष्ण। भगवान् की आज्ञा से त्वष्टा द्वारकापुरी की रचना करेंगे। वहां वृष्णि, इन्द्र और देव गन्धर्वों के साथ बैठे हुए भगवान् से पाण्डुपुत्र भीमसेन इस विषय में प्रश्न करेगा उसके उदर में युक्त नाम अग्नि का निवास है वह व्रत व उपवास करने में असमर्थ है। तब श्रीकृष्ण उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहेंगे यदि तुम अष्टमी, चतुर्दशी, द्वादशी व अन्य दिन नक्षत्रों में उपवास करने में असमर्थ हो तो आगे आनेवाली तिथि का विधानपूर्वक उपवास करो जिससे तुम्हें परमपद की प्राप्ति हो सकती है। माघ शुक्ल दशमी को घृत से अभ्यञ्जन (उबटना) कर निलयुक्त जल से स्नान करे विधान से विष्णु की पूजन करे। एकादशी को निराहार रहकर रात्रि में हवन करे। द्वादशी के दिन क्षीर भोजन करे। द्वादशी पर शयन करे तथा इतिहास सत्कथा अध्ययन करे। द्वादश विप्रों से हवन करावे यन्त्राभूषणों से उनकी पूजा करे प्रातःकाल तेरह सुवर्ण शृङ्गवालो, रौप्य सुरःकाश्य शोहनपात्र से युक्त षडङ्गों सहित गायोंका दान करे तथा शय्या दान करे। भीमसेन के द्वारा करने से इसका नाम भीम द्वादशी हुआ। यह पूर्व वक्त्रों में कन्नगी नाम से विख्यात थी इस कल्प में तुमही सर्वप्रथम कर्त्ता बनो। इससे इसका नाम भीम-द्वादशी होगा। भीमसेन के बाद अन्य व्रतकर्त्ताओं का वर्णन।

महाजी ने वेश्याओं के समाचार के विषय में पूछा उत्तर में शङ्कर बोले सभी द्वारिकापुरी में रामदेव कृष्ण के मोलह हजार रानियाँ होंगी श्रीकृष्ण वसन्त संवत् में उनके माथ ढीङ्गा करेंगे। सम्पूर्ण आभूषणों से युक्त साध्वान् कामदेव के समान रूपवाला जाम्बवतीपुत्र साम्ब उनके पास में जावेगा वे स्त्रियाँ जब जानेंगे कि वे पूर्वक उन्हे देखेंगी तो श्रीकृष्ण सायं देगे जो मामने ही मुमने ऐसा चित्त को दूसरी ओर लगा रहे अतः तुम्हें भीतर हरन करेंगे इतना मुन स्त्रियों द्वारा भगवान्



से प्रार्थना करना । प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण ने कहा दालभ्य ऋषि तुम्हें श्रुत कहेंगे इतना कह  
 वनको छोड़ भगवान् का अन्तर्धान । बहुत वर्षों बाद वही कार्य हुआ जो  
 भगवान् ने कहा था । चोरों से हरी जाने पर दालभ्य का उनके साथ संयोग ।  
 स्त्रियों ने वेश्याधर्म के विषय में ऋषि से प्रश्न किया तब दालभ्य ने कहा तुमलोग  
 मानस सरोवर में स्नान कर रही थी उस वक्त नारदजी आये । गर्हित हो तुमलोगों  
 ने उन्हें प्रणाम नहीं किया और पूछा कि हमारे पति नारायण कैसे हों ऐसा उपदेश  
 कीजिये तब नारदजी बोले चैत्र एवं वैशाख शुक्लपक्ष में द्वादशी के दिन दो शय्या  
 के देने से निश्चय ही तुम्हारे दूसरे जन्म में नारायण भर्ता ( पति ) होंगे और  
 जो रूप एवं सौभाग्य के अभिमान से तुमलोगों ने प्रणाम नहीं किया अतः शीघ्र  
 ही तुम्हारा उनसे वियोग हो जायगा तथा चोरों द्वारा हरी जाओगी और वेश्यात्व  
 को प्राप्त होओगी । इस तरह नारद और केराव के शाप से सम्पूर्ण स्त्रियाँ वेश्यात्व  
 को प्राप्त हुईं । दालभ्य ने कहा पहले देवासुर संग्राम में देवों द्वारा मारे गये हजारों  
 दैत्यों की विवाहित स्त्रियों को तथा उनसे घलातकारपूर्वक भोगी हुई स्त्रियों को देवरा  
 ने कहा इस समय भक्तिमती होकर वेश्याधर्म से रहो तुम्हें राजा तथा स्वामी से  
 वृत्ति मिलेगी । राक्षसनुमार सषको सौभाग्य मिलेगा जो कोई शुरुक ले तुम्हारे  
 पास आवे उसकी सेवा बिना छलरुपट एवं प्रीतिभाव से करो तथा देव पितरों  
 के दिन राक्षसनुसार वृद्धी सुवर्ण और धान्यादि देवों । अब तुम्हारे लिये  
 जो व्रत कहता हूँ उसे करो । जिसको वेदविदों ने संमार से पार उतरने के लिये  
 पर्याप्त कहा है । रविवार के दिन जब हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र हो उस  
 दिन स्त्री सर्वाङ्गकी के जल से स्नान करे इससे पञ्चबाण हरि प्रसन्न होते हैं अनङ्ग  
 के नामों से विष्णु की पूजा विधान से करे । तथा वेदपारब्रत प्राप्ति को  
 पूजा कर पृतपात्र से युक्त एक सेर धावल देवे । इस तरह सम्पूर्ण रविवारों  
 को करे । तेरह महीनों के बाद मुसज्जित शय्या सहित गोदान करे । उद्यापन  
 कर विसर्जन करे । यदि श्रवण में गर्भ, सूतक, राजकोप, दैवकोप, मानुषकोप

और प्रहज से विन्न हो जाय तो यथाशक्ति २८ बार करे यही वेश्वाजी के जिं धर्म है । इस व्रत के करने का फल-वर्णन ।

२४ श्रावणकृष्णपक्षीयद्वितीयायामशून्यग्रपनव्रतविधानवर्णनम् २४४

अङ्गारक चतुर्थीव्रतविधानवर्णनम् २४७

महाराजी ने शङ्कर से पूछा इस संसार में स्त्री एवं पुरुष के शोक, व्याधि एवं भय को दूर करनेवाले व्रत का वर्णन कीजिये । शङ्कर बोले पत्नी सहित विष्णु क्षीरसमुद्र में सदा नियाम करते हैं भावण की कृष्णपक्ष द्वितीया को विष्णु का पूजन करे एवं गौ, भूमि, हिरण्यादि का दान करे इसे अशून्यरायना द्वितीया कहते हैं । तैल, क्षार एवं लवण का त्याग कर रात्रि में भोजन करे प्रातःकाल लक्ष्मीपति सहित शय्या, पादुका, जूता, ध्वज एवं चामर का दान करे । विप्र शाठ्य न करे । सपत्नीक विप्र को भोजन करा सुवर्ण का दान करे । अशून्य व्रत करनेवाले को विष्णुलोक की प्राप्ति होती है । ब्रह्माजी ने आरोग्य एवं वैश्वार्थि की अभिवृद्धि करनेवाले मङ्गलव्रत के फल के विषय में पूछा तब शङ्कर बोले इस विषय में विरोचन एवं शुक्र का सम्वाद कहता हूँ । एक बार विरोचन के रूप को देख शुक्राचार्य हूँसे विरोचन ने उनसे हँसने का कारण पूछा तब भृगु ने वीरभद्र की उत्पत्ति का वर्णन किया यही वीरभद्र शङ्करजी के घरदान से भूमिपुत्र अङ्गारक नाम से हुआ जिसकी गणना नवग्रहों में है उसीका व्रत करने से तुम्हारा सुन्दर रूप है । दूरदर्शिनी एवं नाना-नाना प्रकार की तुम्हारी रुचि है अतः तुम्हारा नाम विरोचन है । विरोचन ने इस व्रत के माहात्म्य को पूछा तब शुक्र बोले मङ्गल के दिन चतुर्थी को यह व्रत आरम्भ करे मङ्गल की विधानपूर्वक रक्त पुष्पों से पूजन कर अर्घ्य प्रदान करे व्रत समाप्ति में उद्यापन कर सुवर्ण की मङ्गल की मूर्ति एवं गोदान करे तथा ब्राह्मणों की भोजन वस्त्रादि से पूजा करे । मङ्गल व्रत का फल एवं माहात्म्य ।

भीष्मजी ने पूछा यदि कोई उपवास में असमर्थ हो ऐसे व्यक्ति को फल उपवास का ही मिले ऐसा व्रत वर्णन कीजिये। तब पुलस्त्यजी ने आदित्यशयन नामक व्रत का वर्णन किया। इसमें हस्त नक्षत्र युक्त सप्तमी तथा सूर्य सङ्क्रान्ति हो वह तिथि सम्पूर्ण कार्मों को देनेवाली है। उमा महेश्वर एवं सूर्य की पूजन करे इन दोनों में भेद नहीं है। रात्रि में भोजन करे। विधानपूर्वक पूजन कर व्रत समाप्ति में सुवर्ण का अष्टदल आठ अंगुल का तथा सुलक्षणा शय्या प्रदान करे। ब्राह्मणों की विधान से पूजनकर कपिला गौ का दान करे। यह व्रत आचारहीन दाम्भिक गौ, ब्राह्मण एवं श्रुपियों की निन्दा करनेवाले को न कहे। इससे सुन्दर पुत्र एवं धनधान्यादि की प्राप्ति तथा रोगादिकों का नाश होता है। विशेष क्या कहूं यह व्रत करनेवाला नरक में गये हुए पितरों को भी स्वर्ग में पहुँचा देता है। विचाराध्य करनेवाला दोषों को प्राप्त होता है।

भीष्मजी ने पूछा कि चन्द्रमा के ऐसे व्रत का वर्णन करो जिससे दीर्घ आयु, आरोग्य एवं कुलवृद्धि हो। पुलस्त्यजी बोले इस विषय में रोहिणी चन्द्रशयन व्रत बतलाया है कि सोमवार को शुक्ल पञ्चदशी में अथवा पूर्णिमा को रोहिणी नक्षत्र में इन्दु के नामों से नारायण की पूजा करे तथा सोम के नामों का कीर्तन करे। इस तरह एक वर्ष पर्यन्त व्रत कर समाप्ति में शय्यादान एवं रोहिणी चन्द्रमा की सुवर्ण की मूर्ति जिसमें चन्द्र छः अङ्गुल प्रमाण रोहिणी चार अङ्गुल रोनी चाहिये आठ मोतियों सहित तथा सफेद नेत्र होने चाहियें। शङ्ख एवं वस्त्र तथा पात्र सहित गौ देवे। सपत्नीक ब्राह्मण की पूजा करे उसमें रोहिणी एवं चन्द्रमा की भावना रखे। इस व्रत को करने की फलश्रुति का वर्णन।

२७

## तटाकप्रतिष्ठाविधिवर्णनम्

२४३

भीष्मजी ने पूछा हे ब्रह्मन् ! तालाव, बगीचा, कूप, बापी, नलिनी एवं देव मन्दिर के प्रतिष्ठा का विधान वर्णन कीजिये पुलस्त्यजी बोले उत्तरायण सूर्य में शुक्लपक्ष में शुद्ध स्थान में ब्राह्मणों द्वारा प्रतिष्ठा करवावे। चारों तरफ से चार हाथ की वेदी तथा सोलह हाथ मण्डल बनावे वेदी के चारों तरफ गर्त रत्नित तीन मेखला अथवा नौ, पांच, सात भी होती है। आठ होता एवं आठ जपक ( जप करनेवाले ) होने चाहिये। पश्चीस ऋत्विज तथा सबको सुवर्ण आभूषण देवे। सबको समान एवं आचार्य को दुगुना देवे। यजमान सपत्नीक पश्चिम द्वार से यज्ञमण्डप में प्रवेश करे। कलश की स्थापना कर विनायक, ब्रह्मा, विष्णु, शङ्करादि सम्पूर्ण देवों की पूजन कर वेदमन्त्रों का उच्चारण एवं वलिदान करे। विधानपूर्वक वसन्त समय में करने से अश्वमेध यज्ञ के समान फल होता है। इसे करनेवाला ब्रह्मस्थान में जाता है तथा स्वरादि अनेक लोकों में भ्रमण करता हुआ विष्णुलोक में चला जाता है।

२८

## पादपारोपणविधिवर्णनम्

२४६

भीष्मजी ने वृश्चादि के आरोपण के विषय में पूछा तब पुलस्त्यजी बोले इसका विधान तालाव विधि के समान ही है। मण्डपादि की रचना कर ब्राह्मणों का वस्त्र एवं सुवर्णादि से पूजन करे। वृश्चों की वस्त्र एवं मांस्य चन्दनादि से पूजन कर सुवर्ण की मूची ( मूँह ) से कर्णवेधन करे। अञ्जन लगावे गुग्गुलु का धूप देवे। उन्हें मगधान्व में स्थिर करे। कात्य दोहवाली व सुवर्ण शृङ्गवाली पयस्विनी गौ को वृश्चों के मध्य से निकाले। ऋग्वेद, यजु, साम मन्त्रों का गायन करे। जो काळे तिल एवं घृत से हवन करे लकड़ी ( ममिधा ) पछास, ( डाक ) की धेनु बलिदाई है। चौद्वे दिन यह क्रमव कर पुनः प्रतिष्ठा कर आचार्यादिकों को दक्षिणा दे रत्नो भ्रमा वाचना करे। पीपल का वृश्च धनदेनेवाला, अशोक शोक-

नाशक, प्लक्ष यज्ञ देनेवाला, क्षीरी आयु देनेवाला कहा है। जम्बुकी कन्या देने-वाली, दाडिमी स्त्रीप्रद वतलाई है। इस तरह नाना वृक्षों के आरोपण करने से नाना तरह के फल वतलाये हैं।

२६

## सौभाग्यशयनव्रतविधानम्

२५८

पुलस्त्यजी ने कहा कि अन्य सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाले व्रत को कहता हूँ। पहले तीनों लोकों के दग्ध होने पर सम्पूर्ण प्राणियों का सौभाग्य एक स्थान में स्थित हो गया। पश्चात् कितने ही ( अज्ञात ) काल बाद पुनः भगवान् विष्णु को संसार रचने की उत्कण्ठा बढ़ी। तब अग्नि की भीषण ज्वाला पिन्नाकार रूप में उत्पन्न हुई। जिससे अभितप्त हुआ सौभाग्य जो विष्णु के वक्षस्थल का आश्रय ले स्थित था रसरूप में पृथ्वी पर आया। उसको अन्तरिक्ष से गिरता देव प्रजापति दक्ष ने पान किया। जिससे दक्ष का बल एवं वेज वृद्धि को प्राप्त हुआ। शेष जो पृथ्वी पर गिरा उसके आठ भाग हो गये। फिर सौभाग्य को देनेवाली सप्त औपधियां हुईं। पहिले योगज्ञानविद् दक्ष ने जो रस पिया उससे सती हुई। उसीका दूसरा नाम ललिता हुआ। उस त्रैलोक्यमुन्दरी से पिनाकपाणि शङ्कर ने विवाह किया। त्रिलोकी को सौभाग्य एवं भुक्तिमुक्ति देनेवाली ऐसी भगवती की आराधना कर मानव क्या प्राप्त नहीं कर सकता अर्थात् सषकुल प्राप्त कर सकता है।

इस पर भीष्मजी ने पूछा हे मुने ! उस ललिता की आराधना का विधान कहिये। पुलस्त्यजी ने कहा—वैशाख शुक्ल तृतीया को प्रातःकाळ तिटकर ललिता के साथ विश्वेश भगवान् शङ्कर की षोडशोपचार से पूजा करे। क्योंकि उसी दिन भगवान् शङ्कर ने सती का पाणिग्रहण किया था। भगवान् शङ्कर की पूजा कर सौभाग्याष्टक अर्पण करे। व्रत की सफलता के लिये द्विजदाम्पत्य की वनमालहार से पूजन कर स्वर्ण की प्रतिमायुक्त सौभाग्याष्टक दे। इस प्रकार

हर वर्ष तृतीया का व्रत करे। पश्चात् व्रतान्त में शय्यादान तथा गाय के साथ बैल का दान करे। इस प्रकार जो सौभाग्यशायन व्रत करता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर शिवलोक को प्राप्त होता है।

३० वामनावतारचरित्रवर्णनम् २६३

वामनोत्पत्तिसमारम्भवर्णनम् २६४

वामनस्य शक्रेण सह वाष्कलिपुरम्प्रतिगमनम् २६७

पदत्रयभूमियाचनायां वाष्कलीन्द्रसम्वादः २६९

वामनकृतवलिवञ्चनम् २७१

भीष्मजी ने पूछा कि भगवान् विष्णु ने किस कारण से दैत्यराज बलि से तीन पद पृथ्वी की याचना की एवं वहाँ पर भगवान् ने कितने दैत्यों का वन किया। इस वामनावतार का चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी ने कहा आपने बहुत सुन्दर पूछा। हे भीष्म ! पहिले कृतयुग में दैत्यों ने देवताओं को पराजित कर सम्पूर्ण भूमण्डल पर आधिपत्य कर लिया तब दुःखित हो इन्द्र देवताओं के साथ ब्रह्माजी की शरण में गया। वहाँ जाकर देवराज ने कहा हे देव ! जगन् महान् आपत्ति में है आप क्या नहीं जानते हैं। आपके वरदान से दैत्यों ने सर्वस्व छीन लिया है। अतः आप जगन् के शान्त्यर्थ शीघ्र ही उपाय का चिन्तन करें। इस पर ब्रह्माजी ने कहा कि मैं वरदान से गर्वित उनको जानता हूँ। ऐसा कह ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु का ध्यान किया। सधके देखते-देखते भगवान् का उपस्थित होना एवं ब्रह्माजी से कहना कि जिस के लिये आपने मुझे याद किया है सो मैं आ गया हूँ। तब ब्रह्माजी ने कहा हे प्रभो ! आपकी महती कृपा है। वाष्कलि ने सम्पूर्ण त्रिलोकी को जीत लिया है अतः आप इन्द्र की सहायता कीजिये। भगवान् वामुदेव ने कहा वाष्कलि ने आपके वरदान से ही अवध्य

इस कारण किसी युक्ति से उसका बन्धन करना चाहिये। मैं दानवों का विनाश करनेवाला वामन रूप धारण करूँगा। मेरे साथ इन्द्र भी वाष्कलि के घर में जाकर मेरे लिये याचना करे कि यह वामन ब्राह्मण है इसको तीन पद भूधो दीजिये। इन्द्र के ऐसा कहने पर दानवेन्द्र अपना जीवन भी दे सकता है। दानवेन्द्र का प्रतिग्रह लेकर उसे वचनों में बान्धकर पाताल में बसा दूँगा। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु का अन्तर्धान होना एवं कालान्तर में अविति के गर्भ से वामन रूप में प्रगट होना। उस समय सब नदियां खल्ल जलवाहिनी हो गईं शीतल मन्द गुणध पवन बहने लगी। स्वर्गलोक में नगाड़े बजने लगे गन्धर्वलोक आनन्द से गाँवने गाँवने लगे। देवगण स्तुति करने लगे एवं परस्पर कहने लगे यह वामनदेव से देवकार्य करेंगे। उनके ऐसी चिन्ता करते-करते ही भगवान् वामन का शक्र के गाय बलि के घर में प्रवेश। युद्धदुर्मद दानवों ने ब्राह्मण यदु के साथ इन्द्र को देख दानवेन्द्र से जाकर कहा हे प्रभो! द्विजमुख्य ब्राह्मण के साथ इन्द्र अकेला ही रह रहा है कहिये क्या करें। तब दैत्यराज ने कहा देवराज को आने दो वह पूर्य हैं। इतने ही में भगवान् वामन का इन्द्र के साथ प्रवेश। राजा बलि ने उनको नमस्कारपूर्वक कहना कि आज त्रिलोकी में मेरे से कोई भी धन्य ही है जो मैं इन्द्र को अपने घरपर आया देखता हूँ। जो यह अर्थ की कामना मेरी याचना करेगा तो मैं निश्चय ही परमार्थ के लिये प्राण भी दे दूँगा और रा पुत्रादि की तो बात ही क्या है। ऐसा कह राजा बलि ने उनका स्वागत या एवं अच्छी तरह पूजा की तथा कहा कि आज मेरा घर पवित्र हो गया। आपका दर्शन कोई अल्प तप से नहीं होता है। आप मेरे घरपर जिस अर्थ से आये हैं वह कहिये। इस पर इन्द्र ने कहा हे वाष्कले! मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ आपने जो कहा यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आपके द्वार पर आया हुआ कोई भी विमुख नहीं लौटता है। आप याचक के रूपक हैं। कान्ति में आप सूर्य सदृश, गाम्भीर्य में सागरोपम, सहिष्णुता

में दृष्टी सम और भी मैं नारायण के समान हूँ। यह वामन करयपत्री के इष्ट में उत्पन्न हुआ है। यह तीन पद भूमि की याचना कर रहा है। हे पाण्डव ! आपने पराक्रम से तीनों लोकों को जीत लिया है इस कारण मैं तो निर्धन हो गया हूँ। नहीं तो मैं ही दे देता। अतः परमार्थ के लिये आप से याचना करता हूँ। यदि आपकी रुचि हो तो वामन के लिये शीघ्र दान कीजिये।

तब पाण्डुलि ने कहा हे देवेन्द्र ! आप का स्वागत हो आप जल्दी ही कल्याण को प्राप्त होइयेगा। आप का आगमन तो मेरे उद्धारार्थ ही हुआ है। आपने तीन पद भूमि की ही याचना क्यों की। मेरे स्त्रियाँ, पुत्र, गौ एवं त्रिलोकी इस ब्राह्मण के लिये लीजिये। आप किसी तरह का सङ्कोच मत कीजिये। मुझे इसमें बड़ी लज्जा होती है जो आप तीन पद भूमि ही मांगते हैं वह मैं ब्राह्मण के लिये। ऐसा सुन दैत्याचार्य शुक्र ने कहा आप राजा हैं आप युद्ध-युक्त को नहीं जानते हैं कि किसको क्या देना चाहिये। आप पहिले मन्त्रियों से घर में सलाह कर लीजिये। यह वामन नहीं है यह साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। यह तुम्हारा मातृहा-पितृहा है एवं वंशच्छेदन करनेवाला है। आप इनको मक्षिका के पाद बराबर भी भूमि प्रतिग्रह में देंगे तो शीघ्र ही आप विनाश को प्राप्त हो जाइयेगा इसमें सन्देह नहीं है। गुरु के वचनों को सुनकर राजा बलि ने कहा -

प्रतिष्ठापालनं कार्यं सतां धर्मः सनातनः। यद्येव भगवान्विष्णुनांस्तिधन्यतरो मया  
गृह्य प्रतिग्रहं मत्तो यदि देवान्भुभूपति। भूयोऽपि धन्यतान्नीतो देवेनानेन वै गुरो!

यं योगिनो ध्यानयुक्ता ध्यायमाना हि दर्शनम्।

न लभन्ते तथा विप्रास्तोऽयं दृष्टो मयाऽय वै ॥

उपदिष्टोऽस्मि भवता बालत्वे चाऽवधारितम्।

शत्रावपि गृह्यायातो मास्त्वदेयन्तु किञ्चन ॥

प्रतिष्ठा पालन करना सज्जनों का सनातनधर्म है। यदि यह भगवान्



विष्णु हैं तब तो मेरे से धन्यतर अन्य कोई नहीं है। यदि मेरे से प्रतिपक्ष महान् देवों का पालन करेगा तो फिर भी इस देव द्वारा मैं धन्यता को प्राप्त होऊँगा। जिसका ध्यानयुक्त हो योगीजन ध्यान करने पर भी दर्शन नहीं कर पाते वही आज वामरूप से मुझे दर्शन देने आया है। आपने ही तो मुझे बालपने में उपदेश दिया था कि सन्त भी पर पर आ जाये तो ना मत कहना। इसी बातको सोचकर गुरो ! मैं अपने प्राणों को भी वामनको देदूँगा। ऐसा सुन शुक्राचार्यजी लज्जा नवमस्तक हो गये। पश्चात् बलि द्वारा वामनको तीन पद भूमि का दान। वामन विराटरूप धारण कर तीनों लोकों में परिक्रमण किया प्रथम चरण से सूर्य द्वितीय ध्रुव एवं तृतीय से ब्रह्माण्ड को ताड़न किया। अङ्गुष्ठ के अग्रभाग से अण्ड के अग्रभाग पर बहुत जल निकला जो सम्पूर्ण लोकों का अतिक्रमण कर पुष्कर में प्रविष्ट आ है भीष्म ! वही जलधारा विष्णुपदी गङ्गा हुई। फिर वामन भगवान् ने बलि से कहा मेरे तीसरे पद को पूर्ण करो। इसपर राजा बलि नवमस्तक हो न हो गया। तदनन्तर बलि ने कहा हे प्रभो ! आपने जितनी पृथ्वी पहिले दी है वह मैंने तो कहीं गुप्त नहीं की है। भूमि तो अल्प है आप दीर्घ हैं मैं रचने में असमर्थ हूँ। ऐसा सुन प्रसन्न हुए विष्णु ने कहा हे दानवेन्द्र ! तुम्हारा क्या काम फलें। तब चाक्रलि ने कहा हे देवेरा ! मैं तो आपकी सेवा मांगता हूँ एवं आपके हाथ से मेरा मरण हो जिससे उपस्थियों को भी दुर्लभ वस्त्रों को प्राप्त होऊँ।

दैत्यराज बलि के वचन सुन भगवान् ने कहा एक युगान्तर बाद मैं वाराह धारण कर तुम्हें मारूँगा। तत्पश्चात् बलि का दैत्यों के साथ पाताल प्रवेश। भगवान् त्रिविक्रम का आख्यान गङ्गोत्पत्ति से युक्त सम्पूर्ण पार्श्वों का नारा देनेवाला एवं विष्णुपद को देनेवाला है।

३१

नागतीर्थ वर्णनम्

२७३

ब्रह्मणा सर्पान्प्रति "जनमेजयादाहो भविष्यतीति" शापदानम् २७१

शिवदूतीचरित्रवर्णनम्

२७७

भीष्मजी ने पुनः पूछा कि हे भगवन् ! वाष्कलि का वन्धन जिस कारण हुआ तथा भगवान् त्रिविक्रम रूप धारण कर बलि का संयमन किया वह बड़ा आश्चर्यकर है। यह सब तो मैंने सुना अब नागतीर्थ और पिराचों की उत्पत्ति कहिये तथा शिवदूती का चरित्र भी कहिये किसके द्वारा पुष्कर अन्तरिक्ष में ले जाया गया यह सम्पूर्ण मुझे कहिये।

पुलस्त्यजी ने भीष्म के प्रश्न को सुन कहा हे राजन् ! आपका प्रश्न महान् है फिर भी जैसे हुआ वह सम्पूर्ण कहता हूँ। वैवस्वत मन्वन्तर में जब तीनों लोक बलि से आक्रान्त हो गये तब भगवान् ने वामन रूप से बलि का संयमन किया। अब नागतीर्थ की उत्पत्ति सुनो। अनन्त, वासुकि, तक्षक महाबल, कर्कोटक, नागेन्द्र, पद्म, महापद्म, शङ्ख कुलिक और अपराजित आदि सर्पों से संसार आपूरित हो गया। ये बड़े कुटिल, भीमकर्मा एवं विषधर हुए इनसे प्राणियों का नित्यप्रति परम दारुण क्षय होने लगा जिसको देख दुःखित प्रजा अशरणशरण परमेश्वर ब्रह्माजी की शरण में गई।

प्रजा ने ब्रह्माजी से निवेदन किया कि हे परमेश्वर ! तीक्ष्ण दावोंवाले सर्पों से हमारी रक्षा कीजिये। प्रति दिन इन सर्पों से मनुष्य, पशु-पक्षी आदि नाश को प्राप्त हो रहे हैं। आप द्वारा रचित सृष्टि इन भुजङ्गमों से क्षय हो रही है। इस बात को जानकर आप जैसा उचित हो कीजिये। तब ब्रह्माजी ने कहा मैं आप लोगों की रक्षा करूँगा। अब आप लोग स्वस्थ हो अपने-अपने पद जाइये। इस प्रकार कहनेपर सम्पूर्ण प्रजा ब्रह्माजी की स्तुति कर एवं परम प्रसन्न हो अपने-अपने घर आ गई। प्रजा के चले जाने पर ब्रह्माजी

आदि नाग प्रमुखों का आवाहन कर परमकुपित हो शाप दिया।

मलोग प्रतिदिन मनुष्यादि प्राणियों का नाश करते हो अतः भावि वैवस्वत न्वन्तर में तुम्हारा घोर क्षय होगा एवं सोमवंशीय राजा जनमेजय द्वारा सर्प-  
झ में तुम्हारा विनाश होगा ।

पुलस्त्यजी कहते हैं कि इस प्रकार ब्रह्माजी के कहने पर कम्पित सर्पों ने  
ब्रह्माजी के चरणों पर गिर यह कहा हे भूतभावन ! हमारी जाति कुटिल है एवं  
क्षोभणशक्ति, क्रूरत्व और दन्दशूकत्व आप द्वारा ही सम्पादित है फिर आप  
में शाप क्यों देते हैं । हे देवेरा ! हमारी मर्यादा, पृथक्-पृथक् स्थान एवं मनुष्यों  
और हमारा समय निर्धारित कर दीजिये एवं जनमेजय के सर्पयज्ञ से रक्षा  
उपाय कहिये । इसपर ब्रह्माजी ने कहा जरत्कारु नाम का एक ब्राह्मण होगा  
सको तुम्हारी षड्विंश जरत्कन्या दे देना उससे जो सम्पत्ति होगी वह तुम्हारी  
क्षा करेगा एवं सुतल, वितल और तलातल इन तीन स्थानों में जाकर रहो ।  
अष्टम वैवस्वत मन्वन्तर में सर्पभक्षक काश्यपेय गरुड़ होगा तब तुम्हारी सन्तानों  
सूर्य के तेज से नारा होगा एवं तुम्हारा अपकार करनेवाले मनुष्यों का भक्षण  
तथा मन्त्रोपघ से मुक्त मानवों से दूरसे रहो । ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर  
सर्प रसातल में चले गये । कालान्तर के पश्चात् उन्होंने सोचा कि हमारा  
य करनेवाला जनमेजय होगा अतः जगद्वन्त राजाजी को छोड़ और कहा क्या  
हारा है ऐसा विचार कर वे लोग पुष्कर में, जहाँ ब्रह्माजी यजन कर रहे थे, गये ।  
अपर्वत पर पहुँचकर नागों ने शीतल जलधारा देग उत्तराभिमुख हो स्थित हो  
ये । हे भरतर्षभ ! वही स्थान पृथ्वी पर नागतीर्थ से विक्रयात हुआ । भ्रातृ  
पश्चमी को नागतीर्थ में स्नान करनेवालों के कुल को सर्प कभी भी पीड़ा  
हो देवे एवं नागतीर्थ में ब्राह्मण का महत्त्व तथा नागपश्चमी का विधान धन ।  
नः भीष्मजी ने पूछा कि शिवदूती का चरित्र वर्णन कीजिये । तब पुलस्त्यजी ने  
तर दिया हे नृप ! भगवान् शङ्कर की जटा से उत्पन्न शिवदूती का नीलगिरि पर  
सकल तक तप करना एवं अखिल जगत् को समन करने के उद्देश्य से पश्चात्ति

की साधना । उसके अनन्तर ब्रह्माजी से प्राप्त धर रुह नाम का अनु  
 समुद्र के मध्य में रत्नाख्यपुर में रहता था जो करोड़ों दैत्यों द्वारा पूजित हुआ ।  
 यह दैत्य देवताओं को जीतने की इच्छा से लोकपाल के पुर में गया । तब  
 महा असुर के उठने पर समुद्र का जल वेग से बढ़ा एवं उसके सहचरों के साथ  
 भी सिन्धुजल में से निकले तथा काश्चन सूर्यों से युक्त घोड़े असंख्य और सूर्य  
 के समान ध्वजायुक्त रथ भी उनके साथ थे । रुह का दैवताओं के साथ युद्ध तथा  
 देवताओं का भयविह्वल हो दौड़ कर नीलगिरि पर जहाँ भगवती शिवदूती ठहर  
 रही थी जाना । भगवती ने देवताओं को भयभीत देखकर उनसे पूछा तुम लोग  
 इन्द्र सहित क्यों दौड़ रहे हो । तब देवताओं ने कहा हमारे पीछे भीम पराक्रमी  
 रुह दैत्य चतुरङ्गिणी सेना के साथ आरहा है उससे दुःखित होकर हम आपकी  
 शरण में आये हैं । इस प्रकार देवताओं के वचन सुनकर भगवती उब खर  
 से हँसी । हँसती हुई उस भगवती के वचन से पारा और अङ्कुरा को भार  
 किये हुई सुन्दरियों का प्रगट होना । उनसे आवृत्त हुई भगवती का देवताओं  
 से कहना कि भय मत करो । इतने ही में रुह दैत्य कर्सेना के साथ आगमन  
 एवं उनके साथ युद्ध । युद्ध में दैत्यों का नाश देख रुह का माया रचना जिससे  
 देवियों व देवताओं का मोहित होना पश्चात् भगवती का महाशक्ति से दैत्य को  
 ताड़ित कर माया का नाश करना । माया के नाश होने पर रुह का पाताल में  
 प्रवेश वहाँ भी परमेश्वरी की शक्तियों के साथ सामने देखना । भगवती  
 शिवदूती द्वारा दैत्येन्द्र का नखाम्र से शिर छेदना एवं चर्म को साथ ले पाताल  
 से पुष्कर तथा वहाँ पुनः नीलगिरि पर पहुँचना । वहाँ पर उन देवियों द्वारा  
 भोजन की याचना करने पर शिवदूती का शङ्कर को स्मरण करना । शिवदूती  
 के कथनानुसार भगवान् शङ्कर का नाना प्रकार का भोजन प्रदान । देवियों  
 को भोजन के विषय में हास्य करनेवाले को दरिद्रता एवं नाना प्रकार के कष्टों की  
 प्राप्ति होती है । शङ्कर द्वारा शिवदूती की स्तुति । शिवदूती-स्तोत्र की महिमा ।

३२	प्रेतपञ्चककथानकम्	२८३
	पृथुब्राह्मणस्य पञ्चप्रेतैः सह समागमः	२८५
	प्रेतत्वकरकर्मकथनम्	२८७
	सरस्वतीतीरमहत्त्ववर्णनम्	२८६
	शुद्धाचटसमीपेऽवियोगवापीमहत्त्ववर्णनम्	२८९

भीष्मजी ने प्रश्न किया कि हे महामते ! मनुष्य किस कर्म विपाक से प्रेतत्व को प्राप्त करता है एवं किस कर्म से छूटता है। तब पुलस्त्यजी ने कहा हे नृपसत्तम ! मैं इस बात को तुम्हें सम्पूर्ण कहता हूँ जिसको सुनकर मानव पुनः मोह को प्राप्त नहीं होता। सज्जनों से सम्भाषण करने से तथा पुण्यतीर्थों अनुकीर्तन से मनुष्य प्रेतयोनि से छूटता है। इसी पर एक पृथु नामक ब्राह्मण की आक्षेपिका कहता हूँ। पहिले एक परम सन्तोषी ब्रह्मचर्य एवं तपोयोग से पुण्य पृथु नामक ब्राह्मण हुआ। जो बड़ा सत्यवादी, मधुरभाषी एवं अतिथि का पूजक था। इस प्रकार संसार से पार उतरने के लिये कर्मों को करते हुए बहुत वर्ष बीतने पर उसकी तीर्थाटन की इच्छा हुई। तब वह पुष्कर तीर्थ में गया जहाँ स्नान कर भगवान् सूर्य को नमस्कार कर वहाँ से मार्ग में चला तो अपने आगे पाँच भीषण पुरुषों को देखा जो बड़े घोर एवं विकृताकार थे। उनको देख उसने मधुर वचनों से पूछा कि तुम्हारा यह अमाङ्गलिकरूप किन कर्मों से हुआ है। ब्राह्मण के वचन सुन प्रेताओं ने कहा हम भूख-प्यास से महा दुःखी हैं एवं हमारी संज्ञा नष्ट हो गई है। हमें दिरा-विदिरा अन्तरिक्ष मही आदिकों का भी ज्ञान नहीं है। हमारे पाँचों के ये नाम हैं—पर्युषित, सूचीमुख, शीघ्रग, रोहक और लेखक। पुनः ब्राह्मण ने पूछा कर्म से उत्पन्न प्रेतत्व को प्राप्त हुए तुम्हारे नाम कैसे हुए इसका क्या कारण है जिससे तुम इस प्रकार के नामधारी हुए।

इसपर प्रेतों में से एक ने कहा मैं नित्य खादु भोजन करता था तथा वागी  
ठंदा ब्राह्मण को दे देता था इस कारण मेरा पर्युषित नाम हुआ एवं इसने अन्नार्ति  
की इच्छावाले बहुत से ब्राह्मणों को ठगा झलिये इसका नाम सूचीमुख हुआ। इन  
प्रकार क्षुधित ब्राह्मण के याचना करने पर शीघ्र चले जाने से शीघ्र नाम एवं  
बिना ब्राह्मण को दिये मधुर अन्न खाने से रोहक तथा याचना करने पर मर्त  
होकर पृथ्वी को कुदेरने से इस पापिष्ठ का नाम लेखक हुआ। पुनः ब्राह्मण ने कहा—

ये जीवा भुयि तिष्ठन्ति सर्वेऽप्याहारमूलकाः ।

युष्माकमपि चाऽऽहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥

जो जीव पृथ्वीपर रहते हैं उन सबका मूल आहार ही है। तुम्हारे आहार को  
सुनने की मेरी इच्छा है कहो। तब प्रेतों ने कहा हे विप्र ! हमारे सत्त्वहीन आहार  
को सुनकर आप हमारी चारम्भार निन्दा करेंगे। प्रेतों का आहार श्लेष्म, मूत्र,  
पुरीष और स्त्रियों के अङ्गों का मल है। हे तात ! अपने भोजन को कहने में  
मुझे लजा होती है। अब हे दृढ़व्रत ! प्रेतभाव की निवृत्ति आपसे पूछता हूँ  
जिससे प्रेतत्व न हो। इसपर पृथु ब्राह्मण ने प्रेतत्वनाशक उपाय बतलाइये :—

तुल्यो मानेऽपमाने च तुल्यः काश्चनलोष्ठयोः ।

तुल्यः शत्रौ च मित्रे च न प्रेतो जायते नरः ॥

देवतातिथिपूजासु गुरुपूजासु नित्यराः । रतो वै पितृपूजासु न प्रेतो जायते नरः ॥  
जितक्रोधविमरों यस्तृष्णासङ्गविवर्जितः । क्षमावान्दानशीलश्च न प्रेतो जायते नरः ॥

✓ गोब्राह्मणाश्च तीर्थानि पर्वताश्च नदीस्तथा ।

देवांश्चैव तु यो वन्द्यान्न प्रेतो जायते नरः ॥

अर्थात् जो मानव मान, अपमान, स्वर्ण, लोष्ठ, शत्रु और मित्र में समत्व  
रखता है वह प्रेतत्व को प्राप्त नहीं होता। देवता, अतिथि गुरु और पितृपूजा  
करनेवाले तथा क्रोध को जीवनेवाले, तृष्णा के सङ्ग से दूर रहनेवाले, क्षमावान्  
दानशील को एवं गोब्राह्मण, तीर्थ, पर्वत, नदी और देवताओं को

तमस्कार करनेवाले को प्रेतत्व प्राप्त नहीं होता है। इनसे विपरीत कर्म करने से मानव प्रेतत्व को प्राप्त होता है। ब्राह्मण के इस प्रकार कहते-कहते ही देवताओं द्वारा आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी तथा उस सत्सङ्गति के कारण उन प्रेतों के लिये स्वर्ग से विमान आगये। अतः हे गङ्गासुत ! यत्रपूर्वक "सर्ता सम्भाषणं कुर्व" सज्जनों से सम्भाषण करो। भीष्मजी ने आकाशस्थित पुष्कर का महत्त्व पूछा तब पुलस्त्यजी ने कहा एक बार दक्षिणवासी करोड़ों ऋषि स्नानादि के लिये पुष्कर में आये। उन्होंने पुष्कर को आकाशस्थित मान वारह वर्ष तक प्राणायाम में स्थित हो तपस्या की। तब ब्रह्मादि देवों ने पुष्कर को बुलाने के नियम बताये। आपोहिष्ठेत्यादि वैदिक मन्त्रों से पुष्कर का साम्निध्य होता। विशाखा में सूर्य और कुत्तिका में चन्द्रमा का योगविशेष दुर्लभ है इस योग में स्नान दानादि का बहुत महत्त्व है। उसी पुष्कर में उडुम्बर वन से सरस्वती नदी का आगमन। सरस्वती तीर पर धान्यादि दान का विशेष महत्त्व। गङ्गा एवं सरस्वती का परस्पर वार्त्तालाप। देवों द्वारा सरस्वती की स्तुति। शुद्धावट नामक तीर्थ का माहात्म्य। इसके दर्शन से महापापी भी पवित्र हो जाते हैं। इस स्थान पर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र ने भी दशरथ को पिण्ड प्रदान किये थे। वही चतुष्कोण अवियोगवापी की स्थिति है। जहाँ पिण्डदान करने से मनुष्य ईशयुक्त विमान से स्वर्ग में जाते हैं। वहीं पर ब्रह्माजी द्वारा पिण्डदान करना।

---

( ६० )

३३

मार्कण्डेयोत्पत्तिकथानकम्

मार्कण्डेयाश्रमवर्णनम्

मार्कण्डेयाश्रम ऋष्याश्रया रामेण श्राद्धवर्णनम्

श्राद्धे समागतान् द्विजान्दृष्ट्वा सीतायाः लज्जाकारणकथनम्

रामकृताजगन्धशिवस्तोत्रवर्णनम्

भीष्मजी द्वारा पुलस्त्यजी से प्रश्न कि हे मुने ! रामचन्द्र मार्कण्डेयजी ने कहाँ ज्ञान दिया एवं किस काल में कब और कहाँ समागत मार्कण्डेय किसका पुत्र हुआ एवं कैसे यह नाम हुआ इसका सम्पूर्ण कहिये । उत्तर में पुलस्त्यजी ने कहा कि पहिले कल्प में मृकण्डु नामक मुनि भृगुपुत्र मृकण्डु अपनी स्त्री के साथ तपस्या कर रहा था । उसी काल बसते हुए उसके पुत्र हुआ जो पांच वर्ष का ही महान् गुणी हुआ । मृक अपने पुत्र की भावी जानने के लिये एक ज्ञानी से उसकी आयु पूछी । तब ने कहा विधाता ने इसकी छै महीने की आयु रची है तुम्हें सोच नहीं चाहिये मैंने तुम्हें सत्य कह दिया है । ( अन्य पुराणों में मार्कण्डेयजी की का प्रमाण पांच वर्ष भी मिलता है । ) तदुपरान्त मार्कण्डेय का उपनयन पिता द्वारा सब वर्णों को अभिवादन करने की श्राद्ध । पांच महीने ५



यह बालक कौन है। तब ऋषियों ने कहा यह मृकण्डु का पुत्र क्षीणायु है इसे दीर्घायु कीजिये। इसको अल्पायु देखा मृकण्डु ने दण्डनेखलायुक्त कर उपनयन कर कहा जिस किसीको भी पृथ्वी पर भ्रमण करते देखो उसका अभिवादन करो। तब इसने दीर्घयात्रा प्रसङ्ग से घूमते हुए हमको देखा प्रणाम किया हमने इसको "पुत्र विरायु हो" ऐसा कह दिया। अब आपके साथ हमारा पचन ऐसे सार हो। इस पर ब्रह्माजी ने कहा यह बालक मार्कण्डेय मेरे समान आयुवाला होगा तथा ऋषियों में मुख्य एवं मेरा सहायक होगा। इस प्रकार ब्रह्माजी के पचन सुन पुनः मार्कण्डेय को धरातल पर भेज दिया। मार्कण्डेय ने पर पर अपने पिता से कहा मुझे ब्रह्मपाद्री मुनि लोग ब्रह्मलोक में ले गये जहाँ ब्रह्माजी ने मुझे दीर्घायु होने का वरदान दिया। अब मैं तप करने के लिये पुष्कर में जाकर देवदेवेश पितृमह की उपासना करूँगा। इस प्रकार पुत्र के पचन सुन मृकण्डु बहुत प्रसन्न हुआ एवं धैर्य धारण कर कहा आज मेरा जन्म सफल है मैं आज तुम्हारे द्वारा पुत्रवान् हूँ। तुम जाओ तथा पुष्कराश पितृमह को देखो जिन्हें देखने से मनुष्य जरायुतुल्य हो रहित हो जाता है एवं अधश्च सौम्य की प्राप्ति होती है। जिस पुष्कर में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देव निरालस रहते हैं एवं जो ब्रह्मलोक का मार्ग है ऐसे पुष्कर को देखनेवाला धन्य है। तदनन्तर मार्कण्डेय द्वारा मार्कण्डेयाश्रम की स्थापना। जहाँ स्नान करने से वाङ्मय पद के पद की प्राप्ति का वर्णन।

पुनः पुलस्त्यजी ने भीष्मजी से कहा कि अब आपको एक पुरातन इतिहास कहना है। पहिले भगवान् राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ विश्वरूप से महर्षि अत्रि के आश्रम में आकर मुनि से पूछा कि हे महाशुने! कीनसा ऐसा पुण्य तीर्थ या क्षेत्र है जहाँ जाने से मनुष्य का कर्णविषोग न हो पर करिये। तब अत्रि ऋषि ने ध्यान कर कहा कि आपने बहुत गुनर प्राप्त किया है। मेरे पिता द्वारा निम्नलिखित पुष्कर तीर्थ है वही हो किञ्चाप पर्वत है

मार्कण्डेयोत्पत्तिकथानकम् २६

मार्कण्डेयाश्रमवर्णनम् २६

मार्कण्डेयाश्रम ऋष्याज्ञया रामेण श्राद्धवर्णनम् २६

श्राद्धे समागतान् द्विजान्दृष्ट्वा सीतायाः लज्जाकारणकथनम् २६

रामकृताजगन्धशिवस्तोत्रवर्णनम् ३०

भीष्मजी द्वारा पुलस्त्यजी से प्रश्न कि हे मुने ! रामचन्द्रजी के मार्कण्डेयजी ने कहा ज्ञान दिया एवं किस काल में कब और कहा समागम हुआ। मार्कण्डेय किसका पुत्र हुआ एवं कैसे यह नाम हुआ इसका सम्पूर्ण वृत्त कहिये। उत्तर में पुलस्त्यजी ने कहा कि पहिले कल्प में मृकण्डु नामक मुनि हुआ। भृगुपुत्र मृकण्डु अपनी स्त्री के साथ वपस्या कर रहा था। उसी काल वन में यत्ने से उसके पुत्र हुआ जो पांच वर्ष का ही महान् गुणी हुआ। मृकण्डु ने अपने पुत्र की भावी जानने के लिये एक ज्ञानी से उसकी आयु पूछी। तब ज्ञानी ने कहा विधाता ने इसकी छै महीने की आयु रची है तुम्हें सोच नहीं करना चाहिये मैंने तुम्हें सत्य कह दिया है। ( अन्य पुराणों में मार्कण्डेयजी की आयु का प्रमाण पांच वर्ष भी मिलता है। ) तदुपरान्त मार्कण्डेय का उपनयन एवं पिता द्वारा सब वर्णों को अभिवादन करने की आज्ञा। पांच महीने पक्षीस दिन बीतने पर मार्ग में आते हुए सप्तर्षियों को देख बालक ने प्रसन्न हो प्रणाम किया तब उन्होंने आयुष्मान्भव ऐसा कहा। पश्चात् सार्धं ऋषि उसकी आयु के पांच दिन अवशेष जान डरे एवं उस बालक को साथ ले मर्याजी के पास गये। वहाँ जाते ही बालक ने मर्याजी को प्रणाम किया। मर्याजी के पास चिरंजीव कहा। ऋषिभोग मर्याजी के वचन को गुन बड़े प्रसन्न हुए। मर्याजी ने उसको ऋषियों को विसृज्यान्वित देख कहा आपभोग किम कार्य मे आये है तथा

यह बालक कौन है। तब ऋषियों ने कहा यह मृकण्डु का पुत्र क्षीणायु है इसे दीर्घायु दीजिये। इसको अल्पायु देख मृकण्डु ने दण्डमेखलायुक्त कर उपनयन कर कहा जैस किसीको भी पृथ्वी पर भ्रमण करते देखो उसका अभिवादन करो। तब उसने तीर्थयात्रा प्रसङ्ग से घूमते हुए हमको देख प्रणाम किया हमने इसको "पुत्र घेरायु हो" ऐसा कह दिया। अब आपके साथ हमारा वचन कैसे सत्य हो। इस रक्ष्माजी ने कहा यह बालक मार्कण्डेय मेरे समान आयुवाला होगा तथा ऋषियों में मुख्य एवं मेरा सहायक होगा। इस प्रकार रक्ष्माजी के वचन सुन नः मार्कण्डेय को धरातल पर भेज दिया। मार्कण्डेय ने घर पर अपने पिता को मुझे रक्ष्मावादी मुनि लोग ब्रह्मलोक में ले गये जहाँ रक्ष्माजी ने मुझे दीर्घायु देने का वरदान दिया। अब मैं तप करने के लिये पुष्कर में जाकर देवदेवेश वामह की उपासना करूँगा। इस प्रकार पुत्र के वचन सुन मृकण्डु बहुत उन्नत हुआ एवं धैर्य धारण कर कहा आज मेरा जन्म सफल है मैं आज तुम्हारे पुत्रवान् हूँ। तुम जाओ तथा पुष्करस्थ पितामह को देखो जिन्होंने से मनुष्य जरामृत्यु से रहित हो जाता है एवं अक्षय सौख्य की प्राप्ति की है। जिस पुष्कर में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देव निरन्तर रहते हैं जो ब्रह्मलोक का मार्ग है ऐसे पुष्कर को देखनेवाला धन्य है। तदनन्तर ऋण्डेय द्वारा मार्कण्डेयाश्रम की स्थापना। जहाँ स्नान करने से वाजपेय के फल की प्राप्ति का वर्णन।

पुनः पुलस्त्यजी ने भीष्मजी से कहा कि अब आपको एक पुरातन हास कहता हूँ। पहिले भगवान् राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट अश्वि के आश्रम में आकर मुनि से पूछा कि हे महामुने! कौनसा पुण्य तीर्थ या क्षेत्र है जहाँ जाने से मनुष्य का बन्धुवियोग न हो वह कहिये। तब अश्वि ऋषि ने ध्यान कर कहा कि आपने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। मेरे पिता द्वारा निर्मित पुष्कर तीर्थ है वहाँ दो विख्यात पर्वत हैं

उनके बीच तीन कुण्ड हैं जो ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठ पुष्कर कहलाते हैं। वह जाकर आप अपने पिता दशरथ की पिण्डदान से रुप्ति कीजिये। वही अवियोगा और मुरसा वापी तथा सौभाग्यकूप है जिनपर पिण्डदान करने से पितरेभर मोक्ष को प्राप्त होते हैं। तदनन्तर राम का पुष्कर गमन तथा वह जाकर पितरों को रुद्र करना एवं स्नानावसान में शिष्यों सहित आये। मार्कण्डेय ऋषि को देस सादर प्रणाम कर पूजना कि हे प्रभो! अवियोगावापी कीन दिशा में है मैं राजा दशरथ का पुत्र राम हूँ। भगवान् के पसा पूजनेवा मार्कण्डेयजी ने कहा हे राघव! आपका कल्याण हो आपने बहुत मुक्त किया। यहाँ आओ और उस अवियोगा वापी को देखो यहाँ पर सयका अभिषेक होना है पाहे जीवित हो या मृतक। इस प्रकार मुनीन्द्र के वाक्य सुन रामचन्द्र ने राजा दशरथ का स्मरण किया एवं भरतारि भाईयों तथा अयोध्यावासियों का भी। इतने में मन्त्राकाश हो गया तब मुनियों के साथ वह पश्चिमा सन्ध कर रात्रि में सो गये। स्वप्न में भगवान् रामचन्द्रजी ने माता-पिता, भ्रातृव्य एवं अयोध्या को देखा इसी प्रकार लक्ष्मण तथा सीता ने भी। प्रातःकाल सन्मुख ज्ञानान् मुनियों को वह मुनाया तब मुनियों ने कहा हे रघूतम! तब "मृतार दर्शनं भाद्रं कार्यमावश्यकं स्मृतम्"।

इदिकामाप्नु पितरन्त्या शैवान्काश्चिभिः।

इदन्ति दर्शनं स्वप्ने भण्ड्युत्तम्य राघव॥

अर्थात् मृतक का दर्शन करने पर भाद्र करना जरूरी है। पितरों का दर्शन से तथा अन्न को इच्छा में स्वप्न में दर्शन देते हैं। अतः हे वीर! राजा दशरथ का भाद्र करो इससे स्नानार्थ ज्येष्ठ पुष्कर को जाते हैं। तब भगवान् राम का पुष्करगमन में भाद्रकरण। रामचन्द्रजी द्वारा निम्नलिखित श्लोकों को आये देखकर प्रत्येक व्यक्ति को मोक्ष का उचित होकर देना।

करवाना तथा दक्षिणा दे बिदा करना । विप्रमुख्यों के चले जाने पर राम का सीता से पूछना कि हे सुभ्रू ! यहां आये हुए ऋषियों को देखकर तुम लज्जित क्यों हुई इसका कारण कहो देरी मत करो । इस प्रकार पति के पूछनेपर लज्जा से नतमस्तक हो अधुपात छोड़ती हुई भगवान् राघव से बोली हे नाथ ! यहां जो आश्चर्य देखा सो सुनिये । आपके चिन्तन करने पर राजा दशरथ का तथा अन्य दो जनों का आगमन हुआ । मैंने ब्राह्मणों के अङ्गों में राजा दशरथ को देखा तब लज्जायुक्त हो अन्यत्र चली गई ' बल्कलाजिनसम्बिता कथं राक्षः पुरःसरा' इस प्रकार के बल्कलाजिन के वस्त्र पहिने में कैसे अपने श्वशुर राजा के सामने जाती । सीता के ऐसे वचन सुन भगवान् रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए । उस रात्रि वहां होकर प्रातःकाल ज्येष्ठ पुष्कर में चले गये तथा वहां आद्ध चर्पण कर पितरों को दत्त किया । वहां से पुनः मर्यादा पर्वत पर प्राप्त हो क्षेत्रसीमा में अजगन्ध शेष को अष्टाङ्ग प्रणिपात से नमस्कार कर कृताञ्जलि हो स्तवन किया । रामकृत प्रजगन्ध शिवस्तोत्र । स्तोत्र से प्रसन्न हुए राक्षुर का भगवान् राम को वर प्रदान । आत् इन्द्रमार्ग नदी पर जाकर भगवान् का अट्टाजूट बनाना एवं देखा नदीपर बाकर अपने पितर तथा देवताओं को जल से दत्त कर वहीं सीता और लक्ष्मण के साथ अभिषिक्त हो निवास करना ।

३४	ब्रह्मकृतयज्ञकालर्त्विग्दक्षिणादिसर्वकृत्यवर्णनम्	३०४
	ब्रह्माज्ञया लक्ष्मीसहितविष्णुना सावित्रीमोहनम्	३०५
	सावित्र्या ब्रह्मसमीपम्रत्यागमनम्	३०६
	विष्णुकृतब्रह्मस्तुतिः	३११
	रुद्रकृतब्रह्मस्तोत्रम्	३१३
	ब्रह्मस्थानमाहात्म्यवर्णनम्	३१५
	पुष्करादितीर्थं विविधदानमहिमा	३१७

भीष्मजी ने प्रश्न किया कि ब्रह्माजी ने किसकाल में यज्ञ आरम्भ किया ब्रह्माजी के किस नाम के ऋत्विज थे एवं उनको क्या दक्षिणा दी गई या सम्पूर्ण जैसे हुआ वैसे आप मुझे कहिये। पुलस्त्यजी ने कहा मैंने पढ़ि ही कहा कि स्वायम्भुव मनु आदि प्रजापतियों को रचकर ब्रह्माजी क सप्त से सृष्टि रचने के लिये वह स्वयं पुष्कर में सम्पूर्ण यज्ञ सम्भारों से सुमज्जित हो यज्ञकुण्ड पर स्थित हो गये। ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु ये चार (यज्ञपादक) यज्ञ को चलानेवाले होते हैं। एक-एक के तीन-तीन परिवार होते हैं। सबकी मिलाकर सोलह संख्या होनी चाहिये। तीन सौ सा यज्ञ होते हैं उनके अलग-अलग होता, उद्गाता, ब्रह्मा और अध्वर्युओं का वर्णन ब्रह्माजी के यज्ञ को सब ने मिलकर राक्षिभर अपना-अपना काम पूरा किए और यज्ञ को मच्छत्रा में पूर्ण योग दिया।

मन्वन्तर के अवमान में यज्ञ का अवभृथ स्नान हुआ। ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु को चारों दिशाएँ अर्थात् सम्पूर्ण त्रिलोकी दक्षिणा में दी एवं यज्ञ सिद्धि के लिये विद्वानों को सो-भौ गौ दान में दी गई। यज्ञान्त में ब्राह्मण भोजन। तदनन्तर ब्रह्माजी का भगवान् विष्णु से कहना कि हे माधव ! सावित्री समन्वय कर दहा लाये। आपके प्रसन्न करने पर वह मुष्ट होकर निधन

ही आज्ञायेगी आप देरी मत करें शीघ्र ही जाइये। इस प्रकार ब्रह्माजी के कहने पर भगवान् विष्णु लक्ष्मी सहित शीघ्र ही सावित्री के घर पर गये। वहां जाकर विष्णु भगवान् ने सावित्री को नमस्कार कर कहा कि आप पतिव्रता हैं ब्रह्माजी के हृदय में आपका स्थान है वे आपको रात-दिन चिन्तन करते हैं। अतः इस प्रकार दुःख से द्रवित ब्रह्माजी को प्रसन्न कीजिये तथा आपकी प्रिय सखी लक्ष्मी से पूछ लीजिये। ऐसा कह भगवान् विष्णु का सावित्री के चरणों में नमस्कार करना। सावित्री का पैरों को सङ्कुचित कर अपने हाथ से भगवान् के हाथों को ग्रहण कर कहना कि हे अच्युत ! मैंने सबको क्षमा कर दिया है। यह लक्ष्मी सदा आपके हृदय में निवास करेगी तथा आप जहां कहीं भी देव, मनुष्य आदि शरीरों में अवतरित होंगे वहां यह भी आपके साथ ही अवतार लेगी। अय हे प्रभो ! मुझे कहां क्या करना है सो कहिये। तब भगवान् विष्णु ने कहा मुझे ब्रह्माजी ने आपको लाने के लिये भेजा है अतः देवताओं से युक्त अपने पति को बलकर देखो। तत्पश्चात् भगवती लक्ष्मी ने कहा हे आर्य ! उठो जहां ब्रह्माजी हैं वहां शीघ्र ही जाइये। मैं आपके चरण छूकर कहती हूं कि मैं आपके बिना नहीं जाऊंगी। ऐसा कह लक्ष्मी ने अपने दहिने हाथ से उसका हाथ पकड़कर उठा लिया। आती हुई सावित्री को देख ब्रह्माजी का समीपस्थ भगवान् महादेवजी को कहना हे सुरभूषण ! आप पार्वती के साथ जाइये तथा सावित्री को समन्ताकर वह शीघ्र आवे ऐसा करिये। पार्वती सहित राक्षस ने सावित्री के सामने जाकर अभिवादनपूर्वक कहा कि हे शोभने ! आपकी ब्रह्माजी प्रतीक्षा करते हैं आप देरी मत कीजिये। तत्पश्चात् भगवती पार्वती द्वारा सावित्री का वाम हस्त ग्रहण कर ब्रह्माजी के पास ले आना। सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी का सावित्री को सामने देख कहना यह गायत्री देवी तो कर्मकरी है तथा मैं मुन्हारे वश में हूं। इस प्रकार ब्रह्माजी के कहनेपर सावित्री का उज्जित हो

नतमस्तक होकर मौन होना एवं ब्रह्माजी से प्रेरित गायत्री का सावित्री चरणों में गिरकर क्षमा याचना कर नमस्कार करना। गायत्री को सान्त्वित कर सावित्री का स्त्रीधर्म कहना।

न च स्त्रीणां पृथग्यक्षो न प्रतं नाप्युपोषणम् । भर्ता यद्वदते वाक्यं तत्तु कुर्यादुल्लसत्  
भर्तृनिन्दां या कुक्ते स्वसृनिन्दां सर्वथैव च ।

परिदादम्प्रलापं वा नरकं सा तु गच्छति ॥

पत्नी जीवति या नारी उपवासव्रतं चरेत् । आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता नरकमृच्छति

अर्थात् स्त्री के लिये न तो पृथक् यज्ञ ही है न व्रत तथा उपवास है, इस लिये तो पति का वचन ही सर्वस्व है। जो स्त्री पतिनिन्दा, बहिर्न की निन्दा विवाद और प्रलाप करती है वह नरक में जाती है। पति के जीवित रह जो स्त्री उपवासव्रत करती है वह पति की आयु का हरण करती है तथा मरने पर नरक में जाती है। ऐसा जानकर तुम पति का कोई भी विप्रिय (बुरा) मत करो अब तुम मेरे साथ सुख से रहो। तदनन्तर ब्रह्माजी का स्नानाचसाना सम्पूर्ण देवताओं को वरदान एवं आदरपूर्वक विष्णु और शङ्कर को कहना कि पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों में आप पूजनीय हैं आपके बिना कोई भी तीर्थ पवित्र नहीं है। जो मानव आपकी पूजा उपहारों से करेंगे उनको सब सिद्धि प्राप्त होंगी। ब्रह्माजी के ऐसे वचन सुन भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी की स्तुति की। स्तुत्युपरान्त ब्रह्माजी ने कहा हे केशव ! आप ब्रह्माराशि तथा सर्वज्ञ। इसमें सन्देह नहीं है। अतः “देवानां प्रथमः पूज्यः सर्वदा त्वं भविष्यसि” आ देवों में सर्वदा प्रथम पूज्य होंगे। रुद्रकृत ब्रह्मस्तुति। इस स्तुति के बाद कहना कि हे नाथ ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो यह वचाइये कि आपकी किन-किन स्थानों में स्थिति है एवं किन नामों से आपके स्थान पृथ्वी पर शोभित होते हैं। तब ब्रह्माजी ने कहा—मैं पुष्कर में सुरधेष्ठ, गया में चतुर्मुख, कान्यकुब्ज में देवगर्भ, भृगुकुश में पितामह, कावेरी में सृष्टिकर्त्ता, नन्दिपुरी में बृहस्पति,



भास में पद्मजन्मा आदि एक सौ आठ नामों से इन-इन स्थानों में रहता हूँ। इन स्थानों में से एक को भी जो नर भक्तियुक्त होकर देखता है उसके कायिक, भाविक, मानसिक सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं तथा निरन्तर ब्रह्मलोक का भास प्राप्त होता है। ब्रह्मस्थान का महत्त्व वर्णन। पुष्कर में सावित्री के नामने वम्पति भोजन का विशेष फल वर्णन। गुप्त ब्राह्म तथा गुप्त ध्यान का महत्त्व। पुष्करादि तीर्थों में विविध दानों का महत्त्व वर्णन। तीर्थों में पुष्कर में विशेष महत्त्व—

तयुगे पुष्कराणि त्रेतायां नैमिषं स्मृतम् । द्वापरे च कुण्डक्षेत्रं कलौ गङ्गां समाश्रयेत् ॥  
 पुष्करः पुष्करे वासो दुष्करं पुष्करे तपः । दुष्करं पुष्करे दानं दुष्करः पुष्करे जपः ॥  
 विशेष क्या पुष्कर ही दुष्कर क्षेत्र है तथा सम्पूर्ण पापों को नारा करने-  
 ला है। पुष्कर में अजगन्ध शङ्कर का दर्शन करने से मुक्ति प्राप्त होती है।

५	क्षेमङ्कर्युत्पत्तिवर्णनम्	३१६
	महिषासुरस्य दानवैः सह सम्वादः	३२३
	प्रसङ्गान्महिषासुरजननवर्णनम्	३२४
	महिषासुरस्य क्षेमङ्करीनिकटे आगमनम्	३२७
	क्षेमङ्करीस्तोत्रपठनपूजनफलकथनम्	३२६

भीष्म के द्वारा क्षेमङ्करी जो पुष्कर पर्वत पर स्थित है उसके सम्यन्ध में पूजने पर पुलस्तयजी ने बतलाया कि क्षेमङ्करी देवी ने सार्वभौमतापूर्वक तप किया शीर्षकाल के बाद उसका मन कुपित हो गया और उस क्रोध से सौम्यलोचनीवाली सहस्रों कुमारियां उत्पन्न हुईं और देवी ने उन कुमारीगण के लिये मुन्दरपुर का निर्माण किया और अपने अधिकार में उन सबके द्वारा यथोचित कार्य का उपक्रम शान्तिपूर्वक चलाया। एक बार देवर्षि नारद उधर से आ निकटे उनके आनेपर

देवी ने सचहुमान पाद्य, अर्घ्य आदि देकर समागमन का कारण पूछा और नारद ने ब्रह्मलोक, इन्द्रलोक, रौद्र और अचल से आकर आपके दर्शनों के लिये आया हुआ हूँ ऐसा कहा और वहां से क्षेमकुरी के रूप को देखते हुए आश्चर्य और विस्मित से होकर जानेको तैयार हुए। विदा होकर नारद सीधे महिष दानव के पास जाकर उससे पुष्कर के वन में रहनेवाली कुमारी के साथ क्षेमकुरी के रूप, लावण्य और सौन्दर्य के सम्बन्ध में स पहा से चले गये। महिष दिन-रात उसीके रूप में चिन्तित और व्यग्र रहे लगा एक बार अपने आठ मन्त्रियों को बुलाकर उसने अपने मनके भावों को फहा और उसे प्राप्त करने की यात कही। प्रघस ने उस वैष्णवी देवराक्षि को अधिकार में न करने की मन्त्रणा दी परन्तु अन्य मन्त्रियों ने महिष के भाव के अनुसार उस रूप लावण्य व सम्पत्तियुक्त क्षेमकुरी को किसी प्रकार लाने का सर्व सम्मति से प्रयत्न करने का निश्चय किया इसके पूर्व विरूपाक्ष ने उसे देवों द्वारा अजेय होने का वर प्रदा से प्राप्त हुआ है यह स्मरण कराकर वैषसेना पर पड़ाई करने की पूरी तैयारी की और दैत्येन्द्र महिष ने इन्द्रपुरी पर आक्रमण किया। देव और दैत्यों का तुमुल युद्ध हुआ देवगण पराजित हुए महिष ने अपना दूत क्षेमकुरी के पास विवाह प्रस्ताव के साथ भेजा। दूत ने अभिवादनपूर्वक दैत्येन्द्र महिष के जन्म का विस्तार से वर्णन करते हुए कहा कि इसकी माता महिषी ने वन में तप करते हुए मुनि को अपनी सगिर्यों के साथ भिन्न-भिन्न रूप में महानाद करते हुए डराने का उपक्रम किया। इसपर भयभीत मुनि ने महिषी ( जैन ) का रूप धारण कर सब सगिर्यों के साथ उसी रूप में सी बस ठक बिचरन करो ऐसा शाप दिया। महिषी ने कांपते हुए मुनि से शापान्त के लिये क्षमा याचना की। श्यालु भूषि ने उसे कहा कि इसी रूप से पुत्र को उत्पन्न करनेपर तुम्हारा शापान्त होगा यह मेरा वाक्य भूट नहीं होगा वह महिषी बर्नता के तीर पर चली गई जहां प्रतापी मिन्धुदीप तप करता था। दैत्यराज

वहां निर्वस्त्र होकर जल में स्नान करती हुई मुनि द्वारा देखी गई और उनका वीर्यस्त्रलिप्त हो गया और दिव्यगन्धवाले उस वीर्य के जल को अपनी सखियों से परामर्श लेकर पी गई उसी से यह महिष नामक महापराक्रमी पुत्र हुआ उसके पराक्रम से देवसेना हतप्रभ हो गई है ऐसे पराक्रमी दैत्य के साथ आपका सम्बन्ध होने से सय आनन्द होगा। उसके वचन सुन देवी हँसी, हँसते रहने से सम्पूर्ण त्रैलोक्य प्रकाशित हुआ और उसकी प्रतिनिधिरूपा प्रतिहारी कुमारी जया ने कहा है दैत्य दूत ! यह देवी तो क्या इनकी जो अनुचारिणी कुमारी हैं उन्हें भी वह नहीं पा सकता। उसे खुलकर क्षेमकुरी की ओर से युद्ध की चुनौती देवी। इसी समय नारद आये और देवगण की दुर्दशा और युद्धप्रलायन के विषय में सानुरोध उससे कहा अब उस दैत्य महिषसे युद्ध कर देवगण को अपनी पूर्व अवस्था के लिये समर्थ बनाइये। देवी के आदेश से कुमारिकाओं ने शस्त्रास्त्र हाथों में लेकर युद्ध की तैयारी की और युद्धक्षेत्र में युद्ध की प्रलयाग्नि के रूप में आ ददी। घोर युद्ध हुआ दैत्य सेना को क्षण में ही उन कुमारियों ने क्षत विक्षत कर दिया। क्रोधित होकर महिष ने सीधे देवी पर आक्रमण किया इस पर बीस भुजा धारण कर देवी ने अनेक अस्त्र-शस्त्रों से तैयारी कर रुद्र भगवान् का स्मरण किया स्मरण करते ही वह गणों समेत उपस्थित हो गये दैत्य ने माया से दीर्घकाल तक युद्ध किया अन्त में देवी ने उसे राक्ष प्रहार से स्वर्गलोक भेज दिया। इस प्रकार शत्रु के मरण से प्रसन्न होकर देवगण ने क्षेमकुरी की स्तुति की इस भगवती के स्तोत्र के पाठ का फल और माहात्म्य का वर्णन। भगवती क्षेमकुरी सब गुणों के नाना आकार-प्रकार से संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार कार्य में प्रमुख है उनकी स्तुति से सम्पूर्ण देवगण प्रसन्न होते हैं ऐसी महामहिमा सम्पन्ना भगवती सदैव आराध्य और भक्तों की सम्पूर्ण कामना पूर्ण करनेवाली है।

३६	वैष्णवी चामुण्डारूपरुद्रशक्तिविहितदैत्यवधवर्णनम्	३३०
	पञ्चमहापातकनाशकत्रयपूजाकल्पकथनम्	३३१
	नवग्रहत्रयविधानं तत्फलञ्च	३३२
	श्वेतनृपस्याख्यानम्	३३४
	ब्रह्माण्डदानविधानम्	३३६

भीष्मजी के द्वारा ब्रह्माजी के शरीर से आविर्भूत गायत्री और अष्टभुज तथा बीस भुजावाली देवी ने जो महिष का वध किया और वैष्णवी तब चामुण्डा रुद्रशक्ति द्वारा कौन-सा दैत्य मारा गया यह पूछने पर पुलस्त्यजी ने कहा जन्मजन्मों में कल्पभेद से यही दैत्य वैष्णवी और चामुण्डा द्वारा मारा गया अथवा ज्ञानशक्ति देवी साक्षान् हैं और अज्ञान की मूर्ति यह महिष ज्ञानसे ही अज्ञान का नाश होता है फिर पञ्च महापातक नाशक ब्रह्माजी की पूजा का महत्त्व समझाते हुए पुलस्त्यजी ने कहा कि कार्तिक चतुर्विंशी में ब्राह्मणमुहूर्त उठकर गुरु का ध्यान कर स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर इस पूजा को करने पाँच महापातकों से छुटकारा होजाता है। इसी के साथ नवग्रह पूजा, लोच पाळ पूजा, वरुण आदि देव पूजा का अङ्गभूत होने से प्रतिपादन और उनका विशेष माहात्म्य। अन्त में पुलस्त्यजी ने शङ्कर से ज्ञान प्राप्त करे अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के लिये इष्टदेव शङ्कर की पूजा, आरोग्य के लिये सूर्य को, धन के लिये अग्नि सुगति के लिये भगवान् विष्णु और ब्रह्मत्व प्राप्ति के लिये ब्रह्मा को पूजे। फिर बड़े-बड़े यज्ञों के सम्पादन में आयु की अल्पता (आयु छोटी होने) से कार्यसफलता शक्य नहीं अतः भीष्मजी ने थोड़े प्रयत्न से अधिक फल मिले इसके लिये प्रस्त किया पुलस्त्यजी ने प्राचीन समय में श्वेत राजा ने यशिष्ठजी को भूख से पीड़ित होकर जो विषय पूछा उसी आख्यान का विवरण किया। राजा श्वेत ने प्रतापी होकर भूमि, वस्त्र, अलङ्कार, भ्राम, नगरादि का दान बहुत किया परन्तु अन्न

और जल का दान नहीं किया इससे मरणोपरान्त वह स्वर्ग गया परन्तु भूख और प्यास से सदा ही पीड़ित रहा तो वहां से ऋक्ष पर्वत पर गया और वहां अपनी पड़ी हुई इड्डियों को राजा चाटने लगा और फिर दिव्यविमान से स्वर्ग चला गया। बहुत दिनों बाद एक दिन वशिष्ठजी ने राजा को इस प्रकार अपनी हड्डी चाटते देखा और इसके विषय में पूछा राजा ने कहा मैंने अन्न और जल का दान नहीं किया इसलिये भूख और प्यास से स्वर्ग में भी व्याकुल रहता हूँ। अन्न न देने के कारण अब जो मार्ग मेरे लिये सुकर हो वह कृपाकर बताइें। वशिष्ठजी ने विनीताश्व राजा का आख्यान कहा कि उसने अश्वमेध कर तुम्हारे मास ही गाय, घोड़े आदि को दान में दिया परन्तु अन्न को छोटा समझ से नहीं दिया। मरण के बाद उसकी वही गति हुई जो तुम्हारी है उसने इसी प्रकार भूखा-प्यासा रह अपने पुरोहित ब्राह्मण से इन सबका कारण जाना तथा तिलघेनु के सम्बन्ध में पूछने पर पुरोहित ने तिलघेनु, जलघेनु, घृतघेनु और रसघेनु सब का सवित्तर वर्णन किया जिससे उसे पूर्वजन्म में अन्न और जल के दान न करने से उत्पन्न दोष को दूर करने के मार्ग का पता लगा। इसी प्रकरण में ब्रह्माण्डदान की विधि बताई है। इसके करने से सम्पूर्ण कामों की प्राप्ति होकर मनुष्य अन्त में पुण्यभागी होकर स्वर्गागामी होता है। कार्तिक मास ४ पुष्करराज तीर्थ दान का फल और सुन्दर माहात्म्य निरूपण।

३७	अन्नदानमाहात्म्यवर्णनप्रस्तावाद्रामकथानकवर्णनम्	३४०
	मृतपुत्रब्राह्मणस्य रामेण सम्वादवर्णनम्	३४३
	शूद्रतापसम्प्रति रामस्य गमनम्	३४५

भीष्म ने पुलस्त्यजी को अपने ऊपर इस प्रकार अनुग्रह करने के लिये बहुत कृतज्ञता प्रगट की और अन्य अन्नदानसम्बन्धी माहात्म्य के प्रसङ्ग में प्राचीन इतिहास के लिये प्रश्न किया पुलस्त्यजी ने कहा राम के आविर्भाव और उसके द्वारा

रावण जैसे असुर का वध करने के अनन्तर अयोध्या आने पर अगस्त्य प्रभृति ऋषिगण उनसे मिलने के लिये आये। तब राम ने प्रतिहारी को उन ऋषियों को अयहां लिवा लाने के लिये कहा। ऋषियों ने वर्द्धापन कर आशीर्वाद देते हुए गुप्त कामना प्रगट की और राम को वन में आकर फिर मिलने को कहा इसके बाद सब अन्तर्धान कर गये। राम ने ऋषियों के आदेश से धर्मराज्य की स्थापना और सैकड़ों वर्षों तक राज्य किया। उसी दिन अपने मृत पुत्र को लेकर एक प्राणद्वार पर आया और अपना दुःख (पुत्रमृत्यु का) राम से कहा इस अकाल मृत्यु का कारण जानने के लिये राम ने वशिष्ठजी से पूछा। इसी बीच नारद ने कहा। प्राचीनकाल में कोई भी ब्राह्मण से इतर वर्ण तपस्या नहीं करता था उस समय कभी अपमृत्यु, अकालमृत्यु नहीं होती थी सब चिरञ्जीवी-ही-चिरञ्जीवी होते थे धीरे-धीरे युग परिवर्तन के अनुसार धर्म के पाद का ह्रास और अधर्म के पादों की वृद्धि हुई। इसी प्रकार कोई शूद्र अथवा ही तपस्या करता इसीलिये ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हुई है इसलिये शीघ्र जाकर उसके सम्बन्ध में पूरा जानकारी कर उसका निराकरण करो। रामने वन में शूद्र तपस का पद लगाकर उसके इस व्यवहार के लिये पूछा। राम ने उसके मुंह से शूद्र योनि उत्पन्न जानकर और शम्भूक नाम से तप करते हुए देवत्व प्राप्ति का उल्लेख बतलाया राम ने उस शम्भूक को अनधिकार के नाते दण्ड दिया इससे सर्व साधुवाद की ध्वनियां हुई और इन्द्रादि देवगण ने राम से वर मांगने के लिये कहा राम ने कहा यदि देवगण प्रसन्न हैं तो यह ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो जाय देवगण ने कहा कि वह ब्राह्मणपुत्र तो शूद्र के वध के साथ ही उठ खड़ा हो गया और अपने पर चला गया। फिर देवगण से आज्ञा लेकर रामभगवान् अगस्त्य के आश्रम में विमान द्वारा चले गये।

१८.	रामस्यागस्त्याश्रमगमनवर्णनम्	३४७
	अगस्त्याश्रमे रामाय दिव्याभरणदानवर्णनम्	३४६
	आभरणप्राप्तिप्रश्ने रामागस्त्यसम्वादवर्णनम्	३५१
	अगस्त्येन श्वेतराश्वः सकाशाद्रत्नकङ्कणप्रतिग्रहवर्णनम्	३५३

शम्भू के घब के घाव रामभद्र विमान पर आरुढ़ होकर अगस्त्यजी के श्मश्रु में आये और इन्हें इस बात की पूर्ण आशा थी कि उन ऋषिचर्य के हाँ जाने पर सय प्रकार की आधिभ्याधि के विषय में पूछकर अपना परमार्थ-प्राप्त करना इष्ट होगा। ऐसा सोचते-सोचते उनका विमान महर्षि अगस्त्य के आश्रम के निकट आ पहुँचा और उससे उतरकर वे सीधे ऋषि अगस्त्य को शशाङ्ग वृण्डवत् कर उनके आदेश से बैठकर कुशल प्रश्न करने लगे। अगस्त्यजी ने उसी समय सुन्दर आभरण रामभद्र को देते हुए उनका वर्धापन किया। राम ने माङ्गल्य से प्रतिग्रह क्षत्रिय के लिये आपत्काल में अधिक इष्ट है ऐसे प्रायश्चित्त का भागी होने का डर कहा। इसपर अगस्त्यजी ने प्राचीनकाल में हुई घटनायें जना के अक्षमरय एवं लोकपालों के अंश से निर्मित शरीर में तप विरोधरूप से नेहित रहता है इसे बताया और ऋषि के उपदेश से दिव्य आभरणों को ग्रहण किया। राम उन दिव्य आभूषणों को देखते-देखते विस्मित हो गये और इनकी प्राप्ति में विषय में प्रश्न करने लगे। अगस्त्यजी ने कहा “प्राचीनकाल में बड़े घने जंगल में एकान्त में जब मैं तपस्या कर रहा था, तो एक दिन एक सुन्दर सरोवर के किनारे मैंने रात्रि में आकर विश्राम किया। प्रभात के समय जैसे ही धर-उधर घूमने लगा तो एक शव को देखा और उस एकान्त स्थान में इस विचित्रता से मैं कई प्रकार से सन्देह करने लगा मैंने इसी समय सुन्दर-सुन्दर विमानों चढ़कर गन्धर्व तथा अप्सरोगण के बीच में विमान से उतरते हुए दिव्य पुरुष को देखा और सरोवर में स्नान कर उसे उस शव को खाते हुए देखा। इस

रावण जैसे असुर का वध करने के अनन्तर अयोध्या आने पर अगस्त्य ऋषि  
 गण उनसे मिलने के लिये आये। तब राम ने प्रतिहारी को उन ऋषियों को  
 यहाँ लिया लाने के लिये कहा। ऋषियों ने वर्द्धापन कर आशीर्वाद देते हुए  
 कामना प्रगट की और राम को वन में आकर फिर मिलने को कहा इसके  
 साथ अन्तर्धान कर गये। राम ने ऋषियों के आदेश से धर्मराज्य की स्थापना  
 और सैकड़ों वर्षों तक राज्य किया। उसी दिन अपने मृत पुत्र को लेकर एक मण्डप  
 द्वार पर आया और अपना दुःख (पुत्रमृत्यु का) राम से कहा इस अकाल मृत्यु  
 कारण जानने के लिये राम ने यशिष्ठजी से पूछा। इसी बीच नारद ने कहा  
 प्राचीनकाल में कोई भी ब्राह्मण से इतर वर्ण तपस्या नहीं करता था उस समय  
 कभी अपमृत्यु, अकालमृत्यु नहीं होती थी सब चिरञ्जीवी-ही-निर्वाण  
 होते थे धीरे-धीरे युग परिवर्तन के अनुसार धर्म के पाद का ह्रास और अधर्म  
 के पारों की वृद्धि हुई। इसी प्रकार कोई शूद्र अथवा ही तपस्या करता  
 इसीलिये ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हुई है इसलिये शीघ्र जाकर उसके सम्बन्ध में पूछ  
 जानकारी कर उसका निराकरण करो। रामने वन में शूद्र तापस का पता  
 लगा कर उनके इस व्यवहार के लिये पूछा। राम ने उसके मुँह से शूद्र योगि  
 ज्ञान और शम्भूक नाम से तप करते हुए देवत्व प्राप्ति का सं  
 बतलाया राम ने उस शम्भूक को अनधिकार के नाते दण्ड दिया इससे  
 सायुबाद की ध्वनियाँ हुईं और इंद्रादि देवगण ने राम से वर मांगने के लिये  
 कहा राम ने कहा यदि देवगण प्रसन्न हैं तो यह ब्राह्मण का पुत्र जोवित हो  
 देवगण ने कहा कि वह ब्राह्मणपुत्र तो शूद्र के वध के साथ ही मर  
 हो गया और धरने पर चला गया। फिर देवगण से आकाश छेड़ कर तार  
 धनुस्त्र के धावन में विमान द्वारा चले गये।



३८.	रामस्यागस्त्याश्रमगमनवर्णनम्	३४७
	अगस्त्याश्रमे रामाय दिव्याभरणदानवर्णनम्	३४६
	आभरणप्राप्तिप्रदने रामागस्त्यसम्वादवर्णनम्	३५१
	अगस्त्येन श्वेतरात्रः सकाशाद्रत्नकङ्कणप्रतिग्रहवर्णनम्	३५३

रामरूढ़ के घष के बाद रामभद्र विमान पर आरूढ़ होकर अगस्त्यजी के आश्रम में आये और इन्हें इस बात की पूर्ण आशा थी कि उन ऋषिवर्य के यहां जाने पर सब प्रकार की आधिभ्याधि के विषय में पूछकर अपना परमार्थ-साधन करना इष्ट होगा। ऐसा सोचते-सोचते उनका विमान महर्षि अगस्त्य के आश्रम के निकट आ पहुंचा और उससे उतरकर वे सीधे ऋषि अगस्त्य को साष्टाङ्ग दण्डवत् कर उनके आदेश से बैठकर कुशल प्रश्न करने लगे। अगस्त्यजी ने उसी समय सुन्दर आभरण रामभद्र को देते हुए उनका वर्धापन किया। राम ने ब्राह्मण से प्रतिग्रह क्षत्रिय के लिये आपत्काल में अधिक इष्ट है ऐसे प्रायश्चित्त का भागी होने का डर कहा इसपर अगस्त्यजी ने प्राचीनकाल में हुई घटनायें राजा के अश्वमार्य एवं लोकपालों के अंश से निर्मित शरीर में तप विशेषरूप से निहित रहता है इसे बताया और ऋषि के उपदेश से दिव्य आभरणों को ग्रहण किया। राम उन दिव्य आभूषणों को देखते-देखते विस्मित हो गये और इनकी प्राप्ति में विषय में प्रश्न करने लगे। अगस्त्यजी ने कहा “प्राचीनकाल में बड़े पने जगल में एकान्त में जब मैं तपस्या कर रहा था तो एक दिन एक सुन्दर सरोवर के किनारे मैंने रात्रि में आकर विभ्राम किया। प्रभात के समय जैसे ही धर-उधर धूमने लगा तो एक शव को देखा और उस एकान्त स्थान में इस विचित्रता से मैं कई प्रकार से सन्देह करने लगा मैंने इसी समय सुन्दर-सुन्दर विमानों चढ़कर गन्धर्व तथा अप्सरोगण के बीच में विमान से उतरते हुए दिव्य पुरुष को देखा और सरोवर में स्नान कर उसे उस शव को खाते हुए देखा। इस

दिव्यपुरुष की इतनी सुन्दर तेजोमयी आकृति और भोजन इतना गरिब खराब तो मुझे इसे जानने की विशेष इच्छा ॥॥। मने उससे पूछा उस स्वर्गीय पुरुष ने हाथ जोड़कर अपनी पूर्वावस्था का सारा वर्णन किया। फिर बोले “वह वासुदेव नामक वैदर्भक राजा था उसके दो पत्नियाँ थीं और दो पुत्र दोनों पत्नियों से थे। श्वेत इस कथापुरुष नाम था और उसके भाई का नाम था मुर पित्त के बाद श्वेत राज्यकार्य सन्हालने लगा विशेष निमित्त से कई वर्षों के बाद राज्य कर मुरथ को राजपाट सौंपकर श्वेत तपस्या के लिये इसी वन में आगया और कई हजार वर्षों तक तप करने के बाद ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई परन्तु भूख और प्यास किसी प्रकार नहीं मिटी। ब्रह्मा से इस सब का कारण पूछने पर योग से ध्यान लगाकर उन्होंने बतलाया कि अपने शरीर को पुष्ट बनाते हुए ही तपस्या करने से अब कोई भी भूख व प्यास मिटानेवाला साधन उसे यहाँ नहीं मिलने का। अब अपने शरीर को ही खाकर भूख-प्यास मिटा सकते हो। फिर ब्रह्मा ने कहा उसका शवरूपी देह अक्षय कर दिया गया है यह प्रतिदिन पुष्ट बनेगा और सौ वर्ष की अवधि तक वह अपने मांस को खावे जब इस वन में अगस्त्य महर्षि तपस्या करने आयेंगे तो वह इस कुत्सित आहार से रक्षा कर उद्धार कर देंगे। उन महर्षि का महिमा अगाध है”। अगस्त्य आगे बढ़े “इसी पर साक्षात्कार के अनन्तर अपना परिचय देते हुए मैंने उस श्वेत का कुत्सित आहार से उद्धार किया इसके लिये कृतज्ञता स्थापनाई श्वेत ने भी यह आभार अनेक वस्त्र, धन तथा गायें प्रतिग्रह में दी उस स्वर्गीय राजा का मानुष देह नष्ट हो गया और वह दिव्य विमान पर चढ़कर स्वर्ग में चला गया”।

३६	दण्डकारण्योत्पत्तिवर्णने दण्डराजकथानकम्	३५४
	गृध्रोल्कयोर्विदिदमानयो रामसमीपे गमनम्	३५६
	गृध्रस्य पूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनम्	३६१
	रामस्य कान्यकुब्जे वामनस्थापनप्रतिष्ठा	३६३

दण्डकारण्य की उत्पत्ति के विषय में राम के पूछनेपर अगस्त्यजी ने कहा कि मनु के इक्ष्वाकु और इक्ष्वाकु के कई पुत्र हुए जिनमें दण्ड नामक पुत्र कनिष्ठ था। भविष्य में दण्डपतन के विशेष चिन्ह उसके शरीर पर देखकर इक्ष्वाकु चिन्तित था अन्त में उसे विन्ध्य और नील पर्वत के मध्य की भूमि का राजा बना दिया और दण्ड को मधुमत्सुरी को बसाते विशेष विलम्ब नहीं हुआ और दण्ड ने विशेष शान्तिपूर्वक अपना राज्य किया। एक दिन वह दण्ड राजा महर्षि भगवान् शुक्रजी के आश्रम में अविकल और एकान्त में उनकी कन्या को देख काम व्याकुल हो उस अनन्यसुन्दरी से अपने हृदय को प्रस्तुत करने लगा कन्या का नाम अरजा था। अरजा ने कहा कि (पिता) शुक्राचार्यजी की पिता आज्ञा के कोई काम करना दोष का कारण होता है फिर वह स्वयं राजा शुक्र का शिष्य है उसे तो भगवान् शुक्राचार्य से अनुमति लेकर ही इस और बढ़ना चाहिये। उस कामान्ध दण्डराजा ने उसी समय अरजा के साथ बलात्कारकर उसे वहीं छोड़ अपनी राजधानी को प्रस्थान किया। जब रौंती हुई अरजा मुनि के आश्रम पर आई तो उसने अपने पिता से सारी बातें कही। क्रुद्ध शुक्राचार्य ने उस दण्डराज को जनपद सहित नष्ट होने का शाप दिया और अरजा को सौ वर्ष तक विरजा ( बिना रजोधर्म के ) रहने का वर देकर वहीं रहने को कहा मुनि शाप से आज भी दण्डकारण्य वैसा ही सघन वन है। इसके बाद मुनि ने राम को नित्यक्रिया के लिये कहा क्योंकि सन्ध्याकाल उपस्थित हो बुका था। राम ने जैसे ही अपना नित्यकृत्य सम्पादन किया तो दो पक्षी

जिनमें एक गीध और दूसरा उल्लू अपने स्थान की समस्या को लेकर विचार करते हुए राम के पास आये और अपना-अपना पक्ष रक्खा। राम ने सभी मन्त्रियों को बुलाकर मन्त्रणा की। इसपर राम ने गीध और उल्लू दोनों को उनके निवास के विषय में पूछा। गीध ने कहा जब से उस पृथ्वीपर बोंबों राजा लोग शासन करते आ रहे हैं तब से ही उसका निवास है उल्लू ने कहा जब से पृथ्वी पर वृक्ष आदि वनस्पतियों की उत्पत्ति है तब से ही यह रहता है राम ने सचियों को फिर धर्म की व्याख्या करते हुए वृद्धों की उपस्थिति और उनका धर्म प्रतिपादक होना और सत्ययुक्त धर्म का छल रहित होने का विचार दिया "न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्। नास्ति धर्मो यत्र न पान्ति सत्यं न तत्सत्यं यच्छलमभ्युपैति।" १०१॥ इसपर मन्त्रियों ने उल्लू के ही प्रथम वास का निर्णय दिया और उसका अन्तिम निर्णय राजा को ही करने का अधिकार कहकर राजधर्म की प्रशंसा की राम ने पुराने सृष्टियुगों का क्रम बताया और कहा सूर्य, चन्द्र, अन्तरीक्ष, पृथ्वी, समुद्र जब प्रलय के अनन्तर भगवान् के जठर में समा गये और भगवान् योग-निद्रा में मग्न होगये तो हजारों वर्षों के बाद कल्प के आरम्भ में प्रजा जठर से निकले और सृष्टि करने की इच्छा से पृथ्वी, वायु, पर्वत, वृक्ष, सम्पूर्ण प्राणि-मनुष्य, सर्पराजि के जन्म, जरायुज, अण्डज, इनको बनाया उनकी के माने भगवान् विष्णु के शरीर से मधुकैटभ हुए इसके बाद मधुकैटभ का वध कर शान्ति स्थापित की और पृथ्वी के प्राणिमात्र के लिये शान्तिपूर्ण जीवनयापन करने का मार्ग प्रशस्त किया मधुकैटभ दोनों देवों के मेद से पृथ्वीको भगवान् ने बनाया वही इसका नाम देदिनी हुआ इसलिये उल्लू का ही घर है गीध का घर पर नहीं और गीध को दृष्टनीय घोषित किया गया। उसी समय आकाशकण्ठ से हुई है राम ! पूरे नवोक्कसे जड़े हुए गीध को मन मारो यह गीधन इतना उड़ारा गया बड़बड़ नामक राजा है। इसके घर आकर गीधन ने भोजन

मांगा। ब्रह्मदत्त ने पावथर्यादि से सत्कार कर स्वयं ही आकर आहार किया और मुनि को गौण कर दिया। क्रुद्ध मुनि ने उसे गीघ होने का शाप दिया जब राजा ने अपनी भूल के लिये क्षमा मांगी तो दयालु ऋषि ने रामावतार में उसके उद्धार होने के लिये कहा। उसी समय गीघ की योनि छूट गई और राम को साधुवाद देता हुआ दिव्य शरीर धारण कर वह देवलोक चला गया। राम ने उलूक को घर में रहने को कह कर सन्ध्योपासन कर अगस्त्यजी के आश्रम में जाने का प्रस्ताव कहा। जब रामभद्र अगस्त्यजी के आश्रम में गये तो तानाप्रकार के व्यक्तियों से युक्त सुस्ताडु मधुर अश्वों की पूरी सामग्री से उनका प्रतिष्ठा किया गया। वह सब प्रकार के फलमूल, शाक आदि से रूम होकर रात्रि में ही विश्राम कर प्रातःकालिक क्रिया कर ऋषि से आज्ञा लेने को आये। आश्वों को आसूलाते हुए प्रेम से गद्गद् हो महर्षि अगस्त्य ने राम को पतितपायन संज्ञा देते हुए न्याय, शान्ति, धर्म और प्रेम की प्रतिष्ठा कर दीर्घकाल तक राज्य करने का तारीख दी। फिर उपस्थित ऋषियों को प्रणाम-अभिवादन कर राम ने एक पर आरुढ़ होकर अयोध्या को प्रस्थान किया। अयोध्या पहुंचकर नृपति प्रतिहारी को लक्ष्मण और भरत को बुलाने के लिये कहा। जब भरत और लक्ष्मण आये तो श्री रामभद्र ने राजसूय-यज्ञ का प्रस्ताव रक्खा और नई सभ व्यवस्था यथा विधि करने की आज्ञा दी। भरत ने कहा हे महाराज ! आप से सभ को निदर्शन मिलना है आपके वश में सब राजागण हैं। राजसूय यज्ञ से अधिक आवश्यकता है आपके द्वारा धर्मराज के प्रवर्धन की; कारण राजसूय यज्ञों में दिव्य और पार्थिव सभी देव समुदाय और मनुष्य समुदाय का नाश हमने पुराणवृत्तों से मालूम किया है। इसपर राम ने राजसूय यज्ञ न करने और धर्मपूर्वक शासन करने की भरत की बात का अनुमोदन किया और भगवान् धामन की कान्यकुब्ज में स्थापना करने की तद्विधि कर धर्ममार्ग से शासन स्थापित कर अपने यश विस्तार का उपक्रम किया।

४० विभीषणवृत्तजिज्ञासया भरतेन सह रामस्य लङ्काम्प्रतिगमनम्	३६४
वनवाससमयेऽध्युषितस्थलानां भरताय दर्शनम्	३६५
सुग्रीवंगृहीत्वा लङ्काम्प्रतिगमनेवृत्तवर्णनम्	३६७
सरमारामसम्वादवर्णनम्	३६८
रामकृताश्रीरामेश्वरस्तुतिः	३७१
ब्रह्मरामसम्वादः	३७३

भीष्मजी ने पूछा है विप्रर्षे ! भगवान् रामचन्द्रजी ने कान्यकुब्ज में यामन की स्थापना कैसे की तथा उससे क्या प्राप्त किया इसे विस्तारपूर्वक कहिये । जिस भगवान् राम को संसार स्नेह से देखता है तथा जिस राज्य में सम्पूर्ण प्रजा धर्मपूर्वक आचरण करनेवाली हुई उस भगवान् की कीर्ति, जो सब वर्गों को सुखप्रद है, उसे विस्तार से कहिये ।

भीष्मजी के प्रश्न को सुनकर महर्षि पुलस्त्यजी ने कहा कि हे नृप ! धर्मवत् में स्थित भगवान् राघव ने जो किया उसे एकाम्र मन से सुनिये । किसी समय में राज्यासन पर स्थित हुए भगवान् ने विचार किया कि राजा विभीषण लङ्का में कैसे राज्य करता है । मैंने जो चन्द्रार्ककालिक (चन्द्रमा और सूर्य की अवधि पर्यन्त) राज्य विभीषण को दिया है वह देवताओं के प्रतिभूत तथा विनाश का लक्षण है । उस विभीषण के राज्य करते रहने से ही मेरी स्थिति कीर्ति शायतन रहेगी । उस पापिष्ठ रावण का वध मैंने देवकार्यार्थ ही किया था । धन्य मुझे स्वयं जाकर देखना चाहिये तथा उसे धर्मपूर्वक राज्य की शिक्षा देनी चाहिये जिसमें वह शाश्वत स्थिर रहे । अमित पराक्रमी भगवान् राम के इस प्रकार चिन्तन करते हुए ही भरत का आगमन । भरत का भगवान् से पूछना कि हे देव ! थाय क्या चिन्तन करते हैं उसका रक्षय मुझे कहिये । आन

किसी देवकार्य से, अथवा घराकार्य से या स्वयं के लिये चिन्तन करते हैं क्या ? इस प्रकार भरत के पूछने पर भगवान् ने कहा तुम्हारे से कुछ झिपा नहीं है कारण तुम तथा लक्ष्मण तो मेरे प्राणरूप हो। जिसके लिये मैंने दशमीव रावण का वध किया वह विभीषण कैसे है इसकी मुझे महती चिन्ता है। इसलिये मैं लङ्का में जाऊँगा जहाँ वह शासन करता है। वहाँ जाकर विभीषण को तथा वस पुरी को देखकर उसको कार्य ( धर्मशासन का ) कहकर एवं वानरेश्वर सुग्रीव को तथा सम्पूर्ण वसुधा को देखकर आऊँगा। इस प्रकार भगवान् के कहनेपर भरतजी ने कहा मैं भी आपके साथ चलूँगा। हे महाबाहो ! आप ऐसा कीजिये कि सौमित्रि ( लक्ष्मण ) यहाँ रहें। भरतजी के ऐसा कहने पर रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा हमलोग जबतक न आ जाय तबतक तुम सबकी रक्षा करो। इस प्रकार लक्ष्मण को आदेश दे पुष्पक विमान का ध्यान किया। तदनन्तर पुष्पक पर सवार हो भरत के पुत्रों के राज्य में जाकर उनकी नीति देखकर पूर्व दिशा में गये जहाँ लक्ष्मण के पुत्रों के राज्य को देखा इस प्रकार उनके पुरों में रात्रि तक भगवान् रघुनन्दन रहे। तत्पश्चात् उसी विमान से भगवान् का श्रुति सेवित प्रयाग में पहुँचना। वहाँ भरद्वाज को अभिवादन कर अग्नि के आश्रम में जाना वहाँ मुनि से बातचीत कर जनस्थान में जाना तथा भरतजी से कहना कि यहाँ ही सीता का हरण हुआ था एवं उस दुष्ट रावण ने जटायु को मारा था जो अपना पितृसखा था। यही पर हमारा कुबुद्धि कपन्ध के साथ युद्ध हुआ था उसीने कहा सीता तो रावणालय में है तथा आप शृङ्गमूक पर्वत पर सुग्रीव नामक वानर हैं वहाँ जाइये वह आपकी सहायता करेगा। यह वह तलाई है जहाँ लक्ष्मण ने मुझसे कहा था हे पुरुषव्याघ्र ! आप शोक मत कीजिये मैं आपका आज्ञाकारी श्रुत्य हूँ मुझे पूज्या मैथिली सीता प्राप्त होगी। यही पर मेरे वार्षिक मास शत वर्षों के समान बीते। यही पर सुग्रीवार्थ मैंने पाण्डि का वध किया। यह जो आगे स्थान है यही वालि-पालिब किष्किन्धा है

जहाँ धर्मात्मा वानरेश्वर सुग्रीव रहते हैं। ऐसा कहते हुए भगवान् राम का भरत के साथ किष्किन्धा में प्रवेश। वहाँ सुग्रीव ने भगवान् को पादार्च्य दे कुशलक्षेम व कार्य के लिये पूछा और उन्हें सुन्दर आसनों पर बिठाया। इस प्रकार धर्मिष्ठ रघुनन्दन के सभास्थित होने पर अङ्गद, हनुमान्, शृङ्गराज, नल, नैल, पाटल, गज और गवाक्षादि वानरों का सेनासहित आना। अन्तःपुर से हमा और तारा आदि रानियों का दासियों के साथ आगमन। तारा और वानरियों का भगवान् राघव को प्रणाम कर कहना कि हे देव ! वह देवी कहाँ हैं जिनके लिये आपने रावण का वध किया हम उनको आपके साथ नहीं देख रहे हैं। हे रघुनन्दन ! आप उनके बिना शोभित नहीं होते हैं। आपके बिना साध्वी जानकी कैसे रह रही हैं क्योंकि आपके तो अन्य भार्या ( स्त्री ) भी नहीं हैं। इस प्रकार चन्द्रमुखी तारा के वचन सुन कहनेवालों में श्रेष्ठ राजीवलोचन भगवान् राम ने कहा हे विशालाक्षि ! “कालो हि दुरतिक्रमः” काल की गति विचित्र है। तदनन्तर सामने आकर सुग्रीव का भगवान् से पूछना कि आपलोग किस कार्य से यहाँ आये हैं वह कहिये। इसपर भगवान् से प्रेरित भरतजी ने कहा कि राघव को लङ्का में जाना है। तब सुग्रीव ने कहा ठीक है हम भी चलेंगे। पश्चात् पुष्पक पर सवार हो सुग्रीव सहित भगवान् का समुद्र तट पर आना। यहाँ भगवान् ने भरत से कहा यहीं पर राक्षसेश्वर विभीषण चार मन्त्रियों के साथ जीवितार्थ प्राप्त हुआ था जिसे लक्ष्मण ने लङ्का के राज्य के लिये अभिषिक्त किया था। यहीं मैं समुद्र से पार जाने के लिये तीन दिन तक स्थित रहा पश्चात् चौथे दिन मुझे क्रोध हुआ तो मैंने धनुष चढ़ाया तब भयभीत समुद्र मेरी शरण में आया। शरण में आया देख सुग्रीव ने कहा हे राघव ! इसे क्षमा कीजिये। विनयशील समुद्र द्वारा सेतुबन्ध का उपाय बताना। पश्चात् तीन दिन में वानरों द्वारा सेतु धान्धना। यह देखो स्वर्गप्राकारवाली लङ्का यहीं पर चैत्रशुक्ल चतुर्दशी को महायुद्ध हुआ था जो



पड़वालीस दिन तक चला यही रावण का वध हुआ। यहींपर सब देवताओं के समक्ष अग्निदेव में प्रविष्ट हो सीता का शुद्ध हो आना तथा पिता की आज्ञा से अयोध्या जाना। इस प्रकार विमान में बैठे करते देख विभीषण के दूतों ने जाकर राम के आने की सूचना उसे दे दी। रामागमन को सुन विभीषण ने लङ्कापुरी को सजवाया तथा मन्त्रियों के साथ वह राम के सम्मुख स्वागतार्थ आया। अष्टाङ्ग प्रणिपात से राघव को प्रणाम कर विभीषण ने कहा आज मेरा जन्म सकल है आज मेरे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो गये हैं। तत्पश्चात् भगवान् का भरत सहित लङ्का में प्रवेश। पुरवासियों द्वारा राम को अनेक प्रकार की भेंट देना। वहां राक्षसालय में तीन दिन तक रहना। चतुर्थ दिन राम के सभास्थित होने पर केकसी ने विभीषण से कहा मैं भी राम को देखूंगी। तब विभीषण ने माता से कहा आप नवीन वस्त्र पहन लीजिये तथा चन्दनयुक्त अर्घ्यपात्र लेकर राजपुत्र का दर्शन कीजिये। ऐसा कहकर विभीषण का राम के पास जाना तथा अपनी माता को दर्शन देने के लिये कहना। तब रामचन्द्रजी ने कहा कि मैं ही मातृदर्शन की आकाङ्क्षा से उनके समीप जाऊंगा। श्री राघव का केकसी को प्रणाम करना तथा कहना जैसे मेरी माता कौरव्याजी हैं वैसे ही आप भी हैं। इसपर केकसी ने कहा चिरञ्जीवी रहो सुखी होयो। पश्चात् विभीषण की भार्या सरमा ने भगवान् से कहा कि आपकी प्रिया जानकी प्रसन्न तो हैं ? मैं सीता के चरणों को नित्य स्मरण करती हूँ उस देवी को कब देखूंगी। तब भगवान् ने कहा हे शोभने ! तुम जाओ। पश्चान्तर भगवान् राम का विभीषण को धर्मराज्य की शिक्षा देना। विभीषण ने कहा नरन्यास ! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। इतने में ही बीच में वायु ने राम से कहा यहाँ वैष्णवी मूर्ति है जिससे पहिले बलि राजा बन्धन को प्राप्त हुआ। आप उसे लेजाकर कान्यकुब्ज में स्थापित कीजिये। वायु के अभिप्राय को मानकर विभीषण ने उन्हें रत्नों से अलङ्कृत कर भगवान् राम को अर्पित किया।

राघवेन्द्र ने उस मूर्ति को पुष्पक विमान में रख लिया। पश्चात् भगवान् राम विमान पर सवार होना। आकाशस्थित विमान पर चढ़े राम को विभीषण विश्वास दिलाना कि हे विभो ! आपने जैसा कहा है वैसा ही होगा। परन्तु हे राजे इस सेतु से सम्पूर्ण मानव यहाँ आकर बाधा करेंगे जिससे आपकी आशा होगी। रामसेश्वर के वचन सुन भगवान् ने धनुष से सेतु के टुकड़े कर दिये। पक्षपात में आकर आशुतोष भगवान् भूतभावन रामेश्वर की पूजा की। तब भगवान् ने कहा हे राम ! आपका कल्याण हो। देवाधिदेव शङ्कर के असुतोषम रूप सुनकर भगवान् रामचन्द्र ने रामेश्वर की स्तुति की। पश्चात् वहाँ से भगवान् का पुष्पक को गमन जहाँ गायत्री सहित ब्रह्माजी को नमस्कार कर स्तुति करना। स्तुति से प्रसन्न हुए ब्रह्माजी का भगवान् राम से कहना कि हे महाविभो ! मैं विष्णु हूँ आप वो देवकार्यान्ध मनुष्य शरीर धारण कर अवतरित हुए हैं। जाइसी के दक्षिण तट पर वामन देव को स्थापित कर अयोध्या में जाकर सुरलोक में जाइये। विश्वामह ब्रह्माजी को प्रणाम कर राम पुष्पक पर सवार हो मधुरापुरी में पुत्र सहित शत्रुघ्न को देव प्रसन्न हुए। शत्रुघ्न ने पुत्रों सहित रावण को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वहाँ भगवान् पाँच दिन रहे। वहाँ से भगवान् राम का मथाङ्गुल में गङ्गा तीर पर पदचक्र भगवान् वामन की स्थापना करना। ब्राह्मणों को भगवान् वामन की वैनन्दिनी पूजा करने की आज्ञा देना तथा लहू से श्रावण हुए धन को विषों को दक्षिणा में देना एवं वही है सुगीत को हितिहन्ता मेत्रना तथा पुष्पक पर सवार हो पुनः अयोध्या आना। पुष्पक विमान को भगवान् का आदेश कि तुम अब धनेश्वर के पास ही रहो।

पुष्पकजी ने कहा कि हे भीष्म ! इस प्रकार तुम्हें भगवान् रामचन्द्र के कथायोग से वाचन की उपनिषद् कहो धन क्या मुनने की इच्छा है।

भीष्मस्य पुलस्त्यम्प्रति विष्णोर्नाभिपद्मोत्पत्तिवर्णनम् ३७४

सृष्टिविषयवर्णनम् ३७५

कृतादियुगवर्णनम् ३७७

संहारकालीनभगवत्स्थितिवर्णनम् ३७९

भगवन्मार्कण्डेयसम्भादे भगवता स्वात्मनो माहात्म्यवर्णनम् ३८१

भीष्मजी ने पुलस्त्य ऋषि से यामनावतार का माहात्म्य सुनकर भगवान् पु के सम्बन्ध में और आवश्यक जिज्ञासायें की। भगवान् विष्णु के नाभि-  
उ का रहस्य उसमें से पतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति और उसका पाद्म महाकल्प  
संसार के परामय होने का प्रभाव तथा सोये हुए शेषशायी भगवान् का  
रक्षेत्र पर प्रभाव आदि के विषय में तथा सृष्टि के प्रलय के बाद भगवान् के  
निमीलन का काल तथा सृष्टि की उत्पत्ति और उसकी रचना के प्रकार के  
ल्य में पूछा। पुलस्त्यजी ने भीष्मजी के प्रश्न की भगवद्गुणानुवाद सुनने  
लेये साधुवाद देते हुए प्रशंसा की भगवान् के सम्बन्ध में इत्यन्ता बुद्ध भी  
सकना सामर्थ्य के बाहर की बात बताते हुए जैसा भगवान् वेदव्यासजी ने  
नी योगनिष्ठा के द्वारा उस क्रम को बताया था वही कहना आरम्भ किया  
भगवान् सबके पूछे हैं सम्पूर्ण संसार के रहस्यरूप, अभ्यात्म से पिपासुओं के  
छिये अभ्यात्म, विकर्मीजन के छिये नरक देनेवाले, अधिदैव, अधिभूत सब ही  
बड़ गुणातीत प्रभु हैं कर्ता, कारक, जहाँ से बुद्धि का उद्भव होता है जो क्षेत्रज्ञ,  
प्रणव, पुराणपुरुष, शास्त्रा पञ्चविधप्राण, अक्षरतत्त्व, काल, पाक, यज्ञ, यष्टा  
और अधीत सभी भावों द्वारा वही अभिव्यक्त होते हैं सम्पूर्ण विश्व जिससे  
प्रयभाव से विवर्त है वही विश्वपति नारायण तत्त्व है—

यत्सत्यं यदनृतमादिमध्यभूतं यच्चान्त्यं निरवधिकं च यद्भविष्यम् ।

यत्किञ्चिद्वरमचरं यदस्ति चान्यत्सर्वं तत्पुरुषवरः प्रधानभूतः ॥

जो सत्य अनृत आदि मध्य भूत है जो अन्त्य है निरवधिक तथा जो भविष्य है जोकुल चर अचर मात्र और उससे अन्य हैं वह सब प्रधानभूत पुरुषवर ही है। सत्ययुग के समय में सत्य, प्राणिसत्त्व और धर्म जैसे सहज गुणों का आवागमन प्राणिमात्र में अधिकाधिक होता है यह चार हजार वर्षों का समय है सभी वर्ण अपने-अपने कार्यों में ईश्वर समर्पण बुद्धि से लगे रहते हैं यह युग सम्पूर्ण गुणों के धार्मिक वातावरण के मानदण्ड की कसौटी है इसकी सन्ख्या २०० वर्ष की है इसमें धर्म चतुष्पाद होता है और अधर्म एक पाद रहता है। इसके बाद तीन हजार वर्षों का त्रेता युग है इसकी भी २०० वर्ष की सन्ख्या की अवधि है इस काल में धर्म के तीन पाद रहते हैं और अधर्म के दो पाद होते हैं। इस काल में लोभ से चतुर्वर्णों में विकृति आती है जिनमें सहनशीलता का अभाव और दौर्बल्य अधिक रूप में परिलक्षित होते हैं बाद में द्वापर की गति विचित्ररूप से ही देव निर्मित है। इसका काल दो हजार वर्षों का है इतने ही २०० वर्षों के काल का सन्ख्या समय है। इस समय भी रजोगुण से पराभूत होकर प्राणीगण स्वार्थी अधिष्ठित होते हैं जो स्वभाव से ही दुष्ट, परवश्वक और ओछे स्वभाव के पुरुष अधिष्ठित होते हैं इस काल में धर्म दो पाद से और अधर्म तीन पाद से रहता है। कलि धर्म के लिये भयावह है सैकड़ों धर्म के विपरीत कार्य हो जाने से यह उत्तरोत्तर हसिमान होगा ब्रह्मण्यभाव को लोग तिलाञ्जलि दे देंगे और आक्षिप्ता सरा के लिये लुप्त हो जायगी यह काल एक हजार दो सौ वर्ष का सन्ख्याकाल को लेकर है। अब धर्म का एक पाद और अधर्म का चार पाद रह जाता है इसमें वर्ण धर्मों का विपर्यय हो जाता है तपस्वी के लक्षण वेष में कामी पुरुष मिलते हैं सभी बिना भ्रम किये लाभ उठानेवाले होजाते हैं न कोई साधु है और न कोई सत्यवक्ता; ब्राह्मण लोग नास्तिक और सभी वर्ण अहंकारी और स्नेह हीन बन जाते हैं सभी ब्राह्मण शूद्रों के समान आचरण करने लगते हैं। यह चारह हजार युगों की पूर्व निर्मित व्यवस्था है। हजार वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है। दिन के बीतने पर सम्पूर्ण

प्राणिजगत् की निर्वृत्ति देखकर भगवान् संहारबुद्धि से काल सम्पूर्ण देव, दानव, मनुष्य यक्ष, राक्षस, पक्षी, गन्धर्व, अप्सराओं, सपौ, पर्वता, नदियों और पशु क्रिमि, कीट और पतङ्ग सबको संहार करने के लिये पञ्चभूतों में भारी वैशत ( हिंसन ) परिवर्त्तन करते हैं, सूर्य प्राणियों के ओज का और प्राणीमात्र के प्राणों का वायु संहारण करते हैं अग्नि अति प्रचण्डरूप में प्राणिमात्र को जला डालती है और मेघ अति उग्र रूप में वर्षता है सर्वमूर्ति नारायण अपनी प्रखर फिरणों से समुद्रों को सोख लेता है। सम्पूर्ण नदी, नद समुद्रों का रस लेकर पृथ्वी को पार कर रसातल में ले जाता है सम्पूर्ण प्राणियों का सत्त्व भगवान् पुरुषोत्तम ले लेते हैं वायु सारे संसार को अपने ऋकभोर हड़कम्प मचा देनेवाले हिलोरीं से हिला देते हैं सम्पूर्ण प्राणियों की सत्त्वावस्था को भगवान् मुहूर्त्तमात्र में ही संवरण कर लेते हैं। इस प्रकार सभी प्रकार से संवरण कर भूतभावन भगवान् युगान्त में उस विभूति को स्वयं धारण कर लेते हैं फिर हजारों प्रकार की घर्षा के रूप में भगवान् महाघन धनकर बरसते हैं इसके दिव्य जल से सारी पृथ्वी छप हो जाती है सूर्य, वायु और आकाश के नष्ट होजाने पर सम्पूर्ण सूक्ष्म जगत् के कारण कलापों को अपने में सङ्कुचित (समेत) कर भगवान् सोते हैं। फिर अनन्त युगों के बाद नारायण भगवान् ने सृष्टि परिकल्पना के लिये 'एकोऽहं बहुसाम्' का सङ्कल्प किया जिससे सात्त्विक व मानसिक सृष्टि से भिन्न-भिन्न अङ्गों से पुरुष यक्ष के लिये ऋत्विक्, होता, अद्वैत्य, ब्राह्मणाच्छंसि, स्तोता मैत्रावरुण, पोता, अग्नीध्र, वाजुप, अच्छावाक्, सामग हुए। वेद और उपनिषत्क्रियाओं का आविर्भाव हुआ। उसी समय मार्कण्डेय जिन्हें पहले विराट् पुरुष ने अपने मुख में निगल लिया था धीरे से मुँह से बाहर निकले। उनसे सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार देखा और उन्हें मन में भय की भावना उत्पन्न हुई। अपनी विचित्र स्थिति को देख उन्हें शंका हुई और उन्हें शोक हुआ उन्होंने पुराण पुरुष को सोते देखा और फिर वदस्थ हो गये। वहाँ एक विचित्र ही बाहर के वातावरण

से दूसरी स्थिति देखी सर्वत्र पृथ्वी पुण्यतीर्थों के जल से युक्त है बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों की क्रियापूर्ण की जा रही है चारों आश्रम पूर्ववत् ही हो रहे हैं फिर वे बाहर निकले और पीपल के पेड़ के पत्ते पर वालक को सोये हुए देखा और अपनेको अकेला देख वे बहुत विस्मय में पड़े और वालक को अभिवादन करते हुए अपना विस्मय कहा। फिर उस वालक ने मार्कण्डेय को अभय दान दिया मार्कण्डेय और वालमुकुन्द भगवान् के उत्तर-प्रत्युत्तर और मार्कण्डेय को पूर्वजन्म की सारी कथा विस्तार से समझाई जिससे भट्ठा से उनका शिर तल हो गया और इस सारी योजना के सम्बन्ध में पूछताछ की। भगवान् ने सम्पूर्ण चर अचर सृष्टि में अपना ही ओज, सत्त्व और स्थिति बतलाई। फिर मार्कण्डेय भगवान् की कुक्षि में प्रवेश कर गये भगवान् ने बहुत समय तक कठिन तपस्या की और महाभूतों का विश्व के चिरनिर्माण के लिये चिन्तन किया साथ ही समुद्र को बड़े जोर से हिलाया जिससे सूक्ष्म छिद्र से वायु का निकाल हुआ आन्तरिक हिलोरों से यह बढ़ता ही गया उसके हवा के साथ सङ्घर्ष होने से अग्नि की उत्पत्ति हुई उस अग्नि ने जल की मात्रा को बहुत बढ़े विस्तार से गुगुग दिया सारे जलीय स्तर के पट जाने से आकाश स्वतः निकल आया इस प्रकार समुद्र के छिद्र सम्भूत आकाश, आकाश से वायु और सङ्घर्ष से अग्नि हो गये फिर बहुरूप भगवान् ने ब्रह्मा के प्रादुर्भाव की चिन्ता की और वे जलक्रीड़ा करने लगे त्रिमसे उनकी महती नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई जो रत्नविराजे द्वारों रत्नोंवाला, रत्नोगुग से रहित सूर्य की आभा से युक्त हिरण्यमय रूप था।

पद्ममध्यात् ब्रह्मण उत्पत्तिकथनम्	३८३
मधुकैटभविनाशकथनम्	३८४
कपिलयोगाचार्योत्पत्तिकथनम्	३८७
दक्षादिप्रजापत्युत्पत्तिवर्णनम्	३८६
तारकामयसङ्ग्रामवर्णनम्	३९१

उसमें से सम्पूर्ण लोकों को रचनेवाले ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ वही पद्म रसा या पृथ्वी के नाम से कहा जाता है जो पद्म केरार है वे सम्पूर्ण पर्वत हैं इनके बीच में जम्बूद्वीप है उससे बाहर की पत्तियों में श्लेष्मादि देश हैं नीचे के भाग के कमलदलों में दैत्य, असुर और नाग इनका वासस्थान है इन्हीं के बीच में रसातललोक है जहाँ महापातकी रहते हैं भगवान् की रचना के लिये पृथ्वी पुष्कर-सम्भवा हुई इसीलिये यह प्रादुर्भाव भी पुष्कर नाम से प्रसिद्ध है। उपस्था करते भगवान् ब्रह्मा को मधु और कैटभ नामक दैत्यों ने देखा उन दोनों ने ब्रह्मा को उनके उत्पत्ति करनेवाले के सम्बन्ध में पूछा और अपनी बुद्धि-वृद्धि की बात कहकर उनके साथ युद्ध की चुनौती दी। पद्मस्थित ब्रह्मा ने अपना परिचय अनन्त शक्तिधारी शेषशायी विष्णु से उत्पन्न सृष्टि का सर्जन करनेवाले ब्रह्मा के रूप में दिया और उनके और भी अधिक राजसी तथा कामसी भाव दिखाने पर ब्रह्मा ने वासुदेव भगवान् के द्वारा उनके नाश होने की बात कही। भगवान् विष्णु ने सोते-सोते अपना हाथ फैलाया और उन्हें अपने बलवान् हाथों में जकड़ लिया अब अपना वश न चलते देख भगवान् से मद देने को कहने लगे। भगवान् ने कहा आयु समाप्त होनेपर जीवित रहना चाहते हो इस समय कुछ भी शक्य नहीं फिर भी उनके अनुरोध पर कलि में भगवान्





आदि सम्पूर्ण चतुरङ्गिणी सेना के साथ युद्ध के लिये पूर्ण सज्जित हो गये इसी समय ऐसा मालूम होता था कि देवगणरूपी सूर्य को उगते ही असुररूपी मेघमालायें अपनी घनघोर घटाओं से आच्छन्न कर उन्हें शक्तिहीन बना देंगी । देव लोग पूरी तैयारी कर युद्ध में आ डटे अपने विरोधियों द्वारा इतनी अधिक सज्जा होने पर देवगण भी अपने-अपने आयुधों को तैयार कर युद्ध की चुनौती लेने के लिये पूरी तैयारियाँ करने लगे ।

४३	देवसैन्यानां तारकासुरसैन्यैः सह युद्धवर्णनम्	३६४
	उर्वस्पोरोः सकाशादौर्वानलोत्पत्तिवर्णनम्	३६६
	देवासुरसङ्ग्रामवर्णनम्	४०१
	कालनेमियुद्धवर्णनम्	४०७
	कालनेमिवधवर्णनम्	४०९

आदित्य, वसु, रुद्र, अधिनीकुमार, लोकपाल, गरुड़, देव, गन्धर्व और क्षत्रियों आदि से युक्त इन्द्र अपने सुन्दर रथ पर मातलि सारथि के साथ युद्ध में परिचित हो गये इसके साथ अन्य देवगण भी अपनी-अपनी सम्पूर्ण शस्त्रसामग्री सज्जित होकर आगये जब सब कोई देवगण आजुटे तो बृहस्पतिजी ने देवताओं को और हुक्माचार्यजी ने दैत्यों को आशीर्वाद दिया । दोनों ओर से युद्ध जीतने की उम्मीद से तुमुल युद्ध हुआ । शनैः यह युद्ध भयंकररूप धारण करने लगा सम्पूर्ण देव सेना के अच्छे-अच्छे योद्धागण काम आने लगे वधर मय ने अपनी तामसी हामाया के प्रभाव से ओर्व बहि से इन्द्र की विजय को मिट्टी में मिलाना प्रारम्भ किया और राक्षस लोग फिर से युद्ध करने के लिये उठ खड़े हुए सभी देवगण अग्नि के ताप से प्रसन्न चन्द्र की शीतल किरणों के जलवाले वड़ांग में चले गये । इस जटिल समय में इन्द्र के पूछने पर वरुण ने उर्व ऋषि के सम्बन्ध में

यथाते हुए कहा कि उन्हें सब दुःख कहने से वह बहुत अधिक सहायक हो  
 सकते हैं उनके पास सब मुनिगण देवर्षि सहित देवचन्द्र गये और केवल  
 उनसे पुत्रोत्पादन के लिये आग्रह किया उस समय उर्व ने अपने ऊरु को  
 एक द्वां से मन्थन कर प्रसवारणि को पैदा किया वह तत्काल उत्पन्न हो  
 गया । यह घटित चुरी तरह भूल से न्याकुल हो पिता से उसे सन्तुष्ट करने के लिये  
 आज्ञा मांगने लगा उसी समय बड़ी तीक्ष्ण ज्वालायें निकलने लगी जिससे  
 आशङ्कित होकर प्रजा ने उर्व के पास आकर उसे सहायता करने का वचन  
 देते हुए शान्त करने का अनुरोध किया । ऋषि ने उसके रहने आदि के विषय में  
 प्रजा से पूछा जिनका उत्तर देते हुए प्रजा ने कहा कि यह समुद्र में निवास  
 करेगा और वारिह्य हवि का पान करता हुआ रहेगा इसके बाद उर्व की  
 आज्ञा से वह यही चला गया । हिरण्यकशिपु ने उर्व की यह प्रत्यक्ष छीला देखकर  
 उन्हें अपना गुरु बनाने का प्रस्ताव किया इसे उर्व ने स्वीकार कर लिया । यम  
 इन्द्र ने कहा कि यह दानवों की माया शीघ्र ही बरान में नहीं आसकती इसके लिये  
 मुझे मेरा माथी चन्द्र दे शीजिये उसके साथ यादोगण जलजन्तुओं की सहायता  
 से इस माया को समाप्त कर दूंगा । इन्द्र ने तथाज्जु कहकर चन्द्र को शिशिरावृष्टि  
 कान में डालने के लिये कहा जिससे आसुरी माया का शमन हो और जलजन्तु  
 देवगण वचा लिये जाय इसपर चन्द्र ने क्षिप्रवर्षों की ओर यदग ने समुद्रों को  
 जल डाल दिया । परम ने पार्वती माया की रचना की इससे सर्वत्र पर्यंत हो  
 गये और इन्द्र के आज्ञाकारी यदग तथा चन्द्रमा की माया अन्तर्हित हो  
 गये तब भगवान् विष्णु ने युद्ध देवने की कामना से अग्नि और वायु को आज्ञा  
 दी कि तुम दोनों अपनी-अपनी माया को छेड़ो । उनके वेग से पर्यंतमयी माया  
 धरिभूत न टिक सकी और जलकर बहने लगी इन्होंने देव सेना को  
 उलाया तो इनका भी टिकाना न रहा । इसपर सब देवगण जयजयकार करने  
 लगे जब काश्यादेवि नामक देव ने नई माया छेड़ाई और भयङ्कर हमारों दिए

मुंह हाथोंवाले रूप का विशाल देह धारण कर देवताओं को फिर चिन्तित बनाने लगा। उसने युद्ध में मृत सभी दैत्यों को उठो कहकर जिला दिया इसपर सब देवगण चिन्ता करने लगे। सभी दैत्यों को सन्नद्धित कर वह फिर देवताओं को युद्ध के लिये ललकारने लगा। कालनेमि की इस माया से एक बार फिर दोनों ओर की चतुरङ्गिणी सेनाओं का घोर युद्ध हुआ कालनेमि ने देव सेना का बहुत अधिक ह्रास किया और अपने बढ़ते हुए प्रभाव से विष्णु भगवान् के साथ युद्ध करने की ठामी। उसने विष्णु भगवान् को युद्ध के लिये तैयार देख दैत्यों से मधुकैटभयध से लेकर अघतक की सारी घटनाओं में देवताओं के बड़े सहायक तथा दैत्यों के उग्र संहारक के रूप में विष्णु को भला-बुरा कहा और इस बार अपने द्वारा विष्णु का काम पूरा किये जाने की निश्चयात्मक बात कही विष्णु ने उसके इन अभिमानपूर्ण वचनों के उत्तर में मर्यादा का उलङ्घन करनेवाले इस दैत्य को अधिक-से-अधिक लोक मार्ग को बाधक बताते हुए उसे ठीक करने तथा उसके विनाश करने की बात कही। उस कालनेमि ने अपने सभी सहायकों के साथ अपने सैकड़ों हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध में उपस्थित होकर विष्णु को चुनौती दी। युद्ध में उस दैत्य ने अपनी गदा का प्रहार विष्णु के वाहन गरुड़ पर किया जिससे वह अत्यधिक व्यथित हुआ इसपर विष्णु ने चक्र छोड़कर कालनेमि की सब भुजाओं का संहार कर दिया साथ ही उसके मुख भी काट दिये। गरुड़ ने अपने पंखों के प्रहार से उस कबन्ध (धड़) के राक्षस को नीचे गिरा दिया उस तारकामय संप्राम में बहुत अधिक असुरों का संहार हुआ और विष्णु की पूर्ण कृपा से देवगण विजयी हो गये ब्रह्माजी ने आकर विष्णु भगवान् से प्रार्थना की कि आपने देवताओं का कंटक (कांटा) निकाल बाहर किया है आपके इस अद्भुत कार्य से हम सब प्रसन्न हैं आप स्वयं संसार में वर स्वरूप हैं हम सब आपको स्या वर दें। इसपर भगवान् ने सब देवगण को बुलाकर कहा कि इस युद्ध में तो दानव निकल गये हैं विरोचन और स्वर्भानु। अब आपलोग अपने-अपने

स्थानपर जाकर यज्ञभाग ग्रहण करें तथा सभी ब्राह्मण ऋषिगण अपने वेदविहित यज्ञों द्वारा देवगण एवं पितरों को तृप्त करें अब सर्वत्र शान्ति का अलङ्कार राज्य हो गया है अपने-अपने कार्यों में आप सब प्रवृत्त होंगे। इन दैत्यों पर किसी भी समय आपलोग विश्वास न करें क्योंकि ये लोग समय देखकर आप जैसे सद्वृत्तों को बड़े कष्टों में डाल देते हैं ऐसा कहकर भगवान् विष्णु ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक को चले गये।

४४	शङ्करमाहात्म्यवर्णनारम्भः	४११
	वज्राङ्गस्य वराङ्ग्या सह तपश्चर्यावर्णनम्	४१३
	तारकोत्पत्तिवर्णनम्	४१४
	युद्धार्थं देवसैन्यानां सज्जीभवनम्	४१७

भीष्मजी ने पुलस्त्यजी से कमलोद्भव ब्रह्माजी के सम्बन्ध में उत्तर पाकर फिर भगवान् शङ्कर के माहात्म्य और कार्तिकेय की उत्पत्ति तथा तारकामुर के सम्बन्ध में कई प्रश्न पूछे इसपर पुलस्त्यजी ने कहा प्राचीन समय में त्रिविक्रम के कश्यपजी के घरदान द्वारा वसु के सारभूत अङ्गों से सद्यः शास्त्रों के वेत्ता वज्राङ्ग नामक पुत्र के उत्पन्न होने पर उसने माता से अपने लिये कुछ करने की आज्ञा मांगी। माता ने कहा कि इन्द्र ने तुम्हारे भाई दैत्यों का संहार किया है सो उसका बदला लो माता की कहने की देर थी कि वह देवलोक में गया और इन्द्र को अपने पास में बांधकर माता के सामने ले आया। इसी समय कश्यपजी और ब्रह्माजी दोनों माता और पुत्र के पास पहुँच गये और उन्हें इस प्रकार कहने लगे हे पुत्र ! इस देवेन्द्र को छोड़ो इससे अपना क्या प्रयोजन है ? सम्भावित का अपमान ही बंध करने से बढ़कर है हमारे कहने से यह जो मुक्त हुआ है उसे तुम मृत ही समझो इसपर ने माता की आज्ञापालन की बात कही और ब्रह्माजी की आज्ञानुसार

उस देवराज को छोड़ दिया और अपनी तपस्या करने की बात (का प्रस्ताव) उनके सामने कही। ब्रह्मा ने तप करने की अनुमति देते हुए विचित्र शुद्धि उसका फल बताया और एक सुन्दर कन्या पैदा कर वराहजी नाम रख कर उसकी पत्नी के रूप में सहचरी कर दी। ब्रह्माजी चले गये और उस ब्रह्माह्न ने अपनी स्त्री वराहजी के साथ एक हजार वर्ष तक तपस्या की उससे विचलित होकर इन्द्र ने उसकी स्त्री को नाना प्रकार से कष्ट देना आरम्भ किया। ब्रह्माह्न की महिषी ने यह सब छीला शैलराज की जानकर उन्हें शाप देने की तैयारी की। वेचारे पर्वत ने यह सारा रहस्य खोलकर इन्द्र की योजना बताई। इसी समय ब्रह्माह्न को वर देने के लिये ब्रह्मा उपस्थित हुए ब्रह्माह्न ने ब्रह्माजी से कहा कि मुझे कभी आसुर भाव न सतावे मेरे लोक अक्षय हों तपस्या में मेरा मन लगा रहे इसी में शरीर का वर्तन हो एवमस्तु कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान कर गये। ब्रह्माह्न जब अपने आश्रम में अपनी स्त्री से मिलने गया भूला होने से वह फल लाने के लिये पर्वत के ऊपर वन में घुसा यहाँ वराहजी को रोते देख उसका कारण पूछा। वराहजी ने इन सबके मूल में देवराज इन्द्र को कारण बताया और पति से अनुरोध पूर्वक इस दुःख से छुटकारा पाने के लिये तारकपुत्र को उत्पन्न करने का आग्रह किया। वह इन्द्र को शिक्षा देने में समर्थ होने पर भी फिर तप ही करने लगा। ब्रह्माजी उसके स्थिर सङ्कल्प को देख फिर प्रगट हुए और उससे वर मांगने के लिये कहा उसने तेजस्वी पुत्र प्राप्ति के लिये कहा (ब्रह्माह्न ने अपनी पत्नी के इच्छित फल की बाततारक पुत्र की प्राप्ति के लिये कही)। ब्रह्मा ने तथास्तु कहकर अन्तर्धान किया। इसके बाद वराहजी ने गर्भ धारण किया। वराहजी ने एक हजार वर्ष के बाद ऐसे बलिष्ठ पुत्र को उत्पन्न किया जिसके गर्भ से बाहर आते ही चारों ओर भूकम्प, पर्वतों के कम्प आदि सङ्घर्ष सामने आये इसपर सब देवगण हतोत्साह हो गये। दैत्यों में उत्साह की लहर फैली और कुजम्भ महिष आदि ने उसे दैत्यराज के रूप में अभिषिक्त किया। तारक ने अपनी यह इच्छा प्रगट की कि देवों को वश में लाने के लिये तपस्या ही

यज्ञ से बड़ा साधन है और वह तब पारियात्र पर्वत पर तपस्या करने के लिये  
 चला गया। बड़ी कठिन तपस्या के बाद ब्रह्माजी ने प्रगट होकर वर मांगने के  
 लिये कहा। तारक ने कहा किसी भी प्राणियों से मेरी मृत्यु न हो इसपर ब्रह्मा ने  
 कहा कि प्राणियों की मृत्यु तो निश्चित है। अब दूसरा वर मांगो इसपर सात  
 दिन के बन्धे को छोड़कर किसी के द्वारा मेरी मृत्यु न हो यह मांग  
 तथाज्नु कहकर ब्रह्माजी अपने लोक में चले गये और दैत्यगण अपने पर।  
 राजधानी में लौटकर तारक ने अपने इष्ट मन्त्रिगण को बुलाकर सब देवगण को  
 परा में करने की बात कही इसपर मसन नामक दानव सारी सेनाओं को  
 एकत्रित कर युद्ध के लिये तैयारियाँ करने लगा। सम्पूर्ण दैत्य सेनायें एकत्र होने  
 लगीं इन सब की पूर्ण सज्जा देखकर वायु ने अपनी ओर से इन्द्र को सूचना दी।  
 उन्होंने गृहस्पतिजी से धरने कर्त्तव्य के विषय में पूछा। गृहस्पति ने साम, दान,  
 दण्ड और भेद की नीति का उल्लेख करते शत्रु के साथ दण्ड के कार्य का  
 विशेष जोर देकर प्रतिपादन किया। तब इन्द्र ने सब देवगण का युद्ध की  
 तैयारी के लिये आह्वान किया फिर तो सबने अपने-अपने यानों पर चढ़-चढ़  
 कर अश्व-शर्यों से सज्जित होकर युद्ध के लिये प्रस्थान किया। इसपर तारक ने  
 अपने दैत्यों को कहा कि तुमलोग सब देवगण को बाध-बाध कर ले आओ मारो  
 मर। तब दैत्यों ने लोकाच्छाओं और रुद्रों को बाध-बाध कर तारक के सामने  
 प्रस्तुत किया।

सर्वदेवकृतं ब्रह्मस्तोत्रम्	४१६
ब्रह्माणम्प्रति वायोः प्रार्थना	४२१
रात्रिम्प्रति ब्रह्मणो बोधवाक्यम्	४२३
इन्द्रनारदसम्वादवर्णनम्	४२५
नारदेन पार्वत्याः सामुद्रिकलक्षणस्पष्टीकरणम्	४२७
नारदहिमालयसम्वादवर्णनम्	४२६
शङ्करक्षोभणार्थं कामदेवस्य विचारवर्णनम्	४३१
रतिकृतमहेश्वरस्तोत्रम्	४३३
हिमालयपार्वत्योः सम्वादवर्णनम्	४३५
ऋषिपार्वतीसम्वादवर्णनम्	४३७
सप्तर्षीणां हिमालयसमीपे गमनम्	४३६
शङ्करसमीपे मुनीनां गमनम्	४४१
शङ्करपार्वतीविवादवर्णनम्	४४३
गणेशजन्मवर्णनम्	४४५
धीरकगणस्य पार्वत्या पुत्रीकरणम्	४४७

जब एक द्वारपाल ने आकर तारक को कालनेमि द्वारा देवताओं को बांध कर लाने की बात कही और पूछा कि इन वन्दी देवगणों को कहाँ रक्खा जाय इस पर तारक बोला कि देवगण को उनकी जहाँ इच्छा हो वहाँ छोड़ दो केवल एक मन्त्र को मुण्डन कर और कुत्ते के पैर से चिन्हित सफेद वस्त्र पहनाकर छोड़ दो ऐसा करने पर सभी देवगण दुःखित होकर भगवान् जगद्गुरु ब्रह्माजी के पास गये और उनसे प्रार्थना की। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर सबके दुःखों को पूछा वायु ने

सबके प्रतिनिधि होकर बतलाया कि देवराज और देवगण को तारक के दैतों ने बहुत करारी हार दी है देवगण का यज्ञभाग वे सब हठात् ले लेते हैं। उनके विमानों को छीनकर दैत्यों ने अधिकार जमा लिया ये देवगण तारकामुर के जल से सुरपुर को छोड़कर कानन एवं पर्वतों की कन्दरा में शरणार्थी जीवन बिता रहे हैं आपने ही आदियुग में देवगण को मारनेवाले दैत्य यज्ञ की रचना की है इसके साथ-साथ इन देवगण के यज्ञ सिद्ध और गन्धर्वों को उन सबने अपनी सेवा के लिये काम में लगा दिया है ये दैत्य सब आये दिन नई-नई योजनाओं से देवगण को प्राप्त दे रहे हैं उनके दुःखों की कथा आपसे अधिक और कौन जान सकता है। इन सभी पापी लोगों की अधिक याता पाप बढ़ाने के लिये ही पर्याप्त समझिए। एक शब्द में, देवगण अशरण हो गये हैं उनके लिये आप मार्ग बताइये। ब्रह्मा ने उन्हें सन्तोष और धैर्य देते हुए कहा कि मैंने ही उसे किसी बहाने से अवश्य होने का वर दिया है परन्तु उसने सात दिन के शिशु को छोड़कर किसी से न मारे जाने का वर मांगा है सात दिन का ऐसा बली बालक भगवान् शङ्कर को छोड़ दूसरे से होना अशक्य है। अपत्रीक भगवान् शङ्कर के हिमालय की पुत्री पत्नी रूप से होगी और जैसे अग्नि उत्पन्न होती है वैसे यह उत्पन्न होकर आप सब का तारक होगा आप लोग कुछ समय प्रतीक्षा करें। ब्रह्मा ने देवगण के विदा होने पर रात्रि को याद किया और उसे सारी बातें कही कि कैसे दक्ष की पुत्री सती पिता से अनयन होने से यज्ञ में आरम्भसाहू हो गई और दूसरे जन्म में हिमालय के यहाँ कन्यारूप में उत्पन्न हुई है। भगवान् शङ्कर सती के विरह में पृथ्वी हिमालय में उसके उन्मूल के प्रतीक्षा में तप करते हैं। उन दोनों के सम्बन्ध से जो सन्तान उत्पन्न होगी निश्चय ही वह तारकामुर का विनाश करेगी जब भगवान् चिर विरह से ऊर्ध्वगुण होकर मग्नम करेंगे और उनमें किसी विषय को लेकर आपस में वादला होगा तो तारक के लिये संशय होगा उस मुरत की आसक्ति में उसे तुम्हें में उपाय बनावा दूँगिगे तुम्हें काम में लेना होगा वह मुनो।



तुम उस समय तक दैत्यों को नहीं मार सकोगी जबतक सुरेश्वरी अपने अन्दर पूर्ण शरीरोत्कर्षवाली न हो। अतः तुम अंशरूप से उसकी सहायिका बनोगी सर्वप्रथम उमा और फिर शैलजा होओगी तेरे अंश से उसका नाम भवानी होगा तुम्हें भिन्न भिन्न रूपों से देव, ऋषि और मनुष्यगण पूजा कर अभीष्टसिद्धि पावेंगे तुम गायत्री, भूमि, श्रान्ति, नीति, मुक्ति सभी रूप बनाकर संसार का हित साधन करोगी अब जाओ और हिमालय की पत्नी में प्रवेश करो। उसी समय रात्रि हिमालय की पत्नी मेनका के महल में चली गई दिन के बाद रात्रि आई और वह रतिसुख के साथ ही मुख्यमार्ग से मेनका के हृदय में प्रवेश कर गई और प्रसव की निश्चित अवधि पर मेना को पुत्रीरत्न की प्राप्ति हुई उस शुभ बेला में सर्वत्र मङ्गल-ही-मङ्गल हो गया हिमालय को बधाई देने के लिये सम्पूर्ण सागर और नदियां उमड़ पड़े और पुत्री के जन्मोपलक्ष्य में बहुत ही बधाइयां हिमालय द्वारा चांटी गईं। चन्द्रकला के समान वह पुत्री बढ़ने लगी। इसी समय देवराज इन्द्र ने नारदजी को विशेष कार्य सम्पादन के लिये निमन्त्रित किया। जब नारदजी आये तो उन्होंने देवराज से कुशलक्षेम पूछा इन्द्र ने हिमालय के यहां कन्याजन्म का मङ्गलवृत्त सुनाकर नारदजी से अनुरोध किया कि यह शैलजा ( हिमालयपुत्री ) भगवान् शङ्करजी के साथ ब्याही जाय इसके लिये देवगण के द्वारा जो करणीय हो वह करना चाहिये। नारदजी सीम ही इन्द्र से आज्ञा लेकर हिमालय के यहां आये और ऋषि प्रवर नारदजी को आते देख पूर्ण सरकार से वह अपने यहां लिवा ले गये तथा अभिवादन किया आपस में कुशलक्षेम पूछने के बाद नारदजी ने हिमालय की प्रशस्ति की और उन्हें इसलिये धन्यवाद दिया कि इनकी कन्दराओं में ऋषि महर्षियों की साधना होती है भगवान् शङ्कर भी भगवान् राम का ध्यान करते हुए यहां धिराजते हैं ऐसा वार्तालाप हो ही रहा था कि देवर्षि नारद को आया सुनकर मेना अपनी कन्या को लेकर उनके दर्शनों को आई। कन्या को देखकर देवर्षि

ने वद्वर्षण किया और उसे "आओ पुत्रि ! बैठो" ऐसा कहा हिमालय कन्या पिता की गोद में बैठ गई जब माता ने उसे मुनि को प्रणाम के लिये कहा तो वह सङ्कोच और लज्जा से माता के घुंघट में अपना मुँह नीचा कर छिपाने लगी। दूसरी बार कहने से उसने वन्दन किया और माता ने अपनी सहेलियों के द्वारा सौभाग्यवर्षा भविष्य के सम्बन्ध में नारदजी से पूछने का अनुरोध किया। हिमालय के अनुरोध से नारदजी ने बालिका के सामुद्रिक चिन्ह देखे और बोले इसका पति लक्षणों से वर्जित उत्पन्न ही नहीं हुआ यह सदा उत्तानहल रहेगी और चरणों में व्यभिचारी रेखाएँ विद्यमान होने से मुच्छाया होगी और क्या कहना बाकी रह गया। अभिप्राय को न समझने से विकल हिमालय ने इसका विस्तृत विवरण जानना चाहा और आँखों में आँसू लते हुए उसने भगवान् की रची मर्यादा द्वारा सृष्टि सञ्चालन की बात विस्तार से कही और यह भी कहा कि पुत्री का विवाह और आगे उसकी सम्पत्ति आवासादि की योजना पिता का दायित्व है जब आपने उसका भविष्यफल कह दिया है तो सचमुच मेरे लिये विचार और चिन्ता का विषय हो गया कृपया मुझे समझादिये क्या फल है ? कारण आपके द्वारा बताये गये शरीर के सामुद्रिक चिन्ह और ही फलों का सङ्केत करते हैं। देवर्षि ने हिमालय की शंकाओं का निराकरण कर थोड़ा स्मित करते हुए कहा पर्वतराज आप महान् हर्ष के अवसर पर अपना दुःख प्रगट करते हैं सब बातों को जाननेवाले आपको भी मोह हो रहा है अब मुनिये इसका पति नहीं हुआ जो यह कहा है यह भगवान् देवाधिपति साक्षान् शत्रुर अजन्मा हैं मुनीन्द्र, सुरादिगण उनका ध्यान करते हैं विष्णु नाना युगों में कल्पभेद से आविर्भूत और विरोधूत होते हैं परन्तु उनका तो यह सब नहीं यह इनसे परे है और यह लक्षणों से वर्जित है उनका अभिप्राय यह है कि अनन्त सौभाग्य, आयु, धनादि की विशिष्ट अधिकारिणी इस सुन्दारी पुत्री का क्या सामुद्रिक लक्षण हो सकता है। उत्तानकरवाली यह साक्षान् देवी रहेगी सो सम्पूर्ण

सुरासुर, मुनि और अन्य सभी आपामर प्राणिमात्र को शुभ वर देनेवाली होगी; इसके पौर सुच्छाया से व्यभिचारी हैं जब पद्म के समान स्वच्छ इसके पैरों के उज्ज्वल नखों पर देवासुर सभी नतमस्तक होंगे तो उनके शिरोरत्न और मणियों की कान्ति की छाया से वे नख विचित्र नाना रंगों से बिम्बित होने से सुच्छाया एवं व्यभिचरित होंगे। संक्षेप में, भगवान् भूतभावन अनादि निधान भूतपति शङ्कर की यह पत्नी होगी सम्पूर्ण लोक की जननी इस महाशक्ति का भगवान् से योग हो "रत्न समागच्छतु काञ्चनेन" के अनुसार शीघ्र ऐसी व्यवस्था कीजिये इससे देवगण का बहुत बड़ा कार्य सिद्ध होगा। हिमालय ने नारदजी की अद्भुत दृष्टि और सूक्ष्मविवेचनशक्ति से अपना समाधान पाकर बहुत कृतज्ञता प्रगट की और बाग् बाग् हो गये तब नारदजी ने अपनी शुभाशंसना कहते हुए सुरपुर को प्रस्थान किया वहाँ देवराज इन्द्र को सारी घटना कह सुनाई परन्तु कामदेव का इस कार्य में विरोध योग होने के लिये प्रस्ताव रक्खा। इन्द्र ने कामदेव का स्मरण किया उनके आते ही रति के साथ जाने को कहा परन्तु कामदेव ने अपना भय धताया कि इतना सब होने पर भी शङ्कर दुःसाध्य हैं कारण महान् पुरुषों का प्रसाद भी क्रोध का कारण होता है इन्द्र के समझाने-बुझाने से कामदेव राजी हो गये और उसने जाने की पूरी तैयारी की उसने महात्मा पुरुषों के मन को अधिजित समझ उसीको केन्द्रबिन्दु बनाकर मन पर अधिकार करने की ठानी। काम ने वहाँ पहुँचकर वीरकण और आश्रय का मृदु-शान्त वातावरण देखा इसे देखते ही उसने पहले बसन्त का विकास किया और सर्वत्र पुष्पों पर भौंरे गुञ्जारने लगे स्वयं कान से मन पर अधिकार किया और शङ्कर दक्षतनया से कामपीडित हो सज्जम करने की इच्छा से उसे याद करने लगे। परन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें अपनी लक्ष्यसिद्धि में बाधक मदनात्मिका विकृति का भान हो गया और योग द्वारा धैर्य धारण कर योगमाया से मदन को बाहर निकाल दिया और वह कुछ क्रोधित भी हुए। उस माया से आविष्ट

मेना ने कहा कि बिना मांगे हुए कन्या देना ठीक नहीं, फिर मेरी पुत्री शङ्कर की कैसे उपासना करेगी। मुनियों ने कहा उनकी पुत्री के सम्पूर्ण व्रतों के फल व प्राप्ति उनके उपस्थिति में होनी चाहिये। इसके बाद हिमालय ऋषियों के सा उमा के तपोवन में पहुँचे उमा ने अपनी इष्ट कामना भगवान् शङ्कर को वर की प्रार्थना की और उन्होंने भगवान् शङ्कर से इस प्रस्ताव का निवेदन कर का सिद्धि प्राप्त करने का पूरा आश्वासन दिया। वे सीधे हिमवान् के प्रदेश में शङ्कर भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। वीरक को आगे देख उससे शङ्कर से विशेष रूप से दर्शन करने की आज्ञा लेने को कहा। उसने बताया कि दूसरी सन्ध्या करने वे गङ्गा पर गये हैं अभी आते होंगे। जब अपनी दैनिक क्रिया पूर्ण कर शङ्कर आगये तो वीरक ने सत्प्रार्थियों के आने की बात कही और दर्शन करने की आज्ञा मांगी। शङ्कर ने मुनियों को बुलाकर यथायोग्य करने को कहा। उन्होंने शैलजा उमा से विवाह का प्रस्ताव किया और शुभ सूचना दी कि शङ्कर विवाह के लिये तैयार हो गये हैं उसे अपने पिता के साथ पर जाकर तैयारी करनी चाहिये। पर आने पर उमा को पल-पल भारी हो गया और शङ्कर को देखने की लालसा से वह व्यग्र हो गई। ब्राह्ममुहूर्त से ही उसके लिये महल क्रियायें की जाने लगी और हिमालय के इष्टमित्र अपने दायित्व को पूर्ण करने के लिये आ पहुँचे। उधर शङ्करजी भी अपने सान-याज से सज्ज होकर हिमाचल के यहाँ सम्पूर्ण देवगण एवं गणों के साथ घाराव सजाकर पहुँचे। अग्निसाक्षी से अपनी पत्नी सहित उमा का पाणिमहण कर हिमालय श्रुत्य हुए और प्रातःकाल होते ही वे हिमालय की आज्ञा लेकर मन्दर-गिरि पर सपत्नीक चले गये वहाँ पर आनन्दपूर्वक विहार करने लगे। एक बार अपनी सहेलियों के साथ भगवती पार्वती ने कृत्रिम पुत्रों के लिखीने बनाकर खेलना शुरू किया। एक दिन शैलजा उदटन कर अपने मैल को एक स्थान पर रख पुण्याचरि बना दिया उसे देखते देव जल में फेंक दिया। यह शिवा की सती के

निरीक्षण में बढ़ने लगा दोनों ने अपने-अपने पुत्र की सञ्ज्ञा देकर गणेशजी को पुकारा तभी देवगण ने गाङ्गेय सञ्ज्ञा दी। इसके ऊपर ब्रह्माजी ने विनायकाधिपति बना दिया। फिर अशोक वृक्ष को बनाया मुनियों ने तरु रूपी पुत्रों के फल के विषय में पार्वतीजी से मर्यादा पूछी तो जहाँ जल का अभाव हो वहाँ एक कुआँ बनवादे तो पानी की जितनी बून्दें उसमें हो उतने वर्षों तक स्वर्ग में उसे बनानेवाला रहता है चापी का माहात्म्य दश कुओं के समान है तालाब का माहात्म्य दश बावड़ियों के बराबर है और दश तालाबों का माहात्म्य एक कन्या के समान है दश कन्या के माहात्म्य के समान एक वृक्ष है यही लोकभायिनी शुभ मर्यादा है। शङ्करजी ने पार्वतीजी के साथ गृहस्थ के पूर्ण उत्तरदायित्व का लाभ लिया और अपने गणेशों के सम्बन्ध में उनसे नाना प्रकार की सुखद्वार्ता की। जब पार्वती ने गणेशों के सम्बन्ध में पूछा तो शङ्करजी ने अनन्त कोटियाँ बताई और कहा कि सिद्धक्षेत्रों में, गल्ली में, जीर्ण उद्यानों में, दूटे घरों में, वानवों के शरीर में, बालवर्षों में और उन्मत्तों में ये सब निवास करते हैं; इनका आहार है गर्मी पीना, आग पीना, धुआँ पीना, मधु पीना, मेदाहार, रुधिर पीनेवाले सर्वभक्षक और बिना भोजन के रहनेवाले साथ ही देवताओं को खानेवाले, तपस्त्रियों को खानेवाले और नाना प्रकार के बाघ तथा रति में प्रेम करनेवाले हैं ये अनन्त हैं इनका वर्णन करना कठिन है। फिर पार्वतीजी ने गणेश के सम्बन्ध में पूछा। शङ्कर ने उनके लिये प्रशस्ति के शब्दों के साथ अपने हृदय में स्थान है यह बात कही इसपर पार्वतीजी ने अपने लिये पुत्र करने की बात कही शङ्करजी की स्वीकृति से विजया उन्हें बुलाने गई और पार्वतीजी ने स्नेह-पूर्वक उन्हें दुग्धपान करने को कहा। वीरक को अपना पुत्र बनाने के बाद वे सब विशेष आनन्दपूर्वक निवास करने लगे।

४६	कृष्णवर्णायाः पार्वत्याः शुद्धरेण विनोदकरणम्	४४०
	पार्वत्या शुद्धरभर्त्सना	४४१
	वीरकमणस्य द्वाररक्षार्थं नियोजनम्	४४२
	पार्वत्याः क्रोधेन सिंहात्पत्तिः	४४३
	वीरकमणकृतपार्वतीस्नानम्	४४४
	कान्तिकेयोत्पत्तिवर्णनम्	४४५
	तारकरक्षार्थं स्कन्दमूर्ति देवप्रार्थना	४४६
	कान्तिकेयकृतनारकासुरवधवर्णनम्	४४७
<p>भगवन् शङ्कर ने पार्वती को हास्यपूर्ण कृष्ण होने की बात का परिहास किया इसपर पार्वती ने क्रोधित होकर कई प्रकार से जर्जी-फटी सुनाई और बानों-बानों में अपना वर्ण गौर करने की ठानी । इसपर वीरक गणेश ने माता को रोका । इसका जलर देते हुए पार्वती ने अपना भोग बनाया और कहा कि जबकि मेरा वय पूर्ण न हो तब तक किसी स्त्री को शङ्कर के पास न जाने देना मैं मेरे यश तथा मेरे स्वामि के लिये कोई भी पति और उसे डारकर मिलुंग किवा । जाने जाने पर पर्वत की देवता कुमुदामोदिनी मिनी और पार्वती से कुछ पूजा और आने का उद्देश्य पूजा । पार्वती ने कहा कि तपस्या के लिये मैं जा रही हूँ और जबकि मैं छोटी तब तक आप इस प्रदेस में शंकरजी के कान्तिकेयजी को का भवान रखें । भगवन् पार्वती ने वन देवता से आकाशवादी कहने लगा के शब्दों में कठिन तपस्या की । पार्वती को तपस्या के बाद जबकि शंकर का पुत्र कृष्ण का वही रूप में कुछ अति नामक कन्दर्पजी के लिये शंकर के यश थावा डारपर वीरक को देस वरमा र शङ्कर को वरमा कर अपने विरुद्ध का वर मागा । शङ्कर</p>		

ब्रह्मा जन्म लेनेवाले की मृत्यु अवश्य है अतः अपनी असमर्थता प्रकट की। इसपर  
 त्रिव ने कहा कि जबतक मेरा रूप न बदले तबतक मैं अमर रहूँ। इसपर ब्रह्मा ने  
 उसकी प्रार्थना स्वीकार की और रूप न बदले तबतक उसे अमर  
 रहने का वर दिया। वह अपने वध का उपाय न स्मरण कर वीरक के जाने  
 केना सर्प बनकर छेद के द्वार से अन्दर चला गया अन्दर जाने पर उसने  
 अपने आकार को छोड़कर भगवती उमा का नकली वेष बना लिया और अपने  
 गण में वज्र के समान दृढ़ दांत बना दिया और बुद्धि के मोह से शंकर को भारने  
 में चाल चलने लगा। शंकर ने उसे पर्वती जान प्रेम से आलिङ्गन पूर्वक कहा कि  
 हूँ जो बातें हुईं वे साधुभाष से पूछी गई थी मेरे लिये तो सब ही स्थान  
 मेरे बिना शून्य है। दैत्य ने कहा मैं तपस्या के लिये हिमाचल पर गई और  
 उसे सन्तोष न होने से आपके पास आई हूँ। यह सब देखकर और धाई ओर  
 गङ्गा में पद्म का चिन्ह न देखकर शङ्कर ने उसे मार डाला। उस दानवेश्वर  
 ने इस सारी लीला को वीरक न जान सका और वायु ने जाकर सीधे इस  
 सब का वर्णन पार्वती को कर दिया। पार्वती ने क्रोध में आकर वीरक गणेश को  
 शाप दिया कि तुमने मुझे स्नेहविषय जान शङ्कर के यहां स्त्री को आने देने का  
 काम किया अब तेरी गणेश के आकारवाली शिला माता होगी इस प्रकार शाप  
 देते ही देवी पार्वती के मुख से क्रोध का सिंह बनकर निकला वह देवीजी के  
 सामने आ गया। भगवान् ब्रह्मा ने उसी समय भगवती पार्वती के पास आकर  
 तपस्या से विराम करने को कहा और पूछा अब क्या इच्छा है पार्वती ने अपने शरीर  
 के काले वर्ण को लेकर जो शङ्करजी से विवाद पूर्व कटुता उत्पन्न हो गई उसे कहकर  
 अपना रंग काश्मनवर्ण का करने को कहा और भगवान् भूतनाथ का एक ओर  
 का रत्न निर्विष हो; ऐसा है तो आप शङ्कर भगवान् की देह में अर्द्धचारिणी  
 बन जाइये। भगवती का रूप कृष्ण त्वचा के छूटने से सुन्दर गौरवर्ण हो गया  
 और उस भीमकाली त्वचा से तीन नेत्रवाली घण्टा हाथ में लिये सम्पूर्ण

आभूषणों से युक्त निशा उपस्थित हो गई। ब्रह्मा ने उससे साधुवाद की उक्ति कहकर एक अंश से तुम स्थिर रहो और यह सिंह जो पार्वती के क्रोध से उत्पन्न हुआ है तुम्हारा वाहन बने विन्ध्याचल पर चली जाओ। पञ्चाल नाम क लाखों यक्षों का स्वामी तुम्हारा किङ्कर होगा वह पूर्ण मायावी है। वह कौशिक देवी विन्ध्याचल पर गई अपना सङ्कल्प पूरा कर पार्वती भगवान् शङ्कर के यह जाने लगी। उन्हें द्वार पर घोरक ने रोका कारण कि अब उनके शरीर की आकृति गौर वर्ण की थी। घोरक ने कहा कि आगे मत जाइये कारण भगवान् कंठगते के लिये एक दैत्य छद्मरूप में आया मैं उसे न देख सका उसको जब भगवान् ने मार दिया तो उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि सावधानी नहीं बरतोगे तो मैं द्वारपाल नहीं रह सकोगे अतः अन्दर जवदी नहीं जाने दूंगा केवल पञ्च स्नेहवत्सला मा पार्वती को ही जाने दूंगा और किसी स्त्रीमात्र को नहीं। उस घोरक की बातें सुनकर पार्वती ने सोचा कि वायु ने जिस स्त्री के लिये बतलाया था वह दैत्य था इस घोरक को व्यर्थ मैं ही शाप दिया गया क्रोध में मनुष्य अकार्य भी कर देता है क्रोध विनाश का कारण है अकारण ही इस बेचारे घोरक को शाप दे दिया विपरीत बुद्धिवालों को आपत्तियां सुलभ होती हैं। पार्वतीजी ने अपनी सारी भूल का परिमार्जन करते हुए कहा हे वत्स ! मैं ही पार्वती हूँ मेरा रंग काला था। अब ब्रह्माजी से वर पाकर मेरा गौर वर्ण हो गया है मैंने अपनी भूल से तुम्हें व्यर्थ ही शाप दिया है कि जो तुमने एकान्त में शङ्कर के यहाँ स्त्री का प्रवेश होने दिया और मुझे उसका ज्ञान हो गया। मेरा शाप तो लौटाया नहीं जासकता परन्तु मनुष्य से तू शीघ्र ही ठीक होगा। घोरक ने स्तुतिपूर्वक भगवती को प्रसन्न किया और वह अन्दर चली गई। द्वारस्थित घोरक ने शङ्कर भगवान् के दर्शनार्थ आये हुए देवगण को शङ्कर की आज्ञा सुनाकर आदरपूर्वक लौटा दिया कि भगवान् उमा के साथ अन्तःपुर में हैं अब समय नहीं है। एक हजार वर्ष बीतने पर देवगण ने मन्त्रणा कर अग्नि से शङ्करजी के



विषय में जानने के लिये अनुरोध किया। अग्नि शुक्लरूप में छेद में से अन्दर गये। शङ्कर की दृष्टि पड़ते ही उन्होंने क्रोध से कहा कि तुम्हारे विघ्न से रखलित वीर्य बाहर रह गया है इसे तुम पीओ हाथ जोड़कर अग्नि उसे पी गये और मनु आदि ने माहेश्वर वीर्य को अग्नि के पेट से निकाल कर शङ्कर आश्रम में ही एक स्थान पर ढाल दिया जो कई योजन में सरोवर के आकार का बन गया। इस रम्य सरोवर पर एक धार भगवती पार्वती आईं और पद्मपत्र में जल पीने की इच्छा से कृत्तिका पार्वती के लिये ले गई। कृत्तिकाओं ने कहा कि आपके गर्भ से जो पुत्र होगा वह हमारा भी पुत्र हो और भगवती ने पूछा कि यह मेरे से उत्पन्न पुत्र तुम्हारा कैसे होगा ? उसके उत्तम-उत्तम अङ्ग होंगे और हाँ कहते ही कृत्तिका ने कमल के पत्ते के पानी को पी लिया उसके पानी पीते ही दक्षिण कोल से अद्भुत बालक हुआ उसके हाथ में उदयशक्ति शूल, अङ्कुरा और अग्नि थी इसीलिये उसकी कुमार सञ्ज्ञा हुई। फिर बाईं कुक्षि से शिशु हुआ और अग्नि के शरीर से पद्मवदन उन दोनों बालकों को जोड़कर एक बनाकर उसका अभिषेक किया गया और देवसेना नामक अपनी कन्या इन्द्र ने उन्हें पत्नी के रूप में देदी। विष्णु ने उसे रथ और आयुध दिये, कुबेर ने दश लाख यक्ष दिये, अग्नि ने तेज दिया, वायु ने वाहन दिया, त्वष्टा ने कुम्भकुट कामरूपी लिलौना दिया, उस प्रबल प्रतापी स्कन्द को सब देवों ने हृदय से स्तुति करते हुए साधुवाद दिया। कुमार कार्तिकेय ने देवगण से इस सम्बन्ध में क्या करना अपेक्षित है ऐसा पूछा और देवताओं ने तारक दैत्य के द्वारा की जानेवाली सभी बिनाशालीलाओं का और अत्याचारों का संक्षेप में वर्णन कर कार्तिकेय से उसके निस्तार के लिये अनुरोध किया। आगे-आगे स्कन्द और पीछे-पीछे सब देवगण चले पहले इन्द्र ने अपने दूत को तारकासुर के पास युद्ध की चुनौती के लिये भेजा और तारक ने इसे स्वीकार करते हुए युद्ध के लिये लड़कारा। उसे यह सन्देश हो गया कि अब शङ्कर के कार्तिकेय उत्पन्न हो गया है जिससे देवगण

को अधिकाधिक शक्ति मिल गई है उसने यह भी सोचा कि यह सब मेरे लिये कोई अशक्य नहीं है देखें क्या होता है। आगे उसने देवयन्दीगण द्वारा कार्तिकेय की प्रशंसा सुनी तो अब उसे अपना अन्त समय अत्यधिक सन्निवृद्ध मालूम पड़ा। अपने सेनापति को सारी सेना को एकत्र करने के लिये आज्ञा दी। युद्धक्षेत्र में आने पर तारक ने कुमार को युद्धक्षेत्र से छोटने का आग्रह किया परन्तु कुमार ने उसे कहा छोटा देखकर संकोच करने की बात छोड़ देनी चाहिये कारण "वेजसा हि न वयः समीक्षते" बाल सूर्य देखा नहीं जाता वैसे ही मुझे जानो। क्या मन्त्र अस्पाश्वर नहीं होना उसकी क्रिया और साधनायें कितनी विशिष्ट है ? आओ युद्ध करो। इसपर तारक ने मुद्गर से आक्रमण किया उसे कुमार ने बीच में ही काट दिया, इसी प्रकार कुमार पर जो-जो चार दैत्यों ने किया उसने सभी को काट दिया। इधर देवतागण पर असुर लोग अमानुषिक रूप से आक्रमण करने लगे इसी समय क्रुद्ध होकर कार्तिकेय ने गदा से तारक को मार दिया। इस असुर के नाश होने से सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गई और सभी देवगण अपने-अपने शुभाभिर्शंसनों से कुमार का अभिवादन करने लगे। इस स्कन्दसम्बन्धी कथा का पाठ करनेवाला कीर्तियुक्त, वीर्यायु, भीमान् और अरा आदि से रहित होकर निर्भय बन जाता है मन्त्रोपासन के बाद शत्रु पड़नेवाला अत्यन्त फल लाभ करता है।

श्रीनृसिंहवतारवर्णनम्	४६५
हिरण्यकशिपुसभास्थानवर्णनम्	४६७
नृसिंहप्रादुर्भाववर्णनम्	४६८
नृसिंहहिरण्यकशिपुपुद्गवर्णनम्	४७१
ब्रह्मकृतनृसिंहस्तुतिवर्णनम्	४७५

पितामह भीष्म ने ऋषि पुलस्त्य से भगवान् नृसिंह की पुण्यकथा और माहात्म्य तथा हिरण्यकशिपु-वध के प्रसङ्ग को जानने की कामना की। पुलस्त्यजी ने विस्तार से बतलाया कि प्राचीन समय में दैत्यों का राजा हिरण्यकशिपु हुआ। उसने दीर्घकाल तक बड़ा भारी तप किया। राम दम के साथ पूर्ण ब्रह्मचारी वह तपस्या एवं नियमपूर्वक रहा। ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न हो गये और उन्होंने शयं प्रातः होकर वर मांगने के लिये कहा। हिरण्यकशिपु ने कहा देवगण, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस और मनुष्य, पिशाच तथा ऋषिगणों में से कोई भी मुझे न मार सके इसके साथ ही न राज से, न अस्त्र से, न गिरि से, न वृक्ष से, न सूरे से, न गोष्ठे से, किसी प्रकार मेरा वध न हो। संक्षेप में, मैं ही सर्वाभ्यक्ष सर्व प्रभु हो जाऊँ।

नृदेवाः सुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः । न मानुषाः पिशाचाश्च ह्यमनुमां देवमत्तम !  
 क्षुरयो मानवाः शार्पेर्न शपेनुः पितामह ! । यदि मे भगवान्प्राप्तो वर एव वृत्तो मया  
 न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा वा दपेन वा ।

न शुष्केण न पार्श्वेण न स्याद्यान्येन मे वधः ॥ १०-१३ ॥

अनुग्रह ब्रह्मा ने तथाऽस्तु कहकर वर दे दिया और वे ब्रह्मजी के चले गये। इस वर से देवगण चिन्तित होकर ब्रह्माजी के पास उमरी प्रार्थनाओं, आवाचारों के विषय में बातलाप कर इसके वध का उपाय पूछने गये। ब्रह्माजी ने आभासन देते हुए कहा कि इसने तपस्या की है उसका फल तो वर अवश्य

मांगेगा; परन्तु तपस्या क्षीण होने पर सर्वान्तर्यामी विष्णु इसका वध अवश्य करेंगे। इधर हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से वर मांगकर हर्षित हो अपनी प्रजा को अत्याचारों से तंग करना आरम्भ किया। मुनिगण को वह दवाने लगा बहोतक कि देवगण को मुरपुर से निकालकर स्वयं वहाँ का अधिपति बन गया। सभी प्रसन्न देवगण, साध्य, विरहेदेव, वसु, रुद्र, ऋषि, महर्षि और समाज के गण्यमान लोग भगवान् विष्णु के पास कायरता से अपनी राम कहानी कहने गये और प्रार्थना की कि महाराज ! इस दैत्येन्द्र से हम सब का छुटकारा कीजिये। विष्णु ने देवगण को अभय दान दिया; देवगण और अन्य सब के जाते ही भगवान् नारायण ने आधा पुरुष और आधा सिंह का अपना शरीर बनाकर हाथों में पाणि ( भस्त्र ) लेकर हिरण्यकशिपु के यही सभा में प्रवेश किया और अपनी राजसभा में मूख साजसज्जा से उसे अपने नाना सभासदों के बीच में देखा। नृसिंह को आते देख प्रह्लाद ने सूचना दी कि हे दैत्यराज हिरण्यकशिपु ! अवतक ऐसा रूप न तो देखा है न सुना है; यह अव्यक्त परम दिव्य रूप क्या आ गया ? यह तो ऐसा रूप है जिसके शरीर में समस्त भूमण्डल के प्राणीमात्र और प्राकृतिक पर्वत नदी, सागर सभी समाये हुए हैं। प्रह्लाद की बातें सुनकर अभिमानों हिरण्यकशिपु ने अपने सेनापति गणाध्यों को कहा कि इस अपूर्व नरसिंह बेधधारी प्राणी को पकड़ो। यदि कुछ सन्देह हो तो इसे बध कर दो इसपर सभी सेनापति दैत्य लोग एक साथ उस रूप पर झपटे नृसिंह भी पीछे हटने लगे थोड़े ही वे उन्होंने निहनाइ कर मारी सभा को विवश कर दिया। सभा भंग होते ही हिरण्यकशिपु ने अपने धर्मों से आक्रमण किया। उसने क्रमशः अपने अधिकार के सभी धर्म कालवृद्ध, विष्णुवृद्ध, पैतामहाद्य, यज्ञ, संश्राम, नारमद्य, आशुवृद्ध के *Nuclear weapons* अनु और वस्त्रन यम जैसे बलि ( ) के बरतुर बड़े-बड़े धर्मों का प्रयोग किया और उनके प्रभाव से मारी डेर डिका परन्तु सर्वान्तर्यामी ने उस माया का एक ही धन में हँहर

कर दिया। उसने वायु के साथ अग्नि का प्रसार किया। नृसिंह द्वारा उसके नष्ट करने पर पोर अन्धकार फैल गया और उसे भी भगवान् ने परास्त कर दिया। अब तो सब ओर दैत्यों में हड़कम्प मचा और हिरण्यकशिपु ने प्रलयकारी राव वरक्षित किया, सर्वत्र भय का अलण्ड साम्राज्य छा गया एकाएक भगवती की मार से पोर भयङ्कर रूप और आकृतिवाले पुरुष उपस्थित हो गये और दैत्येन्द्र के पिनाश के लिये बड़े-बड़े पर्वत क्षम्पायमान हो गये, चार, पांच और छै शिरों वाले महाविषैडे सर्प फामुकि, तन्त्रक, कर्कोटक, धनञ्जय एलामुख रोपनाग भयभीत हुए उस दैत्य ने क्रुद्ध होकर भीषण उत्पात आरम्भ किये इसी समय गदा, शूल हाथ में लेकर जैसे ही यह दैत्येन्द्र नृसिंह पर लपका कि भगवान् ने उसे अपने विशाल हाथों में पकड़ कर नखों के द्वारा ओष्ठार के कारण करते हुए उसे पीर दिया। इस अकल्पित घटना से सर्वत्र शान्ति और मुल की लहर फैल गई सभी ओर से साधु-आधु की आवाजें आने लगी और पराक्रमशील नृसिंह के स्तवन के लिये देव, ऋषि, तपोधन हाथ जोड़कर वहाँ आ पहुँचे। प्रह्लादी ने प्रभु सर्वान्तर्धामी की अपूर्व स्तुति की। भगवान् की स्तुति कर प्रह्लादी लौट गये और नृसिंह भगवान् क्षीरसागर के उत्तर तट पर अपना नृसिंह रूप स्थापित कर अष्टचक्र यान पर पौराण रूप धारण कर स्वस्थान पधार गये; देवगण आदि प्रसन्न हो स्वधाम चले गये। प्रभु के अवतार की वही विलक्षणता है।

अन्धकासुरकथानकवर्णनम्	४०६
शङ्करान्धकासुरयुद्धवर्णनम्	४७७
शिवकृतादित्यस्तुतिवर्णनम्	४७९
अन्धककृतशिवस्तोत्रवर्णनम्	४८१
ब्रह्मकृतं ब्राह्मणानाम्प्रशस्तिवर्णनम्	४८३
गायत्रीमाहात्म्यवर्णनम्	४८५
गायत्रीन्यासविधानवर्णनम्	४८७

भीष्मपितामह ने नृसिंहमाहात्म्य के बाद भूतभावन शङ्कर भगवान् की उल्लिखित लीलाओं के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रगट की। पुलस्त्यजीने कहा प्राचीनकाल में अन्धक नामक एक दैत्य था उसने तपस्या कर दैत्यों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया था और किसी देवता से मारा भी नहीं जासकता था एक बार शङ्कर भगवान् को भगवती पार्वतीजी के साथ बैठे देख हरकर ले जाने की कोशिश करने लगा जिसके विरह में शङ्कर स्वयं मर जायेंगे। अस्तु, लोक सुन्दरी पार्वती भी भार्या बने यह सङ्कल्प कर अपने मन्त्रियों से मन्त्रणा कर सेना जुटाने के लिये सेनापति को आदेश दिया जिससे देवगण को हराकर पार्वती हरी जाय उसपर मन्त्रियों ने कहा कि ऐसे ही कनककामी को देवताओं ने बध कर दिया था जो पर भार्या दूसरे की स्त्री से प्रेम करता था। इसे सुनकर अन्धक बहुत रोधित हुआ इन्द्र अन्धक के डर से शङ्करजी के पास आया और उसके पुत्र कनक के मार दिये जाने की सूचना देकर कहा कि स्त्रीलील्य से यह दूसरे की स्त्री को हरनेवाला हो गया है। अतः इसे शीघ्र ही मार डालना उचित है। शङ्करजी ने इन्द्र को अमय दान देते हुए ईशगण को एकत्र होने के लिये आदेश दिया जिससे अन्धक को पाठ पढ़ाया जाय। भगवान् शङ्कर युद्ध की पूर्ण

वधारी कर स्वयं महाभीम रूप धारण क अपने ईशगणों का नेतृत्व करते हुए पृथ्वी पर आये। इधर अपने पुत्र का मारा जाना सुनकर अन्धक भी पूरी चतुरङ्गिणी सेना के साथ आ गया। बेचारे देवगण शङ्करजी की शरण में चले गये उन्हें शङ्कर ने अभय दान दिया। शंकरजी युद्ध की चुनौती स्वीकार करते हुए अपनी भुजाओं में त्रिशूल धारण कर आगे बढ़े; उन्होंने रथ में बैठे अन्धक के चारों ओर अग्निबाणों का जाल बिछा दिया। अब अन्धक ने शिथिल होकर दानवों को जोर-शोर से लड़ने के लिये उत्साहित किया। इधर देवसेना ने शंकरजी से प्रेरणा प्राप्तकर असुरों का जैसे-वैसे संहार करना आरम्भ किया और शंकरजी के बाणों से घायल अन्धकों ने धर्य धर कर शंकर के पिनाक को छेकर उनपर आक्रमण किया। इस बार से शंकरजी भूमि में आ गये उनके गिरते ही सब ओर भूकम्प हुआ और सर्वत्र हाहाकार मच गया। फिर नाग को मारा जो बेचारा डरकर भाग गया। जब मूर्च्छित शंकर बेतना पाकर उठे तो उन्होंने अन्धक को सामने नहीं पाया क्योंकि सर्वत्र माया से उसने अन्धकार-ही-अन्धकार फैला दिया और उसे डर हो गया कि अब न मालूम उसकी क्या गति होगी? इसी समय भगवान् सूर्य देवगण को व्याकुल देख तेजोरूप में प्रगट हुए। इस प्रकाश को देख सब देवगण हर्ष से गद्गद होकर भगवान् सूर्य की स्तुति करने लगे। भगवान् शंकर ने सूर्य की अलौकिक महिमा-मयी स्तुति की। इस स्तुति को प्रातः सायं और मध्याह्न में पाठ करनेवाले मनुष्य के किसी भी प्रकार का अभाव नहीं रहता। भगवान् सूर्य ने शंकरजी को कहा कि आपकी जय हो आपकी जय हो आप इसे शीघ्र ही त्रिशूल से मार डालिये। इसपर शंकर ने अपने त्रिशूल से अन्धक के ऊपर आक्रमण किया फिर रुद्र के ऊपर अन्धक ने आक्रमण किया। जब शंकरजी ने बाण से अन्धक का भेदन किया तो वैसे ही सैकड़ों अन्धक वहाँ खड़े दीख पड़े। इस मायावी को समेटने के लिये शंकरजी ने मातृका, माहेश्वरी, ब्राह्मी, शौरी, वाडवी, सौवर्णी,

आदि शक्तियां बनाईं जो उसके शरीर से बने सब अन्धकों के रक्त को पी जाय जब इस प्रकार उसे बिना रक्त का कर दिया गया तो वह शम्भु के शूल में चुभा हुआ दिव्य वर्षों तक जीवित रहा और उसने शम्भु की स्तुति की। इसपर प्रसन्न होकर शंकरजी ने उसे भृङ्गीरिटी नामक गणेश बना दिया। फिर भीष्म ने मनुष्य द्वारा देवत्व और सर्व प्रकाश से दैहिक, दैविक उन्नति के विषय में पूछा। पुलस्त्यजी ने ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को देवत्व का मूर्त प्रतीक बताया। वह साक्षात् धर्ममय है भुक्ति और मुक्ति देनेवाला है इसी सम्बन्ध में उन्होंने नारदजी द्वारा ब्रह्माजी से हुए वार्तालाप का अधिकल वर्णन किया। ब्रह्माजी ने कहा जिसके द्वारा ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं इसलिये ब्राह्मण की सेवा करनेवाला परब्रह्म को प्राप्त होता है दान, मान और उचित सेवाओं से ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों की पूजा करनेवाले को सैकड़ों यज्ञों का फल मिलता है। ब्रह्मवेत्ता लोगों की चरणसेवा के लिये जिनका हाथ कष्ट करता है वह श्रीकर हाथ है और तो कर्मकर हाथ हैं विप्रपादरज से पवित्र और उनके जलविन्दु से पवित्र मनुष्य विपत्ति से छूट जाते हैं और स्वर्ग के अधिकारी बनते हैं :-

पितृयज्ञ, विवाह, यज्ञसम्बन्धी कार्य और शान्ति कार्य तथा सभी माङ्गलिक कार्यों में ब्राह्मण प्रधान हैं; देवगण का हव्य, प्रेतादि असुर की बलि और पितरगण कव्य ब्राह्मण के मुख के द्वारा ही ग्रहण करते हैं। विप्र को अभिवादन करनेवाले व्यक्ति की आयु, कीर्ति, यश और धन सब बढ़ते हैं।

ब्राह्मण के पैरों के तीर्थजल का जहाँ कर्दम ( कीचड़ ) नहीं हुआ, उहाँ वेदशास्त्रों की चर्चा का उद्घोष नहीं हुआ और स्वाहा, स्वधा और स्वस्ति जहाँ सर्वथा वर्जित हैं वे घर श्मशान के समान हैं।

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिघोषितानि।

स्वाहास्वधास्वस्तिविर्वर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥

नारद के द्वारा पूज्य और अपूज्य ब्राह्मण के सम्बन्धमें पूछने पर ब्रह्माजी ने



श्रोत्रिय, सदाचारसम्पन्न, सद्बुद्ध, पवित्र ब्राह्मण को ही उत्तम बतलाया। ब्रह्माजी ने श्रोत्रिय ब्राह्मण के लक्षण कहे जन्म से ब्राह्मणत्व, संस्कारों से द्विजत्व और विद्या से विप्रत्व प्राप्त होता है। इन तीन बातों से ही उसका श्रोत्रियत्व होता है।

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।

विद्याया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रियलक्षणम्॥

विद्यापूत, मन्त्रपूत, वेदपूत और तीर्थस्थानों में भ्रमण कर आत्मशुद्ध ब्राह्मण श्रेष्ठ है। नारायणभक्त, शुद्ध अन्तःकरणवाला, जितेन्द्रिय, क्रोध को जीतनेवाला, सब प्राणिमात्र में समभाव रखनेवाला, गुरु, देवता और अतिथि का भक्त, माता-पिता की सेवा करनेवाला, दूसरी व अपनी मां बहनों में किसी प्रकार विकृत भावना न रखनेवाला और पुराण कथाओं का कहनेवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं उनके दर्शनों से पाप कट जाते हैं बलिक सैकड़ों अभ्यसेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है। किसी की परायी वस्तु में तिनके को भी न ले कामक्रोधादि से रहित ब्राह्मण श्रेष्ठ है। नारदजी द्वारा गायत्री के गुणानुवाद सुनने की जिज्ञासा करने पर ब्रह्माजी ने गायत्री मन्त्र का छन्द गायत्री, सविता देवता, शुठ्वर्ण, अग्निमुख और विश्वामित्र ऋषि बतलाया वह ब्रह्मा के शिर पर आरुढ़ है और शिष्य तथा विष्णु के हृदय में स्थित है इसके २४ अक्षरों से शिर से लेकर पाद तक अक्षरों का न्यास करनेवाला व्यक्ति सर्वत्र ब्रह्मलोक का अधिकारी होता है। विप्र के लिये क्या द्विजाति के लिये गायत्री मन्त्र का जप श्रेष्ठत्व प्राप्ति का सोपान है प्राणायाम-युक्त गायत्री का जप करनेवाला व्यक्ति सब पापों से छूट जाता है ऐसा कहा। नारदजी द्वारा प्राणायाम का प्रकार और प्रत्येक अक्षर के देवतादि तथा अङ्ग-न्यास पढ़ने पर ब्रह्माजी ने अनुलोम विधि से पढ़न न्यास विधि का विधि विधान से बतलाया तथा त्रिकाल गायत्री जप का विशेष महत्त्व बतलाया। गायत्रीवापी ब्राह्मण की प्रशस्ति का गुणगान कठिन है ऐसे ब्राह्मणों का आशीर्वाद लेना सर्वदा अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति का साधक होता है। इस पुण्याख्यान को

मुननेवाला व्यक्ति पापों से छुटकारा पाकर अक्षय स्वर्गलोक का अधिकारी हो जाता है। वह इस लोक में विद्या, धन, कीर्ति, पुत्रपौत्रादि से समृद्ध होकर स्वर्ग में देवगण के समान आनन्द उपभोग करता है।

४६

पञ्चविधस्नानानि

४८६

ब्राह्मणपुत्रस्य कथावर्णनम्

४६१

गरुडकथानकम्

४६३

कश्यपगरुडसम्वादकथनम्

४६६

इन्द्रेण कद्रवाः सकाशादमृताहरणम्

५०१

फिर नारदजी के द्वारा अधम ब्राह्मण के सम्बन्ध में पूछने पर ब्रह्माजी ने यतलाया कि दश प्रकार के स्नानों को न करनेवाला, तर्पण आदि से रहित संभ्या और संयम को जीवन का अङ्ग न बनानेवाला ब्राह्मण अधम है देवपूजा, व्रतादि से मुक्त, वेदविद्या को ताक पर रखनेवाला, सत्य, शौच आदि और योग, ज्ञान, यज्ञों से विमुख मनुष्य ब्राह्मण अधम है। पाँच प्रकार के स्नान आग्नेय, भस्म से स्नान, वारुण जल से स्नान, ब्राह्म आपोहिष्ठादि से मार्जन करना, वायव्य गोरज मीष्म और वर्षा का स्नान दिव्य है। तुलसीपत्र मिला हुआ जल, शालग्राम की शिला का जल, गायों के सींग का जल, और विप्र के पादोद्बन्ध ये सबसे मुख्य जल हैं इन सब पतितपावन जल से मनुष्य पवित्र हो जाता है जो उत्तम ब्राह्मण में गुण हैं उनसे रहित ब्राह्मण अधम है। नारदजी द्वारा अधम ब्राह्मण के लक्षण मुनने पर उन्होंने किस पुण्य द्वारा उनका उद्धार हो सकता है यह पूछा तब ब्रह्माजी बोले सब पाप करने के बाद उनके प्रायश्चित्त करने पर जो भविष्य में त्रितेन्द्रिय होकर शुभकर्म करता है वह फिर ब्रह्मत्व का अधिकारी हो जाता है इस विषय में प्राचीन कथानक कहते हुए उन्होंने अपने विवरण की पुष्टि की। प्राचीन समय में एक ब्राह्मण के युवा पुत्र था। धन के

मद में वह अपने नैष्ठिक कर्मों को छोड़कर एक चाण्डालिनी में प्रेमवश रमण करने लगा उसी से उसके वंश की परम्परा चली और पुत्र तथा दौहित्र हो गये । अपने पैतृक परिवार को छोड़ वह उसी परिवार का एक अभिन्न अङ्ग हो गया । परन्तु उसे मदिरा से सदा घृणा थी तथा अभक्ष्य भी वह नहीं लेता था । एक बार चाण्डालिनी ने उसे मदिरा के लिये आम्रह किया परन्तु ब्राह्मण कुमार ने कहा कि इससे मुझे घृणा है और मदिरा के नाम से ही उल्टी होने लगती है । एक दिन मृगों के अन्वेषण में थककर वह ब्राह्मणपुत्र दिन में चाण्डालिनी के यहाँ सो गया और उस दुष्ट ने सोये हुए ब्राह्मण के मुँह में हंसते हुए मदिरा छोड़ दी । उस ब्राह्मण के मुख से अकस्मात् अग्नि प्रगट हुई और उससे सारा घर द्वार सम्पूर्ण बालवर्षों सहित नष्ट हो गया । हाहाकार करते हुए ब्राह्मण विलाप करने लगा उसे यह जानने की इच्छा हुई कि यह अग्नि कैसे उत्पन्न हुई और घर का वाह कैसे हुआ ? तब आकाश से वाणी हुई कि यह ब्राह्मण का तेज था जिससे यह हुआ इस दुर्घटना पर विस्मय करने पर ब्राह्मण को उत्तर मिला कि उसका ब्रह्मतेज नष्ट हो गया है उसे धर्माचरण द्वारा संभल कर अपनी उन्नति करनी चाहिये । उस ब्राह्मण ने मुनिगण के पास जाकर अपने उद्धार के लिये प्रार्थना की । ऋषियों ने चान्द्रायण, कुब्ज चान्द्रायण आदि कई नियमों को कहते हुए उसे भगवद्भक्ति का आदेश दिया जिससे शीघ्र पाप नष्ट होकर वह ब्रह्मत्व को प्राप्त करेगा । इसी प्रसङ्ग में गरुड़ ने अपनी मा विनता के अण्डे से निकलते ही भूख से व्याकुल हो भोजन माँगा तब विनता ने उसे अपने पिता करयप महाराज के पास जो लौहिल के उत्तर तटपर तपस्या कर रहे थे जाकर अपनी भूख को मिटाने का उपाय पूछने को कहा । अपने पिता करयप के पास जाकर गरुड़ ने उनसे भूख की रूति के लिये भक्ष्य माँगा । करयपजी ने कहा इस समुद्र के किनारे हजारों निपाद पापयोनि के लोग रहते हैं, जाओ और उन्हें खाओ परन्तु कहीं भी ब्राह्मण को देखो तो उसे छोड़ देना । गरुड़ ने पिता की आज्ञा से निपादों को खाकर भूख मिटाई परन्तु भूल से एक-

ब्राह्मण को भी निगल लिया परन्तु वह गले में ही अटक गया न तो गरुड़ उसे बाहर निकाल सका न उसे निगल सका। इस कष्ट में फिर गरुड़ कश्यप के पास आया और बोला कि कोई सत्त्व गले में अटक गया है। कश्यप बोले यह ब्राह्मण है तुम्हें मालूम न हुआ। फिर वे ब्राह्मण को पुकार कर अपने पास बुलाने लगे। इस पर ब्राह्मण ने कश्यप से कहा कि ये लोग मेरे मित्र सम्यन्धी, श्यालक, असुर सब हैं हैं इनकी गति ही मेरी गति है। इनके अच्छे या बुरे में मेरा भी स्वर्ग और नरक निहित है। कश्यपजी को आश्चर्य हुआ और वह बोले तुम चाण्डालों के संसर्ग से पतित हो गये हो तुम्हारे प्रायश्चित्त करने पर धर्मानुकूल आचरण द्वारा सिद्ध ब्रह्मत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। ये लोग तो नीच हैं इन्हें छोड़ दो। परन्तु ब्राह्मण अपने हठ पर अड़ा रहा और बार-बार ब्राह्मण द्वारा उन निपादों के छुटकारे की मांग की जाने लगी तथा अपने को भी निगलने के लिये दुराग्रह करने लगा इस प्रकार ब्रह्मवध की आशंका से कश्यप ने गरुड़ से सारे निपादों को फिर बाहर निकालने को कहा। ये सब नीच कर्मों में प्रवृत्त श्लेच्छवृत्तिधारी नाना दिशाओं में नाना रूपों में फैल गये। इनके स्पर्श मात्र से सबैल स्नान करना इष्ट है। फिर गरुड़ने अपनी भूख को मिटाने के लिये उपाय पूछा। इसपर कश्यप ने कश्यप समुद्र के एक भाग में हाथी और कच्छप परस्पर लड़ रहे हैं जाओ उनसे अपनी भूख मिटाओ। गरुड़ अपने पिता की आज्ञा से वहाँ पहुँचा और अपने पै पंखों से उनका भेदन कर उन दोनों को सुरक्षित स्थान पर खाने की इच्छा लेकर आकाश में उड़ा। ऊपर आकर जैसे ही एक जामुन पर बैठकर खा रहा था तब को तैयार हुआ तो योग को न समझालने के कारण शाखा टूट गई। कहीं कहीं ब्राह्मण का नाश न हो जाय इस डर से वह अपने शरीर की शक्ति से जामुन पंखों में दबाये आकाश में ही उड़ता रहा इसे देखकर विष्णु ने उसे इस कारण पूछा। गरुड़ ने अपने सारे परिचय को देते हुए कहा कि ये दो प्राणी हम और कच्छप पिताजी की आज्ञा से समुद्र में लड़ते हुए मुझे मिले हैं; इन्हें देख

ज़े हुए मुझे जामुन के पेड़ पर बैठकर खाने की इच्छा हुई। वह शाखा, जहाँ मैं बैठा  
 टूट गई, अब कहीं ये मेरे से छुटकर ब्राह्मण का नाश न कर दें इसलिये इन्हें लेकर  
 उड़ रहा हूँ। मुझे शंका है कि इस मेरे वेग को मैं कहीं बैठकर सन्तुलित करूँ।  
 प्यु ने अपनी बांह पर बैठ कर इन्हें खाने की अनुमति दी। तब गरुड़ ने कहा  
 रायण के बिना मुझे कोई धारण नहीं कर सकता। विष्णु ने उसे आश्वासन  
 देकर अपना काम सिद्ध करने को कहा। वहाँ बैठने की इच्छा करते ही अपने  
 पंखों से जामुन की शाखा को नीचे ढाल दिया और दोनों को खाने पर भी  
 बसकी भूख न मिटी न वृत्ति ही हुई और वह विष्णु से बोला मेरी भूख अभी नहीं  
 मिटी इस पर अपना बांह घड़ाते हुए वह (विष्णु) बोले तो इसे खाओ उसे  
 आश्चर्य हुआ जैसे-जैसे वह नोचकर भुजा को खाता वहाँ किसी प्रकार घाव  
 या चोंच से प्रग नहीं हुआ। फिर चतुर्भुज विष्णु से सारा परिचय पाकर  
 गरुड़ ने कृतज्ञ होकर कुछ सेवा के लिये आज्ञा मांगी और विष्णु की आज्ञा से  
 वह वाहन हो गया। गरुड़ ने विष्णु से अपने माता-पिता के दर्शनों की आज्ञा  
 मांगी विष्णु ने प्रसन्न होकर अजर अमर होने और किसी भी प्राणी से न  
 मारे जाने का वर दिया तथा शीघ्र ही बिनता को कष्ट से छुड़ाने तथा पूर्ण  
 भोजन से सदा वृत्ति होने का वर दिया। कश्यपजी के पास जाकर यह सारा  
 वृत्तान्त कहते हुए गरुड़ ने अपने पिता से बहुत-बहुत आशीर्वाद प्राप्त किया और  
 भगवान् विष्णु की अविचल भक्ति का उसे उपदेश किया तथा अपनी सौत के द्वारा  
 जो बिनता को कष्ट था उससे उद्धार करने का आदेश दिया। माता बिनता के पास  
 जाने पर उससे आज्ञा ले जाने से वह विष्णु भगवान् के वाहन होने तक की सारी बातें  
 गरुड़ ने कह सुनाई और कोई सेवा करने के लिये माता से आज्ञा मांगी। माता ने  
 कद्रू के द्वारा खरीद कर दासी बनाने और कैसे सूर्य के सफेद घोड़ों के विषय में  
 वाद विवाद में शर्त रखने तथा अपने सर्प पुत्रों के द्वारा छल से घोड़ों पर चिपट  
 जाने से उनका काला रंग होने पर दासी होने का दुःखद वृत्तान्त कह सुनाया

और गरुड़ से इस कष्ट से जल्दी छुटकारा दिलाने को कहा। जिस समय तक उस अभीष्टद्रव्य और यह बात उलटी नहीं होती तब तक मैं उसकी दासी हूँ। गरुड़ उन नागों को खाने और माता के दुःखों का अन्त करने का वचन दिया। यिनता फिर कद्रू के पास गई और इस दुःख से छूटने का मार्ग पूछा। कद्रू ने अमृत लाने के लिये कहा। गरुड़ से अमृत के लिये कहने पर उसने भरी और यह शीघ्र ही कश्यप से इस सम्बन्ध पूछने गया। कश्यप ने की कठिन रक्षा और उसे प्राप्त करने की जटिल समस्या को बतलाया। गरुड़ ने सब सिद्ध होने का वचन देकर अमृत लाने के लिये प्रस्थान किया। स्वर्ग में गरुड़ ने बहुत कठिनाई से अमृत के रक्षकों को युद्ध में हराकर उसे प्राप्त किया और अमृतपट को लेकर उड़ा और माता को देकर कद्रू से उसकी दासी बनने में छुटकारा दिखाया। उस अमृत को अपने पुत्रों को देने के लिये कद्रू ने रक्तविसे इन्द्र चुरा ले गये और विष उस स्थान पर रखा दिया उसे सर्पों के पिछा कर माना ने अपना मन राजी किया। इधर गरुड़ ने सर्पों को खाना आरम्भ किया और तभी से सर्प सब क्षिपकर रहने लगे। गरुड़ अपने माना-पिता से आजा होकर विष्णुलोक में भगवान् विष्णु की सेवा के लिये चले गये।

इस गरुड़-परिच को पढ़ने व सुननेवाला सब पापों से मुक्त हो जाता।

५० कस्यपोपदेशेन चाण्डालपतितद्विजस्य सदाचाराचरणेन स्वर्गप्राप्तिः	५०२
ब्राह्मणपीडनादौ नानाविधदुःखप्राप्तिवर्णनम्	५०३
ब्राह्मणानामुपजीव्यवृत्तिवर्णनम्	५०४
सत्यस्य प्रशंसावर्णनम्	५०७
गोमाहात्म्यवर्णनम्	५०८
कपिलागोदानादिविधिः	५११

प्रज्ञा ने चाण्डाल-संसर्ग से पतित ब्राह्मण के सम्बन्ध में बतलाया कि वह नाना प्रकार से शोकाकुल होकर कश्यप ऋषि के पास गया और उनसे अपने लिये श्रेयोमूलक हितकारी मार्ग के लिये एवं पापों से छूटने के लिये प्रार्थना की। अब ग्लेच्छों के संसर्ग से उपशान्त हो गये हो तो गायत्री के जप, होम और चान्द्रायण आदि प्रव्र को करते हुए भगवान् हरि का ध्यान करो तीर्थों में स्नान आदि को जीवन की चर्या बनाओ जिससे शीघ्र ही पापरूपी कीचड़ से छुटकारा हो जायगा और पापों के छूटते ही ब्राह्मण हो जाओगे। मुनि के कथनानुसार उसी प्रकार आचरण कर वह ब्राह्मण फिर अपने उच्च कर्मों का अधिकारी बना तथा तपस्या द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त हुआ। अनाचार से इस ब्राह्मण आचार से देवत्व की प्रतिष्ठा कर लेता है। “अनाचाराद्भवो विप्र ! आचारात्सुरवाम्भजेत्” नारद के पूछने पर जैसे द्विजोत्तम लोगों के पूजने से उत्तम गति प्राप्त होती है उसी प्रकार द्विजों को पीड़न करने से क्या गति प्राप्त होती है ? प्रज्ञा बोले कि उनके अपमान से महारौरव नरक का भागी मनुष्य होता है भूय से व्याकुल को सन्तुष्ट न करने से रोगी और द्रिष्ट होता है। इसी प्रकार नाना परिस्थितियों में भिन्न तरह से यन्त्रणा व अपमान करनेवाले की सदा दुर्गति एवं उसे नीच योनियों में जाकर दुःख भोगना पड़ता है। प्रकृत्य हरनेवाले को सदा

और गरुड़ से इस कष्ट से जल्दी छुटकारा दिलाने को कहा। जिस समय तक उन अभीष्टद्रव्य और यह बात बलती नहीं होती तब तक मैं उसकी दासी हूँ। तब उन नागों को खाने और माता के दुःखों का अन्त करने का वचन दित यिनता फिर कद्रू के पास गई और इस दुःख से छूटने का मार्ग पूछा। कद्रू ने अमृत छाने के लिये कहा। गरुड़ से अमृत के लिये कहने पर उन्ने भरी और यह शीघ्र ही कश्यप से इस सम्बन्ध पूछने गया। कश्यप ने क की कठिन रक्षा और उसे प्राप्त करने की जटिल समस्या को बतलाया। दस सय सिद्ध होने का वचन देकर अमृत छाने के लिये प्रस्थान किया। स्त्री ने दस बहुत कठिनाई से अमृत के रक्षकों को युद्ध में हराकर उसे प्राप्त किया और अमृतपट को लेकर उड़ा और माता को देकर कद्रू से उसकी दासी बनने छुटकारा दिलाया। उस अमृत को अपने पुत्रों को देने के लिये कद्रू ने (१५) जिसे इन्द्र चुरा ले गये और बिष उस स्थान पर रख दिया उसे सभी के पिछा कर माता ने अपना मन राजी किया। इधर गरुड़ ने सभी के खाना आरम्भ किया और तभी से सप सव द्विपकर रहने लगे। गरुड़ ने माता-पिता से आज्ञा लेकर विष्णुलोक में भगवान् विष्णु की सेवा के लिये चले गये।

इस गरुड़-चरित्र को पढ़ने व सुननेवाला सब पापों से मुक्त हो जाता है।



५० कश्यपोपदेशेन चाण्डालपतितद्विजस्य सदाचाराचरणेन स्वर्गप्राप्तिः	५०२
ब्राह्मणपीडनादौ नानाविधदुःखप्राप्तिवर्णनम्	५०३
ब्राह्मणानामुपजीव्यवृत्तिवर्णनम्	५०४
सत्यस्य प्रशंसवर्णनम्	५०७
गोमाहात्म्यवर्णनम्	५०६
कपिलागोदानादिविधिः	५११

ब्रह्मा ने चाण्डाल-संसर्ग से पतित ब्राह्मण के सम्बन्ध में बतलाया कि वह नाना प्रकार से शोकाकुल होकर कश्यप ऋषि के पास गया और उनसे अपने लिये त्रेयोमूलक हितकारी मार्ग के लिये एवं पापों से छूटने के लिये प्रार्थना की। तब ब्रह्मण्य के संसर्ग से उपशान्त हो गये हो तो गायत्री के जप, होम और चान्द्रायण आदि व्रत को करते हुए भगवान् हरि का ध्यान करो तीर्थों में स्नान आदि को जीवन की चर्या बनाओ जिससे शीघ्र ही पापरूपी कीचड़ से छुटकारा हो जायगा और पापों के छूटते ही ब्राह्मण हो जाओगे। मुनि के कथनानुसार उसी प्रकार आचरण कर वह ब्राह्मण फिर अपने वृक्ष कर्मों का अधिकारी बना तथा तपस्या द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त हुआ। अनाचार से हत ब्राह्मण आचार से देवत्व की प्रतिष्ठा कर लेता है। “अनाचाराद्धतो विप्र ! आचारात्सुरताम्रजेत्” नारद के पृथ्वी पर जैसे द्विजोत्तम लोगों के पूजने से उत्तम गति प्राप्त होती है उसी प्रकार द्विजों को पीड़न करने से क्या गति प्राप्त होती है ? ब्रह्मा बोले कि उनके अपमान से महारौरव नरक का भागी मनुष्य होता है भूख से व्याकुल को सन्तुष्ट न करने से रोगी और दुःखी होता है। इसी प्रकार नाना परिस्थितियों में भिन्न तरह से यन्त्रणा व अपमान करनेवाले की सदा दुर्गति एवं उसे नीच योनियों में जाकर दुःख भोगना पड़ता है। ब्रह्मत्व हरनेवाले को सदा

नारकीय-गति मिलती है, इसी प्रकार ब्राह्मणी या गुरुपत्नी से सङ्गम करने से रौरव नरक मिलता है फिर नारद द्वारा ब्राह्मण के वध के सम्वन्ध में पूछने पर ब्रह्माजी ने घोर पातकी होने तथा विविध प्रकार के पापों का परिगणन किया। आततायी को मारने से कहीं भी पाप नहीं लगता है प्रकार के आततायी हैं;— अग्नि लगानेवाला, विष देनेवाला, धन हरनेवाला, सोये हुए को मारनेवाला, स्वेत और स्त्री की चोरी करनेवाला ये छै प्रकार के आततायी हैं “आततायि-न्मायान्तमपिवेदान्तर्गं रणे जिघांसन्तं जिघांसेष्वनतेन ब्रह्महाभवेत्।” ब्राह्मण अपनी वृत्ति को बिना पाप किये किस प्रकार चलावे नारद के इस प्रश्न पर ब्रह्माजी ने कहा बिना मागे जो वृत्ति मिलती है वह प्रशस्त है उष्ण (खेतों में किसान के द्वारा खलिहान में से अन्न निकाल लेने पर बचे हुए दानों को चुनने की) वृत्ति, भद्रा और सबसे अच्छी है। पढ़ाकर, यज्ञ कराकर ब्राह्मण धन ले सकता है। उपर्युक्त वृत्ति में प्रभूत धनधान्यादि प्राप्त होने पर उन्हें पितर, देवता और द्विजाति के कल्याण में लगा दे। इस वृत्ति के न मिलने पर क्षत्रिय वृत्ति शास्त्र प्रक्रिया का अवलम्ब लेकर जीवन चलावे “अभावात्क्षत्रिया वृत्तिर्ब्राह्मणैरुपजी-व्यते” और सदैव धर्मयुद्ध करे इसमें प्राण छुटने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है सभी वर्णों को आपत्काल में इस वृत्ति से पर स्थान मिलता है। विपत्ति में वैश्य वृत्ति भी ब्राह्मण करे कृषि वाणिज्य करता हुआ भी अपना पद कर्म न छोड़े “कारयेत्कृषिवाणिज्यं विप्रकर्म न च त्यजेत्”। तोलने जोखने में बेईमानी करने से ब्राह्मण नीचे गिरता है। अतः वणिग्वृत्ति में उसे कभी काम में न ले। सदा अपना शुद्ध व्यवहार रखे। सत्य की भारी महिमा गाई, गई है एक ओर हजार अश्वमेध-यज्ञ और एक ओर सत्य रहे तो भी सत्य का पलड़ा भारी है। ‘नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतत्पातकम्परम्। अश्वमेधसहस्रं तु सत्यञ्च तुलया धृतम्। अश्वमेधसहस्रादि सत्यमेव विशिष्यते’ ॥ जीवन में लोभ की मात्रा अधिक न

जब इस वृत्ति में धन प्राप्त हो तो उसे उसी प्रकार देव, पितर और

रीसानों में लगा दे। कृषि में ब्राह्मण पुण्य कर्म द्वारा प्रवृत्त हो; जैसे, चार बैलों  
 ाल खाली आधे दिन चलावें; उन्हें खूब चारा बिना कांटों का चरावे, उनके  
 देने का गोष्ठ भली प्रकार साफ हो जैसे अपने रहने का स्थान उतना ही स्वच्छ  
 रीर दुर्गन्धरहित बनावें। अपने आत्मा के समान गोपालन करनेवाला धनी  
 ोता है धन्य है गोपालन। दुर्बल रोगी और बहुत छोटी अवस्था के तथा बहुत  
 े बैल को हल में जोतनेवाले को गोहत्या का पाप होता है। उन्हें किसी भी  
 कार यातना कष्ट देनेवाल नरकगामी होता मुट्ठी भर घास गौ को खिलाने से  
 ण छूट जाता है और स्वर्ग का भागी होता है विप्र और गौ दोनों समान हैं  
 लकी पूजा का समान फल है मनुष्यों में ब्रह्मविद् रहस्य आध्यात्मचिन्तन में  
 ाह्मण मुख्य हैं और पशुधन में गौ श्रेष्ठ है जो सर्वथा मानव का कल्याण कर  
 पना अस्तित्व स्थिर बनाती है। नारद को जब पशु गौ और मनुष्य ब्राह्मण  
 ो समान बताया गया तो उन्हें आश्चर्य हुआ और विशेष रूप से ब्राह्मण का ब्रह्मा  
 े मुख से उत्पन्न होने की बात से असुकरता बढ़ गई। ब्रह्मा ने ब्राह्मण और गौ  
 ो एक पिण्ड और एक क्रिया में उपयोगी होने की बात बताकर उत्पत्ति का  
 ऋण बतलाया। सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा के मुख से महत्तेज का आविर्भाव हुआ;  
 उसके चार भाग वेद, अग्नि, गौ और द्विज हुए पहले उपरोक्त क्रम से चारों हुए  
 ेवों को ज्ञान प्रसार की विशेषता तथा सृष्टि की स्थिति के लिये सर्वत्र समान  
 आवश्यकता है फिर आज्यरूपी हव्य को देवगण की रुप्ति के लिये अग्नि द्वारा  
 पड़वाने के लिये उसकी आवश्यक स्थिति है आज्य गाय से प्राप्त होता है और  
 ब्राह्मण द्वारा उसे विधिपूर्वक “परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ” के अनुसार  
 विनियोग होने से चारों उपयोगी हैं इन्हीं से सम्पूर्ण अण्ड ब्रह्माण्ड की धारणा  
 है अतः गौ का महत्त्व किसी भी अंश में कम नहीं इनके शरीर से ही मृत्यु के  
 बाद ब्रह्मलोक मिलना है गाय में किञ्चिन्मात्र भी दोष नहीं रहता गौ के मूत्र,  
 गोबर, दूध, क्षीर, दही, घृत सभी पवित्र हैं इनके भक्षण से शरीर में पाप और

मल एक क्षण भी नहीं टिक सकते इसीलिये घृत, दधि और दुग्ध पार्मिकस  
 सदा काम में लेते हैं गन्ध की भोजन में कमी से शरीर पृतियुत हो जाता है।  
 शास्त्रनिर्मित हविष्य से बना भोजन सदा विधिवत् सेवन करने से अधिक  
 गुणकारी है ( यही विशेषरूप से गौ का महस्त्व प्रतिपादन में पृथ्वी का विशेष  
 विवरण समझना चाहिए क्योंकि उसी से सम्पूर्ण अन्न आदि यज्ञ द्रव्य प्राप्त  
 होते हैं और जीवन की स्थिति इसी अमृततुल्य अन्न, फल, मेवा और अन्न  
 आदरयक उपकरण प्रस्तुत करने से स्थायी होती है। ) फिर नारद ने किन-  
 किन गायों का कय-कय विशिष्ट प्रयोग करने से क्या-क्या पुण्य होता है यह  
 पूजा और ब्रह्मा ने कहा प्रातः सङ्कल्पश्रुति कर गोधन का अभिषेचन करनेवाले  
 व्यक्ति को अश्वय स्युर्ग की प्राप्ति होती है। सात प्रश्रुति से यश, मान, और  
 आयुष्य एवं धन मिलता है गाय के मीन का पानी अभिषेक के बराबर है गाय के  
 प्रत्येक छोम में देवगज का घाम पताया गया। भगवान् विष्णु का निवास  
 गौधर्मा में है गाय के मुर से उठी रज्ज को जो शिरपर धारण करता है वह सब  
 पापों से छूट जाता है। दश प्रकार की गायों के दान के सम्बन्ध में पूजने पर  
 ब्रह्मा ने कविता गाय, भूयवर्ण की गाय, श्वेत गाय, पीली गाय, नीली गाय,  
 इनके दान का अश्वय पुण्य बतलाया; त्रिम गर्भवती गाय को जो मास के बाद  
 धातम प्रसूता होने पर दान दिया जाय और वह सब प्रकार के आनन्द  
 सुखों की प्राप्ति कर वेद पारंग योग्य व्यक्ति को दी जाय तो विष्णु  
 लोक की प्राप्ति होती है: १० गायों के दान के समान एक श्वेत दान का महत्त्व  
 है अतः सायक को छोड़ना इष्ट है इस प्रकार इस महती गाय और श्वेत  
 माहात्म्य को जो सुनता है वह सायक जन्म के पापों से तत्काळ मुक्ति पाता है।

१	ब्रह्मतेजोवर्द्धनार्थकनित्यकर्मवर्णनम्	५१२
	तर्पणविधानवर्णनम्	५१५
	सदाचारवर्णनम्	५१७
	धर्मवीजपापवीजप्रसूतनरलक्षणवर्णनम्	५१९

नारद के यह पृष्ठने पर कि ब्रह्मतेज किस आचरण से बढ़ता है और स आचरण घटता है ? ब्रह्मा बोले प्रातः शय्या त्याग के बाद वैश्याग और यवान् महापुरुषों का नित्य स्मरण करे सात चिरजीवियों को और पुण्य लोक महानुभावों का स्मरण करने से ब्रह्माहत्यादि जैसे पापों से मनुष्य छूटा है। फिर शुद्ध स्थान में जाकर मलमूत्र का त्याग करे लुटुम्बर ( गूलर ) दि दन्तफाष्ट से दंतौन करे फिर स्नान कर सन्ध्यावन्दन करे। स्नान में चेका का लेप प्रशस्त है प्रातःस्नान के महात्म्य का वर्णन फिर सन्ध्या के समय तर्पण का विधान, तर्पण प्रकरण में जल के देवता आदि का विधान पूछा गाने कहा जल का देवता विष्णु है जलपूत से पवित्र मनुष्य विष्णुमय है जल से कुश का सम्पर्क है विरोप लाभदायक है यह भी सर्वदेवमय है, इसके मूल में ब्रह्मा, धीच में विष्णु और अग्रभाग में शङ्कर जानो कुश हाथ में लेकर स्तोत्र मन्त्रादि का पाठ शतशुभा फल देते हैं सात प्रकार की कुश है। पितृतर्पण का विरोप महर्षि पितृतर्पण युगादि और अमावास्या को करना है। जल में गोले पत्थों से तर्पण करे बाहर निकलकर सूखे वस्त्र पहन कर करे। तर्पण की अनिवार्यता इसलिये है कि स्नानार्थी के पितर देवतागणों के साथ वायु होकर जाते हैं पास से गयाकुल होकर यदि वस्त्र निष्पीड़न करे ( घोती को नीचोड़ दे ) बिना तर्पण किये तो वे निराश होकर चले जाते हैं प्रबि दिन स्नान तर्पण करनेवाला व्यक्ति श्रेष्ठ है। भिन्न-भिन्न कामनाओं को लेकर श्रीगणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, और दुर्गा का पूजन करे देवताओं का पूजन कर वैश्वदेव बलि करे

और वहि कार्य कर ब्राह्मण तर्पण यज्ञ करे इस प्रकार करने से मनुष्य उन्नति को प्राप्त करता है। नारद के यह पूछने पर कि मनुष्यों के समान देवगण पितरों के साथ जल नहीं पाते इसपर ब्रह्मा बोले कि मैंने जल को सर्वदेवमय अमृतरूप में बनाया उसके रक्षण के लिये रक्ष और यक्ष धनुर्धारी छोड़े; वे मेरी आज्ञा से देव और पितरों को मार देते हैं मनुष्य को नहीं। इसलिये मनुष्यों के देने से ही उन्हें जल मिलता है; स्वयं नहीं। बिना स्नान के खानेवाला मल ( अस्वस्थ का घोंप नहीं) खाता है। स्नान कर बिना जप किये खानेवाला पूय शोणित (रक्त) खाता है नित्य तर्पण न करनेवाला पितृघाती है। देवपूजन न करने से ब्रह्महत्या के समान पाप होता है। सन्ध्याकृत्य न करने से पापी पुरुष सूर्य के तेज का नारा करता है। नारद के द्वारा ब्राह्मण और वणों के सदा पूछने पर ब्रह्मा ने आचारमय जीवन का सुख, आयु, स्वर्ग मोक्ष और सभी सुराई को समूळ नारा करनेवाला बताया अनाचारी व्यक्ति का सर्वत्र ही पतन इष्ट है वह निन्दित्र, दुःखभागी, व्याधित और अल्पायु होता है; आचार से इस लोक और निःश्रेयस की सिद्धि बताई। घर में प्रलेपन कर बैठने के स्थान आदि को जल से शुद्ध कर ले नाना पात्रों की शुद्धि; कांस्य पात्र की भस्म से, ताम्र की अम्ल ( खटाई ) से, लोहे की अग्नि से, शिलापात्र तैल से और सोने-चान्दी के बर्तनों को जलमात्र से शुद्धि बताई।

शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमण्डलुः ।

आत्मनः कथिताः शुद्धा न परेषां कदाचन ॥

सोने का पलङ्क व सामग्री, स्त्री, बालक, वस्त्र, उपवीत (यज्ञोपवीत) व कमण्डलु ये स्वयं के ही शुद्ध हैं दूसरे के नहीं। एक वस्त्र पहने भोजन न करे, एक वस्त्र को लेकर स्नान न करे, दूसरे का वस्त्र कभी न पहने। केश और दांतों का संस्कार प्रातःकाल करे अपने से बड़ों का अभिवादन नित्य करे। हाथ-पैर और मुख धोकर ही भोजन करे ऐसा करनेवाला शतायु होता है। बड़ी वनस्पति, वृक्ष, गौ, देवता, पृथ, मधु और चौराहे को प्रदक्षिण क्रम से पार करे। जूते मुंह रख अग्नि

ब्राह्मण, देवता, गुरु, अपना शिर, पुष्प का पौधा, यज्ञ का वृक्ष, और पापी को न छूए। मलत्याग करने के समय किन-किन को न देखे उसका वर्णन, मलत्याग के निषिद्ध स्थानों का वर्णन। मंगल को क्षौर न करावे जिन लोगों को रास्ते में बाधा न दे उनका विवरण। राजा, विप्र, श्रोत्रिय, श्रेष्ठ और वैद्य से विवाद न करे। ब्राह्मणी और गुरुपत्नी से दूर रहे। ऐसी स्त्री जो प्रमत्त, अधिकाङ्गी, निर्लज्ज, बाह्याचारवाली, व्यव करनेवाली, अनाचारा हो उससे संसर्ग न करे मलिन गुरुपत्नी का अभिवादन न करे उससे देखा न करे उसकी वाणी का श्रावण अवश्य करे। अपनी पुत्र-वधू, भाई की स्त्री, अपनी युवती पुत्री और दूसरी की स्त्री तथा गुरुपत्नी को न देखे व न छूवे। उनके साथ बोलना भ्रूभङ्ग से देना, कलह करना, निर्लज्जता से बातें करना, सदैव वन्द रखे। तुप, अन्नार, अस्त्रि और भस्म में पैर न लगावे। दुष्ट के साथ न रहे, न भाषण करे, अपने से छोटे चाचा और मामा का अभिवादन न करे, केवल उठकर साञ्जलि वासन प्रदान करे। गीले पैर सोना, सूखे पैर से भोजन, अन्धकार में शयन और भोजन कभी न करे। किन-किन दिशाओं में बैठकर दन्वधायन और शयन करना यह कहा है। पूर्व और दक्षिण को शिर करके सोये ऐसा न करने से आयुः क्षीण हो जाती है। चारों दिशाओं में भोजन करना प्रशस्त है। एक भोजी देवता, दो समय भोजी मनुष्य, प्रेत दैत्य आदि तीन बार और कौणप चार बार खाता है। धर्म योज तथा पाप योज से प्रसून मनुष्य के लक्षण।

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये वसन्ति ।

दानं प्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणम् ॥

कार्पण्यश्रुतिः स्वत्रनेषु निन्दा कुपैलता नीचजनेषु भक्तिः ।

अतीवरोषः कटुका च वाणी नरस्य चिन्हं नरकागतस्य ॥

प्रशस्त दान, मधुर वाणी, देवार्चन और ब्राह्मणों का तर्पण जिस मनुष्य के यहाँ होता है वह भोष्ट है। कुपणता, अपने परिवारवालों में निन्दा, मलिन वस्त्र,

नीच लोगों से प्रेम, अतीव रोष और कटु वचन ये नारकी एवं नरकगामी पुत्र के लक्षण हैं।

नवनीत के समान सुन्दरवाणी, करुणा से कोमल मन इससे समझो यह मनुष्य धर्मबीज प्रसूत है। दया जिसके हृदय में न हो तथा वाणी कर्करा हो वह पापबीज प्रसूत का लक्षण है। सात्त्विक मनुष्य इन सदाचारों का सुनना और सुनाना बराबर रखे इससे अवश्य ही पापों से बचकर भगवत्सन्निधि प्राप्त करता है।

५२	पित्रर्चाप्रशंसायां मूकाख्यानम्	५२०
	पित्रनादरे कृते सति पापम्	५२१.
	पतिव्रतालक्षणवर्णनम्	५२३
	मित्राद्रोहप्रशंसायामद्रोहकथानकम्	५२५
	पुत्रस्य कर्तव्यनिरूपणम्	५३१
	पितृपूजामहत्त्ववर्णनम्	५३३
	चूड़ामणियोगकथनम्	५३५
	श्राद्धप्रशंसावर्णनम्	५३७
	श्राद्धासमर्थस्य कर्तव्यनिर्णयः	५३६

भीष्म द्वारा अधिकाधिक पुण्य देनेवाले पूर्वजों द्वारा किये हुए शुभ कर्मों के पूछने पर पुलस्त्य ने व्यासजी के द्वारा कहे हुए द्विजों को पित्रर्चाका सुन्दर आख्यान बताया। माता-पिता की भक्ति, पति की सेवा, सब जनों में समता, मित्रों से अद्रोह और विष्णु की भक्ति ये महायज्ञ हैं। माता-पिता की सेवा से पढ़ा धर्म और तप कोई भी नहीं है उनके सन्तुष्ट होने से सब देवगण सन्तुष्ट होजाते हैं माता सब तीर्थमयी है पिता सर्व देवमय है उनकी सय यत्न से पूजा



मेरे माता-पिता की अभिवादनपूर्वक प्रदक्षिणा करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण  
 मूमण्डल की परिग्रमा का फल पा लेता है। उनका वन्दन करनेवाला व्यक्ति धन्य  
 है। उनका विरस्कार करनेवाला कल्प तक नरक में जाता है। माता-पिता  
 की सेवा किसी भी रूप में न छोड़े। माता-पिता की सेवा किये बिना भले ही  
 कितने ही तीर्थों का सेवन करनेवाला पुत्र हो, वह नरक भागी होता है। कोई  
 नरोत्तम नाम का एक ब्राह्मण था उसके तीर्थ सेवन की इच्छा हुई, अपने माता-  
 पिता को छोड़कर वह तीर्थव्रतचर्या में लगा उसकी तपस्या के प्रभाव से स्नान  
 के बल आकारा में सूखते थे। उसे अभिमान हुआ उसने उड़ते हुए बगुले को  
 जल दिया इससे तप क्षीण हुआ अब आकारा में बल नहीं सूखता था उसे  
 मन में बड़ी ग्लानि हुई इसपर आकारावाणी हुई कि हे विप्र ! मूक नामक परम  
 धार्मिक चाण्डाल के पास जाओ वहाँ तुम्हें धर्म का ज्ञान होगा। वहाँ से  
 वह मूक चाण्डाल के पास गये। मूक अपने माता-पिता की सेवा में तन्मय था  
 सरी में गरम जल से उनकी परिचर्या और यथाशक्ति उन्हें प्रसन्न करने में  
 लगा उन्हें खिलाकर खाता उनको सब प्रकार के मुर पढ़वाने की चेष्टा करता  
 इन पुण्यों से भगवान् विष्णु दीर्घकाल से उसके वहाँ निवास करते थे। उसका  
 मन्दिर आधार स्तम्भ के बिना ही अधर में शोभित था। यह सब देख ब्राह्मण को  
 बड़ा आश्चर्य हुआ और मूक से अपनी सब बातें बतलाकर वास्तविक बात  
 करने का अनुरोध करने लगा। मूक ने कहा मैं अपने माता-पिता की सेवा-भक्ति  
 करता हूँ उन्हें सन्तुष्ट कर आपका कार्य करूँगा कृपया द्वार पर बिराजिये। आप  
 का आशिष्य करूँगा। इसपर ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर मूक को भर्त्सना दी और  
 कहा मुझे ब्राह्मण को छोड़ क्या अधिक कार्य है ? मूकने कहा मैं यह बगुला  
 पाली हूँ जिसे आपने जल दिया। न अब स्नान का बल आकारा में सूखता है  
 और न रहता है। देववाणी होने से आप मेरे पाम आये हैं अबकाश होते ही  
 आपसे बातें बताऊँगा, नहीं तो पतिव्रता के पास जाइये उससे आपका सब काम

सिद्ध होगा। उसके घर से उसी समय छद्म वेप में विष्णु ब्राह्मण बनकर आये और इस ब्राह्मण को पतिव्रता के घर लिवा ले गये। ब्राह्मण ने छिपे वेपशाही विष्णु से कहा हे विप्र ! इस चाण्डाल के घर में क्यों रहते हो ? भगवान् बोले अभी तेरा मन पवित्र नहीं हुआ पतिव्रतादि को देखने से तू मुझे जान जायगा। ब्राह्मण के पतिव्रता के परिचय के सम्बन्ध में पूछने पर भगवान् ने पतिव्रता की असीम शक्तियों की प्रशंसा की। आगे पतिव्रता के लक्षण बताते हुए भगवान् ने कार्य में दासी, रति में मनमोहक भाव, अनुभाष आदि से वेश्या, भोजन में जननी समान व विपत्ति में पति की मन्त्रिणी जो हो वह पतिव्रता है। किसी भी आत्मीय या अन्य व्यक्ति को अच्छे वस्त्र पहने देख कर जिसे पर पुत्र की भावना होती है वह पतिव्रता है। उस पतिव्रता के आठ पत्नियाँ हैं उसका शुभ नाम है उसके पाम धर्म के विषय में पूछो। भगवान् अन्तर्धान कर गये ब्राह्मण और भी आश्चर्य करने लगा। उसने साध्वी पतिव्रता के घर जाकर पतिव्रता के विषय में पूछा। द्वार पर आते ही ब्राह्मण ने अपने दिन त्रियमार्ग के किसे प्रश्न किया। पतिव्रता ने कहा पति की सेवा के बाद आपका आतिथ्य करूँगी। ब्राह्मण ने कहा कि मुझे न भूल है और न व्यास है। यदि मुझे अभीष्ट न बनाओगी तो मैं तुम्हें धार देदूँगा। इस पर पतिव्रता ने कहा मैं यह वक नही हूँ ओ भान हो जाऊँ। आपको यदि जरूरी है तो धर्म तुलाधार के पास जाइये और अपनी दिनमार्ग पूछिये। यह कह पतिव्रता घर में चली गई और ब्राह्मण ने चाण्डाल के घर से निकलते विप्र के समान वहाँ भी वैसा ही ब्राह्मण देखा। तबने (छद्मेशी भगवान्) ब्राह्मण से पूछा यह पतिव्रता दूरस्थित मेरे सम्बन्ध में श्रुता कैसे जान गई ? इसपर भगवान् ने कहा अनिष्टुभ्य और महाभारत से सब संभव है। तबने पूछा कि पतिव्रता ने क्या कहा तो ब्राह्मण बोला तुलाधार से पूछने की वृत्ति। भगवान् ने कहा चलो मैं तुम्हें पढ़ूँगा देता हूँ उसके ब्यास की सूचना देते हुए भगवान् ने कहा उहा पुरुषों की ओर है और अन्ध-विक्रम होना है वही दुष्ट

वैश्य है, अपने सत्य व्यवहार से सब कुछ करता है प्राणों की बन आने पर भी वह उससे विचलित नहीं होता। चलते-चलते वे दोनों वैश्य के यहां पहुंचे उन्होंने मीले कपड़े और कुचेले दांतोंवाले तुलाधार को अपने आगत सभी ग्राहकों को जिनमें स्त्री और पुरुष दोनों थे, बड़े सद्व्यवहार से सब खरीदी जानेवाली चीजों के दाम बताते देखा उससे सब राजी थे। विप्र ने अपने धर्म के उद्देश्य के विषय में पूछा तुलाधार ने कहा इन सब ग्राहकों से सलटने के बाद मैं आपको बता सकता हूं जल्दी हो तो धर्माकर के पास जाइये उसके उपदेश देने से आपका हित राख है। उसने भी सद्यः पूर्व यातें कहीं और ब्राह्मण सज्जनद्रोहक के पास जाने को तैयार हुआ। भगवान् उसी छिपे षेप में उसके साथ धर्माकर के यहां गये विप्र के सन्देश करने पर हरि भगवान् ने कहा 'सत्य की साधना से तुलाधार को तीनों लोकों में विशिष्टता प्राप्त हुई है। सत्य से बड़ा धर्म नहीं, झूठ से बड़ा पाप नहीं "नास्तिसत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातकम्परम्" सत्यवादी के यहां दिव्यगुणों का वास हो जाता है भगवान् सर्वान्तर्यामी का सत्य साधक के हृदय मन्दिर में वास होता है। अद्रोहक के विषय में भगवान् ने कहा कि एक बार अद्रोहक के पुर में राजा को विशेष कार्य से बाहर जाने का अवसर आया। अपनी सुलभणा स्त्री को कहा छोड़े जिससे उसका पातिव्रत्य पूर्ण रक्षित हो यह सोचकर वह अद्रोहक के पास आया और अपनी स्त्री को रखने के लिये बोला। अद्रोहक ने अपनी असमर्थता बतलाते हुए क्षमा मांगी। परन्तु राजा ने बहुत अनुरोधपूर्वक उसे रक्षार्थ छोड़ना आवश्यक है यह कहा। इसपर अद्रोहक ने कहा यदि आपको यह इष्ट हो कि मेरे तत्त्व ( विज्ञान ) पर ही यह मेरी स्त्री के साथ सोये तो रख सकते हैं अन्यथा आप ले जावें। इसपर विचार कर राजा ने यथोचित करने की स्वीकृति देदी। अपनी स्त्री से भी उसने यह बात कह दी। रात्रि में दोनों स्त्रियों के बीच में वह सोता। अपनी स्त्री के साथ और कन्या समान राजा की स्त्री के साथ उसके व्यवहार पृथक्-पृथक् थे, अपने आपको राजारानी के

प्रति पुत्र बनाता और मानता और स्त्री के साथ धर्मपत्नी का व्यवहार करता है मास वह राजा लौटा । नगर के लोगों ने बड़ी बुराई की उनमें अच्छे भी थे भी थे । परन्तु अद्रोहक का मन नहीं माना और जलती अग्नि की लकड़ी के ढेर के सचन्दन कर अपने जनापवाद के भय से उसमें जलने की तैयारी में लगा । राज अद्रोहक के पास आया और अपनी स्त्री को प्रसन्नबदन और विषादपूर्ण अद्रोहक को देखा और उससे कुशलता पूछी । अद्रोहक ने अग्नि की धधकती ज्वाला में राजा के हित से जो जनापवाद फैला उसे मार्जन करने के लिये अपने आपको अर्पण किया । आश्चर्य है कि अग्नि ठण्डी हो गई । ऊपर से देवगण आकर पुष्प वर्षा करने लगे । जिन्होंने उसकी बुराई की थी उनके मुखों में विविध कुष्ठ हो गये । देवगणों ने उसका नाम सज्जनाद्रोहक रक्खा । काम को जीतनेवाले अद्रोहक का आदर्श भी अपूर्व हुआ उसकी दिव्यदृष्टि हो गई और ब्राह्मण ने इस प्रकार अद्रोहक के विषय में जानकर उससे अपना मन्तव्य कहा । अद्रोहक ने धर्मश वैष्णव के पास जाने के लिये कहा और वह बगुले का भक्ष्य होना तथा वस्त्र के आकार में उड़ाने व सुखने का भी विशेष विवरण देकर उसके मन की बात बतलायेगा ऐसा कहा । फिर ब्राह्मण वेपधारी विष्णु उसे वैष्णव के यहाँ ले गये । उस परम भागवत को ध्यानस्थ देखकर विप्र ने अपना मन्तव्य पूरा करने का अनुरोध किया । अपने यहाँ आये हुए अतिथि का सत्कार कर वैष्णव ने कहा आप घर में भगवान् के दर्शन कीजिये तब आपका सब कल्याण होगा अन्यथा आकार में वस्त्र नहीं सूखेंगे । इसपर उसके घर में जाते हुए विष्णु को देखकर पैर छूकर ब्राह्मण ने अपना हृदय रक्खा । भगवान् ने पुण्यवान् व्यक्तियों के दर्शन कराने और इनके दर्शनों से पाप कटने की बात कही और वर मांगने को उसे कहा । विप्र ने भगवत्सन्निधि प्राप्ति का वर मांगा । इसपर भगवान् ने उसकी भक्ति की प्रशंसा की परन्तु कहा सर्वप्रथम अपने माता-पिता की सेवा कर उन्हें प्रसन्न करो जिससे तुम्हारा यह लोक और परलोक सब सुधर जाय । उन माता-पिता के निःश्वस से

तुम्हारा किया कराया गुड़ गोबर हो गया उनके क्रोध को न शङ्कर, न मैं और न कोई अन्य देवता टाल सकते हैं। इसलिये प्रेम से माता-पिता की सेवा करो और फिर मेरी शरण आओ। इस पर विप्र ने भगवान् से अपने स्वरूप की प्रार्थना की और भक्त आधीन भगवान् ने अपना चतुर्भुज रूप दिखा दिया। अपनेको धन्य समझते हुए ब्राह्मण ने मूक, पतिव्रता, तुलाधार और अद्रोहक सत्य की प्रशस्ति करते हुए भगवान् की भक्ति श्रेष्ठ बतलाई। भगवान् ने कहा पितृभक्ति से मूक के यहाँ, पतिधर्म से शुभा के यहाँ, सत्यवादी होने से तुलाधार के यहाँ और लोभ काम को जीतने से अद्रोहक और अपनी भक्ति से वैष्णव के यहाँ सदा ही लक्ष्मी एवं सरस्वती के साथ रहता हूँ। ब्राह्मण की यह शंका करने पर कि वेदादि शास्त्रों के अनुसार चाण्डाल योनि महापातकों के कारण मिलती है तो आप वहाँ कैसे बिराजे ? इस पर भगवान् ने कहा कि सम्पूर्ण कल्याणों का कर्ता मूक भले ही चाण्डाल है परन्तु घृस्तस्थ होने से वह ब्राह्मणकोटि में आया है माता-पिता के सच्चे भक्त होने से उसके यहाँ ब्राह्मण रूप में मेरा सदा निवास रहता है और पूर्व प्रतिपादित दिव्यगुण सम्पन्न चारों पाँचों व्यक्तियों की एक सत्य निष्ठा के कारण प्रशंसा की। फिर माता-पिता की सेवा का पुण्य लाभ करने का उपदेश देकर उस मूक के द्वारा जानी गई सम्पूर्ण वार्ता के प्रति विस्मय न करने को कहा क्योंकि ऐसा सत्यनिष्ठ माता-पिता की सेवा करनेवाला व्यक्ति त्रिलोकी की गर्वों को मेरे अन्तर्यामी के उपरिधत होने से देख सकता है। ब्राह्मण ने मोह भ्रान्त से माता-पिता की भक्ति को छोड़ने के अपराध में अपना कर्तव्य अकर्तव्य कहा। भगवान् बोले एक दिन, मास, पक्ष, या सात दिन भी प्रेम से माता-पिता की भक्ति करनेवाला मेरे लोक का अधिकारी होता है। यदि किसी प्रकार पूजा कर सके तो उनके परलोक होने पर वृषोत्सर्ग करनेवाला पितृभक्ति का फल पाता है। माता-पिता के श्राद्ध की अगाध महिमा है उसे यथा समय अवश्य करे। श्राद्ध के अवसर पर चूड़ामणि योग होने पर उसका विरोध विधान। श्राद्ध का

प्रतिपादन और श्राद्ध कर्त्ता को ब्रह्मचारी, सदाचारी और माता-पिता के श्राद्ध के दिन स्त्री संसर्ग से बचने का विधान बताया। श्राद्ध में तीन पवित्र हैं दौहिद्र कुतप ( दिन को सात घड़ियों के बाद और नव घड़ियों के पहले का काल और तिल। सत्य, अक्रोध और शीघ्रता न करना ये प्रशंसनीय हैं श्राद्धकर्त्ता सायं सन्ध्या, पराश्र, फिर भोजन, मैथुन, दान, प्रतिग्रह सब न करे। नाना प्रकार के प्राचीन आख्यानो द्वारा श्राद्ध के विधान का वर्णन। सप्तग्याधों की कथा का संक्षेप से शिष्य और वशिष्ठ के सम्वाद के रूप में वर्णन। श्राद्ध में असर्व व्यक्ति के कर्त्तव्य का निर्णय। भगवान् ने कहा जो कोई किसी भी रूप में अतर्क होने पर रुण, काष्ठ को बेचकर पैसा लेकर पितृकार्य करता है उसके पितर रुण होते हैं और लक्ष गुणा फल मिलता है। सब के अभाव में गौ को पास लिखावे से श्राद्ध का फल मिल जाता है। विराट के पुत्र ने धनहीन होने से द्विज को पूछा तो उपर्युक्त उपाय बताया जिससे वह पितरों को रुण कर दूसरे जन्म में भाग्यशाली बना। पितृयज्ञ से महान् कोई यज्ञ नहीं इसे बिना मत्सर के लोग करे इस सारे प्रकरण के सुनने और सुनाने से भी पितरों की वृत्ति एवं भोवा तथा वक्ता को अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है।

५३

पतिव्रतामाहात्म्यवर्णनम्

५४१

सैव्यापतिव्रतायाः पतिशुभ्रपाकथनम्

५४२

माण्डव्यमुनिकथानकम्

५४४

नरोत्तम के द्वारा पतिव्रता स्त्री से बीती हुई बात जानने की शक्ति के सम्बन्ध में आवश्यक प्रश्न पूछने पर भगवान् बोले पतिव्रता का माहात्म्य अकथनीय है सभी ऋषि, मुनि एवं ब्रह्मवादी सब के लिये वह पतिव्रता पूज्य है इसी प्रसङ्ग में भगवान् ने सैव्या ब्राह्मणी के पातिव्रतधर्म का विस्तार से वर्णन किया। उसके गलित्कुम्बवाला पति था उसकी सेवा तन, मन और धन से

करती थी। एक बार जैसे ही उसके मार्ग से परम सुन्दरी वेश्या जाने लगी तो कुट्टी पति का मन उसके रूप सौन्दर्य को देखकर लुभ गया और वह उन्मत्ता होकर लम्बी खाँसे खाँचने लगा। पति को दुःखित देख पत्नी सैव्या ने उसके उन्मत्ता होने का कारण पूछा इसपर निराश हो अपनी इच्छा की पूर्ति न होते देख उसने कहने से ना कर दिया परन्तु स्त्री के बहुत समझाने पर वेश्या पर शासक होने की बात कहकर उसे सद्गम करा देने से अपने जन्म सकल होने की बात बोला उसके न आने से मृत्यु ही केवल शरण होगी। पतिव्रता ने उसे पैर दिखाते हुए अपनी ओर से यथाशक्ति धन देने और कार्य करने को कहा। तीन दिन तक वह प्रातःकाल बेल में वेश्या के चौक को भाड़ धुहार और चौक पूरकर पर लोट आती। वेश्या ने इसका पता लगाया। यह एक दिन पतिव्रता को इस प्रकार घर को धुहारते देख पैरों पर गिर पड़ी और गिड़गिड़ाकर क्षमा मांगने लगी और अपने योग्य कोई सेवा के लिये पूछा। इसपर पतिव्रता ने अपने कुट्टी पति को सन्तुष्ट करने का वर मांगा। वेश्या ने आधी रात के बाद पति को इसी के यहाँ लाने पर सन्तुष्ट करने को कहा। अपने पति के पास आकर उसने सारी बातें कही और आधीरात में जाने का निश्चित कार्यक्रम बना लिया। इसी दिन राजाने विशेष आदेश से नगर में की जानेवाली चोरियों की रोकथाम के लिये चोरों को पकड़ने के लिये विशिष्ट रक्षक राजपुरुषों को नियुक्त किया। उन्होंने माण्डव्य नामक ऋषि को नगर के बाहर तप करते देखा वह अस्त्रप्रज्ञाव समाधि की भूमिका में था। उसे राजपुरुषों ने लाकर राजा के सामने प्रस्तुत किया। राजा ने शरीर में कीली ठोककर नगर के चौराहे पर गाड़ने का आदेश दिया। राजपुरुषों ने उसके गुद्भाग से सिर के आरपार कीली ठोक उसे गाड़ दिया। माण्डव्य को समाधि के प्रभाव से इस दुःख का कुछ भी पता न लगा और वह लटका ही रहा। वेश्या के घर पतिव्रता की पीठ पर जाते हुए उस कुट्टी का शरीर दण्डित ऋषि से लगा और उसके संसर्ग से उसकी समाधि भग्न हो गई। माण्डव्य ने

शाप दिया कि जिस व्यक्ति ने अभी मेरी शरीर में यह असह्य वेदना की है वह सूर्योदय होते-होते भस्म हो जाय । वह कुम्भी धरती पर गिरपड़ा और पतिव्रता ने पतिसेवा के प्रभाव से कहा सूर्य उगे ही नहीं । तीन दिन तक सूर्य न उगा । पति को वह तत्काल परले गई । इस घटना से सर्वत्र हलचल मची और मद्गाजी के पास इन्द्र को लेकर देवगण गये । मद्गा ने सब कारण बताया सब देवगण अपने-अपने विमानों पर चढ़कर उस पतिव्रता के पास आये और पतिव्रता को मद्गाजी ने समझाया कि क्रोध छोड़कर प्राणीमात्र का उद्धार करना चाहिये । पतिव्रता ने कहा सम्पूर्ण संसार में भ्रष्ट मेरे पति को मुनि ने सूर्योदय होनेपर भस्म होने का जो शाप दिया है उसीको बचाने का उद्देश्य कर मैंने सूर्य को शाप दिया है न क्रोध, न मोह, न लोभ, न काम और न द्वेष से ऐसा कुछ किया गया है । मद्गा ने कहा पति की मृत्यु होने से सर्वत्र त्रिभुक्तिका का हित है इसलिये तुम्हें अधिक पुण्य होगा परन्तु निधय पर अटल उसे वे न मना सके । परन्तु मद्गा ने कहा भाम पुत्र कामदेव के समान होगा उसमें सौन्दर्य लावण्य सब गुण रहेंगे । परन्तु पतिव्रता ने कहा मेरे विधवा होनेपर मेरी गति तो विपरीत होगी परन्तु मद्गा ने कहा अभी मरा तो नहीं हमारे वचन से ही वह कामदेव के समान सुन्दर होगा । पतिव्रता ने अपना शाप वापिस लेलिया और सूर्योदय होते ही पति मुनि के शाप से भस्म हो गया उसी समय भाम से कामदेव के समान मनुष्य प्राण हुआ । सबको आश्चर्य हुआ पति को लेने के लिये स्वर्ग से जो विमान आया था उसने बैठकर दोनों पति और साध्वी स्त्रियों को चले गये । इसलिये पतिव्रता माधव विष्णुरूपा है उसे भूत भविष्य सभी का ज्ञान होता है इस पुण्यास्थान को पढ़ने और सुननेवाले को अनन्त पुण्य फल मिलता है ।



माण्डव्यस्य शूलारोपणे कारणवर्णनम्	५४७
परस्त्रीणां बलाद्वरणे दोषवर्णनम्	५४६
साध्वीस्त्रीणां महत्त्ववर्णनम्	५५१
अपात्रवराय कन्यादानदोषः	५५३

माण्डव्य के शूल का आघात तथा पतिव्रता के पति को कुष्ठ क्यों हुआ इस द्विज के प्रश्न पर भगवान् बोले बाल भाव से माण्डव्य ने वस्ति देरा में एण देकर वहीं छोड़ दिया उसी अपवाद दोष से दिन-रात उसने कठिन व्यथा को भोगा किन्तु योगाभ्यास में समाधियुक्त माण्डव्य को उसका ज्ञान नहीं हुआ। कुटी और ब्रह्म के घात से तथा इन्द्रियों को बरा में न रखने से उस पतिव्रता के पति को कुष्ठ हो गया पहले इसी में तीन कन्याओं को ब्राह्मण को दिया इससे इसके पतिव्रता स्त्री आई और केवल इसी के कारण यह मेरे समान हो गया। ब्राह्मण के द्वारा कृत्या स्त्री के विषय में पूछने पर भगवान् बोले कि अपने सर्वस्व देनेवाले पुरुष के कृत्या स्त्री होती है ऐसी स्त्रियां गुणवर्जित, कुबहीन, विरूप, निर्धन भृत्य से भी अपना अनुचित सम्बन्ध कर लेती हैं और अपने योग्य पति को छोड़कर नीच कुष्ठ के साथ प्रेम रति करती हैं। उमा और नारद का सम्वाद इसके लिये प्रयोजनीय होने से भगवान् ने उसे कहा। नारद ने पूछा है उमे ! सम्पूर्ण स्त्रियों का अन्तःकरण आप जानती हैं कृपया सब मुझे बतलाइये। उमा बोली युवती जन का चित्त सदा पुरुषों में लगा रहता है अच्छे पुरुष को सुन्दर वस्त्र धारण किये देख वे व्याकुल एवं अधीर हो जाती हैं। स्नान न मिलने से समयाभाव से और उन्हें चाहनेवाले उपयुक्त पुरुष न मिलने से स्त्रियों का सतीत्व रहता है। घृत के पड़े के समान स्त्री है, जलते हुए अन्नारे के समान मनुष्य है इसलिये घी रूपी स्त्री और अग्निरूपी पुरुष को एक स्थान पर

न छोड़े। स्त्री के सत्व की रक्षा बालपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्रगण करते हैं उसकी शक्ति की सदैव रक्षा करनी चाहिये क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षिका वही मातृशक्ति की मूर्तिमती स्त्री है। स्त्री को संरक्षण किये बिना रहने देने से वर्णसङ्कर सृष्टि उत्पन्न होने की सम्भावना से भूमिशोष तथा बीज दोष से सृष्टि अवनति की ओर जाने का भय बना रहता है। स्त्री के आधीन दोनों कुल पुत्र, दौहित्र, पुत्री आदि हैं इसलिये उसकी शक्ति की रक्षा सर्वत्र इष्ट है। रजस्वला स्त्री के पास जो पुरुष नहीं जाता है वह ब्रह्महत्या और ध्रूण (गर्भपात) हत्या का पापी होता है। स्त्रियों को अनुचितरूप से लुभा कर जो पापाचार करते हैं ऐसे पापी घोर नरकों की यन्त्रणा भोगते हैं अगम्यागमन के विभिन्न पापों का गिनाना। उनसे छुटकारा पाने के लिये ब्राह्मण द्वारा प्ररन करने पर भगवान् घोले अगम्यागमन करनेवाला पुरुष लोहे की तलपुतली से आलिङ्गन कर मरे तो उस पाप से छुटकारा पा जाता है। भगवान् के प्रभाव से भी घोर पापों से छुटकारा होता है। गृहस्थ के लिये विष्णु की भक्ति का विशेष प्रयोजन और साध्वी स्त्री द्वारा समस्त ऐश्वर्य, कीर्ति, आयु और सम्पूर्ण कुल की उन्नति होती है। उनके विषय में विशेष कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। विधवा ब्राह्मणी से सदैव दूर रहे यदि ब्राह्मणी कुलटा होती है तो उसका भावी जीवन सदा के लिये पतित हो जाता है और जन्म-जन्म में नीच योनि में जाकर उसका कहीं प्राण नहीं होता। द्विज ने भगवान् से कन्यादान का फल पूछा। सम्पूर्ण गुणों से युक्त कन्या को आभूषण आदि से सज्जित कर योग्य वर को देने से सम्पूर्ण पृथ्वी के दान का फल मिलता है। जो कन्या विक्रय करते हैं उन्हें नरक की प्राप्ति होती है अनमेल अवस्था, जैसे गुन, कुल, शील, और वयस में बहुत अपेक्षाकृत भेद होने से कन्या देनेवाले को रौरव नरक और चाण्डाल योनि की प्राप्ति होती है। अपनी कन्या को पाणिप्ररन के समय दिया गया सब कुछ अक्षय होता है। छे प्रकार के पुरुषों को कन्या नही।

अत्यासन्नेऽतिदूरस्थे चात्याढ्ये चातिदुर्गते ।

कुलहीने च मूर्खे च पट्सु कन्या न दीयते ॥

अतिवृद्धे चातिदीने रोगिष्ठे देशवासिनि ।

अतिमृद्धेऽप्यसन्तुष्टे पट्सु कन्या न दीयते ॥

बिलकुल निकट रहनेवाले, बहुत दूर रहनेवाले, अत्यन्त धनी, अत्यन्त गति में पड़े हुए, कुलहीन और मूर्ख को कन्या न दे। अति वृद्ध, अति दीन, गी, और परदेशवासी, अति कोधी और असन्तुष्ट पुरुष को कन्या न दे। न्यादान की महिमा अनन्त है। धन्य हैं वे व्यक्ति जो कन्यादान कर जीवन फल करते हैं इस पुण्य आख्यान के सुननेवाले को अनन्त पुण्य फलों की प्राप्ति होती है।

५५ तुलाधारचरितम्, सत्यस्य प्रशंसा च

५५४

निर्लोभत्वप्रशंसायां शूद्रकथानकम्

५५५

तुलाधार के चरित्र के सम्बन्ध में द्विज के पूछने पर भगवान् ने कहा सत्य की सर्वोच्च प्रतिष्ठा से मर्यादा का उल्लङ्घन संसार में कहीं नहीं होना है; सत्य के द्वारा मनुष्य प्रभु का साक्षात्कार करता है; सत्य में प्रभु का साक्षात् वास है; सत्य से युधिष्ठिर अपने मानवीय शरीर से स्वर्ग चले गये; सत्य से बलि को भविष्यत्कल्प में इन्द्र पदवी प्राप्त होगी और हरिश्चन्द्र ने अपनी प्रजा सहित सशरीर स्वर्ग को सत्य से ही सुरोभित किया अतः सत्य की महिमा अगाध है। तुलाधार भी इसी सत्य के कारण महात्मा है। यह तुलाधार सत्य के कारण ही शूद्र व्यवहार से व्यापार कर जनमन को मोहनेवाला है। इस विषय में शूद्र का आख्यान देते भगवान् ने कहा एक बार परीक्षा के लिये मेरे द्वारा रखे गये दुराालों को उसने दूसरे का समझ छोड़ दिया। मैंने सोचा थोड़ा लाभ देखकर उठाया हो तो उसके मार्ग में सोने की उदुम्बर में रखकर वहाँ रक्खा। परन्तु उसने लोभ

नहीं किया उसने लोभ से लाभ और लाभ से लोभ होनेवाले मोह, मद, क्रोध का सारा परिणाम सोच विपत्ति का कारण समझ उसे टाल दिया। घर आते ही वहां भगवान् ने उसकी क्षणिक के रूप में परीक्षा की और उसकी घरवाली को बहकाते हुए कहा कि उसने अपना सोना छोड़ दिया है। स्त्री ने आकर पति को सब कहा और दोनों स्त्री-पुरुष बाहर आये। क्षणिक बेपधारी भगवान् ने उसे ललचाया परन्तु वह अपने विचार से न ढिगा और अधिक ध्याने से शूद्र ने जो आशय कहा वह सोने के अक्षरों में वर्णन करने योग्य है सन्तोष मेरे लिये बड़ा उपयोगी साधन है माता के समान परायी स्त्रियों को और पर द्रव्य को लोभ (पत्थर) के समान और पर स्त्री को सर्प के समान मानकर मैं यज्ञ का ही फल भोगता हूँ। इसलिये मेरा यह सोना नहीं है कीचड़ के पास जाकर छूने पर उसे धोने से न छूना ही अच्छा है। इतना कहते ही पुष्प वर्पा हुई। देवगजने उसे अपने विमानों पर जाने के लिये निमन्त्रित किया। शूद्र ने आश्चर्य से उस निर्मन्थिक ( भिक्षु ) के विषय में सत्य-सत्य बातें जाननी चाहीं। इसपर भगवान् ने उसके धर्म की परीक्षा लेने इस वेप में आने और उसे उत्तीर्ण पाकर सराटीर परियार समेत विमान में स्वर्ग जाने की बात कही। ऐसे ही लोभ को छोड़ने से तुलाधारादि स्वर्ग गये यह पवित्र कथा पुण्यकारिणी है।

५६ कामस्य दुर्जयत्वकथनेऽहस्येन्द्रचरित्रम् ५५६

भगवान् ने एक पत्नी का प्रत लेकर चलनेवाले व्यक्तियों की प्रशंसा की परन्तु इसमें कष्ट बहुत है अनुचित करने से इन्द्र को हजार भर्गो (योनिद्धि) का चिन्ह हुआ और भगवती को प्रसन्न करने से उसका नाम हजार आखवाला हुआ। बिम्ब ने इन्द्र के भगाष्ट की बातें पूछी और अहल्या के हरने के विषय में जिज्ञासा की इसपर भगवान् ने मल्लाजी द्वारा अपनी पुत्री अहल्या को गौतम ऋषि के साथ ब्याह देने पर माया के द्वारा एकान्त में गौतमजी के स्नानार्थ जानेपर इन्द्र ने गौतम का छद्म वेप बनाकर अनुचित रूप से बलात्कार किया। जब योग द्वारा इन्द्र की वे

दुरचेष्टायें गौतम को मालूम हुईं तो वे तुरन्त आये और इन्द्र ने अपना विद्याल का रूप बना लिया । जब मुनि आप देने को तैयार हुए तो इन्द्र हाथ जोड़कर खड़ा हुआ मुनिको बहुत क्रोध आया और शरीर पर हजार भग होने और उसके लिङ्ग के गिरने का शाप दिया । अहल्या ने अज्ञान से किये गये इस दुष्कर्म के लिये क्षमा प्रार्थना की परन्तु मुनि ने उसे अस्त्रि चर्म युक्त निर्मांस नख रहित होने का शाप दिया । जिससे आने-जानेवाले स्त्री और पुरुष शिक्षा लेसकें । जब अहल्या ने बहुत अनुनय-विनय की तो दयालु गौतम ने विश्वामित्र के साथ व्रता में राम लक्ष्मण द्वारा आने पर राम से उद्धार पाने की बात कही । इन्द्र ने लज्जा से जल में प्रवेश कर इन्द्राक्षी भगवती की आराधना की । देवी ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि मुनि शाप को बदलना शक्य नहीं किन्तु बुद्धि ऐसी कर देती है कि लोग योनि के मध्य में आखें देखेंगे और सहस्राक्ष तुम्हारा नाम होगा यमेदे के अण्ड और लिङ्ग होगा । काम से मोहित इन्द्र की दरा भी नीच गतिवाली होती है साधारण पुरुषों की तो बात ही क्या ।

५७

कामस्य दुर्जयत्वे परमहंसचरित्रम्

५६३

लौहित्योत्पत्तिवर्णनम्

५६५

काम के घरा में हुए किसी दूसरे भागीरथी गङ्गा के तीर निवासी एक परमहंस ब्रिज का आख्यान भगवान् ने कहा । एक बार उसने एक लावण्यमयी पुषती को अपने घर से दूसरे के घर जाते देखा और रास्ते में उसे मिला । उस समय काम से पीड़ित उसने देवागार के कपाट बन्द कर गाढ़ी अर्गला लगाकर रातभर उसका चिन्तन किया और उठकर उसके घर आकर दरवाजा खोलने को कहा । इसपर स्त्री ने सारी बातें कहकर उसके आने को अनुपयुक्त कहा । परमहंस ने कई लोभ दिये परन्तु स्त्री ने कपाट नहीं खोला इसपर स्वयं जैसे ही दरवाजा खोलकर हठात् जाने लगा तो शिर किवाड़ों के बीच में आ जाने से वह न अन्दर

जा सका, न बाहर निकल सका और वहीं मर गया। प्रातः जब रक्षकगण आये तो उस स्त्री से सारी बातें पूछी और सत्य बात जानकर वह स्वस्थ हो गई। अमोघा को देखकर ब्रह्माजी के स्वलब्ध वीर्य होने पर शन्तनु द्वारा अपनी स्त्री को वीर्य पान करने को कहने पर लौहित्य की उत्पत्ति और तीर्थराज प्रयाग का प्राबुर्भाव जहां त्रिवेणी सङ्गम पर राम द्वारा रावणादि बध से लगे ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा हुआ इस विषय में विशिष्ट विवरण।

५८ कामाख्याने गन्धर्वादिसूत्रिभिः सह शिवक्रीडावर्णनम् ५६६  
क्षेमङ्कुर्याख्यानम् ५६७  
पञ्चाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ५६८

काम के आख्यान में गन्धर्वादि स्त्रियों के साथ भगवान् शङ्कर का क्रीड़ा करना और पार्वतीजी द्वारा योग से उनके इस अनुचित कार्य को देखकर क्षेमङ्कुरी रूप में प्रवेश और क्रीडारत गन्धर्व स्त्रियों को पादाहत कर भूतल पर डाल देना। उनका पृथ्वी पर आकर म्लेच्छों के वश में होना ऐसी स्त्रियाँ आज भी पाण्डाल स्त्री नाम से स्थित हैं। उमा ने शतधा रूप कर ईश से सङ्गम किया। अजेय काम की शक्ति विचित्र है। क्षेमङ्कुरी की पूजा करने से अन्तः पुण्य फल प्राप्त होता है। फिर भगवान् ने अपनी आपसी गोपी सम्बन्धियों बधू के प्रेमपाश का वर्णन किया। इनके हरण दोष से रण में पराजय, दैन्य, शोक, पुत्र विनाश, सारथी होना कल्प-कल्प में मुझे मिला। मूकादि की शुभगति का वर्णन। विप्रने भगवान् से अपने लिये इष्ट समस्त पूजा तो भगवान् ने माता-पिता की सेवा उसके लिये परम धर्म बताया और उनको प्रसन्न करने के बाद उसे स्वर्ग की भक्ति की आज्ञा दी। उन पाँचों पवित्र पुरुषों के साथ देवगण भगवान् के गुणानुवाद गाते हुए भगवान् के मन्दिर में गये और वहाँ से उन्हें स्वर्गलोक में ले गये। यह पञ्चाख्यान पवित्र है तथा बुरे स्वप्नों का नाश करनेवाला है।

## जलदानमाहात्म्यवर्णनम्

५७०

## जलदानविषये धनिमुत्कथानकम्

५७१

जलदान का विशेष महत्त्व चापी, कूप और तड़ाग आदि को बनानेवाले व्यक्ति को अनन्त कोटि पुण्यों का फल मिलता है। इसके साथ-साथ देरा, काल और पात्र के अनुसार जलदान का विशेष माहात्म्य प्रतिपादित किया गया। प्राचीनकाल में धनिमुत् ने सुन्दर जलशय बनाया परन्तु कुछ समय बाद उसका धन क्षीण हो गया किसी धनी ने उसके जलशय का मूल्य देकर लेने का प्रस्ताव किया इसपर धनिमुत् ने कदा अयुत मुद्रा के बाद खरीदकर लेने पर भी इसका फल निर्माणकर्ता को अवश्य मिलेगा। धनी व्यक्ति के पास में बैठे सभी इस पर हँसे। धनी ने धनिमुत् से कहा कि दीनारायुत देकर पत्थर लाकर इस सरोवर में जल के भीतर डालूंगा यदि डूब जायगा तो फल बनानेवाले को नहीं मिलेगा अन्यथा ठीक है ही। ऐसा ही किया गया और पत्थर तैरता रहा यह देखकर वे विस्मित हुए। वह धनिमुत् स्वर्ग का भागी हुआ जलदान का भागी हुआ जलदान का माहात्म्य विशेष है।

६०

## अश्वत्थादिवृक्षारोपणविधानफलवर्णनम्

५७३

## प्रपादानविधिः धर्मघटदानविधिश्च

५७५

बड़े पेड़ जैसे वड़, पीपल, आम, इमली और शाल्मली आदि को लगाने से अनन्त कोटिशुण फल होता है। उष्णकाल में पशु, पक्षी, गौ, देव और ब्राह्मण मनुष्य द्वारा में विभ्राम करते हैं इससे उनके लगानेवालों को स्वर्गादि की प्राप्ति होती है। विशेष रूप से जल के स्थानों के पास इनका लगाना विशेष फलदायक है। स्नान कर अश्वत्थ ( पीपल ) को छूनेवाला सब पापों से छूट जाता है। बिना स्नान किये छूनेवाला स्नान करने का फल पाता है इसको देखने से पाप नाश और स्पर्श करने से लक्ष्मी की प्राप्ति तथा प्रदक्षिणा करने से आयु बढ़ती है। इसलिये सभी

बड़ी छायावाले वृक्षों का रोपण विधान (लगाना) श्रेयस्कृत है। जीवन में मनुष्य जल स्थान बनाने में असमर्थ भी हो तो यावड़ी या और-और छोटेमोटे जल सरोव बनावे उसका फल भी बहुत पुण्यदायक है इनके करने में असमर्थ व्यक्ति धर्म का दान करे और उसे प्रार्थनापूर्वक योग्य ब्राह्मण को चार मासा सोने की दक्षिण के साथ देवे। ऐसा तीनवर्ष तक करते रहने से यावड़ी के दान का पुण्य फल मिलता है। इस आख्यान का भ्रवण और श्रावण करनेवाला पुण्य लाभ प्राप्त करता है।

६१	सेतुबन्धनफलवर्णनम्	५७६
	पङ्कादौ निर्गमाय पापाणादिमार्गकरणफलम्	५७७
	चौराख्यानवर्णनम्	५७६
	नानाविधदानमहत्त्वफलम्	५८१
	रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनम्	५८३
	रुद्राक्षधारणविधिफलवर्णनम्	५८४
	रुद्राक्षधारणमाहात्म्यवर्णनम्	५८७

सेतुबन्धन का माहात्म्य और कीचड़वाली भूमि पर जाने के लिये पथर काष्ठ आदि से सुन्दर प्रशस्त मार्ग बनाने का विशेष महत्त्व है। प्राचीनकाल में एक विशेष चोर का आख्यान जो जङ्गल में हृद पर गोशिर बनाकर चोरी के लिये गया और चोरी कर अपने यहां चला आया। सभी आने वाले उसको सुख से लांघते थे। जब चोर मरा तो चित्रगुप्त ने उसके लिये लम्बी अभियोग सूची दी। परन्तु गोशिर का एक पुण्य इसका अविशिष्ट है और धर्मराज ने उसे भोगने के लिये मर्त्यलोक में जन्म लेकर बारह वर्ष तक राजा बना दिया। उसका जन्म वणिक् के यहां हुआ और सारी आयु उसने दुःख भोगा और उस राष्ट्र के मरने पर मन्त्रियों ने उस वणिक् पुत्र को लाकर राजा बना दिया। राजा



होते न होते उसने यथाशक्ति सम्पूर्ण जल के पार करने के स्थानों पर पुष्ट दृढ़ पुल और आनेजाने का मार्ग प्रशस्त किया और वावड़ी, कुआ, तालाब, आराम वृक्षों को लगाकर अपने पूर्व कर्मों को यादकर स्वपाप का क्षय कर दिया साथ ही देव, ब्राह्मणों का और गुरुजन का तर्पण करने लगा। इस प्रकार पाप से शुद्ध होकर वह जब मरा तो विमान पर आरुढ़ होकर धर्मराज के यहाँ गया और विभूतियों के आदेश से उसे विष्णुलोक की प्राप्ति हुई। इसी प्रकार सभी पुण्य कर्मों की विधि देवस्थान आदि से नाना सुन्दर लोकों की प्राप्ति और उनका विशेष महत्त्व बताया है। रुद्राक्ष के माहात्म्य और उसके दर्शन करने, धारण करने तथा उससे जप के फल का माहात्म्य। रुद्राक्ष को धारण करनेवाला व्यक्ति साक्षात् राक्षस है सम्पूर्ण संसार में नाना मुखों वाले रुद्राक्षों का विभिन्न फल और उनके धारण व जप से चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति। नाना मुखों वाले रुद्राक्ष की माला में मन्त्र जप कर धारण करने की विधि। इस सम्पूर्ण आख्यान के सुनने से अमन्त पुण्य फलों की प्राप्ति।

६२

धारीमाहात्म्यवर्णनम्	५८६
प्रेताख्यायिकावर्णनम्	५६१
तुलसीमाहात्म्यवर्णनम्	५६७

स्कन्द ने सम्पूर्ण लोकों के हितार्थ अन्य पवित्र फल के विषय में पूछा पर में महादेव ने आँवले के फल को परम पवित्र बताया। उसके रोपने से परमारी जन्मबन्धन से छूट जाते हैं। यह फल भगवान् वामुदेव को भी परम प्रिय इसके भक्षण से आयु वृद्धि, पान से धर्म सम्पन्न और स्नान से अलक्ष्मी नष्ट होती है। जिस घर में यह रहता है वहाँ प्रेत, दैत्य एवं राक्षस नहीं आते। जितना फल दोनों पक्षों की एकादशी में इसके फल से स्नान करने से होता है उतना गङ्गा, गया, काशी, व पुष्कर स्नान से भी नहीं। इसका भक्षण कर पितृ एवं पुत्रपक्ष की एकादशी को उपवासकरने से सात जन्मों के पाप नष्ट

हो जाते हैं। अतः धात्री व्रत का आचरण करना श्रेयस्कृत है। जिसके केश आँवले के रस से रञ्जित हैं वह फिर माता का स्नान नहीं पीता अर्थात् गर्भवास में नहीं आता। धात्री रस से स्नान कर विष्णु पूजन करने का महत्त्व। सम्पूर्ण यज्ञ एवं देवपूजा में भी इसकी प्रशस्ति है केवल रवि दिन व सप्तमी को धात्री फल काम में न ले। जो रविवार को धात्रीफल से स्नान करता है वा भक्षण करता है उसके आयु, वित्त, एवं कलत्र ( स्त्री ) नष्ट हो जाते हैं। संक्रान्ति, भृगुवार, पष्टी, पड़वा, नवमी, अमावास्या को इसे त्याग दे। इन दिनों ग्रहण करने में नाश आरिष्टों की प्राप्ति। इसके दर्शन मात्र से ही पापी प्राणी एवं दुष्ट ग्रह भाग जाते हैं। इस विषय में प्रेताख्यायिका का वर्णन—एक पुल्कस ( चाण्डाल ) शिकार खेलने के लिये वन में गया। मृग पक्षिगणों को मार भूख एवं प्यास से व्याकुल हो आँवले के वृक्ष पर चढ़ उसने उत्तम फल खाया तो उसी क्षण वह वृक्ष के नीचे गिर कर मर गया। यमराज के सेवक प्रेतगण एवं राक्षसगण उसे लेने आये परन्तु उसे ले जाने में समर्थ न हुए। प्रेतों ने मुनियों से चाण्डाल के विषय में पूछा कि हम इसे ले जाने में समर्थ क्यों नहीं हैं क्योंकि युद्ध पराङ्मुख, सिंह व्याघ्र, पशु-पक्षियों द्वारा मारे हुए जलजन्तुओं से नष्ट हुए तथा वृक्ष पर्वतादि से गिरे हुए, आरमघात करनेवाले व श्राद्ध न करनेवाले, गुरु, माता-पिता आदि से द्वेष करनेवाले और आशौचाग्र भक्षण करनेवाले मनुष्य प्रेतों के भोग्य होते हैं इसे तो हम सूर्य की तरह देखने में भी असमर्थ हैं। तब मुनि बोले इसने आमलकी फल का भक्षण किया है इसी कारण से यह दुर्गरा है व स्वर्ग में जाने योग्य है। प्रेतों ने पूछा कि जबतक विष्णुलोक से विमान नहीं आता है तबतक प्रेतयोनि किस कारण से प्राप्त होती है कहिये क्योंकि हम वेद, पुराण, स्मृति व यज्ञादि स्थानों में नहीं रह सकते। मुनियों ने क्षिद्रान्तेपी वृटसाक्षी, देनेवाले को रोकनेवाले, सत्य वचन, प्रतिज्ञा व व्रत को भङ्ग करनेवाले, स्त्री व पुत्री आदि को बेचनेवाले व प्रेत योनि की प्राप्ति होती है ऐसा बतलाया। तीर्थ में स्नान कर शिव पर

शु की मूर्ति को देखने से प्रेत योनि नहीं मिलती। एकादशी आदि व्रत  
 पुराणादि पठन से भी प्रेतत्व से छुटकारा नहीं किन्तु धात्री फल की पूजा  
 भक्षण करने से प्रेतत्व नष्ट होता है। तदनन्तर मुनियों के आदेश से  
 श्री फल का भक्षण कर प्रेतों सहित चाण्डाल का स्वर्ग गमन। स्कन्द ने पूछा  
 कि धात्री भक्षण का इतना फल है तो उसे भक्षण करनेवाले स्वर्ग को क्यों नहीं  
 जाते तब शङ्कर बोले कि ज्ञानलोप से वे हिताहित कर्मों को नहीं जानते जिसके  
 घर में दुष्टा, शुद्धता संयम रहिता व क्रूर स्वभाव की स्त्री है वहाँ प्रेत रहते हैं।  
 माता-पिता आदि की निन्दा करनेवाले देवनिन्दा करनेवाले, ध्यान व अभ्ययन से  
 रहित, शौर्य व उत्साह रहित, म्लेच्छ भाषा भाषण करनेवाले, जात कर्मादि  
 संस्कारों से रहित, पविष्वक स्त्री और अतिथियों का अपमान करनेवाले प्रेत-  
 योनि को प्राप्त होते हैं। इस आख्यान के श्रवण एवं कथन का फल। स्कन्द ने  
 पत्र एवं पुष्पों की पवित्रता के विषय में पूछा तो शङ्करजी ने तुलसी को सबसे  
 उत्तम बतलाया जैसे विष्णु को लक्ष्मी तथा में प्रिय हूँ उसी तरह तीसरे तुलसी  
 प्रिय है चौथा कोई नहीं। तुलसी का पूजन, ध्यान, रोपण व धारण करने से सम्पूर्ण  
 पाप नष्ट होते हैं। शिखा में तुलसी रत्न जो प्राणों का त्याग करता है वह  
 सम्पूर्ण पापों से निर्मुक्त हो स्वर्ग में जाता है। जहाँ यह तुलसी का लेख विराज-  
 मान है वहाँ आधिभ्याधि और प्रेत आदि नहीं रहने पाते।

तुलसी-स्तोत्रवर्णनम्

५६८

तुलसीस्तोत्रमाहात्म्यवर्णनम्

५६९

तुलसी स्तोत्र के विषय में शतानन्दजी के शिष्यों ने गुरुजी से पूछा गुरुजी  
 बतलाया कि तुलसी के नामोच्चारण से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं नित्य ही  
 उप्याम की पूजन तुलसीपत्रों से करनी चाहिये। आगे लिखे मन्त्र पढ़कर  
 तुलसीपत्रों को एकत्रित करे—

तुलस्यमृतजन्माऽसि सदा त्वं केशवप्रिये ! । केशवार्थेचिनोमित्वा वरदा भव शोभने !

त्वदङ्गसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम् ।

तथा कुरु पवित्राङ्घ्रि ! कलौ मलविनाशिनी ॥

स्वयं कृष्ण ने कंस को मारने के लिये तुलसी का रोपण किया । रामचन्द्र के वियोग में सीता ने, शङ्करार्थ पार्वती ने, राम व लक्ष्मण ने इष्टसिद्धार्थ, मृत्युमूर्ख पर बालि व धार्थ सुग्रीव ने, दुःस्वप्ननाशार्थ सम्पूर्ण देव पत्नियों ने और समुद्र सांघे समय हनुमान् ने तुलसी का ध्यान किया । तुलसी का ध्यान करने से सब कार्य सिद्ध हुई । तुलसीस्तोत्रपठन का महत्त्व ।

६४

गङ्गामाहात्म्यकथनम्

६०१

गङ्गायां स्नानादिविधिवर्णनम्

६०२

द्विजों ने पूछा कि जिसमें मज्जन करने से अखिल पाप व महापाप नष्ट हो जाते हैं तथा लोग पवित्र हो स्वर्ग में जाते हैं और मुर योनि की भी हानि नहीं होती है ऐसा उपदेश कर्ण कीजिये तब व्यामत्री बोले वैदधारियों के पाप गङ्गा के स्नान करने से ही नष्ट हो जाते हैं । गङ्गा के स्मरण करने से पाप, कीर्तन से अर्थात् पाप और स्नान से मुक्त पाप नष्ट होते हैं । इसमें स्नान, पान एवं पिष्टन से महापाप नष्ट होते हैं । गङ्गानदपर पिष्टहान का महत्त्व । जो एक पुत्र गङ्गा स्नान के लिये जाना है उसके सब पुत्र पवित्र हो जाते हैं । जारत्र "अमृतं त्रारकं कुण्डोमृतं चर्तुर्योमोदकः" पवित्र, दुष्ट, पाण्डाल, मुक्यानी, सारंगोद से मुक्त और सब पापों से मुक्त जिन्हा को पुत्र त्याग देने है तथा पत्नी, मुहूर्त्त व बान्धवान् भी त्याग देते हैं परन्तु गङ्गा स्नान करनेवाले को गङ्गा नहीं त्यागती । जैसे जाना प्राप्ति सन्तान को गोद में देता वह को मुक्ति करती है वही तरह गङ्गा सब को मुक्ति करती है । गङ्गा से जो कुछे का उद्धार करती है । मरुकाणि, मरुकाणि, ६६ मरु के पुत्र और पुत्र नष्ट हो गङ्गा स्नान करने से कोटि पुत्र का उद्धार

होता है। सूर्यमहण के अवसर पर प्रभासक्षेत्र में हजार गोदान करने से जो फल मिलता है वह प्रति दिन गङ्गा-स्नान से मिलता है। यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देवपूजन गङ्गा तट पर करने से कोटिगुणा फल मिलता है। अन्य स्थान पर पाप किया हुआ गङ्गातटपर नष्ट हो जाता है तथा गङ्गातटपर किया हुआ गङ्गास्नान से नष्ट हो जाता है। जैसे लोग धनवान् की आदरपूर्वक स्तुति करते हैं वैसे ही गङ्गा की स्तुति करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यह पृथ्वी पर मनुष्यों को, पाताल में नागों को और स्वर्ग में देवों को पवित्र करती है अतः इसका नाम त्रिपथगा कहा गया है।

विष्णुपादाब्जसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि! धर्मव्रतेति विख्याते पापम्मे हर जाह्नवि!

विष्णुपादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुपूजिता।

प्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकान्॥

प्रदया धर्मसम्पूर्ण धीमता रजसा च ते। अमृतेन महादेवि भागीरथि! पुनीहि माम्  
इन तीनों श्लोकों को पढ़कर गङ्गाजल में स्नान करने से कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। गङ्गा का मूल मन्त्र एक बार भी जपने से मनुष्य पवित्र हो जाता है। मूल मन्त्र "ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमोनमः"। गङ्गा में पितरों का अस्थि प्रवाह करने से पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ के समान फल मिलता है जबतक मनुष्य की हड्डी गङ्गाजल में रहती है उतने हजार वर्ष तक वह स्वर्ग में रहता है। जो सैकड़ों योजन से भी गङ्गा-गङ्गा यह नाम उच्चारण करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। जो गङ्गा जानेवालों को शयनानुसार धन व अन्नादि देता है (जाने आने का खर्च देता है) उसे जो पुण्य होता है वही पुण्य वहां स्नान करनेवाले को होता है। जानने करनेवाले को जो फल मिलता है उससे दुगुना प्रेरणा करनेवाले को मिलता है। इच्छा से, अनिच्छा से, प्रेरणा से और दूसरे की सेवा निमित्त जो जाता है उसे भी देवलोक की प्राप्ति होनी है।



आकार और विद्वान् होता है जिसपर तुम्हारे पिता की अनुमति होगी उसे यह दिया जायगा। माता का वचन सुन मयूरारूढ़ हो स्कन्द तीर्थयात्रार्थ गये। गणेश अपने माता व पिता की ही प्रदक्षिणा कर वहीं बैठ गये। पश्चात् स्कन्द भी यात्रा कर आगये। माता ने दोनों को देख कहा सम्पूर्ण तीर्थों के अभिषेक से, सम्पूर्ण देवों को नमस्कार करने से और सम्पूर्ण यज्ञ धृतादि करने से भी माता-पिता की पूजा का फल विशिष्ट है अतः गणेश को ही मोदक मिलेगा और इसी की पूजा सर्वप्रथम होगी। महादेवजी ने कहा इसकी अग्र पूजा करने से ऐश प्रसन्न होंगे। महादेवजी ने इसे गणों का अधिपति बना दिया। चतुर्थी के दिन रात्रि में भोजन करे तथा उपवासी रह पूजन करे “ॐ नमो गणपतये” इस मन्त्र का जाप करे। गणपति आदि १२ नामों का प्रातःकाल स्मरण करने से सम्पूर्ण पापों से विमुक्ति व अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

६६ गणपतेरन्यत्स्तोत्रवर्णनम् ६११  
व्यासजी ने गणपति का सर्वसिद्धिदेनेवाला व सम्पूर्ण अभीष्टफल देनेवाला स्तोत्र वर्णन किया। यह स्तोत्र परम पवित्र है व महापुण्य को देनेवाला है तथा सात जन्मों तक पाठ करनेवाला निर्धन नहीं होता। सर्वसिद्धि को प्राप्त कर अन्त में रुद्रलोक में यह पूजा को प्राप्त होता है।

६७ नान्दीमुखादिषु प्रथमं गणेशपूजनवर्णनम् ६१२  
देवेभ्यो गणेशेन वरदानम् ६१५  
विष्ण्वाश्रया देवानामसुरैः सह सङ्ग्रामवर्णनम् ६१७  
चित्ररथकृतकालकेयवधवर्णनम् ६१८

व्यासजी ने कहा नान्दीमुखादि आर्द्रों में गणेश का पूजन करने से अक्षय की प्राप्ति होती है। मिट्टी की, पत्थर की या चित्र की मूर्ति में गणेश का पूजन करे द्वारका में और पात्र में मूर्ति को लिखे। अन्य देश में भी जहाँ निरन्तर

दृष्टिगोचर हो ऐसी जगह स्थापित कर जो पूजन करता है उसके प्रियकार्य सिद्ध होते हैं। इससे विद्यार्थी को वेदशास्त्रों से उत्पन्न हुई विद्या व अन्य शिक्षादि विद्या का प्राप्ति होती है। धनार्थी को विपुल धन सुन्दर स्त्री पुत्रादि मिलते हैं। गणेश का पूजन करनेवालों को रोग, प्रह और महामारी आदि पीड़ित नहीं करते हैं। गणेशजी के मूल मन्त्र "ॐ नमो गणपतये" का जाप करे; दधि, दुग्ध, पुष्प, मोदक और धूपदीपादि से पूजन करे। इनकी पूजा न करने से अभीष्टकार्य नष्ट हो जाते हैं। इन्द्र ने मोह एवं भ्रान्ति से पूजा नहीं की अतः उनके कार्य में विघ्न हो गया। देवामुर-संमाम में हिरण्याक्ष आदि दानवों ने इन्द्र को परास्त कर दिया। देवनिर्धाय हो गये। देवों ने शङ्कर से कहा कि अमुरों ने हमारे राज्य व यज्ञादि नष्ट कर दिये तब शङ्कर बोले आप लोगों ने गणेश पूजन नहीं किया पार्वती का उसे परदान है कि तुम्हारी पूजन करने से ही देवों को सिद्धि प्राप्ति होगी। शङ्कर की आज्ञा से देवों ने गणेश की स्तुति की। गणेश ने कहा आपका हितकार्य कहूँगा जरूरी कहिये। बृहस्पति ने कहा हे देव ! इन्द्र ने पदों आपकी पूजा नहीं की उसे क्षमा करो। इतना बचन सुन गणेशजी बोले हे देवगन ! जो इच्छा हो सो कर मांगो। देवों ने कहा हमारी विजय होनी चाहिये गणेशजी बोले अवश्यमेव आपलोगों की विजय होगी। प्रसन्न हुए देवों ने गणेश की पूजा की। गणेशजी ने कहा विष्णु के पास जाओ वे आपका कार्य करेंगे। गणेश की आज्ञा से देवों का विष्णु के पास जाना। विष्णु ने देवों को अमुरों को मारने के लिये वचन दिया। यधु आदि दानवों का उड़ने के लिये मुसज्जित होना। नारदजी ने हिरण्याक्ष से कहा मैं विष्णु-दूत हूँ यदि धरना दित चाहते हो तो राज्य त्याग दो नहीं तो युद्ध करो। इतना सुन देवराज ने कहा हे नारद ! तुम मारने योग्य नहीं हो अतः मेरे धर्म से चले जाओ देवों का निधन धनवर में हो जावेगा। देवदानवों का परस्पर युद्ध। बृहस्पति ने देवों के लिये दूत सञ्जीवनी दिया का जाप किया। धन्वन्तरि आँवपादि सर्व



१५ में भ्रमण करने लगे। औषधादि प्रयोगों से मृत देव जीवित व व्रणरहित होने लगे। क्रोधित कालकेय दानव का आगमन उसके वाणों से घायल हुए देवगण इन्द्र के पास गये। ब्रह्मास्त्रधारियों में श्रेष्ठ चित्ररथ का देवयुद्धार्थ आगमन। चित्ररथ और कालकेय का परस्पर युद्ध। चित्ररथ द्वारा कालकेय की मृत्यु। दैत्यगण युद्ध से विमुख हो भाग गये।

६८

## जयन्तेन कालेयवधः

६२१

व्यासजी ने कहा भाई को मृत देख कालेय दानव चित्ररथ से लड़ने के लिये रौंदा। असुर को आते देख जयन्त ने कहा राक्षों की चोट से दुःखित और प्रमत्त (श्रुत व घायल) को मारनेवाला मूर्ख होता है तथा सुचिरकाल तक रौरव नरक भोग उसीका दास होता है। कालेय ने कहा मैं अपने भाई को मारनेवाले को मार तुम्हें नष्ट करूँगा। जयन्त और कालेय का युद्ध। जयन्त द्वारा उसकी मृत्यु। प्रसन्न देवों ने जयध्वनि की।

६९

## इन्द्रेण बलनमुचिवधः

६२३

व्यासजी ने कहा कालेय की मृत्यु सुन हिरण्याक्ष ने असुरों से कहा कि स्वयं देवों से लड़ने के लिये जाऊँगा इतनी सुन दैत्यों का युद्धार्थ गमन। देव-दानवों का परस्पर युद्ध। युद्ध में दुःखित दानवों का इधर-उधर भागना और दानव युद्ध में मारे मी गये। दैत्य सेना के नष्ट होने पर बलका इन्द्र के साथ युद्ध तथा इन्द्र से उसकी मृत्यु फिर क्रोधित नमुचि का युद्ध में आगमन। नमुचि ने गदा से देरावत पर प्रहार किया जिससे वह बिहल हो गया। नमुचि इन्द्र के साथ युद्ध और इन्द्र से उसकी मृत्यु। देवों द्वारा इन्द्र पर पुष्प-वर्षा।

७०

## इन्द्रेण मुचिवधः

६२६

व्यासजी ने कहा बल और नमुचि के मरने से मुचि का युद्धस्थल में आगमन इन्द्र और मुचि का परस्पर युद्ध तथा इन्द्र ने वज्र से उसे नष्ट कर दिया।

७१

पडाननेन तारेयवधः

६२७

व्यासजी बोले स्वामी कार्तिकेय का तारेय नामक दानव के साथ युद्ध। तारेय ने स्कन्द पर नाना शस्त्रास्त्रों से प्रहार किया। उसके अस्त्रों को कार्तिकेय ने अन्य अस्त्रों से नष्ट कर दिया। कार्तिकेय द्वारा तारेय के सारथि की मृत्यु। तारेय ने मयूर व कार्तिकेय पर मुसल प्रहार किया उससे मयूर बिह्वल हो गया। कार्तिकेय ने अमोघ शक्ति से तारेय का वध किया।

७२

यमेन देवान्तक दुर्धर्षदुर्मुखवधः

६२६

व्यासजी ने कहा देवान्तक दैत्य का धर्मराज के साथ युद्ध। देवान्तक ने कहा तुम धर्म को नहीं जानते हो मैं तुम्हें दण्ड दूंगा इतना कह यमराज पर घाणों का प्रहार किया। यमराज ने उसके अस्त्रों को अपने अस्त्रों से नष्ट कर अपने महातेजवाले दण्ड का प्रयोग किया उससे उसकी मृत्यु हो गई। दुर्धर्ष दानव का यमराज के साथ युद्ध। यमराज ने शक्ति प्रयोग से उसकी मृत्यु की। खड्ग व चर्मधारी दुर्मुख का युद्ध में आगमन। यमराज द्वारा उसकी मृत्यु।

७३

इन्द्रेणाऽन्यनमुचिवधः

६३०

व्यासजी बोले अन्यनमुचि नाम का दानव रथ में बैठ स्वर्गस्थ देवों को अस्त्रों से पीड़ित करने लगा। उच्चैःश्रवा अश्व से युक्त रथ में बैठ इन्द्र का युद्ध में आगमन। नमुचि ने कहा प्राकृत देव को मारने से यश और प्रियकार्य नहीं होता तुम्हें मार मैं देवराज्य प्राप्त करूंगा। इन्द्र ने कहा वाक्यमात्र से शूरता सय जगह मुलभ है यदि तुम्हारे में पराक्रम है तो दिखाओ। तदनन्तर अन्यनमुचि व इन्द्र का परस्पर युद्ध। नमुचि द्वारा मायास्त्र का प्रयोग करना। इन्द्र ने मायास्त्र को दूर करने के लिये सौम्यास्त्र छोड़ा। इन्द्र द्वारा तलवार से अन्य नमुचि का शिरच्छेदन और वध। इससे देव एवं मुनिगण बहुत प्रसन्न हुए।

## विष्णुना मधुदैत्यवधः

६३२

व्यासजी ने कहा महान् क्रोधी मधु दानव रथ में बैठ देवामुरों के सामने विष्णु से बोला कि तुम युद्धधर्म को नहीं जानते हो और कटुवचन कह अस्त्रों का प्रहार करने लगा। भी विष्णु ने भी उस पर बाण छोड़े। मधु माया-युद्ध करने लगा जिसमें देवगण नष्ट हुए। विष्णु ने चक्र से देव व दानवों को मारना शुरू किया यह देख देवमुनि कहने लगे कि विष्णु सदा देवों की रक्षा करते आये हैं आज कैसे उन्हें नष्ट कर रहे हैं। मधु दानव माया से हर रूप धारण कर विष्णु से कहने लगा हे पापिन् ! दैत्यों के सामने देवों को नष्ट करता है उन्मत्त हुआ स्वकीय व परकीयों को भी नहीं जानता है अतः मैं तुम्हें यमलोक पहुंचाऊँगा। इतना कह मधु द्वारा विष्णु पर राक्ष-प्रहार। विष्णु ने उसके अस्त्रों को नष्ट कर दिया। मायावी मधु ने सिंहपर आरुढ़ हो देवी का रूप धारण किया। मधु व विष्णु का परस्पर युद्ध। बीच में ही धुन्धु एवं सुन्धु को भी भगवान् ने नष्ट कर दिया। भगवान् विष्णु ने चक्र से मधु का शिर काट दिया जिससे उनका नाम मधुसूदन हुआ।

## इन्द्रेण वृत्रासुरवधः

६३५

व्यासजी थोड़े दैत्यों में श्रेष्ठ महातेजस्वी वृत्रासुर इन्द्र के साथ लड़ने आया। इन्द्र ने आते हुए वृत्रासुर के सम्पूर्ण शरीर पर राक्ष चलाया। वृत्रासुर ने इन्द्र पर बाण छोड़े इस तरह दोनों में रात-दिन युद्ध हुआ। फिर इन्द्र ने उसके हाथी को शूल से मार दिया। दैत्य ने भी ऐरावत को शक्ति से व्यथित कर दिया। इन्द्र ने वृत्रासुर पर शक्ति का प्रहार किया उससे क्षण भर के बाद चेतना प्राप्त कर वृत्र ने इन्द्र पर बाणों की वर्षा की। फिर वृत्र ने महाशूल का प्रयोग किया। इन्द्र ने उसपर वैष्णवास्त्र छोड़ा दोनों अस्त्रों के स्पर्श से जलते पवित्र उड़ने लगे उनसे दोनों सेनाओं के कोई भी योद्धा क्षणभर न ठहर सके। जय पराजय

का विचार कर दोनों का घनघोर संग्राम हुआ जिसकी कोई समता नहीं। जैसे महर्षि वाल्मीकि ने अपने आदि काव्य में “रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव” कहा है उसी तरह यहाँ भी “वृत्रवासवयोर्युद्धं वृत्रवासवयोरिव” सार्थक किया अन्त में, वृत्रासुर के केशों को पकड़ तलवार से शिर काट दिया गया। इससे लिये दूसरे पुराणों में वज्र से भी शिर काटने का वर्णन आता है। वृत्रासुर के मरने से देवों ने जयध्वनि की।

७६

गणेशेन त्रैपुरविधः

६३८

व्यासजी ने कहा त्रैपुरि ( त्रिपुर का पुत्र ) चार घोड़ों से युक्त रथ पर बैठ गणेश से कहने लगा कि तुम्हारे पिता ने मेरे पिता की मृत्यु की है अतः तुम्हें बाणों से यमराज के स्थान को पहुँचाऊँगा। गणेश जी ने कहा तुम्हारे पिता ने देवों का अहित कार्य किया था इसलिये हमारे पिताजी ने ज्ञान व बहुपूर्वक पर ही बाण से उसे नष्ट कर दिया और मैं तुम्हें नमी मार्ग में एक क्षण में भेजता। इतना कह दोनों का परस्पर युद्ध। शास्त्रास्त्रों से घायल हो त्रैपुरि रथ में गिर गया। सारथि उसे रजश्चक्र से धड़ग छे गया। गणेशजी ने विमुख पर प्रहार न किया। बहुत समय के बाद चेतना प्राप्त होने से त्रैपुरि ने सारथि से कहा हरपाँक बिनायक के पास चलो तब सारथि बोला कि हर-पुत्र के बाणों को कौन सहन कर सकता है इसलिये आप मोहित हो गये थे और मैं आपको यहाँ छे आया हूँ अब जो युक्त हो मो करिये। इसके बाद हाथों व मूँच का परस्पर युद्ध। हाथी एवं त्रैपुरि की मृत्यु। मुनियों ने इस कार्य की बहुत प्रशंसा की। देवों साधु-माधु करने लगे और पुण्य एवं गन्नादि से पूजा करने लगे और हर के बारे शान्त भावने लगे।

देवदैत्यानां द्वन्द्वयुद्धम्	६४१
विष्णोर्हिरण्याक्षेण सह युद्धम्	६४५
देवकृतविष्णुविजयस्तोत्रम्	६४७

व्यासजी ने कहा महेश्वर के वचन सुन देवगण दौड़ने लगे। कुम्भ नामक दानव यक्षराज कुबेर से लड़ने आया। राक्षस ने कुबेर को गदा मारी कुबेर ने उसके गदा मारी। दोनों का परस्पर गदा-युद्ध हुआ। अन्त में, धनेश्वर ने कुम्भ के श्वाश्वल में गदा मारी जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। अम्भासुर ने ऐरावत के पद बाण मारे। इन्द्र ने असुर पर वज्र छोड़ा उससे वह गतप्राण हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। स्वामी कार्तिकेय ने अरण्य, सुघोर, अघोर और घोर गणमुख्यों को शक्ति से नष्ट किया। जयन्त ने सौरभ दानव को नष्ट किया। काल ने प्राभ्रव को और मृत्यु ने शक्ति से अश्व तथा निर्वृणक को नष्ट किया। अग्नि ने भद्रबाहु, द्वापाहु, सुगन्ध, गन्धभौरिक, बलिक और भीम को भस्म किया। धरुण ने रातों से दैत्यों को नष्ट किया। इस तरह नाना देवों का नाना दानवों से युद्ध। रथ के समान रथ में बैठ हिरण्याक्ष का युद्धार्थ का आगमन उससे देवों पर जोनों की वर्षा की। हिरण्याक्ष ने जयन्त के तीक्ष्ण दश बाण, रेमन्तक के पांच, इन्द्र के पन्द्रह, चित्ररथ के बीस, स्वामी कार्तिक के पचीस, गणेश के तीन, यमराज के चालीस, काल व मृत्यु के द्विगुण बाणों से, गुह्यकेरा कुबेर, वसु और रुद्रादिकों के भी बहुत बाण मारे इससे उसके सामने देवगण न टहर सके। शक्ति देवों का विष्णु के पास जाना। विष्णु और हिरण्याक्ष का परस्पर युद्ध। हिरण्याक्ष ने सैकड़ों बाण विष्णु पर छोड़े। विष्णु ने उन्हें काट दिया। फिर उसने हजारों बाण छोड़े उन्हें भी विष्णु ने नष्ट कर उसपर बाण मारे। युद्ध में क्रोधित हिरण्याक्ष ने विष्णु पर पर्वत का प्रहार किया और भगवान् ने गदा से पर्वत का पूर्ण कर दिया। इस तरह हजारों पर्वतों का पूर्ण विष्णु ने किया। मायावी

दानव हजार भुजा धारण कर लड़ने लगा। भगवान् ने उसके सम्पूर्ण शरीर पर बाण मारे जिससे दुःखित और क्रुद्ध हो अष्टघण्टा युक्त कालजिह्वा के समान अनुपम सर्वशक्ति से उसने विष्णु पर प्रहार किया इसपर विष्णु ने चक्र छोड़ा। चक्र ने अन्य दानवों को नष्ट कर हिरण्याक्ष को भी पृथ्वीपर गिराया फिर चेतुना प्रात का दैत्य ने विष्णु पर यहि बाण छोड़ा। विष्णु ने कौबेर घाण का प्रयोग किया फिर माया युद्ध होने लगा। दैत्य वामन की तरह बढ़ने लगा तथा त्रिलोक के मुख में रखने लगा और पृथ्वी को पाताल में ढे गया। प्रसन्न हुए शेष दानव भी उसके साथ ही पाताल में चले गये। दैत्य के बल को जान विष्णु ने वाराह का रूप धारण कर पाताल में प्रवेश किया। रसातल को अपने दाढ़ों पर धारण कर चलने लगे। तब दैत्य सामने आया विष्णु ने पृथ्वी को जल पर रख उसमें अपन तेज स्थापित कर अचला बना दिया। दैत्य ने भगवान् पर गदा छोड़ी उस गदा को धचा भगवान् ने उसपर गदा छोड़ी तब ब्रह्मादि देवों ने कहा इससे बालक की तरह क्रीड़ा मत कीजिये इसे नष्ट ही कर दीजिये। तब भगवान् वाराह ने सहस्र सूर्य के तेजवाले चक्र से उसे भस्म कर दिया। प्रसन्न हुए देवों ने भगवान् वाराह की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न हो भगवान् ने कहा मैं तुम्हारे स्तोत्र से प्रसन्न हूँ। इस स्तोत्र के पठन श्रवण का फल वर्णन।

७८

रणे मृतानां दैत्यानामुत्तमगतिप्राप्तिः

६४८

मनुष्ययोनिगतदैत्यानां स्वभावतो दैत्यत्ववर्णनम्

६४९

दैत्यवंश्यानामपि प्रह्लादादीनां देवत्वप्राप्तिः

६५१

एकस्य वैष्णवपुत्रस्याऽऽख्यायिकावर्णनम्

६५३

मनुष्येष्ववतीर्णानां देवदैत्यानां लक्षणम्

६५५

सञ्जय ने पूछा जो दानव युद्ध में सम्मुख अथवा विमुख मरे उनकी गति में मुनना चाहता हूँ व्यासजी ने कहा सम्मुख मरनेवालों को देवत्व प्राप्ति होने से वे

निरन्तर भोग भोगते हैं। जो मायावी देव, ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाले, कायर युद्ध से भाग जाते हैं उन्हें नरक की प्राप्ति होती है। गिरे हुए मूर्च्छित, भग्न और दूसरे से युद्ध करनेवाले को मारनेवाले नरक में जाते हैं। रण में विमुख होनेवाले सभी म्लेच्छ, कुवाचक, दूसरे की घरोहर हरनेवाले, चोर, साहसकारी, सब वस्तु भक्षण करनेवाले और गो ब्राह्मण घातक होते हैं तथा इनकी पैशाची भाषा होती है इनके आचार विचार नहीं रहते। माता, बहिन और अन्य स्त्री की बे कामना करते हैं इनके सदाचार विपरीत रहते हैं। अन्य रूप से भी मनुष्यगत दैत्यों के स्वभाव से दैत्यत्व वर्णन। सञ्जय ने पूछा तात्त्विक लोग मर्त्यभाव में इन्हें कैसे पहचानते हैं इस संदेह को दूर कीजिये व्यासजी ने कहा पाप के अनुकूल ही विजाति व अन्य जातियों में असुर, राक्षस व प्रेत अपने स्वभाव को नहीं त्यागते हैं। मर्त्यलोक में उत्पन्न हुए असुर सदा ही कलह करनेवाले होते हैं। इस तरह ऋषी, आकाश, नागलोक और यमालय में भी उम तप करनेवाला कोई पुरुष सुरत्व की प्राप्ति कर सकता है जैसे वासुदेव की आराधना कर प्रह्लाद और शङ्कर की आराधना कर अन्धक और अन्य यक्षि आदि को सुरत्व प्राप्ति हुई। एक भी सुपुत्र से कुल का उद्धार हो सकता है। पतिव्रता एक भी स्त्री कोटि कुलों का उद्धार कर सकती है। धर्म नष्ट होनेपर कलियुग में धर्मात्मा एक भी पुर, ग्राम, जन, और कुल की रक्षा करता है। इस विषय में एक वैष्णवपुत्र के कथानक का वर्णन। एक विश्वात्मदेव नामका ब्राह्मणों का महान् नगर था। वहाँ के लोग पद कर्म करनेवाले, यज्ञप्रद व सन्ध्योपासन कर्म करनेवाले थे। देव योग से एक गृहस्थी विप्र में धृतादुति दे रहा था उसी समय उसे भयङ्कर मूत्र-कुच्छ हुआ। विप्र अपने पक्ष के रक्षार्थ चेटी को बैठा मूत्र त्यागने गया। चेटी की असावधानता से धृत को कुत्ते ने खा लिया। चेटी ने डरसे धृतपात्र को अपने मूत्रसे पूरित कर दिया। विप्र ने जल्दी में उस धृतपात्र को बिना देखे ही आहुति दे दी। उससे सुवर्ण की उत्पत्ति हुई। सुवर्ण को ले वह पाप कर्म करने लगा। इस विषय में दासी से पूछा गया

दासी ने जैसा हुआ कह दिया। इस भयङ्कर पाप से सम्पूर्ण नगर जलने लगा। ज्ञाता वृद्ध ब्राह्मण ने इस कार्य में बुद्धि न लगाई। नगर के दुःख से दुःखित ब्राह्मणी ने पति से कहा आपको दुःखी देखकर मुझे दुःख है यदि यह प्रामाचार है तो दूसरा धर्म आचरण करो। दोष को जाननेवाले ब्राह्मण ने हँसकर कहा जो अपने धर्म को त्याग दूसरा आचरण करता है वह अपुनर्भव नरक में जाता है। ये ब्राह्मण दुराचारी हैं इस पाप से रसातल में जाकर अन्त में अपुनर्भव में जायेंगे वहाँ अपराध का अन्त नहीं है। मैं अकेला ही पुण्य की रक्षा से ठहरता हूँ। ब्राह्मणी ने लोकहास्य वचन सुना और कहा ऐसा दूसरे के सामने नहीं कहना। ब्राह्मण ने कहा यहाँ से दूसरी जगह जाने से धन और परिवार के साथ पुरी अधोगति को जायेगी। व्यासजी ने कहा प्रसन्न हुआ ब्राह्मण अपना धन ले ब्राह्मणी के साथ दूसरी सीमा में चला गया। ब्राह्मणी ने कहा नगरी तो पूर्व की तरह ही विराजमान है तो ब्राह्मण बोला कोई वस्तु वहाँ रह गई है। ब्राह्मणी ने विचार कर कहा मैंने भ्रान्ति से जूने छोड़ दिये हैं इतना कह जूना ले पति के पास आई अब नगर नष्ट हो गया। ब्राह्मणादि वर्ण अपुनर्भव नरक में गिर गये। कष्टपूर्वक नरक में जाने लगे अतः पूतिगन्ध अमेध्य वस्तु सर्वथा त्याग्य है। मनुष्यों में जन्म लेनेवाले देव व दैत्यों के लक्ष्णों का वर्णन।

७६

सूर्यमाहात्म्यवर्णनम्

६५७

सङ्क्रान्त्यादिषु दानादिविधिः

६६१

अर्कसप्तमीव्रतविधानवर्णनम्

६६३

वैशम्पायनजी ने पूछा कि हे प्रभो! जो नित्य आकाश में उदय होता है यह कौन है इसका क्या प्रभाव है कहाँ से इसको उत्पत्ति है तथा यह क्या कार्य करता है ? व्यासजी ने कहा यह ब्रह्मदेह से निकला हुआ परब्रह्म तेज है तथा धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष को देनेवाला है इसकी तीक्ष्ण किरणों से लोक दौड़ने लगे; समुद्र,



इ और नदियां सूखने लगे व आतुर प्राणी मरने लगे यह देख इन्द्रादि देव  
 ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने देवों से कहा यह सत्त्वगुण युक्त आदि देव है तथा  
 चन्द्रमा रजोगुण युक्त इन दोनों से ही संसार पालित है इसके समान कोई रक्षक  
 नहीं है। इसी का ध्यानकर विप्र मोक्ष साधन करते हैं। ऊषाकाल में दर्शन  
 करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी के मण्डल में सन्ध्यास्वरूपिणी देवी  
 गायत्री विराजमान है जिसकी उपासना करनेवालों को स्वर्ग व मोक्ष मिलता है।  
 इसकी उपासना करने से सर्व रोग, दरिद्रता दुःख व अन्धत्व नष्ट हो जाते हैं।  
 सूर्य की आराधना के विषय में देवों ने पूछा तब ब्रह्मा ने सर्व प्रथम स्तुति की  
 सुवि से प्रसन्न हो सूर्य ने ब्रह्मा से वर मांगने को कहा ब्रह्माजी ने कहा आपकी  
 किरणें अत्यन्त प्रचण्ड हैं इन्हें कोमल कीजिये। आदित्य ने कहा मेरी कोटि  
 कोटि किरण संसार को नारा करनेवाली हैं अतः इनका छेदन कर दीजिये।  
 सूर्य के वचन सुन ब्रह्मा ने विश्वकर्मा को मुला वज्रमयी भ्रमि (चक्र) से सूर्य-किरणों  
 को छेदन करवाया। उन किरणों से विष्णुचक्र, यमदण्ड, त्रिशूल, काल का खड्ग,  
 शक्ति और चण्डिका का परम अस्त्र बनाये गये। केवल सहस्र किरण ही बचाई  
 गई और सब का छेदन कर दिया। अदिति के गर्भ से होने से इसका आदित्य  
 नाम हुआ। इसके द्वारा राशियों को सङ्क्रमण करने को सङ्क्रान्ति कहा जाता है।  
 वङ्क्रान्ति में दानादि करने का पुण्य। माघ पूर्णिमा में पितृवर्षण एवं गोदानादि का  
 महत्त्व। माघ शुक्ल सप्तमी का व्रत उस दिन रविवार हो तो वह महा जया वङ्क्रांती  
 है अन्यथा जया नाम से प्रसिद्ध है। जो सूर्य के प्रमन्नार्थ अन्न, सुवर्ण, रजत, धातु  
 और धान्य देता है वह स्वर्ग एवं मर्त्यलोक का पति होता है। सूर्य की प्रसन्नता के  
 लिये अन्यान्य दानादिकों का वर्णन। सूर्य का व्रत रविवार उत्तरायण शुक्लपक्ष  
 और पुनाम नक्षत्रों में करना चाहिये। पुनाम नक्षत्र ये हैं—

हस्तो मीनं तथा पुष्यः श्रवो मृग पुनर्वसू ।

पुनामचेयनक्षत्राण्येतान्याहुर्मनीषिणः ॥

पंचमी को एक वक्त भोजन, षष्ठी को नक्त भोजन और सप्तमी को उपवास कर अष्टमी को पारण करना चाहिये। यहाँ पर नक्त भोजन का वर्णन यह है कि

आत्मनो द्विगुणां ज्ञायां यदा कुर्वीत भास्करः।

तदा नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम्॥

जब अस्त होते सूर्य के प्रकाश में अपनी परछाया दुगुनी होवे वह नक्तकांत है वही वक्त काम में लें प्रथम फलपुष्पों से पूजन करे फिर अन्नदान करे। सूर्य का ध्यान करे व मन्त्र जपे। पारण अष्टमी को ही करना चाहिये नवमी को नहीं क्षीर आदि पदार्थों से ब्राह्मणों को दत्त कर दक्षिणा दे। इस अनन्त फल देनेवाली सूर्यसप्तमी का माहात्म्य व फलकथन।

८०

सूर्यस्याऽनेकव्रतवर्णनम्

६६४

सूर्यशान्तिविधानवर्णनम्

६६७

वैशम्पायनजी बोले आपकी कृपा से पावनव्रत मैंने सुना और भी सूर्य का प्रियकरव्रत वर्णन कीजिये। व्यासजी ने कहा कैलास पर्वत पर सुखासीन महादेव को स्कन्द ने इस विषय में पूछा तब महादेव बोले रविवार के दिन छाल पुष्पों से अर्घ्य देवे व नक्काहार हविष्यान्न से करे। सप्तमी रविवार को सङ्क्रान्ति का योग होने से उस दिन व्रत दानादि करने से अक्षय फल प्राप्त होते हैं। रविवार के दिन सूर्य की पूजन विधि विधान से कर जप, स्तुति व मुद्रा प्रदर्शित करे मेरे हाथ में ब्रह्मवध से कपाल लग गया था वह इन्हीं की कृपा से पारानसी में गङ्गा-तट पर मुक्त हुआ। इतना सुन स्कन्द ने आश्चर्य प्रगट किया तब महादेवजी बोले संसार के हितार्थ युग-युग में पृथक् ब्रह्मा, विष्णु और महेश कार्य करते हैं हमारा वन्दन नहीं है। सूर्यदेव वारहमहीनों में वारह नामों से तपते हैं। सूर्यमहामन्त्र का वर्णन। सूर्य के आदित्य आदि वारह नामों को जपने से मनुष्य सम्पूर्ण पाप व रोग से मुक्त हो जाता है। आदित्य उच्चारण करने से सम्पूर्ण 'दूता विस्फोटकादि' कामडरोग (पीलिया) ज्वर, कुष्ठरोग, कुक्षिरोग

धर्मरोग (पथरी), मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, चर्मरोग और अन्य वेदना रोग नष्ट हो जाते हैं। सन्ध्या समय हवन के समय मूलमन्त्र जप करने से क्रूर प्रह शान्त हो जाते हैं। यह प्रव नास्तिक और देव ब्राह्मणों के निन्दक को नहीं कहना चाहिये; केवल गुरुभक्त को बतलाना चाहिये। इसे करने से पुत्रार्थी को पुत्र, कन्यार्थी को कन्या, विधार्थी को विद्या और धनार्थी को धन प्राप्त होता है। ब्राह्मण भोजन के समय, पुण्य स्थान व तीर्थों में जपने से कोटिगुणा फल होता है।

८१ सूर्यमाहात्म्यप्रसङ्गाद्भद्रेश्वरनामकमध्यदेशनृपतिकथानकम् ६६८

व्यासजी ने कहा मध्यदेश में भद्रेश्वर नामक राजा हुआ। वह नाना प्रादि व तपस्याओं से पवित्र और देवों की पूजन करता था। उसके बायें हाथ में कुछ रोग हो गया। उसने मुख्य मन्त्री व ब्राह्मणों से कहा कि मेरे हाथ में छह हो गया है अतः बंराहीन मेरे शरीर त्यागने के लिये पुण्यक्षेत्र दत्तलाओ। ब्राह्मणों ने कहा आपके जाने से सम्पूर्ण संसार ही नष्ट हो जायगा अतः यही इसका विकार है कि आप सूर्य की उपासना कीजिये। ब्राह्मणों की आज्ञा से राजा ने वैश्विधान से अर्घ्यदान व जपापुष्पादि से सूर्य की पूजन की इसपर प्रसन्न हुए सूर्य ने उसे घर मांगने को कहा। राजा ने सम्पूर्ण पुरवासियों को स्वर्ग में रहने के लिये घर मांगा। सूर्य ने राजा के मन्त्री व विप्रों को परिवार सहित सूर्यलोक रहने का आदेश दे राजा के लिये पांच कल्प के बाद मन्वादि में राजा होने को कहा। सूर्य का अन्तर्धान करना। राजा का पुरवासियों सहित स्वर्ग में रहना। वहाँ के कीटादि भी परिवार सहित स्वर्ग में देवदूत में भोग भोगते हैं। सूर्यव्रत करने का फल वर्णन।



फिरने लगा। काममोहित हो पावती को लाने के लिये चेष्टा करने लगा। उमा ने कोटवी रूप धारण किया। दैत्य अपनी सेना ले शङ्कर से लड़ने चला। नन्दी की आज्ञा से देवों ने दैत्यों से युद्ध किया। युद्ध में मरे हुए दैत्यों को शुकाचार्य शीघ्र करने लगे। यह वृत्त ज्ञान शङ्कर ने नन्दी को आज्ञा दी कि शुकाचार्य हो केरा पकड़ यहां ले आओ। नन्दी उसे पकड़ लाये। महादेवजी उसे मेल गये फिर देवदानवों का परस्पर युद्ध हुआ। स्वयं महादेवजी के लड़ते हुए भी शिवों का बल क्षीण हो गया और यह दैत्य त्रिशूल से भी नष्ट न हुआ तो शङ्कर ने उसे अपना भृङ्गीरिटि नाम का गण बना लिया। देवों से बातचीत कर शुक को शहर निकाला वह गर्भ पृथ्वी पर गिरा इसलिये भौम का शङ्कर पुत्र नाम हुआ। प्रकाशत भौमवार व चतुर्थी के दिन करे जिससे अरिष्ट नष्ट होते हैं। त्रिकोण मंडल बना पूजन करे इससे पुत्र, सुख व यश की प्राप्ति होती है। इस धर्मा-दान को सुनने से जन्म-मरण नहीं होता इतना कह न्यासजी का शम्याप्रास क्षेत्र गमन। नारदजी भी नारायण के दर्शन के लिये बदरिकाश्रम चले गये।

४ . चण्डिकानुग्रहादवशिष्टदत्तानां रसातलमप्रति गमनम्	६७६
चण्डिकायाः पूजाफलनिरूपणम्	६७७
नानाविधपुष्पफलधण्डीपूजाविधानम्	६७९
चण्डिकोद्देशेन पञ्चगव्याद्येनकद्रव्यरभिपेकवर्णनम्	६८१

भीष्मजी ने पूजा चण्डिका के अनुग्रह से अवशिष्ट दैत्य रसातल में चले गये अतः चण्डिका-पूजन का फल वर्णन कीजिये। पुलस्त्यजी ने कहा कि चण्डिका पूजन से स्वर्ग के भोग भोगने पर मोक्ष मिलती है। जो चण्डिका का पूजन प्रति दिन करता है उसका फल साक्षात् ब्रह्मा भी वर्णन नहीं कर सकते। जो देवी पूजन प्रति दिन नाना पुष्प धूपदीपादि से करता है वही, योगी, मुनि व

लक्ष्मीवान् है उसके हाथ में ही मुक्ति है। जो भगवती को पूर्णिमा व नवमी को क्षीर से स्नान कराता है उसे वाजपेययज्ञ के समान फल मिलता है। सम्पूर्ण पर्वकाओं में पूजन करनेवाला विमान में बैठ ब्रह्मलोक में जाता है। जो फल चार मास दुर्गापूजन से मिलता है वही कार्तिक की नवमी को पूजन करने से मिलता है तथा आश्विन शुक्ल नवमी को देवी पूजन करने से मिलता है। आश्विन शुक्ल नवमी को देवी पूजन करने से हजार अश्वमेध व सौ राजसूय यज्ञ के समान फल मिलता है। प्रत्येक मास में नवमी के दिन पूजन करने से छः मास का फल मिलता है। जो आश्विन मास में एक दिन रात ताम्र पात्र की सूक्ष्मधारा से पूत से देवी का अभिषेक करता है उसके सय पाप नष्ट हो जाते हैं। कार्तिक पूर्णिमा सुष सोमवार को देवीपूजन करने से अग्निष्टोम यज्ञ के समान फल प्राप्त कर सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। आषाढी पूर्णिमा को उपवासी रह देवीपूजन करने से परम-गति की प्राप्ति होती है। माघ पूर्णिमा को देवी को पूजने से अश्वमेध यज्ञ के समान फल होता है। बिल्वपत्रों की माला तथा गुग्गुलु की माला से देवी पूजन करने से अथवा बिल्ववृक्ष के पत्रों से पूजा करने से राजसूय यज्ञ के समान फल मिलता है। देवी पूजन में सब पुष्पों से उत्तम नीलकमल धतूराया गया है। नाना प्रकार के पुष्पों से चण्डी पूजा करने से नाना लोकों की प्राप्ति का वर्णन। देवी मन्दिर में पुष्पों का मण्डल करने का वर्णन। धृतपिष्ट दीपक जलाने का विधान। देवी मन्दिर में वृत्त, गीत और वादित्र करने से देवीलोक की प्राप्ति। जो एक दिन भी देवी को पञ्चगव्य से स्नान कराता है उसे मुरभीलोक की प्राप्ति होती है। नाना रत्नादिकों से अभिषेक करने से नाना लोकों की प्राप्ति का वर्णन। उत्तरायण में उपवासी रह देवी पूजा करने से बहु पुत्र व बहु धन की प्राप्ति। विषुव (शुक्ल-मेघ सङ्क्रान्ति) में उपवास कर देवीपूजन करने से मनुष्य शक्तिमान् व बहुपुत्रोंवाला एवं बलवान् होता है। चन्द्र-सूर्य ग्रहण में उपवास कर दुर्गापूजन करने से पुत्र की प्राप्ति। शान्ति

लिये सूर्यग्रहण में उपवासी रह पूजन करने से विशेष फल प्राप्त है।

गंगा का दर्शन पवित्र है दर्शन से प्रणाम, वन्दन से स्पर्श, स्पर्श से पूजन, पूजन से लब्धपन से वर्षण और वर्षण से मांसदान पवित्र है मांस में महिष व अज का विधान है परन्तु मार्कण्डेयपुराण में बतलाया है कि सभी में अहिंसा की रक्षा रख देवी की पूजा करना श्रेष्ठ है “बलिमांसादि पूजेयं विप्रवर्ज्या रिता” विशेष क्या चण्डीपूजन करके ही भोजन करना चाहिये ।

**दुर्गायाः पूजाविधिनिरूपणम्**

६८३

**दुर्गाप्रीत्यर्थं नानाविधदाननिरूपणम्**

६८५

पुस्तकजी ने कहा देवी ने प्रज्ञा से दुर्गापूजन के विषय में पूजा तब ब्रह्माजी । लगे कि शम्भु, विष्णु, कुबेर, विश्वेदेव, वायु, वसु, अश्विनीकुमार, धरुण, सूर्य, सोम, मह, धारिज, पितर, पिशाच, गुहाक और भूतयोनि क्रम से, अकिमयी, इन्द्रनीलमयी, हेममयी, रौप्या, पित्तल से बनी दुर्द्ध, कांस्य की, पार्थिवी, लौह, रत्नमयी, ताम्रा, मुक्ताफलमयी, प्रवालमयी, वारिजा, त्र्युसीसमयी, चण्डी, त्रिलोहिनी और वज्रलोहमयी देवी का पूजन करते हैं तुम परमगति को प्राप्त हो तो मणिमयी देवी का पूजन करो जिससे मनोऽभिलषित सिद्धि प्राप्त होगी । इस भगवती प्रतिमा को नाना वाद्यादिकों से स्नान करावे नाना पुष्प वाद्यावे व पुष्पगृहे घनावे । जो मनुष्य नवमी व पर्वकाल में पूजन करता है वह पुष्पयुक्त विमान में बैठ चण्डीलोक में अक्षयकाल पर्यन्त सुखी रहता है । देवी के लिये सफेद वाक देने से गोसहस्र दान करने के समान फल कहा है । आम्र, नारिकेल, खजूर और बिजौरा चढ़ाने का फल । दुर्गा के प्रसन्नार्थ नाना वस्तुओं के दान देने का महत्त्व । कार्तिक में देवी के समीप दीप-मालिका करने का फल वर्णन । नवमी को विशेष विधान बतलाया है । चण्डिका की विधान से पूजनकर दुर्गा शिवां शान्तिकरी” आदि स्तोत्र का पठन करे इसे जो सुनता है वा पढ़ता वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर दुर्गा भगवती महामाया के लोक में पूजित होता है ।

भीष्मजी ने पूजा सूर्य, चन्द्रमा और भौम का पूजा-विधान सुना अब बुध आदि का पूजा विधान वर्णन कीजिये पुलस्त्यजी बोले बुध तारा के गर्भ से तथा चन्द्राक्ष से उत्पन्न हुआ है मनुष्यों को शुभाशुभ फल देता है। उसका वाणाकार मण्डल है रंग के लिये हरित मणियों के समान उसका पूर्ण से मण्डल बनावे, पुष्प भूषादिसे पूजन करे, अरिष्ट होनेपर दानादि करे; दान में कर्पूर, मूंग, इरावत हरिन्मणि यथाशक्ति देवे और स्तुति करे। गुरुपूजा में पीतवर्ण का विधान। पुष्प, पत्र और मुखांदि से पूजन करे। अरिष्ट होनेपर चने की राई पीला पत्र, सुवर्ण य पुष्पराग दान में देवे। शुक की पूजा का वर्णन जिससे करने से सम्पूर्ण कामों की प्राप्ति होती है। इसकी पूजन में पञ्चकोण मण्डल बनावे श्वेतगन्ध, श्वेतपुष्प, पत्र और रौप्यक दक्षिणा देवे। अरिष्ट होनेपर सफेद पोड़ा, तण्डुल, श्वेतपत्र, रौप्यक, चन्दन और गन्धित कर्पूर का दान दे तथा भाग्य की स्तुति करे इससे शुक प्रसन्न होते हैं। शनैश्चर का नराकार मण्डल होना चाहिये इसकी पूजन में कृष्णगन्ध, कृष्णपत्र, पुष्प, तिष्ठदूदा तथा लोहा और दक्षिणा देवे अरिष्ट होनेपर दानादि करे। राहु का मण्डल भी लोहा की तरह है तथा पूजाविधान भी उसी तरह है। गोमेद (बहुमूल्य पाषाण) सरसों, तिष्ठ, जड़, भैंस और बकरा का दान करे तथा उसकी स्तुति करे। केतु का मण्डल भद्राकार होना चाहिये इसकी पूजा का विधान शनि की तरह ही। केतु के दान में सप्तधान्य और स्वर्गादि देवे। ग्रहों के मन्त्रों का वर्णन। अरिष्ट के मुनने का पत्र वनन। मत्स्ययुग में तप, व्रता में ज्ञान, शिवर में धर्म और कृति में दान की प्रधानता बतलाई है। सब दानों में जपन अथवा स्तुति बतलाई है। मृद्विष्णु के पठन एवं भजन का पत्र। ॐ रामायणे महाभारत

विद्वज्जनवरानुरागिनः—

राजन्मन्त्र वास्तव्य ब्रह्मविद्या विवेदि नरैर्दुर्गाभिजन कर्माङ्गुलि वि

राजनायकाधीनाः

ॐ नमस्तुभ्यो नमः



• श्री गणेशाय नमः •

श्री महामुनि वेदव्यास प्रणीतम्

# पद्मपुराणम् ।



तत्रादौ प्रथमं सृष्टिखण्डं प्रारभ्यते

प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीपुण्यपुरोत्तमाय नमः ।

तत्रादौ मङ्गलाचरणम्

नारायणं नमस्तुभ्य नमोऽयं नमोऽस्तुभ्यम् ।

देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

✓ ॐ स्वच्छं चन्द्रावदातं करिकर्मकरशोभसञ्जातफेनं,  
प्रह्लोदभूतिप्रसक्तैर्मृतनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः ।

भोद्वापलंघनेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टिपूर्तं,

सम्भोगाभोगरम्यं जलमशुभहरं पौष्करं यः पुनरुतु ॥ १ ॥

सूतमेकान्तमासीनं व्यासशिष्यो महामतिः । लीनदर्पणनामा या उग्रध्वजमाह तत् ॥ २ ॥  
श्वपीणामाधमांस्ताव गत्वा धर्मान् समासतः । पृच्छतां विस्तरदुर्बुद्धिं यन्मत्तः श्रुत्वा न सि

भीष्मजी ने पूजा सूर्य, चन्द्रमा और भौम का पूजा-विधान सुना अरबु आदि का पूजा विधान वर्णन कीजिये पुलस्त्यजी बोले बुध तारा के गर्भ से रा चन्द्रांश से उत्पन्न हुआ है मनुष्यों को शुभाशुभ फल देता है। उसका बायांका मण्डल है रंग के लिये हरित मणियों के समान उसका चूर्ण से मण्डल बनावे, पु धूपादि से पूजन करे, अरिष्ट होनेपर दानादि करे; दान में कर्पूर, मूंग, हरावर हरिन्मणि यथाशक्ति देवे और स्तुति करे। गुरुपूजा में पीतवर्ण का विधान पुष्प, वस्त्र और सुवर्णादि से पूजन करे। अरिष्ट होनेपर चने की रा पीला वस्त्र, सुवर्ण व पुष्पराग दान में देवे। शुक्र की पूजा का वर्णन जिस करने से सम्पूर्ण कामों की प्राप्ति होती है। इसकी पूजन में पञ्चकोण मण्ड बनावे श्वेतगन्ध, श्वेतपुष्प, वस्त्र और रौप्यक दक्षिणा देवे। अरिष्ट होने पर सफेद घोड़ा, तण्डुल, श्वेतवस्त्र, रौप्यक, चन्दन और गन्धित कर्पूर का रा दे तथा भार्गव की स्तुति करे इससे शुक्र प्रसन्न होते हैं। शनैश्वर का नरका मण्डल होना चाहिये इसकी पूजन में कृष्णगन्ध, कृष्णवस्त्र, पुष्प, तिलहूटा व लोहा और दक्षिणा देवे अरिष्ट होनेपर दानादि करे। राहु का मण्डल भी रा की तरह है तथा पूजाविधान भी उसी तरह है। गोमेद (बहुमूल्य पाराव सरसों, तिल, उड़द, भैंस और बकरा का दान करे तथा उसकी स्तुति करे। केतु मण्डल ध्वजाकार होना चाहिये इसकी पूजा का विधान शनि की तरह ही। केतु के दान में सप्तधान्य और स्वर्णादि देवे। ग्रहों के मन्त्रों का वर्णन। रा चरित्र के सुनने का फल वर्णन। सत्ययुग में वप, प्रेता में ज्ञान, द्वापर में व और कलि में दान की प्रधानता बतलाई है। सब दानों में उत्तम अभय दान बतलाया है। सृष्टिस्रष्ट के पठन एवं श्रवण का फल। ॐ राभ्यसे महाकाव

विद्वज्जनचरणानुरागिणः—

लक्ष्मणगढ़ वास्तव्य महादत्त त्रिवेदि नव दुर्गाभिजन कजोड़ीलाल मिश्र

रामनाथदाधीचाः

ॐ तत्सद्गुह्यार्पणमस्तु

ॐ श्री गणेशाय नमः ॐ

श्री महासुनि वेदव्यास प्रणीतम्

# पद्मपुराणम् ।



तत्रादौ प्रथमं सृष्टिखण्डं प्रारभ्यते

प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीपुराणपुरोक्तमांशं नमः ।

तत्रादौ मङ्गलाचरणम्

नारायणं नमस्कृत्य नमस्कृत्य नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीम्बुध्नौ ततो जयमुदीरयेत् ॥

ॐ स्वच्छं चन्द्रायदातं करिष्मत्कण्ठोभसद्भातफेनं,

प्रक्षोबुभूतिप्रसक्तैर्मन्त्रनियमपरैः सेवितं विप्रमुष्यैः ।

मोहद्वारात्कृत्येन त्रिभुवनगुणैश्च प्रक्षणा दृष्टिपूर्तं,

सम्भोगाभोगरम्यं उत्तमगुणहरं पौष्करं यः पुनानु ॥ १ ॥

एतन्मोक्षान्तमार्गं व्यासशिष्यो महामतिः । लोमहर्षणनाम्ना वा उपभ्रमसमाह कृतः ॥ २ ॥  
श्रुत्वा तस्मात्तस्मात्तावत्तथा धर्मान् समासतः । पूज्यतां विस्तारयद्ब्रूहि यन्मत्तच्छ्रुत्वा न सि

वेदव्यासान्मया पुत्र पुराणान्यखिलानि च । तवाख्यातानि प्राप्तानि मुनिभ्योऽवदन्ति पत्न्यः ।  
 प्रयागे मुनिवर्यैश्च यथा पृष्ठः स्वयं प्रभुः । पृष्ठेन चानुशिष्टस्ते मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः ॥  
 देशं पुण्यमभीप्सन्तो विभुना च हितैषिणा । सुनामं दिव्यरूपञ्च सत्यगं शुभविक्रमम् ॥  
 धनौपम्यमिदं चक्रं वर्त्तमानमतन्द्रिताः । पृष्ठतो यात नियमात् पदं प्राप्स्यथ यदि तम् ॥  
 गच्छतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिर्विशिर्यते । पुण्यः स देशो मन्तव्य इत्युवाच स्वयम्भुः ॥  
 उक्त्वा चैवसूरीन् सर्वानहृष्यत्यमगात् पुनः । गङ्गापर्यंतसमाहारो नेमिर्वत्र व्यशिर्यत ॥  
 ईजिरे वीर्यसत्रेण ऋषयो नेमिपे तदा । तत्र गत्वा तु तान् ब्रूहि पृच्छतो धर्मसंज्ञकान् ॥  
 उपश्रयास्ततो गत्वा ज्ञानचिन्मुनिपुङ्गवान् । अभिगम्योपसंगृह्य नमस्कृत्वा वृत्ताञ्जलिः ॥  
 तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानूनीन् । ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महात्मने  
 तस्मै समेत्य पूजाञ्च यथायत् प्रतिपेदिरे ॥ १३ ॥

ऋषय ऊचुः ।

कुतस्त्यमागतः सूत कस्मादेशादिहागतः । कारणञ्चागमे ब्रूहि वृन्दारकसममुते ॥ १४ ॥

सूत उवाच ।

पित्राऽहन्तु समादिष्टो व्यासशिष्येण धीमता । शुभ्रपत्न्य मुनीन् गत्वा यत्ते पृच्छन्ति तदा  
 यदन्तु भगवन्तो मां कथयामि कथान्तु याम् । पुराणञ्चेतिहासं वा धर्मानथ पृथग्विधान् ॥ १५ ॥  
 तां गिरं मधुरां तस्य शुश्रुवुर्ह्यपि सत्तमाः । अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ॥ १६ ॥  
 दृष्ट्वा तमतिपिदप्यस्तं विद्वांसं लोमहर्षणिम् । तस्मिन् सत्रे कुञ्जपतिः सर्वशास्त्रविशारदः  
 शौनको नाम मेधावी विज्ञानारण्यके गुरुः । इत्थं तद्भावमालंब्य धर्मान् शुश्रूषुः पृष्ट्वा ह ॥  
 त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् प्रह्लादित्तमः । इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ॥  
 दुदोहिष मतिं तस्य त्वं पुराणाध्यायां शुभाम् । अमीषां विप्रमुख्याणां पुराणं प्रतिसम्प्रति  
 शुश्रूषास्ते महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि । सर्वे ह्येमे महात्मानो नानागोत्राः समागत्य  
 स्यान् स्वानंशान् पुराणोक्तान् शृण्वन्तु प्रह्लादादिनः ।

सम्पूर्णं वीर्यसत्रेऽस्मिस्तांस्त्वं धावय वै मुनीन् ॥ २३ ॥  
 पत्न्यः पुराणं सर्वेषां कथयस्व महामते । कथं पदं समुद्रमूर्तं प्रह्लादं तत्र कथयन्मनः ॥

प्रथमोऽध्यायः ] \* नैमिषारण्योत्पत्तिप्रस्तावः, सूतोत्पत्तिवर्णनञ्च \*

प्रोद्भूतेन कथं सृष्टिः कृता तान्तु तथा वद । एवं पृष्टस्तत्तांस्तु प्रत्युवाच शुभांगिर  
सूक्ष्मञ्च न्यायसंयुक्तं प्राग्रवीक्षीमहर्षणिः । प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्विष्टिचोदना  
पुराणार्थपुराणज्ञैः सर्वधर्मपरायणैः । यथा श्रुतं सुविख्यातं तत्सर्वं कथयामि ध-  
र्म एष तु सूतस्य सद्भिर्द्विष्टः सनातनः । देवतानामृषीणाञ्च राज्ञां चामिततेजसाम्  
वंशानां धारणं कार्यं स्तुतीनाञ्च महात्मनाम् । इतिहासपुराणेषु दृष्टा ये ब्रह्मवादिनः ।  
न हि वेदेभ्यधिकारः कश्चित् सूतस्य दृश्यते । वैज्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्त्तमाने महात्मनः  
मागधश्चैव सूतश्च तमस्तीतां नरोध्वरम् । तुष्टेनाथ तयोर्दत्तो धरो राज्ञा महात्मना  
सूताय सूतविषयो मगधो मागधाप्य च । तत्र सूत्यां समुत्पन्नः सूतो नामैह जायते ।  
पेन्द्रे सत्रे प्रवृत्ते तु ग्रहयुक्ते बृहस्पती । तमेवेन्द्रं वार्यस्पत्ये तत्र सूतो व्यजायत । ३२॥  
शिष्यहस्तेन यत् पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः । भयरोत्तरधारेण जहो तद्वर्णसङ्कल्पम् । ३३॥  
येऽत्र क्षत्रात् समभवन् ब्राह्मण्याश्चैव योनितः । पूर्व्येणैव तु साधर्म्याद्वैधर्मास्ते प्रकीर्तिताः  
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षेत्रोपजायिनः । पुराणेष्वधिकारो मे विहितो ब्राह्मणीरिह ।  
दृष्ट्वा धर्ममहं पृष्टो भवद्विर्ब्रह्मवादिभिः । तस्मात् सम्यग् भुवि ध्रूयां पुराणमृषिपूजितम्  
पितृणां मानसी कन्या यासर्वं समपद्यत । अपध्याता च पितृभिर्मत्स्यगर्भं यभूय सा ।  
धरणीव हुताशस्य निमित्तं पुण्यजन्मनः । तस्यां यभूय पूतात्मा महर्षिस्तु पराशरात् ।  
तस्मै मगधते कृत्वा नमः सत्याय वेधसे । पुरुषाय पुराणाय ब्रह्मवाक्पानुवर्त्तिने ।  
मानवच्छ्रमरूपाय विष्णवे शंसितात्मने । जातमात्रञ्च यं वेद उपतस्थे ससंप्रहः ॥४०॥  
प्रतिमन्यानमाधिष्य येनास्ती धृतिरागरात् । प्रकाशो जनिता लोके महाभारतचन्द्रमा-  
भारतं मानुमान् पिप्पूर्यदि न स्युरमी त्रयः । ततोऽज्ञानतमोन्धस्य कायसा जगतो नवेत्  
हृण्वर्हपावनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् । को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षान्महाभारतद्वयेत्  
त्मादहमुपाध्यायं पुराणं ब्रह्मवादिनः । सर्वज्ञात् सर्वलोकेषु पूजितादिततेजसः ॥४१॥  
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् । उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम् ।  
त्रिपर्वासाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् । निःशेषेषु च लोकेषु याजिरूपेण केशवः ।  
ब्रह्मणस्तु समादेशाद्देवानाहृतवानसौ । भङ्गानि चतुरो वेदान् पुराणन्यायविस्तरम् ।

असुरेणाखिलं शास्त्रमपहृत्यात्मसात्कृतम् । मत्स्यरूपेणाजहार कल्पादाबुदकार्णवे ॥  
 अशेषमेतदवददुदकान्तर्गतो विभुः । श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रति वेदांधतुर्मुखः ।  
 प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्तदा । कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः  
 व्यासरूपस्तदा ग्रहा संग्रहार्थं युगे युगे । चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वारे द्वारे जगौ ।  
 तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम् । अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तारम्  
 तदेवात्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम् । प्रबक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पाप्मसंक्षिप्तम् ।  
 सहस्रं पञ्चपञ्चाशत् पञ्चखण्डैः समन्यितम् । तत्रादौ सृष्टिखण्डं स्याद्भूमिखण्डंततः परम्  
 स्वर्गखण्डं ततः पञ्चासतः पातालखण्डकम् । पञ्चमञ्च ततः ख्यातमुत्तरखण्डमुत्तमम् ।  
 एतदेव महापद्ममुद्भूतं यन्मयं जगत् । त्रुवृत्तान्ताधयं यस्मात् पाप्ममित्युच्यते ततः ।  
 एतत् पुराणममलं विष्णुमाहात्म्यनिर्मलम् । देवदेवो हरिर्यद्वै ग्रहणे प्रोक्तवान् पुरा ।  
 ग्रहणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये । एतदेव च वै ग्रहा पाप्मं लोके जगाद वै ।  
 सर्वभूताध्ययं तच्च पाप्ममित्युच्यते ध्रुवैः । पाप्मं तत्पञ्चपञ्चाशत् सहस्रानीह पठ्यते ।  
 पञ्चभिःपर्वभिःप्रोक्तं संक्षेपाद्व्यासकारितात् । पौष्करं प्रथमं पर्वयत्रोत्पन्नः स्वयं विराट्  
 द्वितीयं तीर्थपर्व स्यात् सर्वग्रहगणध्रयम् । तृतीयपर्वग्रहणा राजानो भूरिदिशिजाः ।  
 वंशानुचरितञ्चैव चतुर्थं परिकीर्तितम् । पञ्चमे मोक्षतत्त्वञ्च सर्वतत्त्वं निगद्यते ।  
 पौष्करे नवधा सृष्टिः सर्वेषां ग्रहकारिता । देवतानां मुनीनाञ्च पितृसर्गस्तथापरः ।  
 द्वितीये पर्वताश्चैव द्वीपाः सप्त सप्तगराः । तृतीये र्द्व्यसर्गस्तु दक्ष्यापस्तयैव च ।  
 चतुर्थे सम्भवो राक्षसं सर्ववंशानुकीर्तनम् । अन्त्येऽप्यर्गसंस्थानं मोक्षशास्त्रानुकीर्तनम् ॥

सर्वमेतत् पुराणेऽस्मिन् कथयिष्यामि वो द्विजाः ॥ ६६ ॥

इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं पितृणामतिबल्लभं स्यात् ।

इदञ्च देवस्य सुखाय नित्यमिदं महापातकमिष्य पुंताम् ॥ ६७ ॥

इति धीमन्पुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पुराणावतारे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः ।

सूतकृत मङ्गलाचरणम् सृष्टिखण्डस्य विषयवर्णनञ्च

सूत उवाच ।

तस्यै सर्वलोकानां विश्वस्य जगतः पतिम् । य इमं कुर्वते भावं सृष्टिरूपं प्रधानवित् ॥  
 । फलस्योक्तत्वज्ञो योगमास्थाय योगवित् । असृजत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च  
 रजं विश्वकर्माणं चित्पतिं लोकसाक्षिणम् । पुराणाख्यानाजिज्ञासुर्वजामि शरणं विभुम्  
 प्रविष्णुगिरिशेभ्यो नमस्कृत्वा समाहितः । इन्द्राय लोकपालेभ्यः सवित्रे च समाधिना  
 गीताञ्च वसिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने । तदुक्त्वन्ने भाततपसे जातूकर्णाय चाक्षुषे ॥  
 तस्मै भगवते नत्वा वेदव्यासाय वेधसे । पुराणाय पुराणाय भृगुवाक्यानुवर्त्तिने ॥ ६ ॥  
 तस्मादहमुपाधीपं पुराणं ब्रह्मवादिनः । सर्वज्ञात् सर्वलोकेषु पूजिताहीततेजसः ॥ ७ ॥  
 भव्यकं कारणं यस्तन्नित्यं सदसदात्मकम् । महदादि विशेषान्तं सृजतीति विनिश्चयः ॥  
 ऋण्डे हिरण्ये पूर्वं ब्रह्मणः सृतिरुत्तमा । ऋण्डस्याचरणञ्चाद्विरपामपि च तेजसा ॥ ८ ॥  
 वायुना तस्य पायोः क्षात्तदुभूतादित् थावृतम् ।  
 भूतादिर्महता चापि भव्यकेनावृतो महान् ॥ १० ॥

प्रादुर्भाष्य लोकानामण्ड एवोपवर्णितः । नदीनां पर्वतानाञ्च प्रादुर्भाषोऽनुषर्ण्यते ॥  
 मन्वन्तराणां संक्षेपात् कल्पानाञ्चोपवर्णनम् । ब्रह्मवृक्षल्यब्रह्म-प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥  
 कल्पानां सञ्चरध्वं जगतः स्थापनं तथा । शयनञ्च हरेरप्सु पृथिव्युद्धरणं पुनः ॥ १३ ॥  
 दशधा जन्मसञ्चारो भृगुशापेन केशवे । सन्निवेशो युगादीनां सर्वाधमविभाजनम् ॥  
 स्वर्गसानविभागश्च मर्त्यानां स्वर्गचारिणाम् । पशूनां पक्षिणाञ्चैव सम्भवः परिकीर्तितः ॥  
 तथा निर्वचनं कल्पं स्वाध्यायस्य परिग्रहः । प्रतिसर्गा पुनः प्रोक्ता ब्रह्मणो बुद्धिपूर्वकाः ॥  
 प्रयोऽन्येऽबुद्धिपूर्वास्ते तथा लोकानकल्पयत् । ब्रह्मणो वदनेभ्यस्त्वभृग्यादीनां समुद्भवः ॥  
 कल्पयोरन्तरं प्रोक्तं प्रतिसन्धिश्च सर्गयोः । भृग्व्यादीनामृषीणाञ्च प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥  
 वसिष्ठस्य च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मत्वं परिकीर्त्तितम् । स्वायम्भुवस्य च मनोस्तत्त्वाप्यनुकीर्तनम् ॥

उकोनामेर्विसर्गश्च रजसश्च महात्मनः । द्वीपानाञ्च समुद्राणां पर्वतानाञ्च कीर्तनम् ॥  
द्वीपभेदसमुद्राणामन्तर्भावश्च सप्तसु । कीर्त्यन्ते योजनाग्रेण ये च तत्र निवासिनः ॥  
तदीयानिव वर्षाणि नदीभिः पर्वतैः सह । जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ॥

अण्डस्यान्तस्त्रिमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ।

सूर्याचन्द्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषां तथा ॥ २३ ॥

कीर्त्यन्ते ध्रुवसामर्थ्यात् प्रजानाञ्च शुभाशुभम् ।

ग्रहणा निर्मितः सौरः स्यन्दनोऽर्धवशात् स्वयम् ॥ २४ ॥

कल्पितो भगवांस्तेन प्रसर्पति दिवाकरः । सूर्यादीनां स्यन्दनानां ध्रुवादेव प्रवर्तनम् ॥

कल्पितः शिशुमारश्च यस्यपुच्छेध्रुवः स्थितः । सम्भयान्ते च संहारः संहारान्ते च सम्भयः

देवतानामृपाणाञ्च मनोः पितृगणस्य च । न शक्यं विस्तपद्बहुमित्युक्तञ्च समासतः ॥ २५ ॥

अतीतानागतानां वै समं स्वायम्भुवेन तु । मन्वन्तरेषु देवानां प्रजेशानाञ्च कीर्तनम् ॥

नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिकः स्मृतः । त्रिविधः सर्वभूतानां कल्पितः प्रतिसङ्घटः ॥

अनावृष्टिर्भास्कराश्च घोरः संचर्तफानलः । मेघाध्वैकार्णवा ये तु तथारात्रिर्महात्मनः ॥

सन्ध्यालक्षणमुद्दिष्टं तथा ग्राह्यं विशेपतः । भूतानाञ्चापि लोकानां सप्तानामनुपर्वणम् ॥

सङ्कुर्त्तन्ते मया चात्र पापानां रीत्यादयः । सर्वेषामेव सत्त्वानां परिणामविनिर्णयः ॥

ग्रहणः प्रतिसर्गश्च सर्वसंहारपर्वणम् । कल्पे कल्पे च भूतानां महतामपि संक्षयः ॥

सुसंख्याय च बुद्ध्यायै ग्रहणश्चाप्यनित्यताम् । दीपारम्यश्चैव भोगानां संसारस्य च कृतम् ॥

दुर्लभत्वं च मोक्षस्य वीराग्यादोपदर्शनम् । व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य सत्त्वं ग्रहणिसंस्थितम् ॥

नानात्यदर्शनात् मुख्यस्तत्त्वमिव वर्तते । ततस्तापत्रयातीतो विरूपाक्ष्यो निरद्वयः ॥

आनन्दं ग्रहणः प्राप्तो न विभेति कुतश्चन । इति तस्य समुद्देशः प्रमाणस्योपपत्तिः ॥ २६ ॥

कीर्त्यन्ते जगतो यत्र सर्गप्रलयविक्रियाः । प्रवृत्तिश्चापि भूतानां निवृत्तीनां फलानिव ॥

प्रादुर्भापो पक्षिष्टस्य शक्रेर्जन्य तथैव च । सौदासाग्रिग्रहस्तस्य विश्वामित्रहतेन च ॥

पद्मसारस्य चोत्पत्तिरदृश्यन्यां यथा विभोः ।

ऊढे पितृणां कन्यायां व्यासश्चापि यथा मुनिः ॥ २७ ॥



गुरुस्य च यथा जन्म पुत्रस्य सह धीमताः । पराशरस्य चिद्वेपो विश्वामित्रवृत्तो यथा ॥  
 वसिष्ठसंभृतस्वाग्निर्विद्यामित्रजिघांसया । सन्धानहेतोर्विभुना जीर्णः कण्वेन धीमता ॥  
 देवेन विप्रः विप्राणां विश्वामित्रहिते विष्णा । एकं वेदं चतुष्पादं चतुर्धा पुनरीद्वरः ॥  
 यथा विभेद भगवान् ध्यासः सर्वेष्वनुग्रहात् । तस्य शिष्यप्रशिष्यैश्च शास्त्राभेदाः पुनः कृताः ॥  
 प्रयागे मुनिवयैश्च यथा पृष्टः सत्यम्भुः । कृष्णेन चानुशिष्टास्ते मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः ॥  
 एतत्सर्वं यथा तत्पमाख्यातं द्विजसत्तमाः । मुनीनां धर्मनित्यानां लोकतन्त्रमनुत्तमम् ॥  
 ब्रह्मणा यत्पुरा मोक्तं पुनस्तथाय महारत्ने । पुलस्त्येनाथ भीष्माय गङ्गाद्वारे प्रभाषितम् ॥  
 धन्यं यदास्यमाणुष्यं सर्वपापप्रणाशनम् । कर्तनं ध्वजश्चास्य धारणश्च चिरीपतः ॥  
 सौनानुक्रमेणैव पुराणं सम्प्रकाशितम् । ब्राह्मणेषु पुरा यच्च ब्रह्मणोक्तं सविस्तरम् ॥  
 पादमस्य चिद्वत् सम्यग्योऽर्थायीत जितेन्द्रियः ।

तेनाधीतं पुराणं स्यात् सर्वं मास्त्यत्र संशयः ॥ ५० ॥  
 यो विश्वामित्रो वेदान् साङ्गोपनिन्दो द्विजः । पुराणश्च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः ॥  
 इतिहासपुराणभ्यां वेदं समुपवृहयेत् । विभेत्पथधृताद्वेदो मामयं ग्रह (त) रिष्यति ॥  
 अधीत्यैकमध्यायं सर्वमोक्तं सत्यम्भुषा । आपश्च प्राप्य मुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥  
 पुण परम्ययं यत्किं पुराणं तेन वै स्मृतम् । निरुक्तिमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥  
 शत्रयो ह्यनुयन् सूनं कथं भीष्मेण सङ्गतः । ब्रह्मणो मानसः पुत्रः पुलस्त्यो भगवानृषिः ॥  
 दुर्लभं दर्शनं यस्य नरैः पापसमन्वितैः । भत्याश्चर्यमिदं सूत क्षत्रियेन कथं मुनिः ॥  
 आपाधितो बृहदुभूतस्तन्नो यद् महामते । कीदृशं वा तपस्तेन को वान्यो नियमः कृतः ॥  
 येन तुष्टो मुनिर्ब्राह्मस्तथा तेन प्रभाषितः । पर्वं वाप्यथ पर्वाद्धं समग्रं वा प्रभाषितम् ॥

यस्मिन् स्थाने यथा पृष्टः पुलस्त्यो भगवान् ऋषिः ॥  
 तन्नो यद् महाभाग कल्याः स्म श्रवणे पथम् ॥ ५६ ॥

सूत उवाच

यत्र गङ्गा महाभागा साधूनां हितकारिणी । विविधपर्वतं वेगान्निःसृत्वा लोकपावनी ॥  
 गङ्गाद्वारे महातीर्थे भीष्मः पितृपरायणः । शुश्रूषुः सुचिरं कालं महतां निषमे स्थितः ॥

याचद्वर्पशतं साग्रं परमेण समाधिना । ध्यायमानः परं ब्रह्म त्रिकालं ज्ञानमाचख ॥  
 पितृन् देवांस्तर्पयतः स्वाध्यायेन महात्मनः । आत्मानं कर्पतश्चास्यतुष्टोदेवः पितामहः ॥  
 उवाच तनयं ब्रह्मा पुलस्त्यमृपिसत्तमम् । सत्त्वं देवघृतं भीष्मं वीरं कुण्डुलोद्भवम् ॥  
 तपसः सन्निवर्तस्य कारणंचास्यकीर्तय । पितृन् नक्तग्रामहामागो ध्यायमानः समास्थितः ॥  
 यो ह्यस्य मनसः कामस्तंसम्पादय मा चिरम् । पितामहघनः श्रुत्वा पुलस्त्यो मुनिसत्तमः ॥  
 गङ्गाद्वारमथागत्य भीष्मं घनममघवीत् । घरं घरय भद्रन्ते यत्ते मनसि वृत्तते ॥  
 तुष्टस्ते तपसावीर साक्षादेवः पितामहः । ब्रह्मणा प्रेषितस्त्वेऽहंब्रह्मन्दास्यामिकाक्षितम् ॥

भीष्मोऽपि तद्वचः श्रुत्वा मनःश्रोत्रसुखायहम् ।

उन्मील्य नयने दृष्ट्वा पुलस्त्यं पुरतः स्मितम् ॥ ६६ ॥

अष्टाङ्गप्रणिपातेन नत्वा तं मुनिसत्तमम् । उवाच प्रणतोभूत्वा सर्वाङ्गालिङ्गितावनिः ॥  
 अद्य मे सकलं जन्म दिनश्चेदं सुशोभनम् । भवतश्चरणौ दृष्टौ जगद्वन्द्यौ मया त्विदं ॥  
 तपसश्च फलं प्राप्तं यद्दृष्टो भगवान्मया । वरप्रदो विशेषेण सम्प्राप्तश्च नदीतटे ॥  
 इयं वृषी मया कलसा आस्यतां सुखदा कृता । अर्घ्यपात्रे तु पालाशे दूर्वाक्षतमुमैः कुरीः ॥  
 सस्रपैश्च दधिक्षीर्द्रियैर्वैश्च पयसा सह । अष्टाङ्गो ह्येष निर्दिष्टो ह्यर्घो हि मुनिभिः पुरा ॥  
 श्रुत्वैतद्वचनं तस्य भीष्मस्यामिततेजसः । उपविष्टो ब्रह्मसुतः पुलस्त्यो भगवान्स्त्रयिः ॥  
 विष्टरं सहपाद्येन अर्घ्यपात्रं मुदान्वितः । जुजोष भगवन् प्रीतः सदाचारेण तेन तु ॥

• पुलस्त्य उवाच ।

सत्यवान् दानशीलोऽसि सत्यसन्धिर्नरैश्चरः ।

ह्रीमान् मैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तः शत्रुशासने ॥ ७७ ॥

धर्मस्त्यं दृढस्त्यं दयावान् प्रियभाषिता । मान्यमानयिता विद्वो ब्रह्मण्यः साधुवत्सलः ॥  
 तुष्टस्तेऽहं सदा यत्स प्रणिपातपरस्य वै । ब्रूहि त्वं महाभाग कथनं ते पदाम्यहम् ॥

भीष्म उवाच ।

भगवन् भगवान् ब्रह्मा कस्मिन्काले स्मितो विभुः ।

सृष्टिं चकार वै पूर्वं देवार्दीनां यदस्य मे ॥ ८० ॥

स्मितिं वा भगवान् विष्णुः कथं च द्रुतः निर्मितः । कथं वा ऋषयो देवास्सृष्टास्तेन महात्मना  
कथं पृथ्वी कथं व्योम कथंचमे तु सागराः । कथं द्रोणा पर्वताश्च ग्रामा रण्यपुराणि च ॥  
मुनिन् प्रजापतौश्चैव सप्तर्षीन् प्रवरानपि । वर्णान् वायुं पुरात्मानं गन्धर्वान्यक्षराक्षसान्  
तीर्थानि सरितो वायु सूर्यादीन् ग्रहत्वारकान् । यथा ससर्ज भगवांस्तथा मे त्वं वदस्व ह

पुलस्त्य उवाच ।

एत पुराणां परमः परमात्मा पितामहः । रूपवर्णादिरहितो विग्रहेन विवर्जितः ॥  
अक्षययिनाशान्त्र्यां परिणामर्द्धिजन्मभिः । गुणैर्विवर्जितः सर्वैः स भातातिदि केवलम् ॥  
सर्वशक्तो समश्चापि वसन्नुपमो मतः । भावयन् ग्रहरूपेण विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥  
तं गुह्यं परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम् । तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण संस्थितम् ॥ ८८ ॥  
तं नत्वाहं प्रवक्ष्यामि यथा सृष्टिं चकार ह । पूर्वतु पद्मशयनादुत्थाय जगतः प्रभुः ॥  
गुणव्यञ्जन सम्भूतः सर्गकाले नराधिप । सात्विको राजसर्ध्वतामसश्च त्रिधा महान् ॥  
प्रधानतत्त्वेन समं तथा बीजादिभिर्वृतः । वैकारिकस्तेजसश्च भूतादिर्ध्वे तामसः ॥  
त्रिविधो यमहंकारो महत्तत्त्वाद्जायत । भूतेन्द्रियाणां पञ्चानां तथा कर्मेन्द्रियैः सह ॥  
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । एकैकशः स्वरूपेण कथयामि यथोक्तम् ॥  
शब्दमात्रमधाकाशं भूतादिः संसमावृणोत् । अधाकाशं विकुर्वाणं स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ॥  
षडयानेयं वायुस्तस्य स्पर्शगुणोमतः । आकाशं शब्दमात्रं स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥  
ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह । ज्योतीरूपन्तु तद्वायुस्तदुपरिगुणमुच्यते ॥  
स्पर्शरूपस्तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत् । ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह  
सम्भवन्ति ततोऽम्बुसिरूपमात्रं समावृणोत् । विकुर्वाणानिद्याम्भांसि गन्धमात्रं ससर्ज ह  
सद्भावो जायते तस्मात्तस्य गन्धोऽमृतो गुणः । तैजसान्द्रियाण्यादुर्देवा वैकारिकादश ॥  
एषादश मनश्चात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः । त्वक् चक्षुर्नासिका जिह्वा धोत्रमत्र च चन्द्रमम् ॥  
एते रान्तु मर्तृरूपं शब्दादिग्रहणं पुनः । वाक् पाणिपादपायूनि चोपस्थं तत्र पञ्चमम्  
पितृगणित्यगत्युक्तिगुणा यथाधिपर्ययात् । आकाशवायुतेजांसि सत्त्विजं पृथिवीतथा  
शब्दादिभिर्गुणैर्वोर मुक्तान्त्युत्तरोत्तरे । शब्दाधोराध्वमूढाश्च पिशोपास्तेन ते स्मृताः ॥

नानावीर्याः पृथक् भूतास्तस्ते संहतिविना । नाशकुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य वृत्क्रमा  
 समेत्यान्योन्यसंयोगात् परस्परसमाधयात् । एकसङ्घतलक्षाश्च सम्प्राप्यैकमरोक्तः ॥  
 पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च व्यक्तानुग्रहणे तथा । महदादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति वै ।  
 तत्क्रमेण विवृत्तं तु जलबुद्बुदवद्वत् समम् । तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ व्यक्तरूपी जनार्दनः ॥  
 ब्रह्मा ब्रह्मस्वरूपेण स्थयमेव व्यवस्थितः । मेरुख्यमभूतस्य जरायुश्च महीधरा ॥ १०८ ॥  
 गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासंश्च महात्मनः । तत्र द्वीपाः समुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ॥  
 तस्मिन् खण्डेऽभवन् धीर सदेवासुरमानुषाः । धारिवह्मनिलाकाशीर्बृहत्तैर्भूतादिना बहिः ॥  
 वृत्तं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा । अव्यक्तेनावृतो राजंस्तैः सर्वैः सहितो महान् ॥  
 एमिरावरणीः सर्वैः सर्वभूतैश्च संयुतम् । नारिकेलफलं यद्वदुबीजं बाह्यदलैरिव ॥ ११२ ॥  
 ब्रह्मास्थयश्च जगतो विसृष्टौ सम्प्रवर्तते । सृष्टिश्च पाल्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ॥  
 स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः । सत्त्वभुग् गुणवान् देवो ह्यप्रमेयपराक्रमः ॥  
 तमोद्रेकश्च कल्पान्ते रूपं रौद्रं करोति च । राजेन्द्राखिलभूतानि भक्षयत्यतिमीपणः ॥  
 भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते । नागपर्यङ्कुशयने शेते सर्वस्वरूपधृक् ॥ ११६ ॥  
 प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टिं प्रकरोति च रूपधृक् । सृष्टिस्त्यन्तकरणाद् ब्रह्माविष्णुशिवात्मका

क्षणा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यश्च पाति ॥

उपसंख्यते वापि संदर्शा च स्वयं प्रभुः ॥ ११८ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो धायुराकाशमेव च । स एव सर्वभूतेशो विश्वरूपो यतोऽप्यय

सर्गादिकं ततोऽस्यैव भूतसमुपकारकम् ॥ ११९ ॥

स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता स एव पाल्यं प्रतिपाल्यते यतः ।

ब्रह्माद्यपस्याभिध्योपमूर्तिर्ब्रह्मा धर्मिणो धरदो धरेण्यः ॥ १२० ॥

इति धीपद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे पुराणावतारे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## तृतीयोऽध्यायः ।

### कालपरिमाणवर्णनम्

भोष्म उवाच ।

नेयुंस्याप्रमेयस्य शुद्धस्याथ महात्मनः । कथं सर्गादिकर्तृत्वं ब्रह्मणो ह्युपपद्यते ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

जगत्सर्वभाषानामचिन्त्याज्ञानगोचराः । यत्ततो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः  
त्यक्त्रः प्रोच्यते विदुषामित्यप्योपचारतः । निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ॥ ४

त्यराव्यं परार्धञ्च तदर्धं परिकीर्तितम् । काष्ठा पञ्चदशाख्याता निमेषो नृपसत्तम ॥ ४

गङ्गास्त्रिशत्कलास्त्रिशत्कला मौहूर्तिको विधिः । तावत्संख्यैखोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्

होरात्राणि तावन्ति मासः पञ्चद्वयात्मकः । तैः पद्भिर्वर्षं वर्षमवने दक्षिणोत्तरे ॥ ६

यत्नं दक्षिणं रात्रिर्द्वैधानामुत्तरं दिनम् । दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् ॥ ७ ॥

तुर्गुणं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे । चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्

ज्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः । तत्प्रमाणैः शतैः संख्या पूर्वातत्राभिधीयते

संख्यांशकश्च तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि यः ।

संख्या संख्यांशयोरन्तः कालो यो नृपसत्तम ॥ १० ॥

युगाख्याः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञितः । कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुर्गुणम् ॥

प्रोच्यते तत्सहस्रान्तु ब्रह्मणो दिवसं नृप । ब्रह्मणो दिवसे राजन् मन्यध्वं चतुर्दश ॥

भवन्ति परिमाणञ्च तेषां कालकृतं शृणु । सप्तर्षयः सुराः शक्रो मनुस्तत्सूतयो नृप ॥

एककाले हि सृज्यन्ते संहियन्ते स्पर्धयन् । चतुर्गुणानां संख्यातासाधिकाद्येकसततिः

मन्वन्तरं मनोः कालः सुरादीनाञ्च पार्थिव । अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतः

द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि च ।

विंशत्कोटयस्तु सम्पूर्णाः संख्याताः संख्यया नृप ॥ १६ ॥

सत्तरष्टिस्तथान्यानि, नियुतानि महामते । विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना

मन्यन्तरस्य संख्येयं मानुषैरिह यत्सरे । चतुर्विंश गुणो ह्येष कालो ब्राह्ममहास्मृतम् ॥

ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसञ्चर ।

तदा हि दराते सर्वं प्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥ १६ ॥

जनं प्रयान्ति तापात्ता महर्लोकनिवासिनः । एकार्णवे तु प्रैलोक्ये ब्रह्मा ब्रह्मविशार ॥

भोगिशिष्यागतः शोते प्रैलोक्ये प्रासवृद्धितः । जनस्यैर्योगिभिर्वैपश्चित्यमानो जागृषिभु ॥

सत्प्रमाणां हि तां रात्रिं तदन्ते सृजते पुनः । पवन्तु ब्रह्मणो धर्ममेवं धर्मशतं च तम् ॥

शतं हि तस्य धर्माणां परमायुर्महात्मनः । एकमस्य व्यतांतं तु परादे ब्रह्मणोऽन्य ॥

तस्यान्तेऽभूत् महाकेशः पाप इत्यभिधिभूतः । द्वितीयस्य परादेऽस्य धर्ममानस्य वै नृप ॥

पारादहति परतोऽयं प्रथमः परिकल्पितः ॥

भीष्मउवाच ।

ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ कल्पार्क्षो भगवान् यथा ।

स स्रजं सर्वभूतानि तदायस्य महामुने ॥ १७ ॥

पुलस्त्यउवाच ।

ब्रह्मा स स्रजं भगवाक्कादिः सर्वमन्मथः । भर्ता तत्कल्पावसाने निशासुनां स्थितः प्रभुः ॥

सत्पोढकस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमपेक्षत । तांयान्तःसमर्होऽस्य निमग्नो वारिण्यजे ॥

प्रविचिन्त्य तनुद्वारं कर्तुंकामः ब्रह्मापतिः ॥ १८ ॥

विष्णुरूपं तदा तत्पादृष्यो वोढुं सनेत्रता । मत्स्यरूपांश्चिरात्तान्यापारादं तनुमाविष्टम् ॥

पेदपदमवं कर्माधित्य जगतः स्थितौ । स्थितः स्थिरात्मा सारात्मा परमात्मा ब्रह्मापतिः ॥

प्रविश्य तदा तांयं तांयाधारे धराधरः ॥ १९ ॥

निर्वाह्य तं तदा देवां पद्माच्छ्रमणान् । तुषाय प्रवत्ता नृत्या जनेन्द्रा यनुभवा ॥

वृषिप्युवाच ।

नमस्ते सर्वभूतय नमस्ते परमात्मने ॥ २० ॥

बभूव तस्य तत्त्वं त्वत्तां त्रै पूर्वमुत्थिता । परमात्मन् नमस्तेऽस्तु पुरातनमस्मान्मुने ॥

अथान्यथायथा यथायथा तं नमः । त्वं कर्मासर्वभूतानां त्वं पश्य त्वं स्थितम् ॥

सर्गादौ यः परो ब्रह्मा विष्णुश्चात्मरूपधृक् । भक्षयित्वा च सकलं जगत्केकार्णवीकृते  
 शेपे त्वमेव गोचिन्द चिन्त्यमानो मनीषिणिः । भवतो यत्परं रूपं तन्नजानाति कश्चन  
 भवतारेषु यद्वपुं तदर्चयति दिवौकसः । त्वामाराध्य परं ब्रह्म यातामुक्तिं मुमुक्षवः ॥  
 वामुदेयमनाराध्य को हि मोक्षमवाप्स्यति । यद्वपुं मनसा ग्राह्यं यदुग्राह्यं चक्षुरादिभिः  
 बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्वपुमखिलं त्व । त्वन्मय्यहंत्वदाधारत्यत्सृष्टा त्वामुपाधिता  
 माधवीमिति लोकोऽयमभिधत्तेततोद्दिमाम् । एवं संस्तूयमानस्तु पृथिव्या पृथिवीधरः

सामस्वरध्वनिः श्रीमान् जगज्जं परिधर्षयाम् ।

ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महावराहः स्फुटपद्मलोचनः ।

रसातलावुत्पलपत्रसन्निभः समुत्थितो नील श्याचलो महान् ॥ ४१ ॥

उत्तिष्ठता तेन मुषानिलाहतं तदाप्लवाम्भो जनलोकसंधयान् ।

सनन्दनादीनपकल्मषान्मुनीन्धकार भूयोऽपिपवित्रतास्पदम् ॥ ४२ ॥

प्रयान्ति तोयानि खुराग्रवीक्षते रसातलेऽधः कृतशम्भुसन्ततिः ।

पलातुकानाञ्च ततिस्तुतस्य भ्वासानिलास्तेपरितः प्रयान्ति ॥ ४३ ॥

उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षेर्महाधराहस्य महीं विदार्य ।

विधुन्यतो वेदमयं शरीरं रोमान्तरस्था मुनयो जुपन्ति ॥ ४४ ॥

जनैश्चराणां परमेश केशव प्रभुर्गदासङ्गदरासिचक्रधृक् ।

प्रभूतिनाशस्थितिहेतुरीश्वरस्त्वमेव नान्यत् परमं च यत्पदम् ॥ ४५ ॥

पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्रादन्तेषु यज्ञाः धृतयश्चक्रवत् ।

हुताशजिह्वोऽसितनूरहाणि दर्भाः प्रनोयश्चुमांस्त्वमेव ॥ ४६ ॥

घायापृथिव्योरनुलप्रभाव यदन्तरं तद्वपुषा तवैव ।

ध्याप्तं जगद्वापि समस्तेतद्वितायविश्वस्य विभो भक्तयम् ॥ ४७ ॥

पद्मात्मात्ममेवैकोनान्योऽस्ति जगतः पते । तवैषमहिमायेन व्याप्तमेतद्वराचरम् ॥

ज्ञानस्वरूपमखिलं जगदेतद्वुद्धयः ॥ ४८ ॥

अर्थस्वरूपपदगतो भ्राम्यन्ते तमसः पृथ्वी । येतु ज्ञानविदः शुद्धचेतसस्तेऽखिलं जगत् ॥

ज्ञानात्मकं प्रपश्यन्ति त्वद्गुणं परमेश्वर । प्रसीद सर्वं भूतात्मन् भवाय जगतस्त्विमाम् ॥  
 उद्धरोर्ध्वममेयात्मश्रिमन्नामज्जलोचन । सत्योद्भूकोऽसि भगवन् गोविन्दं पृथिवीमिमाम्  
 समुद्धर भवायेश कुरु सर्वजगद्धितम् । एवं संस्तूयमानश्च परमात्मा महीधरः ॥ ५३ ॥  
 उज्जहार क्षितिं क्षिप्रं न्यस्तवान्समद्वारणं । तत्स्योपरिजट्योद्येऽस्य महति नौरिविस्मिता ॥  
 ततः क्षितिं समारुढ्वा पृथिव्यामचिनोद्विराजन् । यथाविभागं भगवाननादिः पुरगोत्तमः ॥  
 भूषिमाणं ततः कृत्वा सत्प्रीयां यथातथम् । भूरायां धनुरो लोकान् पूर्वयत् समफलपत्न्य ॥  
 प्रपन्नं पिप्पुना पूयमेतदेव प्रदर्शितम् । तुष्टेन देवदेवेन त्वं देवः पुरगोत्तमः ॥ ५४ ॥  
 त्वयामया जगच्चेदं धाप्यां गाल्यध्वयजतः । येषान्त्यसुरमुष्यानां च रोदतां मया पुना ॥  
 देवानां हितकामेन हन्तव्यास्ते त्वया विभो । अहं सृष्टिं करिष्यामि सा च पाल्या त्वया विभो ॥  
 एषमुक्तो गतोऽपि पुनरेवादीनमृजद्रिभुः । धनुर्दिपूर्वकस्तस्य प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ ५५ ॥  
 तमोमोहोमहामोहस्तामिद्यो ह्यन्धसंघकः । पञ्चधा वस्थितः सर्गोऽध्यायतस्तनुमहात्मनः ॥  
 बहिर्जन्तधा प्रकाशः संपृतात्मानगात्मकः । मुष्यानां गायतध्यांता मुष्यसर्गास्तस्य ध्वज ॥  
 तं दृष्ट्वा साधकं सर्वममन्यदपत्यनुः । तस्याभिध्यायतः सर्गस्तिर्यग्ध्यांतां ध्वजं  
 यस्मान्निर्घ्यक् प्रवृत्तिः स्यात्तिर्यग्ध्यांतास्ततः स्मृतः ।  
 पञ्चादयस्तेऽपि स्यातास्तमः प्राया द्यवेदिनः ॥ ५६ ॥  
 उत्पद्यद्वादिषश्चेय तेऽप्राप्ते ज्ञानमानिनः ।

अहं ह्यस्यान्तर्माना अशमिषानि धातमकाः । अन्न प्रकाशास्ते सर्वं भावयस्ते परमाज  
 क्तव्यसायकं मत्वाऽध्यायतां प्रपन्नोऽनयन् । उज्ज्वलं योतन्मूर्तायस्तु साक्षिकोऽज्यं मम  
 नं तुष्टीरतिषुष्टा बहिर्जन्तगावृताः । प्रकाशा बहिर्जन्त उज्ज्वलं योतास्ततः स्मृतः ॥  
 तुष्टात्तमस्तर्कायस्तु देवसर्गास्तु संस्पृक्तः । तस्मिन् सर्गेऽनयन् प्रीतिर्नियतं प्रयत्नतः  
 क्तोऽज्यं स कदा द्यौः साधकं नर्गमुत्तमम् ।  
 असायकास्तु तान् प्राप्या मुष्यसर्गांश्चिदन्वयन् ॥ ५७ ॥  
 तस्यान्तर्गायतस्य स्रष्टानि व्यादितस्ततः । प्रादुर्भूतस्तस्य कदाप्यध्यांतास्तु ततः  
 यस्तद्वद्वत् स्पर्शं क्तोऽध्यांतास्तु ततः । तेषां प्रकाशस्तु तदादि स्रष्टांश्च



तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्चकारिणः । प्रकाशा यद्विस्तृत्य मनुष्याः साधकाश्च ते

पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गः स चतुर्धा व्यवस्थितः ।

विपर्ययेण सिद्धया च शक्त्या तुष्ट्या तथैव च ॥ ७३ ॥

विरुद्धं वर्तमानञ्च ते न जानन्ति वै पुनः । भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः ॥ उच्यते

ते परिग्राहिणः सर्वे सन्निभागतस्तु ते । चोदनाज्जाप्यशीलास्त्व ह्येया भूतादिकास्तु ते

ह्येते कथिताः सर्गाः षडङ्ग नृपसत्तम । प्रथमो महतः सर्गो द्वितीयो ब्रह्मणस्तु यः ॥

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः । वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चैन्द्रियकः स्मृतः

इत्येष प्राहृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः । मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्वायराः स्मृताः

तिर्यक्क्षोतश्च यः प्रोक्तस्तिर्यग्धोऽन्यः स उच्यते ।

ततोदुर्ध्वक्षोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ ७६ ॥

ततोऽर्वाक्षोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।

अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसस्तु सः ॥ ८० ॥

इति वैहृताः सर्गाः प्राहृतास्तु त्रयः स्मृताः । प्राहृतो वैहृताश्चैव फौमारो नयमः स्मृतः

ते तव समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः । प्राहृता वैहृताश्चैव जगतो मूलहेतवः ॥

सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥ ८२ ॥

भीष्म उवाच ।

संक्षेपात् कथिताः सर्गा देवादीनां गुरो त्वया ।

वित्तपात् धोतुमिच्छामि त्यक्तो मुनिरतोत्तम ॥ ८३ ॥

गुह्यस्य उवाच ।

कर्मभिर्भाविताः सर्वे कुशलाकुशलेस्तु ते ॥ ८४ ॥

अथा कथा ह्यनिर्मुक्ताः संहारे ह्युपसंहृतः । स्वायरास्ताः सुरायास्तु प्रजा रात्रंश्चतुर्विधाः

प्रजाः कुर्वन्तः सृष्टिं जगिरे मानसाः स्मृताः । क्तो देवासुरपितृन् मानुषास्तु चतुष्टयम्

सिद्ध्युत्सर्मास्तेष्वनि स्मृतास्मानमयुजत् । मुक्तमनस्ततो जातः दुष्टमानः प्रजापतेः

सिद्ध्युत्सर्जनात् पूवं जगिरे त्वसुरास्ततः । क्त्वा जतां क्तो दुष्टान्मोमावात्मिकांस्तनुम्

ब्रह्मण्येवमस्मिन्निष्कृष्टं च त्वं ज्ञेयम् । असां सर्वं नृपतन् नृपतन्निष्ठम् ।  
 उदयं यमं मेवास्मिन्निष्ठं च त्वं ज्ञेयम् । सत्त्वोदयोऽस्ति नृपतन्निष्ठं च त्वं ज्ञेयम् ।  
 समुदरं भवायं च त्वं सर्वं जगद्विदम् । एवं संस्पृष्टमस्मिन् पश्यन् नृपतन् ।  
 उग्रहारं श्रितिशिवं नृपतन्निष्ठं च त्वं ज्ञेयम् । तस्यांगविद्योऽस्ति नृपतन्निष्ठं च त्वं ज्ञेयम् ।  
 तत्र श्रितिं समाख्याय नृपतन्निष्ठं च त्वं ज्ञेयम् । यथाविमानं नृपतन्निष्ठं च त्वं ज्ञेयम् ।  
 भूयिमानं तत्र श्रित्या सन्नर्थापां यथातथम् । भूयसां च त्वं ज्ञेयं च त्वं ज्ञेयम् ।  
 प्रक्षरणं पिण्डना पृथमेतदेव प्रदर्शितम् । तुष्टेन देवदेवेन त्वं देवः पुरातनः ।  
 त्वयामयाजगन्धेदं ध्यायं पाल्यञ्च यत्नतः । येनान्त्यसुरमुख्यानां बरोदयानां तु ।  
 देवानां हितकामेन हन्तव्यास्ते त्वया विमो । अहं सृष्टिं करिष्यामि सा च त्वया त्वया ।  
 एषमुक्तो गतो पिण्डुर्देवादीनश्च जह्नुः । अयुद्धि पूर्वकस्तस्य प्रादुर्भूतस्तमो नृपतन् ।  
 तमोमोहोमहामोहस्तामिहो हन्तव्यः संप्रफः । पञ्चधा वसितः सर्गोऽध्यायतनुमहन् ।  
 यहिरन्ताश्चाप्रकाशः संघृतात्मानगात्मकः । मुख्यानां गायतमोका मुखसर्गास्तस्य ।  
 नृपतन्निष्ठासाधकं सर्गमन्यदप्यंभुः । तस्याभिध्यायतः सर्गस्तिर्प्यक्षोतस्तः स्मृतः ।

यस्मात्तिर्प्यं प्रवृत्तिः स्यात्तिर्प्यक्षोतस्तः स्मृतः ।

पञ्चादयस्ते विध्यातास्तमः प्राया ह्यवेदिनः ॥ ६४ ॥

उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽप्याने ध्यानमानिनः ।

भद्रं त्वास्त्यहं माना अष्टाविंशतिधात्मकाः । अन्तःप्रकाशास्ते सर्वं आवृण्वन्ते फलम् ।  
 तमप्यसाधकं मत्प्राध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् । ऊर्ध्वं चोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोऽन्यस्ततोऽभवत् ।  
 ते सुखप्रीतिपुण्या यहिरन्तश्च ऊर्ध्वं चोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोऽन्यस्ततोऽभवत् ।  
 गुणमनस्तृतीयस्तु वेपसर्गास्तु संस्पृष्टः । तस्मिन् सर्गेऽभवत् प्रीतिर्विषये प्रवृत्तः ।

ततोऽन्यं स तदा वध्यो साधकः सर्गमुत्तमम् ।

भसाधकास्तु तान् हात्वा मुख्यसर्गादिसम्भवात् ॥ ६५ ॥

तथाभिध्यायस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः । प्रादुर्भूतस्तदाव्यकाशं चोतस्तृतीयस्तु ।  
 यस्मादप्यं प्रवृत्त्येव ततोऽप्यं चोतस्तु ते । ते च प्रकाशाबुद्ध्यास्तमो विद्वन्मोक्षिणः ।

वृत्तान्तोऽप्यायः ] • गुरादिस्थावरान्त चतुर्विधप्रजानांविस्तरेणसृष्टिवर्णनम् • १७

मोक्षः फल्गुलिङ्गो रोमम्यस्तस्य जज्ञिरे । प्रेतायुगमुखे ब्रह्मा कल्पस्यादौ नृपोत्तम  
सृष्टा पश्योपधीः सम्यक् युयोज त तदाज्वरे । मामजंमहिषं मेपमश्वाश्वतरगर्दभान्  
एतान् प्राप्यपशूनादुरारण्यांश्च निबोध मे । श्वापदो द्विखुरो हस्ती घानरः पञ्चमः खगः  
ऋक्षाः परावः पृष्टः सप्तमास्तु सर्पसृपाः । गायत्रञ्च ऋचश्चैव त्रिवृत्सोमं रथन्तम् ॥  
अग्निशोमञ्च यजानां निमंमे प्रथमान्मुखात् । यजुंषि वैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा  
बृहत्साम तयोक्त्यभ्यक्षिषादसृजन्मुखात् । सामानि जगतीच्छन्दःस्तोमंसतदशं तथा  
वैकर्मवित्ताञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् । एकविंशमध्वर्याणमतोर्यामाणमेव च ॥ ११३ ॥  
भानुपुत्रं ॥ घैराजमुत्तपदसृजन्मुखात् । उद्यावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥  
सुगमुरपितृन् सृष्ट्या मनुष्यांश्च प्रजापतिः । ततः पुनः सप्तर्षांसौ स कल्पादौपितामहः  
यज्ञान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसां गणान् ।

सिद्धकिन्नररक्षांसि सिद्धान् पश्चिमृगोरगान् ॥ ११६ ॥

मध्यज्वज्वयज्ञैश्च यद्विदं क्षाणु जङ्गमम् । तत् सप्तर्षे तदा ब्रह्मा भगवानादिकृद्भिः ॥  
तेषां ये यानि पर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमाना पुनःपुनः  
हिवाहिंश्च मृदुमूरे धर्माधर्मावृतानृतं । तद्वाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥ ११६ ॥  
इन्द्रियाण्येव भूतेषु शरीरेषु च प्रभुः । नामात्वं विनिर्गमञ्च धातैव व्यसृजत्तस्यम्  
नाम रूपञ्च भूतानां दृष्ट्यानाञ्च प्रपञ्चनम् । घेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥  
क्षणीणानामपेयानिपथावेदेश्चुतानिचै । यथानियोगं योग्यानिग्रन्येषामपिसौऽकरोत् ॥  
यथाशृणुलिङ्गानिनाकाराणिपर्य्यये । दृश्यन्ते तानितान्येव तथा भावा युगादिषु ॥  
कालैर्विधिर्गर्ह्य कल्पादौसपुनःपुनः । सिस्त्रुशुशकियुकोऽसौसृज्यशक्तिप्रचोदितः  
भीष्मउवाच ।

भवांश्चोतास्तु रुयितो भवतायस्तु मानुषः । ब्रह्मन्विस्तरतोबूदि ब्रह्मातमसृजदुयथा ॥  
यथा सर्वानसृजदु गुणांश्च स महामुने । यद्यतेषांस्मृतंकर्म विप्रादीनां तदुच्यताम् ॥  
पुलस्त्यउवाच ।

सत्त्वामिथ्यायिनः पूर्वं सिस्त्रुशोर्ब्रह्मणः प्रजाः । अजायन्तकुस्थेष्टसत्त्वोद्विकामुखात्प्रजाः

वक्षसो रजसोद्रिकास्तथान्याब्रह्मणोऽभवन् । रजसस्तमसश्चैव समुद्रिकास्तथोक्तः ।  
 पदुभ्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा ससर्ज कुरुसत्तम । तमःप्रधानास्ताः सर्वाश्वातुर्वर्ण्यमिव तत्  
 ब्रह्मणा क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम । पादोरुवक्षस्थलतो मुखतश्च समुद्रताः ।  
 यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकारह । चातुर्वर्ण्यं महाराज यज्ञसाधनमुत्तमम् ।  
 यज्ञेनाप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण मानवा । आप्यायन्ते धर्मयज्ञायतः कल्याणहेतवः  
 निष्पद्यन्ते नरैस्ते न सुकर्मनिरतैः सदा । विरुद्धाचरणापेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः ।  
 स्वर्गापवर्गमानुष्यात् प्राप्नुयन्ति नरा नृप । यद्यामिरुचितंस्थानंतद्यान्ति मनुजाविभो  
 प्रजास्ता ब्रह्मणासृष्टाश्वातुर्वर्ण्यन्ययस्थितौ । सम्यक् शुद्धाः समाचाराचरणा नृपसत्तम  
 यथेच्छावाप्तनिरताः सर्वबाधाविघर्जिताः । शुद्धान्तकरणाः शुद्धाधर्मानुष्ठाननिर्मलाः  
 शुद्धे च तासां मनसि शुद्धान्तः संस्थिते हरी । शुद्धज्ञानं प्रपश्यन्ति ब्रह्माख्येनतत्पदम्  
 ततःकालात्मकोयोऽसौ विरिचावाप्त उच्यते । संसारपातमत्यर्थं घोरमल्पाल्पसारयन्  
 अधर्मबीजभूतं तत्तमोलोभसमुद्रतम् । प्रजासु तासु राजेन्द्र रागादिव्रमसाधनम् ।  
 ततः सा सहजा सिद्धिस्तेषां नातीय जायते ।

राजन् पश्यादयश्चान्याः सिद्धयोऽप्ये भवन्ति याः ॥ १४० ॥

तासु क्षीणाभ्यशेषासु वर्द्धमाने च पातके । द्वन्द्वामिमण्डुःखार्त्तास्ता मयन्ति तत्प्रजाः  
 ततोदुर्गाणि ताश्चक्रुर्वाक्षे पार्यतमौदकम् । धान्यनंच तथा दुर्गं पुरंस्त्वायंढकादियन् ।  
 एदाणि च यथान्यायं तेषुचक्रुः पुरादिषु । शीततापादियाधानां प्रशमाय महामतं ।  
 प्रतिदारमिमंरुत्या शीतादेस्ताः प्रजाः पुनः । वात्तोपायंततःश्चक्रुर्हस्तसिद्धिचक्रमंजम्  
 प्रीदयश्च यथाश्चैव गोधूमा अणवस्त्रिधाः । प्रियंगूकोपिदाराश्च कोरूपाः सर्वानकाः  
 माया मुद्रा मसूराश्च निष्यावाः सकुलुत्थकाः ।

मदकाभणकाश्चैव शपाः सप्तदश स्मृताः ॥ १४१ ॥

इत्येता ओषधीनान्तु ग्राम्याणां जातयो नृप । ओषध्या यज्ञियाभ्येवग्राम्यापन्याभ्युत्तरा  
 र्द्धयः सयथा मायागोधूमा अणवस्त्रिधाः । प्रियंगू सप्तमाहता अष्टमास्तुकुलुत्थकाः  
 त्रामाकस्तथ नीपायां धनुः सगणेषुकः । अथ येषुयथा प्रोक्ता स्तद्वन्मकंढकानृप ।

प्राण्या धन्याः स्मृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्दश । यन्ननिष्पत्तये तद्वत्तथासां हेतुवृत्तमः  
 पद्मसहस्रेण प्रजानां कारणं परम् । परापरविदः प्राज्ञास्ततो यज्ञान् वितन्वते ॥  
 ब्रह्महृन्मनुष्यान् यज्ञानां पार्थिवोत्तम । उपकारकरं पुंसां क्रियमाणं फलार्थिनाम्  
 देवाश्च कालसृष्टौऽसौपयाचिन्दुर्महामते । मर्यादां स्थापयामास यथास्थानं यथानुष्ण  
 तानामाधमानाश्च धर्मान् धर्मभृतावर । लोकांश्चसर्ववर्णानां सम्यग्धर्मानुपालिना  
 त्राजापत्यं ब्राह्मजानां स्मृतंस्थानन्तु पार्थिव । स्थानमेन्द्रक्षत्रियाणांसंप्रामेप्यनिवर्तिनाः  
 श्यानां मादनस्थानं स्वधर्ममनुवर्तिनाम् । गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिषयास्तु धर्तिनाम्  
 एषीति सदृशाणां यतीनामूर्ध्वरेतसाम् । स्मृतं तेषान्तु यत्स्थानंतदेव गुरुयासिनाम्  
 तयोषाश्चरत्स्थानंस्मृतंतद्वैपनोक्तसाम् । प्राजापत्यंगृहस्थानान्यासिनां ब्राह्मसंश्रितम्  
 गेतिनाममृतस्थानं ब्रह्मणः परमं पदम् । एकान्तिनःसदोयुक्ता ध्यायिनो योगिनोहिषे  
 पां तत्परमं स्थानं यस्तत् पश्यन्ति सुरयः । गतागता निवर्तन्ते चन्द्रादित्याद्योग्रहाः ॥  
 यापि न निवर्तन्ते नारायणपरायणाः । तामिन्नमन्धतामिस्त्रं महारौरवयोरवम् ॥  
 विपश्यन्तं घोरं कालसूत्रमर्वाचिमत् । चिनिन्दकानां वेदस्य यज्ञव्याघातकारिणाम्  
 जनेतृ समाप्यातंस्वधर्मत्यागिनश्चये । ततोऽभिध्यायतस्तस्य जश्निरेमानसाः प्रजाः  
 तच्छरीरसमुत्पत्तैः कायस्थैः करणैः सह । क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः  
 नै सर्वे समवर्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः । देवाद्याःस्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यधिपयेस्थिताः  
 एषमूतानि सृष्टानि स्थायराणि चराणि च । यदास्य ताः प्रजाःसर्वानव्यवर्द्धन्तर्धामतः  
 अध्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽवजत् । भ्रूमूंमांपुलहञ्चैवकतुमङ्गिरसं तथा  
 मरुतिं दक्षमत्रिञ्च वसिष्ठञ्चैव मानसान् । नव ब्रह्मण इत्येते पुराणेनिश्चयं गताः ॥  
 सनन्दादयो ये च पूर्यं सृष्टास्तु वेधसा । न ते लोकेष्वसज्जन्त निरपेक्षाः प्रजास्तु ते  
 सर्वे ह्यागतधिज्ञाना पीतपगा विमत्सराः । तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः ॥  
 ब्रह्मणोऽमूमहान् क्रोधस्त्रैलोक्यनृद्धनक्षमः । तस्य क्रोधात् समुद्भूतंजालामालावदीपितं  
 प्रमस्तु तदा ज्योति त्रैलोक्यमखिलंदहत् । भृकुटीकुटिलातस्थललाटात्क्रोधदीपितात्  
 समुत्पन्नस्तदा ददौ मन्वाहार्कसमप्रभः । अर्द्धवारीनरवपुः प्रवण्डोऽति शरीरघान् ॥

विभजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः । तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथा क्रोत्  
 विभेदं पुरुषत्वं च दशधा चैकधा च सा । सौम्या सौम्यैस्तथा रूपैः शान्तीः स्त्रीत्वं च संप्रभु-  
 विभेदं बहुधा चैव स्वरूपैरसितैः सितैः । ततो ब्रह्मा स्वयम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुम् ॥  
 आत्मानमेव कृतवान् प्राजापत्ये मनुं नृप । शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिधूतकल्पयाम् ॥  
 स्वायम्भुवो मनुर्नाम पद्मोत्थे जगृहे प्रभुः । तस्माच्च पुरुषाद् दक्षी शतरूपा व्यजापत ॥  
 प्रियव्रतोत्तानपात्रप्रसूत्या कृतिसंज्ञितम् । दक्षी प्रसूतिं दक्षाय आकृतिं स्वये पुत्र ॥  
 प्रजापतिः स जग्राह तयोर्जज्ञे स दक्षिणः । पुत्रो यज्ञो महाभाग दम्पत्योर्मिधुनं ततः ॥  
 यज्ञस्य दक्षिणायान्तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे । यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवे मनी  
 प्रसूत्याञ्च तथा दक्षश्च तलोविंशतिं तथा । ससर्ज कन्यास्तासान्तु सम्यङ् नामानि मेष्ठु  
 भद्रा लक्ष्मी धूर्तिः पुष्टिस्तुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।

शुद्धिर्लज्जा धनुः शान्तिर्ऋद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी ॥ १८३ ॥

पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मा दक्षायणी प्रभुः । तान्यः शेषा एवार्वायस्यैकादश सुलोचनाः  
 ख्यातिः सत्ययसम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा । सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्थाहा स्वधा तथा  
 भृगुर्भयोमरीचिश्च तथा चैवांगिरामुनिः । अहं च पुलहश्चैव कतुमुनिश्च तथा ॥ १८४ ॥  
 अत्रिर्वसिष्ठो पण्डितश्च पितृव्यथाक्रमम् । ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो राजसत्तम ॥ १८५ ॥  
 भद्रा कामं च लक्ष्मीर्नियमं भूतिरात्मजम् । संतोषं च तथा तुष्टिर्लोकं पुष्टिरस्यत ॥ १८६ ॥  
 मेधाधुतक्रियादण्डं नयं विनयमेव च । बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा चिनयं च पुत्रात्मजम् ॥ १८७ ॥  
 व्यवसायं प्रज्जेयं क्षेमं धान्तिरस्यत । सुखमृद्धिर्दयः कीर्त्तिरियेते धर्मस्तनवाः ॥ १८८ ॥  
 कामात्रं द्यासुतं हर्षं धर्मोन्नमस्यत । हिंसा भार्यात्वधर्मस्थतस्वजज्ञे तद्वानृतम् ॥ १८९ ॥  
 कन्याच निष्ठति स्ताभ्यां मयं नरकपवच । माया च वेदना चैव मिधुनं द्वंद्वमेव च ॥ १९० ॥  
 तयोर्जज्ञेऽथ वै मायामृत्युं भूतापहारिणम् । वेदनायास्ततश्चापि दुःखं जज्ञेऽथ रीरवात् ॥ १९१ ॥  
 मृत्योर्न्याधिजराशोकतृष्णा क्रोधाश्च जज्ञिरे । दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः  
 नैवाभार्यास्ति पुत्रो च ते सर्वे ह्युर्ध्वरेतसः । रात्राण्येता निरुपाणि ब्रह्मणो नृवरात्मज ॥ १९२ ॥  
 ॥ १९३ ॥ ॥ १९४ ॥ ॥ १९५ ॥ ॥ १९६ ॥ ॥ १९७ ॥ ॥ १९८ ॥ ॥ १९९ ॥ ॥ २०० ॥

अनायासमनस्तुर्जस्तुनं प्रधापयतमग्नः । प्रादुरासीद्वनो रवेः कुमारो नीललोहितः ॥ १६७ ॥  
 यदसौ गुरु रसोऽथ प्ररंभं नृपसत्तम । किं रोतिष्यति तं देवोऽनंतं प्रत्युपायह ॥ १६८ ॥  
 नन्वेति रसोऽभ्यनुपायप्रव्रजानिन् । रोदनादुद्रनामास्मिमारोर्धार्प्यमापह ॥ १६९ ॥  
 पन्मुकपुनस्तोऽभरता हृषोः शरोदह । ततोऽन्यानेर्द्वैतस्मै सन्ननामानि प्रभुः ॥ २०० ॥  
 मूर्तेनाचेदमद्यानां स्थानां यच्छोच्यताह । नयं शरं मधेस्तानंतपापगुरतिनृप ॥ २०१ ॥  
 नैलमुर्मदादेपमुपायमुपिनामहः । मूर्ध्वजलं मर्हथिह्वर्थायुयकाग्रमेव ॥ २०२ ॥  
 शंखिशोभाद्वज्रः सोमश्चेनान्नयः प्रमान् । परंप्रकारोरुद्रोऽसौ सततं भार्यामचिद्वत् ॥ २०३ ॥  
 दक्षिणोपायतयाज्ञासार्त्तसंकेपेयम् । दिमवदुद्रितासाभूमेनायानृपसत्तम ॥ २०४ ॥  
 उपमेनुनर्येपयागिषान्नयान्नयः । दार्क्षीपानृविधाता र्त्तभृगोः व्यतिरसूयत ॥ २०५ ॥  
 भिरं च देवदेवस्य पर्या नारायणस्य या ॥ २०६ ॥  
 इति धीरापनुरागे प्रथमे श्रुष्टिपंडे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

### चतुर्थोऽध्यायः ।

समुद्र मंथन प्रस्तावे दुर्योसस इन्द्राय श्रापदान वर्णनम् ।

भीष्म उवाच ॥

क्षीराब्धीं नु तथा लक्ष्मीः तिलोत्पन्ना मया धृता ।

व्याख्या भृगोः समुत्पन्ना पतदाह पथं प्रवान् ॥ १ ॥

कांचदक्षदुद्रितादेहं त्यक्तार्त्तभृगुना । मेनायां गर्भसंभूतिमुमायाजन्मपयच ॥ २ ॥

विमर्षदेवदेवेन पर्याहं मर्त्या हता । विरोधं वापदक्षेपमगवांस्तु प्रपीतुमे ॥ ३ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इदं च शृणु भूपाल यत्पुष्टोऽहमिह त्यया । धीखं धोमयाव्येपथुत आसीत्पितामहात् ॥ ४ ॥

नमिषु प्रस्तुदुर्यासाः परिधाम्यन्मर्हामिमाम् । विद्याधरीकरे मालां दृष्ट्वा सागन्धर्कां शुभाम् ॥ ५ ॥

यावत्पामास मे देहि जटाजूटैकरोम्यहम् । इति विद्याधरीतेन पृष्टा सा ह्यपि ना तथा ॥ ६ ॥

देदीतस्मैमुदायुक्ता तां मालांसतदानृष । गृहीत्वासुचिरंकालंशिरोमालांययंघद ॥ ७ ॥  
 उन्मत्तप्रेतघद्विप्रः शोभमानोऽब्रवीद्विदम् । इयंविद्याधरीकन्या पीनोघ्रतपयोधरा ॥ ८ ॥  
 शोभालंकारसौभाग्यैर्युक्तादृष्टाततोमनः । क्षोभमायातिमेवाद्यनाहं कामेविचक्षणः ॥ ९ ॥  
 ब्रजामितायदन्यत्रसौभाग्यं स्वंप्रदर्शयन् । एवमुबत्वासराजेंद्रपरिवन्नाममेदिनीम् ॥ १० ॥  
 पेरायतंसमारुढं राजानं प्रिविद्यौकसम् । त्रैलोक्याधिपतिशर्कं भ्राजमानं शचीपतिम् ॥ ११ ॥  
 तामात्मशिरसोमालां भ्रमदुन्मत्तपन्पदाम् । आद्यामरराजायविशेषोन्मत्तवन्मुनिः ॥ १२ ॥  
 गृहीत्वा देयराजं न मालासागजमूर्दनि । मुक्तारराजसामालाकैलासे जाह्नवीयथा ॥ १३ ॥  
 मदांधकारिताक्षोऽसौ गंधाघ्राणेन चारणः । करेणादायविशेषतां मालां पृथिवीतले ॥ १४ ॥  
 ततस्तु क्रोधमगवान् दुर्वासा मुनिपुङ्गवः । राजेन्द्र देवराजानं क्रुद्धश्चेदमुवाच ह ॥ १५ ॥  
 ऐश्वर्यमददुष्टात्मघ्नतिस्तद्धोऽसिवासव । धियो धामस्रजं यस्मान्महत्ताम्राभिनंदसि ॥ १६ ॥  
 त्रैलोक्यधीरतो मूढविनाशमुपयास्यति । महत्ताभवतामालाक्षितायस्मान्महीतले ॥ १७ ॥  
 तस्मात्प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति । यस्य संजातकोपस्य भयमेति चराचरम् ॥ १८ ॥  
 तं मा त्वमतिगौर्येण देवराजाय मन्यसे । महेंद्रोदारणस्कंधादवतीर्य त्यरान्वितः ॥ १९ ॥  
 प्रसादयामास मुनिं दुर्वाससमकल्मषम् । प्रसाद्यमानः सतदाप्रणिपातपुरःसरम् ॥ २० ॥  
 नाहं क्षमिष्ये यद्गुना किमु केन शतक्रतो । इत्यकत्याप्रययौ विप्रो देवराजोऽपितं पुनः ॥ २१ ॥  
 आरुह्यैरायतनागं प्रययाय मरावतीम् । ततः प्रभृतिनिध्रीकं सशक्रं भुवनत्रयम् ॥ २२ ॥  
 नयन्नाः संप्रयतंतैततपस्यंति तापसाः । न च दादानानि दीयंते न प्रप्रायमभूजगत् ॥ २३ ॥  
 एषमत्पंतनिध्रीके त्रैलोक्ये सत्यवर्जिते । देवान्प्रतिपल्लोयोगं च क्रुद्धं ते पदानवाः ॥ २४ ॥  
 चिजिताब्जिदशादैत्यैर्दिद्रायाः शरणं ययुः । पितामहं महाभागं हुताशनपुरोगमाः ॥ २५ ॥  
 यथाघत्कथिते देवैर्ब्रह्मा प्राह तथामुवाच । क्षीरोदस्योत्तरंकूलं जगाम सहितः सुरैः ॥ २६ ॥  
 गत्वा जगादनगपान्ध्रामुदेवं पितामहः । उत्तिष्ठ विष्णोर्ग्राहं त्वं देयतानां हितं कुरु ॥ २७ ॥  
 त्वया घिनादानयैस्तु जिताः सर्वे पुनः पुनः । इत्युक्तः पुंडरीकाक्षः पुरुषः पुरयोत्तमः ॥ २८ ॥  
 अपूर्य रूपसंस्थानान्द्रष्टुं देवानुवाच ह । तेजसो मय तां देवाः करिष्याम्युपबृंहणम् ॥ २९ ॥  
 आनीय सहितादैत्यैः क्षीराघ्नीं सकलां पथीः ॥



मंथानमंदरं हृत्त्वानेत्रं हृत्वा च वासुकिम् । मथ्यताममृतदेवाः सहाये मध्यवस्थिते ॥ ३१ ॥  
सामपूर्वचंदैतेषांस्तत्र सम्भाष्य कर्मणि । समानफलमोकारोयूयंचात्र भविष्यथ ॥ ३२ ॥  
मध्यमाने च तत्राव्योयत्समुत्पद्यतेऽमृतम् । तत्पानाद्बलिनोयूयममराः संभविष्यथ ॥ ३३ ॥  
तथैवाहं करिष्यामि यथा त्रिदशविद्विषः । नृपाप्स्यंत्यमृतदेवाः केवलं कलेशमाग्निः ॥ ३४ ॥  
इत्युक्ता देवदेवेन सर्वपयतः सुराः । संधानमसुरैः हृत्वा यद्भवन्तोऽमृते भवन् ॥ ३५ ॥  
सर्वोपधीः समानीय देवदैतेयदानवाः । क्षिप्तवाक्षीराग्निपयसि शरदध्नामलत्विषि ॥ ३६ ॥  
मंथानमंदरं हृत्त्वानेत्रं हृत्वा च वासुकिम् । ततो मथितुमारब्धा यजेत्रतरसामृतम् ॥ ३७ ॥  
विदुषाः सहिताः सर्वेयतः पुच्छंततः स्थिताः । विष्णुना वासुकेर्देव्याः पूर्वकायनिवेशिताः ॥ ३८ ॥  
ते तस्य प्राणवातेन बद्धिना च हतत्विषः । निस्तेजसोऽसुराः सर्वे यभूजुर्मरुधुते ॥ ३९ ॥  
तेनैव मुषनिः श्वा सपायुना धवला हवीः । पुच्छद्भ्यो मरुद्विस्तदा चाप्यपिताः सुराः ॥ ४० ॥  
क्षीरोदमध्ये भगवान्प्रह्लादाग्रविशं वरः । महादेवो महांते जाविष्णुपृष्ठनिवासिनौ ॥ ४१ ॥  
बाहुभ्यामंदरं गृह्णापन्नचरसपरंतपः । शृंगले च तदा कृत्वा गृहीत्वा मंदराचलम् ॥ ४२ ॥  
देवानां दानवानां च बलमभ्येव्यवस्थितः । क्षीरोदमध्ये भगवान्कूर्मरूपी स्य यंहरिः ॥ ४३ ॥  
अन्येन तेजसा देवानुपचूहितघानहृदि । मध्यमाने ततस्तस्मिन् क्षीराग्धौ देवदानवैः ॥ ४४ ॥  
हविर्धान्यभवत्पूर्वसुरभिः सुरपूजिता । जग्मुर्मुदंतदा देवा दानवाश्च महामते ॥ ४५ ॥  
प्राक्षितचेतसः सर्वे यभूजुस्तिमितेक्षणाः । किमेतदिति सिद्धानां विविचितयतां तदा ॥ ४६ ॥  
बभूवया यणी देधीमदाधूर्गिष्ठलोचना । हृतावर्ता ततस्तस्मात्प्रस्त्रलंती पदे पदे ॥ ४७ ॥  
एकवद्वामुक्कैशीरकां तस्तद्वलोचना । अहंबलप्रदा देवीर्मावा गृह्णन्तु दानवाः ॥ ४८ ॥  
अशुचिं वारुणीं मत्प्रात्यवतयंतस्तदा सुराः । जगृहुस्तां तदा देव्या प्रहृष्टान्ते सुराभवन् ॥ ४९ ॥  
मंथने पारिजातोऽभूद्देवधीनन्दनोद्गमः । रूपौ वाप्यंगुणोपेतास्ततश्चाप्सरसांगणाः ॥ ५० ॥  
शृष्टिकोट्यस्तदा जाताः सामान्या देवदानवैः । सर्वास्ताः हतपूर्वास्तु सामान्याः पुण्यकर्मजाः ॥ ५१ ॥  
स्तः शीतांशुर्भवद्देवानां प्रीतिदायकः । यया चे शं करो देवो जटाभूषणहन्तम ॥ ५२ ॥  
भविष्यति न संदेहो गृहीतोऽयं मया राक्षसी । अनुमेने च तं ब्रह्माभूषणाय हरस्य तु ॥ ५३ ॥  
ततो विषं समुत्पन्नं कालकूटं मया वधम् । तेन चैवादिताः सर्वे दानवाः सह देवतैः ॥ ५४ ॥

महादेवेन तत्पीनं विपंगुह्य दृच्छया । तस्य पानाग्नीलकंठस्तदाजातो महेभ्यः ॥ ५५ ॥  
 पीताचशेषं नागास्तु क्षीराग्रेस्तु समुत्थितम् । ततो धन्यं तर्जितः श्वेतां परधरः स्पष्टम् ॥ ५६ ॥  
 विप्रत्कपं द्रव्यं पूर्णममृतस्य समुत्थितः । ततः स्वस्थमनस्कास्ते वैद्यराजस्य दर्शनात् ॥ ५७ ॥  
 ततश्चाभ्यः समुत्पन्नो नागश्चे रात्रस्ततः ॥ ततः स्फुटत्कांतमतिविकासिक्रमजैः स्थिता ॥  
 श्रद्धैर्यापय सस्तरमादुत्थिता दृढां कजा । तां तु पृथुपुंदायुक्ताः श्रीसूते जमहर्षयः ॥ ५८ ॥  
 विभवास्तु मुपास्तस्य गंधर्वाः पुस्तोजगुः । गृता र्वा प्रमुखास्तत्र नृध्याप्सतोगणाः ॥ ५९ ॥  
 गंगायाः सति स्तोत्रैः स्नानार्थं मुनिरैरे । दिगाजज्ञे मया प्रसूयमादाय विमलं जलम् ॥  
 द्वापयावतिरे देवाः सर्वलोचनदेवताम् । शंखोदस्तु स्वयंतरे मालाममलानां कवाम् ॥  
 ददौ विभूषणान्यंगे विद्यवर्माचकाय । दिव्यमाल्यां परधरां स्नाता भूषणभूषिताम् ॥  
 इन्द्राया धामराजा विद्याधरमहोरगाः । दानवारचमहाक्षैत्या राक्षसाः शङ्खगुह्यकैः ॥  
 कन्यामनिलरन्तिस्तु ततो वज्रा उपाचह । यामुदेव त्वमेवैनाम वादतां गृहाणये ॥ ६० ॥  
 देवास्तु दानपास्त्वेष रतिविदामवा रिपह । तुषां ईदं भयतस्तायदत्तौ त्येनेदकर्मणा ॥ ६१ ॥  
 सानुर्धर्मा दृष्टा प्रोक्ता देवि गच्छस्य केशवम् । मया दत्तं पतिप्राप्य मोक्षस्य शाययती सता ॥  
 पर्यतां सर्वदेवानां मता यशस्थलं हटे । ततो वशस्थलं प्राप्य देवयनमर्चयाम् ॥ ६२ ॥  
 नाहं त्याग्या सदा देव सर्वपादेष कारिणी । यशस्थले निवसामि सर्वस्य जगतः प्रिय ॥  
 कतोऽपलोक्षितदेवा विष्णुशश्वत्स्थस्यया । त्वत्स्माराज्जन्द्रसदसा परनिर्वाणिमगतः ॥  
 उदरेन वरं दत्तुं त्वा विष्णुपराद् मुखाः । त्यक्तास्तु दानपादक्षम्या विप्रचितिपुतोगमाः ॥  
 तत्करोतु त्वं त्वा कथयन्ति कथयन्ति ॥ भगवन्तमहार्वाप्यां देव्याः पापहमन्त्रिताः ॥  
 द्वापयादोमयि सानुविष्णुः क्रीडयन्तं श्रयः । आगत्य दानवान्याह दायिता मे कर्म हतुः ॥  
 दुष्काण्डपट्टान् पाश्यास्यामि मयतां गृहे । तां दृष्ट्वा रूपसन्पन्नानां नारी प्रेमां सगुन्दम् ॥  
 दार्पणमस्तुषु त्रुं लोकोपहतचेतसः । इत्यामृतं कदाचन स्पेततां प्रदयन्तं प्रतः ॥ ६३ ॥  
 तत्रैव सदा तदा देवेभ्यः प्रददं नृपम् । तत्र वतुः मुगाणां शक्रायास्तनदा नृपम् ॥ ६४ ॥  
 गच्छन्तु रतिविदो देव्यां स्वां स्नेहसमन्ययुः । रतिं नृपे च वतिमिदं देवस्य वरं ॥  
 वरं देव्यां देवो रतुः पश्यन्ति विविधते । ततो देवा मुदा मुखाः दंष्ट्रया दायाम् ॥ ६५ ॥

प्रणिपत्ययथापूर्वप्रययुस्तेत्रिपिष्टम् । ततः प्रभृतिर्भोष्म स्त्रीलोलादानवामयन् ॥ ७६ ॥  
 अपथातास्तुहृष्येनगतास्तेतुरसातलम् । ततः सूर्यः प्रसन्नामः प्रययौ स्येनवर्त्मना ॥ ७७ ॥  
 ज्वालामगवाञ्चोघेष्वास्तीप्तिर्दुःतामनः । धर्मैश्च सर्वभूतानां तदामतिजायत ॥ ७८ ॥  
 धियायुक्तं च प्रेम्नोऽपिष्णुनाप्रतिपालितं । देवास्तुनेतदप्रोक्ताद्ब्रह्मणालोकधारिणा ॥  
 भयतांरक्षणाधायमयापिष्णुर्नियोजितः । उमापतिश्च देवेशो योगक्षेमं करिष्यतः ॥ ७९ ॥  
 उपास्यमानोऽसतन्युष्मत्क्षेमकरायतः । ततः क्षेम्योऽसदाचरती भविष्येतेष्वप्रदी ॥ ८० ॥  
 एवमुत्त्वा तु भगवाञ्जगत्सगतिमात्मनः । भदर्शनं गते देवे सर्वलोकपितामहे ॥ ८१ ॥  
 देवलोकां गतेऽहं स्वर्गलोकां हस्तिं करी । प्राप्सौ तु तत्क्षणं देवोऽस्थानं कैलासमेव च ॥ ८२ ॥  
 ततस्तु देवराजेन पालितं भुवनत्रयम् । पर्यलक्ष्मीर्महाभागा उत्पन्ना क्षीरसागरात् ॥ ८३ ॥  
 पुनः क्वात्यां स मुत्पन्ना भृगोरेयासनात्नी । धिया सहसमुत्पन्ना भृगुणा च महर्षिणा ॥  
 स्वनाम्ना न गरीचं वृष्टा पूर्वैरिच्छते । नर्मदायां महाराज ब्राह्मणा चानुमोदिता ॥ ८४ ॥  
 लक्ष्मीः पुंस्त्वपि त्रेत्यं स ह कुक्षिकयाऽप्यं च । भागता देवलोकां साऽप्याचता गत्यैव पुनः ॥ ८५ ॥  
 लोमान् दत्तं तु पराध्यायार्थाय दापुनः । भृगोः सकाशात् नान्यापत्तदाचैवाहवेशयम् ॥ ८६ ॥  
 परिपूतानुमिषाहं गृहीतं नगरं मम । तस्य हस्तात्त्वमाक्षिप्य पुरं च नयस्वयम् ॥ ८७ ॥  
 तं गत्वा पुण्डरीकाक्षो देवश्चक्रगदाधरः । भृगुं सानुनयं प्राह कन्यायै पुत्रमप्यं ॥ ८८ ॥  
 कुक्षिकातालिक्रेवोभेदायेतां च प्रसादतः । भृगुस्तं कुपितः प्राह नार्पयिष्याम्यहं पुरम् ॥ ८९ ॥  
 नलक्ष्म्यास्तत्पुरं देवमया चेदं स्वयं दत्तम् । भगवन्नेव दास्यामित्यजाक्षेपं तु केशव ॥ ९० ॥  
 तं प्राह देवो नृपोऽपिलक्ष्म्यास्तत्पुरमप्यं । सर्वधानुत्वया त्याज्यं वचनान्मे महामुने ॥ ९१ ॥  
 ततः कोपसमाधिरो भृगुरप्याह केशवम् । पक्षपातेन मां साधो भार्याया धाधसेऽधुना ॥ ९२ ॥  
 गृहो केदं शज्जमानिलप्स्यसे मधुसूदन । भार्यायास्तेष्वियोगेन दुःखान्यनुभविष्यसि ॥ ९३ ॥  
 परं शापं ददौ तस्मै भृगुः परमकोपनः । विष्णुना च पुनस्तत्स्वदत्तः शापो महात्मना ॥ ९४ ॥  
 नचापत्यवृष्टां प्रीतिं प्राप्स्यसे मुनिपुंगव । शापं दत्त्वा ऋषेस्तस्य ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ ९५ ॥  
 पञ्चजन्मानमाहेदं दृष्ट्वा देवस्तु केशवः । भगवंस्तव पुत्रोऽसौ भृगुः परमकोपनः ॥ ९६ ॥  
 निष्कारणं च तेनाहं शतो जन्मानि मानुषे । लप्स्यसे दशधा त्वं हिततो दुःखान्यनेकशः ॥ ९७ ॥

महादेवेन तत्पीतं विपंगुह्य दृच्छया । तस्य पानार्थं लंकं स्तदा ज्ञातो मे हे भवः ॥ ५५ ॥  
 पीताचरो यं नागास्तु क्षीराब्धेस्तु समुत्थितम् । ततो धन्वंतरि जातः श्वेतांबरधरः स्वयम् ॥ ५६ ॥  
 विभ्रत्कपंडलुं पूर्णममृतस्य समुत्थितः । ततः स्वस्थमनस्कास्ते वेद्यराजस्य दर्शनात् ॥ ५७ ॥  
 ततश्चाभवः समुत्पन्नो नागश्चैरावतस्त ॥ । ततः स्फुरत्कांतमतिविकासि श्रमने स्थिता ॥  
 र्थाद्देवाप्यसस्तस्मादुत्थिता धृतपंकजा । तां तुष्टुर्मुदायुक्ताः श्रीसृक्तेन महर्षयः ॥ ५८ ॥  
 विभ्वावसुमुखास्तस्य गंधर्वाः पुरतो जगुः । घृताब्जं प्रमुखास्तस्मिन् नृश्लाप्स रोगणाः ॥ ५९ ॥  
 यंगाद्याः सप्तिस्तोयैः स्नानार्थमुत्तरि रे । दिनाज्जाहेमपात्रस्य मादाय विमलं जलम् ॥  
 क्लापयान् च किरेदेव । सर्वलोकमहेश्वरीम् । क्षीरोदस्तु स्वयंतस्यै मालामल्लानां कजम् ॥  
 ददौ विभूषणान्यंगे विश्वकर्माचकार ह । दिव्यमाल्यांबरधरा स्नाता भूषणभूषिताम् ॥  
 इन्द्राद्याश्चामरगणा विद्याधरमहोरगाः । दानवाश्च महादेव्या राक्षसाः सह गुरुकैः ॥  
 कन्यामभिलशन्ति स्म ततो प्रह्लादवाच ह । वासुदेव त्वमेवैनां मादत्तां गृहाण वै ॥ ६० ॥  
 देवाश्च दानवाश्चैव प्रतिपिद्वा मया रिच ह । तुष्टोऽहं भवतस्तत्तदलौक्येनेदं कर्मणा ॥ ६१ ॥  
 ज्ञातुं धीर्ब्रह्मणा प्रोक्ता देवि गच्छ स्व केशवम् । मया दत्तं पतिप्राप्य मोदस्व शाश्वती समा ॥  
 पश्यतां सर्वदेवानां गता यक्षस्थलं हरेः । ततो यक्षस्थलं प्राप्य देवयचनमर्चयाम् ॥ ६२ ॥  
 नाहं त्वाज्यासदा देव सर्वदा देश कारिणी । यक्षस्थले निवसस्यामि सर्वस्य जगतः प्रिय ॥  
 ततोऽप्यलोकित्वा देवा विष्णुयक्षस्थलस्य या । लक्ष्म्याराजेन्द्रसहस्रापरां निर्वृतिमागताः ॥  
 उदुवेगंबरं जमुर्देव्या विष्णुपराह मुखाः । त्यक्त्वास्तु दानवा लक्ष्म्या विप्रचित्तिपुरोगमाः ॥  
 ततस्ते जगद्गुर्देव्याः कथन्तरिकरस्थिताम् । अमृतं तमहाधीप्यादेत्याः पापसमन्विताः ॥  
 मायया लोमयि रघा तु विष्णुः स्त्रीरूपसंध्यः । आगत्य दानवान्प्राह दीयतां मे कमंडलुः ॥  
 गुप्ताकं पश्यामूपास्थास्यामि यतां गृहे । तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नानां रीतिं लोकां सुन्दरीम् ॥  
 प्रार्थयानां सुपुपुं लोभोपहतचेतसः । दत्त्वाऽमृतं तदा तस्यै ततोऽपश्यन्त तेऽप्रतः ॥ ६५ ॥  
 दानदेव्यस्तदा दाय देवेभ्यः प्रददौऽमृतम् । ततः यपुःसुरगणाः शक्राद्यास्तत्तदा मृतम् ॥ ६६ ॥  
 उग्रतामुपनिर्मिता देव्यास्तां स्तेषामभ्ययुः । पतिंऽमृतं च यन्निर्मिता देव्यश्चमूस्ततः ॥  
 वक्ष्यमाना दिवो भेदुः पातालां विविगुह्य ते । ततो देवा मुदा युक्ताः शंखचक्रगदाधरा ॥ ६७ ॥

प्रणिपत्य यथापूर्वं प्रययुस्ते त्रिविष्टपम् । ततः प्रभृतिनेमोष्म स्त्रीलोलादानवाभवन् ॥ ७३ ॥  
 अप्रधातास्तुरुष्णेन गतास्तेनुरसातलम् । ततः सूर्यप्रसन्नामः प्रययौ स्येन यत्तमना ॥ ७४ ॥  
 बज्जालभागाच्चोच्चैश्चास्तीप्तिर्हृताशनः । धर्मैश्च सर्वभूतानां तदामतिरजायत ॥ ७५ ॥  
 धियायुक्तं ॥ त्रैलोक्यं विष्णुना प्रतिपालितं । देवास्तु ते तदामोक्ता ब्रह्मणालोकधारिणा ॥  
 भवतां रक्षणार्थाय मया विष्णुर्नियोजितः । उमापतिश्च देवेशो योगक्षेमं करिष्यतः ॥ ७६ ॥  
 उपास्यमानो स ततं युष्मत्क्षेमकरो यतः । ततः क्षेम्यो स द्वाचतौ भविष्येते यज्जदी ॥ ७७ ॥  
 एष मुक्त्वा तु भगवाञ्जगाम गतिमात्मनः । अदर्शनं गते देवे सर्वलोकपितामहे ॥ ७८ ॥  
 देवलोकां गते शक्रैस्त्वलोकं हविर्वाकरो । प्राप्तौ तु तदक्षणादयो स्थानं कैलासमेव च ॥ ७९ ॥  
 ततस्तु देवराजेन पालितं भुवनत्रयम् । पर्यलक्ष्मीर्महाभागा उत्पन्ना रक्षिता ररात् ॥ ८० ॥  
 पुनः क्वात्पांसमुत्पन्ना भृगोरेपासनात्नी । धिया सहसमुत्पन्ना भृगुणा च महर्षिणा ॥  
 स्वतन्त्रानां गते चैव हतापूर्वं सरित्छटे । नर्मदायां महाराज ब्राह्मणा चानुमोदिता ॥ ८१ ॥  
 लक्ष्मीः पुंस्त्वपि त्रेस्त्वसहस्रं कृत्वाऽप्यं च । भागता देवलोकांसाऽप्याचता गत्स्वयं पुनः ॥ ८२ ॥  
 लोमान्निर्वाहं तु पार्थाय नायाय दापुनः । भृगोः सकाशान्नावापत द्वाचैवाहवेशयम् ॥ ८३ ॥  
 पश्चिमतानुमित्राहं पृथीतं नगरं मम । तस्य हस्तात्पमाक्षिप्य पुंस्तच्चानयस्ययम् ॥ ८४ ॥  
 तं गत्वा पुण्डरीकाक्षो देवश्चक्रादधरः । भृगुं सानुनं प्राह कन्वात्पे पुष्पं पर्य ॥ ८५ ॥  
 कुक्षिकातालिके चोभे दीयेतां च प्रसादतः । भृगुस्तं कुपितः प्राह नार्पयिष्याम्यहं पुरम् ॥ ८६ ॥  
 नलक्ष्म्यास्तत्पुं देयमया चेदस्य यं हृतम् । भगवन् प्रयदास्यामित्यजाक्षेपं तु केशव ॥ ८७ ॥  
 तं प्राह देवो मूयोऽपिलक्ष्म्यास्तत्पुष्पं पर्य । सर्वधा तु त्वया त्वाम्यं यचनान्नेन दातुने ॥ ८८ ॥  
 तदुकोपसमाविष्टो भृगुरप्याह केशवम् । पक्षपातेन मां सार्धो भार्याया वा पसेऽपुना ॥ ८९ ॥  
 गृहो के दशजन्मानि लप्स्यसे मयुसूदन । भार्यायास्ते वियोगेन दुःखान्यनुभविष्यसि ॥ ९० ॥  
 एवं सार्पं ददौ तस्मै भृगुः परमकोपनः । विष्णुना च पुनस्तस्य दत्तः सार्धो महात्मना ॥ ९१ ॥  
 नचापत्य हतां प्रीतिं प्राप्स्यसे मुनिपुंगव । सार्पं दत्वा श्वपेस्तस्य ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ ९२ ॥  
 पञ्चजन्मानमाहे दं दृष्ट्वा देवस्तु केशवः । भगवंस्तव पुत्रोऽसौ भृगुः परमकोपनः ॥ ९३ ॥  
 निष्कारणं च तेनाहं शप्तो जन्मानि मानुषे । लप्स्यसे दशपातं दित्तो दुःखान्यनेकशः ॥ ९४ ॥

भार्यानियोगजापीडावलपीरुपनाशिनी । त्यक्त्वाचाहमिमंलोकंशयिष्ये च महोदधौ ॥  
 देवकार्येषुसर्वेषुपुनश्चावाहनंक्रियाः । तथाब्रुवन्तंतदेवंब्रह्मालोकगुस्तदा ॥ १०४ ॥  
 प्रसादनार्थं विष्णोस्तुस्तुतिमेतांचकारह । त्वयासृष्टंजगदिदंपन्नंभौविनिःसृजम् ॥

तत्र चाहं समुत्पन्नस्तव वश्यश्च केशव ॥ १०५ ॥

त्वंप्रातासर्वलोकानांनृणात्यंजगतःप्रभो । त्रैलोक्यंनत्वंयात्याज्यमेपयवरोमम् ॥ १०६ ॥  
 दशजन्ममनुष्येपुलोकानांहितकाम्यया । स्वयंकर्त्तानतेशक्तःशापदानायकोपिवा ॥ १०७ ॥  
 कोऽयंभृगुःकथंतेनशवपंशप्तुंजनार्द्धन । मानयस्वसदाविप्रान्ब्राह्मणास्तेतनुस्स्वयम् ॥  
 योगनिद्रामुपास्यत्वंक्षीराब्धौस्वपिहीभ्वर । कार्यकालेपुनस्त्वांतुयोधयिष्यामिमाधव ॥  
 भगवन्नेपतायत्तुत्वंच्छतयाचोपवृंहितः । सर्वकार्यकःशक्तस्तवैवांशेनशत्रुहा ॥ ११० ॥  
 त्रैलोक्यंपालयन्नेकत्पदाज्ञांसकरिष्यति । एवंस्तुतस्तदाविष्णुर्ब्रह्माणमिदमुचवान् ॥  
 सर्वमेतत्करिष्यामियन्मांज्ञापयसेप्रभो । भवर्शनंगतोदेवोब्रह्मातनाभिजमिषान् ॥ ११२ ॥  
 गतेदेवेतदाविष्णोर्ब्रह्मालोकपितामहः । भूयश्चकारस्वसृष्टिलोकानांप्रभवःप्रभुः ॥ ११३ ॥  
 तंदृष्ट्वानारुदःप्राहवामयंवाक्यमविदांवरः । सहस्रशीर्षांपुरुषःसहस्राक्षःसहस्रपात् ॥

सर्वध्यापी भुवःस्पर्शादध्यतिष्ठदशांगुलम् ॥ ११४ ॥

यदुभूतयञ्चयैभाष्यंसर्वमेधमयान्यतः । ततोविभ्रमिदंतातयत्तोभूतंभयिष्यति ॥ ११५ ॥  
 त्यत्तोयतःसर्वद्रुतः पृथ्वाज्यंपशुर्द्विधा । ऋचस्त्वत्तोऽथसामानित्यत्तप्याभिजग्निरे ॥  
 त्यत्तोयतास्त्वजायंत्त्वत्तोऽथार्क्षंषट्तिनः, गायस्त्वत्तःसमुद्रभूताःत्यत्तोजातापयोमृगाः  
 त्वन्मुखादुग्राहणाजातास्त्वत्तःक्षत्रमज्जायत । वीश्यास्त्वोरुजाःशूद्रास्तपपद्भ्यांसमुद्रताः  
 भक्ष्णोःसूर्योऽनिलःश्रोत्राच्चंद्रमाग्रमनसस्तव । प्राणोतःपुषिराज्जातोमुखादग्निरजायत ॥  
 नाभितोगगनंघोषधिरसःसमवर्त्तत । दिशःश्रोत्रात्क्षितिःपदुभ्यांत्यत्तःसर्वंममूदिदम् ॥  
 न्यग्रोधःसुमहानल्ये यथार्वाज्जैव्यवस्थितः । सप्तर्जंविभ्रमधिलंर्याजभूतेतयात्वयि ॥  
 र्याजंक्रुत्समुद्रभूतोन्यग्रोधः समुपस्थितः । विस्तारंचयथायातिरपतः सृष्टीतथाजगत्  
 यथाहिषदलीनान्यांतपक्वप्रेभ्योऽभिद्रव्यते । एवंविधमिदंनान्यरूपस्थमाप्सवद्रव्यते ॥  
 ॥ इदतापकर्षमिधात्वयिनोगुणपरिज्ञेते ॥

पृथग्भूतैकभूतायसर्वभूतायतेनमः । व्यक्तप्रधानपुरुषोविषादसम्राट्प्रधाभवान् ॥ १२५ ॥  
 सर्वस्मिन्सर्वभूतस्त्वंसर्वःसर्वस्वरूपधृक् । सर्वत्वत्तःसमुद्भूतंनमः सर्वात्मनेततः ॥ १२६ ॥  
 सर्वात्मकोऽसिसर्वेशसर्वभूतस्थितोयतः । कथयामिततः कितेसर्वेत्सिद्धिस्थितम् ॥  
 यो मे मनोरथो देय सफलः स त्वया कृतः । तस्मैसुखंसफलंयद्दृष्टोऽसिजगत्पते ॥ १२८ ॥

ब्रह्मोवाच

तपस्तत्फलं पुत्रयद्दृष्टो हं त्वया धुना । महर्षानं हि विफलं नारदेह न जायते ॥ १२९ ॥  
 सर्वं त्यक्तस्मात्त्वं यथा मिमतमात्मनः । सर्वं संपद्यते तात मयि दृष्टिपथगते ॥ १३० ॥

नारद उवाच

मगवन्सर्वभूतेशसर्वस्यास्तेभवान् इदि । किमज्ञातं तदस्यामिन्मनसायन्मयेप्सितम् ॥  
 हतात्थयापयासुष्टिर्मया दृष्टा तथा विभो । तेन मे कौतुकं ज्ञातं दृष्ट्वा देवर्षिदानयान् ॥ १३२ ॥

पुलस्त्य उवाच

नारदस्य पिता तुष्टो ब्रह्मा देवो दिवस्पतिः । नारदाय बर्षादादूर्णीषामुत्तमो भवान् ॥ १३३ ॥  
 मवितामत्प्रसादेन कलिकेलिकथाप्रियः । मतिश्च तेऽप्रतिहतादिविभूमौ रसातले ॥ १३४ ॥  
 शोषवीतसूत्रेण योगपट्टायलं बिका । छत्रिका च तथार्वाण्यामलं कारायतेऽनघ ॥ १३५ ॥  
 विष्णोः समीपे रदस्य तथा शकस्य नारद । द्वापेणु पार्थिवानां तु सदा प्रीतिं च लप्स्यसे ॥  
 तानां तु भवान् श्लास्तायरोदत्तो मया तव । तिष्ठ पुत्रयथाकामं सेष्यमानः सुरैर्दिवि ॥ १३७ ॥  
 इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सुष्टिराण्डे लक्ष्म्युत्पत्तिनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

दक्षयज्ञविध्वंसकथानकम् ।

मीमा उवाच ।

कथं सर्वा दक्षमुतादेवं त्वत्पत्नी शुभा । दक्षयज्ञस्तु द्येनविध्यस्तः केन हेतुना ॥ १ ॥  
 एतन्ने कौतुकं यन्मया कथं देवो महेश्वरः । जगामापको यस्यां त्रिपुराप्तिं हायसाः ॥ २ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

गंगाद्वारेपुराभीष्मदक्षोयज्ञमथारभत् । तत्रदेवासुरगणाःपितरोऽथमहर्षयः ॥ ३ ॥  
समाजमुमुदायुक्ताः सर्वदेवाःसवासवाः । नागायक्षाःसुपर्णाश्चवीर्यदोषधयस्तथा ॥ ४ ॥  
कश्यपोभगवानत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । प्रचेतसोऽगिपत्तैववसिष्ठश्चमहातपाः ॥ ५ ॥  
तत्रथेदीसमां वृत्वाचातुर्होत्रंन्यदेशयत् । होतावसिष्ठस्तप्रासीदंगिराध्वर्युसत्तमः ॥ ६ ॥  
वृहस्पतिरथोद्गाताग्रहार्थेनारदस्तथा । चक्रकर्मप्रवृत्तीं ह्यमानेषु चाग्निषु ॥ ७ ॥  
भागतावसयः सर्वं आदित्याद्वाक्यैवतु । अश्विनीमस्तपत्तैवमनवध्वचतुर्वश ॥ ८ ॥  
एवंयज्ञेप्रवृत्तेतुह्यमानेषुचाग्निषु । विभूर्तितांपरांतत्रमध्यभोज्यवृतांशुभाम् ॥ ९ ॥  
आलोप्यसर्वतोभूमिसमंतादश्वयोजनम् । महावेदीवृतातत्रसर्वस्तत्रसमन्वितैः ॥ १० ॥  
सर्धान्देवान्शक्रमुष्यान्त्यज्ञेहृष्टास्ततोशुभा । तदास्तानुनयंवावयंप्रजापतिमभाषत ॥ ११ ॥

सत्युवाच ।

प्रेरायतंसमारुढो देवराजः शतक्रतुः । पत्न्याशय्यासहायातः कृतावातःशतक्रतुः ॥ १२ ॥  
पापानांयोयमयिताधर्मेणाधर्मिणांप्रभुः । पत्न्याधूमोर्ण्या सार्द्धमिहायातःसहृष्यते ॥ १३ ॥  
यादसाञ्चपतिर्देवोचरुणोलोकभायनः । गौर्व्यापत्न्यासहायातः प्रचेतामंडपेरिषद् ॥ १४ ॥  
सर्वयक्षाधिपोदेवः पुत्रोविश्वसोमुनेः । पत्न्यारिषदस्तमायातः सहदेव्याधनाधिपः ॥ १५ ॥  
मुखं यः सर्वदेवानांजंतूनामुदरस्थितः । वेदायदधंमुत्पन्नास्तसोऽयंयममुपागतः ॥ १६ ॥  
निर्वृतीराक्षसेन्द्रोऽसौदिष्पतिरियेनियोजितः । सचरिषद्वागतस्तातपत्न्यासार्द्धंक्रतापिह ॥ १७ ॥  
आयुःप्रदो जगत्पस्मिन्प्रज्ञाननिर्मितःपुरा । प्राणोऽपानोऽप्यानउदानस्तमानाह्वयस्तथा ॥ १८ ॥  
एकोनपंचाशत्केनगणेनपरिपारितः । यज्ञेप्रजापतिश्चासौवायुर्वैषः समागतः ॥ १९ ॥  
द्वादशात्माग्रहाप्यक्षः चक्षुषी जगतस्त्विह । पातिवैभुचनंसर्वदेवानां यः परायणः ॥ २० ॥  
आयुषधवनानांचन्द्रिवसानांपतिर्द्विषः । संघापतिश्चायातो भास्करोलोकपायनः ॥ २१ ॥  
अत्रियंशुसमुद्भूतोद्विजपञ्चमहायशाः । नयनानंदजननोलोकनाथोधरातले ॥ २२ ॥  
भोपर्षानांपतिश्चापिर्षादध्यामपिसर्वशः । उडुनाथः सपत्नीकाह्वयातः शरीतय ॥ २३ ॥  
युक्षोयनस्यतिश्चापिपंचर्षाप्सरसांगजाः ॥



विद्याधराभूतसंघावेताला यक्षराक्षसाः । पिशाचाश्चोप्रकर्माणस्तथान्येजीवहारकाः ॥  
 नयोनदाः समुद्राश्च द्वीपाश्चसहपर्वतैः । ग्राम्यारण्याश्चपशवोयदिङ्गयच्चनेह्नुति ॥ २६ ॥  
 कश्यपोभगवानत्रिर्यसिष्ठश्चापरैःसह । पुलस्त्यःपुलहश्चैवसनकाद्यामहर्षयः ॥ २७ ॥  
 पुण्याराजर्षयश्चैवपृथिव्यांयेचपार्थिवाः । वर्णाश्चाध्रमिणश्चैवसर्वेयेकर्मकारिणः ॥ २८ ॥  
 विमत्रघटुनोक्तेनप्राह्मीसृष्टिर्दिहागता । भगिन्योभगिनेयाश्चभगिर्नापतयस्त्रिवे ॥ २९ ॥  
 स्वभार्यासहिताःसर्वेसपुत्रास्सहस्रांधवाः । त्वयासमर्चिताःसर्वेदानमानपरिग्रहेः ॥ ३० ॥  
 भामंत्रणामंत्रितानांसर्वेयामाननाहृता । एकपद्याभगवन्पतिर्मे न समागतः ॥ ३१ ॥  
 विनातेनस्विदंसर्वशून्यघत्प्रतिभातिमे । मन्येचाशुभयता पतिर्मे न निर्मादितः ॥ ३२ ॥  
 विस्मृतस्ते भवेन्नूनं सर्वं शंसतु मे भवान् ।

पुलस्त्य उवाच ।

तस्यास्तदुक्तं वचनं धृत्या दक्षः प्रजापतिः ॥ ३३ ॥

पतिस्नेहसमायुक्तांप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् । भक्तमारोप्यतांयालांसाध्यांपतिपरायणां ॥  
 पतिप्रतामहामागांपतिप्रियहितैर्पिणीम् । प्राहर्गभीरमायेनृणुयत्से यथातथम् ॥ ३४ ॥  
 येनापकारणेनेहपतिस्ते न निर्मादितः । कपालपात्रभूयचर्मोभस्मावृततनुस्तथा ॥ ३५ ॥  
 मूर्खमुण्डीचनप्रश्नश्मशानेयमेतसदा । विभूत्याङ्गनिसर्पाणिपरिमार्ष्टिचनित्यशः ॥ ३६ ॥  
 प्याप्रचर्मपरीधानोहस्तिचर्मपरिच्छदः । कपालमालांशिरसिषट्पांगचकरैस्त्वितम् ॥ ३७ ॥  
 कस्यायैगोनसंयथ्यालिङ्गेऽस्त्प्रमांवलर्यंतथा । पन्नमानांनुराजानमुपवीतंचरामुक्तिम् ॥  
 एतयाध्रमतिचनैरूपेणसततंक्षिती । नग्नान्पाःपिशाचाश्चभूतसंहारनेत्रजः ॥ ४० ॥  
 त्रिनेत्रश्चैरूलीयगीतनृत्यस्तस्सदा । कुत्सितानि तथान्यानिसदनेकुत्सेपतिः ॥ ४१ ॥  
 श्वाकरोभयेनह्यदेवानांसंनिधिःकथम् । कीदृक्चयसर्नतस्यरेतनंप्रतिनार्हति ॥ ४२ ॥  
 एतेदोर्गेमपायत्सेलोकानांचैवलज्जया । नाह्वानंतुहृतंतस्यहारणेनमयामुने ॥ ४३ ॥  
 यन्नस्यास्यसमाप्तांतुपूजांरूपात्ययासह । आनीयतवभर्तारंत्वयासहत्रिलोचनम् ॥ ४४ ॥  
 त्रेलोक्तेराधिकांपूजांकरिष्यामिचसत्कृतैः । एतत्तेसर्वमाख्यातंचपायाःकारणमहम् ॥  
 नात्रमन्युस्तथाकार्यः सर्वस्यं भागमर्हति । भन्यजन्मनिर्षयांदृष्टुंजन्मंशुभागुभम् ॥ ४५ ॥

इहजन्मनितेतादृक्पुत्रिकेभुञ्जते फलम् । परितापंमाहृषास्त्वंफलमुंक्ष्यपुराहृतम् ॥३९॥  
 ध्रियंपरगतां दृष्टारूपसौभाग्यशोभनाम् । रूपंचकांतिसौभाग्यंरम्याण्याभरणानिव ॥४०॥  
 कुलेमहतिवैजन्मयपुध्वातीवसुन्दरम् । पूर्वभाग्यैस्तुल्यम्यते नरैरेतानिसुवते ॥ ४१ ॥  
 मात्मानंपरिनिदेयामाचभाग्यानिसुवते । फलंचैवंविधिकृतंदातुंकस्यतुकक्षमः ॥ ४२ ॥  
 वास्तिवैबलधान्कश्चिन्नमूढो न च पण्डितः । पांडित्यंचवलंचैवजायतेपूर्वकर्मणा ॥४३॥  
 पतेदेवादिचंप्राताः शोभमानाःस्थिताश्चिरम् । पुण्येनतपसाचैवक्षेत्रेणुविविधेदुच ॥४४॥  
 यदेभिरर्जितंपुण्यंतस्यैतेफलभागिनः । एवमुक्ता ततः सा तु सती भीष्म ह्यान्विता ॥ ४५ ॥  
 धिर्निदमानापितरंक्रोधेनारुणितेक्षणा । एधमेतद्ययातात त्वयाचोक्तंममाप्रतः ॥ ४६ ॥  
 सर्वोजनः पुण्यभागी पुण्येनलभतेधियम् । पुण्येनलभतेजन्मपुण्येभोगाः प्रतिष्ठिताः ॥४७॥  
 तदयंजगतामीशःसर्वेषामुत्तमोत्तमः । स्थानान्येतानिसर्वेषांदत्तान्येतेनधीमता ॥ ४८ ॥  
 वैगुणास्तस्यदेवस्यवक्तुंजिह्वापिविधसः । नशक्ता ह्यापनेतस्यदेवस्यपरमेष्ठिनः ॥ ४९ ॥  
 भस्मास्थिचकपालानिश्मशानेयसतिस्तथा । गोमसाद्याश्चयेसर्पाः सर्वेतेभूपर्णीकृताः ॥ ५० ॥  
 भूतप्रेतागणास्तस्यपिशाचागुह्यकास्तथा । एषधाताविधाताचण्यपालयितादिशः ॥५१॥  
 प्रसादेनचरुद्रस्यप्राप्तःस्वर्गः पुरंदरः । यद्विद्धेऽस्तिदेवत्वंयदिसर्वगतः शिवः ॥ ५२ ॥  
 सत्येनतेनतेयद्वंचिर्वंसयनुशंकरः । यद्यस्तिमेतपःकिंचित्कश्चिद्धर्मोऽप्ययाहृतः ॥ ५३ ॥  
 फलेनतस्यधर्मस्ययद्वस्तेनाशमर्हति । प्रियाहंयदिदेवस्ययदिमांतारयिष्यति ॥ ५४ ॥  
 तेनसत्येनतेगर्वःसमाप्तिमभिगच्छतु । इत्युक्त्वायोगमास्थापस्यदेहस्थेनतेजसा ॥ ५५ ॥  
 निर्दाहृतदात्मानंसदेवासुरपन्नगैः । किंचिमेतदितिप्रोक्तोमंधर्षगणगुह्यकैः ॥ ५६ ॥  
 गंगाकूलेतदामुकोदेहोर्वक्रुद्धयातया । शौनकंनामतत्तीर्थंगंगायाः पश्चिमेतदे ॥ ५७ ॥  
 ध्रुत्वाहृतस्तुतद्वातां पत्न्यानाशसुदुःखितः । हंतुंयशंधीरभयतुदेवानामिदपश्यताम् ॥ ५८ ॥  
 गणकोटिसमादिष्टाग्रहावेनायकास्तथा । भूतप्रेतपिशाचाश्चक्षुष्यश्चयिनाराने ॥ ५९ ॥  
 तेर्गत्याचिबुधास्सर्वेयज्ञेर्निर्जित्यनाशिताः । इतेयज्ञेतदादहोनिरुद्धसाहोनिरुधमः ॥ ६० ॥  
 उपगम्याप्रवीन्प्रस्तोदेवदेवंपिनाकिनम् । नमस्तोऽसिमयादेवदेवानांप्रभुरीश्वरः ॥ ६१ ॥  
 त्वमस्यजगतोऽधीशःसुपस्सर्वेत्ययाजिताः । ह्यांकुलमहेशानगणानसर्वांन्निरुधंय ॥

गणैर्नानाविधैर्घोरैर्नानाभूषणभूषितैः । नानावदनदंतौष्ठैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ॥ ७१ ॥  
 नानानागैर्दसंदष्टजटाभारोपशोभितैः । सुदृढोद्वतदर्पाढ्यैर्धोरैर्घोरनिघातिभिः ॥ ७२ ॥  
 कामरूपैरकान्तैश्च सर्वकामसमन्वितैः । अनिवार्यबलैश्चोग्रैर्योगिमिर्योगगामिभिः ॥ ७३ ॥  
 आलोलकेशजटैर्दंष्ट्रोत्कटहसन्मुखैः । करैर्द्रकरटाटोपपाटवैः सिंहदेहिभिः ॥ ७४ ॥  
 केचित्पद्मदाघ्राणघूर्णदीपसमप्रभैः । विचित्रवित्रधनैर्द्वौर्ध्वोरखरादिभिः ॥ ७५ ॥  
 मृगध्याप्रसिद्धकृतैस्तरक्ष्यजिनधारिभिः । भुजंगहारवलयवृत्तयज्ञोपवीतकैः ॥ ७६ ॥  
 शूलासिपद्मिशधरैः परशुप्रासहस्तकैः । यज्ञक्रकचकोर्दंडकालदंडास्त्रपाणिभिः ॥ ७७ ॥  
 गणेश्वरैः सुदुर्जपैर्वृतैः सूर्यैर्प्रहैरिव । देवदेवमहादेवनटोयज्ञोदिवंगतः ॥ ७८ ॥  
 मृगरूपधरोभूत्वाभयभीतस्तुरांकर । नमः शङ्खामदेयाय सगणाय सनंदिने ॥ ७९ ॥  
 घृणासनायसोमायक्रतुकालांतकायच । नमोदिवचमर्षवत्प्रायनमस्तेतीव्रतेजसे ॥ ८० ॥  
 प्रक्षणेन्द्रदेहायप्रक्षणाया मितायच । निद्रिषायसुरेशायैशानायनमोनमः ॥ ८१ ॥  
 रुद्राय प्रतिवज्राय शिषाय क्रयनायच । सुरासुराधिपतये यतीनां पतये नमः ।  
 धूम्रोप्राय विरूपाय यज्यने घोररूपिणे ॥ ८२ ॥  
 विरूपाक्षगुभाक्षायसहस्राक्षायचैनमः । मुण्डाय चंद्रमुण्डाय वरखट्वाङ्गधारिणे ॥  
 कश्यपराय हठराय सर्वसंहारिणे नमः ॥ ८३ ॥  
 भक्तानुकंपिनेऽत्यर्घ्यद्रव्याप्यस्तुतायच । विरूपायसुरूपायरूपाणांशतकारिणे ॥ ८४ ॥  
 पंचास्यायशुभास्यायचन्द्रास्यायनमोनमः । वरदायधराहापकूर्मायचमृगायच ॥ ८५ ॥  
 र्छालालकशिखंडायकर्मडलुधरायच । विभ्वनाम्नेऽथविभवायविश्वेशायनमोनमः ॥ ८६ ॥  
 विनेत्रबाणमस्त्राकांक्षिपुष्पविधीयताम् । वाङ्मनःकायभावेस्तुप्रपन्नस्यमहेश्वर ॥ ८७ ॥  
 एवंस्तुतस्तदादेवोदक्षेणापन्नदेहिना । दिव्येनानेनस्तोत्रेणभृशमाराधितस्तदा ॥ ८८ ॥  
 समप्रतयेयवफलंमयादत्तंप्रजापते । सर्वकामप्रसिद्धयंप्रफलंप्राप्स्यस्यनुत्तमम् ॥ ८९ ॥  
 एवमुक्तोभगवताप्रणम्याथसुरेश्वरम् । जगामस्यनिजैतंतुगणानामेवपश्यताम् ॥ ९० ॥  
 पत्न्याःशोकेनरैर्देवोगंगाद्विरेतदास्थितः । तांसतींचितयानस्तुक्रनुसामेकियागता ॥ ९१ ॥  
 तस्यशोकाभिभूतस्यनारदोभवसन्निधौ । सातेसतीयादेवेशमार्याप्राणसमामृता ॥ ९२ ॥

हिमवद्दुहितासाचमेनागर्भसमुद्भवा । जग्राह देहमन्यं सा वेदवेदार्थवेदिनी ॥ ६३ ॥  
 श्रुत्वादेवस्तदाध्यानमवतीर्णामपश्यत् । कृतकृत्यमथात्मानंकृत्वादेवस्तदास्थितः ॥ ६४ ॥  
 संप्रातयौवनादेवोपनरेयविवाहिता । एवंहिकथितंभीष्मयथायज्ञोद्भूतपुरा ॥ ६५ ॥  
 इतिश्रीपाञ्चपुराणेप्रथमेसृष्टिसंख्येदक्षयज्ञविध्वंसोनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## पष्ठोऽध्यायः ।

दक्षात्प्राक्संकल्पदर्शनस्पर्शजन्या सृष्टिः ।

भीष्मउवाच

देवानांदानवानांवर्गधर्षोत्तराक्षसाम् । उत्पत्तिविस्तरेणेमांगुरोब्रूहियथाविधि ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषांसृष्टिरुच्यते । दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वसृष्टिर्मेघुनसंभवा ॥ २ ॥  
 यथाससर्जचैवासीतयैकगुणैकैव । यदातुसृजतस्तस्यदेवर्षिगणपन्नान् ॥ ३ ॥  
 नवृद्धिमगमल्लोकस्तद्रामैधुनयोगतः । दक्षमुत्रसहस्राणितदासितग्रामजीजनम् ॥ ४ ॥  
 तांस्तुदृक्कामदामागान्सिसृक्षुन्विपिधाःप्रजाः । नारदःप्राहहर्षश्चानन्दक्षपुत्रान्समागतान् ॥ ५ ॥  
 भुवःप्रमाणंसर्गंतुष्टात्त्वोदूर्ध्वमघपववा । ततःसृष्टिविशेषेणकुलध्वनृदिसत्तमाः ॥ ६ ॥  
 तेनुत्पन्नचन्द्राव्याप्रयाताःसर्वतोदिशम् । अथापिननिचतैतेसमुद्रादिधर्षिधवः ॥ ७ ॥  
 हर्षश्चैवपुत्रगणैर्गुणैर्दक्षःप्रजापतिः । धीरिण्यामेवपुत्राणांसहस्रमसृजत्प्रभुः ॥ ८ ॥  
 शयलाश्चानामतेचसमेताःसृष्टिकर्मणि । नारदोऽनुगतान्याहपुनस्तान्पूर्ववन्मुनिः ॥ ९ ॥  
 भुवःप्रमाणंसर्गंतुष्टात्त्वाम्रान्ननपोपुनः । आगत्यचपुनःसृष्टिकरिष्यप्यपिशेप्तः ॥ १० ॥  
 तेऽपिनेनेवमार्गेणजम्भुत्वांशनुगास्तदा । ततःप्रभृतिनृत्तानुःवर्त्नीयान्मार्गमिच्छति ॥ ११ ॥  
 अन्येष्टानुन्यमाप्नोतिनेनत्पत्तिर्जयेत् । ततस्तेष्वपिनेष्टेष्वष्टिकन्याःप्रजापतिः ॥ १२ ॥  
 धीरिण्यांजनयामसदक्षःप्राचेतसस्तदा । प्रादात्सदृशधर्मायकथ्यपायत्रयोदश ॥ १३ ॥

विशक्तिस्ततोमायचतस्रोऽरिष्टनेमिने । द्वेचैवभृगुपुत्रायद्वेष्ट्याश्वायधीमते ॥ १४ ॥  
 द्वेचैवांगिरसेप्रादासासानामानिधिस्तथा । ऋणुत्यदेयमातृणांप्रजाधिस्ताप्तादितः ॥  
 प्रवर्ततेवसुजांमिलेभ्यामानुमंरुषती । संकल्पावमुद्धर्तवसाध्याविश्वावभामिनी ॥

✓ धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्निबोध मे

विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत् ॥ १७ ॥

एतस्यामरस्यंतोयसोस्तुपसयस्तथा । भानोस्तुभानवोजातामुद्धर्तायामुद्धर्तजाः ॥ १८ ॥  
 व्यापाधोपनामानोनागपीर्यानुजामिजा । पृथिवीतलसंभूतमदंघत्यामजायत ॥ १९ ॥  
 कल्पायास्तुसंकल्पायसुसृष्टिनिधारय । ज्योतिष्मंतश्च्येदेवाभ्यापकाःसर्वतोदिशम् ॥  
 सवस्तेसमाख्यातास्तेषानामानिमेऽष्टु । आपोभुपश्चसोमश्चधरश्चैवानिलोऽनलः ॥  
 तूष्णश्चप्रमासश्चसपोऽष्टोऽप्रकीर्तिताः । आपस्यपुत्राश्चत्वारःधातोवैतण्ड्यपच ॥ २२ ॥  
 पिशांतोमुनिर्वर्चुर्द्वरक्षधिकारिणः । धुपस्यकालःपुत्रस्तुपर्वाः सोमादजायत ॥ २३ ॥  
 विणोहव्याहश्चपरपुत्राधिर्मास्मृतौ । कल्पांतस्थस्ततःप्राणोऽग्नयःशिशिरोऽपिच ॥  
 गोहरोपवध्यायशिषोषायहरेःसुताः । शिषोमनोजघंपुत्रमधिष्ठातगतिप्रदम् ॥ २५ ॥  
 वापचानलःपुत्रानग्निप्रायशुणांस्ततः । तत्रशाखोपिशालश्चनिगमेपुखयंभुधः ॥ २६ ॥  
 तत्पृष्ठसिकानांचकार्तिकेयस्ततःस्मृतः । प्रत्यूपस्यस्रभुःपुत्रोमुनिनामाधदेयलः ॥ २७ ॥  
 त्वचर्माप्रमासस्यपुत्रःशिल्पीप्रजापतिः । प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु ॥ २८ ॥  
 आकाशमकृपेपुत्रिदशानांचपर्वकिः । अजंकपादहिर्युज्योविरूपाक्षोऽधरेयतः ॥ २९ ॥  
 धवदुर्गपश्चार्थयक्षश्चसुरेश्वरः । सावित्रश्चजयंतश्चपिनाकीचापराजितः ॥ ३० ॥  
 अथास्समाख्याताएकादशगणेश्वराः । एतेषामानसानांतुत्रिशूलधरधारिणाम् ॥ ३१ ॥  
 कोट्यश्चतुर्धातिस्तुतत्पुत्राश्चाक्षयामताः । विश्वसर्वासुयेष्टांप्रकुर्वन्तिगणेश्वराः ॥ ३२ ॥  
 एतेवैपुत्रपौत्राश्चसुरमीगर्मसंभवाः । कश्यपस्यप्रक्ष्यामिपुत्रपौत्रादिपतिषु ॥ ३३ ॥  
 अदितिर्दितिर्दनुश्चैधमरिष्टासुरसातथा । सुरभिर्विनताचैव ताम्राकोधचशाहरा ॥ ३४ ॥  
 चन्द्रश्चसामुनिस्तद्वत्तासुपुत्रान्निबोधमे । नृपितानामयेदेवाभ्याक्षयस्यांतरैमनोः ॥ ३५ ॥  
 वैवस्वतेऽतरेचैवमादित्याद्वादशस्मृताः । इन्द्रोघातामगस्त्वष्टामित्रोऽथचरणोऽर्यमा ॥

## सप्तमोऽध्यायः

मरुदुत्पत्तिकथानकवर्णनम् ।

भोष्म उवाच ।

दितेः पुत्राः कथं जातामस्तो देवचक्षुषाः । देवैर्जग्मुश्च सापत्नैः कस्मात्सख्यमनुत्तमम् ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

पुरा देवास्तुरेयुर्देहते पृथग्निनास्तुरैः । पुत्रपौत्रेषु शोकार्ता गतामूलो जमुत्तमम् ॥ २ ॥  
पुष्करेषु महातीर्थे सरस्वत्यास्तटेशु भे । भर्तुं राघधनपरा तप उग्रं च वारह ॥ ३ ॥  
दितिवैदेत्यमाता नृपिका र्येण सुप्रता । फलाहारा तपस्तेपे कृच्छवाद्रायणादिभिः ॥  
यापद्वर्षशतं सार्धं जराशोकसमाकुला । ततः सा तपसा तप्तावसिष्ठा दीनपृच्छत ॥ ५ ॥  
कथयंतु भवन्तो मे पुत्रशोकविनाशनम् । यतः सौभाग्यफलदमिह लोके परब्रह्म ॥ ६ ॥  
ऊर्ध्वसिष्ठप्रमुखा ज्येष्ठस्य पूर्णिमाव्रतम् । यस्य प्रसादादभवत्सुतशोकविनिर्जिता ॥ ७ ॥

भोष्म उवाच ।

श्रोतुमिच्छाम्यहं ब्रह्मन् ज्येष्ठस्य पूर्णिमाव्रतम् । सुतानेकोनपञ्चाशद्येन लेभे पुनर्दितिः ॥ ८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

यद्वसिष्ठादिभिः पूर्वं दित्यै संकथितं यत्तम् । विस्तरेण तद्देवेदं मत्सफारान्निशामय ॥ ९ ॥  
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पूर्णिमास्यां यत्प्रता । स्थापयेदव्रणं कुंभं सिततण्डुलपूर्तिम् ॥ १० ॥  
नानाफलयुतं तद्वदिभुजं सप्तमन्यतम् । सितवस्त्रयुगच्छन् सितचंदनचर्चितम् ॥ ११ ॥  
नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं तु शक्तिः । तान्नपात्रं गुडोपेतं तस्योपरि निवेशयेत् ॥ १२ ॥  
तस्मादुपविष्ट्वा ह्यर्णसौ चणपत्रकोटरे । कुर्याच्छर्कराद्योपेतां सावित्रीं तस्य वामतः ॥ १३ ॥  
गंधं धूपं तपो देवादीनां घ्राणं च कारयेत् । तदभावे कथं कुर्याद्यथा पद्मे पितामहः ॥  
च प्रतिमां कृत्वा गुडमयीं शुभाम् । शुक्लपुष्पाभूतकिट्टिं च येन प्रसन्नं भवम् ॥

माहायणादीस्तद्वत्पञ्चपेक्षाभाष्यद्वयम् । विरिञ्चायोर्युग्मं च मनसायेति पैकश्चिम् ॥  
 स्वच्छोदगपेर्युदगमन्त्रायेत्युपेक्षितेः । मुखं पद्ममुप्रायेति बाह्वर्षेद्वयपञ्चये ॥ १३ ॥  
 सप्तपदात्मनेमोन्मिद्वर्षेद्वयपिण्डकम् । मन्त्रप्रभातेतत्पञ्चमप्राज्ञायायनिषेदयेत् ॥ १८ ॥  
 प्रकर्षं मोक्षपद्वयस्य स्वयं तु तत्पञ्चं चित्ता । मन्त्रा प्रदक्षिणं दद्याद्विमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥  
 मोक्षप्रदमन्त्रमगस्त्यायसंज्ञाकथितमहम् । हृदयेत्संज्ञोक्तानांयस्त्वानंनोऽभिधीयते ॥ २० ॥  
 मन्त्रेयिषिवाचपंमासिमासिसमाचरेत् । उपवासार्थापंमास्यामन्त्रयेदुग्राक्षमध्ययम् ॥  
 पञ्चमं च सन्दाह्य शर्षयां भूतने म्यपेक्ष । मन्त्रयोदशे मासि भूतधेनुसमन्वितम् ॥  
 शष्पाद्वयद्विरियापसर्षापस्कारसंयुताम् । प्रज्ञापञ्चकान्नंनृत्वासावित्रीरजतैस्तथा ॥  
 पञ्चमः कः शुद्धिकर्तासावित्रीमुपन्यस्यतु । पश्चैर्द्विजसप्तजान्कपूय्यमन्त्रयाविभूवणीः ॥  
 यक्षमापाद्विद्वत्प्राज्ञायायामित्युद्वारयेत् । हामंशुगलंस्त्रिजः कुर्याद्विद्वन्नामानिफोर्तयेत् ॥  
 गन्धेन खपिना तद्वत्प्रायसंन च धर्मयिन् । विष्टेभ्योऽथ धनं दद्यात्पुष्पमालां चशचितः ॥  
 यः कुर्याद्विधिनालेनपञ्चमास्यांस्त्रिषोऽपिवा । सप्तपापविनिर्मुक्तप्राप्नोतिप्रज्ञसात्प्यताम् ॥  
 एतेनैवरात्र्युदान्तोभाषणं प्रथमस्तुते । योऽद्यासस्मृत्रोविष्णुपूजनात्तन्माहेश्वरः ॥  
 पुत्रार्थो कामरूपेण स्मरेद्वयं फलमहम् । पयं भुत्वा चकाटसो दितिः स्वर्गमद्योषतः ॥  
 कश्यपायमाहस्यमाहस्यपण्यामुदा । चकारकर्मशाभूयोक्पल्लवप्यसंयुताम् ॥  
 पौष्टकं द्यामास सा तु यत्र परं वयम् । पुत्रं शत्रवधार्थाय समर्थं च महोजसम् ॥  
 एषामि महामानं सप्तमरनिदूतम् । उवाच कश्यपो वासुमिद्रहंताभूजितम् ॥  
 मशस्याम्यहमेतेनपिन्त्येतेनपिन्त्येतांशुमे । आपस्तंथांतुह्येष्टिपुत्रीयामद्यस्तुति ॥  
 पिपास्यामित्तांगमंस्तृदाहंनस्तनोशुमे । अयिष्यतिशुभोगमं दिविशक्रनिदूतः ॥  
 मापस्तंथीततभ्रष्टेपुत्रेष्टिदिनाधिकम् । इन्द्रशत्रोमयस्वेतिनुदावचहविस्तरम् ॥  
 देवाभ्यमुमुदुर्द्व्यामिमुखाश्चैवदानवाः । द्वित्यां गर्भमथाधत्त कश्यपः प्राह ताम्युनः ॥  
 मुखं ते चन्द्रप्रतिमं स्तनी पितृकलोष्मो । मघरी विद्रुमाकापी चर्षांघातीय शोमनः ॥  
 त्वां दृष्ट्वाहंविशालाक्षिविस्मयमिस्थिकांतनुम् । तदेवंगर्भः सुधोषिहस्तेनोत्तस्तनीतव ॥  
 त्वया यज्ञो विधातव्यो ह्यस्मिन्गर्भे यजनने । संवत्सर्यतं त्वेकमस्मिद्येव तपोयने ॥

॥ १ ॥ बंद मोक्षं गमिष्यावरधर्षिनि । नस्थातव्यं नः कथं वृक्षमूले पुंस्रदा ।  
 ॥ २ ॥ अत्रैव निविशे मुसलोत्सलं विपु । जलं च नावगाहेत शून्यागारं च व्रजेत् ।  
 ॥ ३ ॥ न तिष्ठेत्तत्रोद्विग्नमनामचेत् । न नखेन स्त्रिषेदुभूमां गारेन च भस्मनि ॥  
 ॥ ४ ॥ नुसरातिष्ठेदुभ्यायामं च विवर्जयेत् । नतुयांगारमस्मात्सिक्कपालेषु समाविशे  
 ॥ ५ ॥ न तोके गाशम्यंगंतयेव च । न मुक्तकेशीतिष्ठेत् नाशुचिः स्यात्प्रकथं च न ॥  
 ॥ ६ ॥ न तोचरोरनचैवाधः शिराः क्वचित् । न वस्त्रहीनानोद्विग्नानवाद्रं चरणासती ॥  
 ॥ ७ ॥ न चान्यं चरोराचं न च हास्याधिकामयेत् । कुर्याच्च गुरुमिर्निस्त्यं पूजां मांगल्यत्परा ॥  
 ॥ ८ ॥ न चोद्वेगं सुहेतुपारिणाशानमाचरेत् । कृतरक्षा तु शुधूपा वाचा पूजतत्परा ॥  
 ॥ ९ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ १० ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ ११ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ १२ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ १३ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ १४ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ १५ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ १६ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ १७ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ १८ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ १९ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ २० ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ २१ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ २२ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ २३ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ २४ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ २५ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ २६ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ २७ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ २८ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ २९ ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥  
 ॥ ३० ॥ न चोद्वेगं चरना भयं मियहिते रता । न गर्हयेच्च भर्तारं सर्वावस्यमपि क्वचित् ॥



आन्माह्वइत्युकारद्वंद्वो गर्भसंभवाः । मरुतोनामतेनाम्नामवंतुसुखमागिनः ॥ ६४ ।  
 प्रसाद्यदेवेशःक्षमस्येतिद्विर्तिपुनः । अर्घशाखंसमास्यायमयैतद्दुष्टंरुतम् ॥ ६५ ।  
 अमरुद्गणदेवैः समानममराधिपः । द्विर्तिविमानमारोप्यससुतामगमद्विवम् ॥ ६६ ।  
 मागभुजःसर्वं मरुतस्तेततोऽमचन । न जम्पुरेकमसुरै रतस्ते सुखलभाः ॥ ६७ ॥

भीष्म उवाच ।

देसर्गस्त्वयाब्रह्मन्कथितोविस्तरैरणमे । प्रतिसर्गश्चयोयेयामधिपांस्तान्यदस्यमे ॥ ६८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

यद्वामिपिकः सफलेऽपि राज्ये पृथुर्दरिष्यामधिपो यभूय ।  
 तर्षीपधीनामधिपश्चकार यज्ञवतानां तपसां च सोमम् ॥ ६९ ॥  
 नक्षत्रताराद्विजवृक्ष गुल्मलताचितानस्य अरुन्धमगर्भम् ।  
 अपामप्रीशं परुणं घनाज्ञां राक्षां प्रभुं धैर्यवर्णचतुर्व्रतम् ॥ ७० ॥  
 पिष्णुं रवीणामधिपंवसूनामग्निचलोफाधिपतिं चकार ।  
 प्रजापतीनामधिपं च दर्शं चकार शक्रं मरुतामर्षीशम् ॥ ७१ ॥  
 दैत्याधिपानामथ दानवानां प्रह्लादमीशं च यमं पितृणाम् ।  
 पिशाचरक्षःपशुभूतयक्षवेतालराजं ह्ययशूलपाणिम् ॥ ७२ ॥  
 प्रालेयशीलं च पतिं निरीणामीशं समुद्रं सरितामर्षीशम् ।  
 गैयर्बधिघाघरकिन्नराणामीशोपुनद्वित्रयं चकार ॥ ७३ ॥  
 नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश ।  
 दिग्धारणानामधिपं चकार गजेन्द्रमैरावणं नामधेयम् ॥ ७४ ॥  
 सुपर्णमीशं पततामघार्वतांराजानमुच्चैःश्रवसं चकार ।  
 सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च शूश्रुं पुनःसर्वेजनस्पृतीनाम् ॥ ७५ ॥  
 पितामहःपूर्वमथाम्यर्षिचदेतान्युनः सर्वदिशाधिनाथान् ।  
 पूर्वशदिक्पालमथाम्यर्षिचन्नाम्ना सुवर्माणमरातिहेतुम् ॥ ७६ ॥

ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शंसपदाभिधानम् ।  
 सफेनुमंतं दिगधीशमीशं चकार पञ्चाद्भुवनाङ्गमः ॥ ७७ ॥  
 हिरण्यरोमाणमुदन्दिगीशं प्रजापतिं मेघसुतं चकार ।  
 अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः सदा बहंतस्तु भुयोऽभिरक्षाम् ॥ ७८ ॥  
 चतुर्भिरेतैः पृथुनामधेयो नृपोऽभिषिक्तः प्रथमः पृथिव्याम् ।  
 गतेऽन्तरे चाक्षुपनामधेये वैवस्वतं चक्रुर्मि पृथिव्याम् ॥ ७९ ॥  
 गतेऽन्तरे चाक्षुपनामधेये वैवस्वताण्ये च पुनः प्रवृत्ते ।  
 प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य धभूष सुपान्यपजः सचिह्नः ॥ ८० ॥

पुलस्त्य उवाच ।

मन्वंतराणिसर्वाणिमनूनां चरितानि यत् । प्रमाणं चैव कल्पस्य तत्सृष्टिचसमासतः ॥ ८१ ॥  
 एकचित्तः प्रसन्नात्मा शृणु कौरव नन्दन । यामानामपुरादेवाभासन्स्वायं भुवांतरे ॥ ८२ ॥  
 सतैयश्च पयःपूर्वं येमरीच्यादयः स्मृताः । आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च विभुः सघनपथ च ॥ ८३ ॥  
 ज्योतिष्मान् धृतिमान् भव्यो मेघामेघातिथिर्वसुः । स्वायं भुवस्यास्य मनोर्वशीते वंशवर्द्धताः ॥ ८४ ॥  
 प्रतिसर्गमर्माहृत्पाज्जमुस्ते परमपदम् । एवं स्वायं भुवंप्रोक्तं स्वारोचिपमतः पथम् ॥ ८५ ॥  
 स्वारोचिपस्य तनयाश्चत्वारो देववर्द्धताः । नमोनमस्य प्रभृतिर्भावनः कीर्तिवर्द्धनः ॥ ८६ ॥  
 षत्तोऽग्निश्च यनस्तंभः प्राणः कश्यप एव च । अर्धाष्टहस्पतिश्चैव सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ॥ ८७ ॥  
 तदा देवाश्चतुर्पिताः स्मृताः स्वारोचिर्षेऽन्तरे । हवीन्द्रः सुरतो मूर्तिरपो ज्योतिरयः स्मृतः ॥ ८८ ॥  
 पक्षिष्ठस्य सुताः सप्त ये प्रजापतयस्तदा । द्वितीयमेतत्कथितं मन्वंतरमतः परम् ॥ ८९ ॥  
 अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि तथा मन्वंतरं शुभम् । मनुनामोत्तमिस्तत्प्रदशपुत्रानजीवन्तः ॥ ९० ॥  
 इषऊर्जस्तनूजश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च । मधुश्च माधवश्चैव नमस्योऽयनमस्तथा ॥ ९१ ॥  
 सहः सहस्यपतेषामुत्तमः कीर्तिवर्द्धनः । मानवस्तत्र देवाः स्युर्ऊर्जास्तसप्तर्षयः स्मृताः ॥ ९२ ॥  
 कौफमिण्डिः कुनुण्डश्च दान्ज्यः शङ्खः प्रवाहितः । मित्रश्च सन्मित्रश्चैव सप्ततैयोगवर्द्धनाः ॥ ९३ ॥  
 मन्वन्तरं चतुर्थं तु तामसं नाम विभुत्तम् । कपिपृस्थुः तथैवाग्निरक्षपिः कपिरेव च ॥ ९४ ॥  
 तथैव ब्रह्मपामानो मुनयः सप्तनामतः । साध्यादेव गजादे च कथिता तामसेऽन्तरे ॥ ९५ ॥

अकल्मषतपोधन्वी तपोमूलस्तपोधनः । तपोराशिस्तपस्यश्च सुतपस्यः परंतपः ॥६६॥  
 तामसस्यमुताः सर्वे दशवंशविचर्दनाः । पञ्चमस्यमनोस्तद्वैवतस्यांतरंष्टुणु ॥ ६७ ॥  
 देवबाहुः सुबाहुश्च पर्यन्यः समयोमुनिः । हिरण्यरोमासप्तारुः सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥  
 देवाश्च भूतजसस्तथाप्रकृतयः स्मृताः । अवशस्तत्त्वदर्शी च धीतिमान्द्रव्यपः कपिः ॥६८॥  
 मुक्तो निरुत्सुकः सत्त्वो निर्माहो यः प्रकाशकः । धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रेवतात्मजाः ॥६९॥  
 भृगुः सुधामा पिरजस्स हिष्णुर्नारदस्तथा । विद्यस्यान्कृतिनामा च सप्तसप्तर्षयोऽपरे ॥  
 बाहूपस्यांतरैरेव लेखानाम् परिश्रुताः । विप्रबोऽथ पृथक् चानुकीर्तितास्त्रिदिवीकसः ॥  
 बाहूपस्यांतरे प्राप्ते देवानां पंचमोजनः । रुद्रप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश ॥ १०३ ॥  
 गोकाः स्यायम्भुवे पंडे ये मया पूर्यमेव ते । अन्तरं चाक्षुषं चैव मया ते परिकीर्तितम् ॥ १०४ ॥  
 उत्तमं च प्रवक्ष्यामि पद्विषत्त्वमुच्यते । अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा ॥  
 गार्हजस्तथा योगी विश्वामित्रः प्रतापवान् । जमदग्निश्च सप्तैते सांप्रतं ते महर्षयः ॥ १०६ ॥  
 त्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम् । सावर्ण्यस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्भाषितयांतरे ॥  
 श्वत्थामा शरणाश्च कौशिको गालवस्तथा । शतानन्दः काश्यपश्च रामश्च ऋषयः स्मृताः ॥  
 त्रिवर्षीयान्ययसुः सुषर्णो धृतिरेव च । हरिष्णुर्वार्यः सुमतिर्वसुश्च कधीर्मघान् ॥  
 विष्यत्यार्कसावर्णेर्मनोः पुत्राः प्रकीर्तिताः । रौच्यादयस्तथान्येपि मनघः संप्रकीर्तिताः ॥  
 वेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम भविष्यति । मनुभूतिस्तु तत्तद्वैवृत्यो नाम भविष्यति ॥  
 तत्तत्सुमेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुः स्मृतः । ऋभुश्च सुतधामा च विष्यत्सेनो मनुस्तथा ॥  
 भर्वा तानागताश्चैव मनवः परिकीर्तिताः । वर्षाणां युगसाहस्रमेभिष्यातं नराधिप ॥ ११३ ॥  
 स्वेस्वेऽन्तरे सर्षमिर्दसमुत्पाद्य चराचरम् । कश्यपश्चेति वृत्ते तु मुच्यते प्रत्यक्षा सह ॥  
 भर्मा युगसाहस्रान्ते विनश्यन्ति पुनः पुनः । ब्रह्माद्या विष्णुसायुज्यंततो यास्यंति येनृप ॥

इति धीपाद्यपुराणे प्रथमे खण्डे मन्वंतरवर्णनं नाम

सप्तमोऽध्यायः ।

ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शंसपदामिधानम् ।  
 सकेतुमंतं दिगधीशमीशं चकार पश्चादुवनाङ्गमः ॥ ७७ ॥  
 हिरण्यरोमाणमुदन्दिगीशं प्रजापतिं मेघसुतं चकार ।  
 अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः सदा बहंतस्तुं भुवोऽमिह्याम् ॥ ७८ ॥  
 चतुर्भिरैतैः पृथुनामधेयो नृपोऽमिषिक्तः प्रथमः पृथिव्याम् ।  
 गतेऽन्तरे चाक्षुपनामधेये वैवस्वतं चक्रुर्मिं पृथिव्याम् ॥ ७९ ॥  
 गतेऽन्तरे चाक्षुपनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते ।  
 प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य बभूव सूर्यान्वयजः सविहः ॥ ८० ॥

पुलस्त्य उवाच ।

मन्यंतराणिसर्वाणि भूनां चरितानियत् । प्रमाणं चैव कल्पस्य तत्सृष्टिच समासतः ॥ ८१ ॥  
 एकचित्तः प्रसन्नात्मा शृणु फौरचनंदन । यामानामपुरादेवाभासत्स्वायं भुवोऽन्तरे ॥ ८२ ॥  
 सत्तैव भूतपयः पूर्वं ये मरीच्यादयः स्मृताः । आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च विभुः सधनपव च ॥ ८३ ॥  
 ज्योतिष्मान्दधुतिमान्मन्व्यो मेघामेधातिथिर्यसुः । स्वायं भुवस्यास्य मनोर्दशीते वंशवर्द्धना ॥ ८४ ॥  
 प्रतिसर्गममीदृष्ट्या जगमुस्ते परमं पदम् । एवं स्वायं भुवं प्रोक्तं स्वारोचिपमतः परम् ॥ ८५ ॥  
 स्वारोचिपस्य तनयाश्चत्वारो देववर्चसः । नमोनमस्य प्रभृतिर्माधनः कीर्तिवर्द्धनः ॥ ८६ ॥  
 षष्ठोऽग्निश्च्यवनस्तंभः प्राणः कश्यपपव च । अर्वाबृहस्पतिश्चैव सप्तसप्तत्ययोऽभय ॥ ८७ ॥  
 तदा देवाश्चतुर्विधाः स्मृताः स्वारोचिपेऽन्तरे । हवींश्च सुहृतो मूर्तिरापो ज्योतिरयः स्मृतः ॥ ८८ ॥  
 पक्षिष्ठस्य सुताः सप्त ये प्रजापतयस्तथा । द्वितीयमेतत्कथितं मन्यंतं परतः परम् ॥ ८९ ॥  
 अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि तथा मन्यन्तरं शुभम् । भूनामोत्तमिस्तत्प्रदशपुत्रानजीवन्त ॥ ९० ॥  
 इषज्जस्तनूजश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च । मधुश्च माधवश्चैव नमस्योऽयनमस्तथा ॥ ९१ ॥  
 सहः सहस्यपतेषामुत्तमः कीर्तिवर्द्धनः । मानवस्तत्प्रदेयाः स्युर्ज्जास्तस्यैव स्मृताः ॥ ९२ ॥  
 फौफमिण्डिः कुतुण्डश्च दान्म्यः शङ्खः प्रवाहितः । मिथिश्च संमितिश्चैव सत्तैव योगवर्द्धना ॥ ९३ ॥  
 मन्यन्तरं चतुर्थं तु तामसं नाम विधुत्तम् । कपिपृथुः तथैवाग्निरकपिः कपिरेव च ॥ ९४ ॥  
 तथैव अन्यधामानो मुनयः सप्तनामतः । साध्यादेव गणाये च कथितातामसेऽन्तरे ॥ ९५ ॥

नन्वालोप्यो ततो मूत्रमग्राधनः । ततो रजिस्तम्यश्च सुतस्यः परंतपः ॥ १६६ ॥  
 मन्वस्यमुपाः सर्वे दशवंशविषयनाः । पञ्चमस्य मनोस्तु त्रैपत्यतर्कटण्ड ॥ १७ ॥  
 रेवतुः पुषादुध पश्यन्त्यः समयो मुनिः । द्विष्य गोमातृजाभ्यः समन्ते ज्ञयः स्मृताः ॥  
 रोमादुत्तरात्सप्तपादहनः स्मृताः । भवशस्त्रधर्यो नृपतिमान्दृष्टः कपिः ॥ १८ ॥  
 पुत्रो मित्रतुल्यः सत्पोनिर्मोहोऽप्रकाशकः । धर्मवर्षकरोपेनाद्देशेन रेयनात्मजाः ॥ १९ ॥  
 पुषु पुषामापि त्रस्य द्विष्यन्तर्गदस्तथा । विषम्यान्तर्निनामा न सप्तसप्तर्षयोऽपरे ॥  
 बाधुस्त्यान्तरे देवाः स्येष्टानाम् पतिभूताः । विषयोऽगृह्य क्वानुकीर्तितस्त्रिदिव्योक्तः ॥  
 काहस्त्यान्तरे जाते देवानोपचमोजनः । सप्तभुजस्तपस्व्याश्च धूम्रस्य सुता दश ॥ २० ॥  
 गोत्रः स्यादभ्युपे पदो ये मया पूर्वमेवने । अन्तरंगाभ्युपेय मयानेपरि कीर्तिन् ॥ २१ ॥  
 वरुणं च मया स्थापितं यद्विषयस्त्वमुच्यते । भद्रिचं पयसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा ॥  
 नाद्वैतस्तथा योगी विद्वामित्रः प्रजापवान् । जमदग्निश्च समन्ते सां प्रवर्तते महर्षयः ॥ २२ ॥  
 ज्ञाया धर्मव्यपस्थानं मयान्ति परमं पदम् । सायणस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्भाषितयांतम् ॥  
 मया यामागृह्याश्च कौशिको गान्धर्वस्तथा । शतानन्दः काश्यपश्च रामश्च शूद्रयः स्मृताः ॥  
 तिरिर्विद्यान्वयपुः पुषर्षो भूतिरेव च । परिष्णुर्वायः सुमतिर्वसुधुनश्च वीर्यवान् ॥  
 विष्वम्पाकं सायणं मे मनोः पुत्राः प्रकीर्तिताः । रोच्यदयस्तथान्येपि मनवः संमकीर्तिताः ॥  
 ज्ञेः प्रजापतेः पुत्रो रोच्यो नाम भविष्यति । अनुभूतिमुत्तमस्तु द्वौ तपो नाम मपिष्यति ॥  
 तत्र तु मेखावर्णिमं दृष्टुं नुमन्तुः स्मृतः । श्रुधुश्च सुतुषामा च विष्वक्सेनो मनुस्तथा ॥  
 मर्जानामग्राध्वैव मनवः परिकीर्तिताः । वराणां युगसाहस्रमेभिष्यांस्तनराधिप ॥ २३ ॥  
 स्येत्वेऽन्तरे तर्पमिदं सुमुत्पाद्य चरन्तम् । कल्याणयेनि धृत्तेतुमुच्यते प्रज्ञापासह ॥  
 मर्मायुगसहस्रान्ते पितृयन्ति पुनः पुनः । प्रज्ञाया विष्णुसायुज्यं ततो यास्यंति चैव नृप ॥

इति धापाप्रपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे मन्वंतरवर्णनं नाम  
 सप्तमोऽध्यायः ।





नारीमुत्पादयामासस्वशरीरादर्निदिताम् । त्वाष्ट्रीस्वरूपरूपेणनाम्ना छायेति माम्नि ।  
 किंकरोमीतिपुरतः संस्थितांतामभाषत । छाये त्वं भञ्ज मर्तारंमदीयंतंवरानने ॥ ४१ ॥  
 अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय । तथेत्युक्त्वा च सा देवमगात्कामाय सुव्रता ।  
 कामयामासदेवोऽपिसंज्ञेयमितिचादरात् । जनयामाससार्वर्णिमनुमनुस्वरूपिणम् ॥  
 सवर्णत्वाच्च सार्वर्णे मनोर्वैवस्वतस्य तु । ततःसुतांचतपतीं त्वाष्ट्रीं चैवकमेणतु ॥  
 छायायांजनयामाससंज्ञेयमितिमास्करः । छायास्वपुत्रेत्वधिकंस्नेहचक्रेमनोऽहम् ॥  
 नचक्षमेमनुःपूर्वस्तथमःक्रोधमूर्छितः । संतर्जयामासतदापादमुत्क्षिप्यदक्षिणम् ॥  
 शशापचयमंछायाभयतुकिमिसंयुतः । पादोऽयमेकोभवितापूयशोणितविक्षयः ॥  
 निवेदयामासपितुर्यमःशाफेनधर्पितः । निष्कारणमहंशतोमात्रादेवसकोपया ॥ ४८ ॥  
 यालभायान्मयाकिंचिदुद्यतध्वरणःसहृत् । मनुनावार्यमाणापिममशापमदाक्षिभो ॥  
 प्रायोनमातासास्माकमसमास्नेहतोयतः । देवोप्याह्वयमंभूयःकिंकरोमिमहामते ॥  
 सौख्यात्कस्यननुःखंस्यादथयाकर्मसंततिः । अनिवार्याभयस्यापिकाफयान्येपुजंतुषु ॥  
 कृकवाकुस्तचपदेसकिर्मिभक्षयिष्यति । खंजं च रुचिरं चैवपादमेतद्विष्यति ॥  
 पयमुक्तःसमाश्वस्तस्तपस्तीर्थचकारह । यैराग्यात्पुष्करतीर्थफलफेनानिनाशनः ॥  
 पितामहंसमाराध्ययावद्भर्गयुतंपुनः । तपःप्रभावादेवेशःसंतुष्टःपद्मसंभयः ॥ ५४ ॥  
 पद्मेसलोकपालश्चंपितृलोकंतयाक्षयम् । धर्माधर्मात्मफस्यास्यजगतस्तुपरीक्षणम् ॥  
 पद्मंसलोकपालश्चमगमत्पद्मसंभवात् । पितृणामाधिपत्वंधर्माधर्मस्यचानघ ॥  
 पियस्वानयतग्धात्यासंज्ञायाःकर्मचेष्टितम् । त्वष्टुःसमीपमगमदावचक्षेसरोपवान् ॥  
 तमुवाचततस्पृष्टासांत्यपूर्वमिदंयवः । तवासहंती भगवंस्तेजस्तीर्थं तमोनुद ॥  
 यद्वारूपमास्थायमत्सकाशमिहागता । निवारितामयासाचत्यद्वयेनदियस्यते ॥  
 यस्माद्विज्ञातमनामत्सकाशमिहागता । तस्मान्मदीयंभवनंप्रवेष्टुंनतयार्हति ॥

। यद्वारूपमास्थायभूतलेसंप्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

। अपनेप्यामितेतैजःहृत्पायन्नेदियाकम् ॥ ६२ ॥

। तथेत्युक्तःसरविणाश्रमेहृत्पादियाकम् ॥ ६३ ॥



वृषश्चकार तेजश्चक्रं विष्णोः प्रकल्पयत् । त्रिशूलं चापि हस्तस्य बज्रमिन्द्रस्य चापम् ॥  
 दैत्यदानवसंहन्तुं सहस्रकिरणात्मकम् । रूपं चाप्रतिमं चन्द्रे वष्टापद्रुमामृते महत् ॥ ६५ ॥  
 अथाकचतद्द्रष्टुं पादरूपं रवेः पुनः । अद्यापि च ततः पार्श्वेन कश्चित्कारयेत्कचित् ॥ ६६ ॥  
 यः करोति स पापिष्ठोगतिमाप्नोति निर्दिताम् । कुष्ठरोगमवाप्नोति लोके स्मिन्दुः खसंक्षितः ॥  
 तस्याध्वर्मकामार्थोचिन्नेऽप्यायतनेषु च । न कश्चित्कारयेत्पार्श्वे देवदेवस्थर्धामतः ॥ ६८ ॥  
 ततः स भगवान्गत्याभूलोऽकाममवाधिपः । कामयामास कामातोऽमुष्यदिव्यकरः ॥ ६९ ॥  
 अथरूपेण महता तेजसा च समन्वितः । संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद्वयबिह्वला ॥ ७० ॥  
 नासापुटान्मामुत्खृष्टं परोऽयमिति शंकया । तस्याधरे तसो ज्ञाता वशिषनायितिनः धृतम् ॥  
 दक्षो धृतित्वा त्संजातो नासत्यो नासिकाग्रतः । हात्वा चिराच्च तद्देवं संतोषमगमत्पम् ॥  
 विमानेनागमत्सर्गपत्न्या सह मुदाम्बितः । सावर्ण्योऽपि मनुर्मेरायद्यापितपतेतपः ॥ ७३ ॥  
 शनिस्तपो यलाद्यापि महानां समतांगतः । यमुना तपती चैव पुनर्नद्यौ यभूयतुः ॥ ७४ ॥  
 विष्टिर्षोऽपरिमका तद्भक्त्या लब्धेन व्यवस्थिता । मर्नो वै धस्यत स्यादपि शत्रुनामहायकाः ॥ ७५ ॥  
 इत्युत्प्रथमस्तेषां पुष्टेऽप्यासमकल्पि यः । इत्याहुः कुशनाभश्च मरिचो बृहस्पतिश्च ॥ ७६ ॥  
 नरिण्यतः करुणश्चर्यातिशयमहाबलः । वृषधध्याधनाभागः सर्वे ते दिव्यमानुषाः ॥ ७७ ॥  
 मभिषिच्य मनुः पूर्वमिलं पुत्रं सधार्मिकम् । जगाम तपसंभूयः पुष्करं सतपो यनम् ॥ ७८ ॥  
 मया जगाम सिध्यर्थं तस्य प्रह्लादश्च यद्वदः । वरं परममर्दं ते मातयेयं यथेप्सितं ॥ ७९ ॥  
 इवाच स तदा देवं प्रज्ञां पद्मं विभुम् । यदीमेधनं संगुह्यः पृथिव्यां सर्वपाधिपाः ॥ ८० ॥  
 सर्वे युरीश्वराः स्यामिन्द्रसादास्यकंजज । तथेत्युक्त्वा तु देवेशस्तत्रैषां तर्पयत् ॥ ८१ ॥  
 श्रोऽप्योऽध्यांसमागत्य समतिष्ठ पथापुरा । भयं कदा रथाकट इदो निजमुतो मनोः ॥ ८२ ॥  
 नेजं गामार्थं सिध्यर्थं मित्रप्रार्थामहीमिमाम् । समनर्द्धाणि न स पांनिस्माभूतः सन् सत्साधयन् ॥  
 गामोपयन् शंभोरपाहृष्टः प्रतापवान् । कल्पद्रुमलताकीर्णनाम्राखणं नन्दन् ॥ ८४ ॥  
 मनेयत्र देवेशः सोमः सोमार्द्ररोधरः । उमपा समयस्तत्र पुनः शरपणेरुतः ॥ ८५ ॥  
 रामसंघं यत्किंचिद्भागमिष्यति नो यनम् । र्हीत्व मेऽप्यतिस्तस्य दंशयोऽनमं इते ॥ ८६ ॥  
 कातसमयोऽत्राहः शरपणं गतः । र्हीत्वं जगाम स हसाय दपात्सोऽनपत्सपाम् ॥ ८७ ॥

पुरुषत्वेकृतंसर्वस्त्रीकायेविस्मृतंततः । इलेतिसमवधारीपीनोन्नतघनस्त्नी ॥ ८८ ॥  
 उन्नतधोणिजघनापद्मप्रायतेक्षणा । पूर्णेन्दुचदनातन्वीविलासिन्यासितेक्षणा ॥ ८९ ॥  
 पीनोन्नताप्यतभुजानीलकुञ्चितमूर्द्धजा । तनुलोमासुचदनामृदुगद्गदभाषिणी ॥ ९० ॥  
 श्यामागौरेणवर्णेनतनुताघ्ननखांकुरा । कामुकभ्रूयुगोपेताहंसावरणगामिनी ॥ ९१ ॥  
 भ्रममाणायने तस्मिन्चित्तयामासभामिनी । कोमेपितावास्रातावाकोमेत्राताभवेदिह ॥ ९२ ॥  
 फल्यभक्तुंखंदत्ताकियद्वर्पास्मिभूतले । चित्तयन्तीचदहरोसोमपुत्रेणसाङ्गना ॥ ९३ ॥  
 इलारूपसमाक्षितमनसापर्यर्णिनी । बुधस्तदाशयेयत्नमकपोत्कामपीडितः ॥ ९४ ॥  
 विशिष्टाकारान्मुञ्जीसकमंडलुपुस्तकः । वेणुर्दंडकृतावेशः पवित्रकलनित्रकः ॥ ९५ ॥  
 द्विजरूपःशिखीग्रहानिगदन्कर्णकुण्डली । द्युमिश्वायिर्मियुक्तःसमित्पुष्पकुशोदकैः ॥ ९६ ॥  
 कालेन्यप्यांततस्तस्मिन्नाजुहावसतामिलाम् । यहिर्मनस्यांतस्तिःकिलपादपदपे ॥ ९७ ॥  
 ससंभ्रममफस्माच्चसोपालंभमियामवत् । त्यक्त्याग्निहोत्रशुभ्रपांक्षातामंदिरान्मम ॥ ९८ ॥  
 इयंविहारवेलातेभक्तिकामतिसांप्रतम् । पल्लोद्विष्टसुधोणिसंघातादेनहेतुना ॥ ९९ ॥  
 इयं सायंतनी विलाविहारस्येहवर्तते । कृत्योपलेपनं पुष्पैरलंकुरं गृहं मम ॥ १०० ॥  
 साग्रधीद्विस्मृताहंचसर्वमेयतपोधन । आत्मानंत्यांचभर्तारं कुलं चयदमेऽनघ ॥ १०१ ॥  
 बुधःप्रोवाचतांतन्वीमिलात्वंपर्यर्णिनि । अहंचकामुफोनामयन्नुविद्योबुधःस्मृतः ॥ १०२ ॥  
 तेजस्विनःकुलेजातःपितामेद्राह्याणाधिपः । इतिसातस्ययचनात्प्रपिष्टाबुधमदिष्म् ॥ १०३ ॥  
 रत्नस्तंभसमाकीर्णंदिव्यमायायिनिर्मितम् । इलारुतायंमातृजनंमेनेतद्रूपनेस्थिता ॥ १०४ ॥  
 अहोवृत्तमहोरूपमहोधनमहोकुलम् । ममचास्यचभक्तुंर्वाअहोलाघप्यमुत्तमम् ॥ १०५ ॥  
 रेमे च सा तेन सममतिकालमिलावने । सर्वभोगमयोगेहयथैद्रभषने तथा ॥ १०६ ॥  
 अधान्यिष्यंतोराजानंघ्रातरस्तस्यमानयाः । इक्ष्वाकुप्रमुखाजमुस्तदाशरण्यातिवम् ॥ १०७ ॥  
 ततस्तेदद्गुःशर्येचडवामप्रतःस्थिताम् । रत्नपर्यंतफिरणदीप्यमानामनुत्तमाम् ॥ १०८ ॥  
 संप्राप्यप्रत्यभिज्ञानात्सर्वेधिस्मयमागताः । अयंचंद्रप्रभोनामचाजीतस्य महात्मनः ॥ १०९ ॥  
 अगमद्वयारूपमुत्तमंकेनहेतुनाः । ततस्नुमैत्रायर्णिपप्रच्युःस्यपुरोहितम् ॥ ११० ॥  
 किमेतदित्यभूषित्रंपदयोगविदांवर । पसिष्ठोप्यर्घ्यात्सर्वेन्द्रज्ञातंभ्यानचधुरा ॥ १११ ॥

समयशंभुदयिताहृतःशत्वणेपुरा । यःपुमान्प्रविशेद्याप्रसनादित्वमवाप्स्यति ॥ ११२ ॥  
यमश्चोऽपिनारीत्यमगाद्वासाद्वैवतु । इलःपुरुषतामेतियथासौधनदोषमः ॥ ११३ ॥  
तथैषन्नःकर्त्तव्यभाराध्यचपिनाकिनम् । ततस्तेमानवाज्जमुर्षत्रदेवोमहेस्वत् ॥ ११४ ॥  
तुष्टुर्विविधैः स्तोत्रैःपार्वतीपद्मेश्वरी । तावूचनुरलं चैष समयः किनुसाम्रतम् ॥ ११५ ॥  
इत्याकोरश्वमेधेनयत्फलंस्यात्तदापयोः । इत्याकिपुरुषोर्षात्समविष्यत्यसंशयम् ॥ ११६ ॥  
तथेत्युक्त्वानुतेसर्गेजामुर्वैद्यस्यतात्मजाः । इष्टाश्वमेधेनतत्तत्फलंकिपुरुषोऽभयत् ॥ ११७ ॥  
मासमेकंपुमान्प्रीतःस्त्रीत्वंमासमभूत्पुनः । युधस्यभयनेतिष्ठत्रिलोमर्मधरोऽभयत् ॥ ११८ ॥  
अजीजनत्पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम् । युध उत्पाद्य तं पूर्वसंस्पर्गमगमत्पुनः ॥ ११९ ॥  
इत्यनान्नातद्वर्षमिलावृत्तमभूत्तदा । सोमार्कयंशजोराजाइलंऽभून्नरपर्दनः ॥ १२० ॥  
एषंपुकरयाःपूरोरभयद्वंशवर्दनः । इक्ष्वाकुरर्कयंशस्यतथैवोक्तानरेष्वय ॥ १२१ ॥  
इतःपिपुरुषत्वेचतुपुम्नइतिचोच्यते । पुनःपुत्रत्रयमभूत्तुपुम्नस्यापयजितम् ॥ १२२ ॥  
इत्तलोऽधमयस्तद्वद्वरिताश्वधर्म्यंयान् । उत्कलस्यांत्फलानामगमस्यनुगयापुरी ॥ १२३ ॥  
इतिश्वस्यद्विग्याम्यासंज्ञाताकुर्मिःसह । प्रतिष्ठानोऽभिपिच्यथसपुकरपसंमुत्तम् ॥ १२४ ॥  
तामेलावृत्तंभोक्तुंदिष्यंयंफलमानः । इक्ष्वाकुर्यैष्ठ्यायादौमध्यदेशमपातयान् ॥ १२५ ॥  
रिष्यंतस्यपुत्रोऽभूच्छुकोनामहाबलः नाभमादंयरीपस्तुभूरस्यनुमुत्तत्रयम् ॥ १२६ ॥  
इत्येतुःस्वधर्माधोरणधूरधर्म्यंयान् । भानतौनामशयांतेःमुक्त्वाचैषशरिका ॥ १२७ ॥  
गानतस्यानयत्पुत्रोरोचमानःप्रतापयान् । भानतौनामदेशोऽभून्नरीचतुशस्थली ॥ १२८ ॥  
चिमानस्यरेपोऽभूद्देपाद्रैयतपयच । ककुद्वाचापरनामश्वेष्टपुत्रस्तस्यच ॥ १२९ ॥  
पर्वतस्यसाकन्त्याभार्यारामस्यविधुता । ककराघैषकारुपाचदपःप्रथिताभुषि ॥ १३० ॥  
अथोगोवधानूद्रोऽगुस्त्रापादजायत । इक्ष्वाकुपुत्रानाम्नाधयिदुक्षिनिमिदंइकाः ॥ १३१ ॥  
इतःपुत्रस्तस्यासन्त्यंशमपातस्तुताः । मेरोरुत्तस्तस्तेनुजात्यगार्धिपुत्रसमाः ॥ १३२ ॥  
त्वापिचतथाशान्वेशतमध्येचयेऽभयन् । मेरोरुक्षिणतद्वेपराजानस्तेप्रकीर्तिताः ॥ १३३ ॥  
ग्रात्कुरुत्स्थनामानूत्तुतस्तस्यतुयोधनः । तस्यपुत्रःपृथुर्नामपितृस्तस्यपृथोःमुत्तः ॥ १३४ ॥  
इतस्तस्यपुत्रोऽभूत्पुयनाश्वस्ततोऽभयत् । युपनादश्वस्तपुत्रोऽभूत्पयस्तोनामर्षीयंयान् ॥ १३५ ॥

निर्मितायेनशावस्तीह्यंगदेशेनराधिप । शावस्तादृष्टदृष्टोऽभूत्कुबलाश्वस्ततोऽभवत् ॥  
 धुंधुमारत्यमगमधुंधुं हत्वाऽसुरंपुर । तस्यपुत्राद्ययोजातादृष्टाश्वोघुणिरेव ॥ १२७ ॥  
 कपिलाश्वश्चविख्यातोधौधुमादिप्रतापवान् । दृष्टाश्वस्यप्रमोदस्तुहर्षश्वस्तस्यचात्मजः  
 हर्षश्वस्यनिकुंभोऽभूत्संहताश्वस्ततोभवत् । अहताश्वोरणाश्वश्चसंहताश्वसुताबुभौ ॥  
 युधनाश्वोरणाश्वस्यमांधातावततोऽभवत् । मांधातुःपुष्कुत्सोभूदर्मसेतुधर्पाधिकः ॥  
 मुचुकुन्दश्चविख्यातश्चक्रमित्रःप्रतापवान् । पुष्कुत्सस्यपुत्रोऽभूद्दुःसहो नर्मदापतिः ॥  
 समूतिस्तस्यपुत्रोऽभूत्त्रिधन्यावततोऽभवत् । त्रिधन्यनःसुतोजातश्चाप्यारुणहतिस्मृतः ॥  
 तस्यसत्यव्रतोनाम तस्मात्सत्यरथःस्मृतः । तस्यपुत्रोहरिश्चिन्द्रोहरिश्चंद्राद्यरोहितः ॥  
 रोहिताचवृकोजातोवृकाद्वानुरजायत । सगरस्तस्यपुत्रोऽभूद्वाजापरमधार्मिकः ॥ १४४ ॥  
 द्वेभार्येसगरस्यापिप्रभाभानुमतीतथा । ताभ्यामापयितःपूर्वमौर्धाम्निःपुत्रकाम्यया ॥ १४५ ॥  
 और्वस्तुष्टयोःप्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम् । एकापृष्टिसहस्राणिसुतमेकंतथापरा ॥ १४६ ॥  
 अगृह्णादंशकर्तारंप्रभाऽगृह्णाद्वन्सुतान् । एकंभानुमतीपुत्रमगृह्णादसमंजसम् ॥ १४७ ॥  
 ततःपृष्टिसहस्राणिसुपुयेयादवीप्रभा । खनंतःपृषिर्वीदग्धाविष्णुनायेश्वरगर्गे ॥ १४८ ॥  
 असमंजस्तुतनयोहंशुमात्रामविध्रुतः । तस्यपुत्रोदिलीपस्तुदिलीपानुभगीरथः ॥ १४९ ॥  
 येनभागीरथीगङ्गातपःकृत्वावतारिता । भगीरथस्यतनयोनाभागहतिविध्रुतः ॥ १५० ॥  
 नाभागस्यायरीपोऽभूर्तिस्सपुत्रीपस्ततोऽभवत् । तस्यायुतायुःपुत्रोऽभूद्भुतपर्णस्ततोऽभवत्  
 तस्यकल्माषपादस्तुसर्वकर्माततःस्मृतः । तस्यानरण्यःपुत्रोऽभून्निप्रस्तस्यसुतोभवत् ॥  
 निप्रपुत्राद्युभौजातावनमिश्ररघूत्तमौ । अनमित्रोयनमगादरिनाशहतेनृप ॥ १५३ ॥  
 रघोरभूर्दिलीपस्तुदिलीपाद्याप्यजस्तथा । दीर्घबाहुरजाज्ञातःप्रजापालस्ततोऽभवत् ॥  
 ततोदशरथोजातस्तस्यपुत्रचतुष्टयम् । नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तस्याप्रजोऽभवत् ॥  
 रावणांतरुस्तद्वद्रघूणावंशवर्दनः । चाल्मीकिर्यस्यचरितंचकेमार्गयसत्तमः ॥ १५६ ॥  
 तस्यपुत्रःकुशोनामाश्वाकुशुलवर्दनः । अतिथिस्तुपुत्राज्ञातोनिधस्तस्यचात्मजः ॥  
 नलस्तुनिरथाज्ञातोनास्तस्मादजायत । नमसःपुंडरीकोऽभूद्भेमधन्याततःपत्न्य ॥  
 अर्हीनगुस्तस्यसुतःसहस्राद्यस्ततःपत्न्य ॥

तत्स्वन्द्रावलोकस्तुतारापीडस्ततोऽभवत् । तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिश्चन्द्रस्तस्यसुतोऽभवत्  
 धुतायुरभयस्तस्माद्वास्तेयोनिपातितः । नल्योद्भावेवविख्यातीवंशेयस्यविशेषतः ॥ १६१ ॥  
 धारसेनसुतस्तद्वैपथ्यधश्चनराधिपः । एते विवस्वतो वंशे राजानोभूयिदक्षिणाः १६२ ॥  
 इक्ष्वाकुवंशप्रभयाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥ १६३ ॥  
 इतिथीपादपुराणेप्रथमेखण्डेआदित्यवंशकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः

### पितृवंशानुचरितम् ।

भाष्य उवाच ।

नगवन्धोतुमिच्छामिपितृणांवंशमुत्तमम् । रवेध्वाद्देवस्यसोमस्यचविशेषतः ॥ १ ॥  
 पुलस्त्य उवाच ।

इतैकैकयिष्यामिपितृणांवंशमुत्तमम् । स्वर्गेपितृगणाः सप्तत्रयस्तेषाममूर्त्यः ॥ २ ॥  
 मूर्तिर्मतोऽथचत्वारः सर्वेषाममितीजसाम् । अमूर्त्यः पितृगणावैराजस्यप्रजापतेः ॥ ३ ॥  
 यजन्तियान्देवगणावैराजा इतिविधुताः । येवैतेयोगविघ्नघाः प्रापुर्लोकान्सनातनान् ॥ ४ ॥  
 पुनर्ब्रह्मदिनांते तु जायन्तेब्रह्मवादिनः । संप्राप्य तां स्मृतिंभूयोयोगंसांख्यमनुत्तमम् ॥ ५ ॥  
 सिद्धिं प्रयातिर्योगेनपुनरावृत्तिदुर्लभाम् । योगिनामेवदेयानितस्माच्छाद्धानिवातुभिः ॥ ६ ॥  
 एतेषामानसीकन्यापत्नीहिमयतोमता । मीनाकस्तस्यद्यादः क्रीचस्तस्यसुतोऽभवत् ॥ ७ ॥  
 क्रीचद्वीपः स्मृतो येन चतुर्थो धृतसंयुतः । मेना तु मुपुयेतिघ्नः कन्यायोगयतीस्ततः ॥ ८ ॥  
 उर्मैकपर्णा पर्णा च तीव्रव्रतपरायणाः । रुद्रस्यैकाभृगोश्चैका जैर्गीक्यस्यचापरा ॥ ९ ॥  
 दत्ता हिमयता बालाः सर्वलोकतपोऽधिकाः । पितृणांलोकसंगीतं कथयामिऽष्टुप्यतम् ॥ १० ॥  
 लोकाः सोमपथा नाम यत्र मारीचनन्दनाः । घर्त्ततेयेनपतिगोयान्देवाभाषयन्त्यलम् ॥ ११ ॥  
 अग्निप्याचा इतिख्यातायं ज्वानो यत्र संस्थिताः । बन्द्योदानामतेषां तु कन्याभूद्रवर्णिनी ॥ १२ ॥

अच्छोदंचसरस्तत्रपितृभिर्निर्मितंपुरा । अच्छोदायतपश्चक्रेदिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ १३ ॥  
 आजगमुःपितरस्तुष्टादास्यन्तःकिलतेवरम् । दिव्यरूपधराःसर्वेदिव्यमाह्वानुलेपनाः ॥ १४ ॥  
 सर्वे प्रधाना बलिनःकुसुमायुधसन्निभाः । तन्मध्येऽमावसुंनामपितरंवीक्ष्यसांगना ॥ १५ ॥  
 यद्वेवराधिनीसंगंकुसुमायुधपीडिता । योगादुन्नतुसातेनव्यभिचारेणभामिनी ॥ १६ ॥  
 धरात्रस्पृशते पूर्वं प्रयाताथ भुवस्तले । तथैवामावसुर्योऽयमिच्छांचक्रेनतांप्रति ॥ १७ ॥  
 धैर्येणतस्यसालोकेभमायास्येतिविधुता । पितृणांबलुभायस्माद्वत्स्याक्षयकारिका ॥ १८ ॥  
 अच्छोदाधोमुखीदीनालज्जितातपसःश्रयात् । सापितृन्यार्थंयामासपुनरात्मसमृद्धये ॥ १९ ॥  
 विलज्जमानापितृभिर्बिम्बमुक्तातपस्यिनी । भविष्यमथचालोक्यदेवकार्यंचतेतदा ॥ २० ॥  
 इदमुचुर्महाभागाः प्रसादशुभयागिरा । दिशि दिव्यशरीरेण यत्किंचित्क्रियतेदुषैः ॥ २१ ॥  
 तेनैव तत्कमफलं भुज्यते वरवर्णिनि ॥ सद्यःफलंति कर्माणि देवत्ये प्रेत्य मानुषे ॥ २२ ॥  
 तस्मात्त्वंसुहृतंहृत्वाप्राप्स्यसेप्रेत्ययत्फलम् । अष्टाविंशेभवित्रीत्यंद्वापरमेतस्ययोनिरा ॥ २३ ॥  
 व्यक्तिक्रमात्पितृणांतुफण्कुलमवाप्स्यसि । तस्माद्राक्षोयसोःकन्यात्यमवश्यंभविष्यसि ॥ २४ ॥  
 कन्यात्येदेयलोकांस्तान्पुनःप्राप्स्यसिदुर्लभान् । पराशरस्यवीर्येणपुत्रमेकमवाप्स्यसि ॥ २५ ॥  
 द्वीपे चद्वीप्राये वादरायणमप्युत । स वेदमेकं बहुधा विभजिष्यति ते सुतः ॥ २६ ॥  
 पौरवस्यात्मजोद्वीपु समुद्रांशस्यशंतनोः । विचित्रवीर्यस्तनयस्तथावित्रांगदोनूपः ॥ २७ ॥  
 शमावुत्पाद्यतनयोक्षेत्रजोतस्यधीमतः । प्रोष्ठपद्यष्टकाभूयः पितृलोकेभविष्यसि ॥ २८ ॥  
 नास्त्रासत्यपतीलोकेपितृलोकेत्रयाष्टका । आयुरारोग्यदानित्यंसर्वकामफलप्रदा ॥ २९ ॥  
 भविष्यसिपरलोकेत्रदात्यंचगमिष्यसि । पुण्यतोयासरिष्हेष्ठालोकेष्वब्जोदनामिका ॥ ३० ॥  
 इत्युक्त्वा सा गणैस्तेस्तु तत्रैवांतरर्षायत । साप्यापचारित्रफलंमयायदुदितंपुरा ॥ ३१ ॥  
 विद्याजोनामयेचान्येदिविसंतिमुवचंसः । लोकावर्हिषदोयत्रपितरःसंतिमुद्रताः ॥ ३२ ॥  
 यत्रवर्हिषियुक्तानिदिमानानिसहस्रशः । संकल्पपादपायत्रतिष्ठन्तिफलदायिनः ॥ ३३ ॥  
 यदभ्युदयशालासुमोदतेध्राद्वदायिनः । येदानवासुरगणानंगंधर्वाप्सरसांगणाः ॥ ३४ ॥  
 यक्षरक्षोगणास्तेचयत्रंतिदिविदेवताः । पुलस्त्यपुत्राःशतशस्तपोयोगबलान्विताः ॥ ३५ ॥  
 महात्मानोमहाभागामहानामभयकराः । प्लेपांपीवर्षकन्यामानसीदिविविधुता ॥ ३६ ॥

योगिनीयोगमाताचतुष्टयकेसुदारुणम् । प्रसन्नोभगवांस्तस्यावरं वजेतुसाततः ॥ ३७ ॥  
 योगवंतं सुरूपंचभर्तारं विजितेंद्रियम् । देहि देव प्रसन्नस्त्वं यदि ते घटार्तावर ॥ ३८ ॥  
 उवाच देवो भविता व्यासपुत्रो यद्वाशुकः । भवित्रीतस्य भार्या त्वं योगाचार्यस्य सुव्रता ॥ ३९ ॥  
 भविष्यति च ते कन्या कृत्तीनामाप्ययोगिनी । पांचालपत्न्ये देया सा त्वया तु सातदा ॥ ४० ॥  
 जननीं ब्रह्मदत्तस्य योगसिद्धांतगा स्मृता । कृष्णगौरश्च शंभुश्च भविष्यति च ते सुताः ॥ ४१ ॥  
 सर्वकामसमृद्धेऽपु विमानेऽप्यपि पाषाणाः । किंपुनः श्राद्धदाविप्राभक्तिमंतः क्रियान्विताः ॥ ४२ ॥  
 गौर्नाम कन्या त्रैपांशुमानसी दिविराजने । सुकन्यादयिता पत्नी सा ध्यानां कीर्तिवर्दिनी ॥ ४३ ॥  
 मरीचिगर्भनामानो लोके मार्तण्डमंडले । पितरो यत्र तिष्ठंति हविष्मंतोऽगिः सुताः ॥ ४४ ॥  
 तीर्पद्वाद्भद्रायां तियत्र ब्रह्मत्रियसत्तमाः । राज्ञां तु पितरस्ते वै स्वर्गभोगफलप्रदाः ॥ ४५ ॥  
 एते पांशुमानसी कन्यायशोदानामविभृताः । पत्नीयां शुमतः श्रेष्ठास्तु पापंचजनस्य च ॥ ४६ ॥  
 जनस्य धदिलीपस्य भगीरथपितामही । लोकाः कामदुघानाम कामभोगफलप्रदाः ॥ ४७ ॥  
 सुस्वधानाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति ते सुताः । भान्यपानामलोकेषु कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ ४८ ॥  
 पुण्ड्राग्रजदायादा वैश्यास्तान्माधवंति ह । यत्र धाद्रुतः सर्वे पर्यन्ति युगपद्गताः ॥ ४९ ॥  
 मातृभ्रातृपितृष्वसृः सखिसंबंधियान्धवान् । भविजन्मा युतैर्दृष्टानुभूतान्सहस्रराः ॥ ५० ॥  
 एते पांशुमानसी कन्याधिरजानामविभृताः । सापत्नीनदुपस्यासीद्ययातेर्जननी तथा ॥ ५१ ॥  
 एषा एकभयत्पद्माद्ब्रह्मलोकगता सती । त्रयपते गणाः प्रोक्ताश्चतुर्थं तु यदाम्यहम् ॥ ५२ ॥  
 लोकाः सुमनसो नाम ब्रह्मलोकोऽपरिस्थिताः । सोमपानामपितरो यत्र तिष्ठंति शाश्वतम् ॥ ५३ ॥  
 धर्ममूर्तिधराः सर्वे परतो ब्रह्मणः स्मृताः । उत्पन्नाः प्रलयान्ते तु ब्रह्मत्वं प्राप्य योगिनः ॥ ५४ ॥  
 कृत्वा सुदृष्टादिकं सर्वमानसे सांप्रतं स्थिताः । नर्मदानामते पांशु कन्यातो यवहास रिन् ॥ ५५ ॥  
 भूतानि पुनर्तां (पूयते) पातु (ति) पश्चिमोदधिगामिनी । तेभ्यः सर्वत्र मनुजाः प्रजासर्गे च निर्मितम् ॥ ५६ ॥  
 काल्याश्रादानि कुर्वंति धर्मभावेन सर्वदा । सर्वदा तेभ्यः पयास्य प्रसादाद्योगसंततिः ॥ ५७ ॥  
 पित्राणामादिसर्गे तु श्राद्धमेवं विनिर्मितम् । सर्वपांराजतं पात्रमथ चाराजतान्वितम् ॥ ५८ ॥  
 दत्तं स्वपांशु रोधा यत्पितृभ्यां तिसर्वदा । अन्नो घृतो माषाभ्यां तु कार्ष्णमाप्यायनं बुधैः ॥ ५९ ॥  
 अन्यभावे तु विप्रस्य पाणी वायजले पिवा । भद्राकर्णेभ्यः कर्णे वा गोष्ठे वा यशिकांतिके ॥ ६० ॥

पितृणामलंस्थानंदक्षिणादिक्प्रशस्यते । प्राचीनाचीतमुदकं तिलसंत्यागमेव च ॥ ६१ ॥  
 खड्गिनामामिपंचैवमभ्रंश्यामाकशालयः । यवनीचारमुद्गैश्चशुक्रपुष्पफलानि च ॥ ६२ ॥  
 घल्लभानिप्रशस्तानिपितृणामिहसर्वदा । दर्भामाषाण्यष्टिकाग्रं गोक्षीरं मधुसर्पिणी ॥ ६३ ॥  
 शस्त्राणि च प्रचक्ष्यामि धाद्वै वज्र्यानि यानि च । मसूरशणनिष्पावाराजमाषाः कुलुत्थकाः ॥ ६४ ॥  
 पद्मविल्वार्कदुधोत्तूरपारिभद्राट्ठरूपकाः । न देवाः पितृकार्येषु पयश्चाज्जाविकंतथा ॥ ६५ ॥  
 कोद्रवोदारवरटकपिथं मधुकातसी । एतान्यपि न देवानि पितृभ्यः श्रियमिच्छता ॥ ६६ ॥  
 पितृन्प्रीणाति यो भक्त्या ते पुनः प्रीणयंतितम् । यच्छंति पितरः पुष्टिस्वांगारोग्यं प्रजाफलम् ॥ ६७ ॥  
 देवकार्यादपि पुनः पितृकार्यं विशिष्यते । देवताभ्यः पितृणां तु पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् ॥ ६८ ॥  
 शीघ्रप्रसादास्त्वक्कोधानिःसंगाः स्थिरसौहृदाः । शांतारमानः शौचपराः सततं प्रियवादिनः ॥ ६९ ॥  
 भक्तानुरक्ताः सुखदाः पितरः पर्वदेवताः । हविष्मतामाधिपत्ये धाद्वै देवस्मृतो रविः ॥ ७० ॥  
 एतद्विसर्वमाख्यातं पितृवंशानुकीर्तनम् । पुण्यं पवित्रमारोग्यं कीर्तनाय नृभिः सदा ॥ ७१ ॥  
 भीष्म उवाच ।

श्रुत्वैतद्विल्लभ्यः पराभक्तिरपस्थिता । धाद्वैकालं विधिं चैव धाद्वै मेव तथैव च ॥ ७२ ॥  
 धाद्वै पुभोजनीया ये धाद्वै वज्र्या द्विजातयः । कस्मिन्वासरभागे तु पितृभ्यः धाद्वै मारमेत् ॥ ७३ ॥  
 भक्ष्यं दत्तं कथं याति धाद्वै वै ब्रह्मविद्यमः । विधिना केन कर्त्तव्यं कथं प्रीणाति तान् पितॄन् ॥ ७४ ॥  
 पुलस्त्य उवाच ।

कुर्याद्वह्मः धाद्वै मन्त्राद्येनोदकेन च । पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमायहन् ॥ ७५ ॥  
 नित्यं नैमित्तिकं काष्ठं त्रिविधं धाद्वै मुच्यते । नित्यं तत्तत्प्रचक्ष्यामि भक्ष्यां वाहनवर्जितम् ॥ ७६ ॥  
 अर्धघतं विजानीयात्पार्वणं पर्वसु स्मृतम् । पार्वणं त्रिविधं प्रोक्तं शृणुयन्नामही पते ॥ ७७ ॥  
 पार्वणे ये नियोज्यास्तु तान् शृणुष्व नराधिप । पंचाग्निः स्नातकश्चैव त्रिसौपर्णः यद्वंगवित् ॥ ७८ ॥  
 श्रोत्रियः श्रोत्रियमुतो विधिवाक्पविशाखः । सर्वज्ञो वेद्यान्मंत्रं प्राणघंशकुलान्वितः ॥ ७९ ॥  
 त्रिणाचिरेतस्त्रिमधुः श्रुतेष्वन्येषु संस्थितः । पुराणवेत्ता ब्रह्मज्ञः स्याज्यायी जपतत्पराः ॥ ८० ॥  
 ब्रह्मभक्तः पितृपरस्मर्षभक्तोऽथ वैष्णवः । ब्राह्मणो योगनिष्ठारमाचिञ्जितारमा सुशीलवान् ॥ ८१ ॥  
 पतितस्तस्मत्तुः कुर्वन्पितृनां व्यंगरो गितः ॥ ८२ ॥



सर्वेतेभ्रादृकालेतुत्याज्यावैधर्मदर्शिमिः । पूर्वचुरपरैद्युर्वाचिनीतांश्चनिमंत्रयेत् ॥ ८८ ॥  
निमंत्रितांश्चपितरउपतिष्ठंतितान्द्विजान् । वायुभूतानिगच्छंतितथासीनानुपासते ॥ ८९ ॥  
दक्षिणंजानुचाल्म्यचामपात्यनिमंत्रयेत् । अक्रोधनेऽशौचपरैःसुस्नातैर्ब्रह्मयादिभिः ॥ ९० ॥  
भवितव्यंभवद्विस्तुमयाचभ्रादृकर्मणि । पितृयज्ञंविनिर्वर्त्यतर्पणाख्यंतुयोऽग्निमान् ॥ ९१ ॥  
पिंडान्वाहार्पकंकुर्याच्छ्राद्धमिदुक्षयेतथा । गोमयेनानुलितेतुदक्षिणाह्वयस्थले ॥ ९२ ॥  
भ्रादंसमारभेद्वक्ष्यामोष्टेवाजलसन्निधौ । अग्निमाधिवपेत्पित्रं चरुंदासकुमुदिभिः ॥ ९३ ॥  
पितृभ्योनिर्यपामीतिसर्वंदक्षिणतोन्वसेत् । अभिघार्यततःकुर्यादधियापत्रयमप्रतः ॥ ९४ ॥  
तेवितस्त्यापताःकार्याश्चतुरङ्गुलविस्तृताः । दूर्वात्रयंचकुर्यतेषादिरंजतान्वितम् ॥ ९५ ॥  
रक्षिमात्रंपरिश्लक्ष्णंहस्ताकाराग्रमुत्तमम् । उदपात्राणिकांस्यस्यमेषाणंचसमित्कुशम् ॥ ९६ ॥  
तिलपात्राणि सहासौ गंधधूपानुलेपनम् । आहरेदपसव्यं च सर्वंदक्षिणतःशनैः ॥ ९७ ॥  
पवमासाधतस्सर्वंभयनस्योत्तरेऽस्तरे । गोमयेनानुलिप्तायां गोमूत्रेण च मंडलम् ॥ ९८ ॥  
साक्षाताभिःसपुष्पाभिरद्विःसव्यापसव्यवत् । विप्राणांक्षालयेत्पादापभिवंद्यपुनःपुनः ॥ ९९ ॥  
भासनेवूपविष्टेषु दर्भयस्तु विधानतः । उपस्पृष्टोदकान्विप्रानुपवेश्यानुमं त्रयेत् ॥ १०० ॥  
द्वौदेवै पितृकृत्येनैकैकंचोभयत्रधा । भोजयेदोभरोऽपीहनकुर्याद्विस्तरंधुधः ॥ १०१ ॥  
दैवपूर्यनिवेद्याथविप्रानर्घादिनावुधैः । अग्नीं कुर्यादनुज्ञातोविप्रैर्विप्रोयथा विधि ॥ १०२ ॥  
स्पृष्टोक्तैविधिनाकालेदृष्ट्वासमंततः । अग्नीपोममयाभ्यांतुकुर्यादाप्यायनंधुधः ॥ १०३ ॥  
दक्षिणाग्नीप्रर्णातेनसप्याग्निर्द्विजोत्तमः । यज्ञोपर्वताधिवर्त्यततःपर्युक्षणादिकम् ॥ १०४ ॥  
प्राचीनायीतिनाकार्यमेतत्सर्वंविजानता । लब्ध्वातस्माद्विसेवेणपिंडान्कुर्यात्तयोदकम् ॥ १०५ ॥  
दद्यादुदकपात्रैस्तुसलिलंसव्यपाणिना । दद्यात्सर्वप्रयत्नेनदमयुकोविमत्सतः ॥ १०६ ॥  
विधायरेखांयत्नेननिर्यपेदवनेजनम् । दक्षिणाभिमुखःकुर्यात्ततोदर्भाधिधायवे ॥ १०७ ॥  
निधायपिंडमैकैकंसर्वदर्भांपरि क्रमात् । निर्वपेदधर्मेपुनामगोशानुकार्तनैः ॥ १०८ ॥  
तेपुदर्भैर्गुहस्तंविमृज्याह्नेपमागिनाम् । तथैवचजपंकुर्यात्पुनःप्रत्यवनेजनम् ॥ १०९ ॥  
जलयुक्तंनमस्कृत्यांगंधधूपार्चनादिभिः । पवमावाह्यतस्सर्वेदमंत्रैर्यथादिनैः ॥ ११० ॥  
एकाग्रैरेकपाद्भिर्निर्वपेद्दर्विकांतथा । ततःकृत्वाचरोदघात्पितृभ्यस्तुहुसान्धुधः ॥ १११ ॥

ततःपिंडादिकुर्याद्वाह्नविंसर्जनम् । ततोऽगृहीत्वा पिंडेभ्योमात्राःसर्वाःक्रमेणतु ॥  
 तानेवविप्रान्प्रथममाश्रयित्वा च मानवः । वर्णयन्भोजयेद्दधमिष्टं पूतं च सर्वदा ॥१०८॥  
 घर्जयेत्क्रोधपरतांस्मरन्धारायणंहस्मि । तृप्तान्धात्वा पुनः कुर्याद्विकिरंसार्वर्जिकम् ॥  
 विधृत्यसोदकं च व्रतं सतिलं प्रक्षिपेद्भुवि । आचांतेषु पुनर्दद्याज्जलं पुण्याशुतोदकम् ॥ ११० ॥  
 स्वधाद्याचनकंसर्गपिंडोपरिसमाचरेत् । देवाद्यंतं प्रकुर्वीत धादनाशोऽन्यथा भवेत् ॥ १११ ॥  
 विसृज्य विप्रान् प्रणतस्तेषां हृत्स्वात्प्रदक्षिणम् । दक्षिणां दिशमाकांक्षन्पितृनुद्दिश्यमानवः ॥  
 दातारो नो भियर्द्धन्तां वेदाः संततिरेव च । श्रद्धाचनो माष्यगमद्वयद्वेदं च नोऽस्त्विति ॥  
 अघ्नं च नो बहु भवेदतिथींश्चलमेमहि । याचितारश्च नः संतु माच याचिष्म कंचन ॥ ११४ ॥  
 एतदग्निमतः प्रोक्तमन्याहायंतु पार्वणम् । यथेदुसंक्षये तद्धृदन्वयापि निगद्यते ॥ ११५ ॥  
 पिंडांस्तु गोजयिरेभ्यो दद्याद्भ्रौजलेऽपि वा । व्रतांते बाधविकिरेदपोभिरथ वापयेत् ॥ ११६ ॥  
 पत्नी तु मध्यमं पिंडं प्राशयेद्दिनयान्विताम् । आधत्त पितरोगभं पुत्रसंतानघर्जनम् ॥ ११७ ॥  
 तावन्निर्वापणं तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । वैश्वदेवं ततः कुर्याद्विवृत्तः पितृकर्मणः ॥  
 इष्टैः सह ततः शान्तो भुञ्जीत पितृसेवितम् । पुनर्भोजनमभ्यानं यानमायासनैधुनम् ॥ ११८ ॥  
 धादृक् ऋक्षादभुग्योपासर्गमेतद्विपर्जयेत् । स्वाध्यायं कलहं चैव विद्यास्वप्नं च सर्वदा ॥  
 अनेन विधित्वा धादं त्रिवर्गस्येह निर्वपेत् । कन्याकुंभवपस्येऽर्कं हृण्णपक्षेऽपुसर्वदा ॥  
 यत्र यत्र प्रदातव्यं सर्पिर्दीकरणात्मकम् । तत्रानेन विधानेन देयमग्निमता सदा ॥ १२२ ॥  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणाय दुर्वीरितम् । धादं साधारणं नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥  
 अयने विपुले चैव त्रमायस्यार्कसंक्रमे । अमावस्या एकाहृण्णपक्षपञ्चदशीषु च ॥ १२४ ॥  
 भाद्रामघारोहिणीषु द्रव्यग्राहणसंगमे । गजच्छायाव्यतीपाते विष्टिचैवृतिवासरे ॥  
 वैशाखस्य तृतीयाया नवमी कार्तिकस्य च । पञ्चदशी तु माघस्य नभस्येव त्रयोदशी ॥  
 युगादयः स्मृता ह्येताः पितृपक्षोपकारिकाः । तथामन्वंतदशी च देयं धादं विजानता ॥  
 अभ्ययुश्नयमी चैव द्वादशी कार्तिके तथा । तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥  
 फाल्गुनस्य त्वमायास्यार्कस्यैकादशी तथा । भाद्रपदस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥  
 धायणे चाष्टमी हृण्णा तथा पार्द्वी च पूर्णिमा । कार्तिके फाल्गुनी चैव ज्येष्ठे पञ्चदशी सता ॥

मन्वंतरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारिकाः । १३० ॥

पानीयमप्यत्रतिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतोमनुष्यः

धाद्वं कृतं तेन समास्सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥ १३१ ॥

यैशाख्यामुपवासेषु तथोत्सवमहालये ॥ १३२ ॥

सौर्यायतनगोष्ठेषु क्षीपोद्यानगृहेषु च । विविकेषूपलितेषु धाद्वं देयं विजानता ॥  
विमानूवंपरेचाह्विनिनीतात्मानिमंशयेत् । शीलवृत्तगुणोपेतान्ययोरूपसमन्विताम् ॥  
द्वौदेवपितृकृत्ये श्रीनेकैकमुभयत्रचा । भोजयेत्सुसमृद्धोऽपिप्रकुर्योतविस्तरम् ॥  
विश्वेदेवान्यघेःपुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्यकम् । पूत्येत्पात्रयुग्मं तु स्वाप्यं धर्मपवित्रके ॥  
शन्नोदेवीत्यपःकुर्याद्यथोऽसीतियथानपि । गन्धपुष्पैस्तुसंपूज्यविश्वान्देवान्प्रतिन्यसेत् ॥  
पित्वेदेवास्तस्याभ्यामायाह्विकिरेयवान् । यथोऽसिधान्यराजस्त्वंधारुणोमधुमिश्रितः ॥  
निष्णुं(णो)द्गःसर्वपापानामपवित्रञ्चपिसंस्तुतः । गंधपुष्पैरलंकृत्ययादिव्येत्यर्घुमस्तुजेत् ॥  
अभ्यर्च्यगंधाधुतस्तुज्यपितृयज्ञंसमारभेत् । द्धर्मांस्तनादिहृत्यादीत्रीणिपात्राणिचाचयेत् ॥  
सपवित्राणिहृत्वादीशन्नोदेवात्यपःक्षिपेत् । तिलोऽसीतितिलान्कुर्याद्गन्धपुष्पादिकंपुनः ।  
पात्रं पनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः । राजतं वा प्रकुर्योत तथा सागर संभषम् ॥ १४२ ॥  
सौर्यं राजतं ताम्रं पितृणां पात्रमुच्यते । राजतस्य कथाद्यापि दर्शनं दानमेव च ॥  
राजतैर्भाजनैरेषां पितृणां रजतान्वितैः । धार्यपि धृद्वया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ १४४ ॥  
अद्यापि पितृपात्रेषु पितृणांरजतान्वितम् । शिवनेत्रोद्भवं यस्मानुत्तमं पितृयज्ञभम् ॥  
एवं पात्राणिसंकल्प्ययथालाभंविमत्सरः । यादिव्येतिपितुर्नामगोत्रेर्दार्भांस्करेन्यसेत् ॥  
पितृनावाहयिष्यामितयेत्युक्तः स तैःपुनः । उग्रतस्तथातथायन्तुस्त्वभ्यामायाहयेत्पितृन् ॥  
यादिव्येत्यर्घ्यंमुत्सृज्यदद्याद्गंधादिकंततः । बहोत्तरं धर्मपूर्वं दत्त्वा संध्यमादितः ॥  
पितृपात्रेनिधायधन्युब्जमुत्तरतो न्यसेत् । पितृभ्यःस्नानमसीतिनिधायपरिवेषयेत् ॥  
तत्रापिपूर्वतः कुर्यादग्निकार्यंविमत्सरः । उभाभ्यामपिहस्ताभ्यामाहृत्यपरिवेषयेत् ॥ १५० ॥  
उग्रतस्त्येतितंदर्भं पात्रिमकंविशेषतः । गुणान्वितैश्चशाकाद्येनानामश्वैस्तपैव च ॥  
अथ ॥ सन्धिधीरं गोधृतंशर्करान्वितम् । मासंप्रीणातिवैसर्वांस्पितृन्तित्याह पञ्चजः ॥

द्वीमासीमत्स्यमांसेनर्त्तन्मासान्हारिणेनतु । औरघ्रेणाधचतुरः शाकुनेनाथयंचय ॥  
 पाराहस्यनुमांसेनयण्मासंतृप्तिरुत्तमा । सतलोहस्यमांसेनतथाष्टावाजकेनतु ॥ १५४ ॥  
 तृप्तस्य तु मांसेन तृप्तिमासादधैव तु । दशमासांश्च तृप्यंते घराहमद्विगमिगैः ॥ १५५ ॥  
 दशकूर्मयोस्तुमांसेनमासानेकादशैवतु । संवत्सरंतुगव्येनपयसापायसेन वा ॥ १५६ ॥  
 सौपर्येण तु तृप्यंतेमासान्वंचदशैवतु । चार्धौणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ १५७ ॥  
 फाल्गुनाकेनचान्त्यंश्वग्मांसेन चैव हि । यत्किञ्चिन्मधुनामिश्रं गोक्षीरं दधिपायसम् ॥  
 दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्यदेवताः । म्याध्यायं धावयेत्स्विश्रं पुराणान्यखिलानि ॥ १५८ ॥  
 प्रह्वयिष्ण्वर्कं रुद्राणां स्तत्रानिचिचिधानिच । त्रैशसोमसूक्तानिपायमानीधशक्तितः ॥ १५९ ॥  
 बृहद्रथंतरंतत्रज्येष्ठसामाधरौरयम् । तथैव शांतिकाध्यायं मधुब्राह्मणमेवच ॥ १६० ॥  
 मण्डलब्राह्मणंतद्वत्प्रीतिकारिचयत्पुनः । विद्यानामारमनधापितरस्यंसमुदीरयेत् ॥ १६१ ॥  
 भारताध्ययनं कार्यं पित्राणां परमप्रियम् । भुक्तयत्सुचविश्रेषुभोग्यतोयादिकंनृप ॥ १६२ ॥  
 सार्वपथिकमप्राद्यमानयेन्मावधारणम् । समुत्सृजेद्भुक्तयतामप्रतंयिकिरान्भुवि ॥ १६३ ॥  
 भद्रिदधाभयेजीवायेऽप्यदधाः कृज्येमम । भूर्मादत्तेनतृप्यंतुतृमायांतुपरांगतिम् ॥ १६४ ॥

येषां न माता न पिता न धंधुर्नचापि मित्रं न कथाग्रमस्ति ।

तत्तमयेऽहं भुवि दत्तमेतत्प्रयानु योगाय यतो यतस्ते ॥ १६५ ॥

भ्रसंनृत्तप्रमीतानां त्यागिनां कृत्स्नागिनाम् । उच्छिष्टभागधेयानां दर्भेषु विकिरासन् ॥  
 नृत्तात् शत्र्यादं दं दपसद्विचिरयेनवा । विप्रस्त्रिमदीपुंगोराहमूत्रपाणिना ॥ १६६ ॥  
 निधाय दर्भान्विधियदक्षिवाप्राप्त्ययत्नः । सर्ववर्णविधानेन पिशां धृष्टिपथम् ॥ १६७ ॥  
 धवदेवनृपंतुनामगोत्रनुमानकः । उक्त्वा पुण्यादिकं दत्त्वा हृत्वा प्रयत्नेन ॥ १६८ ॥  
 उक्त्वाऽरुचं संयेन शापिवाचिः प्रदक्षिन्वम् । शिन्वन्मामृचं कायं विधियदर्भपाणिना ॥ १६९ ॥  
 दंष्ट्राय उच्यंतं दंष्ट्रायानुधाचनं वृकः । कथावानेषुवान्मयदपाघातमहम् ॥ १७० ॥  
 कथापुण्ड्रस्यनरभद्रस्योद्वेगैव । मज्जितं नमोत्रेन दपाच्युनवाचं ॥ १७१ ॥  
 मोनृशिरश्च यामाभिव्यञ्जित्वा निव । दद्याददृष्टिमात्रमाहमनं निनृपव ॥ १७२ ॥  
 नैर्येकैर्दत्तं न दोषोऽस्तिमावरेत् । एतन्वशावाचनं हृत्वा देवेषु वा दत्तम् ॥ १७३ ॥

दत्त्वग्नीः प्रतिगृहीयादुद्विजेभ्योऽपि यथाबुधः । अधोऽयः पितरः संतु संत्तित्युक्तः पुनर्द्विजे  
 गोत्रं तथा चर्दं तां तु तथेत्युक्तश्च तैः पुनः । स्वस्तिवाचनं कुर्यात्पिण्डानुद्धृत्य भक्तिः ॥ १७८ ॥  
 उच्छेदणं तु तत्तिष्ठेया च द्विप्रविसर्जनम् । ततो गृह्यलिङ्गं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १७९ ॥  
 उच्छेदणं भूमिगतमजिह्वास्याशठस्य च । दासवर्गस्य तत्पिण्डं भागधेयं प्रचक्षते ॥ १८० ॥  
 पितृभिर्निर्मितं पूर्वमेतदाप्यायनं सदा । अद्य तानामपुत्राणां स्त्रीणामपिन राधिप ॥ १८१ ॥  
 ततः स्वानाग्रतः स्थित्वा प्रतिगृह्णां बुपात्रिकाम् । वाजे वा जेतुं च जपन्कुशाग्रेण विसर्जयेत् ॥ १८२ ॥  
 षड्विः प्रदक्षिणं कुर्यात्पदान्यष्टावनुप्रजेत् । यन्बुधर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः ॥ १८३ ॥  
 निवृत्य प्रणिपत्यथ प्रयुज्याग्निसमं प्रयित् । वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्येकं बलिमेव च ॥ १८४ ॥  
 तत्सु वैश्वदेवांते सभृत्य सुतवांधवः । भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितुर्निषेधितम् ॥ १८५ ॥

एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु ।

शङ्खाधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् । भार्याविरहितोऽप्येतत्प्रघासस्योऽपि भक्तिमान् ॥  
 श्रोत्रोऽप्यमंत्रकं कुर्यादनेन विधिना नृप । तृतीयमान्युदयिकं वृद्धिधात्रेऽपि धीयते ॥ १८६ ॥  
 तत्स्थानं द्वांसंस्कारे यज्ञोद्वाहादिमंगले । मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनंतरम् ॥ १८७ ॥  
 दोमातामहाराजन्विष्ये देवास्तथैव च । प्रदक्षिणोपचारेण दध्यभृतकलोदकैः ॥ १८८ ॥  
 इमुषो निर्बपेत्पिण्डान्पूर्वांश्चैव पुरातनान् । सम्पन्नमित्यभ्युदये दद्यादघ्नयोर्द्वयोः ॥  
 आद्विजातयः पूज्या वस्त्राकक्षां वरादिभिः । तिलकायं यच्चैकायं तद्यसर्वांस्तु पूर्वकम् ॥  
 गालरानि च सर्वाणि वाचयेद्विजपुंगवान् । एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धिधात्रं च तर्पेत् ॥

नमस्कारेण मंत्रेण कुर्याद्दानानि धैः बुधः ।

नम्रधानं शूद्रस्य इत्याह भगवान्प्रभुः । दानेन सर्वकामाप्तिस्तत्संजायते यतः ॥ १८९ ॥  
 इति धीपादपुराणे प्रथमेऽष्टिखण्डे साधारणाभ्युदयकीर्तननाम नवमोऽध्यायः ॥ ॥ ॥

## दशमोऽध्यायः ।

### एकोद्दिष्ट श्राद्धविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

एकोद्दिष्टंततोचक्ष्येयदुकप्रहणापुरा । मृतेपुत्रैर्यथाकार्यमाशौचंचपितुर्यत्रि ॥ १ ॥  
दशाहंशापमाशौचंप्राह्मणस्यविधीयते । क्षत्रियंपुद्गद्रे च पक्षंवैश्येपुचैवहि ॥ २ ॥  
शूद्रेषुमासमाशौचंसपिंडेषुविधीयते । नैशमाचूडमाशौचंचिरात्रंपरतःस्मृतम् ॥ ३ ॥  
जननेऽप्येवमेवस्यात्सर्वयर्णेपुसर्वदा । अस्थिसंचयंनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शोविधीयते ॥ ४ ॥  
प्रेताय पिंडदानं तु द्वादशाहं समाचरेत् । पाथेयं तस्य तत्प्रोक्तंयतःप्रीतिकरमहत् ॥ ५ ॥  
यस्मात्प्रेतपुरंप्रेतोद्वादशाहेननीयते । गृहे पुत्रकलत्रंच द्वाशाहं प्रपश्यति ॥ ६ ॥  
तस्मान्निधेयमाकाशेदशारात्रंपयस्तथा । सर्वदाहोपशांत्यर्थमध्यधमधिनाशनम् ॥ ७ ॥  
ततस्त्येकादशाहेऽपिद्विजानेकादशेषतु । गोप्रादिसूतकांतेचभोजयेन्मनुजोद्विजान् ॥ ८ ॥  
द्वितीयेऽद्विपुनस्तद्वदेकोद्दिष्टसमाचरेत् । नाबाहनाग्नौकरणंदैवहीनंविधानतः ॥ ९ ॥  
एकंपवित्रमेकोर्ध्वएकःपिंडोविधीयते । उपतिष्ठतामिति वदेदेयं पश्चातिलोदकम् ॥ १० ॥  
स्यस्तिद्रूयाद्विप्रकरेयिसर्गेचाभिरम्यताम् । शेषंपूर्ववदन्नापिकायं वेदविदोचिदुः ॥ ११ ॥  
अनेनविधिनासर्वमनुमासंसमाचरेत् । सूतकांतेद्वितीयेऽद्विशप्यांश्चाद्विलक्षणां ॥ १२ ॥  
काञ्चनं पुरयं तद्वत्फल्यस्त्रसमन्वितम् । प्रपूज्य द्विजदांपत्यं नानाभरणभूषितम् ॥ १३ ॥  
उपवेश्यतु शय्यायां मधुपकं ततोददेत् । रजतस्य तु पात्रेणदधिदुग्धसमन्वितम् ॥ १४ ॥  
अस्थिलालाटिकंगृह्यसूक्ष्मंरुत्वाविमिश्रयेत् । पाययेद्विजदांपत्यंपितृभक्त्यासमन्वितः ॥ १५ ॥  
एषपयविधिर्द्वैष्टःपार्वतीयैर्द्विजोत्तमैः । तेन दुष्टातु सा शय्या नप्राह्याद्विजसत्तमैः ॥ १६ ॥  
गृहीतायांतु तस्यां हि.पुनः संस्कारमर्हति । वेदे चैव पुरोणेच शय्या सर्वग्रहीता ॥ १७ ॥  
ग्रहीतारस्तुजायन्तेसर्वेतरकगामिनः । ग्रथितावसुजालेनशय्यांदांपत्यसेविताम् ॥ १८ ॥  
नवधादेनभोक्तव्यंभुक्त्याचांद्रायणंचरेत् ॥ १९ ॥

पितृभक्षयानुप्राणाकार्यमेवसदामवेत् + चृपोत्सर्गचकुर्वीतदेयाचकपिलाशुभा ॥ २० ॥  
उदकुम्भदातुशोभक्ष्यमोज्यफलान्वितः । यावद्वन्द्वनश्चेत्प्रसतिलोदकपूर्वकम् ॥ २१ ॥  
तत्संवत्सरेपूर्णेसपिण्डीकरणंभवेत् । सर्पिण्डीकरणादूर्ध्वप्रेतःपार्वणभुगयतः ॥ २२ ॥  
इद्विपूर्वेषु कार्येषु गृहस्यस्यमवेत्ततः । सर्पिण्डीकरणंध्राद्धं देवपूर्वनियोजयेत् ॥ २३ ॥  
पितृनावाहयेत्तत्रपृथक्प्रेतं विनिर्दिशेत् । गंधोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ॥ २४ ॥  
प्रार्थ्यां पितृपात्रेषुप्रेतपात्रं प्रसेचयेत् । तद्वत्संकल्प्यचतुरः पिण्डान्पितृपरस्तदा ॥ २५ ॥  
समानाश्चिद्वान्मामभन्नुचिभजेत्त्रिधा । अनेन विधिनाचाश्च पूर्वमेवप्रदापयेत् ॥ २६ ॥  
तत्पितृत्थमापन्नस्त्वचतुर्थस्तदात्वनु । अग्निष्यात्तादिमध्येतु प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम् ॥ २७ ॥  
पिण्डीकरणादूर्ध्वं पृथक्स्मैर्नदीयते । पितृष्वेवचदातव्यंस्तपिण्डेषुसंस्थितम् ॥ २८ ॥  
तः प्रभृतिसंक्रान्ताशुपरागादिपर्वसु । त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टंमृतेऽहनि ॥ २९ ॥  
कोद्दिष्टं परित्यज्यमृताह्वयः समाचरेत् । सदैवंपितृदासस्यास्तथाभ्रातृघिनाशकः ॥ ३० ॥  
ताह्वेपार्वणकुर्वन्नधोयातिसमानधः । संपृक्केस्वर्गतीर्मायेप्रेतमोक्षोपतोभवेत् ॥ ३१ ॥  
मभ्रातृत्तदाकुर्याद्विधिः श्राद्धदस्ततः । तेनाग्नौकरणंकुर्यात्पिण्डांस्तैर्नैवनिर्वपेत् ॥ ३२ ॥  
भिःसर्पिण्डीकरणंमासेवयेन्निययेत्तथा । यदाप्राप्त्यतिकालेनतदामुच्येत यंधनात् ॥ ३३ ॥  
कोपिलेपभागित्वंमामोत्तिकुशमार्जनात् । लेपभाजधनुर्धाद्याख्यःस्युःपिण्डभागिनः ।  
पिण्डदःसप्तमस्तेपांसपिण्डाःसप्तपुरुषाः ॥

भोष्म उवाच ।

कथं हव्यानि देयानि कव्यानि च जनैरिह ॥ ३५ ॥

न्तिपितृलोकेयाप्रायःकेकैर्निगद्यते । यदिमर्त्येद्विजोभुंकेद्वयते यदियानले ॥ ३६ ॥

शुभाशुभात्मकाः प्रेतास्तदन्नं भुञ्जते कथम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

घसुस्वरूपाः पितरो रुद्राश्चैव पितामहाः ॥ ३७ ॥

तामहास्तथादित्या इत्येपावैदिकाधुतिः । नामगोत्रंपितृणांतुप्रापकंहव्यकव्ययोः ॥ ३८ ॥  
इत्यमन्त्रतस्तत्पुण्यलभ्येतभक्तिः । अग्निष्यात्तादयास्तेपामाधिपत्येव्ययस्थिताः ॥

नामगोत्रास्तदादेशामचंत्युद्धवतामपि । प्राणिनः प्राणयत्येतद्दर्शनसमुपागतम् ॥ ४० ॥  
 दिव्योयदिपितामातागुरुकर्मनुयोगतः । तस्यान्नममृतंभूत्वादिव्यस्त्वेऽप्यनुगच्छति ॥ ४१ ॥  
 दैत्यत्वेभोगरूपेण पशुत्वे पितृणांभवेत् । आद्याद्यंवागुरूपेण नागत्वेऽप्युपतिष्ठति ॥ ४२ ॥  
 पानंभवति यक्षत्वेराक्षसत्वेतयामियम् । दानवत्वेतथापानं प्रेतत्वेरुधिरौदकम् ॥ ४३ ॥  
 मनुष्यत्वेन्नपानादि नानाभोगवतांभवेत् । रतिशक्तिसिन्धुःकान्तेऽन्येषांभोजनशक्तिः ॥ ४४ ॥  
 दानशक्तिःसविभवारूपमारोग्यमेव च । आद्यंपुष्पमिदंप्रोक्तं फलं ब्रह्म समागमः ॥ ४५ ॥  
 आयुःपुत्रान्धनंचियां स्वर्गं मोक्षंसुखानिच । प्रयच्छन्तितथाराज्यं प्रीताःपितृगणान्पु ॥ ४६ ॥  
 धूयतेचपुरामोक्षंप्राप्ताः कौशिकसूतवः । पंचभिर्जन्मसंवधैः प्राप्ता ब्रह्मपरंपदम् ॥ ४७ ॥

मीम्न उवाच ।

कथं कौशिकदायादाः प्राप्ता योगमनुत्तमम् । पंचभिर्जन्मसंवधैः कथं कर्मक्षयोभवत् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

कौशिकोनाम अर्मात्माकुहक्षेत्रेमहानृपिः । नामतःकर्मतस्तस्यपुत्राणांतांनिबोधमे ॥ ४८ ॥  
 स्वसृपःक्रोधनोहिंस्रः पिशुनः कविरैवच । वायुदुष्टःपितृवर्तोचगर्गशिष्यास्तदाभवत् ॥ ४९ ॥  
 पितर्युपस्तेतेयामभूदुदुर्भिक्षमुल्यणम् । अनावृष्टिश्च महती सर्वलोकनयंकरी ॥ ५० ॥  
 गर्गादेशाद्वनेदोभ्रौंरक्षंति च तपोधनाः । खादामःकपिलामेतांवयंक्षुत्पीडिताभूताम् ॥ ५१ ॥  
 इतिचितयतांपापं लघुःप्राहृतदानुजः । यद्यवश्यमियंवध्या आद्वरूपेणयोज्यताम् ॥ ५२ ॥  
 आद्वेनियोज्यमानायां पापंनश्यतिनोधुवम् । एवंकुर्वित्यनुज्ञातः पितृवर्तोतदाज्ञैः ॥ ५३ ॥  
 चक्रेसमाहितःआद्वमुपयुज्याथतांपुनः । द्वौदेवेष्वान्तरोरुत्वा पित्र्येष्ट्रांश्चापरान्जमान् ॥ ५४ ॥  
 तथैकमतिथिंरुत्वा आद्वदःस्वयमेवतु । चकारमंत्रवच्चन्द्रादंस्मरन्पितृपरायणः ॥ ५५ ॥  
 तदागत्वाविशंकास्तेगुरवे च निवेदयन् । व्याघ्रेणनिहताधेनुर्वत्सोऽयंप्रतिगृह्णतान् ॥ ५६ ॥  
 एवं सा भक्षिताधेनुःसप्तभिस्तेस्तपोधनैः । वैदिकंवलमाथित्यकूरेकर्मणि निर्मयाः ॥ ५७ ॥  
 ततःकालेप्रणष्टास्ते व्याधा दशपुरेऽभवन् । जातिस्मरत्वंप्राप्तास्तेपितृभावेनभाविताः ॥ ५८ ॥  
 तत्रविज्ञायवैराग्यं प्राणानुत्सृज्यधर्मतः । लोकेस्वीक्ष्यमाणास्तेतार्थांतेऽनशनेननु ॥ ५९ ॥  
 संजातामृगरूपास्ते सप्तकालंजरेगिरी । प्राप्तविज्ञानयोगास्तेक्यनुत्तानिब्रातनु ॥ ६० ॥



दशमोऽध्यायः ]

• धाद्विषये कीशिकसूक्तथानकम् •

मनुः प्रपतनेनाथ जातवैराग्यमानसाः । मानसेचक्रवाकास्ते संजाताः सप्तयोगिनः ॥ ६२ ॥  
नामतः कर्मतः सर्वे सुमनाः कुसुमोवसुः । चित्तदर्शोऽसुदर्शो च ज्ञाता ज्ञानस्य पारगः ॥ ६३ ॥  
ज्येष्ठानुरागाः श्रेष्ठास्ते सप्तैते योगपावनाः । योगभ्रष्टाश्च यस्तेषां बभूवुश्चलचेतसः ॥ ६४ ॥  
दृष्टविभ्राजमानं तमगुहं स्वोभिरन्वितम् । कीडनं विविधैर्भागैर्महाबलपराक्रमम् ॥ ६५ ॥  
पञ्चालान्वयसंभूतप्रभूतबलवाहनम् । राग्यकामोभयस्त्वेकस्तेषां मध्ये जलौकसाम् ॥ ६६ ॥  
पितृवर्ती च यो यिप्रः धाद्वरुत्पितृवत्सलः । अपरीमन्त्रिणोऽदृष्टा प्रभूतबलवाहनो ॥ ६७ ॥  
मन्त्रित्वे च कतुरचेच्छामस्मिन्मर्त्यो द्विजोत्तमो ।

पिभ्राजपुत्रस्त्येकोऽभूद्रवहदत्त इति स्मृतः ॥ ६८ ॥

मन्त्रिपुत्री तथा चैव पुण्डरीकसुखालको । ब्रह्मदत्तोऽभिषिक्तस्तु कापिल्येन गरोत्तमे ॥ ६९ ॥  
पञ्चालराजो विक्रांतः धाद्वरुत्पितृवत्सलः । योगविस्सर्वजंतूनां चित्तवेसाभयतदा ॥ ७० ॥  
तस्य राहोऽभवद्द्वार्यासु देवस्यात्मजा तदा । सन्नतिनां मयि ख्याता कपिलाया भवत्पुरा ॥ ७१ ॥  
पितृकार्ये निपुक्तत्वाद्भवद्ब्रह्मपादिनी । तथा चकार सहितः सराज्यं राजनन्दनः ॥ ७२ ॥  
कदाचिद्गत उद्यानं तया सह सपार्थिवः । दर्शयतीदमिधुन मनंगकलहान्वितम् ॥ ७३ ॥  
पिपीलिकामधोवक्त्रां पुरतः कीटकामुखः । पञ्चबाणाभितप्तांगः सगद्गदमुपाचह ॥ ७४ ॥  
तस्यासदृशी लोके कामिनी विद्यते क्वचित् । मध्येक्षोणातिजघनाष्टद्वक्त्रातिगामिनी ॥ ७५ ॥  
गुणवर्णसदृशी सद्भवत्वाच्चाह्लासिनी । आलक्ष्यते च घटनं गुडशर्करयत्सलम् ॥ ७६ ॥  
तिष्ठत्येवमिभुङ्क्ते त्वं ज्ञासि ज्ञाते तथामयि । प्रोपिते मयि दीनात्यं कुड्मे च भयचञ्चला ॥ ७७ ॥  
तमर्थं वद कल्याणि सदाऽधोवदनास्विता । सातमाह ज्वलत्कोपाकिमालपसि रेशड ॥ ७८ ॥  
तमो वद कूर्णं तु मां विहाया पिभक्षितम् । प्रादास्त्वं तदति कर्म्यमाभ्यस्य स्वैरसममथः ॥ ७९ ॥

पिपीलिक उवाच ।

तत्सादृश्यान्मया दत्तमन्यस्यैव वर्णनि । तदेकमपराधमे क्षन्तुमर्हसि भामिनि ॥ ८० ॥  
गुणः करिष्यामित्यजकोपं च सुस्तनि । स्पृश्यामि नार्दोस्त्येन प्रणतस्य प्रसीदमे ॥ ८१ ॥  
प्रांत्वयि सुधोणिमृत्युर्मे पुरतो भवेत् । तुष्टयां त्वयि वा मोरुपूर्णाः सर्वमनोरथाः ॥ ८२ ॥  
तंदोषमयं वक्त्रं सदाऽस्मृतस्सोपमम् । निर्भरं पिव सुधोषिकामासकस्य मे तदा ॥ ८३ ॥

एतन्मत्याशुमे कार्यासर्वदातुरुपायमपि । इति सा वचनं धृत्याप्रसन्नाचामवततः ॥ ८४ ॥  
 आत्मानमर्पयामासमोहनायपिपीलिका । ब्रह्मदत्तोऽपितत्सर्वं हत्वा सस्मयमाहसम् ॥  
 सर्वसत्त्वस्तज्ञानाप्रभावात्पूर्वकर्मणः । कथं सर्वं स्तशोभूदुब्रह्मदत्तो नराधिपः ॥ ८५ ॥

भीष्म उवाच ।

तद्यापि चाभयत्कुश्रचक्रवाकचतुष्टयम् । तन्मे कथय सर्वं प्रकुले कस्य च सुप्रतम् ॥ ८६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तस्मिन्नेव पुरे जाता चक्रवाका भयो नृप ॥ ८८ ॥

पृथ्विजन्मपदायादाविम्राजातिस्मरायुधाः । धृतिमांस्तस्यदर्शोद्ययिष्यापणस्तरोऽधिकः  
 नामतः फलमर्थयमुद्विग्नस्यते सुतः । तपसे बुद्धिर्भयते पांयै द्विजजन्मनाम् ॥ ८९ ॥  
 यास्यामः परमांसिद्धिमुयुष्मे द्विजसत्तमः । तत्ते सर्वं वचनं धृत्या सुवर्तिद्रोमहातपाः ॥ ९० ॥  
 उराचरानपापायाकिमेतदिति पुत्रकाः । अधर्मण्यः पुत्राः गितातानि श्रुयाचह ॥ ९१ ॥  
 गृहं पितृमुत्सृज्य द्रिष्ट्वनवासिनम् । कनुधर्माश्रमयिता मात्यक्त्यागनिमेषव ॥ ९२ ॥  
 ऊचुस्ते कल्पिता वृत्तिम्वचनात्तव शृणु । यतमेतपुराराजः सन्तदाम्यनिपुण्यम् ॥ ९३ ॥  
 धनं ग्रामसहस्राणि प्रभाने पश्यन्तस्य । कुलक्षेत्रे तु ये विप्राद्याध्यादशपुरे तु ये ॥ ९४ ॥  
 कालं वरेण गृणाभूताश्चक्रवाकास्तुमानसे । इत्युक्त्यापि तर्जमुष्नेष्वनतामं पुनः ॥ ९५ ॥  
 वृद्धोऽपि मज्जि त्रात्र त्रगमस्यार्थसिद्धये । अणुदोनामयैत्रात्रः पञ्चाङ्गाधिपतिः पुनः ॥ ९६ ॥  
 पुत्रार्थो देवदेवैर्योगप्रयोगिनिगमादहम् । आराधमात्मा विभुं त्राप्रतपरायणः ॥ ९७ ॥  
 मन्त्राद्यैर्मदतानुष्टम्भ्यपितामहः । परं वरं भर्तुं इदं योऽभीक्षितं नृप ॥ ९८ ॥

अणुह उवाच ।

पुत्रमिदं हि देवदत्तं दाक्यमगमम् । पापमर्थयिष्यानां प्रार्थितं योगिनां वरम् ॥ १०० ॥  
 सर्वं सुखं लभे हि योगिन्मम त्रमम् । एवमस्मिन्निविश्यामालम्ब्य तानेश्वरः ॥ १०१ ॥  
 परन्तप सर्वभूतानां प्रेक्षां नृपीयूष । मन्त्रमनुबोधुं नृपद्वन्द्वं नृपरायणम् ॥ १०२ ॥  
 सर्वसत्त्वानुद्वेगं सर्वसत्त्वकथाधिपः । सर्वसत्त्वयज्ञश्च सर्वसत्त्वधरोऽहम् ॥ १०३ ॥  
 मन्त्रदेवरोपायसंनिर्वाहकश्च यत् । यत्तत्तत्तन्निपुणं यन्मात्रमपि विदम् ॥ १०४ ॥

ततः सासन्नतिर्द्वैष्याप्रहसंतं सुविस्मिन् । किमप्याशंकमाना सा तमपृच्छन्नरेव वरम् ॥  
सन्नतिस्वात् ।

अवस्मादतिहासोयं किमर्थमभवन्नृप । हान्यहेतुं न जानामि यदकाले दृष्टं त्वया ॥ १०६ ॥  
अवदराजपुत्रोऽसौ तं पिपीलिकमायित्म् । रागवद्विरसोत्पन्नमेतद्वा स्यंचरानने ॥ १०७ ॥  
न नान्यत्कारणं किंचिद्वा स्य हेतुः शुचिस्मिते । न साऽमन्यत तद्देवी प्रादालीकमिदं तव ॥ १०८ ॥  
अहमेवेह हसिता वजीविष्ये त्वया धुना । कथं पिपीलिकलापं मस्योवेत्ति सुरादृते ॥ १०९ ॥  
तस्मात्त्वया हमेयाय हसिता किमतः परम् । ततो निरुत्तरो राजा जिज्ञासुस्तद्वचो हतः ॥ ११० ॥  
आस्थानियमं तस्योत्तराग्रमफलपः । स्वप्नान्ते प्राह न ब्रह्मा प्रभाते पर्यटन्युत् ॥ १११ ॥  
वृद्धिजोत्तमाद्वाप्यं सूर्यं हास्यति ते प्रिया । इत्युत्थातर्द्धधेव ब्रह्मा प्रभाते च नृपः पुरात् ॥  
नेर्गच्छन्मन्त्रि सहितः सभायां वृद्धमग्रतः । गवं विप्रमायां तं वृद्धं च स ददर्श ॥ ११२ ॥  
ब्राह्मण उवाच ।

ये विप्रमुख्याः कुरुजांगलेषु दाशस्तथा दाशपुरे मृगाश्च ।

कालं जरे सत च चक्रवाका ये मानसे तेऽत्र वसन्ति सिद्धाः ॥ ११४ ॥

याकर्ण्य वस्तस्य स पपातशुचान्वितः । जातिस्मरत्यग्रमगमसौ चर्मत्रिवरात्मजौ ॥  
मिश्राग्रमणेतातु याध्वजः स तु यालकः । पंचाल इति लोकेषु विधुतः सर्वशास्त्रवित् ॥  
इतीकोऽपि धर्मात्मा धेदशास्त्रप्रवर्तकः । भूत्वा जातिस्मरेशोकात्पत्तिाय प्रतस्तथा ॥  
वयं कर्मविभ्रष्टाः कामतः कर्मबंधनात् । एवं विलस्य बहुरात्रयस्ते योगपारगाः ॥  
स्मयाप्राज्ञादमाहात्म्यमभिनंद पुनः पुनः । सतु तस्मै धनं दत्त्वा प्रभूतप्राप्तसंयुतम् ॥ ११६ ॥  
पुण्यब्राह्मणं तं वृद्धं धनमदान्वितम् । आत्मीयं नृपतिः पुत्रं नृपलक्षणसंयुतम् ॥ १२० ॥  
अस्तेनाभिधानं च राजा राज्येऽभ्ययेच यत् । मानसे सलिले सर्वतस्तस्ते योगिनां घराः ॥  
दत्तादयस्तस्मिन्पितृभका विमत्सराः । सन्नतिश्चाभवद् धृष्ट मयैव त्वदर्शितम् ॥  
न्योगफलं सद्यं देवदमिलक्ष्यते । तथेति प्राह राजापि पुरस्तादभिनंदयन् ॥ १२३ ॥  
त्वत्प्रसादादिदं सर्वं मयैवं प्राप्यते फलम् ॥ १२४ ॥  
ते योगमास्थाय सर्वं पय धनौकसः । ब्रह्मरंध्रेण परमं पदमापुस्तपो बलान् ॥ १२५ ॥

एवमायुर्धनंयिदांस्वर्गमोक्षसुखानिव । प्रयच्छन्ति सुतं राज्यं नृणां तुष्टाः पितामहाः ॥

इदं च पितृमाहात्म्यं ब्रह्मदत्तस्य वै नृप ॥ १२६ ॥

द्विजेभ्यः धाययेद्विद्वान्दृष्टोत्पिष्टतेऽपि वा । कल्पकोटिशतं सांप्रद्व्यलोके महीयते ॥

इति धातृपाञ्चपुराणे प्रथमे सुष्टिपञ्चडे पितृमाहात्म्यकथनं नाम दशमोऽध्यायः ।

## एकादशोऽध्यायः ।

### धातृयोग्यप्रशस्तदेशवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

कस्मिन्वासुभागे नु धातृभावं समाचरेत् । तीर्थेषु केषु वै धातृजनं बहुफलं द्विज ॥ १ ॥

पुत्रस्त्य उवाच ।

सर्वं तु पुष्टं नाम वनमृधेष्टममृतम् । सर्वं वा द्विजमुष्यानां मनोरथमिव स्थितम् ॥ २ ॥

तत्र दत्तं हुतं जन्ममन्त्रं भवति ध्रुवम् । पितृणां यत्नं नित्यमृषीणां परमं मतम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मरूपं तत्पुत्रं जन्तुं भायापुर्गमना । तथा मित्रपदं रात्रं गन्तः पन्थां मुनिमम् ॥ ४ ॥

संगासागरमिव्याकुः सर्वं तीर्थं मयं गुणम् । तीर्थं ब्रह्मरस्मद्विष्टतदुत्पत्तिं गुणम् ॥ ५ ॥

सर्वं तु वै मित्रं नाम सर्वं तीर्थं यत्नम् । संगो द्वेदमुगो मया यथा हुतः सनातनः ॥ ६ ॥

तथा यत्र वाहन्तु देवदेवश्च सूर्यश्च । यत्र सखाचक्रदात्मप्रादुर्बुधो ह्यः ॥ ७ ॥

वेदमनुष्मन् चाम्य सांवायशानपत्तुग । तदेतन्नेन्द्रियारण्यं सर्वं तीर्थं निर्विकम् ॥ ८ ॥

देवदेवस्तथा त्विगारम्य वदंस्वम् । यस्यानिमग्नतात्मा नारायणपुत्रं जन्तुम् ॥ ९ ॥

कोऽनुषं तं त्वं विद्वन्मोक्षोत्पत्तिदहनं । यथापि पितृवंशं तु ब्रह्मोऽप्यहं ब्रह्म ॥ १० ॥

पुत्राणां मया यत्नः सौ यत्र देवस्थितम् । विगिर्विशंभं चन्द्रमवर्तयन् ॥ ११ ॥

इति सप्तमः पञ्चपुराणस्य । यथायं नारायणः पुत्रः स्यात्तं जन्तुम् ॥ १२ ॥

एकदशोऽध्यायः ] \* सत्यदयेन्द्रियनिग्रहशमानामपि तीर्थत्वम् \*

६५

तीर्थमिन्धुमती नाम पितृणां च शुभावहा । तुष्यन्ति पितरो नित्यं गंगायमुनसंगमे ॥  
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं यत्र मार्गोऽपिलक्ष्यते । अद्यापि पितृतीर्थं तु सर्वकामफलप्रदम् ॥ १४ ॥  
नैलकण्ठमिति ख्यातं पितृतीर्थं नराधिप । तथा मद्रसरः पुण्यं सरोमानसमेव च ॥  
मंदाकिनी तथाऽच्छ्रोदाचिपाशा च सरस्वती । सर्वमित्रपदं तद्वद्वैद्यनाथं महाफलम् ॥  
क्षिप्रा नदी तथा पुण्या तथा कालंजरं शुभम् । तीर्थोद्वेदं हरोद्वेदं गर्भमेदं महालयम् ॥  
भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च । गयापिंडप्रदानेन समान्यादुर्महर्षयः ॥ १८ ॥  
एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च । स्मरणादपिलोकानां किमु धादप्रदायिनाम् ॥  
शंकारं पितृतीर्थं तु कावेरीकपिलोदकम् । संभेदश्चण्डवेगायां तथैवामरकंदकम् ॥ २० ॥  
कुरुक्षेत्राद्यष्टिगुणं तस्मिन् ज्ञानादिफलं भवेत् । शुक्लतीर्थं तु विख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम् ॥  
सर्वव्याधिहरं पुण्यं फलं कोटिगुणाधिकम् । धाद्वेदाने तथा होमे स्वाध्याये चापि सगिधी ॥  
कायाचारोदणं नाम देवदेवस्य शूलिनः । अवतारं रोचमानं ब्राह्मणावसथे शुभे ॥ २३ ॥  
जातं तत्सु महापुण्यं तथा चर्मण्यती नदी । शूलतार्पापयोष्णी च पयोष्णीसंगमस्तथा ॥  
महीरधीचारणाचनागतीर्थं प्रवर्त्तिनी । महावेणा नदी पुण्या महाशालस्तथैव च ॥ २५ ॥  
गोमती घग्घा तद्वर्त्तीयं हीताशनं परम् । मेरुं भृगुतुंगं च गौरीतीर्थं मनुत्तमम् ॥ २६ ॥  
गौर्यैनायकं नाम घस्त्रेश्वरमनुत्तमम् । तथा पापहरं नाम पुण्या वेप्रवती नदी ॥ २७ ॥  
महावर्द्धं महालिङ्गं दशार्णा च महानदी । शतयुद्धा शताह्वयतथापितृपदं पुण्यम् ॥ २८ ॥  
संगारथाहिका तद्वन्नदी द्वीशोणघर्घरी । कालिका च नदी पुण्या पितराचनदी शुभा ॥  
एतानि पितृतीर्थानि शस्त्रं ते स्नानदानयोः । धादमेते पुण्यदत्तं तदनंतफलं स्मृतम् ॥ ३० ॥  
तापदा नदी उवालाशखी च नदी तथा । द्वारका कृष्णतीर्थं च तथा ह्युदबसरस्यती ॥  
दीमालयती नाम तथा च गिरिकर्णिका । धूतपापं तथा तीर्थं समुद्रे दक्षिणे तथा ॥ ३२ ॥  
वक्रकोणं गजकर्णश्च तथा चक्रनदी शुभा । धीशैलं शाबर्तीर्थं च नारसिंहमतपरम् ॥ ३३ ॥  
हेन्दं च तथा पुण्या पुण्याचापिमहानदी । एतेष्वपि सदा धादमनंतफलदं स्मृतम् ॥ ३४ ॥  
तानादपि पुण्यानिसयः पापहराणि च । तुंगभद्रा नदी पुण्या तथा चरुर्गति च ॥  
सोमेश्वरं कृष्णवेणां कावेरी चांजना नदी । नदी गोदावरी पुण्या त्रिसंध्यापूर्णमुत्तमम् ॥

तीर्थं प्रियम्वकं नाम सर्वतीर्थं नमस्तुतम् । यत्रास्ते भगवान्गीमन्स्ययमेव त्रिलोचनः ॥ ३७ ॥  
 धादमेते पुसर्वे पुदत्तं कोटिशुभं भवेत् ॥ स्मरणादपि पापानि यत्रं त्रिस्तत्रानृप ॥ ३८ ॥  
 श्रीपर्णाचनदी पुण्या व्यासतीर्थं मनुत्तमम् । तथामत्स्यनदी काराशिवघारा तथैव च ॥  
 भवतीर्थं च विख्यातं पुण्यतीर्थं च शाश्वतम् । पुण्यं रामेश्वरं तद्वद्रेषा पुष्पलं पुम् ॥ ४० ॥  
 भंगारकं च विख्यातमात्मदर्शमलं युम् । यत्सदा ते श्वरं तद्वत्तथा गोकामुखं पुम् ॥ ४१ ॥  
 गोवर्द्धनं हरिश्चन्द्रपुरं चन्द्रं पृथक् पुम् । सहस्राक्षं हिरण्याक्षं तथा च कदली नदी ॥ ४२ ॥  
 नामधेयानि च तथा तथासौ मित्रिसंगतम् । इन्द्रनीलं महानादं तथा च प्रियमेलकम् ॥ ४३ ॥  
 एतान्यपि सदा धाद्रे प्रशस्तान्यधिकानि च । एते पुसर्वे देवानां सांनिध्यं पश्यते यतः ॥ ४४ ॥  
 दानमेते पुसर्वे पुभवेत्कोटिशताधिकम् । यादुदाचनदी पुण्या तथा सिद्धघटं शुभम् ॥ ४५ ॥  
 तीर्थं पाशुपतं चैव नदीपर्यटिका तथा । धादमेते पुसर्वे पुदत्तं कोटिशतोत्तम् ॥ ४६ ॥  
 तथैव पंचतीर्थं च यत्र गोदावरी नदी । युता लिङ्गसहस्रेण सव्येतरजलाबहा ॥ ४७ ॥  
 जामदग्न्यस्य तत्तीर्थं मोदायतनमुत्तमम् । प्रतीकस्य भयात्सिद्धा यत्र गोदावरी नदी ॥  
 तीर्थं तद्वज्रकव्यानामप्सरोगणसंयुतम् । धादामिदानं कार्यं च तत्र कोटिशताधिकम् ॥  
 तथा सहस्रलिङ्गं च राघवेश्वरमुत्तमम् । सैन्द्रकालानदी पुण्या तत्र शक्रो गतः पुरा ॥ ५० ॥  
 निहत्य नमुवि मित्रं तपसा स्वर्गमाप्तवान् । तत्र दत्तं नरैः धादमनंतकलं भवेत् ॥  
 पुष्करं नाम च तीर्थं शालग्रामं तथैव च । शोणपातश्च विख्यातो यत्र घैश्वानराणां ॥  
 तीर्थं सारस्यतंचैव स्यामितीर्थं तथैव च । मलंदरानदी पुण्या कीशिकी चन्द्रकांतया ॥ ५३ ॥  
 विदर्भाचाधवेगाचपयोष्णी प्राङ्मुखा परा । कावेरी चोत्तरांगा च तथा जालंधरो गिति ॥  
 एतेषु धादतीर्थेषु धादमानंत्यमश्नुते । लोहदंडं तथा तीर्थं चित्रकूटस्तथैव च ॥ ५५ ॥  
 दिव्यं सर्वत्र गंगायास्तथानवास्तं शुभम् । कुन्जाक्षकं तथा तीर्थं मुर्वशी पुलिनं तथा ॥  
 संसाम्पोचनं तीर्थं तथैव सहगमोचनम् । एतेषु पितृतीर्थेषु धादमानंत्यमश्नुते ॥ ५७ ॥  
 अट्टहासं तथा तीर्थं गौतमेश्वरमेव च । तथा वासिष्ठतीर्थं च मारुतं च ततः परम् ॥ ५८ ॥  
 पिंडारकं च विख्यातं शंखोद्धारं तथैव च ॥ ५९ ॥  
 तथा च बदरी तीर्थं सर्वतीर्थं श्वरेश्वरम् ॥ ६० ॥

वसुधाराह्वयतीर्थरामतीर्थतथैवच । जयंती चिजया चैव शुक्लतीर्थतथैवच ॥ ६१ ॥  
 एतुश्चाद्वप्रदाताः प्रयांतिपरमंपदम् । तीर्थं मातृगृहं नाम करवीरपुरं तथा ॥ ६२ ॥  
 सतगोदावरीनामसर्वतीर्थेश्वरेश्वरम् । तत्रश्चाद्वंप्रदातव्यमनंतफलमीप्सुभिः ॥ ६३ ॥  
 कोकटपुगयापुण्यापुण्यं राजगृहं यनम् । चयनस्याध्रमंपुण्यं नदीपुण्यापुनः पुना ॥ ६४ ॥  
 विषयाराधनंपुण्यं नदीयातुपुनः पुना । यत्र गाधाविचरति ब्रह्मणा परिकीर्तिता ॥ ६५ ॥  
 एतुश्चाद्वह्वः पुत्राय चैकोऽपि गयो मज्जेत् । यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा नृपमुत्तुजेत् ॥ ६६ ॥  
 एतुश्चाद्वविचरति तीर्थेऽप्यायतनेषु च । सर्वे मनुष्या राजेंद्रकीर्तयंतः समागताः ॥ ६७ ॥  
 किमस्माकं कुले कश्चिद्द्वयांयास्यति यः सुतः । प्रीणयिष्यति तान्गत्वा सप्तपूर्वांस्तथापरान्  
 मातामहानामप्येवं धृतिरेषाचिरंतनी । गंगायामस्थिनिचयं गत्वा क्षेपयत्यति यः सुतः ॥  
 निलैः सताष्टभिर्वापि द्वास्त्यते च जलं जलम् । अरण्यप्रितये वापि पिंडदानं करिष्यति ॥  
 प्रथमं पुष्करारण्ये नैमिषे तदनंतरम् । धर्मारण्यं पुनः प्राप्यश्चाद्वं भक्त्या प्रदास्यति ॥ ७१ ॥  
 गयायां धर्मं पृष्ठे वा सरसि ब्रह्मणस्तथा । गयाशीर्षं घटे चैव पितॄणां वृत्तमक्षयम् ॥ ७२ ॥  
 यजन्तुत्या निषादं यस्त्वध्वानं परिसर्पति । नरकस्थान् पितॄन्सोऽपि स्वर्गं नयति सत्वरम् ॥  
 कुले तस्य न राजेंद्र प्रेतो भवति फलान् । प्रेतत्वं मोक्षमात्रं च पिंडदानाद्यगच्छति ॥ ७४ ॥  
 एको मुनिस्तान्नकराग्रहस्तो ह्याग्नेषु मूले सलिलं ददाति ।  
 आन्नाद्यं सिकाः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्वयार्थं करी प्रसिद्धा ॥ ७५ ॥  
 गयायां पिंडदानं स्य नान्यदानं विशिष्यते । एकेन पिंडदानेन तृप्तास्ते मोक्षगामिनः ॥ ७६ ॥  
 धान्यप्रदानं प्रवरं वदंति वसुप्रदानं च तथा मुनीन्द्राः ।  
 गयासु तीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुं प्रवरं वदंति ॥ ७७ ॥  
 धार्मिना सुवचिना महाचलमहानदी । येतु पश्यंति तां गत्वा मानसं दक्षिणोत्तरे ॥  
 नम्यं द्विजमुल्लेभ्यः प्रातर्तैर्जन्मनः फलम् । ययदिच्छति वैर्मर्त्यंस्तत्तदा प्रोत्य संशयम् ॥  
 नूद्देशतः प्रोक्तस्तीर्थानां संप्रहोमया । यागीप्रोऽपि न शक्नोति विस्तरात्किमुमानुयः ॥  
 त्वं तीर्थं दयातीर्थं तीर्थं मिन्द्रियनिग्रहः । वर्णाधर्माणां गेहेऽपि तीर्थं शम उदाहृतम् ॥  
 सुतीर्थं पुनश्चाद्वं तत्कोटिगुणमिष्यते । गयायां यत्तु वै धाद्वं तच्छाद्वमप्यर्गदम् ॥

यस्मात्तस्मात्प्रयत्नेनतीर्थं श्राद्धं विधीयते । प्रातःकालो मुहूर्तः खीन्संगवस्तावदेव ॥  
 मध्याह्नं मुहूर्तः स्यादपराहस्ततः परम् । सायाह्नं मुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् ॥  
 राक्षसी नाम सा घेला गहिता सर्वकर्मसु । अहो मुहूर्ता व्याख्याता दशपंच सर्वदा ॥  
 तत्राष्टमो मुहूर्तः सकालः कुतपः स्मृतः । मध्याह्नात्सर्वदायस्मान्मंदी भवति मास्कः ॥  
 तस्मादनंतफलदस्तत्रारंभो विशिष्यते । खट्वापात्रं च कुतपस्तथा नैपालकं यलः ॥ ८१ ॥  
 यकमंदर्भास्तिलागाधोर्दोहित्रश्चाष्टमः स्मृतः । पात्रं कुतिस्रमित्याहुस्तस्य तत्तापकारिणः ॥  
 अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतपा इति विश्रुताः । ऊर्ध्वं मुहूर्तारं कुतपान्मुहूर्तं च चतुष्टयम् ॥ ८२ ॥  
 मुहूर्तपंचकं चैव स्वधावाचनमिष्यते । विष्णुदेहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णतिलास्तथा ॥  
 श्राद्धस्य लक्षणं कालमिति प्राहुर्मनीषिणः । तिलोदकांजलिर्देयोजलांते तीर्थवासिभिः ॥  
 सदर्मदस्तेनैकेन गृहे श्राद्धं गमिष्यति । पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापघनाशनम् ॥ ८३ ॥  
 ब्रह्मणा चैव कथितं तीर्थं श्राद्धानुर्कार्त्तनम् । भृणोतियः पडेद्वापि धीमान्संजायते नटः ॥  
 श्राद्धकाले च यत्कल्यं तथा तीर्थं निवासिभिः । सर्वपापोपशांत्यर्थं मलक्ष्मीनाशनं मतम् ॥  
 इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं मद्रापातकनाशनं च ।  
 ब्रह्माकर्ण्यैरभिपूजितं च श्राद्धस्य माहात्म्यमुवाच तज्ज्ञाः ॥ ८५ ॥  
 इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे श्राद्धप्रकरणं नाम एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

सोमवंशवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

सोमवंशः कथं जातः कथं याव विशारद । तदंशे केन राजानो बभूवुः कीदृशवर्धनः ॥  
 पुलस्त्य उवाच ।

आदि पौत्ररूपापर्वमग्निः सर्गविधीपुरा । अनंतर्जनामतपः सृष्ट्यर्थं तत्तवादिभ्युः ॥ १ ॥



यदानन्दकरं ब्रह्म भगवन्कलेशनाशनम् । ब्रह्मरुद्रेन्द्रसूर्याणामभ्यन्तरमतीन्द्रियम् ॥ ३ ॥  
 शान्तिरुत्थात्ममनसातद्विभिः संयमेस्थितः । माहान्भ्यन्तपसोयागिण्यमानन्दकारकम् ॥  
 यस्माद्वंशपतिः साङ्गं समये तदधिष्ठितः । तदृष्ट्वाद्यष्टसोमेनतस्मात्सोमोऽभवद्विभुः ॥ ५ ॥  
 अयमुग्राघनेत्राभ्यां जलंतवात्रिसंभवम् । योनयद्विभ्वमखिलं ज्योत्स्नयासचराचरम् ॥  
 तद्दिशोजगद्गुस्तत्रस्वरूपेणास्तद्वच्छयाः । गर्भोभूत्प्योदरेतासांस्थितः सोऽप्यत्रिसंभवः ।  
 आशाश्च मुमुयुर्गर्भमशक्ता धारणे ततः । न्यमाद्याथाथ तं गर्भमेकीकृत्य चतुर्मुखः ॥ ८ ॥  
 युवानमकरोद्गृह्णा सयांयुधधरं नगम् । स्यंदनेऽथ सहस्रमेन वेदशक्तिमये प्रभुः ॥ ९ ॥  
 धारोप्यलोकमनयदात्मीयंसपितामहः । ततोब्रह्मविभिः श्रोतंरस्मन्मन्यार्माभयत्ययम् ॥  
 ऋषिभिर्द्वैषगंधर्वैरप्सरसोभिस्तर्धेवच । स्न्यमानस्य तन्मयाभूदधिकं महदंतम् ॥ ११ ॥  
 तेजोपितानादभवद्गुपिद्विष्योर्धर्षागणः । तद्गानिगधिकानस्माद्रार्जोभयतिसयंश ॥ १२ ॥  
 तेनोर्धर्षाशः सोमोऽभूद्द्विजेप्यपि हि गण्यते । वेदधाम्ना रसधायं यद्विदंमंडलंशुभम् ॥  
 क्षायते धर्षते चैव शुक्लेकृष्णेचसवंश । विशानि च तथा सत दक्षः प्राचेतसां दक्षी ॥  
 रुलायण्यसंयुक्तास्तस्मैकन्याःसुयचंसः । ततः शक्तिसहस्राणांसहस्राणिदशीपतु ॥ १५ ॥  
 नराधकार्यातांशुर्षिष्णुध्यानैकतपसः । ततस्तुष्टध्वभगवांस्तस्मै नागयणोहतिः ॥ १६ ॥  
 परंक्षुणीप्यचोपाच परमात्मा जनार्दनः । ततो यमे परं सोमः शरत्लोके यजाम्यहम् ॥  
 तत्पक्षमेव भोकारो भवन्तु मममन्दिरे । राजमये मुग्गजा ब्रह्मायायेत्यनुर्षिधाः ॥ १८ ॥  
 रक्षपालःसुरोऽस्माकमास्तांशूलधरोहरः । तथेत्युक्तः समाज्जतेराजमूयंतुर्षिष्णुना ॥ १९ ॥  
 होतात्रिभृंगुरध्वर्गुरुद्रातायचतुर्मुखः । प्रप्रत्यमगमस्तस्य उपद्रष्टा इति स्वयम् ॥ २० ॥  
 सप्तन्याःसर्वदेवास्तुराजसूयविधिस्मृतः । पसपोऽप्यर्षयस्त्वड्विभ्येदेवास्तर्धेपच ॥ २१ ॥  
 त्रैलोक्यं दक्षिणातेनमृत्पिण्यःप्रतिपादिता । सोमप्राप्याथदुप्राप्यमैध्वयं गृष्टिस्तनून् ॥

सतलोकैकनाथत्वं प्राप्तम्यतउता तदा ॥ २३ ॥

पदाचिदुद्यानगतामपश्यदनेकपुष्पाभरणोपसोभाम् ।

पृथग्रितंपल्लवभास्वेदी पुष्पावभगेऽप्यनिदूषन्तार्गम् ।

भाषां च तां देवगुरोरनंगवाजाभिरामायतचाक्षनेशम् ॥ २४ ॥

तारां स ताराधिपतिः स्मरार्तः केशेषु जग्राह विविक्तभूमौ ।  
 सापि स्मरार्ता सहते न रमे तद्रूपकांत्या हृत्मानसैव ॥ २५ ॥  
 चिरं विहृत्याथ जगाम तारां विधुर्गृहीत्वा स्वगृहं ततोऽपि ।  
 न तृप्तिरासौ तत्स्वगृहेऽपि तस्य तारानुरक्तस्य सुखगमेषु ॥ २६ ॥  
 बृहस्पतिस्तद्विरहाग्निदग्धस्तद्वयाननिष्ठैकमना यभूव ।  
 शशाङ्क शापं न च दानुमस्मै न मंत्रशस्त्राग्निविप्रेत्नेकैः ॥ २७ ॥  
 तस्यापकृतं विविधै रूपायैर्नैवामिचारैरपि वागर्घीशः ।  
 स याचयामास ततस्तु देवं सोमं स्वभार्यार्यमनंगतप्तः ॥ २८ ॥  
 स याचयमानोऽपि ददौ न भार्या बृहस्पतेः कामवशेन मोहितः ।  
 महेश्वरेणाथ चतुर्मुखेन साध्यैर्मरुद्भिः सह लोकपालैः ॥ २९ ॥  
 ददौ यदा तां न कथंचिद्विदुस्तदा शिवः कोपपरो यभूव ।  
 यो वामदेवः प्रथितः पृथिव्यामनेकवृद्धार्चितपादपद्मः ॥ ३० ॥  
 ततः स शिष्यो गिरिशः पिनाकी बृहस्पतेः स्नेहवशानुययः ।  
 धनुर्गृहीत्वा जगत्पुरारिर्जगाम भूतेश्वरसिद्धजुष्टः ॥ ३१ ॥  
 युद्धाय सोमेन विशेषद्रीप्ततृतीयनेत्रानलभीमवक्त्रः ।  
 सहैव जग्मुश्च गणेश्वराणां विंशाधिका पद्मिण्यो प्रमूर्तिः ॥ ३२ ॥  
 यक्षेश्वराणां सगणैरनेकैर्युतोऽन्वगात्स्यन्दनसंस्थितानाम् ।  
 घेतालयक्षोरगकिन्नराणां पद्मेन चैकेन तथार्युदानाम् ॥ ३३ ॥  
 लक्षैस्त्रिभिर्द्वादशभी रथानां सोमोऽप्यगात्तत्र विबुद्धमन्युः ।  
 शनैश्चरांगारकवृद्धतेजा नक्षत्रदैत्यासुरसैन्ययुक्तः ॥ ३४ ॥  
 जग्मुर्मयं सप्ततयैव लोकाधरावनद्गोपसमुद्रगर्भाः ।  
 ससोममेवाम्यगमत्पिनाकी गृहीत्वा द्रीप्तास्त्रविशालवह्निः ॥ ३५ ॥  
 अपाभयद्वीपजभीमसोमसैन्यद्वयस्याथ महाहवोऽसौ ।  
 भशेपसत्पक्षयवृष्टप्रवृद्धस्तीक्ष्णप्रधानोज्ज्वलनैकरूपः ॥ ३६ ॥

शस्त्रैरधान्योन्यमशेषसैन्यद्वयोर्जगामक्षयमुपग्रीहणैः ।  
 पतन्ति शस्त्राणि तथोज्ज्वलानि स्वभूमिपातालमलं ददन्ति ॥ ३७ ॥  
 रुद्रः क्रोधाद्ब्रह्मशिरोमुमोचसोमोऽपिसोमास्त्रममोघवीर्यम् ।  
 तयोर्निपातेन समुद्रभूम्योर्यांतरिक्षस्य च भीतिरासीत् ॥ ३८ ॥  
 तदा सुयुद्धं जगतां क्षयाय प्रवृद्धमालोऽन्यपितामहोऽपि ।  
 ततः प्रविश्याथ कथंचिदेव निवारयामास सुरैः सहैव ॥ ३९ ॥  
 अकारणं किं क्षयरुज्जनानां सोम त्वयापीदमकार्यकार्यम् ।  
 यस्मात्परस्त्रीहरणाय सोम त्वया कृतं युद्धमतीयमीमम् ॥ ४० ॥  
 पापग्रहस्त्वं भविता जनेषु पापोऽस्यलंघहिमुखाशिनां त्वम् ।  
 भार्यामिमामर्षयचाक्षपतेस्त्वं प्रमाणयन्नेव मदीयवाचम् ॥ ४१ ॥  
 तथेति चोवाच हिमांशुमाली युद्धादपाक्तामवतः प्रशांतः ।  
 बृहस्पतिस्तामथ गृह्य तारां हृष्टो जगाम स्वगृहं च रुद्रः ॥ ४२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

संयत्सरस्यातिद्वादशादित्यसन्निभः । दिव्यधीताम्यरधरोदिव्याभरणभूषितः ॥ ४३ ॥  
 शरीरविनिष्कन्तः कुमारस्सूर्यसन्निभः । सर्वार्थशास्त्रविद्विद्वान्द्विद्वान्द्विद्वान्द्विद्वान्द्विद्वान्द्विद्वान् ॥ ४४ ॥  
 तामयद्राजपुत्रोऽर्थविभ्रुतो राजवैद्यकः । राहः सोमस्य पुत्रत्वाद्राज पुत्रो युधः स्मृतः ॥ ४५ ॥  
 तानान्तु सतेजांसि सर्वाण्येवाक्षिपदुबली । ब्रह्माद्यास्तत्र चाजमुर्देवा देवर्षिभिः सह ॥ ४६ ॥  
 तस्मिन्पुत्रे गृहे सर्वजातकर्मोत्सवेतदा । पञ्चदुस्ते सुरास्तारां केन जातः कुमारकः ॥ ४७ ॥  
 तः सा लज्जिता तेषां न किंचिद्वदत्तदा । पुनः पुनस्तदा पृष्टा लज्जयन्ती वरांगना ॥ ४८ ॥  
 सोमस्येति विरादाहततो गृह्णाद्विधुः सुतम् । बुध इत्यकरोन्मा मप्रादाद्राज्यं च भूतले ॥ ४९ ॥  
 तमिपेकं ततः कृत्वा प्रदानमकरोद्विभुः । ब्रह्मार्थं प्रदायाथ ब्रह्मा व्यर्षिभिर्युतः ॥ ५० ॥  
 शयतां सर्वभूतानां तत्रैषांतरधीयत । इलोदरे च धर्मिष्ठं बुधः पुत्रमजीजनत् ॥ ५१ ॥  
 तस्योपशतं सा प्रमकरोद्यस्स्यते जसा । पुरुषा इति श्रुत्वा तः सर्वलोकमस्मृतः ॥ ५२ ॥  
 तस्यैव त्रिंशद्विंशत्येव साराव्यपितामहम् । लोकैर्भयं मगाद्राजन्तस्तद्भीषति स्तदा ॥ ५३ ॥



रजिरारोधयामासेनारोणेमकल्मषम् । तपसानोपितोविष्णुर्वर्प्रादान्महीपतेः ॥ ७८ ॥  
 देवासुरमनुष्याणामभूत्सविजयीतदा । अथ देवासुरं युद्धमभूद्धर्षशतत्रयम् ॥ ७९ ॥  
 प्रह्लादशक्रयोर्भीमं न कश्चिद्विजयी तयो । न्नोदेवामुरैःपृष्टःपृष्ट्येवधत्तुर्मुखः ॥ ८० ॥  
 भीमयोर्विजयीकःस्याद्रजिर्यत्रेतिसोऽध्वरीन् । जयायप्रार्थिनोराजासहायस्त्यंभवस्वनः ॥  
 दैत्यैःप्राहयदिस्यामीधोभवामितनस्त्वल्म । नासुरैःप्रतिपन्नंतत्प्रतिपन्नंसुरैस्तदा ॥ ८१ ॥  
 स्वामीभवत्यमस्मात्फलनाशायविद्विषः । न्नोचिनाशिताःसर्गेयेवध्याघ्नपाणिनः ॥ ८२ ॥  
 पुत्रत्वमग्नस्तुष्टस्तत्प्रेद्रःकर्मणा ततः । दत्त्वेन्द्राय पुनराज्यं जगाम तपसे रजिः ॥ ८३ ॥  
 रजिपुत्रैस्तदाछिन्नंयलादिद्रस्यैव यदा । यज्ञभागश्च राज्यंचतपोयलगुणान्वितैः ॥ ८४ ॥  
 राज्यन्नष्टस्ततः शक्रो रजिपुत्रनिपीडितः । प्राहवाचस्पतिर्दीनःपीडितोऽस्मिरजेःसुतैः ॥  
 यज्ञभागोराज्यंमेपीडितस्यबृहस्पते । राज्यलाभायमेयत्नंविधत्स्यधिपणाधिप ॥ ८५ ॥  
 ततोबृहस्पतिः शक्रमफरोदुषलद्विषितम् । प्रहशांसिविधानेनर्षाष्टिकेनचकर्मणा ॥ ८६ ॥  
 गत्वाधमोदयामासरजिपुत्रान्बृहस्पतिः । जिनधर्मसमाधाययेद्वाह्यंसाधर्मवित् ॥ ८७ ॥  
 वेदत्रयीपरिभ्रष्टांश्चकारधिपणाधिवः । वेदयाह्यान्परिहृत्यहेतुवादसमन्वितान् ॥ ८८ ॥  
 जघानशक्रोवज्रेणसर्पान्धर्मंवहिष्कृतान् । नहुयस्यप्रवक्ष्यामिपुत्रान्सतैवधार्मिकान् ॥ ८९ ॥  
 यतिर्दयातिशयातिरुहसःपरण्वय । भ(भा)यतिर्विपतिश्चैवसतैर्यशवर्जनाः ॥ ९० ॥  
 यतिःकुमारभावेऽपियोर्मन्त्रैश्चानसोऽभवत् । ययातिरकरोद्राज्यधर्मकशरणःसदा ॥ ९१ ॥  
 शर्मिष्ठातस्यभार्याभूदुद्विहतातृपपर्वणः । भार्गवस्यात्मजाचैवदेवयानीचमुनता ॥ ९२ ॥  
 ययातैःपंचदायादास्तान्प्रवक्ष्यामिनामतः । देवयानीयदुपुत्रंतुयंसुंचाप्यजीजनत् ॥ ९३ ॥  
 तयादुष्टमर्षं (नं) पूंशर्मिष्ठाजनपत्सुतान् । यदुःपूरुषभरतस्तेवैयंशविबर्जनाः ॥ ९४ ॥  
 पूरोर्वशं प्रवक्ष्यामिपुत्रजातोऽसिपार्थिव । यदोस्तुयादयाजातायप्रतोयलकेशवी ॥ ९५ ॥  
 भागवतारणार्थाय पांडवानां हितायच । यदोःपुत्रा यभूवुध पंचदेवमुतोपमाः ॥ ९६ ॥  
 सहस्रजित्थान्येष्टःक्रोष्टानीलोञ्जिकोरघुः । सहस्रजितोदायदःशतजिग्रामपार्थिवः ॥ ९७ ॥  
 शतजित्थदायादास्त्रयःपरमधार्मिकाः । हृदयश्च हयश्चैव तथा तालहयश्च यः ॥ ९८ ॥  
 हृदयस्यनुदायादोधर्मनेत्रःप्रतिश्रुतः । धर्मनेत्रस्यकुंतिस्तुसंहतस्तस्यवात्मजः ॥ ९९ ॥

संहतस्यतुदायादोमहिष्मात्रामपार्थिवः । आसीन्महिष्मतःपुत्रोभद्रसेनःप्रतापवान् ॥  
 वाराणस्यामभूदाजाकथितःपूर्वमेवहि । भद्रसेनस्यपुत्रस्तुदुर्दमोनामधार्मिकः ॥ १०३ ॥  
 दुर्दमस्यसुतोभीमोधनकोनामवीर्यवान् । धनकस्यसुताह्लासंश्चत्वारोलोकविधुताः ॥  
 वृताग्निःवृत्तवीर्यश्चवृत्तधर्मातथैवच । वृत्तीजांश्चचतुर्योऽभूत्तृत्ववीर्याच्चसोऽर्जुनः ॥ १०४ ॥  
 जातोबाहुसहस्रेणसप्तद्वीपेश्वरोनृपः । यर्षायुतंतपस्तेपेदुध्वरं पृथिवीपतिः ॥ १०५ ॥  
 दक्षमाराधयामासकार्तवीर्योऽत्रिसंभवम् । तस्मैदत्तोवरान्प्रादाद्यतुरःपुण्योत्तमः ॥ १०६ ॥  
 पूर्यबाहुसहस्रं तु सपयैराजसत्तमः । अधर्मं ध्यायमानस्यभीतिश्चापिनिवारणम् ॥ १०७ ॥  
 युद्धेनपृथिवींजित्वाधर्मैणावाप्यवेयम् । संप्रामेयतमानस्यवधश्चैवाधिकाद्भवेत् ॥  
 एतेनेवंयसुमतीसतद्रोपासपसना । सतोदधिपरिक्षिप्ताक्षात्रेणविधिनाजिता ॥ ११० ॥  
 जग्मे बाहुसहस्रं च दृष्टस्तस्यर्धामतः । सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन्भूरिवृक्षिणाः ॥  
 सर्वैकांचनयूपास्तसर्वैकांचनवेदिषाः । सर्वेदेवैश्चसंप्राप्तायिमानस्यैरलङ्कृतैः ॥ ११२ ॥  
 गंधर्वैर्यस्यरोभिश्चनित्यमेवापिसेविताः । यस्त्वप्यग्रेजर्गोमाथागंधर्वैर्नारदस्तथा ॥ ११३ ॥  
 कासंशोर्दस्यराजर्वर्महिमानंनिरीक्ष्यसः । न नूनंकार्त्तवीर्यंस्वगतिंयास्यंतिपार्थिवाः ॥  
 यज्ञेर्दानैस्तपोभिश्च विप्रमेण धृतेनच । सप्तद्वीपाननुचरन्त्येमेन पयनोपमः ॥ ११५ ॥  
 पंचमूर्तिसहस्राणिवर्षाणांचनराधिपः । सतद्वापपृथिव्याश्चचक्रयतीं यभूयद् ॥ ११६ ॥  
 सपयपशुपालोऽभूत्क्षेत्रपालःसपयहि । सपयवृष्टपापत्रंभ्यायोगित्यादुर्जुनोऽभवत् ॥  
 योऽसौबाहुसहस्रेणज्याघानकश्चित्थवा । भातिरश्मिसहस्रेणशार्दूलेनैवभास्करः ॥ ११८ ॥  
 एतन्नाममनुष्येभूमाहिष्मत्यांमहाधुनिः । एतज्जंगममुदस्यप्रावृट्कालेनजैतवे ॥ ११९ ॥  
 म्नाडनेस्यसुखायैवप्रतिश्रोतोमर्दापनिः । म्नाड्याःप्रोडितास्तेनप्रतिक्रोमिमाम्निता ॥  
 ऊर्मिबुद्बुदिमात्रसायंकिमन्येतिममंदा । एषपयमनोवन्देत्थयगाहेन्महापयम् ॥ १२१ ॥  
 करेजोदधृत्यैवंतुकार्मिर्प्रापनेननु । तस्यबाहुसहस्रेणशोन्यमायेमहोदधौ ॥ १२२ ॥  
 भवत्किंलोनानिस्त्वेषाःपातन्त्यस्यमहासुगः । तदूहसोनवकिता भमृतांतादाशक्तिः ॥  
 क्तामिह्मृदांनोभवतिचमहोत्साः । एतन्वाचनिशेरावर्षप्रतिसायकान् ॥ १२४ ॥  
 एव पन्था धनुर्गृह्य उरिसर्गं पंचविंशरीः । लक्ष्मीं मोहयित्वा तु सफ्रं राघवं कथ्य ॥

निर्जित्यवद्वात्यानीयमाहिप्सत्यांयवंधत्म् । तनोगनोऽहंतम्याप्रेत्रजुनंसंप्रसादयन् ॥  
मुमोचराजन्पीत्रमेसख्यंहृत्पात्तपार्थिव । नम्यबाहुसहस्रस्यवभूवज्यातलस्वनः ॥ १२७ ॥  
युगांतानेःप्रवृत्तस्ययथाज्यातलनिःस्वन । भटोयलविधेर्वीर्यभार्गवःसयदाच्छिनत् ॥  
मृधे सहस्रं बाहूनांहेमतालवनयथा । यंचसिष्ठन्मुम्कुद्रोह्यजुनंशतवान्विभुः ॥ १२८ ॥  
यस्माद्धनं प्रदधं ते विधुतं मम हैहय । तस्मात्तेदुःकृतं कर्मकृतमन्योहनिष्यति ॥ १२९ ॥  
छित्वाबाहुसहस्रंतेप्रमध्यतरसायली । तपस्वीग्राह्यमस्त्वांयवधिष्यतिसभार्गवः ॥ १३० ॥  
तस्य रामोऽथ हंतासीन्मुनिशपेनधीमतः । नम्य पुत्रशतं त्वासीत्पंच तत्र महात्पाः ॥  
हताब्जालिनःशूराधर्मात्मानोमहाबल । शूरसेनश्शृगश्च धृष्टो चै.कृष्ण एवच ॥ १३१ ॥  
जयद्रुध्वजःसयैकतांभवन्तिश्चरसापतिः ॥ जयध्यजस्यपुत्रस्तुतालजंघोमहाबलः ॥ १३२ ॥  
तस्यपुत्राश्शतान्येव तालजङ्घा इतिस्मृताः । नेपां पंचकुलान्यासन्हैहयानांमहात्मनाम् ॥  
पीतिहोत्राश्चसंजाताभोजाश्चावंतयस्तथा । तुंडकेराश्चविक्रांतास्तालजंघाःप्रकीर्तिताः ॥  
पीतिहोत्रसुतश्चापिभन्तोनानामवीर्यवान् । दुर्जयस्सम्यपुत्रस्तुयभूवामित्रकर्षणः ॥ १३३ ॥  
सद्भावेनमहाराजःप्रजाधर्मेणपालयन् । कार्तवीर्याजुनोनामप्रजायाहुसहस्रधृत् ॥ १३४ ॥  
येनसागरपर्यन्ताधनुषानिर्जितामही । यस्तस्यकीर्तयेन्नामकल्पमुत्थायमानयः ॥ १३५ ॥  
तस्य वित्तनाशःस्यान्नष्टं बलभते पुनः । कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः ॥

यथा यथा यथा दाता स्वर्गलोके महीयते ॥ १४० ॥

इति श्रीपाद्मपुराणेप्रथमेऽष्टाध्याये यदुवंशकीर्तनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

क्रोष्टुवंशविस्तारवर्णनम् ।

पुलस्त्य उवाच

नेष्टोऽष्टुत्वंराजेन्द्रवंशमुत्तमपूरुषम् । यस्यान्वयायेसंभूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्बहः ॥  
नेष्टोरेवामवत्पुत्रोवृजिनीयान्महायशः । तस्यपुत्रोऽभवत्सातिःपुराणुस्तत्सुतोभवत्

कुशकोरभवत्पुत्रो नाम्नाचित्ररथोऽस्यत् । शशविदुरितिख्यातश्चक्रयतीवभूवह ॥ ३ ॥  
 अत्रानुवंशश्लोकोऽयंगीतस्तस्यपुराऽभवत् । शशविंदोस्तुपुत्राणांशतानामभवच्छत्रम् ॥  
 धीमतांचास्त्रपाणां भूद्धिविणतेजसाम् । तेषांशतप्रधानानांपृथुसाहामहाबलाः ॥ ५ ॥  
 पृथुधवाःपृथुयशाःपृथुतेजाःपृथुद्वजः । पृथुकीर्तिःपृथुमतो राजानःशशविद्वजः ॥ ६ ॥  
 शंसंति च पुराणज्ञाः पृथुधवसमुत्तमम् । ततश्चास्याभवत्पुत्र उशनाःशश्रुतापनः ॥ ७ ॥  
 पुत्रश्चोशनसस्तस्यशिनेयुनांम सत्तमः । आसीच्छिजेयोःपुत्रो यः सरस्वमकवचोमतः ॥  
 निहस्परस्वमकवचो युद्धेयुद्धयिशारदः । धन्विनोविविधैर्यागेर्याप्यपृथिवीमिमाम् ॥  
 अभ्यमेधेऽददाद्राजाब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणाम् । जज्ञेतुस्वमकवचात्परावृत्पर्यावहा ॥ १० ॥  
 तत्पुत्राजह्निरपंच महावीर्यपराक्रमाः । रुक्मेपुःपथुस्वमश्च ज्यामघःपरिषोहतिः ॥ ११ ॥  
 परिघंचहरिचैव धिदेहेऽस्थापयत्पिता । रुक्मेपुरभवद्राजापृथुस्वमस्तथाध्वजः ॥ १२ ॥  
 तान्यांमप्राजितोराज्याज्यामघोऽवसदाधमे । प्रशांतश्चाधमस्तुम्राह्मणेनविवोषितः ॥ १४ ॥  
 जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी । नर्मदातटपृष्ठाकार्कीकेवलंवृत्तिकर्षितः ॥ १५ ॥  
 ऋक्षवंतंगिरिगत्वामुक्तमन्यैरुपाविशत् । ज्यामघस्याभवद्रायां शैव्यापरिणतासती ॥ १७ ॥  
 अपुत्रोऽप्यभवद्राजाभार्यामन्यामचिन्तयन् । तस्यासौद्विजयोयुद्धेतत्रकन्यामवाप्यसः ॥  
 भार्यामुवाचसंत्रासात्स्नुपेवंतेशुचिस्मिते । एवमुबत्याब्रवीद्देनकस्यकेयंस्तुपेतवै ॥ १७ ॥

राजोवाच ।

यस्तेजनिष्यतेपुत्रस्तस्यभार्या भविष्यति । तस्याःसा तपसोमेण कन्यायाःसंप्रसूयत ॥  
 पुत्रंविदमंसुभगं शैव्यापरिणतासती । राजपुत्र्यानुविद्वांसौस्तुपायां कथर्कोशिकी ॥ १९ ॥  
 लोमपादंवृतीयंतु पुत्रंपरमधार्मिकम् । पश्चाद्विदमोऽजनयच्छूरं रणविशारदम् ॥ २० ॥

लोमपादात्मजो बभूवृत्तिस्तस्य तु चात्मजः ।

कोशिकस्यात्मजश्चेदिस्तस्माच्चेयनृपाःस्मृताः ॥ २१ ॥

१। कुन्तेभृष्टस्तो जज्ञेभृष्टात्सृष्टःप्रतापवान् ।

धनुर्मूर्त्तानिवृत्तिः परवीरहा । निवृत्तिपुत्रोदाशार्होनाम्नासतुविदूरम् ॥ २२ ॥

२। मीमाउजीमृतउच्यते । जीमृतपुत्रोविहतिस्तस्य भामरपुत्रः ॥



त्रयोदशोऽध्यायः ] \* वंशानुवंशस्यर्त्तापुत्रपुत्राणां संक्षिप्तचरित्रवर्णनम् \* ७७

अथभोमरथस्यापिपुत्रोन्नवरथः किल । तस्यचासीद्दशरथः शकुनिस्तस्यचात्मजः ॥ २५ ॥  
 तस्मात्करंभस्तस्माच्चदेवरातोवभूयह । देवक्षत्रोऽभवद्राजादेवरातान्महायशः ॥ २६ ॥  
 देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः । मधुर्नाममहातेजामधोःकुर्यशःस्मृतः ॥ २७ ॥  
 आसीत्कुर्यशःपुत्रः पुरुहोत्रःप्रनाववान् । अंशुर्जज्ञेऽथर्वैर्भ्यां द्रवंत्यांपुरुहोत्रतः ॥ २८ ॥  
 वेत्रकीर्त्यभद्रार्यांशोस्तस्याव्यजापत । सात्यतःसन्धसंपन्नःसात्यतां कीर्तिवर्धनः ॥  
 मांविष्टुष्टिविहायज्यामघस्यमहात्मनः । प्रजावानंतिसायुज्यं गङ्गः सोमस्यधीमतः ॥  
 सात्यतान्सत्यसंपन्नाकौसत्यासुपुत्रेमुनाम् । तेषांगर्गाश्चत्वारोविस्तरेणैषताम्बुषु ॥  
 भजमानस्यसुंजप्यांभाजनामासुतोऽभवन् । सुंजयस्यसुतायांतुभाजकास्तुततोऽभवन् ॥  
 तस्यभाजस्यभार्येहेसुपुत्रातेसुताभ्यहन् । नेमिचक्रकणचैववृष्णिपरपुंजयम् ॥ ३३ ॥  
 तेभाजकाःस्मृतायस्माद्भजमानद्विजजिरे । देवावृधःपृथुर्नाम मधूनां मित्रवर्धनः ॥ ३४ ॥  
 मधुत्रस्त्यभवद्राजाचचारपरमंतपः । पुत्रः सर्वगुणोपेतोममभूयादितिस्पृहन् ॥ ३५ ॥  
 संयोज्यकृष्णमेवाधपर्णाशायाजलंस्पृशन् । सातोयस्पर्शनात्तस्यसान्निध्यनिम्नगाक्षगात् ॥  
 कल्याणक्षरतस्तस्यशुशोचनिम्नगाततः । चित्ताधपरितात्माजगामाधविनिश्चयम् ॥  
 भूत्वागच्छाम्यहंनारीयस्यामेवंविधःसुतः । जायेत तस्मादद्याहंभवाम्यस्यसुतप्रदा ॥ ३८ ॥  
 अथ भूत्वा कुमारी सा क्षिप्रतीपरमंवपुः । श्लापयामास राजानंतामियेषनूपस्ततः ॥ ३६ ॥  
 अथ सा तवमे मासि सुपुत्रे सरितांपरा । पुत्र सर्वगुणोपेतंयन्मुदेवावृधात्परम् ॥ ४० ॥  
 भद्रवंशीपुराणह्युबंतीतिपश्चिद्युतम् । गुणान्देवावृधस्याधकीर्त्तयन्तोमहात्मनः ॥ ४१ ॥  
 यन्मुधेष्टोमनुष्याणां देवैर्देवावृधःसमः । पश्चिःशतंबपुत्राणां सहस्राणि च सततिः ॥ ४२ ॥  
 एतेऽमृतत्वंसंप्राप्तायभ्रोर्देवावृधादपि । यज्ञदानतपोधीमान्ब्रह्मण्यःसुहृदमतः ॥ ४३ ॥  
 कृपांश्चमहातेजाभोजोऽतोऽमृतकावती । शरकान्तस्यदुहितामुपुत्रेचतुरः सुतान् ॥  
 दुर्मुखंभजमानंचश्यामंकंयलवर्हिणम् । कुरुरस्यात्मजोवृष्टिर्वृष्टेऽमृतनयोभृतिः ॥ ४५ ॥  
 कपोतरोमातस्यापितित्तिरिस्तस्यचात्मजः । तस्यासीदुबहुपुत्रस्तुविद्रान्पुत्रोन्नरिःकिल ॥  
 व्यावनेतस्यनामान्यच्चंदनोदककुंडुभिः । अस्वासांदिनिजिपुत्रस्ततोजातःपुनर्वंसुः ॥  
 धपुत्रोऽभिजित्पूर्वमृषिभिःजिज्ञोतोमुदा । अभ्यमेधंतुपुत्रार्थमाज्ञायायनरोचनः ॥ ४८ ॥

तस्यमध्येविचरतःसमामध्यत्समुत्थितः । अन्धस्तुविद्वान्धर्मज्ञोयज्ञदातापुनर्वसुः ॥४६॥  
 तस्यासीत्पुत्रमिथुनंवसोधारिजितःकिल । आहुकश्चाहुर्कोचैवध्यातामतिमतांवर ॥४७॥  
 श्मांश्चोदाहरंत्यत्रश्लोकांश्चातिरसात्मकान् । सोपासंगानुकर्षाणांतनुवाणांवरुधिनम्  
 रथानांमेघघोषाणांसहस्राणिदशैवतु । नासत्यवादिनोमोजानायज्ञानासहस्रदाः ॥४८॥  
 नाशुचिर्नाप्यपिद्वांसोनमोजादधिकोऽभवत् । आहुकांतमनुप्राप्तइत्येपोऽन्ययउच्यते ॥  
 आहुकश्चाप्यवन्तीपुत्रसांचाहुर्को ददौ । आहुकस्यैवदुहितापुत्रीद्वौसमसूयत ॥ ४९ ॥  
 देवकं चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ । देवकस्य सुताश्चैव जहिरे त्रिदशोपमाः ॥ ५० ॥  
 देववानुपदेवश्चसुदेवोदेवरक्षितः । तेषां स्वसारः ससैव वसुदेवाय ता ददौ ॥ ५१ ॥  
 देवकीधृतदेवाचयशोदाचश्रुतिश्रया । श्रीदेवाचोपदेवाव सुरुपाचेति सतमी ॥ ५२ ॥  
 नयोग्रसेनस्यसुताःकंसस्तेपांचपूर्वजः । न्यग्रोधस्तुसुनामाचकंकःशंकुःसुभूष्यः ॥५३॥  
 अन्यस्तुराप्रपालध्वजमुष्टिःसमुष्टिकः । तेषांस्वसारःपंचासन्कसाकंसवतीतथा ॥ ५४ ॥  
 सुरभीराप्रपालीचकंकाचेतिवरांगनाः । उग्रसेनःसहापत्योव्याख्यातःकुकुरोजवः ॥ ५५ ॥  
 भजमानस्यपुत्रोऽभूद्रधिमुख्योविदूरधः । राजाधिदेवःशूरश्चविदूरधसुतोऽभवत् ॥ ५६ ॥  
 राजाधिदेवस्यसुतोऽजज्ञातेवीरसंततो । क्षत्रघ्नतेऽतिनिरतौशोणाभवःश्वेतवाहनः ॥ ५७ ॥  
 शोणाभवस्यसुताःपंचशूरारणविशारदाः । शमीवरराजशर्माचनिमूतःशत्रुजिह्वुविः ॥ ५८ ॥  
 शमीपुत्रःप्रतिक्षत्रःप्रतिक्षत्रस्यचात्मजः । प्रतिक्षत्रसुतोभोजोहृदीकस्तस्यचात्मजः ॥ ५९ ॥  
 हृदीकस्यामवन्पुत्रा दश भीमपराक्रमाः ॥

एतवर्माग्रजस्तेपां शतधन्या च सत्तमः । देवार्हश्च सुभानुश्च भीषणश्च महायलः ॥ ६० ॥  
 अजातश्च विजातश्च करकश्च करंधमः । देवार्हस्य सुतो विद्वाजज्ञेकंयलवर्हिपः ॥ ६१ ॥  
 असमौजास्ततस्तस्यसमौजाश्चसुतावुभौ । अजातपुत्रस्यसुतोऽग्रजायेतसमौजसौ ॥ ६२ ॥  
 समौजःपुत्राविख्यातास्त्रयःपरमधार्मिकाः । सुदंशश्च सुवंशश्च कृष्णइत्यनुनामतः ॥ ६३ ॥  
 अंधकानामिमं वंशं यःकीर्तयति नित्यशः । आत्मनोविपुलवंशंप्रजामाप्नोत्ययं ततः ॥ ६४ ॥  
 गांधारीचैवमाद्रीचक्रौष्टोर्मार्यैवभूयतुः । गांधारीजनयामाससुमित्रंमिश्रवत्सलम् ॥ ६५ ॥  
 पुत्रं ततो ये देवमीदृशम् । वनमित्रंशिनिचैवपंचात्रवृत्तलक्षणाः ॥ ६६ ॥

अनमित्रसुतोनिघ्नोनिघ्नस्यापिचद्वीसुनी । प्रसेनध्वमहावीर्यशक्तिसेनध्वताबुभौ ॥७२॥  
 स्यमन्तकंप्रसेनस्यस्यमणिरत्नमनुत्तमम् । पृथिव्यामणिरत्नानांराजेतिसमुदाहृतम् ॥७३॥  
 इदिरुत्थासुबहुशोमणितंसव्यराजत । मणिरत्नययाचेऽयराजायंशोरित्तमम् ॥७४॥  
 गोविंश्चनतंलेभेशकोऽपिनज्झागसः । कदाचिन्मृगयायातःप्रसेनस्तेनभूषितः ॥७५॥  
 चिळे शपं स शुभाचरुतंसत्येनकेनचित् । ततः प्रविश्य स यिलंप्रसेनोमृक्षमासदत् ॥  
 ऋक्षःप्रसेनंचतथाऋक्षंचापिप्रसेनजित् । आसाद्ययुयुधातेतीपरस्परजयेच्छया ॥७७॥  
 इत्याऋक्षःप्रसेनंचततस्ममणिमादृशत् । प्रसेनंनुहंत्युत्वागोविंदःपरिणामितः ॥७८॥  
 सभ्राजितानुतद्वात्रायादयंश्चतथापरैः । गोविंदेनहतोनूनंप्रसेनोमणिकारणात् ॥७९॥  
 प्रसेनस्तुगतोऽरण्यमणिरत्नेनभूषितः । नंदद्वानिजघानाधनत्यजन्तंस्यमन्तकम् ॥८०॥  
 जघानेयप्रदानेन शत्रुभूतं च वेशयः । इतिप्रयादस्सर्वत्रभ्यातस्सभ्राजिताकृतः ॥८१॥  
 मधर्वाघेणकालेनमृगयानिर्गतः पुनः । यदृच्छयाचगोविंदोविलाभ्याशमधामगत् ॥८२॥  
 ततश्शब्दंयथापूर्वसचक्रेऋक्षराइली । शब्दंश्रुत्वानुगोविंदःखड्गपाणिःप्रविश्यच ॥८३॥  
 अपश्यज्जायवंतं च ऋक्षराजं महायुधम् । ततस्पूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षमतिरंहसा ॥८४॥  
 जायवंतं स जप्राह क्रोधसंरक्तलोचनः । दृष्ट्वाचैनंतथाविष्णुंकर्मभिर्वैष्णवीतनुम् ॥८५॥  
 तुष्टापमृक्षराजोऽपिपिप्पुसूकेनसत्वरम् । ततस्तुभगवांस्तुष्टोघरेणसमरोचयत् ॥८६॥  
 जाम्बवानुवाच ।  
 इदं वक्रप्रहारेणत्यसोमेमरणंशुभम् । कन्याचेयंममसुताभर्तागंत्यामवाप्नुयात् ॥८७॥  
 योऽयंमणिःप्रसेनात्तुहत्याचेवासमानहम् । सत्ययागृह्णातानाधमणिरेशोऽप्रवर्तते ॥८८॥  
 इत्युको जायवंतंवैहत्याचक्रेणकेशवः । कृतकार्योमहाबाहुःकन्यांचैवान्दो(वाशय)तदा ॥  
 ततःसभ्राजितेचैतन्मणिरत्नंसर्वेददौ । यद्वन्धमृक्षराजाचसर्वयादवसन्निधौ ॥८९॥  
 तेनमिष्ट्याप्रवादेनसंतप्तोऽयंजनार्दनः । ततस्तेयादवाःसर्वेवासुदेयमधाव्रुवन् ॥९०॥  
 अस्माकंमनसिह्यासीत्प्रसेनस्तुत्वयाहृतः । एकैकस्यास्तु सुंदर्योदशसभ्राजितः सुताः ॥  
 सज्योत्पन्नास्तुतास्तस्यशतमेकंचविधुताः । विख्याताश्चमहावीर्यामंगकाराश्चपूर्वजः ९३  
 सत्यामतवतीस्यप्राभंगकारस्यपूर्वजा । सुपुत्रस्ताःकुमायंश्चशिनीवालःप्रतापवान् ॥९४॥

भ्रमंगोयुयुधानश्च शनिस्तस्यात्मजोऽभवत् । तस्माद्युगंधराः पुत्राश्शतंतस्य प्रकीर्तिताः ॥  
 अनमित्राह्वयोयोर्वै चिह्न्यातो वृष्णिवंशजः । अनमित्राच्छिनिर्जने कनिष्ठो वृष्णिनंदनः ॥  
 अनमित्राद्यसंजने वृष्णिवोरोयुधाजितः । अन्योचतनयो वीरावृषभश्चित्रएव च ॥ ६३ ॥  
 ऋषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामनिदिताम् । जयंतश्च जयंतीं च शुभां भार्यामविदत् ॥ ६४ ॥  
 जयंतस्य जयंत्यां वै पुत्रः समभवत्ततः । सदा यज्जातिधोरश्च धृतवानतिथिप्रियः ॥ ६५ ॥  
 अक्रूरः सुपुत्रे तस्मात्सुदक्षो भूरिदक्षिणः । रत्नाकन्या च शैव्या च अक्रूरस्तामघातवान् ॥ ६६ ॥  
 पुत्रानुत्पादयामास एकादशमहायवान् । उपलंभं स दालं भमुत्कलं चार्य्यं शैशवम् ॥ ६७ ॥  
 सुधीरं च सदाय क्षंशत्रुभ्रंवारिमेजयम् । धर्मदृष्टिचधर्मं च सृष्टिर्मौलितयैव च ॥ ६८ ॥  
 सर्वं च प्रतिहर्तारो रत्नानां जज्ञिरे च ते ॥ अक्रूरान्छूरसेनायां सुतां द्वौ कुलनन्दनौ ॥ ६९ ॥  
 देवयानुपदेयश्च जज्ञाते देवसंमतौ । अभिन्यां त्रिवनुः पुत्राः पृथुर्धिपृथुरेव च ॥ ७० ॥  
 अभ्यग्रीवोऽभ्ययाहुश्च सुपार्थक्यवेपणौ । रिष्टेनेमिः सुवर्चा च सुधर्मा मृदुरेव च ॥ ७१ ॥  
 अभूमिर्वहुभूमिश्च धविष्ठा ध्रुवणे स्त्रियौ । इमां मिध्याभिशातियो ये दहन्त्यस्य बुद्धिमान् ॥ ७२ ॥  
 न सामिध्याभिशापेन भगिगम्यश्च केनचित् । ऐश्वर्याकी सुपुत्रे पुत्रं शूरमद्भुतमीदृशम् ॥ ७३ ॥  
 मीदृपाज्जहिरे शूरा भोजायां पुरुषा दश । वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकतुंडुभिः ॥ ७४ ॥  
 देवभागस्तथा जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः । अनावृष्टिः कुनिश्चैव ननं विश्वैव स ह्यशः ॥ ७५ ॥  
 श्यामः शर्माकः सप्ताख्यः पंचवास्यवरांगनाः । धृतकीर्तिः पृथाचैव धृतदेवी धृतश्रवाः ॥ ७६ ॥  
 राजाधिदेवी च तथार्पचैतार्वीरमातरः । वृद्धस्य धृतदेवी तु कारुणं सुपुत्रे नृपम् ॥ ७७ ॥  
 कंकेयाञ्छुतकीर्तिस्तु जज्ञे संतर्दनो नृपः । धृतश्रवसि चैवस्य सुनीधः समपद्यत ॥ ७८ ॥  
 राजाधिदेव्याः संभूतो धर्माद्वय विवर्जितः । शूरः सख्येन वदोऽसौ कुंतिभोजे पृथां ददौ ॥ ७९ ॥  
 एवं कुंती समाख्या च वसुदेवस्य सा पृथा । कुंतिगोजोऽददात्तां तु पांडो भार्यामनिदिताम् ॥ ८० ॥  
 पाण्डुवर्योऽसूतदेवी सा देवपुत्रान्महारथान् । धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वाताज्जने वृकोदर ॥ ८१ ॥  
 इंद्रादनं जयध्वं शक्रतुल्यपराक्रमः । योऽसौऽग्निपुरुषा ज्ञातस्त्रिभिर्ग्रीमं हारथः ॥ ८२ ॥  
 सर्वदानवसूदनः । अथ ध्यात्वा पिशङ्गस्य दानवा येन घातिताः ॥ ८३ ॥  
 माद्रपर्यान्तु जनिता यन्निना वितन्तुः ॥ ८४ ॥

नकुलः सहदेवश्च रूपसत्यगुणान्वितौ । रोहिणी पौरवी नामभार्याचानरुदुन्दुभे ॥  
 लेभे चेष्टं सुतं रामं सारणं च रणप्रियम् । दुर्धरं दमनं चैव पिंडारकमहाहनुम् ॥  
 अथमायात्यमाचस्यादेवकीयाभविष्यति । तस्यांजज्जेमहाबाहुः पूर्वतुसप्रजापतिः ॥  
 अनुजाताभवत्कृष्णास्तुभद्राभद्रभाषिणी । विजयोरोचमानस्तुवर्द्धमानध्रुवदलः ॥  
 एते सर्वे महात्मान उपदेव्यां प्रजज्ञिरे । भगवहं महात्मानं बृहदेवी ध्वजायत ॥  
 बृहदेव्या स्यवं जज्ञे मन्दको नामनामतः । सप्तमं देवकी पुत्रं रैमन्तं सुपुत्रं सुतम् ॥  
 गणेशं महाभागं संप्रामेप्यपराजितम् । ध्रुवदेव्या विहारे तु यने विचगता पुरा ॥  
 वैश्याणांसमधाच्छौरिः पुत्रंकीशिकमप्रजम् । ध्रुवधरातुसमी तु सौरांधपदिहः ॥  
 पुत्रं च कपिलं चैव यमुदेवात्मजौ यदी । जनानांचविषादोऽभूत्प्रथमः सधनुर्वरः ॥  
 सौभद्रश्चाभवच्चैवमहासत्पुत्रौचभूयतुः । देवभागानुनधाविप्रस्तायः सवुधः स्मृतः ॥  
 पण्डितप्रथमं बाहुदेवध्रुवसमुत्तमम् । इक्ष्वाकुस्तुत्योयस्यमनस्यन्यायशस्त्रिणी ॥ १२६ ॥  
 निहृत्तशत्रुः शत्रुघ्नः धृवातस्मादजायत । मंडूपायामन्त्यानि कृष्णस्तुष्टः शनं वदी ॥  
 सर्वद्रुतमहाभागं धीर्यवंतं महायत्नम् । रंतिपालश्च रंतिश्च नंदनस्य सुतायुधौ ॥  
 र्माकपुत्राश्चत्वारो विक्रांताः सुमहायत्नाः । विरजश्च धनुर्ध्रैव ध्यामस्तस्यसप्तजयः ॥  
 अनस्योऽभवद्दुष्योमः सुजयस्यधनंजयः । योजायमानोभोजत्यंराजर्षिप्रमयाप्तवान् ॥  
 कृष्णस्यजन्माभ्युदयं यः कीर्तयतिनित्यशः । शृणोतिवानरोनित्यं सयंपापैः प्रमुच्यते ॥  
 सध्रुवो महादेवः पूयं कृष्णः प्रजापतिः । विहारार्थं सदेवोऽसौ मानुरेप्यप्यजायत ॥  
 यस्यायमुदेयेतपसापुष्करेक्षणः । चतुर्बाहुस्तुसंजातोदिप्यरूपोजनाधरः ॥ १२६ ॥  
 शिवत्सलक्षणं देवं दृष्ट्वादेयैः सलक्षणम् । उवाच यमुदेवस्तं कथं संहर ये प्रभो ॥ १२७ ॥  
 तिनोऽहं देवकंसादिततस्त्येतदुत्तरंमिने । ममपुत्राहतास्तेनधेष्टाः पश्चैर्मदिविमाः ॥  
 मुदेवपचभ्रुत्वा कथं संहरदच्युतः । अनुज्ञाप्य तु नंदोनिंशोपशृंक्षयन् ॥  
 त्पानं नंदगोपायरक्ष्यतामितिचाप्रवाण् । भक्तस्तुसर्वकल्याणंयादवानांनविष्यति ॥ १४ ॥  
 यंनुगमं देवस्यापत्वंसंहनिष्यति । सायत्तृषिण्यांनविताक्षेमांश्चराचहः परम् ॥  
 येदुष्टास्तुगजानस्तांस्तुसगंनहनिष्यति । वीरपाणां रणेभूते सगंश्चरमागमे ॥

सारथ्यमर्जुनस्यायं स्वयं देवः करिष्यति । निःश्वत्रियां धरां हत्वा भोक्ष्यते शेषतांगताम् ॥

सर्वं यदुकुलं चैव देवलोकं नयिष्यति ।

भीष्म उवाच ।

क एष वसुदेवस्तु देवकी का यशस्विनी ॥ १४४ ॥

नन्दगोपश्चक्रत् चैव यशोदाकामहाव्रता । याचिष्णुं यो पितृवतीयां समातेत्यभाषत ॥

या गर्भं जनयामास या चैनं समवर्धयत् ।

पुलस्त्य उवाच ।

पुरुषः कश्यपश्चासावदिति स्तत्रिषा स्मृता ॥ १४६ ॥

कश्यपो ब्रह्मर्षीऽशस्नुपृथिव्या अदितिस्तथा । नन्दो द्रोणस्समाख्यातो यशोदाधरामवत् ॥

अथ कामान्महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत् । ये तथा कांक्षिताः पूर्वमजास्तस्मान्महात्मनः ॥

अचिरं समहा देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम् । मोहयन् सर्वभूतानि योगयोगीसमाययौ ॥ १४८ ॥

नट्यधर्मे तथा यज्ञेषु च विष्णुर्बृह्णि कुले विभुः । क्रतुवर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणशनम् ॥ १५० ॥

हविमणी सत्यभामा च स यानाग्निजितो तथा । सुमित्रा च तथा शौभ्यामांघरीलक्ष्मणा तथा ॥

सुभीमा च तथा माद्री कौसल्या विजया तथा । एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च योऽयम् ॥

हविमणी जनयामास पुत्राञ्छृगुविशारदान् । चारुदेवोऽनंरजेशूरं प्रद्युम्नश्च महाबलम् ॥

सुचारुं चारुभद्रश्च सदर्भं हस्यमेव च । सप्तमश्चास्युतश्च चारुभद्रश्च चारुकम् ॥ १५४ ॥

चारुहार्सं कनिष्ठश्च कन्याश्चारुमतौ तथा । जश्रिरे सत्यभामाया भानुभीमस्य सप्तः ॥

रोहितो दासिमांश्चैव ताप्रबंधो जलंधरः । चतस्रो जश्रिरे तेषां स्वसारथ्ययोपवतीः ॥ १५६ ॥

जाग्रयत्याः सुतो जज्ञे सां वध्वैवातिशोभनः । सौम्यास्त्रस्यकर्ता च प्रतिमामंदिस्त्वय ॥

मूलस्याने निवेशश्च हतस्तेन महात्मना । नृप्येन देवदेवेन कुष्ठरोमो विनाशितः ॥ १५८ ॥

सुमित्रं चारुमित्रं च मित्रं चिदाव्यजायत ॥ मित्रयादुःसुनीथश्च नागजियां यभूरतुः ॥ १६० ॥

एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निशामय । अशीतिश्च सहस्राणां घातुदेवसुतास्तथा ॥

प्रद्युम्नस्य द्वायादौ वैदर्भ्यां बुधिसत्तमः । अनिलद्वारेणोदाजज्ञेऽस्य मृगवैतनः ॥ १६२ ॥

काम्यामुपादर्शयत्नया सां बह्वैर्भेतरश्चिनम् । सत्त्वप्रकृतयो देवाः पराः पंच प्रकीर्तिताः ॥

तिष्ठः कोट्यः प्रचीराणां यादवानां महात्मनाम् । पट्टिः शतसहस्राणि वीर्यवंतो महाबलाः ॥  
 देवांशाः सर्वे एवेह उत्पन्नास्ते महाजसः । देवासुरे हता ये वा असुरास्तु महाबलाः ॥  
 होत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान् । तेषामुद्धरणार्थाय उत्पन्ना यादवेकुले ॥  
 कुलानां शतमेकं वयादवानां महात्मनाम् । विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यपस्थितः ॥  
 निदेशस्थायिनस्तस्य श्रद्धयन्ते सर्वयादवाः ।

भीष्म उवाच ।

सत्तर्पयः कुबेरश्च यक्षो मणिधरस्तथा ॥ १६७ ॥

सात्तर्पयः कुबेरश्च यक्षो मणिधरस्तथा । आदिदेवस्तथा विष्णुरेमिस्तु सह दैवतैः ॥  
 किमर्थं सहस्रभूताः सुरसम्भूतयः क्षितौ । भविष्यान्कृतिवानास्यप्रादुर्भावा महात्मनः ॥  
 सर्वक्षेत्रेषु सत्तर्पयः किमर्थं सिद्धजायते । यदर्थं मिह न भूतो विष्णुर्दृष्टव्यं धके कुले ॥ १७० ॥

पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्मे त्वं ब्रूहि पृच्छतः ।

पुलस्त्य उवाच ।

युधुभूयप्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम् । यथा दिव्यतनुर्विष्णुर्मानुषेऽपि ज्ञायते ॥  
 युगांते तु परावृत्ते काले प्रशिथिले प्रभुः । देवासुरमनुष्येषु ज्ञायते हरिरीश्वरः ॥ १७२ ॥  
 हिरण्यकशिपुर्देत्यस्मै लोकास्तस्य प्रशासिताः । बलिनाधिष्ठिते चैव पुनर्लोकत्रये क्रमात् ॥ १७३ ॥  
 सत्तर्पयासीत् परमकं देवानां मसुरैः सह । युगाख्याप्तां पूर्णां प्राप्सीद्व्याकुलं जगत् ॥ १७४ ॥  
 निदेशस्थायिनश्चापि तपोर्देवासुराः स्थयम् । यद्बोवलिर्विमर्दोऽयं सुसंवृत्तः सुदारुणः ॥ १७५ ॥  
 देवानां मसुराणां च योऽहं शक्यो महान् । कर्तुं धर्मव्यवस्थां च ज्ञायते मानुषेऽपि ॥ १७६ ॥

भुगोः शापविमर्त्तं ॥ देवासुरकृते तथा ।

भीष्म उवाच ।

कथं देवासुरकृते हर्दिह महासवान् ॥ १७७ ॥

देवासुरं यथावृत्तं तन्मे कथय सुमत ।

पुलस्त्य उवाच ।

तेषां जयनिमित्तं वै संप्रामाः स्युः सुदारुणाः ॥ १७८ ॥

अवतारादशद्वौचशुद्धामन्वन्तरेस्मृताः । नामधेयंसमासेन शृणुतेषां विवक्षितम् ॥ १३६ ॥  
 प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि चामनः । तृतीयस्तु वराहश्च चतुर्थोऽमृतमंथनः ॥ १३७ ॥  
 संग्रामः पंचमश्चैव सुघोरस्तारकामयः । षष्ठो ह्यार्द्धावकाख्यश्च सप्तमश्चैव पुस्तथा ॥ १३८ ॥  
 अष्टमश्चांधकबधोनवमो वृत्रघातनः । ध्वजश्च दशमस्तेषां हलाहलस्ततः परम् ॥ १३९ ॥  
 प्रथितो ह्यदशस्तेषां घोरः कोलाहलस्तथा । हिरण्यकशिपुर्द्वैत्यो नरसिंहेन सृजितः ॥ १४० ॥  
 चामनेन बलिर्दंडस्त्रैलोक्याक्रमणेपुरा । हिरण्याक्षो हतो द्वंद्वे प्रतिघादे तु दैवतैः ॥ १४१ ॥  
 दंष्ट्रया तु वराहेण समुद्रस्योद्विधाहतः । प्रह्लादो निर्जितो युद्धेऽन्ध्रेणामृतमंथने ॥ १४२ ॥  
 चिरोचनस्तु प्राह्लादिर्मित्यभिद्रवधोद्यतः । इन्द्रेणैव च विक्रम्य निहतस्तारकामये ॥ १४३ ॥  
 अशक्नुवत्सु देवेषु त्रिपुरांसो दुर्मासुरम् । मोहयित्वाऽमृतो पीते गोरूपेणासुरारिणा ॥ १४४ ॥  
 नासर्ज्जावपितुं शक्या भूयो भूयो मृतासुराः । निहता दानवाः सर्वे त्रैलोक्ये श्वं च केन तु ॥ १४५ ॥  
 असुराश्च पिशाचाश्च दानवाश्चांधके बधे । हता देवमनुष्यैस्ते पितृभिश्चैव सर्वशः ॥ १४६ ॥  
 संपृक्तो दानवैर्षु ओघोरे कोलाहलेहतः । तदा विष्णुसहायेन महेंद्रेण निपातितः ॥ १४७ ॥  
 हतस्ततो महेंद्रेण मायाछन्नस्तु योगवित् । वज्रेण क्षणमाविश्य धिप्रचित्तिः सहानुगः ॥ १४८ ॥  
 दैत्याश्च दानवाश्चैव संयुताः कृत्स्नास्तु ते । एते दैवासुरा वृत्तासंग्रामाद्वा दशैव तु ॥ १४९ ॥  
 दैवासुरक्षयकराः प्रजानां च हिताय वै । हिरण्यकशिपूराजावर्षाणामयुर्द्वयभी ॥ १५० ॥  
 द्विसप्ततितथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु । अशीर्तिचसहस्राणि त्रैलोक्यैश्चैव न भूत ॥ १५१ ॥  
 पर्यायेण तुराजा भूदलिर्यर्षायुर्द्वयपुनः । पृथिव्यसहस्राणि नियुतानि च विंशतिम् ॥ १५२ ॥  
 बलिराज्याधिकारेणु यावत्कालश्च कीर्तितः । तावत्कालं तु प्रह्लादो निर्धृतो ह्यसुरैः सह ॥ १५३ ॥  
 जयार्थं मेने विज्ञेया असुराणां महो जसः । त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेंद्रेणानुपालयत ॥ १५४ ॥  
 असमग्रमिदं सर्वं यावद्वर्षायुतं पुनः । पर्यायेणैव समग्रासे त्रैलोक्यं पाकश्यासने ॥ १५५ ॥  
 ततोऽसुरान्पत्नित्यज्ययज्ञो देवान गच्छत । यज्ञे देवान धगते दितिजाः काव्यमव्ययम् ॥ १५६ ॥

दैत्या ऊचुः ।

इदं मय्यताराज्यं त्यक्त्वा यज्ञः सुरान्गतः । स्थानुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रचिरामोरसान्तरम् ॥ १५७ ॥  
 परमं ततोऽप्रयां देतान् विदग्धेणान्सां त्ययनिगा । मा भैष्टधारयिष्यामि ते जसास्यं न योऽमुष्म



मन्त्राधीनपदस्यैवधर्म्यावमुच्यते । मयिनिष्ठानिष्कमये वादमात्रंमुनेषु ॥ २०२ ॥  
 असांयप्रशम्यामिगुणमर्थभूतमया । ततोदेवास्तुताङ्गदृष्टान्काध्यन्तधीमता ॥ २०३ ॥  
 भर्तृजनं देवायैव विद्यान्तस्त्रिगुणशः । काव्योऽपि गदसंयं व्याचरन् यतिनो यताः ॥ २०४ ॥  
 गाधुगज्यमहैर्मूपायध्व्यावयेनये । प्रमत्तास्त्रिधा शिष्टास्तुपानात्तं प्रापयामहे ॥ २०५ ॥  
 ततोदेवास्तुतं स्थादन्तपानुपमस्यह । तन्मन्त्रेऽभ्यमानास्तेः काव्यमेवामिदृष्टुषुः ॥ २०६ ॥  
 ततः काव्यस्तुतं गृह्णामूपायैवमिदृशतः । ग्धाहावर्णेणमंहस्यदेवेभ्यस्तान्मुगर्हितान् ॥ २०७ ॥  
 काव्यं गृह्णामि तं देवानि विंशं कान्तुनेत्रहः । ततः काव्योऽनुचिन्त्याभ्यप्रवर्णापचरन् हितम् ॥  
 तानुपायततः काव्यः पूषं वृत्तमनुस्मरन् । त्रैलोक्यं यो हन्तं सयं धामनेन विभिः प्रमैः ॥ २०८ ॥  
 एति त्रैलोक्यं त्रैभिः निहतमभिगेननः । महामुगहाद्दाम्नुमं प्रामेदुमुनें हताः ॥ २०९ ॥  
 तैस्तेऽप्यार्षैर्भुविष्ठानि हतास्तु प्रधातनः । केचिच्छिष्टाभ्ययूयं यैर्युद्धंतास्तीति मे मतम् ॥ २१० ॥  
 तैस्तेऽप्यो विधातव्या उपानेकाः पश्यन्तः । याम्याभ्यहं महादेयं मन्त्रार्थं विजयायहम् ॥ २११ ॥  
 भर्तृणां ततो देवान्मन्त्रैः प्राप्यमहेभ्यगतः । योम्यामहे पुनर्वैवैस्तनः प्राप्स्यभ्यवैजयम् ॥  
 तन्मन्त्रे हतमं वादादेवान्मुष्मन्तममुराः । न्यस्तमन्त्रावयं संयं निःसृष्टाहारधर्मिना ॥ २१२ ॥  
 ययं तद्विष्टामः संयुतायाज्यलैस्तथा । देवान्तेषां पचः ध्रुव्यास्तस्याभिध्याहृतं ततः ॥  
 तान्मययं यन्सयं विष्टारामुदिताभ्यते । न्यस्तमन्त्रेषु देवेषु विनिवृत्तास्तदामुराः ॥ २१३ ॥  
 तन्मन्त्रान्प्रवीत्काव्यं गदसंयं विनिवृत्ताः । निरुन्तिसकास्तपोयुक्ताः कालं काव्यार्थं साधकम्  
 विनुराधमत्तं स्थायैमां प्रतीक्षन्तः । तानुद्दिष्ट्यामुरान्काव्यो महादेयं प्रपद्यत ॥ २१४ ॥  
 शुक्रः उवाच ।  
 मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न मन्त्रिगृहस्पती । परामयाय देवानाममुराणां जयाय च ॥ २१५ ॥  
 एषमुक्तोऽप्रवर्द्धितो यतं त्वं चर भार्गव । पूर्णवर्षं सहस्रं तु कणभूममधः शिराः ॥ २१६ ॥  
 यदियास्यसि भद्रं ततो मन्त्रानवाप्स्यसि । तथेति समनुष्ठाप्य शुक्रस्तुभृगुनन्दनः ॥ २१७ ॥  
 पादौ संस्पृश्य देवम्यवाद्मित्यब्रवीद्ध्रुवः । यतं चराम्यहं देवत्वया दिष्टोऽथर्वप्रभो ॥ २१८ ॥  
 आदिष्टो देवदेयेन कृतपालमार्गं चामुनिः । तदा तस्मिन्गते शुक्रे असुराणां हिताय च ॥ २१९ ॥  
 मन्यार्थं तनुते काव्यो मन्त्रचयं महाभरात् । तद्वुद्बुध्यानीतिपूर्वैरे राजन्यास्तु तदा सुधम् ॥

अस्मिन्निद्रेतदामर्गादेवास्तानमिदुद्रुवुः । वंशिताःसायुधाःसर्वेवृहस्पतिपुत्राः॥२२५॥  
 दृष्ट्वासुरगणादेवान्प्रगृहीतायुधान्पुनः॥ उत्पेतुस्सहसासर्वेसंश्रस्तास्तान्चनोऽब्रुवन्॥२२६॥

दैत्या ऊचुः ।

न्यस्तशस्त्राययदेवाभाचार्यैवतमास्थिते । दत्तामवतस्त्वभयंसम्प्राप्तानोजिघांसया ॥  
 अतमर्गाययंसर्येत्यक्तशस्त्राश्चसंस्थिताः । वीरकृष्णाजिनधरानिष्क्रियानिष्प्रग्रहाः ॥  
 रणेवीजेतुं देवांश्चनशक्यामः कथंचन । अयुद्धेनप्रपत्स्यामःशरणंकाव्यमातरम् ॥ २२६ ॥  
 क्षापयामःकृष्णमिदंयायभाभ्येतिनोगुरुः । निवृत्तेचतथाशुकेयोत्स्यामोदंशितायुधाः ॥  
 पद्ममुत्थाचतेऽन्योन्यंशरणंकाव्यमातरम् । प्रापयंतततोभीतास्तेभ्योऽवाद्भयंतुता ॥२२७॥  
 नमेतव्यंतमेतव्यंभयंरयजतदानयाः । मत्सन्निधौ वर्त्ततांबोनभीर्भयितुमर्हति ॥ २२८ ॥  
 तयाभिरक्षितास्तांश्चदृष्ट्वादेवास्तदाऽसुरान् । अभिजग्मुःप्रसह्यैतान्विचार्यबलायलम् ॥  
 ततस्तान्वध्यमानांस्तुदेवैर्दृष्ट्वासुरांस्तदा । देवीकुब्जाऽर्घ्यदेवानिद्रयामोहयाम्यहम् ॥  
 संभृत्यसर्वसंभारान्निद्रांसाव्यसृजत्तदा । तस्तम्भदेवीचबलाद्योगयुक्तातपोधना ॥२२९॥  
 ततस्तंस्तम्भितं दृष्ट्वाऽर्घ्यदेवाश्चमूढवत् । प्राद्वयं तततोभीताः तं दृष्ट्वावशीकृतम् ॥ २३० ॥

गतेषु सुरसंघेषु विष्णुर्दिमभापत ।

विष्णुश्चवाच ।

मां त्वं प्रविश भद्रं ते रक्षिष्ये त्वां सुरोत्तम ॥ २३१ ॥

एवमुक्तस्ततोविष्णुं प्रविशेशपुरंदरः । विष्णुसंरक्षितं दृष्ट्वा देवीकुब्जावचोऽब्रवीत् ॥ २३२ ॥  
 एतत्त्वां विष्णुनासाधंदहामिमघवन्यलात् । मिपतांसर्वभूतानां दृश्यतांमेतपोयलम् ॥२३३॥  
 तयाभिभूतोतोदेवाचिद्रविष्णून्बभूवतुः । कथंमुच्येयसहितोविष्णुर्दिमभापत ॥ २३४ ॥  
 इन्द्रोऽब्रवीज्जह्निहोनांयावन्मौनदहेत्यग्रो । विशेषेणाभिभूतोऽस्मिजहीमांजहिमाचिरम् ॥  
 ततःसमीक्ष्यविष्णुस्तांस्त्रीयधेकृष्णमास्थितः । अभिध्यायततः शक्रमापन्नं सत्त्वरंभुः ॥

ततः सत्त्वरया युक्तःशीघ्रकारि भयान्वितः ।

मूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ॥ २३५ ॥

॥ तं दृष्ट्वास्त्रीवर्धघोरंचुकोधभृगुरीधरः ॥ २३६ ॥

ततो हि शप्तो भृगुणा विष्णुर्मार्यावधे कृते ।

भृगुरुवाच ।

यत्त्वयाजानताधर्ममयध्यास्त्रीनिपूदिता । यस्मात्त्वंसप्तहृत्बोहिमानुपेयूपयास्यसि ॥

ततस्तेनाभिशापेननष्टधर्मपुनः पुन ॥ २४६ ॥

लोकस्यचहितार्थायजायतेमानुपेय्विह । अथव्याहृत्यविष्णुंसतदादायशिरः स्ययम् ॥

समानीय ततः कायं पाणौ गृह्येदमग्रवीत् ॥

भृगुरुवाच ।

एषा त्वं विष्णुना देवि हता संजीवयाम्यहम् ॥ २४८ ॥

यद्विहृतस्नोमपाधर्मोहायतेचरितोऽपिवा । तेनसत्येनजीवस्व यद्विसत्यंग्रवीम्यहम् ॥ २४९ ॥

ततस्तां प्रोक्ष्य शीताद्विजोषजीवेति सोऽग्रवीत् ।

ततोऽभिव्याहृते तस्मिन्देवो संजीविता तदा ॥ २५० ॥

ततस्तांसर्वभूतानिदृष्टास्तुतोत्थितामिव । साधुसाध्वितिदृष्ट्वैववचस्तांसर्वतोऽद्भुघ्नम् ॥

एवं प्रत्याहृता तेन देवीसाभृगुणातदा । म्रियतां दैवतानां हि तदद्भुतमिवाभयत् ॥ २५२ ॥

मसंघातेनभृगुणापत्नीसंजीयितापुनः । दृष्ट्वाचंद्रोनालभतरमकाव्यभयात्पुनः ॥ २५३ ॥

प्रजागरेततश्चेन्द्रो जपंतीमिदमग्रवीत् । संधिफामोऽभ्यधाद्वाक्यं स्यांकन्यापाकशासनः ॥

इन्द्र उवाच ।

एषाकन्योह्यनिद्रायमतंचरतिद्वारुणम् । तेनाहंप्याकुलः पुत्रिहृतोमतिमताहृदम् ॥ २५५ ॥

तैस्तैर्मनोऽनुकूलैश्चउपचारैरतंद्रिता । भारापयतथापुत्रियधानुष्येत स द्विजः ॥ २५६ ॥

गच्छत्वतस्यदत्तासिप्रयत्नं कुरुमहृते । एवमुक्ताजयंतीसावचःसंगृह्यवैपितुः ॥ २५७ ॥

आच्छद्यत्रघोरंसतपोह्यारम्यतिष्ठति । तदृष्ट्वाचपिचिन्तं सा कणधूममधोमुखम् ॥ २५८ ॥

यक्षेणपात्यमानंचकुण्डधारेणपावनम् । दृष्ट्वातंयत्मानंनुदेवीकाव्यमवस्थितम् ॥ २५९ ॥

शत्रूपघातेधाम्यन्तंदुर्बलस्थितिमास्थितम् । पित्रायथोकंवाक्यंसाकाव्येऽतयतीतदा ॥

गीर्भिश्चैवानुकूलाभिःस्तुवंतीवल्लभापिणी । गात्रसंवाहनेः कालेसेवमानात्वचःमुखैः ॥

यतचर्यानुकूलाभिरुपास्यवहुन्वाः समाः । पूर्णे धूमजते तस्मिन्घोरे वर्षसहस्रके ॥ २६२ ॥

अस्मिंश्छिद्रेतदामर्पाद्देवास्तानभिदुद्रुवुः । दंशिताःसायुधाःसर्वेवृहस्पतिपुरःसरः ॥ २२५ ॥  
 दृष्ट्वासुरगणादेवान्प्रगृहीतायुधान्पुनः । उत्पेतुस्सहसासर्वेसं त्रस्तास्तान्वचोऽब्रुवन् ॥ २२६ ॥  
 दैत्या ऊचुः ।

न्यस्तशस्त्रावयंदेवाआचार्येव्रतमास्थिते । दद्यामवंतस्त्वभयंसम्प्राप्तानोजिघांसया ॥  
 अनमर्पावयंसर्वेत्यक्तशस्त्राश्वासंस्थिताः । चीरकृष्णाजिनधरानिष्क्रियानिष्पत्तिहा ॥  
 रणेवीजेतुंदेवांश्चनशक्ष्यामः कथंचन । अयुदेनप्रपत्स्यामःशरणंकाव्यमातरम् ॥ २२६ ॥  
 ज्ञापयामःकृच्छ्रमिव्यापधाम्येतिनोगुरुः । निवृत्तेचतथाशुकेयोत्स्यामोदंशितायुधाः ॥  
 पृथमुक्त्वाचतेऽन्योन्यंशरणंकाव्यमातरम् । प्रापद्यंतततोर्भितास्तेभ्योऽदादमयंतुसा ॥ २२७ ॥  
 नमेतव्यंनमेतव्यंमयंत्यजतदानवाः । मत्सन्निधौ वर्त्ततांबोनर्भर्भितुमर्हति ॥ २२८ ॥  
 तयाभिरक्षितांस्तांश्चदृष्ट्वादेवास्तदाऽसुरान् । अभिजग्मुःप्रसह्यैतानविचार्यबलायलम् ॥  
 ततस्तान्वध्यमानांस्तुदेवैर्दृष्ट्वासुरांस्तदा । देवीकुन्दाऽप्रर्षादेवान्निद्रयामोहयाम्यहम् ॥  
 संभृत्यसर्वसंभारान्निद्रांसाप्यसृजत्तदा । तस्तम्मदेयीचबलायोगयुक्तातपोधना ॥ २२९ ॥  
 ततस्तंस्तग्भिनंदृष्ट्वाऽप्रदेवाश्चमूढवत् । प्राद्वं तततोर्भिताऽं द्रंष्ट्वायशंस्रुतम् ॥ २३० ॥  
 गतेषु सुरसंघेषु विष्णुर्दिमभायत ।  
 विष्णुस्त्वाच ।

मां त्वं प्रविश भद्रं ते रक्षिष्ये त्वां सुरोत्तम ॥ २३१ ॥

एषमुक्तस्ततोविष्णुप्रविशेषपुर्व्वरः । विष्णुसंरक्षितंदृष्ट्वादेवीकुन्दायचोऽब्रवीत् ॥ २३२ ॥  
 एषत्पांविष्णुनासाधंदहामिमघवन्यलात् । मिपतांसर्वभूतानां दृश्यतांमेतपोयलम् ॥ २३३ ॥  
 तयाभिभूतोर्तोदेवाविद्रविष्णुयभूवतुः । कथमुच्येयसहितोविष्णुर्दिमभायत ॥ २३४ ॥  
 इंद्रोऽब्रवीज्जहितोनांयावन्नानदहेत्प्रभो । विशेषेणाभिभूतोऽस्मिजहीमांजहिमाविष्णु ॥  
 ततःसमीक्ष्यविष्णुस्तांस्त्रीचधेरुच्छमास्थितः । अभिध्यायततः शय्यमापन्नसत्वरंभुः ॥

ततः सत्वरया युक्तःशीघ्रकारि भयान्वितः ।

प्राप्या विष्णुस्ततस्तस्याः मूरं देव्याधिर्कीर्तितम् ॥ २३५ ॥

ब्रह्मध्वजमादायशिरश्चिच्छेद्वैभयान् । तंदृष्ट्वास्त्रीयधंपोरचुक्रोधभृगुरीध्वरः ॥ २३६ ॥

ततो हि शप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे कृते ।

भृगुश्वाच ।

यत्त्वयाजानताधर्ममवध्यास्त्रीनिपूदिता । यस्मास्त्वंसप्तहृत्त्वोहिमानुरेपूपास्यसि ॥

ततस्तेनाभिशापेननष्टेधर्मपुनः पुनः ॥ २४६ ॥

लोकस्यचहितार्थायजायतेमानुषेष्विह । अधव्याहृत्यविष्णुंस्तदादायशिरः स्वयम् ॥

समानीय ततः कार्यं पाणी गृह्येदमब्रवीत् ॥

भृगुश्वाच ।

एषा त्वं विष्णुना देवि हता संजीवयाम्यहम् ॥ २४८ ॥

यदिहृत्स्नोमयाधर्मोहायतेचरितोऽपिवा । तेनसत्येनजीवस्व यदि सत्यं ब्रवीन्म्यहम् ॥ २४९ ॥

ततस्तां प्रोक्ष्य शीताद्विज्जैवजीवेति सोऽब्रवीत् ।

ततोऽभिव्याहृते तस्मिन्देवी संजीविता तदा ॥ २५० ॥

तस्तांसर्षभूतानिदृष्टासुप्तोत्थितामिव । साधुसाध्वितिवृष्ट्वैधवचस्तांसर्षतोऽद्भुतम् ॥

एवं प्रत्याहृता तेन देवीसाभृगुजातदा । म्रियतां दैवतानां हि तद्भद्रुतमिषाभयत् ॥ २५२ ॥

यत्संप्राप्तेनभृगुणापत्नीसंजीवितापुनः । दृष्ट्वाचेद्रोनालमतसर्मकाध्यभयात्पुनः ॥ २५३ ॥

प्रजागरेततश्चेन्द्रो जयंतीमिदमब्रवीन् । संधिकामोऽभ्यधाद्वाक्यं स्वांकन्यांपापशसनः ॥

इन्द्र उवाच ।

एकाव्योहानिद्रायप्रतंचरतिदारुणम् । तेनाहंव्याकुलः पुत्रिहतोमतिमतादृढम् ॥ २५५ ॥

तैस्तेर्मनोऽनुकूलैश्चउपचारैरतंद्रिता । भाराधयतथापुत्रियथानुष्येत स द्विजः ॥ २५६ ॥

गच्छत्यंतस्पृष्टासिप्रयत्नं कुर्मल्लते । एषमुक्ताजयंतीसावचःसंगृह्यधैपितुः ॥ २५७ ॥

माच्छयत्रयोरेततपोह्यारम्यतिष्ठति । तद्दृष्ट्वाचपियन्तं सा कणभूममधोमुपम् ॥ २५८ ॥

यक्षेपपात्यमानंचकुण्डधारेणपावनम् । दृष्ट्वातंयत्मानंनुदेवीकाव्यमवस्थितम् ॥ २५९ ॥

यत्रूपघातेधाम्यन्तंदुर्बलस्थितिमास्थितम् । पित्रायथोक्तंवाक्यंसाफाव्येष्टतचतीतदा ॥

गीमिर्ष्वपानुकूलाभिःस्तुवंतीवल्लभाशिषी । मात्रसंवाहनेः कालेसेवमानात्यचःसुपैः ॥

यतचयानुकूलाभिरुपास्यबहुलाः समाः । पूर्णं धूमयते तस्मिन्धोरेष्यंसहस्रके ॥ २६२ ॥

घरेण ऋद्धं दयामास शिवः प्रीतोऽभवत्तदा ।

महेभ्यः उवाच ।

एतदुत्तरं त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् । २६३ ॥

तस्माद्वैतपसावुद्रमाभुतेनचयनेनच । तेजसाचमुरान्सर्वास्त्वमेकोऽभिभविष्यसि ॥  
 यद्यकिञ्चिन्मयिप्रवृत्तयनेभृगुनन्दन । प्रतिदाम्यामितत्सर्वं त्वयाचाक्यं न कम्पयिष्ये ॥  
 किमादितेनयदुनाभयध्यस्त्वं भविष्यसि । तान्द्रवातुपरांस्तस्मै भार्गवाय पुनः पुनः ॥  
 प्रजेशत्वं धनेशत्वं मण्यन्त्यं च वेद्वी । एतां दुष्ट्याचराण्यकाव्यः संप्रवृत्तमूरुहः ॥ २६४ ॥  
 एवमाभाष्य देवेशर्माभ्यः नीलकण्ठोदितम् । प्रजान्वितस्ततस्तस्मै प्रावृत्तिः प्रणतोऽभवत् ॥  
 ततः सोऽनर्हिनं देवेजयंतामिदमर्वाणम् । फल्यत्वं मुभयं कायादुःखितेन मयि युः शिता ॥  
 मदन्तात्तसामुक्ताः किमयं नात्रिर्गवामि । अनयामं स्थिता अनया प्रधयेण वमेनच ॥ २६५ ॥  
 धेदेनचैरमुधोणि प्रीतोऽस्मिन्मयि निजि । किमिच्छसि ररां हे फलन्ते कामः समुपतः ॥  
 तं तं सं राक्षस्यपययि स्यान्मुद्रुष्कारम् । एवमुक्तात्प्रयोदेनं तव सात्वा तुमर्हसि ॥ २६६ ॥  
 चिकीर्षितं हि मे प्रदत्तं स्वं यैव दययातमम् । एवमुक्तोऽप्रयोदेनो दृष्टादिध्वं चक्षुषा ॥ २६७ ॥  
 मया सत्त्वं तु धोणि शतवर्षाणि भामिनि । सर्वभूतेषु दृष्ट्यातः संप्रयोगमिदं चक्षुषि ॥ २६८ ॥  
 देवि ईदृशं दयामे पार्हियाम्येवमेव । एवं वृणोषि कामांस्त्वं देवेषु मादिते ॥ २६९ ॥  
 एवं भवतु गच्छाय गृहमेतलकाशिते । ततः सगृहमागम्य त्रयं यासह चोराना ॥ २७० ॥  
 तस्यासुरावमदेष्यात्तत्रां विनाशः । भद्रस्यः सर्वभूतानां मायया संनिभः ॥ २७१ ॥  
 कृत्यं मागतं दृष्ट्वा गृहमेतद्विनेः सुताः । भद्रिद्रमुष्टं हंतस्य मुदितामनं निद्रुषः ॥  
 गच्छात्तद्विनाशं विनाशं त्वं वृत्तं गुह्यम् । लक्ष्मणं त्वया वृद्ध्या नापागच्छति नो गच्छ ॥ २७२ ॥  
 एवं तस्मादिच्छिन्नामिदम् । सर्वकामताः । ततो देवगणात्मनो गत्वा गिरिभद्रम् ॥  
 दन्तवत्तदनुगच्छात्तत्र चक्रां चमून् । मोहज्जिह्वा मयं यथां हि त्रयेण बाहु ॥ २७३ ॥  
 शिवस्तदनुगच्छात्तद्विनाशं ददन् । तेकाल्यादन्तैः प्रहारां येषां हतः ॥ २७४ ॥  
 ततो देवगणैः शिवं वदन् । शिवो देवगणैः शिवं वदन् ॥ २७५ ॥  
 ततो देवः सदा तानुद्वेष्टते । ततो एव तदा हि तदा ॥ २७६ ॥

सुमहत्कोतुकंचात्रभविताविग्रहोद्भूतम् । किंवदिष्यतिलोकोऽयं द्वारियोऽयं व्यवस्थितः ॥  
 सभायामास्थितो योऽयं गुरुः किं नो वदिष्यति । एवं प्रजन्त्यतां तेषां द्वनूनां कविरागतः ॥ २८६ ॥  
 स्वरूपधारिणं तत्र दृष्ट्वा सोनं बृहस्पतिम् । उवाच वचनं क्रुद्धः किमर्थं त्वमिहागतः ॥ २८७ ॥  
 शिष्यान् मोहयसे मेत्युक्तं सुखं पुरोस्तव । मृदास्ते त्वानं ज्ञानं त्वत्त्वं न्यायमोहिताद्युच्यम् ॥  
 तत्र युक्तं त्वग्रहान्परशिष्यप्रघर्षणम् । ब्रजन्वदेव लोकं स्वन्तिष्ठ धर्ममयाप्स्यसि ॥ २८८ ॥  
 शिष्यां हि मे कवः पूर्ववदतो दानवपुंगवः । विद्यार्थी तनयो ब्रह्मं स्वतापो ग्यागतिस्त्विह ॥ २८९ ॥  
 धृत्या तु तस्य तद्वाक्यं स्मितं हृत्वा यद्ब्रुगुरुः । संतिचोराः पृथिव्यां ये परद्रव्यापहारिणः ॥  
 एवं विधानदृष्ट्वा भूषणपदेहापहारिणः । ब्रजघातेन चेंद्रस्य ग्रहाहत्या पुराभवत् ॥ २९० ॥  
 लोकायतिकशास्त्रेण भयतासातिस्कृता । जानामित्वा मां गिरस्त्वं देवाचार्य बृहस्पतिम् ॥  
 मद्रूपधारिणं प्रातः सर्वे पश्यत दानवाः । एष वो मोहनायालं प्रातो विष्णुविशेषितैः ॥ २९१ ॥  
 तदेतं भूतलैर्बुध्वाक्षिपेत लयणार्णवे । पुनरेवाग्रधीच्छुक्रः पुरो धार्यं दिवो फसाम् ॥ २९२ ॥  
 मोहितानून् मे तेन क्षयं यास्यथ दानवाः । भो ब्रह्म दानवेन्द्रहवंचितोऽस्मि दुरात्मना ॥ २९३ ॥  
 किमर्थं भयतास्यक्तः कृतश्चान्यः पुरोहितः । देवाचार्योऽंगिरः पुत्रपण्यप्यबृहस्पतिः ॥ २९४ ॥  
 वंचितोऽसि न सन्देहो हितार्थं तु दिवो फसाम् । त्यजस्वैनं महाभाग शत्रुपक्षजयावहम् ॥ २९५ ॥  
 अनुशिष्यमया घातः पूर्वमेव महं प्रभो । जलमध्ये स्थितः पीतो महादेवेन शम्भुना ॥ २९६ ॥  
 उदरस्थस्य मे जातं सार्धं घर्षशतं किल । उदराच्छुक्ररूपेण शिष्टेनाहं विसर्जितः ॥ २९७ ॥  
 घराः प्राह मां देवशुक्रं पृथ्वं वरं वृणु । मया वृतो वरं राजन् देवदेवः पिनाकधृत् ॥ २९८ ॥  
 मनसा वितिताह्वार्यामानसे ये स्थिता यराः । भयं तु मयिते सर्वे प्रसादात्तव शंकर ॥ २९९ ॥  
 एष मस्थितिं द्वेदेन प्रेषितोऽस्मि तवांतिकम् । तावद्ब्रामभयं चापं पुरोधास्ते बृहस्पतिः ।  
 दृष्टः सत्स्वं दानवेन्द्रमयोक्तं त्वं निशामय । बृहस्पतिस्तद्वाक्यं प्रह्लादं प्रत्यभ्रासत् ॥ ३०० ॥  
 नाहमेतं प्रजानामिदं देवं वा दानवं नरम् । मद्रूपधारिणं राजन्वंचनार्थं नवागतम् ॥ ३०१ ॥  
 तस्ते दानवाः सर्वे साधुसाध्वित्वादिनः । पुरोधाः पीर्विको नोऽस्तु यो चाकोचाभवत्त्विति  
 नानेन कार्पसं स्माकं यातुद्योग्यमागतः । सक्रोधमशेषत्वाभ्यो दानवेन्द्रान् समागतान् ॥ ३०२ ॥  
 त्यक्तो यथाहं युष्माभिस्तथा सर्वाश्चिरादिव । गतध्रीकान्यतप्राणान्यश्वेयं दुःखजीविकान्

सुधोरामापदं प्राप्ता न चिरादेय सर्वशः । एवमुक्त्वा गतः काव्यो यद्ब्रूच्छातस्तपो वनम् ॥ ३२२ ॥  
 तस्मिन्नाते ततः शुके स्थितस्तत्र बृहस्पतिः । पालयन् दानवांस्तत्र किञ्चित्कालमतिष्ठत ॥ ३२३ ॥  
 ततो बहुतिथे काले अतिक्रान्तेन रेभ्यः । संभूय दानवाः सर्वे पर्यपृच्छन्तस्तदा गृहम् ॥ ३२४ ॥  
 संसारेऽस्मिन् सारं तु किञ्चिज्ज्ञानं प्रयच्छ नः । येन मोक्षं व्रजामश्म प्रसादात्तव सुमत ॥ ३२५ ॥  
 ततः सुरगुरुः प्राह फाल्गव्यरूपी तदा गुरुः । ममाप्येषामिति पूर्वं या युष्माभिश्चाद्भुता ॥ ३२६ ॥  
 क्षणं कुर्यन्तु संहिताश्चूर्वाभूयसमाहिताः । ज्ञानं वक्ष्यामि यो वै देव्या भवं वै मोक्षदायि यत् ॥ ३२७ ॥  
 एषा श्रुतिर्यै दिर्घायाम्मम्यजुः सामसंमिता । वैश्वानरप्रसादात्सु दुःखदा प्राणिनामिह ॥ ३२८ ॥  
 यमश्चाद्वृत्तं शुद्धैरहिफल्गवार्थतत्परैः । येत्वर्माद्यैः षण्णपाधर्मा ये च दृढदृतास्तथा ॥ ३२९ ॥  
 कुपमांश्चात्सद्दिनैर्हि सा प्रायाः दृता हिनेः । भर्जनार्त्तयरो रत्नः कथं मोक्षं गमिष्यति ॥ ३३० ॥  
 धृतो भूतगणैर्भूरिभूषितश्चास्थिभिस्तथा । न स्य गौर्नैव मोक्षोऽत्र लोकाः क्षिप्रंति यैतथा ॥ ३३१ ॥  
 हिंसायामास्थिनो विष्णुः कथं मोक्षं गमिष्यति । रजोगुणात्मकां ब्रह्माभ्यां गृहिमुपजीयति ॥ ३३२ ॥  
 देयं योऽध्यये चान्ये वैदिकं पशुमाश्रिताः । हिंसा प्रायाः सदा क्रूरा मांसादाः पापकारिणः ॥ ३३३ ॥  
 गुराम्नुमयपानेन मांसादा ब्रह्मणा स्वर्गमा । धर्मेणानेन कः स्वर्गं कथं मोक्षं गमिष्यति ॥ ३३४ ॥  
 यथयज्ञादिकं फलं स्मातं धाद्रादिकं तथा । तत्र नैवाप्यगोऽस्ति यत्रैवाभूयते धृतिः ॥ ३३५ ॥  
 यद्वृत्त्यापशुहत्यादृत्त्यादधिरत्नं मम । यद्येव गम्यते स्वर्गो नरकः केन गम्यते ॥ ३३६ ॥  
 यद्विभुक्तमिहान्येन नृत्तिरन्यभ्यजायते । दद्यान्प्रवसतः धाद्रं न स भोजनमाहरेत् ॥ ३३७ ॥  
 भ्रातृशत्रुगामिनो विप्राः पत्न्यामांसमक्षयान् । तेषां न विद्यते स्वर्गो मोक्षो नैवेह शान्तम ॥ ३३८ ॥  
 ज्ञातम्यत्रापि त्रंजोरिष्टं सर्वं भ्यजायते । भ्रातृमांसोपमं मांसं कथं ग्राहेत् पण्डित ॥ ३३९ ॥  
 यो निजाम्नुकथं यो निसेयते ज्ञतवस्वमा । मैत्रुनेन कथं व्यस्ये वास्यते शनैरेभ्यः ॥ ३४० ॥

मृदस्मना यत्र गुद्विस्तम्यगुद्विस्तु का भवेत् ॥ ३४१ ॥

विरजन्ममं लोकां गच्छदानव दारुणम् । विष्णुवन्मम दृतोत्सर्गमिदं नानुशोभन् ॥ ३४२ ॥  
 वसन्तारोऽस्मिन् इमे मृदातो येन सापुक् । भुञ्जन्तानो जनेराजन्ममं नानुशोभन् ॥ ३४३ ॥  
 शिष्ये तेषां धनं च विरजन्ममं विरजन्ममं । यत्र दृष्टव्यं शान्तं तत्र नैव कथं ॥ ३४४ ॥  
 ॥ ३४५ ॥ ॥ ३४६ ॥ ॥ ३४७ ॥ ॥ ३४८ ॥ ॥ ३४९ ॥ ॥ ३५० ॥



योदशोऽध्यायः ] \* गुरुणा दैत्यान्प्रतिधर्मशंकरोपदेशदानम् \*

६१

तिमस्यमुनेःपत्नीमहत्यानामनामतः । अगृह्णात्तांस्वयंशकःपश्यधर्मोयथाविधः ॥३३२॥  
उदन्यच्चजगतिदृश्यते पापदायकम् । एवंविधो यत्र धर्मः परमार्थोमतस्तुकः ॥३३३॥  
[स्य त्वं दानयेद्र घद भूयो वदामि ते । गुरोस्तुगदितंश्रुत्वापरमार्थान्वितंबवः ३३४  
जातकौतूहलास्तत्र विविक्तास्तु भवार्णवात् ।

दानवा ऊचुः ।

दीक्ष्यस्व गुरो सर्वाङ्गपन्नान्भक्तितः स्थितान् ॥ ३३५ ॥

यै न पुनर्मोहं वज्रमस्तथशासनात् । सुधिरक्ताःस्मसंसारेशोकमोहप्रदायिनि ॥३३६॥  
उदरस्य गुरो सर्वान्केशाकर्षेणकूपतः । कस्य देवस्य शरणं गच्छामोप्राक्ष्णोत्तम ॥३३७॥  
दैवतं च प्रपन्नानांप्रकाशयमहामते । स्मरणेनोपवासेन ध्यानधारणया तथा ॥३३८॥  
पूजोपहारैश्चकृते अपघर्गस्तुलभ्यते । धिरक्तास्सक्रुदुयेतुभूयोनात्रयतामहे ॥ ३३९ ॥  
एवंचैवगुरुदृष्टान्स्तैरुक्तोदनुपुंगवैः । चिंतयामासत्तत्कार्यकथमेतत्करोम्यहम् ॥ ३४० ॥  
कथमेतमयापापाःकर्तव्यानरकोकसः । चिदंबनाच्छ्रुत्वा नैर्वाह्यास्त्रैलोक्येहास्यकारिणः ॥  
इत्युक्त्वाधिपणोराजं चिंतयामासकेशचम् । तस्यतच्चिंतितं ज्ञात्वा मायामोहं जनार्दनः ॥  
समुत्पाद्यददौ तस्यग्राहचेदंबूहस्पतिम् । मायामोहोऽयमखिलांस्तान्दैत्यान्मोहयिष्यति ॥  
भयतासहितःसर्वान्येदमर्गयहिष्णुतान् । एवमादिश्य भगवानंतर्धानं जगामह ॥३४४॥  
तपस्यभिरतान्सोऽधमायामोहोगतोऽसुरान् । तेषांसमीपमागत्यबूहस्पतिरुवाचह ॥३४५॥  
अनुहार्यंयुष्माकंभक्त्याप्रीतस्त्विहागतः । योगीदिगम्बरोमुण्डोयर्हि वप्रधरोहयम् ॥३४६॥  
इत्युक्तोगुरुणापधान्मायामोहोऽप्रवीद्वचः । भो भो दैत्याधिपतयः प्रभूततपसिस्थिताः ॥  
देहिकार्थं तु पारकथं तपसःकलमिच्छथ ।

दानवा ऊचुः ।

पारक्वधर्मलाभाय तपश्चर्या हि नो मता ॥ ३४८ ॥

अस्माभिरियमारब्धा किं वा तत्र विवक्षितम् ।

दिगंबर उवाच ।

कुरुष्वं मम वास्त्वानि यदि मुक्तिमर्भाप्सथ ॥ ३४९ ॥

यस्या योर्नापितायातस्तायोर्निसेयसंकथम् । भार्यमांसोपमंमांसं कथं चादतिष्ठतः ॥  
 ततस्ते दानपात्रीभ्यः सर्वे शुभं धनम् । दक्षस्य नाम दहामागन्नुपकानप्रतः सिद्धान् ॥  
 तथा हृत्या सतानाह समयेन पुरोहितः । प्रणामो नान्यदेवेषु कर्तव्यो यः कदाचन ॥ १६८ ॥  
 एकस्थानि यदा भक्तो भोक्तव्यं करसंपुटे । तत्र स्थानि स्थितं तावत्केनैकादयि रजितम् ॥ १६९ ॥  
 तुल्यं प्रियाप्रियं कायं नान्यदुद्दिष्टं कचिन् । भोक्तव्यमेतेन विभो भावारेण तथा कुत्र  
 भयं स हितायुयं ते तथा मोक्षभागिनः । परमुक्त्वा स नियमान् हृत्या तान्नुपगवान् ॥  
 जगाम धिक्पणो राजन्देवलोकं दिव्यो कसाम् । भावचक्षे स तत्सर्वं दानयानां च कारितम् ।  
 ततस्ते त्वत्पुराजमुर्ममं दामभितो वसन् । दृष्ट्वा तान् दानयांस्तत्र प्रह्लादेन पिनाहृतान् ॥ १७१ ॥  
 देवराजस्ततो हृष्टो नमुचिप्राह वचः । हिरण्याक्षं यत्नहनं धर्मघ्नं वेदनिन्दकम् ॥ १७२ ॥  
 राक्षसं क्रूरकर्माणं प्रघसं विघसंतथा । मुचिं चैव तथा याणं विरोचनमपि वा ॥  
 महिषाक्षं चापकलं च प्रवण्डं चन्द्रकंतथा । रोचमानं तथा त्युग्रं सुवेणं दानवोत्तमम् ॥  
 एतान् दृष्ट्वा तथा चान्यान् दानवेन्द्रान् पाप्रवीत् ।

इन्द्र उवाच ।

दानयेन्द्राः पुराजाताः हृतं राज्यं त्रिविष्टपे ॥ १७३ ॥

इदानीं कथमेवेदं व्रतं देवचिलोपकम् । भवद्भिः कर्तुमारब्धं नम्रमुंङ्घि कमंडलु ॥ १७४ ॥

मयूरध्वजधारित्वं कथं चैवेह तिष्ठथ ।

दानया ऊचुः ।

त्यक्तः सर्वासुरभावः श्रुतिधर्मं वयं स्थिताः ॥ १७५ ॥

धर्मवृद्धिकरं कर्म च रामः सर्वजंतुषु । वैलोमपाङ्गमखिलं भुंक्ष्य शक्र प्रजस्य च ॥  
 तथेति चोक्त्वा मधवा पुनर्यातस्त्रिविष्टपम् । एवमेतं मोहिताः सर्वे भीष्म देवपुरोव्रता  
 नर्मदा सरितं प्राप्य स्थिता दानवसत्तमाः । ह्यारवा शुक्रेण ते सर्वे वृत्तांतमनुबोधिताः ॥

तदा त्रैलोक्यहरणे चक्रुः क्रूरा पुनर्मतिम् ॥ १७६ ॥

इति श्री पद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिलघु अचतारचरितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः

## चतुर्दशोऽध्यायः ।

अर्जुनपण्योरूपचिकथनपुरस्मरं वैरकारणकथनम् ।

भीष्म उवाच ।

यं त्रिपुरगाहनातो ह्यर्जुनः परयागहा । फयं कर्णस्तु कर्णानः सूतजः परिकीर्त्यते ॥  
(तयोः फयं भूतं निसर्गादेयं तद्वद । गृहत्कर्णोद्दलं मह्यं तद्दधान्यकतुमर्हति ॥ २ ॥  
पुनस्तथ उवाच ।

शिघ्रे पश्ये पुनः प्रज्ञा क्रोधेन मदना घृतः । ललाटे स्वेदमुत्पन्नं गृहीत्वाऽताडयदुवि ॥  
स्वेदतः कुण्डली जघ्ने स धनुष्कोमहेषुधिः । सहस्रकयवी वीरः किकरोमीत्युवाच ह ॥  
सुधान विरिचस्तु दशयन्स्त्रमोजसा । हन्यतामेव दुर्युद्धिजायते न यथा पुनः ॥ ५ ॥  
प्रज्ञो पयनं ध्रुवा धनुष्याय वृष्टनः । संप्रतस्थे महेशस्य थाणहस्तोऽतिरीद्वद्वक् ॥  
इहा पुन्यमत्युग्रं भीतस्तन्व प्रिलोचनः । भगवांतस्ततोवेगाद्विष्णोराधममन्यगान् ॥  
रादि त्राहीतिमांविष्णो नरादस्माद्य शनुदन् । प्रहणानिमितः पापो म्लेच्छरूपोभयंकरः  
यथा हन्यान्ममां मुदस्तथा कुरु जगत्पते । दुङ्कारध्वनिना विष्णुर्मोहयित्वा तु तनयम्  
अदृशः सपंभूतानां योगात्मा विभ्यद्रक्नभुः । तत्रप्राप्तं विरूपाक्षं सात्त्वियामास क्रैरायः  
ततस्त प्रणतो भूमी दृष्टो देवेन विष्णुना ।

विष्णुरुवाच ।

पौत्रो हि मे भवान्द्रु कं ते कामं करोम्यहम् ॥ ११ ॥

इहा नातायणं देवं निशां देहीत्युवाच ह । कपालं दद्याद्विवाग्रे प्रज्वलंस्तेजसोत्फटम् ।  
कपालाग्निं संप्रेक्ष्यद्रुविष्णुरचिन्तयत् । कोऽन्योयोग्योभवेद्विश्वेभिक्षादानस्यसांप्रतम्  
योग्योऽयमिति संकल्प्य दक्षिणं भुजमर्पयत् । तदुविभेदात्तिद्विज्ञेन शूलेन शशिशेखरः  
प्राघर्तततोधारा शोणितस्य विभोर्मुजात् । जांबूनदरसाकारा घट्टिज्वालेष निर्मिता ॥  
निपपात कपालांतश्शम्भुनासाप्रमिश्रिता । शृज्यीवेगवती तीव्रा स्पृशतीत्विचरंजघात् ।

पंचाशद्योजनाद्द्विस्तारादशयोजना । दिव्यवर्षसहस्रं सा समुवाह हरेभुजान् ॥  
 इयं तं कालमाशोऽसौ मिहां जग्राह मिश्रुकः । दत्तानारायणेनाथ कपालेपात्रउत्तमे ॥  
 ततो नारायणः प्राह शंभुं परमिदं वचः । संपूर्णं घनवापात्रं ततो वे परमेश्वरः ॥ १६ ॥  
 सतोपांशुदनिर्घोषं श्रुत्वा वाक्यं हरेर्हरः । शशिसूर्याग्निनयनः शशिशेखरशोभितः ॥  
 कपाले दृष्टिमावेश्य त्रिभिर्नैत्रैर्जनाद्वनम् । अंगुलश घटयन्प्राह कपालं परिपूतम् ॥  
 ध्रुत्वा शिवस्यतांघाणांविष्णुर्धारांसमाहरत् । पश्यतोऽथहरेरीशःस्यांगुल्यारुधिरंतदा ॥  
 दिव्यवर्षसहस्रं च दृष्टिपातेममंथ सः । मध्यमाने ततो रक्ते कलिलं बुद्बुदं क्रमान् ॥  
 यभूव च ततः पञ्चात्किरीटीस शरासनः । चद्रतूणीरयुगलो वृषस्कन्धोऽकुलित्रवान् ॥  
 पुरुषो वह्निसंकाशः कपाले संप्रदृश्यते । तं दृष्ट्वा भगवान्विष्णुः प्राहृदमिदं वचः ॥  
 कपाले भव को घायं प्रादुर्भूतोऽभयघ्नरः । वचःश्रुत्वा हरेरीशस्तमुवाचविभोऽग्रे ॥  
 नरोनामैव पुरुषः परमात्मविदांघरः । भवतोको नर इति नरस्तस्माद्विचिष्यति ॥ २३ ॥  
 नरनारायणी चोभौ युगे ख्यातौ भविष्यतः । संप्रामे देवकार्येषु लोकानां परिपालने ॥  
 एव नारायणसखो नरस्तस्माद्विचिष्यति । अथासुरखधे साह्यं तवकर्त्तव्यमहापुतिः ॥ २४ ॥  
 मुनिर्हानपरीक्षायां जेता लोकेभविष्यति । तेजोऽधिकमिदं दिव्यं ब्रह्मणःपंचमंक्रितं ॥  
 तेजसो ब्रह्मणोर्दीप्ताद्भुजस्य तव शोणितात् । ममदृष्टिनिपाताच्चव्रीणितेजांसियानितु ॥  
 तत्संयोगसमुत्पन्नः शत्रुं युद्धेविजेष्यति । अवध्यत्ये भविष्यंति तुर्जया अपि बापरे ॥  
 शक्रस्य चामराणां च तेषामेवमयंकटः । एवमुक्त्वास्थितः शंभुर्विस्मितश्च हरिस्तदा ॥  
 कपालस्थः स तत्रैव तुष्टाय हरकेशवो । शिरस्यंजलिमाधाय तदा घोर उद्धारपीः ॥ २५ ॥  
 किंकरोर्मातितीप्राह इत्युक्त्वा प्रणतः स्थितः । तमुवाचहरः श्रीमान्ब्रह्मणास्वेनतेजसा ॥  
 सृष्टो नरोधनुष्याणिस्त्वमेनंनुनिपूदय । इत्यमुक्त्यांजलिधरं स्तुवंतं शंकरो नमः ॥  
 तथैवांजलिसंबद्धं गृहीत्वा च कद्वयम् । उदुधृत्याथकपालात्सं पुनर्वचनमप्रवीत् ॥ २६ ॥  
 स एव पुरुषो रौद्रो योमयावेदितस्तव । विष्णुर्बुकाररचितमोहनिद्रां प्रवेशितः ॥  
 नारायणस्य प्रत्यक्षं नरेणानेनवैतदा ॥ २७ ॥  
 संपूर्णं समुत्तस्थोमहाबलः । ततो युद्धं समभयत्स्वेदरक्तजयोर्महत् ॥ २८ ॥

विस्फारितघनुःशब्दं नादिताशेषभूतम् ।

कचत्वं स्वेदजस्यैकं रक्तजेन त्वपाकृतम् ॥ ४१ ॥

एवं समेतयोर्युद्धे दिव्यं वर्षद्वयंतयोः । युध्यतोः समतीतं च स्वेदरक्तजयोर्युद्धं ॥ ४२ ॥

रक्तजं द्विभुजं दृष्ट्वा स्वेदजं चैव संगती । विचिन्त्य वासुदेवोऽगाद्व्यहजः सदनं परम् ॥

ससंभ्रममुवाचेनं प्रह्लाणं मधुसूदनः । रक्तजेनाद्यभो ब्रह्मस्वेदजोऽयं निपातितः ॥ ४४ ॥

शुभ्रैस्तदाकुलो प्रह्ला यमाये मधुसूदनम् । हरेऽद्य जन्मनि नरो मदीयो जीवतादयम् ॥

तथा तुष्टोऽजयं च विष्णुरेवं भविष्यति ।

गत्वा तयो रणमपि निवार्याह च तायुभौ ॥ ४६ ॥

मत्स्यजन्मनि भविता कलिद्रावर्यो मिथः । संघोमहारणे जाते तत्राहं योजयामि वाम् ॥ ४७ ॥

विष्णुना तु समाहूय प्रहेष्य सुरेभ्य री । उक्ता विमो नरो भद्रीपालनं त्योममात्रया ॥ ४८ ॥

सहस्रांशो स्वेदजोऽयं स्वकीयोऽशो धरातले । द्वापरं तेऽवतार्योऽयं देवानां कार्यसिद्धये ॥

यदुवांस्तु कुलेभावी रोनाममहाचलः । तस्य कन्या वृषानामरूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ ५० ॥

उत्पत्स्यति महाभागा देवानां कार्यसिद्धये । दुर्वासास्तु वरं तस्यै मंत्रप्रामं प्रदास्यति ॥ ५१ ॥

मयेनानेन पदं देवं भवयाद्वाचा हविष्यति । देवि तस्य प्रसादास्तु तव पुत्रो भविष्यति ॥ ५२ ॥

सावत्वा मुदये दृष्ट्वा साभिलाषारजस्वला । चिंतामिषघातिप्लन्ती भजितव्या विभावसी ५३ ॥

तस्यागर्भे त्वयं भावी कानीनः कुंतिनन्दनः । भविष्यति सुतो देवदेवकार्यार्थसिद्धये ॥ ५४ ॥

तदेति चोक्तवाग्नीषाच तेजो राशिर्दिवाकरः । पुत्रमुत्पादयिष्यामि कानीनं यलगर्हितम् ॥ ५५ ॥

यस्य कर्णेति यैनामलोकः सर्वं यद्विष्यति । मत्प्रसादादस्य विष्णोर्विप्राणां भावितात्मनः ॥

भवेयं नास्ति वैलीके वस्तु किंचिच्चकेशव । एवं प्रभावं धेवैर्न जनये यचनात्तव ॥ ५७ ॥

एवमुक्त्वा सहस्रांशुर्देवं दानवघातिनम् । नारायणं महात्मानं तत्रैवां तर्ध्रे रविः ॥ ५८ ॥

भद्रशं न गते देवेभास्करे घातिस्करे । वृद्धध्रुवसमप्येवमुवाच प्रीतमानसः ॥ ५९ ॥

सदस्रनेत्रकोत्थो नरोऽयं मदनुप्रहात् । स्वांशभूतो द्वापरं तयोक्तव्यो भूतदेवतया ॥ ६० ॥

पदार्पा दुर्महाभागः पृथ्वां भार्यामवाप्स्यति । माद्रोवापि महाभगत्तद्वारण्यंगमिष्यति ॥ ६१ ॥

तस्याप्यरण्यसंस्थस्य मृगः शार्पं प्रदास्यति । तेन चोत्पन्नवैराग्यः शतदृष्टं गंगमिष्यति ॥ ६२ ॥

पुत्रानमोप्सन्क्षेत्रोत्थान्भार्यासप्रवदिष्यति । अनीप्सन्तोदाकुंतोतमर्त्तारंसावदिष्यति ॥  
 नाहंमर्त्यस्यवैराजन्पुत्रानिच्छेकयंचन । दैवतेभ्यःप्रसादाचपुत्रानिच्छे नराधिप ॥ ६४ ॥  
 प्रार्थयंत्येत्ययाशक्रकुन्त्यैदेयोनरस्ततः । वचसा च मर्दायेन एवं कुह शवोपते ॥ ६५ ॥  
 भयाव्रयीत्तदाचिप्पुन्देवेशोदुःखितोयवः । अस्मिन्मन्वन्तरेऽर्त्तातिवतुर्विशतिकेयुगे ॥ ६६ ॥  
 अवतीर्यरघुकुलेगृहे दशरथस्यच । रावणस्य वधार्थाय शान्त्यर्थं च दिवौकसाम् ॥ ६७ ॥  
 रामरूपेण भवता सीतार्थमदतावने । मत्पुत्रोर्हिंसितोदेव सूर्यपुत्रहितार्थिना ॥ ६८ ॥  
 बालिनामाश्लघंगेदः सुग्रीवार्थं त्वायाहतः । दुःखेनानेन ततोऽहंगृह्णामि न सुतंनम् ॥ ६९ ॥  
 अगृह्णमानंदेवेंद्रं कारणांतरादिनम् । हरिःप्रोचे शुनासीरं भुवोभारावतारणे ॥ ७० ॥  
 अधतारं करिष्यामि मर्त्यलोकेत्त्वहं प्रभो । सूर्यपुत्रस्य नाशार्थं जयार्थमात्मजस्य ते ॥  
 सारथ्यं च करिष्यामि नामांकुरकलस्यच । ततोहृष्टोऽभवच्छक्रो चिप्पुवाक्येनतेनह ॥  
 प्रतिगृह्यनरंहृष्टः सत्यंवास्तु वचस्तव । एवमुक्त्वा धरंदैवः प्रेषयिन्नाच्युतः स्वयम् ॥  
 गत्वातु पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणं प्राद्वय पुनः । त्वयासृष्टमिदंसर्वं त्रलोक्यंसवराचरम् ॥  
 भार्याकार्यस्यकरणे सहायीचतवप्रभो । स्वयंदृष्ट्या पुनर्नाशं कर्तुं देव न बुध्यते ॥ ७५ ॥  
 कृतंजगुप्सितंकर्म शम्भुमेतंजिघांसता । त्वयाच देवदेवस्यसृष्टः कोपेनवैपुमान् ॥ ७६ ॥  
 शुद्धयर्थमस्य पापस्य प्रायश्चित्तं परंकुह । गृह्णन्वह्नित्रयं देव अग्निहोत्रमुपाहर ॥ ७७ ॥  
 पुण्यतीर्थं तथादेशेवनेवापि पितामह । स्वपत्न्या सहितोयज्ञंकुहप्यात्मत्पप्त्रिहात् ॥  
 सर्वदेवास्तथादित्यास्त्राधापि जगत्पते । आदेशंते करिष्यन्ति यतोऽस्माकंभवान्भुः ॥  
 एकोहिगार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्द्वितीयकः । आहवनीयस्तृतीयस्तु त्रिकुण्डेपुप्रकल्पय ॥  
 पतुंलेत्वर्चयात्मानमामधो धनुरावृत्तौ । चतुःकोणेहरं देवमृग्यजुःसामनामभिः ॥ ८१ ॥  
 अग्नीनुत्पाद्य तपसापरामृद्धिमवाप्यच । दिव्यंवर्चसहस्रंतु हुत्वाग्नीश्रामयिष्यसि ॥ ८२ ॥  
 अग्निहोत्रात्परंनान्यत्पवित्रमिहपठ्यते । सुरुतेनाग्निहोत्रेणप्रशुद्धयंतिभुविद्विजाः ॥ ८३ ॥  
 पंधानोदेवलोकस्यब्राह्मणैर्दर्शितास्त्यमी । एकोऽग्निःसर्वदा धार्योगृहस्थेनद्विजमना ॥  
 चिनाग्निना द्विजेनेह गार्हस्थ्यं च तु लभ्यते ।  
 भीष्म उवाच ।  
 योऽसौ कपालादुत्पन्नो नरो नाम धनुर्दरः ॥ ८५ ॥

किमेव माधवाज्ज्ञात उताहोस्येन कर्मणा । उत खदेणजनितो ह्ययवाबुद्धिपूर्वकम् ॥८६॥  
 ग्रन्थनिरूप्यगर्भोऽयमंडजातधनुर्मुखाः । धनुर्नपञ्चमंतस्य घनव्रतंत्वाधमुत्थितम् ॥८७॥  
 सत्ये रजो न दृश्येत्तनसत्यं रजसि क्वचित् । सत्त्वस्थो भगवान्ब्रह्माकथमुद्रेकमादधात् ॥  
 मृदात्मना नरो येन हंतुं हि प्रहितो हरम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

महेश्वरहरी चेतो ह्यायेव सत्पथि स्थितो ॥ ८८ ॥

तयोरधिदितं नास्ति सिद्धासिद्धं महात्मनोः । ब्रह्मणश्च चमं यच्च मूढध्वं मासीन्महात्मनः ।  
 ततो ब्रह्माऽभयमूढो रजसाचोपवृंहितः । ततोऽयं तेजसा सृष्टिममन्यतमया कृताम् ॥ ८९ ॥  
 मतोऽन्योनोस्ति यं देवो येन सृष्टिः प्रयतिता । सह देवाः सगंधर्वाः पशुपक्षिमृगाकुलाः ॥  
 एवं मूढः स पञ्चास्यो विरिचिरभयत्पुनः । प्राग्वक् च मुखा मेतस्य ऋग्वेदस्य प्रवर्तकम् ॥ ९० ॥  
 द्वितीयं यद्वनंतस्य यजुर्वेदप्रवर्तकम् । तृतीयं सामवेदस्य अधर्वाधं चतुर्थकम् ॥ ९१ ॥  
 सांगोपांगेतिहासांश्च स हस्यान्तसं प्रदधात् । वेदानर्थात्तेव क्रेणपंचमेतो ब्रुव्यं च भ्रुवा ॥ ९२ ॥  
 तस्यासुरसुराः सर्वे पक्वस्याद्भुतवर्चसः । तेजसा न प्रकाशयति दीपाः सूर्योदये यथा ॥ ९३ ॥  
 स्वपुरेष्वपि सोमेणा ह्यनंतं विचेतसः । न क्वचिद्गणयेच्चान्यं तेजसा क्षिपते परान् ॥ ९४ ॥  
 नाभिर्गर्तुं च द्रष्टुं पुरस्ताद्गोपसर्तुम् । लोकस्रस्ताः सुरास्सर्वे पद्मयोनिं महाप्रभुम् ॥  
 अभिभूतमिवात्मानं मन्यमाना इतत्त्वियः । सर्वं ते मंत्रयामासुर्वै च ताहितमात्मनः ॥ ९५ ॥  
 गच्छामः शरणं शंभुं निस्तेजसोऽस्य तेजसा ।

देवा ऊचुः ।

नमस्ते सर्वसत्येश महेश्वर नमोनमः ॥ १०० ॥

जगद्योने परं ब्रह्म भूतानां त्वं सनातनः । प्रतिष्ठा सर्वजगतां त्वं हेतुर्विष्णुना सह ॥ १०१ ॥  
 एवं संस्तूय मानोऽसौ देवर्षिपितृदानवैः । अंतर्हित उवाचेदं देवाः प्रार्थयते प्सितम् ॥ १०२ ॥

देवा ऊचुः ।

प्रत्यक्षदर्शनं दत्त्वा देहि देव यथेप्सितम् । कृत्वा कारुण्यमस्माकं वरध्यापि प्रदीयताम् ॥  
 यदस्माकं महद्दीप्यं तेजश्चोजः पराक्रमः । तत्सर्वं ब्रह्मणा प्रस्तं पंचमास्यस्य तेजसा ॥ १०३ ॥

विनेशुःसर्वतेजांसित्वत्प्रसादात्पुनः प्रभो । जायतेऽनु यथापूर्वं तथाकुलमहेश्वर ॥१०७॥  
 ततःप्रसन्नवदनो देवैश्चापि नमस्कृतः । जगाम यत्र ब्रह्मासी रजोऽहंकारमूर्धनी ॥१०८॥  
 स्तुवंतो देवदेवेशं परितार्यसमाविशन् । ब्रह्मा तमागतं रुदं ॥ जप्ते रजसावृतः ॥ १०९॥  
 सूर्यकोटिसहस्राणांतेजसारंजयञ्चगत् । तदादृश्यतविभ्वात्माविश्वसृष्टिविश्वभावनः ॥१०८॥  
 स पितामहमासीनं सकलं देवमंडलम् । अभिगम्य ततोऽक्षोब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥१०९॥  
 अहोऽतितेजसायकप्रमधिकं देवराजने । पवमुक्त्वाहृदासंतुमुमोचशशिशेखरः ॥११०॥  
 घामांगुष्ठनयाम्रेण ब्रह्मणः पंचमं शिरः । चकर्त कदलीगर्भं नरः करदहंरिष ॥ १११॥  
 पिच्छिन्मनुशिरःपद्माद्वयहस्तेस्थितं तदा । ब्रह्ममंडलमध्यस्थोऽद्वितीयैष चंद्रमा ॥ ११२॥  
 करोतिक्षतकपालेनननतंचमहेश्वरः । शिखरस्थेन सूर्येण कैलास इव पर्यतः ॥ ११३॥  
 छिद्रेण श्रेतनो देवाहृष्टास्तं चूषभध्यजम् । नुष्टुद्रुविचित्रैःस्तोत्रैर्देवदेवं कपर्विनम् ॥११४॥

देवा ऊचुः ।

नमःकपालिनेनिष्पंमहाकालस्यकालिने । ऐश्वर्यमानयुक्तायसर्वभागप्रदायिने ॥ ११५॥  
 नमोऽहंपितासायसर्वदेवमयाय च । कर्त्तृमंहारकर्तात्यंमहाकालः स्मृतोऽहसि ॥११६॥  
 भक्तानामाग्निनाशसर्वदुःखांतस्तेनचोच्यसे । शंकरोऽप्याशुभक्तानांतेनरत्यंशंकरः स्मृतः ॥  
 छिद्रं ब्रह्मशिरोरश्मात्यंकपालं विभर्षि च । तेन देवराजालंरत्यंस्तुतोऽहयप्रसादनः ॥११७॥  
 एवंस्तुतः प्रमदन्मादेशान्प्रस्थाप्यशंकरः । स्वानिधिष्यन्निभगवांस्तत्रैवासीन्मुशन्निभः ॥  
 विज्ञाय ब्रह्मबोभायं न तोषास्य ब्रह्मवयः । शिरोनागस्यवासांभुलोकानां कोपशान्तये ॥११८॥  
 शिरस्यश्रुतिमायापनुश शयप्रणमतम् । नेतो निधिपरं ब्रह्म तानुमिथं प्रवृत्ताग्निम् ॥११९॥

निरुक्तमृदाहस्यै र्मंथतुःसामभाग्निः ।

यद् उवाच ।

अयमेव तस्मिन्ऽस्तु परमस्य परममेव ॥ १२०॥

भद्रनुतामंस्मृत्स्वर्गं त्रिसांनिधिगम् ॥ चित्रयाज्ञिन्वनायस्त्वं गृह्णिष्यसि मरुतुने ॥१२१॥  
 त्रैलोक्यं तस्मिन्ऽस्तु त्वत्प्राप्तं च परमम् ॥ त्रय्याणि त्रैलोक्यं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यं ॥१२२॥  
 । त्वया हृत्पादितं पूर्वं मृदुपर्यन्तमंश्वर ॥१२३॥



यद्वाहुति सदाहार यद्वागेश नमोऽस्तुते । स्वर्णगर्म पद्मगर्म देवगर्म प्रजापते ॥१२६॥  
 त्वंयद्वास्त्वयंपदकारः स्वधात्वंपद्मसंभव । वच्नेनतुदेवानांशिरश्छिद्रंमयाप्रभो ॥१२७॥  
 ब्रह्महत्याभिभूतोऽस्मिमांस्त्वंपाहिजगत्पते । इत्युक्तोदेवदेवेनब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥१२८॥  
 ब्रह्मोवाच ।

सत्त्वानारायणोदेवः सत्त्वांपूर्तंकरिष्यति । कीर्तनोयस्त्वयाध्वन्यःसमेपूज्यःस्वयंयिभुः ॥  
 अनुध्यातोऽसिर्नूनंतेनदेवेनविष्णुना । येननेमकिरूपध्वास्तोतुमांमतिरतिथिता ॥१२९॥  
 शिरश्छेदात्कपालीत्वंसोमसिद्धांतकारकः । कीटोःशतंचयिप्राणामुद्धर्तासिमहाद्युते ॥१३०॥  
 ब्रह्महत्याघतंकुर्याध्वान्यत्किंचनविद्यते । भभाप्याःपापिनःकूराग्रहघ्नाःपापकारिणः ॥१३१॥  
 घैतानिकाधिकर्मस्थानतेभाप्याःकथंचन । तैस्तुदृष्टंस्तथाकार्यभास्करस्यावलोकनम् ॥  
 व्रंगस्पर्शोद्धतेरुद्रसच्चैलोजलमाघिशेत् । पर्यंशुद्धिमवाप्नोतिपूर्वद्वष्टांमनीषिभिः ॥१३४॥  
 सभवान्ब्रह्महन्तासिशुद्धपर्यंयत्तमाचर । चोर्णेघ्रतेपुनर्भूयःप्राप्त्यसित्वंयराज्यद्वन् ॥१३५॥  
 एवमुक्त्वागतोब्रह्माकृद्रस्तन्नामिजतिघान् । अर्चितयसदाविष्णुंध्यानगत्याततः स्वयम् ॥  
 लक्ष्मीसहायं धरदं देवदेवं सनातनम् । अष्टांगप्रणिपातेन देवदेवस्त्रिलोचनः ॥१३७॥  
 नुप्राप्य प्रणतो भूत्वा शंखचक्रगदाधरम् ।

रुद्र उवाच ।

परं पराणाममृतं पुराणं परात्परं विष्णुमनंतवीर्यम् ॥१३८॥  
 स्मरामि नित्यमुच्यं घरेण्यं नारायणं निष्प्रतिमं पुराणम् ।  
 परात्परं पूर्वजमुग्रधैर्यं गंभीरगम्भीरधियां प्रधानम् ॥१३९॥  
 नतोऽस्मि देवं इत्थिमीशितारं परात्परं धामपरं च धाम ।  
 परापरं तत्परमं च धाम परापरेशं पुरुषं विशालम् ॥१४०॥  
 नारायणं स्तोमि विशुद्धभावं परापरं सूक्ष्ममिदं सततं ।  
 सदास्थितत्वात्पुरुषं प्रधानं शांतं प्रधानं शरणं ममास्तु ॥१४१॥  
 नारायणं बीजमलं पुराणं परात्परं विष्णुमपात्पारम् ।  
 पुरातनं नीतिमतां प्रधानं भूतिश्चमाशांतिपरं क्षिर्ताशम् ॥१४२॥

शुभं सदा स्तौमि महानुभावं सहस्रमूर्द्धानमनेकपादम् ।  
 अनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रं क्षराक्षरं क्षीरसमुद्रनिद्रम् ॥ १४३ ॥  
 नारायणं स्तौमि परम्परेण परात्परं यत्त्रिदशैराम्यम् ।  
 त्रिसर्गसंस्थं त्रिहुताशनेत्रं त्रितत्त्वलक्ष्यं त्रिलयं त्रिनेत्रम् ॥ १४४ ॥  
 नमामि नारायणमप्रमेयं कृतसितद्वापरतश्चरत्म् ।  
 कलौ च कृष्णं तमथो नमामि ससर्जं यो वक्त एव विप्रान् ॥ १४५ ॥  
 भुजांतरात्क्षत्रमयोर्युग्माद्विशः पदाप्राञ्च तथैव शूद्रान् ।  
 नमामि तं विश्वतनुं पुराणं परात्परं पारगमप्रमेयम् ॥ १४६ ॥

सूक्ष्ममूर्त्तिमहामूर्त्तिपियामूर्त्तिममूर्त्तिकम् । कथंचंसर्वदेवानांमस्येयारिजेक्षणम् ॥ १४७ ॥  
 सहस्रशीर्षदेवेशंसहस्राक्षंमहाभुजम् । जगत्संव्याप्यतिष्ठंतंमस्येपरमेश्वरम् ॥ १४८ ॥  
 शरण्यंशरणदेवंविष्णुंजिष्णुंसनातनम् । नीलमेघप्रतीकाशंमस्येशार्ङ्गपाणिनम् ॥ १४९ ॥  
 शुद्धंसर्वगतंनित्यंध्योमरूपंसनातनम् । भावाभावयिनिर्मुक्तंमस्येसर्वगंहरिम् ॥ १५० ॥  
 नचात्रकिंचित्पश्यामिव्यतिरिक्तंवाच्युत । त्वन्मयंचप्रपश्यामिसर्वमेतच्चराचम् ॥

एवं तु घटतस्तस्य रुद्रस्य परमेष्ठिनः ।

इतीरितस्तेन सनातनः स्वयं परात्परस्तस्य बभूव दर्शने ॥ १५१ ॥

रथांगपाणिर्गिरुडासनो गिरिं विदीपयन्भास्करवत्समुत्थितः ।

वरं वृष्णीष्येति सनातनोऽप्रबद्धरस्तबाहुं परदः समागतः ॥ १५२ ॥

इतीरिते रुद्रवरो जगाद् ममातिशुद्धिर्भविता सुरेश ।

न चास्य पापस्य हरं हि चान्यत्संदृश्यतेऽग्न्यश्च ऋते भयतम् ॥ १५३ ॥

ब्रह्मादित्याभिभूतस्य तनुर्मे कृष्णतां गता । शयगंधश्च मे गात्रे लोहस्याभरणानि मे ॥ १५४ ॥

कथं मे न भवेदेवमेतद्रूपं जनार्दन । किं करोमि महादेव येन मे पूर्विका तनुः ॥ १५५ ॥

त्वत्प्रसादेन भविता तन्मे कथय चाच्युत ।

विष्णुरुवाच ।

ब्रह्मयथ्या परा चोप्रा सर्वकष्टप्रदा परा ॥ १५६ ॥

भवतादेववाक्येननिष्ठाचैवानिबोधिता ॥ १५७ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ] \* शिवंप्रति विष्णुना ब्रह्महत्याप्राश्चित्तकथनम् \*

१०

इदानीत्वंमहाबाहोब्रह्मणोकंसमाचर । भस्मसर्वाणिगात्राणित्रिकालंधर्पयेस्तनौ ॥१५॥  
शिखायांकर्णयोश्चैवकरेचास्थीनिधारय । एवंचकुर्वतोऽह्मकर्मनैवभविष्यति ॥१६॥  
संदिश्यैवंसमगवांस्ततोऽतर्धानमीश्वरः । लक्ष्मीसहायो गतबाधुद्रस्तेनाभिजहिष्वान् ।  
कपालपाणिर्देवेशः पर्यटन्वसुधामिमाम् । हिमवंतं समैनाकं मेरुणा च सहैवतु ॥१६२॥  
तिलांसंकलंविध्वंनोलंचेव महागिरिम् । कांचोकाशोताम्रलिप्तं मगधामाघिलांतथा ।  
तत्सगुलं च गोकर्णं तथा चैवोत्तरान्कुरुन् । भद्रार्थं केतुमालं च धर्पहीरण्यकं तथा ।  
नामरूपं प्रमासं च महेन्द्रं चैव पर्वतम् । ब्रह्महत्याभिभूतोऽसौ भ्रमंस्त्राणं न विदति ।  
पान्वितः कपालं तु पश्यन्हस्तगतंसदा । करोविधुन्वन्वदुशोविक्षिप्तधनुर्मुहुः ॥१६६॥  
दास्यधुन्वतो हस्तौ कपालं पतते नतु । तदास्यबुद्धिर्यत्पन्ना व्रतंचैतत् करोम्यहम् ॥  
वीथेनैव मार्गेण द्विजाया स्वंति सर्वतः । ध्यात्वैवं सुचिरं देवो घसुधांविचचार ह ॥  
प्लवंतु समासाद्य प्रविष्टोऽरण्यमुत्तमम् । नानाद्रुमलताकीणं नानामृगरवाकुलम् ॥  
मपुष्पभरामोदवासितं यत्सुवायुना । बुद्धिपूर्वमिवन्यस्तेः पुष्पैर्मूपितभूतलम् ॥१७०॥  
तागंधरसैरन्यैः पक्कापकैः फलैस्तथा । विवेश तरुवृंदेन पुष्पामोदामिनंदितः ॥१७१॥  
वाराधयतोभक्त्याब्रह्मादास्यतिमेवम् । ब्रह्मप्रसादात्संप्राप्तपौष्करंज्ञानमीप्सितम् ॥  
पापघ्नं दुष्टशमनं पुष्टिधोबलवर्द्धनम् । एवं वैध्यायतस्तस्यहृदस्यामिततेजसः ॥१७३॥  
आजगामततोब्रह्मामक्तिग्रीतोऽधकंजजः । उवाच प्रणतं हृदमुत्थाप्यचपुनर्गुरुः ॥१७४॥  
दिश्यततोपचारेणसोऽहमाराधितस्त्वया । भवताध्वज्यात्यर्थं मम दर्शनकांक्षया ॥१७५॥  
मत्स्यामांस्त्रिपश्यंतिमनुप्यादेवतास्तथा । तदिच्छया प्रयच्छामि घरंयत्प्रपरंघरम् ॥१७६॥  
सर्वकामप्रसिद्धपर्यग्रंतयस्माद्विप्रेवितम् । मनोवाकायभावेभ्रस्तंतुष्टेनांतरात्मना ॥१७७॥  
कं ददामि च वै कामं यद् भोस्ते यथेप्सितम् ।

हृद उवाच ।

एष एवाह भगवन्सुपर्याप्तो महावरः ॥ १७८ ॥

यद्दृष्टोऽसिजगद्व्यजगत्कर्तृर्नमोऽस्तुते । महातापप्रसाध्येनयदुकाटार्जितेनच ॥१७९॥  
प्राणव्ययकरेणत्यंतपसादेवदृश्यते । इमं कपालं देवेश न करात्पतितंविभो ॥ १८० ॥

पुलस्त्य उवाच ।

श्रीनिधानं पुरं मेरोःशिखरे खचित्रितम् ॥ ३ ॥

अनेकाध्वर्यनिलयं बहुपादपसंकुलम् । विचित्रधानुभिध्वजं स्वच्छस्फटिकनिर्मलम् ।  
लताचिदानशोभाढ्यं शिखिशब्दचिनादितम् । मृगेन्द्ररविप्रस्तगजगुहसमाकुलम् ।  
निर्भरांगुप्रपातोत्थशीकरासाच्छीतलम् । वाताहततट्यातप्रसन्नापानचित्रितम् ॥ १ ॥  
मृगनाभिवरामोदवासिताशेषकाननम् । लतागृहरतिश्रान्तसुतविद्याधराध्यगम् ॥ २ ॥  
प्रगीतकिन्नररमातमपुरण्यनिनादितम् । तस्मिन्नेकविन्यासशोभिताशोभूमिकम् ।  
पैराजं नाम भयनं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । तत्र दिव्यांगनोद्गीतमबुल्यनिनादिता ॥ ३ ॥  
पारिजाततट्यन्नमंत्रर्तृदाममालिनी । ग्दारश्मिसमृद्धां त्यक्नुयर्णविचित्रिता ॥ ४ ॥

विन्यस्तस्मिन्मण्डितस्तु निर्मलादर्शशोभिता ।

अप्सरानृत्यविन्यामवितासोत्तासन्दासिता ॥ ११ ॥

पद्मातोयसमुत्पन्नसमृद्धम्वननादिता । लपतालपुतानेकार्गातपादिप्रशोभिता ॥ १२ ॥  
सभा फांतिमर्तानाम देवानां शर्मदायिका । ऋषिर्मयसमायुक्ता मुनिवृन्दनिर्गमिका ।  
द्विजातिसाम्राज्येन नादितानंददायिनी । तस्यो निचिष्टा देवेशः संज्यासक्तः पितृभ्यः ।  
ध्यायतिस्म परं देवं येनं दें निर्मितं जगत् । ध्यायतो बुद्धिदत्तभा फां यं फांम्य ।  
फांस्मिन्स्थाने मया यत्रः कार्यः कुत्रधरातटे । फार्ताप्रयागस्तुंगा न नैमिषं शुक्लं ।  
फांची भद्रा देविका च कुक्षेत्रं गरास्वती । प्रभासादीनि तीर्थानि पूजिष्यामि नृप ।  
क्षेत्राणि पुष्पतीयांनि संलि यानाह सर्वशः । मरुदेशाश्च कद्रेषु ह्यन्यन्यानि नृप ।  
यथाहं सर्वदेवेषु आदिदेवो व्यवस्थितः । तथाचैकं परं तीर्थमादिनूतं फांम्य ।  
यहं यत्र समुत्पन्नः परं तद्विष्णुना निजम् । पुष्करं प्रोच्यते तीर्थं मृषिनिषेदादहं ।  
परं चित्तयत्नमप्य प्रक्षयस्तु प्रजापतेः । मतिरेण समुत्पन्ना वज्राभेत्तया फांम्य ।

१ स समासाय प्रविष्टस्तद्वनोत्तमम् । नावाद्मृगनाशोपेतं नापुष्पांशोः ।

२ नानामृगवपाकुलम् । द्रुमपुष्पवर्गमोदेषां मयद्विगुणमुद्रम् ।

३ पुष्पं निर्मलं नृपम् । नावागम्यतेः पदेः पदेः १११४६ ।

फलैः सुवर्णरूपाढ्यैर्घ्राणदृष्टिमनोहरैः । जीणं पत्रं तृणं यत्र शुष्ककाष्ठफलानि च ॥  
 बहिः क्षिपति जातानि मारुतोऽनुप्रहादिव । नानापुष्पसमूहानां गन्धमादाय मास्तः ॥  
 शीतलो घाति खं भूमिं दिशो यत्राभिवासयन् । हरितस्निग्धनिश्छिद्रैरकीटकवनोत्कटैः  
 श्लेष्मेरुसंज्ञैर्यद्भूषितं शिखरान्वितैः । अरोगैर्दर्शनीयैश्च सुवृत्तैः कैश्चिदुज्ज्वलैः ॥ २८ ॥  
 दुर्बमिव विप्राणामृत्विग्भिर्भाति सर्वतः । शोभन्ते धानुसंकाशैर्ऋतैः प्रावृता द्रुमाः ॥  
 श्लेनैरिषनिश्छिद्रैः स्यगुणैः प्रावृतानराः । पचनाविद्धशिखरैः स्पृशन्तीवपरस्परम् ॥  
 गजिघ्रंतीवचान्योन्यं पुष्पशालावनंसकाः । नागवृक्षाः क्वचित्पुष्पैर्दुर्गमघानीरकेसरैः ॥  
 यनैरिव शोभन्ते चञ्चलैः कृष्णतारकैः । पुष्प संपन्न शिखराः कर्णिकारद्रुमाः क्वचित् ।  
 मयुष्माद्विधावेह शोभन्त इयदंष्टी । सुपुष्पप्रमवाटोपैस्सिद्धुवारदु पतन्त्यः ॥ ३३ ॥  
 तिमत्य इषाभाति पूजिता चनदेयताः । क्वचित्क्वचित्कुन्दलताः सपुष्पाभरणोज्ज्वलाः  
 शुभ्रक्षेपु शोभन्ते पालचन्द्राद्विषोष्कृताः । सर्जार्जुनाः क्वचिद्वान्ति घनोद्देशेषु पुष्पिताः  
 तिकीशेयवासोभिः प्रावृताः पुरुगाय । अतिमुक्तकवलीभिः पुष्पिताभिस्तथाद्रुमाः ॥  
 गूढा विराजन्ते स्थनारीभिरिवप्रियाः । अपरस्परसंसर्गैः सालाशोकाश्च पल्लवैः ॥  
 तैर्हतास्पृशंतीव सुहृदधिरसंगताः । फलपुष्पभरा नम्राः पनस्ताः सरलार्जुनाः ॥  
 योन्यमर्चयन्तीव पुष्पैश्चैवफलैस्तथा । मारुतावेगसंश्लिष्टैः पादपास्तसालयाहुभिः ॥  
 याशमागतं लोकं प्रतिभाषैरिवोत्थिताः । पुष्पाणामपरोधेन सुशोभाय निवेशिताः  
 न्तमहमासाय पुराणान्स्पर्धयन्ति हि । पुष्प शोभाभरनुतैः शिखरैर्षायुकम्पितैः ॥ ४१ ॥  
 तीव नराः प्रीताः स्रगल्लतशेखराः । शृंगाग्रपवनक्षिताः पुष्पावलिषुताद्रुमाः ॥ ४२ ॥  
 लीकाः प्रनृत्यन्ति मानवा इव सप्रियाः । स्वपुष्पनतवल्लीभिः पादपाः क्वचिदावृताः ॥  
 ते तारागणैश्चिन्नैः शब्दीयनभस्तलम् । द्रुमाणामथ वाग्रेषु पुष्पिता मालती लताः ॥  
 राय शोभन्ते रचिता बुद्धिपूर्वकम् । हरिताः कांचनच्छायाफलितः पुष्पिताद्रुमाः  
 दं दर्शयंतीव नराः साधुसमागमे । पुष्पकिञ्चलकपिलागताः सर्वदिशासु च ॥ ४६ ॥  
 शुष्पस्य जयं घोषयंतीव पट्टपदाः । क्वचित्पुष्पासवहीवाः संपतन्ति सतस्ततः ॥  
 नेकिलगणा वृक्षगहनेष्विवसप्रियाः । शिरीषपुष्पसंकाशाः शुक्लामिधुनशः क्वचित् ।



फलैः सुषण्णैरुपाट्यैर्द्राण्यदृष्टिभक्तोद्गैः । जीणं पत्रं नृणं यत्र शुष्कफाष्टफलानि च ॥  
 बहिः क्षिपति जातानि मारुतोऽनुप्रहादिव । नानापुष्पसमुद्धानां गन्धमादाय मारुतः ॥  
 रान्मशो पाति यं भूमिं दिशो यत्राभियासयन । हन्तिस्निग्धनिश्छिद्रैरकीटकवनोत्कटैः  
 वृक्षैर्नेरुपगैर्बेण्डूभूमिं प्रागगन्धिनैः । भगोर्गैर्दंशनीयैश्च सुवृक्षैः केष्विदुज्ज्वलैः ॥२८॥  
 कुटुम्बेभ्यः पित्राणामृत्विग्भिर्भाति सयनः । शोभन्ते धानुसंकाशैर्कुरैःप्रावृता द्रुमाः ॥  
 कुम्भैर्नरिष्यनिश्छिद्रैः स्यगुणैः प्रागृणानगाः । पयनायिज्जितगैः स्पृशन्तीवपरस्परम् ॥  
 भात्रिप्रतीपवान्धोन्वं पुण्यशाम्बायनंसकाः । नागवृक्षाः कञ्चित्पुष्पैर्द्रुमपानीर्येसरैः ॥  
 नयनैरिव शोभन्ते चंचलैः कृष्णतारकैः । पुण्य संपन्न शिपराः कर्णिकारद्रुमाःकचिन् ।  
 युष्मयुष्माद्रिधावेह शोभन्त इवदंर्पता । सुपुण्यप्रभवाटोर्षैस्सिद्धवारदुपंकयः ॥ ३३ ॥  
 मूर्ध्निम्य इषामांनि पूजिता यनदेयताः । कचित्कचिन्कुन्दलताः सपुष्पाभरणोऽञ्जलाः  
 दिक्षु वृक्षेषु शोभन्ते यालनन्द्राद्योष्णिगताः । सज्जङ्गनाः कचिद्भ्रान्ति यनोद्देशेषु पुष्पिताः  
 धौतकीशेवयासोभिः प्रावृताः पुरुगाश्च । भनिमुककवर्द्धाभिः पुष्पिताभिस्तथाद्रुमाः ॥  
 उष्णद्रा विराजन्ते स्यनारीभिर्निषप्रियाः । भपरस्परमंसकैः सालाशोकाश्च पल्लवैः ॥  
 हस्तैर्हस्तान्स्पृशन्तीव सुवृक्षैर्भिरमंगताः । फलपुष्पभरा गन्नाः यनसाः सरलार्जुनाः ॥  
 धन्यान्धमचंयन्तीव पुण्यैश्चैवफलैस्तथा । मारुतावेगसंनिश्छिद्रैःपादपास्सालयाद्रुभिः ॥  
 धन्याशमागतं लोफं प्रतिभाषेनियोत्थिताः । पुण्याणामवरोधेन सुशोभाय निवेशिताः  
 पञ्चमहमासाद्य पुरुगान्स्पर्धयन्ति हि । पुण्य शोभाभरनुनैः शिखरैर्वायुफम्पितैः ॥४१॥  
 नृत्यन्तीव नराः प्रीताः स्नगल्लृतशेखराः । भृंगाप्रपन्नक्षिताः पुष्पावलिपुताद्रुमाः ॥४२॥  
 सवर्द्धाकाः प्रनृत्यन्ति मानवा इव सप्रियाः । स्वपुष्पनतवर्द्धाभिः पादपाः कचिदावृताः ॥  
 भाति तारागणैश्चिद्यैः शरद्वीचनभस्तलम् । द्रुमाणामथ चाग्रेषु पुष्पिता मालती लताः ॥  
 शेखराश्च शोभन्ते रचिता बुद्धिपूर्वकम् । हरिताःकाञ्चनच्छायाफलितःपुष्पिताद्रुमाः  
 सौहृदं दर्शयन्तीव नराः साधुसमागमे । पुष्पकिञ्चुकफिलामगताः सर्वदिशासु च ॥४६॥  
 कदम्बपुष्पस्य जयं घोषयन्तीव पद्मदाः । कचित्पुष्पासवक्षीयाः संपतन्ति ततस्ततः ॥  
 पुंस्कोकिलगणा वृक्षगहनेष्विवसप्रियाः । शिरीषपुष्पसंकाशाः शुक्रामिथुनशःकचित् ॥

कीर्तयन्ति गिरश्चित्राः पूजिता ब्राह्मणा यथा । सहचारिसुसंयुक्ता मयूराश्चिद्वर्हिणः ।  
 वनातिष्यपि नृत्यन्ति शोभन्तश्च नर्तकाः । कूजन्तः पक्षिसंघातानानास्तपिराविणः ।  
 कुर्यन्ति रमणीयं वै रमणीयतरं वनम् । नानामृगगणाकीर्णं नित्यं प्रमुदितान्जम् ॥१॥  
 तद्वनं नन्दनसमं मनोदृष्टिविचर्यनम् । पद्मयोनिस्तु भगवांस्तथा रूपं वनोत्तमम् ॥२॥  
 ददर्शादर्शयद्गृष्ट्वा सौम्यया पाययन्निव । तावृक्षपंकजः सर्वा दृष्ट्वा देवं तथागतम् ॥३॥  
 निवेद्य ब्रह्मणे भक्त्या मुमुक्षुः पुण्यसंपदः । पुण्यप्रतिग्रहं कृत्वा पादपानां पितामहं ॥४॥  
 वरं वृणीध्वं भद्रं वः पादपानित्युवाच सः । एवमुक्ता भगवता तस्यो निखप्रहाः ॥५॥  
 ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे नमस्कृत्वा धिर्निचिन्तम् । वरं ददासि चेदेव प्रपन्नजनवत्सल ॥६॥  
 इहैव भगवन्निस्थं वने संनिहितोभव । एष नः परमः कामः पितामह नमोऽस्तु ते ॥७॥  
 त्वंचेद्वससि देवेश वनेऽस्मिन्निध्वमावन । सर्वात्मना प्रपन्नानां वाञ्छतामुत्तमं वरम् ॥८॥  
 धरकोटिभिरन्याभिरलनो दीयतां वरम् । सन्निधानेन तीर्थेभ्य इदं स्यात्प्रवरं महत् ॥९॥

ग्रहोवाच ।

उत्तमं सर्वक्षेत्राणां पुण्यमेतद्विविष्यति । नित्यं पुण्यफलोपेता नित्यं सुस्थिरर्यावतः ।  
 कामगाः कामरूपाश्च कामरूपफलप्रदाः । कामसंदर्शनाः पुंसां तपःसिद्धिपुण्यजलानुपायः ॥१॥  
 श्रिया परमया युक्ता मत्प्रसादाद्विविष्यथ । एवं स वरदो ब्रह्मा भुजप्रहापादपानः ॥२॥  
 स्थित्वा वर्षसहस्रान्तु पुष्करप्राक्षिपद्गुहि । क्षितिर्निपतिततातेन व्यकंपत रसातलम् ॥३॥  
 विवशास्तप्यन्तुर्वैलां सागराः क्षुभितोर्मयः । शक्राशनिदत्तार्नाचव्याघ्रव्यालानुपायः ॥४॥  
 शिखराण्यप्यशीयन्त पर्यतानां सहस्रशः । देवसिद्धविमानानि गन्धर्वनगरानि च ॥५॥  
 प्रचेलुयन्मनुःपेतुर्विचिशुद्ध धरातलम् । कपोतमेघाः स्यात्पेतुः पुटसंचातदर्शिनः ॥६॥  
 ज्योतिर्गणादृष्टादयन्ता यभूवुस्तीक्ष्णमास्कराः । महता तस्य शब्देन मूकान्धवधिरादृष्टः ॥७॥  
 यभूव व्याकुलं सर्वं त्रैलोक्यं स चराचरम् । सुरासुराणांसर्वेषां शरीराणिमनांसि च ॥८॥

मिति किमित्येतद्व्रजश्रिरे । धैर्यमालम्ब्य सर्वेऽथ ब्रह्माणं चाप्यलोक्य

गतो ह भूत् । किमयं कंषिता भूमि निर्मिताः त्वात् दर्शनं

तिमन्त्र यत्र देवा व्यवस्थिताः । प्रणिपत्य इदं वाक्स्मृत्यन्तर्तो दिवा



किमेतद्गगनूहि निमित्तोत्पातदर्शनम् । त्रैलोक्यं कपितं येन संयुक्तं कालधर्मणा ॥  
 जातकल्यायसान्तु भिन्नमर्यादसागरम् । चत्वारोदिग्गजाः किन्तु बभूवुरचलाध्वलाः ॥  
 समवृता धरा कस्मात्सप्तसागरवारिणा । उत्पत्तिर्नास्ति शब्दस्य भगवन्निष्प्रयोजना  
 यादृशोवास्मृतः शब्दो न भूतो न भविष्यति । त्रैलोक्यमाकुल्येन चक्रेऽद्रेण चोद्यता  
 शुभोऽशुभोवाशब्दोऽयं त्रैलोक्यस्य द्विष्योक्तसाम् । भगवन्पदिज्ञानासि किमेतत्कथयस्व नः  
 एवमुक्तोऽप्रवीक्षिष्णुः परमेष्ठानुभाषितः । मामैष्टमस्त.सर्वं शृणुध्वंचात्र कारणम् ७७ ॥  
 निश्चयेनानुविज्ञाय वक्ष्याम्येयथाविधम् । पद्महस्तोहिभगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥  
 भूतदेशेषुपुण्यराशौ यज्ञं कर्तुं व्यवस्थितः । अवरोहे पर्वतानां वने चातीवशोभने ॥ ७८ ॥  
 कमलतस्य हस्तात्तु पतितं धरणीतले । तस्यशब्दोमहानेव येन गूढं प्रकंपिताः ॥ ८० ॥  
 तत्रासौ तद्वृत्तेन पुष्पामोदाभितंदितः । अनुगृह्यायभगवान्बर्नतस्तस्मृगांडजम् ॥ ८१ ॥  
 जगतोऽनुग्रहार्थाय दासं तत्रान्वरोचयत् । पुष्करं नाम तत्तीर्थं क्षेत्रं वृषभमेव च ॥ ८२ ॥  
 जनितं तद्गगधता लोफानां हितकारिणा । ब्रह्माण्तत्रर्षेयत्वा तोपयध्वं मया सह ॥ ८३ ॥  
 जगामतद्वनोद्देशं यत्रास्ते स तु कंजजः । प्रहृष्टास्तुष्टमनसः कोकिलालापलापिताः ॥  
 पुष्पोद्ययोऽथलं शस्तं विविशुर्ब्रह्मणोधनम् । संग्रातंसर्वदेवैस्तु वननंदनसंमितम् ८६ ॥  
 पद्मिनीमृगपुष्पाढ्यं सुहृदं शुशुभे तदा । प्रविश्याथ वनदेवाः सर्वपुष्पोपशोभितम् ॥  
 ब्रह्मदेवोऽस्तीतिदेवा वध्रमुध्रदिदृक्षवः । मृगयं तस्ततस्ते तु सर्वदेवाः सवासवाः ॥ ८८ ॥  
 अद्भुतस्यवनस्यांतं ॥ ते ददृशुःपुनःपुनः । विचिन्वद्विस्तदादेवं देवैर्वायुर्विलोफितः ॥ ८९ ॥  
 सतानुपाय ब्रह्माणं न द्रक्ष्यथ तपोविना । तदावित्राविचिन्वतस्तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥  
 दक्षिणेवोसरेचैव अंतरालेषुनःपुनः । वायूकं हृदये कृत्या वायुस्तानब्रवीत्पुनः ॥ ९१ ॥  
 त्रिभिरो दर्शनोपायो विरिचिरेस्य सर्वदा । श्रद्धाज्ञानेन तपसा योगेन च निगद्यते ॥ ९२ ॥  
 सकलनिष्कलं चैव देवं पश्यंतियोगिनः । तपस्थिनस्तु सकलं ज्ञानिनोनिष्कलं परम् ॥  
 समुत्पन्ने तु विज्ञाने मंदश्चक्षो न पश्यति । भक्त्या परमयाक्षिप्तं ब्रह्मपश्यंतियोगिनः ॥  
 प्रष्टव्योनिर्दिकारोऽसौ प्रधानपुरुषोऽवतः । कर्मणा मनसा वाचा नित्ययुक्ताः पितामहम् ॥

तपश्चरतभद्रं वो ब्रह्माराधनतत्पराः । ब्राह्मीदीक्षां प्रपन्नानां भक्तानां च द्विजन्मनाम् ॥  
 सर्वकालं सजानाति दातव्यं दर्शनं मया । वायोस्तु वचनं श्रुत्वा हितमेतद्वेत्य च ॥६॥  
 ब्रह्मेच्छाविष्टमतयो वाक्पति च ततोऽब्रुवन् । प्रज्ञानविबुधास्माकंब्राह्मीदीक्षां विधत्स्व न  
 सदिदीक्षयिषुः क्षिप्रममरान् ब्रह्मदीक्षया । वेदोक्तेन विधानेन दीक्षयामासतान्गुह्य ॥६॥  
 विनीतवेष्टाः प्रणता अन्तेवासित्वमाययुः । ब्रह्मप्रसादं संप्राप्ताः पौष्करं ह्यनमीरिम् ॥७॥  
 यज्ञं चकार विधिनाधिपणोऽध्वर्युस्तमः । पद्मं कृत्वा मृणालाढ्यं पद्मदीक्षाप्रयोगतः ॥  
 धनुजग्राहदेवास्तान्सुरेच्छाप्रेरितो मुनिः । तेभ्यो ददौ विवेकिन्यः स वेदोक्तविधानविद्  
 दीक्षावैविस्मयं त्यक्त्वा बृहस्पतिरुदारधीः । एकमग्निरसं सृज्य महात्मा त्रिविधैकसम्  
 प्रादादांगिरसं तुष्टो जाप्यं वेदोदितं नुयत् । त्रिसुपर्णं त्रिमधुच पायमानां च पायनीम् ॥८॥  
 स हि जाप्यादिकं सर्वमशिक्षय दुदारधीः । आपो हिष्ठेति यत्स्नानं ब्राह्मं तत्परिपश्यते ।  
 पापघ्नं दुष्टशमनं पुष्टिधायकवर्धनम् । सिद्धिदं कीर्तिदं चैव कलिकल्मषनाशनम् ॥९॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मं स्नानं समाचरेत् ।

कुर्वन्तो मौनिनो दांता दीक्षिताः क्षपितेन्द्रियाः ॥ १०० ॥

सर्वे कर्मडलुपुता मुक्तकक्षाक्षमालिनः । दंदिनधीस्वस्त्राश्च जटाभिरतिप्रोमिताः ॥  
 स्नानाचारासनत्ताः प्रयत्नध्यानधारिणः । मनोब्रह्मणिसंयोज्य नियताहारकाक्षिणः ॥  
 धतिष्टुर्दर्शनालापसंगव्यानविधर्जिताः । एवं व्रतधराः सर्वे त्रिकालं स्नानकारिणः ॥१०॥  
 भक्त्या पद्मयायुक्ता विधिनापरमेण च । कालेन महताप्यानादेवज्ञानमनोगताः ॥११॥  
 ब्रह्मप्यानाग्निर्दग्धा यक्षा शुद्धैकमानसाः । आविर्यभूय भगवान्सर्वेषां दृष्टिगोचरा ॥  
 तेजसाप्यायितास्तस्य कभूयुर्ध्वा तचेतसः । ततोऽघलंभ्य ते धैर्यमिष्टं देवं यथाविधि ॥  
 पङ्कगवेद्योगेन दृष्टचितास्तु तत्पराः । शिरोगतैरजलिभिः शिरोभिध महोगता ॥१२॥

तुष्टुः सृष्टिकर्तारं स्थितिकर्तारमीभ्यम् ।

देवाञ्जयुः ।

ब्रह्मणे ब्रह्मदेहाय ब्रह्मण्यायाजिताय च ॥ ११५ ॥

सुनियताः मनुवेदप्रदायिने । लोकानुकल्पिने देव सृष्टिरूपाय ये नमः ॥११॥

भक्तानुकंपिनेऽत्यर्थं वेदजाप्यस्तुताय च । बहुरूपस्वरूपाय रूपाणां शतधारिणे ॥११७॥  
सावित्रिपतये देव गायत्रीपतये नमः । पद्मासनाय पद्माय पद्मवक्त्राय ते नमः ॥११८॥  
परदाय वराहाय कर्माय च मृगाय च । जटामुकुटयुक्ताय सुवक्त्रुचनिधारिणे ॥११९॥  
मृगांकमृगधर्माय धर्मनेत्राय ते नमः । विश्वनाम्नेऽथविश्वाय विश्वेशाय नमोनमः ॥  
धर्मनेत्रप्राणमस्मादधिकं कर्तुमर्हसि । यादृग्मनःकायभावेस्त्वां प्रपन्नास्मः पितामह ॥  
एवंस्तुतस्तदादेवैर्ग्रहाः ग्रहाविदां वरः । प्रदास्यामि स्मृतोवाङ्मममोघं दर्शनं हि वा ॥१२२॥  
इवंतुषांछितंपुत्राः प्रदास्यामि वरान्यरान् । एवमुक्ता भगवता देवा वचनमब्रुवन् ॥१२३॥  
एषपचाय भगवन्तु पर्याप्तोमहान्वरः । जनितोनः सुराद्वोऽयंकमलंक्षिपतात्यया ॥१२४॥  
किमर्थकंपिताभूमिलोकाद्वाकुलिताः कृताः । नैतन्निरर्थकं देव उच्यतामत्रकारणम् ॥१२५॥

ग्रहोवाच ।

युष्मद्वितार्थमेतद्वै पद्मं विनिहितं मया । देवतानां च रक्षार्थं धूयतामत्रकारणम् ॥१२६॥  
मनुरोद्यजनाभोऽयं बालजीघापहारकः । भवस्थितस्त्ववष्टभ्यरसातलतलाध्रयम् ॥१२७॥  
युष्मदागमनं छात्वा तपस्थान्निहितायुधान् । हंतुकामो दुराचाः सैत्रानपि विधौकसः ॥  
पातः कमलपातेन मया तस्य विनिर्मितः । स गज्येऽयं दर्पिष्ठस्तेनासौ निहतो मया ॥१२८॥  
शौक्येऽस्मिन्समये भक्ताग्राहणा वेदपारगाः । प्रैव ते दुर्गतिं यांतुलभं तां सुगतिं पुनः ॥१२९॥  
देवानां दानघातां च मनुष्यो रगरक्षसाम् । भूतग्रामस्वसथस्य समोऽस्मिन्निदिधौकसः ॥  
युष्मद्वितार्थं पापोऽसौ मयामंत्रेण घातितः । प्रातः पुण्यवृक्षां लोकान्कमलस्यास्य दर्शनात् ॥  
यन्मया पद्ममुक्तं तु तेनेदं पुष्करं भुवि । व्यातं भविष्यते तीर्थं पावनं पुण्यदं महत् ॥१३३॥  
पृथिव्यां सत्यं जंतूनाम् पुण्यं परिपश्यते । इतो ह्यनुग्रहो देवा भक्तानां भक्तिमिच्छताम् ॥  
यनेऽस्मिन्नित्यवासेन वृक्षैरभ्यर्थितेन च । महाकालो यनेऽप्रागाद्गगतस्य ममानघाः ॥१३५॥  
तपस्यां च भवतां महज्ज्ञानं प्रदर्शितम् । कुरुष्वं हृदये देवाः स्वार्थंचैव परार्थकम् ॥१३६॥  
मयद्विदर्शनीयं तु नानारूपधरेर्भुवि । द्विषन्वैश्वानरिं विषं पापेनैषादितोनरः ॥१३७॥  
विमुच्येत पापेन जन्मकोटिशतैरपि । वेदांगपारयं विषं न हन्याध्नन् दूषयेत् ॥१३८॥  
एकस्मिन्निहते यस्मात्कोटिर्भयतिघातिता । एकविदातयं विप्रं भोजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥

तस्य भुक्ता भवेत्कोटिर्दिवाणां नात्र संशयः । यः पात्रपूरणो मिश्रायतीनां नुप्रयच्छति ॥  
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नासीदुर्गतिमाप्नुयात् । यथाहं सर्वदेवानां ज्येष्ठः श्रेष्ठः पितामहः ॥४१॥  
 तथा प्रानीतदापूज्यो निर्ममो निष्पृच्छिहः । संसारबंधमोक्षार्थं प्रह्लादमुत्तमिदं व्रतम् ॥४२॥  
 मया प्रणीतं विप्राणामपुनर्भवकारणम् । अग्निहोत्रमुपादाय यस्त्यजेद्भजितेन्द्रियः ॥४३॥  
 रौरवं सप्रयात्याशु प्रणीतो यमकिं करेः । लोकयात्रायितं दध्नुद्रं कर्म करोति यः ॥४४॥  
 सरागचित्तः शृंगारी नारीजनघनप्रियः । एकभोजी सुमीष्टाशो रुचिषाणि ज्यसेयकः ॥  
 भवेद्दो येदनिर्दीप्तं गरभायां च सेवते । इत्यादिदोषदुष्टो यस्तस्य संभावनादपि ॥४५॥  
 नरो नरकतामस्योद्यमसद्व्रतदूषकः । असंतुष्टमिदं चित्तं दुर्मतिपापकारिणम् ॥४६॥  
 नमूदोऽङ्गमंगेन नमूदः शान्तेन गुदप्रति । एवमुक्त्वा स भगवान्प्रह्लादो तैरमरैः सह ॥४७॥  
 क्षेत्रं निवेशया मासवथापत्कथयामि ते । उत्तरे चंद्रनद्यास्तु प्राची यावरसारस्वती ॥४८॥  
 पूर्वतु नंदनाहृतस्त्वं पावकज्यं सपुष्कलम् । वेदीहोषाहृताय च प्रह्लादालोककारिणा ॥४९॥  
 ज्येष्ठं तु प्रथमं देवं तार्थं त्रैलोक्यपाथनम् । क्वातंतु द्रव्यैवैतत्थं मध्यमं यैष्णवं तथा ॥५०॥  
 कतिष्ठं रद्वयैवैतत्थं प्रह्लादो पूर्वमकारयत् । आयमेतत्परं क्षेत्रं गुप्तं वेदेषु पठ्यते ॥५१॥  
 भरण्यं पुष्कराक्षं तु दद्यात्सप्रिहितः प्रभुः । अनुग्रहो भूमिनामेततोऽयं प्रह्लादाख्यम् ॥५२॥  
 भद्रुग्रहाय विप्राणां सर्वे गन्धर्वकारिणम् । गुणयंत्रयंत्रयंत्रा वेदिकाया महीदया ॥५३॥  
 विविचकुट्टिमागनेः कागितासर्वशोभना । गन्तव्यं भगवान्प्रह्लादोऽकृतितामहः ॥५४॥  
 विष्णुर्द्रोतशार्दूलवसवोऽप्यश्विनावपि । मरुतश्चमरैरेण गन्तव्यं दिव्योऽक्षसः ॥५५॥  
 एतन्तत्प्रमाथ्यान्तं लोकान् प्रदद्यात्तत्तम् । मंहितानुग्रहेणात्रमंत्रेभ्यश्चिह्नैश्च ॥५६॥  
 वेदज्योतिर्विद्यया गुह्यभूषणेन तः । वसन्ति श्रद्धातमः ज्योतिर्नानुभाविताः ॥५७॥

नाम उवाच ।

अथ यन्त्रविधिनायाज्यं दुष्करं नरे । श्रद्धालोऽप्यनंतसद्विषयं कथं प्रयच्छति ॥५८॥  
 विष्णुर्ध्वजस्तुतिस्तुतिस्तुतिस्तुतिस्तुति । वसन्ति विष्णुर्ध्वजस्तुतिस्तुतिस्तुति ॥५९॥

गुह्यं उवाच ।

नरे सुदुर्लभं यत्तद्वदन्तः प्रवक्ष्यामि ते । स्वयं नारायणोऽहं नमोऽहं नमोऽहं ॥६०॥

कर्मणामनसा वाचाब्रह्मभक्तैर्जितेन्द्रियैः । वनसूयुभिरश्रुदैः सर्वभूतहिते रतैः ॥१६॥  
भीष्म उवाच ।

किमुपांजो नरकमग्रद्वारमक्तस्तिवहो ज्यते । कीदृशा ब्रह्मभक्ताश्च स्मृतान्दृष्ट्वा पादद्वये ॥१६॥  
पुनस्तथ उवाच ।

त्रिविधामकिरुद्रिष्टामनोवाक्कायसंभवा । लौकिकीयैर्दिकीया विभवे द्वाध्यात्मिकी तथा ॥  
ध्यानधारणमायुदधायेदार्यस्मरणे हियन् । ब्रह्मप्रातिकर्षिचैवामानसा भक्तिरुच्यते ॥१६॥  
मंत्रयेद्वनस्कारैरग्निधाद्यादिचित्तनैः । जाप्यैश्चापश्यकैश्चैव याचिकी भक्तिरप्यते ॥१६॥  
मनोपयासनियतैश्चित्तैर्द्रियनिरोधिभिः । रुष्टैः सान्धनैश्चान्यैस्तथाचां द्वायणविभिः ॥  
ब्रह्मरुष्टोपवासैश्च तथा चान्यैः शुभजनैः । कायिकी भक्तिरप्यथा त्राविधिषानुद्धितजन्मनाम् ॥  
गोपूतक्षीरदधिभिः रत्नदीपकुसोदकैः । गंधैर्माल्यैश्च विविजैर्धातुभिश्चाप्यपादिनैः ॥१६॥  
गुग्गुलुतुषैश्च हृष्णागदमुग्धिभिः । भूरणैर्हंमरुताद्वैश्च प्राभिः अग्निरेव च ॥१७॥  
गृह्यवादित्रगीतैश्च सर्वैरलोपहारकैः । भक्ष्यभोग्याद्यपानैश्च यापूजाक्रियते नरैः ॥१७॥  
विश्रामहंसमुद्रिश्य भक्तिस्तल्लौकिकी कामना । विदमं ग्रहपियांगैर्भक्तियां वैर्दिकी मता ॥१७॥  
दण्ड्यापौणमास्यां पाकतर्प्यमग्निहोत्रकम् । प्रशस्तं दक्षिणादानं पुरोडाशां च क्रिया ॥१७॥  
इष्टिर्भुक्तिः सोमपानायत्रीयं कर्म सर्वशः । सुम्यक्तुः सामजाप्यानि संहिताभ्ययनानि च ॥१७॥  
क्रियन्ते विधिमुद्रिश्य सामविधिर्लौकिकी ज्यते । भस्मिभूम्यनित्यकाराणां पुनिशाकरभास्करम् ॥  
समुद्रिश्य तत्तत्कर्म तत्सर्वं ब्रह्मैव तम् । भाध्यात्मिकी तु त्रिविधा ब्रह्मभक्तिः स्थिता नृप ॥१७॥  
गंधाद्युपायोगाद्यान्या विभर्गत्तत्रैव भूय । यनुषिष्टान्तिरयानि त्रयानि दीनि गंध्या ॥  
भक्तेनानि भोग्यानि पुरुरः पञ्चविधकः । वेतनः पुरुरो भोक्तृ न कर्ता तस्य कर्मणः ॥१७॥  
आभानित्यां ज्ययश्चैव भविष्याता प्रयोत्रकः । भयकः पुरुरो भिष्यः कारणं यदित्यतः ॥  
तत्परागोभाय सार्गो भूतसर्गो भूतस्थनः । संस्पृष्टापरिभ्रम्याप्यपानं च गुणान्वयम् ॥१८॥  
साधनं मानसैर्धर्मप्रधानं च विधर्मिणः । कारणत्वं यद्ब्रह्मत्वं चाम्यत्यभिदुष्यते ॥१८॥  
मरोग्यत्वं प्रधानस्यैव धर्ममिदमुच्यते । सर्वत्र कर्तृभ्यां कृत्यपुरुषभ्यां कर्तृता ॥१८॥  
वेत्तत्वं प्रधानं च साधनं मिदमुच्यते । तस्यां गदं च तत्पदानां कर्मकारणमेव च ॥१८॥

प्रयोजनंचयैर्योग्यमैश्वर्यतत्त्वसंख्यया । संख्यास्तीत्युच्यतेप्राज्ञैर्विनिश्चित्यार्थचित्तकः ॥  
 इतितत्त्वस्यसंभारंतत्त्वसंख्याचतस्वतः । ब्रह्मतत्त्वाधिकंचापिश्रुत्वातत्त्वंविदुर्गुहाः ॥ १८१ ॥  
 सांख्यकृद्भक्तिरेवाचसद्विराध्यात्मिकीकृता । योगजामपिभक्तानांशृणुभक्तिपितामहे ॥ १८२ ॥  
 प्राणायामपरोनित्यंध्यानवाञ्छियतेन्द्रियः । भैक्ष्यभक्षीव्रतीवापिसर्वप्रत्याहृतोद्विग्नः ॥ १८३ ॥  
 धारणं हृदये कुर्याद्ध्यायमानः प्रजेश्वरम् । हृत्पद्मकर्णिकासीनंरक्तवक्त्रंमुलोचनम् ॥ १८४ ॥  
 परितोद्योतितमुखंब्रह्मसूत्रकटीतटम् । चतुर्वक्त्रंचतुर्बाहुंचरदाभयहस्तकम् ॥ १८५ ॥  
 योगजामानसीसिद्धिर्ब्रह्मभक्तिःपरास्मृता । यपवंभक्तिमान्देवेब्रह्मभक्तः सउच्यते ॥ १८६ ॥  
 वृत्तिचशृणुराजेंद्रयास्मृताक्षेत्रवासिनाम् । स्वयंदेवेनविप्राणांविष्णवादीनांसमागमे ॥ १८७ ॥  
 कथिताविस्तरात्पूर्वंसर्वेषांतत्रप्रसन्निधौ । निर्ममानिहंकारानिःसंगानिप्यग्निहः ॥ १८८ ॥  
 बंधुवर्गंचनिःस्नेहास्समलोष्टाश्मकांचनाः । भूतानांकर्मभिर्नित्यैर्विधिधैरभयप्रदाः ॥ १८९ ॥  
 प्राणायामपरानित्यंपरध्यानपरायणाः । याजिनःशुचयोनित्यंयतिधर्मपयणाः ॥ १९० ॥  
 सांख्ययोगविधिज्ञाध्वधर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः । यजंतैर्विधिनायेनयेविप्राः क्षेत्रवासिनः ॥ १९१ ॥  
 शरण्येरीष्करैरेषामृतानांसत्फलंशृणु । यजंतितेसुदुष्प्रापंश्रद्धसायुज्यमक्षयम् ॥ १९२ ॥  
 यत्प्राप्यनपुनर्जन्मलभन्तेमृत्युदायकम् । पुनरावर्तनंहित्वाब्राह्मींविद्यांसमास्थितः ॥ १९३ ॥  
 पुनरावृत्तिरूपेणांप्रपञ्चाध्रमवासिनाम् । गार्हस्थ्यविधिमाधित्यपद्कर्मनिरतःसदा ॥ १९४ ॥  
 जुहोतिविधिनासभ्यङ्गमग्नैर्यज्ञेनिर्मन्त्रितः । अधिकंफलमाप्नोतिसर्वदुःखवियर्जितः ॥ १९५ ॥  
 सर्वलोकेषुचाप्यस्यगतिर्नप्रतिहन्यते । दिश्येनैश्वर्ययोगेन स्यारुहःसपरिग्रहः ॥ २०० ॥  
 बालसूर्यप्रकाशेन विमानेन सुवर्चसा । वृतः स्त्रीणांसहस्रेस्तुस्वच्छंदगमनालयः ॥ २०१ ॥  
 विचरत्यानिवार्येणसर्वलोकान्यहच्छया । स्पृहणीयतमः पुंसांसर्वधर्मोत्तमोधनी ॥ २०२ ॥  
 स्वर्गच्युतः प्रजायेत कुले महति रूपवान् । धर्मज्ञो धर्मभक्तश्च सर्वविद्यार्थपातालः ॥ २०३ ॥  
 तथैवश्रवणेण गुरुशुश्रूषणेनच । वेदाध्यनसंयुक्तो भैक्ष्यवृत्तिर्जितेन्द्रियः ॥ २०४ ॥  
 नित्यंसत्यव्रतेयुक्तः स्वधर्मप्यप्रमादवान् । सर्वकामसमृद्धेनसर्वकामावलंबिना ॥ २०५ ॥  
 सूर्येणैवद्वितीयेनविमानेनानिचारितः । गुह्यंका नाम ब्रह्माख्यगणः परमसंमताः ॥ २०६ ॥  
 धर्ममेयपलेश्वर्यां देवदानवपूजिताः । तेषां स समतां यातिनित्यैश्वर्यसमन्यतः ॥ २०७ ॥

देवदानवमर्त्येषु भवत्यनियतायुधः । वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च ॥२०८॥  
पवमैश्वर्यसंयुक्तो विष्णुलोकेमहीयते । उपित्वासीविभूत्यैव्यदाप्रच्यवतेपुनः ॥२०९॥

विष्णुलोकात्स्वकृत्येन स्वर्गस्थानेषु जायते ॥२१०॥

पुष्करारण्यमासायब्रह्मचर्याश्रमेस्थितः । अभ्यासेनतुयेदानां वसतेप्रियतेऽपिवा ॥२११॥  
मृनोऽसौयातिदिद्येनयिमानेनरुतेजसा । पूर्णचंद्रप्रकाशेनशशिचन्द्रप्रियदर्शनः ॥२१२॥  
रुद्रलोकं समासायगुह्यकैः सहमोदते । ऐश्वर्यं महदाप्नोति सर्वस्यजगतः प्रभुः ॥२१३॥  
भुक्त्या युगसहस्राणि रुद्रलोकेमहीयते । प्रच्युतस्तुपुनस्तस्माद्रुद्रलोकात्कमेणतु ॥२१४॥  
नित्यंप्रमुदितस्तत्रभुक्त्या सुखमनायम् । द्विजानां सद्मे दिध्ये कुलेमहतिजायते ॥२१५॥  
मानुषेषुसधर्मात्मात्मारूपोवाक्पतिर्भवेत् । स्पृहणीयचपुःस्त्रीषाम्महाभोगपतिर्यत्नी २१६॥  
पानप्रस्थसमाचारोग्राम्योपाधिचिचर्जितः । सर्वलोकेष्वचाप्यस्यगतिर्नप्रतिहन्यते ॥२१७॥  
शीर्णवर्णकलाहारः पुष्पमूलांबुमोजनः । कपोतेनाश्मकुट्टेन दंतोत्पल्लिकेन च ॥२१८॥  
वृक्षयुपायेनर्जयित्वा रघवकलपाससा । जटीत्रिषवणस्त्रायीत्यक्तदोषस्तुदंडयान् ॥२१९॥  
कृच्छ्रव्रतपरोयस्तुश्वपचोयदिवापरः । जलशायीपंचतपाध्यायस्वभ्रातृपादहफः ॥२२०॥  
कोटिकंदफवापाणभूम्यांनुशयनंतथा । स्थानवीरासनरतः संविभागीदृढव्रतः ॥२२१॥  
धरण्यापधिभोक्ता च सर्वभूताभयप्रदः । नित्यं धर्माज्जनरतो जितकोधोजितेन्द्रियः ॥२२२॥  
ब्रह्मभक्तः क्षेत्रवासी पुष्करेव स ते मुनिः । सर्वसंगपरित्यागी स्वारागमो विगतस्पृहः ॥२२३॥  
यथात्रयसतेर्भाष्मशृणुतस्यापियागतिः । तरुणार्कप्रकाशेनवेदिकास्तंभशोभिना ॥२२४॥  
ब्रह्मभक्तो विमानेनयातिक्रमप्रचारिणा । विराजमानो न भस्ति द्वितीयश्चंद्रमाः ॥२२५॥  
गीतवादिब्रह्मनृत्यज्ञैर्गंधर्वाप्सरसांगणैः । भस्मरोभिः समायुक्तो वर्षकोटिशतान्यसी २२६॥  
यस्य कस्यापि देवस्य लोकं यात्यनिवारितः । ब्रह्मणोऽनुदेष्टव्यं तत्र तत्र विराजते ॥२२७॥  
ब्रह्मशोकं च श्रुतश्चापि विष्णुलोकं संगच्छति । विष्णुलीकात्पश्चिमो रुद्रलोकं संगच्छति  
तस्मादपि च्युतः स्थानादुद्धीपेषु सहि जायते । स्वर्गेषु च तथा न्येषु भोगान्भुक्त्यापयेप्सितान्  
भुक्त्वा श्वयंततस्ते पुनर्मर्त्येषु जायते । राजा वाराजपुत्रो या जायते धनवान् सुखी ॥२३०॥  
सुरूपगुणभगः कांतः कीर्तिमान्भक्तिमाधितः । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रायाश्चेष्टयासिनः ।

स्यधर्मनिरताराजन्मुवृत्ताश्चिरजीविनः । सर्वात्मनाब्रह्ममकामभूतानुग्रहकारिणः ॥२३२॥  
 पुष्करेतुमहाक्षेत्रेयेयसंतिमुमुक्षवः । मृतास्ते ब्रह्ममवनंविमानैर्यान्तिशोभनैः ॥२३३॥  
 अप्सरोगणसंघुष्टैः कामगैः कामरूपिभिः । अथवासंप्रदीताग्रीस्वशरीरंनुहोतयः ॥२३४॥  
 ब्रह्माध्यायीमहासत्यः स ब्रह्ममवनं व्रजेत् । ब्रह्मलोकोऽक्षयस्तस्य शाश्वतो विभवैः सह ॥  
 सर्वलोकोत्तमो रम्यो भवतीष्टार्थसाधकः ।

पुष्करे तु महापुण्ये प्राणान्येसलिलेऽत्यजन् ॥ २३६ ॥

तेषामप्यक्षयोभीष्मब्रह्मलोकोमहात्मनाम् । साक्षात्पश्यन्ति ते देवसर्वदुःखविनाशनम् ।  
 सर्वामरयुतं देवं रद्विष्णुगणैर्युक्त्वा । अनाशकेमृताश्शूद्राः पुष्करे तु घने नराः ॥२३८॥  
 ईसयुक्तीस्ततोयांति विमानैरर्कसप्रभैः । नानरज सुवर्णाढ्यैर्हृद्गैर्गन्धाधिवासितैः ॥२३९॥  
 धनीपम्यगुणैरन्यरप्सरोगीतनादितैः । पताकाध्वजविन्यस्तैर्नानाघण्टानिनादितैः ॥  
 यद्वाध्वयसमोपेतैः क्रोडाविज्ञानशालिभिः । सुप्रमैर्गुणसंपन्नैर्मयूरखरवाहिभिः ॥२४१॥  
 ब्रह्मलोकेनराधार्थीरारमन्तेऽनाशकेमृताः । तत्रोपित्थाचिरंकालंभुक्त्वाभोगान्यधेप्सितान् ।  
 धनीविप्रकुलेभोगी जायतेमर्त्यमागतः । कारीणो साधयेद्यस्तुपुष्करे तु घनेनरः ॥२४३॥  
 सर्वलोकान्परित्यज्य ब्रह्मलोकं सगच्छति । ब्रह्मलोकेयसेत्तावदायत्कल्पक्षयो भवेत् ॥  
 नवैपश्यतिमर्त्यं हिक्लिश्यमानस्यकर्मभिः । गतिस्तस्याप्रतिदत्ता तिर्यगूर्ध्वमथस्तथा ॥  
 स पूज्यः सर्वलोकेषु यशोविस्तारयन्वशी । सदाचारविधिप्रदः सर्वेन्द्रियमनोहरः ॥२४५॥  
 नृत्यवादिधर्मातमः सुभगः प्रियदर्शनः । नित्यमम्लानकुसुमो दिव्याभरणभूषितः ॥२४६॥  
 नीलोत्पलदलश्यामो नीलकुञ्जितमूर्द्धजः । भजघन्याः सुमध्याध्व सर्वसौभाग्यपूरिताः ॥  
 सर्वैर्ध्वयगुणोपेता र्योचनेनातिगर्विताः । स्त्रियः सेवन्ति तत्रस्थाः शयनेरमयन्ति च ॥२४७॥  
 वीणावेणुनिनादैश्चमुक्तः संप्रतिबुध्यते । महोत्सवमुखंभुंकेदुष्प्राप्यममृतात्मभिः ॥२४८॥

प्रसादादेवदेवस्य ब्रह्मणः शुभकारिणः ।

भीष्म उवाच ।

भाचाराः परमा धर्माः क्षेत्रधर्मपरायणाः ॥ २५१ ॥

जितक्रोधाजितेन्द्रियाः । ब्रह्मलोकं प्रव्रंतीतिनैतद्विप्रं मतं मम ॥२५२॥



रसंशयं च गच्छन्ति लोकानन्यान् पित्रिजाः । विना पद्मोपवासेन तथैव नियमेन च ॥२५३॥  
 छेयो म्लेच्छाश्च शूद्राश्च पक्षिणः पशवो मृगाः । मूका जडान्यवधिरास्तपोनियमवर्जिताः  
 तेषां घटं गतिं विप्रं पुष्करे ये त्वचस्थिताः ।

पुलस्त्य उवाच ।

स्त्रियो म्लेच्छाश्च शूद्राश्च पशवः पक्षिणो मृगाः ॥२५४॥

[पुष्करे तु मृता भीष्म ब्रह्मलोकं व्रजन्ति । शरीरैर्दिव्यरूपैस्तु विमानैरविसप्रभः ॥२५६॥  
 देव्यभ्युहसमायुक्तैः सुवर्णवरकेतनैः । सुवर्णचक्रसोपानमणिस्तंभविभूषितैः ॥ २५७ ॥  
 अर्थकामोपभोगाढ्यैः कामगैः कामरूपिभिः । नानारसाढ्यं गच्छन्ति स्त्रीसहस्रसमाकुलाः ।  
 ब्रह्मलोकं महात्मनो लोकान्यन्त्यये प्लुतान् । ब्रह्मलोकान्च्युताश्च पिक्रमादुर्द्धायेषु यांति ते  
 ज्ञेयमवति विस्तीर्णं धनीमवतिसङ्घिजः । तिर्यग्योनिगता ये तु सर्वकाटपिपीलिकाः ॥  
 पलज्जाजलजाश्चैव स्वेदांडोद्भिज्जरायुजाः । सकामावाप्यकामावा पुष्करेतुष्यन्ते मृताः ।  
 शूर्पप्रमथिमानस्था ब्रह्मलोकं प्रयांति । कलौ युगे महाघोरे प्रजाः पापसमीरिताः ॥  
 तान्येनास्मिन्नुपायेन धर्मः स्वर्गश्च लभ्यते । घसन्ति पुष्करे ये तु ब्रह्मार्चनप्लानराः ॥  
 कलौ युगे कृतार्थास्ते क्लिश्यन्त्यन्ये निरर्थकाः । रात्रौ करोति यत्पापं नरः पंचभिरिन्द्रियैः ॥  
 तमेनामनसा पात्रा कात्मकोपयशानुगः । प्रातः सवनमासाद्य पुष्करेतु पितामहम् ॥  
 अमिगम्यशुचिर्भूत्वा तस्मात्पापात्प्रमुच्यते । अर्कस्योदयमारभ्य यावद्दशनमूर्ध्वगम् ॥  
 मानसाक्षेपप्रसन्नचित्त्य ब्रह्मयोगी हरेत्तमम् । दृष्ट्वा विरिञ्चिं मध्याह्ने नरः पापात्प्रमुच्यते ॥  
 मध्याह्नास्तमयास्तं वरिञ्चिः पापमावरेत् । पितामहस्य संध्यायां दर्शनादेव मुच्यते ॥  
 शन्यादीन्येव यान्संयान् भुञ्जानोऽपि सकामतः । यः पुष्करे ब्रह्मभक्तो निपतेत्तपसि स्थितः ॥  
 शीर्षपर्णाशनोपायः फलमूलान्भोजनः । पृथुमूलेऽस्मृते वा सर्वदा तपने तपः ॥२७०॥  
 पुष्करारण्यमध्यस्थो मिष्टान्नास्वादभोजनः । त्रिकालमभिभुञ्जानो धायुभक्षसमोमतः ॥  
 पसन्ति पुष्करे ये तु नराः सुकृतकर्मिणः । ते लभन्ते महाभोक्तृभक्ष्याभ्यं प्रभावतः ॥२७२॥  
 यथामदोदयेस्तु ल्योनचान्योऽस्ति जलशायः । तथा ये पुष्करस्यापि समं तोषेन विपने ॥  
 देवाधिकोपधा प्रह्लादयथानान्योऽधिको भवेत् । पुष्करारण्यसदृशं तोषेनास्त्यधिकं गुणैः ॥

अथ तेऽन्यान्यवक्ष्यामि येऽस्मिन्क्षेत्रे व्यवस्थिताः ॥ २७५ ॥

विष्णुना सहिताः सर्वे इंद्राद्याश्च दिव्यौकसः । गजवक्त्रः कुमारश्च रेवंतः स दिवाकरः ॥  
 शिवदूती तथा देवी कन्या क्षेमंकरीवरा । स्थिताहिताथं जगतो ब्रह्मणो निलये सदा ॥  
 अलंतपोभिर्नियमैः सुक्रियार्चनकारिणाम् । व्रतोपवासकर्माणि कृत्वान्त्यत्र महान्त्यपि ।  
 ज्येष्ठे तु पुष्करारण्ये यस्तिष्ठति निरुद्यमः । लभते सर्वकामित्वं योऽत्रैषास्ते द्विजः सदा ॥  
 पितामहसमं याति स्थानं परममव्ययम् । कृतेद्वादशभिर्वर्षे स्त्रेतायां हायनेन तु ॥ २७६ ॥

मासेन द्वापरे भीष्म अहोरात्रेण तत्कलौ ॥ २८० ॥

फलसंप्राप्यते लोकैः क्षेत्रेऽस्मिन् स्तीर्यषासिभिः । इत्येवं देवदेवेन पुरोक्तं ब्रह्मणामम ॥  
 नातः परतरं किञ्चित् क्षेत्रमस्तीह भूतले । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनारण्यमेतत्समाधयेत् ॥ २८२ ॥  
 गृहस्थो ब्रह्मचारी च घानप्रस्थोऽथ मिश्रभुक् । यथोक्तकारिणः सर्वगच्छन्ति परमां गतिम् ॥  
 एकस्मिन्नाश्रमे धर्मं योऽनुतिष्ठेद्यथाविधि । अकामद्वेषसंयुक्तः स परममहीयते ॥ २८४ ॥  
 चतुष्पदाहिनिःश्रेणो ब्रह्मणैषा प्रतिष्ठिता । एतामाधित्यनिःश्रेणो ब्रह्मलोके महीयते ॥ २८५ ॥  
 आयुषोऽपि चतुर्भागं ब्रह्मचार्यनसूयकः । गुरोर्वा गुरुपुत्रे वा यसेद्धर्मार्थकोविदः ॥ २८६ ॥  
 कर्मातिरेकेण गुरोरेभ्येतव्यं युभूयता । दक्षिणानां प्रदायी स्यादाहूतो गुरुमाधयेत् ॥ २८७ ॥  
 जघन्यशार्या पूर्वस्यादुत्थार्या गुरुवेशमनि । यच्च शिष्येण कर्त्तव्यं कार्यमासेयनादिकम् ॥  
 कृतमित्येव तत्सर्वं कृत्वा तिष्ठेत्सुपाश्र्वतः । किंकरः सर्वकारी च सर्वकर्मसुकोविदः ॥ २८८ ॥  
 शुचिर्दक्षो गुणोपेतो ब्रूयादिष्टमथोत्तरम् । चक्षुषा गुरुमव्यग्रो निरीक्षेत जितेन्द्रियः ॥ २८९ ॥  
 नाभुक् यतिचार्यादादपि तव तिनोपियेत् । न तिष्ठति तथा सततं न सुप्तेनैव संविशेत् ॥ २९० ॥

उत्तानाभ्यां च पाणिभ्यां पादावस्य मृदु स्पृशेत् ।

दक्षिणं दक्षिणेनैव सव्यं सव्येन पीडयेत् ॥ २९२ ॥

अभिवाद्य गुरुं प्रूयादभिधां स्वांगुवन्निति । इदं करिष्ये भगवन्निदं चापि मया कृतम् ॥  
 इति सर्वं च विज्ञाप्य निवेद्य गुरुवेधनम् । कुर्यात्कृतं च तत्सर्वमाध्येयं गुरवे पुनः ॥  
 यांस्तु गंधाप्रसान्वापि ब्रह्मचारी न सेवते । सेवेत तान्समावृत्य इति धर्मं पुनि ध्रुवः ॥  
 मेके निविस्तरेणोक्ता नियमा ब्रह्मचारिणः । तान्सर्वाननुगृह्णीयाद्भक्तशिष्यश्चैव गुरोः ॥

य परं गुरवे प्रोत्तिष्ठुराह्वय कथाकथम् । भद्राम्येष्याधमेत्येषं शिष्यो वर्तेत कर्मणा ॥  
 वेदेवेति तथा वेदान्तेष्वर्थांश्चकथाद्विजः । भिक्षामुगम्यथः शार्ङ्गसमभोग्यगुरोर्भुङ्गात् ॥  
 वेदमनोपयोगी च अनुष्ठानं च योगतः । गुरवे दक्षिणां दद्यात् समापनोपशान्तिविधि ॥  
 ध्यान्विनेषु नोक्षारेऽग्नीनापारा वृत्रघ्ने । द्वितीयमायुषोभयं गृहमेधं समाचरेत् ॥३००॥  
 गृहस्थावृषयः पूषं यत्करोमुनिभिः कृताः । बुद्धान्यध्वन्याग्रभमा कुंभीध्वान्या द्वितीयका ।  
 भध्वन्मयी गृध्रापोष्टा कापोन्मया अनुष्ठिता । नागां पारापराधेष्टा धर्मतालो कजिसमा ॥  
 पशुकर्मपक्षकारयैकस्मिन्नभिरन्यः प्रयत्नैः । द्वाभ्यांचैव अनुष्ठानं द्विजः सत्रह्यणिस्थितः ।  
 गृहमेधिजनादन्वयमहर्षाणं न गृहाने । नागमार्थं पाचयेदन्नं न गृहाघातयेत्पशुम् ॥  
 शार्ङ्गं वा यदि वा शार्ङ्गं संभ्रकागवज्र मर्तुः । न दिवा प्रम्यवेज्जातुनूप्यां पररात्रयोः ।  
 न मुञ्जीनां नराकान्ते मानुषं नु वदेदिह । नाभ्यान्मनन्यमेद्विप्रो गृहेकाध्वपूजितः ॥  
 तथाभ्या निषयः पूषादृष्यकप्यपटाः स्मृताः । ऐद्विषयव्रतस्नाताः धान्प्रियावेदपारगाः  
 स्वकर्मत्राविनां दाताः क्रियावंतस्तन्यभियतः । तेषां हृदयं च कथं चाप्यर्हणार्थं विधीयते  
 नररक्षेत्प्रयागस्य स्वधर्मापगतस्य च । भवपिडाग्रिहोत्रस्य गुरोर्पात्नीककारिणः ।  
 भगवतामिनिरेष्टम्यनाधिकारोऽग्निहोत्रयोः । संविभागोऽप्रभूतानां सर्वेषामेव शिष्यते  
 कथं पाठ्यमानेभ्यः प्रदेयं गृहमेधिता । विषसाक्षी भवेन्नित्यं नित्यं चामृतभोजनः ॥  
 भूमौ यज्ञदोषः स्याद्भोजनं हविशस्तमम् । संभुजदोषं योऽदनातिमागुर्पिषसाशिनम् ॥  
 स्वदाग्निरत्नां दाता दक्षोऽप्यथं त्रिनेन्द्रियः । श्रुत्विष्यपुरोहिताचार्यमानुलातिथिसंहतः ॥  
 गृहपालानुरैर्यैर्वैर्वा निसंयधिषाधयेः । माया पित्रा च जामात्रा भ्रात्रापुत्रेण भार्यया ॥  
 दुहित्रा दासपणेन विषादं न समाचरेत् । एतान्विमुच्यसंवादान्स्वर्पापैः प्रमुच्यते ॥  
 पत्नीं त्रिनेन्द्रो जयति सर्वलोकांस्तस्य शयः । आचार्यो प्रहृष्टलोकेष्टः प्राजापत्यप्रभुः पिता ॥  
 धनिभिः सर्वलोकेष्टः श्रुतिव्यंशेष्टः प्रभुः । जामाताप्सरसां लोकेष्टः सौमित्रो वैश्वदेविकाः ।  
 संयधिषाधयादिभ्युत्थिष्या मातृमानुलौ । वृद्धपालानुराधैव आकाशे प्रभविष्णवः ॥  
 पुरोधाश्रुपिलोकेष्टः संधितास्साध्यलोकाः । अश्विलोकापतिर्वैद्यो भ्रातानुवसुलोकाः ।  
 चन्द्रलोकेष्टरीमार्या दुहिताप्सरसां गृहे । ज्ञाता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्यापुत्रः स्वकातनुः

कायस्थादासवर्गाश्च दुहिताकृपणंपरम् । तस्मादेतैरधिहितः सहेनित्यमसंख्यतः ।  
 गृहधर्मस्तोषिद्वान्धर्मनिष्ठो जितकृमः । नारमेदुबहुकार्याणि धर्मधान्किचिदारभेत् ।  
 गृहस्थवृत्तयतिस्त्रस्तासांनिःश्रेयसंपरम् । परस्परं तथैवाद्बुधातुराधममेव च ।  
 येचोक्तानियमास्तेषां सर्वकार्यबुभूषुणा । कुंभधान्यैरुञ्जशिलैःकापोतीवृत्तिमाधिताः ।  
 यस्मिन् तव संस्पर्शास्तद्राष्ट्रमभिवर्धते । पूर्वापरान्दशपरान्पुनाति च पितामहम् ।  
 गृहस्थवृत्तिमप्येतां पतन्ते यो गतव्यथः । स चक्रधरलोकानां समानाम्प्राप्नुयाद्भक्तिम् ।  
 जितेन्द्रियाणामथवा गतिरेवाविधीयते । स्वर्गलोको गृहस्थानां प्रतिष्ठानियतारमनाम् ।  
 प्रह्वणामिहिता ध्रेणीहोपायस्याःप्रमुच्यते । द्वितीयां क्रमशः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ।  
 तृतीयामपि पश्यामि पानप्रस्थाधर्मगृणु । गृहस्थस्तु यदापश्येद्वर्लीपलितमात्मनः ।  
 अपत्यस्यैवचापन्यं घनमेव तदाधयेत् । गृहस्थप्रतविधानां पानप्रस्थाधर्मोक्तसाम् ।

धूयतां भीष्म भद्रं ते सर्वलोकाध्यात्मनाम् ।

दीक्षापूर्वं निवृत्तानां पुण्यदेशनिवासिनाम् ॥ ३३१ ॥

प्रडाफनयुजांपुसां सत्यर्थाचक्षमायताम् । तृतीयमायुषोभागं पानप्रस्थाधर्मे वसन् ।  
 तानंप्राप्तीन्परिचरेद्यजमानो दिव्योक्तसः । नियतो नियताहारो विष्णुभक्तिप्रसजित्वा ।  
 क्वाग्निहोत्रमायाजि यज्ञांगानि च सर्वशः । भट्टं च ग्रीहिययनीपारं विधत्तानि च ।  
 मांषेहृदिष्यं प्रायस्तेष्टममधेयपि पंचसु । पानप्रस्थाधर्मेऽप्येताभ्यस्तस्योद्युक्तयःस्मृताः ।

सप्तःक्रमशुक्ताः केचित्केचिन्मासिकमंथयन् ।

पार्षिकान्मंथयान्केचिन्केचिद् द्वादशवार्षिकान् ॥ ३३२ ॥

कुर्वन्त्यतिथिपूर्वार्थं यत्कत्रार्थमेव च । चत्वार्यकाशा यान्सु हेमन्ते त्रयमंथयन् ।  
 मांषे पंचाग्नितपसः शतमृत्तमोज्जवाः । भूमीविपरित्यजन्ते निन्दन्तिप्रदेहि ॥ ३३३ ॥  
 म्यानासने च पतन्ते वसनेष्वपि संस्थिते । शतोत्सृज्यन्तिः केचिदस्मृताःकृताः ।  
 गृहस्थैरिहकन्देके यवान्कुटिलां क्वचिन् । कृष्णपक्षेनिकश्येके भुञ्जते च यथाश्रमम् ।  
 भुञ्जन्ते कलेके कलेके दृढप्रजाः । यमंयन्ति यथान्यायं यथानाम्भूजप्रजाः ॥ ३३४ ॥  
 यथाश्रमं यथाश्रमं यथाश्रमं यथाश्रमं । यथाश्रमं यथाश्रमं यथाश्रमं यथाश्रमम् ।

फायस्थादासवर्गाश्च दुहिताकृपणंपरम् । तस्मादेतैरधिक्षितः सहेनित्यमसंज्वर  
 गृहधर्मस्तोचिद्वान्धर्मनिष्ठो जितक्लमः । नारमेद्ववहुकार्याणि धर्मवान्किंचिदारमेव  
 गृहस्थवृत्तयतिक्लस्तासानिःश्रेयसंपरम् । परस्परं तथैवाहुध्यातुराश्रम्यमेव च  
 देवोक्तानियमास्तेषां सर्वंकार्यंयुभूपुणा । कुंभधान्यैरुच्छशिलैःकापोतीवृत्तिमाश्रिता  
 यस्मिंश्च तव संत्यर्थास्तद्राप्द्रमभिवर्धते । पूर्वापरान्दशपरान्पुनाति च पितामहान्  
 गृहस्थवृत्तिमप्येतां वर्तते यो गतव्ययः । स चक्रधरलोकानां समानाम्प्राप्नुयात्तुल्य  
 जितेन्द्रियाणामथवा गतिरेषाविधीयते । स्वर्गलोको गृहस्थानां प्रतिष्ठानियतात्मनाम्  
 ब्रह्मणामिहिता श्रेणीहोपायस्याःप्रमुच्यते । द्वितीयां क्रमशः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते  
 तृतीयामपि वक्ष्यामि घानप्रस्थाश्रमंशृणु । गृहस्थस्तुयदापश्येद्वलीपलितमारमन्  
 अपत्यस्यैवचापत्यं धनमेव तदाश्रयेत् । गृहस्थव्रतविज्ञानां घानप्रस्थाश्रमौकसान्

श्रूयतां भीष्म भद्रं ते सर्वलोकाध्रयात्मनाम् ।

दीक्षापूर्वं निवृत्तानां पुण्यदेशनिवासिनाम् ॥ ३३१ ॥

प्रज्ञाबलयुजांपुसां सत्यशौचश्चमावताम् । तृतीयमायुपोभावं घानप्रस्थाश्रमे घसन  
 तानेवाग्नीन्परिचरेद्यजमानो दिवौकसः । नियतो नियताहारो विष्णुमक्तिप्रसक्तिमान्  
 तदाग्निहोत्रमात्राणि यज्ञांगानि च सर्वशः । अकृष्टं च व्रीहियवंतीवारं विघ्नसानि  
 ग्रीष्मेहविष्यं प्रायच्छेत्समलेष्वपि पंचसु । घानप्रस्थाश्रमेऽप्येताव्रतस्रोवृत्तयःस्मृता

उत्तानमास्थेन हविर्जुहोति भनन्तप्राप्नोत्यमितः प्रतिष्ठाम् ।  
 तस्यांगसंगादग्निनिष्कृतं च यैभ्यान्तरं सत्यमिदं प्रपेदे ॥ ३८३ ॥  
 प्रादेशमाग्ने हृदिनिस्सृतं यत्तन्मित्राणेनारभयाजो जुहोति ।  
 तस्याग्निहोत्रं हुनमात्मसंस्थं सर्वेषु लोकेषु सदैवेतेषु ॥ ३८४ ॥  
 ✓ दैवं पिधानुं त्रिष्टुतं सुवर्णं यं वै विदुस्तं परमार्थभूतम् ।  
 ते सर्वभूतेषु मर्हयिमाना देवाः समर्था भवन्तं व्रजन्ति ॥ ३८५ ॥  
 ऐदोश्च धेयं च विधिञ्च हृत्स्नमथोनिरुक्तं परमार्थताञ्च ।  
 सर्वं शरीरात्मनि यः प्रवेद तस्याभिसर्वं प्रचरन्ति नित्यम् ॥ ३८६ ॥  
 भूमावसक्तः दिवि चाप्रमेयं हिरण्यमयं तं च स मंडलाते ।  
 प्रदक्षिणं दक्षिणमंतरिक्षे यो वेदनाज्यात्मनि दीप्तरश्मिः ॥ ३८७ ॥  
 भावतेमानं च चिचनेमानं पण्णेमि यदुद्धादशारं त्रिपर्वं ।  
 यान्येदमान्यं पग्निपाति विभ्यं तत्कालचक्रं निहितं गुहायाम् ॥ ३८८ ॥  
 यतः प्रस्तादं जगतः शरीरं सर्वाः श्रद्धोक्ता नधिगच्छतीह ।  
 तस्मिन्निहमन्तर्षयतीह देवान्सर्वैविमुक्तो भवतीह नित्यम् ॥ ३८९ ॥  
 तेजोमयो नित्यमतः पुराणो लोके भवत्यर्थमयादुपैति ।  
 भूतानि यस्मान्न भयं व्रजन्ति भूतेभ्यो यो नोद्विजते कदाचिन् ॥ ३९० ॥  
 अगर्हर्णायां न च गर्हतेऽन्यान्सर्वैविप्रः प्रवरं स्वात्मनीक्षेन् ।

अनग्निरनिकेतस्तु ग्रामं मिश्रार्थमाश्रयेत् । अथस्तनविधानःस्थान्मुनिर्मायसमन्विता ।  
लज्ज्याशीनियनाहरः सरुद्रश्च निवेदयेत् । कपालं वृक्षमूलानि पुच्येलमसहायता ।

उपेक्षा सर्वभूतानामेतायद्विश्रुतक्षणम् ॥ ३६३ ॥

यस्मिन्त्याचः प्रविशन्ति कूपेप्राप्तामृताश्च । न पक्तां पुनर्याति सकेयल्याश्रमेवसेत् ॥  
नेयपर्येस्तुशुष्याद्याद्यं जानु कम्पयित् । ब्राह्मणानां विशेषेण नेतुभूयात्पर्यवत् ।  
यदुप्राह्मणम्यानुकूलं तदेव सत्तनयदेव । तूर्णमासीत् निर्दायां कुर्यान्मैत्र्यमानसः ।  
येनपूर्णमिषाकाशं भयम्येकेन सर्वदा । शून्यं येन समाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।  
येनकेनचिदाच्छन्ना येनकेनचिदाशितः । यत्र कचनशायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।  
अहेमिष जनाद्वातः शुद्धदोनश्चादिव । शृणुणादिव नारीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।  
महृषेतविरीदेत मानिनोऽमानिभ्यस्तथा । सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥१॥  
नाभिनंदेत मरणं नाभिनंदेत जीवितम् । कालमेव निर्दिशेत् निर्देशं कृतको यथा ॥२॥  
अनभ्याहृतविलक्ष्य दानाहृतधाम्नया । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नरोगच्छेत्तनोदितः ।  
अभयं सर्वभूतेभ्यो भूतानामभयंयतः । तस्य देहयिमुक्तस्य भयं नास्ति कृतश्च ॥३॥  
यथातागवदेऽप्यानि यदानी यदनामिनाम् । सर्वपापेष्वभयंयते तथा ज्ञानानियेयः ।  
एवं सर्वमर्हिसायां धर्माऽर्धधर्मायते । मृतः न निर्गमयति यो हितां प्रनितः ।  
अर्हिसकलतः सव्यगृहीतमान्निर्गमयति । शाक्यस्त्वस्यभूतानां गतिप्राप्तोऽननुमन् ॥  
एवं प्रज्ञानमृतस्य निर्गमस्य प्रतापिनः । न मृग्युगधिकीभायः कोऽमृग्युग्यवगच्छति ।  
विमुक्तः सर्वसंगान्मुनिगणमावच्छिद्यतः । विष्णुप्रियकरजानस्य देवाब्राह्मणं विदुः ।  
जीवितं यस्य धर्मायं धर्मोऽस्यसर्वमेव च । अहोरात्रादि वृण्यार्थं न देवा ब्राह्मणं विदुः ।  
निवातिसमग्रं न निर्गमस्काश्चानुत्तिम् । अक्षीणं क्षीयकर्मणं न देवा ब्राह्मणं विदुः ।

सर्वपापि भूतानि मुक्तं गच्छन् सर्वाणि कृत्वाणि भूतं भवति ।

तेषां नयोऽप्यद्वयजन्मदः कुर्यान्नु कर्माणि च यदधानः ॥ ३८१ ॥

दामं हि भूतानवदक्षिमाया सर्वानि दानान्वयिनिर्गम्य ।

नन्दनं तन् वः प्रदत्तुर्होति सोऽर्जुनः प्रोक्तमर्थं प्रशस्यः ॥ ३८२ ॥

उत्तानमाम्येन हपिजुहोति अन्नं प्राप्नोत्यभितः प्रतिष्ठाम् ।

तस्याग्नेर्गादग्निपृतं च पैश्वानं सर्वमिदं प्रपेदे ॥ ३८३ ॥

प्रादेशमात्रे हृदिनिस्सृतं यत्तस्मिन्प्राणेनात्मयाजी जुहोति ।

तस्याग्निदोषं हनन्मातृसंस्थं सर्वेषु लोकेषु सदैवतेषु ॥ ३८४ ॥

✓ देयं पिधानुं प्रिवृतं सुषणं ये ये विदुस्तं परमार्थभूतम् ।

ते सर्वभूतेषु महोपमाना देवाः समर्था अमृतं व्रजन्ति ॥ ३८५ ॥

पेक्षाश्च घेषं च विधिय हृत्स्वमधोनिदकं परमार्थताञ्ज ।

सर्वं शरीरात्मनि यः प्रवेद तस्याभिसर्वं प्रचरन्ति नित्यम् ॥ ३८६ ॥

भूमापसक्तं दिवि चाप्रमेयं हिरण्यं नं च स मंडलाति ।

प्रदक्षिणं दक्षिणमंतविधौ यो वेदनाप्यात्मनि दीप्तरश्मिः ॥ ३८७ ॥

आवर्तमानं च विवर्तमानं वपनैमि यदुद्वह्मशारं त्रिपर्यं ।

पच्येद्मान्यं परिपाति विश्वं तत्पञ्चालचक्रं निहितं गुहायाम् ॥ ३८८ ॥

यतः प्रसादं जगतः शरीरं सर्वां आलोकानधिगच्छतीह ।

तस्मिन्निहमंतर्पयतीह देवान्सर्वैविमुक्तो भवतीह नित्यम् ॥ ३८९ ॥

तेजोमयो नित्यमनःपुराणो लोके भवत्यर्थभयादुपेति ।

भूतानि यस्मान्न अयं व्रजन्ति भूतेभ्यो यो बोद्धिजते कदाचित् ॥ ३९० ॥

अगर्हणीयो नच गर्हतेऽन्यान्सर्वविप्रः प्रवरं स्वात्मनीक्षेत् ।

विनीतमोहोऽप्यपनीतकर्मयो न चेह नामुत्र च योऽर्थसृच्छति ॥ ३९१ ॥

अरोपमोहः समलोष्टकांचनः प्रहीणशोको गतसंचिविग्रहः ।

अपेतनिदास्तुतिरप्रियाप्रियश्चरन्नुदासीनवदेव मिश्रुः ॥ ३९२ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे क्षेत्रवासमाहात्म्यं नाम पंचदशोऽध्यायः



अनग्निरनिकेतस्तु ग्रामं मिश्रार्थमाश्रयेत् । अवस्तनविधानः स्यान्मुनिर्मायसमन्वि-  
लब्धाशीनियताहरः सहृदयं निषेवयेत् । कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहाय ।

उपेक्षा सर्वभूतानामेतावद्विशुलक्षणम् ॥ ३६३ ॥

यस्मिन्वाचः प्रविशन्ति कृपेप्राप्तामृताश्च । त घटकारं पुनर्याति सकैवल्यधमेवते ।  
नैवपश्येन्तःशृणुयादवाच्यं जातु कस्यचिन् । ब्राह्मणानां विदोदेन नैतदुभूयात्कार्यम् ।  
यद्ब्राह्मणस्यानुकूलं तदेव सननंयदेत् । तूर्णमासीत् निर्दायां कुप्यन्मैरज्यमात्मन ।  
येनपूर्णमिषाकारं भयस्येकेन सर्वदा । शून्यं येन समाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।  
येनकेनचिदाच्छन्नो येनकेनचिदाशितः । यत्र क्वचनशायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।  
अहेरिय जनाद्भितः सुहृदोनगकाश्चि । रुषणादिव नारीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।  
नहृष्येतचिरीदेन मानिनोऽमानि नस्तथा । सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।  
नाभिनन्देत् मरणं नाभिनन्देत् जीवितम् । कालमेव निरीक्षेत निर्देशं कृत्वा यथा ॥  
अनम्याहनचित्तश्च दांनधाहनर्थास्तथा । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नरोगच्छेतनोदिम ।  
अमयं सर्वभूतेभ्यो भूतानाममयंयतः । नम्य देहयिमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्च ॥  
यथानागपदेऽन्यानि यदानि यदगामिनाम् । सर्वाण्येवापलीयते तथा तानानिवेपि-  
ण्यं सर्वमहिंसायां धर्माऽर्थधर्महीयते । मृतः स निर्यं भवति यो हिमां प्रनितो-  
अहिंसकस्ततः सम्यग्भूतिमानित्यनेन्द्रियः । शरण्यस्त्वस्यभूतानां गतिमात्रोऽनुत्तर-  
ण्यं प्रज्ञानमृतस्य निर्मयस्य मनोविणः । न मृत्युगधिकोभायः सोऽमृतस्यवगच्छन्-  
विमुक्तः सर्वमंगलांमुनिगच्छाशयमिच्छतः । विष्णुप्रियकरः शान्तानं देवाब्राह्मणं वि-  
जीवितं यस्य धर्मायं धर्मोऽन्यथमेव च । अहोरात्रादि पुण्यायं तं देवा ब्राह्मणं वि-  
निरागितममार्गं नित्यमस्कागममनुत्तिम् । धर्मायं क्षीणधर्मायं तं देवा ब्राह्मणं वि-

सर्वाणि भूतानि सुखं गन्ते सर्वाणि दुःखानि भृशं भवन्ति ।

तेषां सर्वान्पादनञ्चातमेदः कुर्यान्नु कर्माणि च धर्मानः ॥ ३६४ ॥

दामं हि भूतानपदमिच्छाया सर्वाणि दानान्दधिनिष्ठानि ।

तद्वत्तं त्वं यः प्रथमं तुहोति सोऽनन्तमानोऽन्यमयं प्रज्ञान्यः ॥ ३६५ ॥

उत्तानमास्येन हविर्जुहोति अनंतप्राप्नोत्यमितः प्रतिष्ठाम् ।

तस्यांगसंगादभिनिष्कृतं च वैश्वानरं सर्वमिदं प्रपेदे ॥ ३८३ ॥

प्रवेशमात्रे हृदिनिस्सृतं यत्तस्मिन्प्राणेनात्मयाजी जुहोति ।

तस्याग्निहोत्रं हृतमात्मसंस्थं सर्वेषु लोकेषु सदैवतेषु ॥ ३८४ ॥

✓ देवं विधातुं प्रवृत्तं सुचणं ये वै चिदुस्तं परमार्थभूतम् ।

ते सर्वभूतेषु महीयमाना देवाः समर्या भूतं व्रजति ॥ ३८५ ॥

येदांश्च येषां च विधिं च हृत्स्नमयोनिदत्तं परमार्थताञ्च ।

सर्वं शरीरात्मनि यः प्रवेद तस्यामिसर्वं प्रचरति नित्यम् ॥ ३८६ ॥

भूमावस्तकं दिवि चाग्रमेयं हिरण्यं तं च स मंडलाति ।

प्रदक्षिणं दक्षिणमंतरिक्षे यो वेदनाप्यात्मनि वीतरश्मिः ॥ ३८७ ॥

मायतमानं च विद्यतमानं वप्नेमि यद्वृद्धादशारं त्रिपर्व ।

यस्येदमास्यं परिपाति विश्वं तत्कालचक्रं निहितं गुहायाम् ॥ ३८८ ॥

यतः प्रस्ताद् जगतः शरीरं सर्वा भ्रूलोकानधिगच्छतीह ।

तस्मिन्निहसंतर्पयतीह देवान्सर्वविभुको भवतीह निरयम् ॥ ३८९ ॥

तेजोमयो नित्यमतः पुराणो लोके भवत्यर्थभयादुपैति ।

भूतानि यस्मान्न भयं व्रजति भूतेभ्यो यो नोद्विजते कदाचित् ॥ ३९० ॥

अगर्हणीयो न च गर्हतेऽन्यान्सर्वविप्रः प्रवरं स्यात्तमनीक्षेत् ।

विनीतमोहोऽप्यपनीतवज्रमयो न वेह नामुत्र य योऽर्थमुच्छति ॥ ३९१ ॥

अरोपमोहः समलोष्टकांवनः प्रहीणशोको गतसंधिप्रहः ।

अपेतनिदास्तुतिरप्रियाप्रियश्चरन्नुदासीनवदेव भिक्षुः ॥ ३९२ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे खण्डिखण्डे क्षेत्रवासमाहात्म्यं नाम पंचदशोऽध्यायः

## पोडशोऽध्यायः

ब्रह्मदेवकृतयज्ञवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

यदेतत्कथितं ब्रह्मं स्तीर्यमाहात्म्यमुत्तमम् । कमलस्याभिपतिन तीर्थजातं घरातले ॥१॥  
तत्रस्थेन भगवता विष्णुना शंकरेण च । यत्कृतं मुनिशार्दूल तत्सर्वं परिकीर्त्तय ॥२॥  
कथं यज्ञोहिदेवेन विभुना तत्र कारितः । केसदस्याश्रुत्विजश्च ब्राह्मणाः केसमगताः ।  
के भागास्तस्य यज्ञस्य किं द्रव्यं काचदक्षिणा । कावेदी किं प्रमाणं बहृतं तत्र विट्किना ॥३॥  
थोयाज्यः सर्वदेवानां वेदैः सर्वत्र पठ्यते । कंचकाममभिध्यायन्वेधापहं चकार ॥४॥  
यथासीदेवदेवेशो ह्यजरधामरश्मिह । तथाचैवाक्षयः स्वर्गस्तस्य देवस्य दूष्यते ॥५॥  
अन्येषांचैव देवानां दत्तः स्वर्गो महात्मना । अग्निहोत्रार्थमुत्पन्ना ये दामोपधयस्तथा ॥६॥  
ये बान्येषां भूमौ सर्वे ते यज्ञकारणात् । सृष्टा भगवतानेन इत्येषा वैदिकीभूतिः ॥७॥  
तद्वत्प्रकृतौ तु कंमहांशुत्वेदं तव भाषितम् । यं काममधिहृत्यैकं यत्फलं यां च भाषनाम् ॥८॥  
हृतश्चानेन वै यज्ञः सर्वशंसितुमर्हसि । शतारूपा च यानारीसावित्री सा त्विहोच्यते ॥९॥  
भार्या सा ब्रह्मणः प्रोक्ता श्रुषीणां जननी च सा । पुलस्त्याद्यान्मुनीन्सतदृष्ट्वा चांस्तु प्रजापतयः ॥१०॥  
स्यायं भुषार्दींश्च मनून्सावित्री समजीजनत् । धर्मपत्नी तु सां ब्रह्मापुत्रिणी मात्मनः प्रियम् ॥११॥  
पतिव्रतां महाभागां सुव्रतां चारुहासिनीम् । कथं सतीं परित्यज्य भाषां मन्यामधिदत् ॥१२॥  
किनाम्नी किं समाचाराकस्य सा तनया विमोः । कसादृष्टा हि देवेन रेजयास्य प्रदर्शिता ॥१३॥  
किरूपा सा तु देवेशी दृष्टा चित्तविमोहिनी । यां तु दृष्ट्वा स देवेशः कामस्य वशमेयिवान् ॥१४॥  
घणं तोरूपतश्चैयसावित्र्यास्त्वधिकामुने । यामोहितवतीं देवं सर्वलोके भ्यर्चयिषुम् ॥१५॥  
यथा गृहीतयान् देवो नाप्येतां लोकसुन्दरीम् । यथा प्रवृत्तो यज्ञोऽसीतथा सर्वप्रकीर्तय ॥१६॥  
सां दृष्ट्वा ब्रह्मणः पार्श्वे सावित्री किंच कारुह । सावित्र्यां तु न दृष्ट्वा कां तु वृत्तिमवतंत ॥१७॥  
उक्तप्युक्तं रताभूय सर्वशंसितुमर्हसि ॥१८॥

किं कृतं तत्र युष्माभिः कोपो वा यक्षमापि वा । यत्कृतं तत्र यद्दुष्टं यत्तवोक्तं मया त्विह ॥ २० ॥  
 विस्तरेण ह सर्वाणि कर्माणि परमेष्ठिनः । श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण विधेयं ह विधिपरम् ॥ २१ ॥  
 कर्मणामानुपूर्व्यं च प्रारंभो होत्रमेव च । होतुर्मक्षो यथा र्चापि प्रथमा कस्य कारिता ॥ २२ ॥  
 कथं च न गयान्विष्णुः साहाय्यं केन कीदृशम् । अमरैर्वा कृतं यच्च तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २३ ॥  
 देवलोके परित्यज्य कथं मर्त्यमुपागतः । गार्हपत्यं च विधिना अन्वाहार्यं च दक्षिणम् ॥ २४ ॥  
 अग्निमाहवनीयं च येषां चैव तथा म्रुचम् । प्रोक्षणीयं म्रुचं चैव आवभृथ्यं तथैव च ॥ २५ ॥  
 अग्नीर्वाश्वयथा च केहृष्यभागवहान्नि यैः । हव्यादांश्च सुरांश्च केकव्यादांश्च पितॄनपि ॥ २६ ॥  
 मागार्यं यज्ञपिथिना ये यज्ञायज्ञकर्मणि । यूपान्समित्कुरां सोमं पवित्रं परिधीनपि ॥ २७ ॥  
 पक्षियानि च द्रव्याणि यथा ब्रह्माचकार ह । विचभ्राजपुरायश्च पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥ २८ ॥  
 क्षणानि मेवाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च । मुहूर्तास्तिथयो मासा दिनं संवत्सरस्तथा ।  
 हनयः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं पुरा । आयुःक्षेत्राण्यपचयं लक्षणं रूपसौष्ठवम् ॥ २९ ॥  
 त्रयोषर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविध्यं पायकालयः । त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि त्रयोषर्णास्त्रयो गुणाः  
 त्र्यल्लोकाः पराः स्रष्टृष्वेवान्येऽनल्पचेतसा । यागतिर्थं मयुक्तानां या गतिः पापकर्मणाम्  
 शत्रुर्षर्प्यस्य प्रमथश्चातुर्षर्प्यस्य रक्षिता । चातुर्विध्यस्य यो वेत्ता चतुराश्रमसंध्ययः ॥ ३३ ॥  
 परं ध्रुयतेऽयोतिर्यः परं ध्रूयते तपः । यः परं परतः प्राह परं यः परमात्मयान् ॥ ३४ ॥  
 तुर्यौ लोकेऽस्तेऽनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम् । यो यो यो वेदविदुषां यः प्रभुः प्रमयात्मनाम् ॥  
 सुभूतश्च भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् । मनुष्याणामनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् ॥  
 येन योनयवृत्तीनां तेजस्तेजस्विनामपि । इत्येतत्सर्वं मस्त्रिलोकान् तृजन् लोकपितामहः ॥  
 सात्त्विकामन्दैश्चैवैतत्कथं यज्ञे मतिः कृता । एष मे संशयो ब्रह्मन्नेयमे संशयः परः ॥ ३८ ॥  
 तत्तर्कः परमो ब्रह्मा देवैर्देवैश्च पठ्यते । कर्मणाश्च त्वं भूतोऽपि तत्त्वनः स इहोच्यते ॥

पुनस्तस्य उवाच ।

लमारोमहानेय त्वयोक्तो ब्रह्मणश्चयः । यथाशक्तिं वक्ष्यामि ध्रूयतां तत्परं यशः ॥  
 सद्भास्यं सहस्राक्षं सहस्रचरणं च यम् । सहस्रधवणं चैव सहस्रकरमव्ययम् ॥ ४१ ॥  
 सद्भजिदं साहस्रं सहस्रपरमं प्रभुम् । सहस्रदं सहस्रादि सहस्रभुजमव्ययम् ॥

हवनं सवनं चैव हव्यंहोतारमेव च । पात्राणि च पवित्राणि धेदो दीक्षां चरन्मुपम् ॥  
 मृष्टसोममघभृशेव प्रोक्षणी दक्षिणाघनम् । बहुध्वयुंसामगं विप्रं सदस्यान्सदनेताः ॥  
 यूपं समित्पुत्रां द्यौं चमसोलूथलानि च । प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं बन्धनवपम् ॥  
 हस्तान्यतिप्रमाणा निप्रमाणस्थावराणि च । प्रायश्चित्तानिवाजाश्चस्यंश्चिलानिपुणास्तथा ॥  
 मंत्रं यज्ञं हवनं पक्षिमागं भयंचमम् । अग्नेभुजं होमभुजं शुभार्चिमुशयुधम् ॥ ४१ ॥  
 भाहुर्येद्विदोपिवा योयज्ञःशाश्वतःप्रभु । यां पृच्छसि महाराजपुण्यादिप्यामिमांस्तथा ॥  
 यदगंभगवान्प्रसाधूमी यज्ञमयाकरोन् । हितार्थंमुरमर्त्यानांलोकानांप्रभवायम् ॥ ४२ ॥  
 प्रसाद्य कानिदृशेय परमेष्ठे । तपैव च । देवाःसतर्पयश्चैव ययंपथा महापातः ॥  
 सतन्पुमारद्य महानुभावो मनुर्महात्मा भगवान्प्रजापतिः ।

पुराणदेष्टोऽथ तथा प्रचक्रे प्रदीप्तयेभ्यानमुत्प्रेतेताः ॥ ४३ ॥

पुरा षष्ठदत्तात्म्य स्यवनतन्म्यकोटरे । पुष्करे यत्र संभूतदेवास्त्रिगणान्मताः ॥ ४४ ॥  
 एतर्गाप्यकधीनामशादुर्मायोमहात्मनः । पुराणं कथ्यतेयत्र वेदस्मृतिगुर्नहिम् ॥ ४५ ॥  
 परादन्मुधुनिमुनः प्रादुर्भूतोपिरिवितः । महापातं गुरुभेष्टे । वाराहं कपमान्त्रि ॥  
 विष्णोः पुष्करे इत्या नार्थं कोकामुलं हि तु । वेदपादोयूपंष्ट्रःकतुहस्तत्रिभुक् ॥  
 अग्निजिह्वोर्दमेमाप्रहर्तायोमहातपाः । भद्राग्न्येक्ष्णोदिप्योपेदागःप्रतिभूतः ॥ ४६ ॥  
 आश्वत्थामः मृषन्तुहन्मात्रपोष्यनोमहान् । सत्यधर्ममयः धर्ममात्रधर्मविक्रमात् ॥  
 प्रायश्चित्तनर्थायः पशुज्ञानुर्मनाहृतिः । इन्द्रार्चनं होमजिगी वज्रवीरप्रदीर्घः ॥  
 वायव्यतन्मा मंत्रान्धियायः स्थित्वा गोमसोचितः ।

वेदस्वर्ग्यो हविर्मेधो हव्यकथ्यानिवेगवान् ॥ ४७ ॥

प्रत्यंशकायोपुत्रिभान्नामर्षासामिगवितः । दक्षिणाहृदयोयोर्षाःमहागवमर्षा ॥  
 उरावर्मेदिरविश्वव्याधनंमूरवः । छायात्रिवरायोवैमलिर्धर्ममिर्षा ॥ ४८ ॥  
 नर्वदोहृदियमाहोर्द्वयाभ्युक्षशागम् । मन्त्रव्यवधानमार्जवमृतिर्गुणवित् ॥  
 लोकागम्यविर्षा विर्षाचंयज्ञकादरेः । यजमादिपराक्षेपं पुत्र्याप्रदितर्षा ॥ ४९ ॥  
 इन्द्रो पुष्करेहृदयेभान्नामर्षाःपुनः । पुनः मन्त्रमाव्याधोदिप्योर्कोटप्रदुर्गति ॥

पौडशोऽध्यायः ] \* ब्रह्मदेवकृतगोपकन्यारूपगायत्रीपरिणयनम् \*

१२७

आदित्यैर्वसुभिः साधैर्मरुद्भिर्देवतैः सह । रुद्रैर्विभ्वसहायैश्च यक्षराक्षसन्निरैः ॥ ६५ ॥  
दिग्भिर्विदिग्भिः पृथिवीनदीभिः सह सागरैः । चराचरगुरुः श्रीमान्ब्रह्माब्रह्मविदांवरः ॥  
उवाच ब्रह्मन्कोकमुखं तर्धत्वा विमो । पालनीयं सदा गोप्यं रक्षाकार्यामखेत्विह ॥ ६७ ॥  
एवं करिष्ये भगवंस्तदा ब्रह्माणमुक्त्वा । उवाच तं पुनर्ब्रह्मा विष्णुर्देवपुनः स्थितम् ॥ ६८ ॥  
ब्रह्मोवाच ।

त्वं हि मे परमो देवस्त्वं हि मे परमो गुरुः । त्वं हि मे परमं धाम शक्रादीनां सुरोत्तमम् ॥ ६९ ॥  
उत्तुल्लामलपद्माक्ष शत्रुपक्षस्तयावह । यथायत्नेन मे षष्ठं सोदानं वैश्वविधीयते ॥ ७० ॥  
तथा त्वया विधातव्यं प्रणतस्य नमोऽस्तुते । भयं त्यजस्य देवेश शयनेऽप्यामिदानवान् ॥ ७२ ॥  
वैश्वान्ये विप्रकर्तारो यातुधानास्तथासुराः । घातयिष्याम्यहं सर्वानस्य स्थितेऽस्तु पितामह ॥  
एवमुक्त्वा स्थितस्तत्र साहाय्येन कृतक्षणः । प्रबुधश्च शिवावाताः प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥ ७३ ॥  
सुप्रभाणि च श्योतोंपिबंश्चक्रुः प्रदक्षिणम् । न विग्रहं प्रहाश्चक्रुः प्रसेदुश्चापि सिंघवः ॥  
नीरजस्काभूमिरासीत् सकला हृदयस्त्रयः । जग्मुः स्यमार्गं सरितो नापि पुद्गुभुरर्णवाः ॥  
आसन् शुभानीं द्रियाणि नराणां मंतरात्मनाम् । महर्णयो र्यातशोका वेदानुचरैर्याचयन् ॥ ६६ ॥  
यत्नेन स्मिन् हविः पाकेशि च आसंश्च पायकाः । प्रवृत्तधर्मसहस्रलोकामुदितमानसाः ॥ ७७ ॥  
विष्णोः सत्यप्रतिहस्य ध्रुत्वाऽरिनिधना गिरः । ततो देवाः समायाता दानवाराक्षसैस्सह ॥  
भूतप्रेतपिशाचाश्च सर्वे तत्रागताः क्रमात् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव नागाविद्याधरा गणाः ॥ ७८ ॥  
यत्नपर्वतमासाद्य दक्षिणामभितो दिशम् । सुरा उत्तरतः सर्वे मर्यादापर्यन्ते स्थिताः ॥ ८० ॥  
अथैवाप्सरसश्चैव मुनयो वेदपारगाः । पश्चिमां दिशामास्थाय स्थितास्तत्र महाप्रतापी ॥ ८२ ॥  
तर्णदेव निकायाश्च दानवाश्चासुरा गणाः । अमरं पृष्ठतः कृत्वा सुप्रीतास्ते परस्परम् ॥ ८३ ॥  
तर्णान्नं च तस्यैव शुभ्रपुण्याहणां स्तथा । अथ यो ब्रह्मर्णयश्चैव द्विजादेवर्णयस्तथा ॥ ८४ ॥

राजर्णयो मुख्यतमास्समायातास्समं ततः ।

कतमश्च सरोऽप्यत्र प्रतापी याज्यो भविष्यति ॥ ८५ ॥

पश्चिमं चैव तत्रायातादिह शवः । ब्राह्मणाभोक्तुकामाश्च सर्वे चर्णानुपूर्वशः ॥ ८६ ॥

हवनं सवनं चैव हव्यंहोतारमेव च । पात्राणि च पवित्राणि वेदो दीक्षां चरुं च  
 शुक्लसोमप्रयभृशैव प्रोक्षणी दक्षिणाधनम् । अदुध्ययुं सामगं विप्रं सदस्यान्सर्वसं  
 यूपं समित्कुशं द्यौं चमसोत्सृज्य च । प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं वयनं च  
 हस्यन्वतिप्रमाणानिप्रमाणम्यावराणि च । प्रायश्चित्तानिवाजाश्चस्थंडिलानिपुराण  
 मंत्रं यज्ञं च हवनं पद्मिभागं भवं चमम् । अग्नेभुजं होमभुजं शुभाचिमुदायुधम् ॥ ४॥  
 आहुर्वेदयिदोपिषा योयज्ञःशाभ्यतःप्रभु । यां पृच्छसि महाराजपुण्यादिव्यामिनां  
 यदर्थमगयान्प्रह्लाभूमी यज्ञमथाकरोत् । हितार्थं सुरमर्त्यानांलोफानांप्रभयाय च ॥ ५॥  
 प्राप्य कपिलदक्षैव परमेष्ठी तपैव च । देवाःसतर्पयश्चैव स्वयंकथं महापते ॥

सतत्पुमारब्ध महानुभायो मनुर्महात्मा भगवान्प्रजापतिः ।

पुराणदेयोऽथ नथा प्रवक्त्रे प्रदत्तयैवान्मुन्यनेजाः ॥ ५१ ॥

पुरा पद्मदत्तात्म्य म्यवतप्सन्म्यकोदरे । पुष्करे यत्र संभूतादेयाःसृगिणास्तथा ॥ ५२ ॥  
 एतौष्करफोनामशत्रुभांधोमहात्मनः । पुराणं कथ्यतेयत्र वेदस्मृतिगुमंहितम् ॥ ५३ ॥  
 वराहस्तुधुनिमुषः प्रादुर्मनोविर्गिनिनः । सहायार्थं सुरधेष्टो धाराहं कामान्निह ॥ ५४ ॥  
 विमर्माणं पुष्करे कृत्वा तैलं कोकामुगं हि तु । वेदपादोयूपदंष्ट्रमनुहस्तधिरनु ॥ ५५ ॥  
 अप्रिजिहोदर्मरोमाग्रहर्षाणोमहातपाः । अहोरात्रेक्षणादिष्योवेदांगधुनिभूताः ॥ ५६ ॥  
 धातयनासः श्रुतुं इमामघोषम्यनोमहान् । सग्यधर्ममयः धर्मान्कर्मविप्रमम ॥ ५७ ॥  
 प्रायश्चित्तमार्गार्थः पशुजानुर्ममाहृतिः । उद्गार्त्रत्रो होमर्हिणो पद्मवीजमरीचि ॥ ५८ ॥

षाण्यंतगात्मा मंत्रास्थिराथः श्विक् सोमशोणितः ।

वेदस्वज्यो हविर्गंयो हव्यकथ्यानिवेगपान् ॥ ५९ ॥

प्राग्वंशकाधोचुनिमान्नातर्दत्तामिगिनिनः । दक्षिणाहृदयोयोगात्सहात्मनोयज्ञ ॥ ६० ॥  
 उपाकर्मैरिहचिरप्रवर्थायतनंनृजः । छायापतिमहायोधेमणिभृंगमिषोन्निह ॥ ६१ ॥  
 सर्वलोकहितामापोदंष्ट्राम्युज्जहागाम् । ततःस्यस्यानमार्तपशूनिगोर्निह ॥ ६२ ॥  
 ततोऽत्रान्मृगिणी निषार्चयारुणादरेः । पयनादिवरादेन भूषाप्रयदितः ॥ ६३ ॥

दित्येवंसुमिः सारथैर्मरुद्भिर्देवतैः सह । इद्रेर्विश्वसहायैश्च यक्षगक्षसन्निरैः ॥ ६५ ॥  
 ग्निर्विदिग्मिः पृथिवीन्दीमिः सह सागरेः । चराचरगुरुधीमान्ब्रह्माग्रहविदांवरः ॥  
 शचवचनंकोकामुखंतीर्थेत्वयाविमो । पालनीयंसदागोप्यंरक्षाकार्यामखेत्यह ॥ ६७ ॥  
 र्धकरिष्येभगधंस्तदाग्रहाणमुक्तवान् । उपाचतंपुनर्ब्रह्माचिष्णुं देवंपुरः स्थितम् ॥ ६८ ॥

ब्रह्मोपाच ।

१ हि मे परमो देवस्त्वं हि मे परमो गुरुः । त्वं हि मे वरमं चाग्रशार्दनां सुरोत्तम ॥ ६९ ॥  
 तुल्यमलपद्माक्ष शत्रुपक्षक्षयावह । यथायजेन मे व्यसोदानयैश्च विधीयते ॥ ७० ॥  
 यात्यया विधातव्यं प्रणतस्पर्शनमोऽस्तुते । भयं त्यजस्व देवेश शत्रुपक्षेऽप्यामिदानवान् ॥ ७२ ॥  
 चान्ये विप्रकर्तारो यानुधानास्तथासुराः । धातयिष्याम्यहं सर्वानस्य स्तितेऽस्तु पितामह ॥ ७३ ॥  
 यमुक्त्वा स्थितस्तत्र साहाय्येन कृतक्षणेः । प्रवक्ष्यामि शिवावाताः प्रसन्नाश्च दिशोदरा ॥ ७४ ॥  
 प्रमाणिबन्धोतीर्त्तं निचन्द्रं चक्रुः प्रदक्षिणम् । न विप्रहं प्रहाध्वजुः प्रसेदुन्नापि स्थिरयः ॥ ७५ ॥  
 निरजस्कामू मिरासीत् सकलाद्वाद्यस्त्रयः । जग्मुः स्वमागंसरितो नापि शुभ्रभुरर्णवाः ॥ ७६ ॥  
 राक्षधुमानोर्द्विषाग्निराजामंत रात्रमनम् । महर्पयोरीतशोका ये दानुर्घोरयाचयन् ॥ ७७ ॥  
 श्वेतस्मिन्धविः पाफेशिव आसंश्च पावकाः । प्रवृत्तधर्मस्तद्वत्तलोकामुदितमानसाः ॥ ७८ ॥  
 वेणोःस्तत्प्रतिहस्यभुत्वाऽरिनिघनागिरः । ततो देवाः समायाता दानवाराक्षस्यैस्तद्वत् ॥ ७९ ॥  
 रूषेत पिशाचाश्च सर्वे तत्रागताः क्रमात् । गन्धर्वाप्सरस्तद्देवतागाविचारभरागणाः ॥ ८० ॥  
 बालसत्पाश्चात्पथयोयश्चेह्ययनेहति । ब्रह्मादेशान्मारुतेन आनीताः सर्वतोदिशः ॥ ८१ ॥  
 यक्षपर्वतमासाद्य दक्षिणाममितो दिशम् । सुरा उत्तरतः सर्वे मर्यादापर्वते स्थिताः ॥ ८२ ॥  
 पश्चिमां दिशामास्थाय स्थितास्तत्र महाव्रतौ । पश्चिमां दिशामास्थाय स्थितास्तत्र महाव्रतौ ॥ ८३ ॥  
 सर्वदेवतिकाग्रहदानवाश्चासुरागणाः । अमर्षं पृष्टतः कृत्वा मुग्धीता मन्ते परस्परम् ॥ ८४ ॥  
 सर्वानप्यन्त्यैः सुभ्रूयन् ब्रह्मणांस्तथा । ऋषयो ब्रह्मर्षयश्चैव द्विजादेवर्षयस्तथा ॥ ८५ ॥

राक्षसो मुख्यतमास्समायातास्समं ततः ।

यतमश्च सरोऽप्यत्र प्रती याज्यो भविष्यति ॥ ८५ ॥

सरावः पश्चिमश्चैव तत्रायातादिदृशवः । ब्रह्मणा गोतुकामाश्च सर्वे वर्णा निपूर्वराः ॥ ८६ ॥



यंचवरुणोरत्नदक्षध्वान्नस्ययंदक्षी । आगत्यवरुणोलोकात्पञ्चान्नस्यतोऽपचत् ॥८७॥  
 पुर्मक्षविकारांश्चरसपाचीदिवाकरः । अन्नपाचनदृत्सोमोमत्तिदाताबृहस्पतिः ॥ ८८ ॥  
 तदानं धनाध्यक्षोवत्खाणिविविधानिच । सरस्वती नदाध्यक्षोगंगादेवीसनर्मदा ॥८९॥  
 धान्याःसरितःपुण्याःकृपाश्चैवजलाशयाः । पल्वलानितटाकानिकुंडानिविविधानिच ।  
 ज्वणानिमुष्यानिदेवखातान्यनेकशः । जलाशयानिसर्वाणिसमुद्राःसप्तसंत्यकाः ॥९०॥  
 ज्वणेषुसुरासर्पिर्विधिदुग्जलैःसमम् । सतलोकाःसपातालाःसप्तद्वीपाःसप्ततनाः ॥ ९१ ॥  
 क्षयल्लयःसतृणानिशाकानिचफलानिच । पृथिवीषायुराकाशमापोज्योतिश्चान्वमम् ॥  
 विप्रह्मणिभूतानिधर्मशास्त्राणियानि च । वेदभाष्याणिसूत्राणिग्रहणानिमित्तवयम् ॥  
 मूर्तमूर्तमत्यन्तं मूर्तदृश्यंतथाखिलम् । एवं कृते तथातस्मिन्यज्ञे पैतामहेतदा ॥ ९५ ॥  
 यानांसंनिधौतत्रऋषिभिश्चसमागमे । ग्रहणोदक्षिणेपार्श्वेस्थितोयिष्णुःसनातनः ॥९६॥  
 तमपार्श्वेस्थितोऽरुद्रःपिनाकीषरदःप्रभुः । ऋत्विजांचापिवरुणंकृतंतत्रमहात्मना ॥ ९७ ॥  
 गृह्णीतावृतस्तत्रपुलस्त्योऽध्वर्युंसत्तमः । तत्रोद्गातामरीचिस्तुग्रह्णावैतादःकृताः ॥९८॥  
 तनत्कुमारादयो ये सदस्यास्तत्रतेऽमयन् । प्रजापतयो वक्ष्याद्या घर्णा ग्राहणपूर्वकाः ॥  
 ग्राहणश्चसमीपेते कृता ऋत्विग्विकल्पना । घलैराभरणैर्युक्ताः कृता वैध्रवणेन ते ॥१००॥  
 मंगुलीयैः सफटकै मुकुटैर्भूषिताद्विजाः । चत्वारो ह्यो दशान्येच सतस्ते षोडशर्त्विजः  
 ग्राहणा पूजिताःसर्वे प्रणिपातपुरःसरम् । अनुग्राह्यो भवद्विस्तु सर्वैरस्मिन्कृतायिह ॥  
 पत्नीममैषा सावित्री यूयं मे शरणंद्विजाः । विभ्रफर्माणमाहूय ग्राहणः शीर्षमुंडनम् ॥  
 यज्ञेतुविहितं तस्य कारितं द्विजसत्तमैः । आतसेयानिवत्खाणि वंपत्यर्थं तथाद्विजैः ॥  
 ग्राह्योपेणतेजिप्रा नादयन्तस्त्रिविष्टपम् । पालयंतो जगद्येवं क्षत्रियाःसायुधाःस्थिताः  
 भक्ष्यप्रकारान्विविधान्वैद्यास्तत्रप्रचक्रिरे । रसबाहुल्ययुक्तं च भक्ष्यं भोज्यं कृतं ततः  
 अश्रुतं प्रागदृष्टं दृष्टा तुष्टः प्रजापतिः । प्राग्यादेति ददौनाम वैश्यानां सृष्टिरद्विजुः ॥  
 द्विजानां पादशुश्रूषा शूद्रैः कार्यासदात्विह । पादप्रक्षालनं भोज्यमुच्छिष्टस्यप्रमार्जनम्  
 तेऽपि चक्रुस्तदा तत्र तेभ्योभूयःपितामहः । शुश्रूषार्थं मयायूयं तुरीयेतु पदे कृताः ॥  
 द्विजानां क्षत्रयन्पूनां वैश्यानांचमवद्विधेः । त्रिभ्यश्शुश्रूषणाकार्येत्युक्त्वाग्रहातथाकरोत्

द्वाराभ्याम् तथा शर्कं चरुणं रसदायकम् ॥ चित्तप्रदं वैश्रवणं यवनं गंधदायिनम् ॥१११॥  
उद्योतकारिणं सूर्यप्रभुत्वे माघवः स्थितः । सोमः सोमप्रदस्तेषां वामपक्षपाश्रितः ॥११२॥  
सुसंस्कृतावपस्त्री सा सावित्री च परांगना । मध्वर्षुणा समहृता एहि देवि त्वरान्विता  
उत्पिता भ्रातृभ्यः सर्वे दीक्षाकालउपागतः । व्यप्रासाकार्यकरणे ह्रीस्वभावेन नागता ॥  
इह येन हृतं किंचिद्ब्रह्मैवैवं हनंमया । मित्वा घैचिन्मयकर्मणि स्वस्तिकप्रांगणेन तु ॥११५॥  
प्रक्षालनं च मां दानं हृतं किमपि तिष्ठ । लक्ष्मीरद्यापि नायातापस्त्री नारायणस्य या ॥११६॥  
भाने परनीतया स्याद्वा भूषोर्जा तु यमस्य तु । वारुणी वै तया गौरी चायोर्वै सुप्रमातया ॥११७॥  
ऋद्धिर्धैर्यध्वनी भार्या शम्भोर्गौरी जगत्प्रिया । मेघाग्रदा विभूतिश्च मनसूया धृतिः क्षमा ॥  
गंगा सरस्वती चैव नाद्यायाता अकन्यकाः । इन्द्राणी चंद्रपत्नी तुरोहिणी शशिनः प्रिया ११८॥  
अरुंधती पद्मिनी सत्यवती सर्षपांशुयाः स्त्रियः । मनसूया त्रिपत्नी च तपान्याः प्रमदा इह ॥  
पद्मोदुहितः शैवसंख्यो भगिनिकास्तथा । नाद्यागतास्तुताः सर्वा महता पतिस्थिता चिरम्  
माहमेकाकिनो यास्येयाधरायां तिताः स्त्रियः । ब्रूहि गत्या विरं बिभ्रुतिष्ठता यन्मुहूर्तकम् ॥  
सर्षामिः सहिता ब्राह्मणायामित्तरान्विता । सर्वैः परितुतः शोभा देवैः सह महामते ॥१२३॥  
मया प्राप्नोति परमां तथा हंतुं न संशयः । यद्मानां तया ध्वर्षुस्त्यक्त्या ब्रह्माणमागतः ॥  
सावित्री ग्वाकुला देवप्रसक्ता गृहकर्मणि । संख्यो नाम्यागता यावत्तापप्रागमनं भम ॥१२५॥  
एयमुक्तोऽस्मि यै देव कालश्चाप्यतिधर्त्तते । यत्तेऽथ रुचितं तावत्तत्कुरुष्व पितामह ॥  
ययमुक्तस्तदा प्रह्ला किंचित्कोपसमन्वितः । पत्नीं चान्यां मदर्थे वै शीघ्रं शक्रः ददानय ॥  
यथा प्रपतते यक्षः कालहीनो न जायते । तथा शीघ्रं पिपत्स्वत्वं नारीकांचिदुपानय ॥  
यावद्यज्ञसमाप्तिर्मर्षणैर्त्थमावृधामनः । भूयोऽपि तां प्रमोक्ष्यामि समात्तां तु वतो गिह ॥१२६॥  
एयमुक्तस्तदा शक्रो गत्वा सर्वं धत्ततलम् । स्त्रियोद्गृह्णास्तु यास्ते न सर्षास्तास्तपरिग्रहाः ॥  
आमिरकन्या कथा लब्धा सुजाता चारुलोचना । न देवी न व्रजगन्धर्वा नासुरी न च पद्मिनी ॥१२७॥  
न चास्ति तादृशी कन्या यादृशी सा परांगना । ददर्शांस्तु चार्पणीं धियैर्देवीमिवापराम् ॥

तन्मत्तः कृतपुण्योऽन्योन्येवोभुवि विद्यते । योऽपि दत्तमिदं सेयं स दुर्भाग्यायां पितामहः ।  
 स रागो यदि वा स्यात्तु सफलस्त्वेवमेश्रमः । नीलाम्बुजकान्भोजयिषु मामांसदस्ता-  
 त्वियं संविभ्रती मंगैः केशाङ्गैश्चैव । मन्मथाशोकवृक्षस्य प्रोद्विग्नां कलिकामिव ॥ १३३ ॥  
 प्रदग्धहृच्छयेनैव नेत्रपद्मिनिषोत्करैः । घात्रा कथं हि सा सृष्टा प्रतिरूपमपश्यता ॥ १३४ ॥  
 कल्पिता चेत्स्वयं युद्धयानैपुण्यस्य गतिः परा । उत्तुंगामा यिमौ सृष्टौ यमे संपश्यतः सुख-  
 यपो धरौ नानिधिप्रंकस्य संजायते हृदि । रागोपहतदेहोऽयमधरो यद्यपि स्फुटम् ॥ १३५ ॥  
 तथापि सेवमानस्य निषाणं संप्रयच्छति । यद्विरपि कौटिल्यमलकैः सुखमर्प्यते ॥ १३६ ॥  
 दोषोऽपि गुणघट्टातिभूरि सौन्दर्यमाधितः । नेत्रयोर्मूपितार्थताया कर्णान्याशमागतौ ॥ १३७ ॥  
 कारणद्वापचैतन्यं प्रयदति हि तद्विदः । कर्णयोर्मूपणे नेत्रे नेत्रयोः धयणा यिमौ ॥ १३८ ॥  
 कुण्डलाङ्गनयोरश्रनायकाशोऽस्ति कश्चन । नतपुनः कटाक्षाणां यदुचिधाकरणं हृदि ॥ १३९ ॥  
 तथ संवन्धिनो येऽप्रकथयन्तु दुःखमागितः । सर्वस्तुन्दरतामेति विचारः प्रादुर्गैर्गुणैः ॥ १४० ॥  
 दृढशरणशान्तां तु दृष्ट्वा मेवां मया पश्यम् । घात्रा कौशल्यसीमेयं करोत्पत्नी सुदर्शिता ॥  
 करोरयेवा मनां नृणां सम्नेहं कृतिविभ्रमैः । एवं विगृह्यन्तस्तद्वत्तद्व्यापहतस्थितयः ॥ १४१ ॥  
 निरंतरोद्गतेऽङ्गनममपत्पुलकैर्वपुः । तां बोध्य ततश्चेमामां पद्मत्रायतेक्षणम् ॥ १४२ ॥  
 एवामप्य यक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । नाना दृष्ट्वा मया तार्यो निदृशी कण्ठगवदा ॥  
 देहोक्तां नर्गानं यद्यद्वन्तु तत्तन्प्रधानतः । समादाय विधात्राभ्याः कृता कण्ठ्यमस्थिभिः ।  
 इन्द्र उवाच ।

नासि कस्य कृतकान्यमागतामुमुक्षुश्च्युताम् । एकाकिनी विमर्षवर्षातीमध्यै नु निजिनि-  
 त्त्येकान्यगमंस्थानि भुज्जानि विमर्षि च । तैतानि तथ भूयादेत्यमेतेषां दिभूतम् ॥  
 देवी नवगन्धर्वी नानुरी नवगन्धर्वी । चित्रा दृष्ट्वा वा यादुरी त्वं सुतोक्ते ॥  
 एता मयाऽपि बहुश कामादग्ने हि नो ज्ञाम् । त्रयान्विता तुमाकन्यारजः प्रोवाचते तौ  
 कन्योवाच ।

एककन्यारजं वीर विधीनमिदं मोक्षम् । नवनीलमिदं शुद्धं च धि चैव विमलम् ॥  
 एता येवाय त्रेव रमेव नि परा । तेषां देवानि तदुद्दि प्रवृत्तां यो नित्यम् ॥

रवमुक्तस्तदा शको गृहीत्वा तां करे दृढम् । अनपत्तां विशालाक्षीं यत्र वक्राव्यवस्थितः  
नीयमाना ॥ सा तेन कीशन्ती पितृमातरौ । हातातमातर्हाम्रातर्नयत्येष नरो यलात् ॥  
यदि तेऽस्ति मया कार्यं पितरं मे प्रयाचय । स दास्यति हि मां नूनमघतः सत्यमुच्यते ॥  
का हि नामिलयेत्कन्यामतारं भक्तिवत्सलम् । नादेयमस्ति ते किञ्चित्पितुर्मधर्मवत्सल  
प्रसादये त्वां शिरसा मां स तुष्टः प्रदास्यति । पितुश्चित्तमविहाय यदात्मानं ददामि ते ॥  
धर्मो हि विपुलोनश्वेत्तेन त्वां प्रसादये । भविष्यामि यशे तुभ्यं यदि तातः प्रदास्यति ॥  
इत्थमाभाष्यमाणस्तु तथा शकोऽनयच्च ताम् । ब्रह्मणः पुरतः स्थाप्य प्राहा स्वार्थं मयाऽबले  
प्रणीतासि विशालाक्षि माशुखोपरवर्णिनि । गोपकन्यावत्तद्गङ्गातीरवर्णमहाद्युतिम् ॥  
कमलाञ्जलसुधाहंसं पुंडरीकनिर्देशणम् । ततः काञ्चनसद्वित्तिसदृशापीनयक्षसम् ॥ १६५ ॥  
मत्तमद्वैतवृत्तौ दैतकोत्तुंगनवत्स्थितम् । प्राप्तं साऽमन्यतात्मानं मन्यस्येपुगोचरे ॥ १६६ ॥  
सत्प्राप्तिहेतुकधिया गतविसेषलक्ष्यते । प्रभुत्वमात्मनोदाने गोपकन्याऽप्यमन्यत ॥ १६७ ॥  
यद्येवमांसुकपत्यादिच्छायादातुमाग्रहात् । नास्ति सीमंतिनोकाशिन्यसौ धन्यतराभुवि ॥  
मनेनाहंसमानीताय च भुगोचरंगता । अस्य त्यागे भवेन्मृत्युरत्यागे जीवितं सुखम् ॥ १६८ ॥  
भयेयमपमानाच्च पिप्रपातु खद्रायिनी । दृश्यते च भुवानेतयाऽपियोपि त्रसादतः ॥ १६९ ॥  
साऽपि प्रन्याससन्देहः किंपुनर्यां परिष्वजेत् । जगद्भ्रमरोपहि पृथक् संचारमाश्रितम् ॥ १७० ॥  
लावण्यतद्विहैकस्य दर्शितं विश्वयोनिना । अस्योपमास्मरः सार्ध्यामन्यस्योपमात्वयम् ॥  
तिरस्कृतस्तु शोकोऽप्यपितामातानकारणम् । यदिमानैवमादत्सेत्यलं मयि न भावते ॥ १७१ ॥  
अस्यानुस्मरणान्मृत्युः प्रभविष्यति शोकजः । अनागतसि च पत्न्यां तु क्षिप्रं यातवर्मादृशी ॥  
कुक्षयोर्मणिशोमापैशुद्धाभुजसमद्युतिः । मुखमस्य प्रपश्यंत्या मनो मे ध्यानमागतम् ॥  
अस्यांगस्पर्शसंयोगं न धावो बहुमन्यसे । स्पृशन्वदसि येन त्वं शरीरं प्राणिनां वरम् ॥  
अथवा स्य न दोषोऽस्ति यद्वृच्छाचारकोदासि । सुपितः स्मरन् नूतनं त्वं संश्लस्य प्राप्यारतिम् ॥  
त्वसौऽपि दृश्यते पेनरूपेणायं स्मरधिकः । ममानेन मनोरत्नसर्वस्वं च हतं दृढम् ॥ १७२ ॥  
शोमायादृश्यते वक्रैसा कुतः शालहमणि । नोपमा सकलं कस्य निष्कलं केन शस्यते ॥  
समानमावतां याति पंकजं नास्यनेत्रयोः । कोपमा जलशंखेन प्राप्ता भ्रवणश्रुतयोः ॥ १७३ ॥

विद्रुमोऽप्यधस्तात्स्थलमतेनोपमांध्रुवम् । मात्मस्थममृतं ह्येव संस्त्रवं श्रेष्ठे ध्रुवम् ॥  
 यदि किञ्चिद्भुमं कर्म जन्मांतरा नैऋतम् । तत्प्रसादात्पुमान्मर्ता मघत्वेयममेप्सितः ॥  
 एवं चित्तापराधीना यावत्सागोपकथ्यका । तावदुग्रहा हर्ति ग्राह्यज्ञार्थं सत्परवचः ॥  
 देवांचैवामहामागा गायत्रीनामतः प्रभो । पद्ममुक्तेर्वाविष्णुर्ग्राह्याणं प्रोक्तवानिदम् ॥

विष्णुरुवाच ।

तद्देनामुग्रहस्थाद्यमयात्सां जगत्प्रभो । गांधर्वेण विवाहेन चिकल्पमाकृष्यामिहम् ॥  
 ध्रुमं गृह्णाण देवाद्य भस्याः पाणिमनाकुलम् । गांधर्वेण विवाहेन उपयेमेपितामहः ॥  
 तामयाप्यतदाग्रहा जगादाध्ययं सत्तमम् । कृता पत्नी मया होषांस्तद्देने मे नियेशय ॥  
 मृगभृङ्गधराया लाक्षौ मघस्त्राय गुंठिता । पत्नी शालांतदानीता मृत्विग्मिर्वेदपारगीः ॥  
 भीरुग्वरेण दंडेन प्रावृत्तो मृगधर्मणा । महाध्वरे तदा ग्रहा धाम्ना स्वेनैव शोभते ।  
 प्राख्यं च सतो होत्रं ग्राह्याणीर्वेदपारगीः । भृगुणा सहितैः कर्म वेदोक्तं तैः कृतं ॥

तथा युगसहस्रं तु सप्तशः पुष्करेऽमघत् ॥ ११० ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे गायत्रीसंग्रहो नाम षोडशोऽध्यायः ।

## सप्तदशोऽध्यायः

ब्रह्मदेवकृतयज्ञे शिवस्य भिक्षोर्दशेनागमनम् ।

भीष्म उवाच ।

तस्मिन्यज्ञे किमाश्चर्यं तदासीदुद्विजसत्तम । कथं ह्यस्मिन् स्थितस्तत्र विष्णुश्चापि सुरोत्तमः ।  
 गायत्र्या किं कृतं तत्र पत्नी त्वेस्थितया तया । भार्गीरैः किं नु तत्त्वज्ञैर्ज्ञातं तदा तदा मुने ॥  
 पतदुवृत्तं समाचक्ष्व यथावृत्तं यथाकृतम् । भार्गीरैर्ग्राह्याणां चापि ममैतत्कीर्तुकं महत् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तस्मिन्यज्ञे यदाश्चर्यं वृत्तमासीन्नप्यपि । कथयिष्यामि तत्सर्वं शृणुष्वैकमता नृप ॥

रुद्रस्तु महदाश्चर्यं कृतयान्वैसदोगतः । निधरूपधरोदेवःस्थितोऽसीद्विजसन्निधौ ॥५॥  
 विष्णुना न कृतं किंचित्प्राधान्येऽस्यतःस्थितः । नाशान्तुगोपकन्यायाङ्गात्त्वामोपकुमारकाः  
 गोप्यश्च तास्तथासर्वाभ्रगताब्रह्मणोऽतिकम् । दृष्टातांमेखलायद्वायञ्चसोमव्यवस्थिताम्  
 हापुत्रीतितदामातापिताहापुत्रिकेति च । स्वसेतिशङ्कवाःसर्वसंस्थाःसत्येन हासवि ॥८॥  
 केन त्वमिह खानीता केनकस्माच्च वेष्टिता । मौञ्जी ॥ त्रिवृताहृत्या केन युक्ता च कंवली  
 केन चैवं जटापुत्रि रक्तपुत्रायकल्पिता । एवं विधानि चाकयानि ध्रुवोपाच पुरंदरः ॥  
 प्रतिविध्य ॥ तानेवं सर्धानेवप्रसादयन् ।

इन्द्र उवाच ।

इह चास्माभिरानीता परम्वर्यं विनियोजिता ॥ ११ ॥

ब्रह्मणालंविता पाला ब्रह्मार्पमाकृषास्तिष्ठ । पुण्या चैषा सुभाग्या च सर्वपाकुलर्नन्दिनी  
 पुण्याधेशमयत्येषा कथमागच्छते सहः । एवं शारदा महाभाग न त्वंशोचितुमर्हसि ॥  
 गोर्वास्त्यवष्टम्य तदा शत्रुवाक्यादनन्तरम् । उवाचरितमथवावाचाप्रतिनन्दहृदिपुनः ॥  
 विष्णुरुवाच ।

भोभोगोपसदाचारतत्त्वशोचितुमर्हसि । कन्येपातेमहामागाप्रातर्देवविरिञ्चिनम् ॥१५॥  
 योगिनोद्योगयुक्तापेब्रह्मणाधेदपारगाः । नलमन्तेप्रार्थयन्तस्तांगतिदुहितागता ॥ १६ ॥  
 धर्मयन्तं सदाचारं भवन्तं धर्मपत्सलम् । मया शारदा तत्कन्यादक्ताचैषा विरंचये ॥  
 अनया तारितोगच्छदिध्वान्तोकाग्महोदयान् । युष्माकं च कुलेचापिदेयकार्यार्थसिद्धये  
 भयतारं करिष्येऽहं सा मीढा नु भविष्यति । यदा नन्दप्रभृतयो हयतारं धरातले ॥  
 करिष्यन्ति तदा चाहं पतिष्ये तेपु मध्यतः । युष्माकं कन्यकाःसर्वा रमिष्यन्ते मयासदा ॥  
 तत्र दोषो न भविता न द्वेषो न च मत्सरः । करिष्यन्ति सदागोपाभर्यं च नमनुप्यकाः ॥  
 नवासां भविता दोषः कर्मणानेन कर्हिचित् ।

धृत्वा वाक्यन्तदा विष्णोरुचुर्गोपाःप्रणम्य तम् ॥ २२ ॥

गोपाऽबुधः ।

एषमेव परो देव यो दत्तो भविता हि मे । भयतारःकुलेऽस्माकं कर्तव्यो धर्मसाधनः ॥ २३ ॥

भयतो दर्शनादेव भवामः स्वर्गवासिनः । शुभदा कन्याका चैषा तारिणी मे कुलैः सह ॥ २३ ॥  
 एवं भवतु देवेश घरदानं विमो तव । अनुनीतास्तदा गोपाः स्वयं देवेन विष्णुना ॥ २४ ॥  
 ब्रह्मणा प्येष मेयन्तु धामहस्तेन भाषितम् । त्रयान्विता दर्शने तु बन्धूनां वरवर्णिनी ॥ २५ ॥  
 कैरहं तु समाख्याता येनेमं देशमागताः । दृष्ट्वा तु तांस्ततः प्राह गायत्री गोपकन्यका ॥  
 धामहस्तेन तान्सिर्षान्प्रणिपातपुरःसरम् ।

गायत्र्युवाच ।

अत्र चाहं स्थिता मातर्ब्रह्माणं समुपागता ॥ २८ ॥

भर्ता लब्धो मया देवः सर्वस्याद्योजगत्पतिः । नाहं शोच्या भवत्या तु न पित्रानवयाधवैः ।  
 सखी गणश्च मेया तु भगिन्यो दारकैः सह । सर्वेषां कुशलं वाच्यं स्थिताऽस्मि सहदैवतैः ।  
 गतेषु तेषु सर्वेषु गायत्री सा सुमध्यमा । ब्रह्मणा सहिता रैजे यज्ञवाटं गता सती ।  
 याचितो ब्राह्मणैर्ब्रह्मा घरान्नो देहि चेप्सितान् । यथेप्सितं धरं तेषां तदा ब्रह्माऽप्ययच्छत  
 तया देव्या य गायत्र्या दत्तं तच्छ्वानुमोदितम् । सा तु यज्ञे स्थिता सा धर्मा देयतानां समीपया  
 दिव्यं वर्षाशतं सार्धं स यज्ञो यधुधे तदा । यज्ञवाटं कपर्दी तु भिक्षार्थं समुपागतः ॥ ३४ ॥  
 बृहत्कपालं संगृह्य पंचमुण्डैरलङ्कृतः । श्रुतिविग्भिश्च सहस्यैश्च दूरात्तिष्ठन्नुगुप्सितः ॥  
 कथं त्वमिह संप्राप्तो निर्दितो वेद्यादिभिः । एवं प्रोत्सार्यमाणोऽपि निन्दमानः स तैर्द्विजैः ॥  
 उवाच तान् द्विजान्सर्वान्स्मितं कृत्वा महेश्वरः ।

महेश्वर उवाच ।

अत्र पैतामहे यज्ञे सर्वेषां तोषदायिनि ॥ ३७ ॥

कश्चिदुत्सार्यनेनैव श्रुतेमां द्विजसत्तमाः । उक्तः स तैः कपर्दी तु भुक्त्या धान्नं ततो व्रज  
 कपर्दिना य ते उक्ता भुजवायास्यामिमो द्विजाः । पयमुक्तवानिपण्णः सकपालं न्यस्य वाप्रतः  
 तेषां निरीक्ष्य तत्कर्मचक्रकोटित्यमीश्वरः । भुक्त्या कपालं भूमौ तु तान् द्विजान् वलोक्त यदा  
 उवाच पुष्करं यामि स्नानार्थं द्विजसत्तमाः । तूर्णं गच्छेति तैरुक्तः स गतः परमेश्वरः ॥  
 वियतिस्थितः कीतुकेन मोहयित्वा दिषौ फसः । स्नानार्थं पुष्करं याते कपर्दिनि द्विजातयः  
 कथं होमोऽत्र क्रियते कपाले सदसि स्थिते । कपालां तान्यशौचानि पुरा प्राह व्रजापतिः

चिमोऽभ्यधात्सदस्येकः कपालमुत्तिष्ठाम्यहम् ।

उदुधृतं तु सदस्येन प्रक्षितं पाणिना स्वयम् ॥ ४४ ॥

तापदग्न्यतिस्थितं तत्र पुनरेव समुदुधृतम् । एवं द्वितीयं तृतीयं विंशतिस्त्रिंशदप्यहो ॥ ४५ ॥

पंचाशच्च शतंचैव सहस्रमयुतंतथा । एवं नांतः कपालानां प्राप्यते द्विजसत्तमैः ॥ ४६ ॥

मर्या कपर्दिनं देवं शरणं समुपागताः । पुष्करारण्यमासाद्य जल्प्यैश्चैविकैर्भृशम् ॥ ४७ ॥

तुष्टुयुःसहिताः सर्वे तापक्षुष्टो हृदःस्वयम् । ततः स दर्शनं प्राशुद्विजानां भक्तिः शिषः ॥

उवाच तांस्ततो देवो भक्तिमग्नौ जितमान् ॥

शिव उवाच ।

पुरोडाशस्य निष्पत्तिः कपालं न विना भवेत् ॥ ४६ ॥

कुरुर्ध्वं यवनं विप्रामागः स्विष्टकृतो मम । एवं कृते कृतं सर्वं मर्त्यं शासनं भवेत् ॥ ५० ॥

तथेत्युबुर्द्विजाश्रमं कुर्मो वै तव शासनम् । कपालपाणिराहेशो भगवतं पितामहम् ॥

परं परमं भो ब्रह्महृदि यत्ते प्रियं स्थितम् । सर्वं तव प्रदस्यामि भर्तृव्यं नास्ति मे प्रभो ॥

ब्रह्मोवाच ।

न ते वरं ब्रह्मिष्यामि वीक्षितोऽहं सङ्स्थितः । सर्वकामप्रदश्चाहं यो मां प्रार्थयते त्विह

एवं वदतं वरदं कर्तो तस्मिन्पितामहम् । तथेति चोक्त्या रुद्रः स परमस्मादयाचत ॥

ततो मन्वन्तरेऽतीते पुनरेव प्रभुः स्वयम् । ब्रह्मोत्तरं कृतं स्थानं स्वयं देवेन शंभुना ॥ ५५ ॥

चतुर्वर्षं हि देवेषु परिनिष्ठां गतो हि यः । तस्मिन्काले सदा देवो नगरस्यावलोकने ॥

संभाषणे द्विजानां ॥ कौतुकेन सदीयतः । तेनैवोन्मत्तधेयेण हुतशेपे महेश्वरः ॥ ५७ ॥

प्रविष्टो ब्रह्मणः सप्त दृष्टो देवैर्द्विजोत्तमैः । ब्रह्मसंति च केऽप्येन केचिन्निर्मत्संयंति च ॥ ५८ ॥

मपरे पांसुमिः सिञ्चन्त्युन्मत्तं तं तथा द्विजाः । लोष्टैश्च लग्नुर्दंष्ट्रात्येगुष्मिणोऽप्यलग्निताः

प्रहरन्ति स्मोपहासं कुर्वाणा इत्येतच्चिदम् । ततोऽन्ये वटवस्तत्र जटाः स्वा गृह्यन्ति च ॥

गृह्णन्ति मत्तचर्यां स्रं केनैषा ते निदर्शिता । अत्र धामाः स्त्रियः संति तासामर्थत्वमागतः

केनैषा दर्शिता चर्या गुरुणा पापदर्शिता । येन चोन्मत्तवद्वाक्यं वदन्मध्ये प्रधावसि ॥ ६२ ॥

शिशं मे ब्रह्मणो रूपं भगवांश्च जनादर्नः । उप्यमानमिदं बीजं लोकः क्षिप्रं तासि चान्यथा ॥



याऽयं जनितः पुत्रो जनितोऽनेन चाप्यहम् । महादेवकृते सृष्टिः सृष्टा भार्या हिमालये ।  
 मा दत्ता तु रुद्रस्य कस्य सा जनयावद् । मूढा यूयं न जानीथ घदतां भगवांस्तु घः ।  
 क्षणा न कृता चर्या दर्शिता नैव विष्णुना । गिरिशोनापि देवेन ब्रह्मवध्याकृतेन तु ।  
 अस्मिन्नहंसे देवं पथ्योऽस्माकं त्वमथ वै । एवं तेर्हन्वमानस्तु ब्राह्मणैस्तत्र शंकरः ।  
 स्मितं कृत्वाऽब्रवीत्सर्वाभ्याह्वयान्नपसत्तम ॥

शिव उवाच ।

किं मां न विस्थ भोविप्रा उन्मत्तं नष्टचेतनम् ॥ ६८ ॥

यं कारुणिकाः सर्वे मित्रभावे व्यवस्थिताः । धृष्टमान मिदं छत्रब्रह्मरूपधरं हरम् ॥ ६९ ॥  
 अपयातस्य देवस्य मोहितास्ते द्विजोत्तमाः । कपर्दिनं निजभ्रुस्ते पाणिपादैश्च मुष्टिभिः  
 डैश्चापि च कीलैश्च उन्मत्तवेषधारिणम् । वीक्ष्यमानस्ततस्तेस्तु द्विजैः कोपमथागमन् ॥  
 तो देवेन ते राता यूयं वेदविधर्जिताः । ऊर्ध्वजटाः क्रतुघ्नयाः परदारोपसेचिनः ॥ ७० ॥  
 शपायां तु रता यूते पितृमातृविधर्जिताः । न पुत्रः पेतृकं वित्तं विद्यां धापि गमिष्यति ॥  
 र्धे च मोहिताः संतु सर्वेन्द्रियविधर्जिताः । रौद्रीं मिश्रां समश्नंतु परर्षिडोपजीविनः ॥  
 तस्मान्न वत्स्यंतश्च निर्ममा धर्मवर्जिताः । कृपार्पिता तु वैर्षिप्रैरुन्मत्ते मयि सांप्रतम् ॥  
 र्पां धनं च पुत्राश्च दासीदासमजाधिकम् । कुलोत्पन्नाश्च चैतार्योमयितुष्टेभ्यजिष्यथ ॥  
 त्वं शापं धरन्वैष दत्त्वा तर्ह्यनमीश्वरः । गतो द्विजागते देवे मत्परा तं शंकरं प्रभुम् ॥ ७१ ॥  
 तन्विष्यंतोऽपि यत्नेन न चापश्यंत ते यदा । तदा नियमसंपन्नाः पुष्करारण्यमागताः ।  
 नात्वा ज्येष्ठसरो विप्राजेषु स्तेशतहस्त्रियम् । जाप्यायसाने देवस्तानशरीरगिराश्रयां ॥  
 शिव उवाच ।

मृतं न मया प्रोक्तं स्वैरेष्यविकृतः पुनः । भागते निग्रहे क्षेमं मूयोऽपि करपाण्यहम् ॥  
 प्रता दाता द्विजाये तु भक्तिमंतो मयि स्थिराः । न तेषां छिद्यते वेदो न धनं नापि संततिः  
 रग्निहोत्ररता ये च भक्तिमंतो जनार्दने । पूजयन्ति च प्रह्लाणं तेजोराशिं दिवाकरम् ॥  
 शुभं विद्यते तेषां येषां सम्यग्स्थितामतिः । एतावदुत्तमाय च न तूष्णीं भूतस्तु सोऽभयन् ॥  
 त्वा परं स प्रसादं देवदेवान्महेश्वरात् । माजगमुः सहितास्सर्वे यत्र देवः पितामहः ॥

विरिञ्चिसंहिताजाप्यैस्तोष्यतोऽप्रकःस्थिताः । तुष्टस्तानप्रवीदुष्यस्यामत्तोऽपिमिषतां वरः ॥  
 ब्राह्मणस्तेन धाक्येन दृष्टाः सर्वे द्विजोत्तमाः । को घरो याच्यतां विप्राः परितुष्टेपितामहे ॥  
 एके सत्राश्रुवन्विप्रा येदान्यैवृषयामहे । नेति चान्ये घनं चान्ये त्रियतामविशङ्कितैः ॥  
 किमस्माकं धनेनेह कार्यतुष्टेपितामहे । अग्निहोत्राणि वेदाश्च शास्त्राणि विधिधानि च ॥  
 सांतानिकाश्च ये श्लोका धरन्तान्द्वयं नः । एवं प्रजल्पतां सत्र विप्राणां कोपमाविशाम् ॥  
 के धूर्वं केऽत्रप्रघरा धवं श्रेष्ठास्तथापरैः । नेति नेति तयाविप्राद्विजांस्तांस्तत्रसंस्थिताम् ॥  
 ब्रह्मोवाचामिसंप्रेक्ष्य ब्राह्मणान्कोपपूरितान् ।

यस्मात्पूर्वमिभिर्भागैः समायां बाह्यतः स्थिताः ॥ ६१ ॥

तस्मादात्मुल्लिख्योत्तमोहोको भयतु षोड्विजाः । उदासीनाः स्थिताये ॥ उदासीनाभयंतुने  
 सायुषा बद्धनिजिशापोदुष्कामाभ्यपन्न्यताः । कौशिकीतिपत्नोनामवृत्तायोभयतु द्विजाः  
 विधायद्वमिदं स्थानं सर्वं युष्मद्विष्यति । बाह्यतो श्लोकशब्देन प्रोच्यमानाः प्रजास्तिपद ॥  
 अपिकेयं नास्ति षोऽत्र सर्वस्य यः प्रणश्यति । तृणानि भूमिरुदकं तथापि दातुं संशयः ॥  
 प्रतिग्रहे चानुवृत्तिः कुपिताश्च परस्परम् । भूमिप्रपन्नविप्राणां क्षमा ये नात्र काचन ॥  
 केवलं द्रव्यरूपो लोभोपहतचेतसः । एवंविधा रुद्रशापाद्विप्रातरो न संशयः ॥ ६२ ॥  
 युष्माकं स्थानमेतत्तु विष्णुः पालयिताश्रुषम् । मयादत्तं विरक्ष्यामि भगवं च भविष्यति ॥  
 एवमुक्तवा तदा ब्रह्मा समाति तामवैक्षत । ब्राह्मणाः सदितास्तेन यत्रार्थं चिकुपेस्तद ॥  
 अतिथिं भोजयानाश्च वेदाभ्यास रतास्तुते । यतश्च परमं क्षेत्रं पुष्करं ब्रह्ममंशितम् ॥  
 तत्र श्याये द्विजाः शांतावसंतिक्षेत्रपातिनः । न तेषां दुर्लभं किंचिद् ब्रह्मन्दोकेन विष्यति ॥  
 कौशामुने रुद्रक्षेत्रे मैत्रिणे अग्निमंगये । वाचाजस्यो प्रभागे च तथा धर्तृकाधमे ॥  
 गङ्गादारे प्रयागे ॥ गंगासागरसंगमे । रुद्रकोट्यापिरुषाक्षे मित्रस्यापि तथापने ॥ ६३ ॥  
 तीर्थेष्वेतेषु सर्वेषु सिद्धिर्पाप्माश्चाप्सिवा । प्राप्यते मानयेल्लोके यप्तासाद्राजगलमः ॥  
 पुष्करे तु न संदेहो ब्रह्मस्यंमनापदि । तीर्थानां परमं तीर्थं क्षेत्राणामपि कोत्तमम् ॥ ६४ ॥  
 सदा तु पूजितं पूजयेन्मन्त्रियुक्तेष्विति । अन्तरं प्रपश्यामि सावित्र्या ब्रह्मना सदा ॥  
 वारोपयानुभूतस्तु पट्टासहतो मदान् । सावित्री गमने गवां जगता देययोरितः ॥

भृगोःख्यात्यां समुत्पन्ना पिप्पुपदी यशस्विनी ।

धामन्विता तदा लक्ष्मीस्तत्रायाता त्वरान्विता ॥ १०८ ॥

मदिरा च महामाया योगनिद्रा विभूतिदा । धीःकमलालयाभूतिःकीर्तिःश्रद्धामनस्विन  
पुष्टि तुष्टिप्रदाया ॥ देव्यपताः समागताः । सती या दक्षतनया उमेति पार्वती शुभा  
त्रैलोक्यसुन्दरीदेवी स्त्रीणां सौभाग्यशायिनी । जया च विजयाचैव मधुच्छन्दामरावती  
सुप्रिया जनकाता च सावित्र्यामंदिरे शुभे । गौर्या सहस्रमायातास्तुयेवामरणान्विता  
पुलोमदुहिता चैव शक्राणी च सहाप्सराः ।

स्वाहा वापि स्थधायाता धूमो(घ्नो)र्णा च धरानना ॥ ११३ ॥

यक्षी तु राक्षसीचैव गौरीचैव महाधना । मनोजया चायुपक्षी ऋद्धिश्च धनप्रिया ॥  
दैवकन्यास्तथायाता दानव्योदनुघट्टमाः । सप्तर्षीणां महापत्न्य ऋषीणां च धरांगताः ॥  
एवं भगिन्यो दुहिता विद्याधरीगणास्तथा । राक्षस्यःपितृकन्याश्च तथान्यालोक मातरः  
यधूमिः सस्तुषाभिश्च सावित्री गंतुमिच्छति ।

मादित्याद्यास्तथा सर्वा दक्षकन्यास्समागताः ॥ ११७ ॥

तामिः परिवृतासाध्वी ब्रह्मणी कमलालया । काचिन्मोदकमादाय काचिच्छूर्पधरानना  
फलपूरितादाय प्रयाताब्रह्मणोऽतिकम् । मादकीःसहनिष्पावा गृहीत्यान्यास्तथापराः  
दाडिमानि विचित्राणि मातुलिगानि शोभना ।

फरीराणि तथा खान्या गृहीत्या कमलानि च ॥ १२० ॥

कौसुमकंजीरकं च खर्जूरमपरातथा । उत्तमाग्यपरादाय नालिकेराणि सर्वशः ॥ १२१ ॥  
द्राक्षया पूरितंकाचित्पात्रंशृगाटकं तथा । कर्पूराणि विचित्राणि जंबुकानि शुमानि च  
अशोढामलकान्गृह्य जंबीराणि तथापरा । विद्वानि परिपक्वानि चिपिटानि धरानना ॥  
अतुल्यान्नविकाराणि बहूनि विविधानि च ।

कार्पासतूलिकाश्चान्या वस्त्रं कौसुमकं तथा ॥ १२४ ॥

एवमाद्यानिचान्यानि हृत्पात्रपूर्णे धराननाः । सावित्र्यासहिताःसर्वाःसंप्राप्ताःसहस्राशुमाः  
सावित्रीमागतां दृष्ट्वा भीतस्तत्रपुरंदरः । अधोमुखः स्थितो ब्रह्मा किमेवा मां वदिष्यति ॥

प्रपान्वितौविष्णुस्त्रीसर्वेचान्ये द्विजातयः । समासदस्तथामीतास्तथा चान्ये दिव्यौकसः  
पुत्राःपौत्रा भागिनेया मातुला भ्रातरस्तथा । ऋमवोनाम ये देवा देवानामपि देवताः ॥  
चैलक्ष्ये तु स्थिताःसर्वे सावित्रीकिंवदिष्यति । ब्रह्मपार्श्वेस्थितातत्रकिंतुवैगोपकन्यका  
मौनीभूता तु शृण्वाना सर्वेषां पदतांगिरः । अध्वर्युणा समाहृता नागतावरवर्णिनी ॥  
शक्रेणान्याहृतामीरीदस्तासाविष्णुनास्वयम् । अनुमोदिताबह्वद्रेणविभ्राऽस्तास्वयंतथा  
कथं सा भविता यज्ञसमार्ति वा यज्ञेतकथम् । पयं चितयतां तेषां प्रविष्टाकमलालया  
वृत्तो ब्रह्मा सदस्येस्तु ऋषिभिर्देवतैस्तथा । हृयन्तेचाग्रयस्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥  
पर्जाशालाशिता गोपी सैणशृंगासमेखला । क्षौमवस्त्रपरीधाना ध्यायंतीपरमं पदम् ॥  
पतिप्रतापतिप्राणा प्राधान्ये च निवेशिता । रूपान्विताविशालाक्षी तेजसामास्फरोपमा  
द्योतयंती सदस्तत्र सूर्यस्येव यथाप्रभा । उबलमानं तथा धर्हि धयंते अत्यिजस्तथा ॥  
परूनामिह गृह्णाना भागं स्व स्वचरोर्मदा । यज्ञभागार्थिनो देवा धिंलंघाद्गुप्यते तदा ॥  
कालहीनं न कर्तव्यं कृतं न फलदं यतः । वेदेष्वेवमधीकारो (?) इष्टःसर्वैर्मनीषिभिः ॥  
प्राचर्यै कियमाणे तु ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । क्षीरद्वयेन संयुक्तशृतेनाध्वर्युणा तथा ॥१३६॥  
उपहृते नागतेन चाहृतेषु द्विजमसु । कियमाणे तथा मध्ये दृष्ट्वा देवीदयान्विता ॥१४०॥  
उपाय देवो ब्रह्माणं सदोमध्ये तु मीनितम् ।

सावित्र्युवाच ।

किमेतद्युज्यते देय कर्तुमेतद्विचेष्टितम् ॥ १४१ ॥

मां परित्यज्य यत्कामात्कृतपानसि किंलियम् । न तुल्यापाद्वजस्ता मन्त्रेयंगोपकन्यका  
यद्वद्विजनास्सर्वे संगताः रुदसिस्थिताः । आशामीभ्वर भूतानां तां कुरुष्व यदिच्छसि  
भयतारूपलोभेन कृतंलोक विगर्हितम् । पुत्रेषु न कृतालज्जा पौत्रेषु च न ते प्रभो ॥  
कामकारकृतमन्य यतत्कर्मविगर्हितम् । पितामहोऽसिदेवानामृगीनां प्रपितामहः ॥  
कथंनतेप्रयात्राता आत्मनःपश्यतस्तनुम् । लोचमध्ये कृतंहास्यमहंचाप कृताप्रभो ॥  
यद्येपतेसिरोभाषस्तिष्ठदेव नमोऽस्तुते । अहं कथं सखीनां त्वं दशंयिष्यामि धै मुलम् ॥  
भर्त्रा मे विधृता पर्त्वा कथमेतदहं वदे ।

ब्रह्मोवाच ।

ऋत्विग्भिस्त्वरितध्वाहं दीक्षाकालादनन्तरम् ॥ १४८ ॥

तर्नीचिना न होमोऽत्र शीघ्रपत्नीमिहानय । शक्नेगीषासमानीता दत्तेषं मम विष्णुता ॥  
दृढीता च मयासुवृक्षमस्वेतं मयावृतम् । न चापराधं भूयोऽन्यं करिष्ये तव सुव्रते ॥  
पादयोः पतितस्तेऽहं क्षमस्वेह नमोऽस्तु ते ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एषमुक्ता तदा क्रुद्धा ब्रह्माणं शत्रुमुच्यता ॥ १५१ ॥

यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं शुरयो यदि तोषिताः । सर्वत्रह्यसमूहेषु स्थानेषु विविधेषु च ॥  
नैषते ब्राह्मणाः पूजां करिष्यन्ति कदाचन । ऋते तु कार्तिकीयकांपूजां सांवत्सरीं तव ॥  
करिष्यन्ति द्विजाः सर्वे मत्स्यां नान्यत्रभूतले । एतदुब्रह्मणमुक्त्वाहशतक्रतुमुपस्थितम् ॥

भो भोःशक्र त्वयानीता आभीरी ब्रह्मणोऽतिक्रम ।

यस्मात्ते क्षुद्रकं कर्म तस्मात्त्वं लप्स्यसेफलम् ॥ १५५ ॥

यदा संप्राममध्येत्यस्थाताशक्र भविष्यसि । तदात्वं शत्रुमिर्यद्ध नीतः परमिकांशशम् ॥  
अकिंचनो नष्टस्त्वः शत्रूणां नगरे स्थितः । पराभयं महत्प्राप्य न विरादेयमोक्षसे ॥ १५७ ॥

शक्रं शप्त्वा तदा देवी विष्णुं वाक्यमवाब्रवीत् ॥

भृगुवाक्येन ते जन्म यदा मर्त्ये भविष्यति ॥ १५८ ॥

भार्यावियोगजं दुःखं तदा त्वं तत्र भोक्ष्यसे । हतां ते शत्रुणा पत्नी परेपारे महोदधेः ॥  
न च त्वं हास्यसे नीतां शोकोपहतचेतनः । भ्रात्रा सह परांकष्टा मा पदंप्राप्य दुःखितः ॥  
यदा यदुकुले जातः कृष्णसंज्ञो भविष्यसि । पशूनां पालको भूत्वा चिरफालं भ्रमिष्यसि ॥  
तदाह र्द्धं कुपिता यदा दास्यने स्थितः । तदा ते ऋषयः क्रुद्धाः शापं दास्यन्ति ये ॥  
भो भोः कापालिकक्षुद्र खीरस्माकं जिहीर्यसि । तदेतद्वर्षितं तेऽद्य भूमौ लिङ्गं पतिष्यति ॥  
विहीनः पौरुषेण त्वं मुनिशापाच्छपीडितः । गंगाद्वारे स्थिता पत्नी सा त्वामाभ्यासयिष्यति ॥  
अग्ने त्वं सर्वमश्नोऽसि पूर्वं पुत्रेण मे कृतः । भृगुणा चर्मनित्येन कथं दग्धं दहाम्यहम् ॥  
जातयेदस्सद्यद्वन्त्यां रेतसा ज्ञापयिष्यति ।

अमेध्येषु च ते जिह्वा अधिकं प्रज्वलिष्यति ॥ १६६ ॥

ब्राह्मणानृत्पिजः सर्वान्सावित्रीवैशशाप ह । प्रतिप्रहार्येऽग्निहोत्रे वृषाटव्याथयास्तथा  
सदा तीर्यानि क्षेत्राणि लोभादेव भविष्यथ । पराशेषु सदा तृप्ता अतृप्तास्त्वगृहेषु च ॥  
भयाज्ययाग्रने कृत्वा कुत्सितस्यप्रतिग्रहम् । वृथा घनार्जनं कृत्वा व्ययं चैव तथा वृथा  
प्रेतानां तेन प्रेतैरथं भविष्यति न संशयः । एवं शक्तं तथा विष्णुं हृद्रं चै पापकं तथा ॥  
ब्रह्माणं ब्राह्मणांश्चैव सर्वांस्तानशपद्भुवा । शार्पंश्च तथा तेषां निष्कांतासदसस्तथा  
उपेष्टुं पुष्करमासाद्य तदा सा च व्यथस्थिता । लक्ष्मीप्राप्तसती तां च शक्रभार्याधराननाम्  
युधतीस्तास्तयोवाचनाप्रस्थास्यामिसंसदि । तत्र चाहंगमिष्यामियत्रधीष्येनचध्वनिम्  
पुलस्त्य उवाच ।

ततस्ताः प्रमदाःसर्वाः प्रयाताःस्वनिकेतनम् । सावित्री कुपितातासामपिशापायचोद्यता  
यस्मान्मातु पत्नियज्वगतास्तादेवयोषितः । तासामपि तथाशार्पं प्रदास्ये कुपिताभृशम्  
सावित्र्युवाच ।

नैकत्रयासौलक्ष्म्यास्तु भविष्यतिकदाचन । धुद्रासाचलचित्ता च सूर्खेषु च वसिष्यति  
भ्लेब्धेषु पार्यतीयेषु कुत्सितेऽकुत्सिते तथा । सूर्खेषु चावलितेषु अमिश्रिते दुरात्मनि ॥  
एवंपिपे नरै स्यात्तेवसतिःशापकारिता । शार्पं दत्त्वा ततस्तस्या इन्द्राणीमशपत्तदा ॥  
ब्रह्मदत्त्वा गृहीतेन्द्र पत्न्यौ ते दुःखभागिनि । गृहपापदूतेराज्ये दृष्ट्वा त्वां पावयिष्यति  
गहमिन्द्रः कथंचिपानोपस्थास्यति बालिश । सर्वान्देवान्कनिष्यामि मलप्स्येऽहंशर्षीयदि  
नशार्पं च तदाप्रस्ता वाचपतेर्दुःखितागृहे । वसिष्यसे दुराचारे मन शपेनगर्षिते ॥  
देवमार्यास्तु सर्वास्तु तदा शापमयच्छत ।

न वापत्यहतां प्रीतिमेताःसर्वा लभिष्यथ ॥ १८२ ॥

दहमानादियारात्री वंध्याशब्देन दुषिताः । गौर्यप्येवं तदा शता सावित्र्यावरणर्जिता ॥  
रुदमानास्तु सा दृष्टा विष्णुना च प्रसादिता ।

विष्णुदवाच ।

मा रोदीस्त्वं पिशालाक्षि पृष्ठागच्छ सदा शुभे ॥ १८४ ॥

विश्य च सभां देहि मेखलांक्षीमयाससी । गृह्णाणदीक्षां ब्रह्माणि पादौ च प्रणमामिते  
यमुक्ताऽब्रवीदेनं न करोमि वचस्तव । तत्र चाहं गमिष्यामि यत्र धोप्येन वै ध्वनिम्

यथायदुक्तया सागृह्या तस्मात्स्थानाद्विरौ स्थिता ।

विष्णुस्तद्व्रतःस्थित्वा यदुध्या च करसंपुटम् ॥१८७॥

तुष्टाय प्रणतो भूत्वा भक्त्या परमया स्थितः ।

विष्णुरुवाच ।

सर्वगा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतोऽद्भुता ॥१८८॥

तदसच्चैवयत्किंचिद्वृक्षं तत्र विना त्वया । तथापिपेषुस्थानेषु द्रष्टव्यासिद्धिमीप्सुभिः  
ऋतं वया भूमिकामैर्वा तत्प्रवक्ष्यामि तेऽप्रतः । सावित्री पुष्करेणाम तीर्थानां प्रधरे शुभे ॥  
गाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्गाधारिणी । प्रयागे ललितादेवी कामुकागंधमादने ॥  
मानसे कुमुदा नाम विभ्रकाया तर्थाधरे । गोमंते गोमतीनाम मंदरे कामचारिणी ॥  
मधोत्कटा चैत्ररथे अर्यंती हस्तिनापुरे । कान्यकुब्जे तथा गौरी रंभा मलयपर्यते ॥१८९॥  
एकाग्रके कीर्तिमती विभ्रवा विभ्रेश्वरी तथा । कर्णिके पुरहस्तेति केदारो मार्गदायिका  
नंदा हिमवतःपृष्ठे गोकर्णे भद्रकालिका । स्थाण्वीश्वरे भवानीतु विल्यके विल्यपत्रिका  
धौशीले माधवी देवी भद्रा भद्रेश्वरी तथा । जया घराहरीलेतु कमला कमलालये ॥१९०॥  
रुद्रकोट्यां ॥ रुद्राणी काली कालंजरे तथा । महालिङ्गेतु कपिला कर्कटि मंगलेश्वरा  
शालग्रामे महादेवी शिवलिङ्गे जलग्रिया । मायापुर्यां कुमारी तु संताने ललिता तथा  
वत्पलाक्षी सहस्राक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला । गवायां मंगलानाम विमला पुरयोत्तमे ॥  
विपाशापाममोघाक्षी पाटला पुण्यधर्द्धने । नारायणी सुपाञ्चतु त्रिकूटे मद्रसुंदरी ॥  
विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले । कोट्यां कोटितीर्थे तु सुगंधा माधवी वने  
पुञ्जाग्रके त्रिसंध्या तु गंगाद्वारे हरिप्रिया । शिवकुंडे शिवानंदा नंदिनी देविकातटे ॥

रुक्मिणी द्वापट्यां तु राधा धृन्दावने तथा ।

देवकी मधुरायां तु पाताले परमेश्वरी ॥ २०३ ॥

तथा सांता पिथे विष्णुनिपातिनी । सदाशिवकथोक्त तु हरिश्चंद्रेतु चंद्रिका

रमणा रामनीर्यं तु यमुनायां मृगावती । कर्षारी महालक्ष्मीयमादेवी विनायके ॥२०५॥  
 भरोगा वीरनाथे ॥ महाकाले महेश्वरी । अमया पुष्पनीर्यं तु अमृता विध्यकन्दरे ॥  
 माण्डव्ये माण्डवीदेवी स्वाहा माहेश्वरीपुरे । वेगने तु प्रचंडाय चंडिकामरकंदके ॥२०६॥  
 सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्कटावती । देवमाता सरस्वत्यां धाराधारतटेस्थिता ॥  
 महालये महापद्मा पयोप्पयां पिंगलेश्वरी । सिद्धिकारुण्योद्ये तु कार्तिकेये तु शंकरा ॥  
 वल्गलापतके लोला सुमद्रा सिधुसंगमे । उमा सिद्धपते लक्ष्मीरत्नगा भारताध्रमे ॥२१०॥  
 जालंधरे विष्णुमूर्तीसारा कर्तिकप्रपर्वते । देवदारुपते पुष्टिमंधा काश्मीरमण्डले ॥२११॥  
 भीमादेवी हिमाद्रौ च तुष्टिपंखेश्वरे तथा । कपालमोचने भद्रा माना कायापरोदणे ॥  
 शंखोद्धारैध्वनिनाम धूतिः पिङ्गारके तथा । काला तु चंद्रमागत्यामन्त्रोद्देशिदिदायिनी  
 धेनायाममृतादेवी वदयामुर्वशी तथा । मौषपी यौत्सरकुर्वी कुञ्जार्द्रापे कुञ्जोदका ॥२१४॥  
 अमया हेमवृटे तु कुसुमे सत्यवादिनी । अग्रये वंदनीया तु निधिर्धनपतालये ॥  
 गायत्री प्रेदपद्मे पार्यती शिषसन्निधी । देवलांके लपेंद्राणीं प्रदास्ये तु सरस्वती ॥  
 सुर्वविदे प्रभा नाम प्राभुनां वैष्णवी तथा । अग्रयती रत्नीनां सुखमासु च तिलोत्तमा  
 विन्ने प्रहजला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् । एतद्भक्तवामयात्रोक्तनामाष्टशतमुत्तमम् ॥  
 अष्टोत्तरं च तीर्थानां शम्भेनदुदाहृतम् । यो जपेन्नृणुयाद्वाविरत्येनादेः प्रमुच्यते ॥२१६॥  
 येषु तीर्थेषु यः शम्भा स्नानं पश्येन्नरोत्तमः । सर्वपापविनिर्मुक्तः कर्त्ता प्रदुरे परेण् ॥  
 नामाष्टकशतं यन्तु ध्यायेदुग्रहसन्निधी । पौर्णमास्याममायां वा बहुषुचो मयेत्तरः ॥  
 गोशाने धादशने वा अष्टमहनि वा पुनः । देवार्चनविधौ शृण्वन्परं प्रदाधिगच्छति ॥  
 एवं हनुपते सावित्री विष्णुं प्रोषात सुमता ।

सावित्र्युवाच ।

सम्यक्कानुता त्वया पुत्र त्वमज्ञप्यो भविष्यसि ॥२२३॥

अथनारी सशस्त्रं च विनृमानुपुष्टमः । इह चागत्य यो मां ॥ स्मरेन्नानेन संस्तुयाम् ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः परं स्थानं भविष्यति । यच्छ यत्र विनिश्चय इत्यस्मि नय दुश्च ॥  
 कुर्यादे प्रगते च भविष्ये बाल्यदायिनी । समोऽपान्तिपानार्ण करिष्येनयमानिम् ॥



पुलस्त्य उवाच ।

पञ्चमुक्तो गतो विष्णुर्ब्रह्मणः सद उत्तमम् । गतायामय सावित्र्यां गायत्री वाक्यमश्र्वती

गायत्र्युवाच ।

शृण्वन्तु वाक्यमृषयो मदीयं भर्तृ सन्निधौ । यदिदं वक्ष्ये हं तुष्टा वरदानाय शोधत  
ब्रह्माणं पूजयिष्यन्ति नरामक्तिसमन्विताः । तेषां यस्त्रं धनं धान्यं दाराः सौख्यं धनानि  
अधिच्छिन्नं तथा सौख्यं गृहे वैपुत्रपौत्रकम् । मुक्त्वा सौख्यं चिरं कालं मते मोक्षं मिषम्

पुलस्त्य उवाच ।

ब्रह्माणं च प्रतिष्ठाप्य सर्वयस्नैर्विधानतः । यत्पुण्यफलमाप्नोति तदेकाग्रमनाऽशृणु ॥ २३ ॥  
सर्वयश्नतपोदानतीर्थं वेदेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं लभेत्तैत्तत्प्रतिष्ठया ॥ २४ ॥  
पौर्णमास्युपवासं तु हृत्वा भक्त्या नराधिप । अनेन विधिना यस्तु चिरं विंशतिं पूजयेन्नरः  
प्रतिपदि महाबाहो स याति ब्रह्मणः पदम् । चिरं विंशतिं वा सुदैवं तु श्रुत्वा विभक्त्यविशेषतः

कार्तिके मासि देवस्य रथयात्रा प्रकीर्तिता ।

यां हृत्वा मानवा भक्त्या संयाति ब्रह्मलोकताम् ॥ २३५ ॥

कार्तिके मासि राजेंद्र पौर्णमास्यां चतुर्मुखम् । मार्गेण ब्रह्मणा सार्द्धं सावित्र्या च परं  
भ्रामयेन्नगरं सर्वं नानावाद्यसमन्वितः । स्थापयेद्भ्रामयित्वा ॥ सलोकनगरं नृप  
ब्राह्मणान्मोजयित्वाग्ने शोडशैर्वा प्रपूज्य च । भारोपयेद्देवं पुण्यपादिभक्तिः स्वतः  
रथाग्ने शोडशीषुत्रं पूजयित्वा विधानतः । ब्राह्मणान्याचयित्वा तु हृत्वा पुण्यपादमङ्गलं  
देवमारोपयित्वा च रथे कुर्यात्प्रजागरम् । नानाविधैः प्रेक्षणीकैर्ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलं  
हृत्वा प्रजागरं देवं प्रमाते ब्राह्मणान्पूज्य । भोजयित्वा यथाशक्ति मक्ष्यमोज्यैरनेकैश्च  
पूजयित्वा जन्मधीरमन्त्रेण विधिवन्पूज्य । आग्नेन तु महाबाहो पयसा पायसेन च ॥ २४० ॥

ब्राह्मणान्याचयित्वा तु स्वस्त्या तु विधियन्पूज्य ।

हृत्वा पुण्याहशब्दं च सद्रथं भ्रामयेत्पुरे ॥ २४१ ॥

। बह्वृचाध्वर्युर्गौरीरुद्रो गार्ग्यः परमिस्तथा ॥ २४२ ॥

ग्रामयेद्देवदेवस्य सुरधेष्टस्य तं रथम् । प्रदक्षिणं पुरं सर्वं मार्गेण सुसमेन तु ॥२४५॥  
 तयोद्व्यो रथो घोर शूदेण हितमिच्छता । नचारोहेद्रथं प्राञ्चो भुक्त्वैकं भोजकं नृप ॥  
 ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे गायत्रीं स्थापयेन्नृप । भोजकं वामपार्श्वे तु पुरतः पङ्कजे न्यसेत्  
 एवं तूर्यनिनादैस्तु शंखशब्दैश्च पुष्कलैः । भ्रामयित्वा रथं घोर पुरं सर्वं प्रदक्षिणम् ॥  
 स्वस्थाने स्थापयेद्देवं दत्त्वा नीराजनं बुधः ।

य एवं कृत्ते यात्रां यो वा भक्त्यापि पश्यति ॥ २४६ ॥

रथं वा कर्पयेद्यस्तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ।

कार्तिके मास्यमाषास्यां यज्ञ दीपप्रदीपनम् ॥ २५० ॥

शालायां ब्रह्मणः कुर्यात्स गच्छेत्परमं पदम् । शंखपुष्पैर्नवैर्घस्त्रैरात्मानं पूजयेत्तु यः ॥  
 तस्यां प्रतिपदायां तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् । महापुण्या तिथिरित्यं बलिराज्यप्रयतिनी  
 ब्रह्मणः सुमित्रा नित्यं बालेयी परिकीर्तिता । ब्रह्माणं पूजयेद्योऽस्यामात्मानं च विलेपतः  
 स याति परमं स्थानं विष्णोरमिते तजसः । चैत्रमासि महाबाहो पुण्या प्रतिपदांशरा ॥  
 तस्यां यः भूपर्षं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ।

न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाघयो व्याधयो नृप ॥२५५॥

भयति कुरुशार्दूल तस्मात्स्नानं समाचरेत् । दिव्यं नीराजनं तद्भिः सर्वरोगविनाशनम्  
 गोमहिष्यादि यत्किञ्चित्सर्वं कर्पयेन्नृप ।

तेन यत्नादिभिः सर्वैस्तोरणं बाह्यतो न्यसेत् ॥ २५७ ॥

ब्राह्मणानां तथा भोग्यं कुर्यात्कुरुकुलोद्भव । तिस्रो होताः पुरा प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन  
 कार्तिकेऽयुजे मासि चैत्रे मासि तथा नृप । ज्ञानं दानं शतगुणं कार्तिके या तिथिर्नृप  
 बलिराजस्तु शुभदा पशूनां हितकारिणी ।

गायत्र्युपास ।

यदुक्तं तु तथा धाम्नि सावित्र्या कमलोद्भवः ॥ २६० ॥

न तु ते ब्राह्मणाः पूजां करिष्यन्ति कदाचन । मदीयं तु धनं श्रुत्वा ये करिष्यन्ति चाचनम्  
 इह भुक्त्वा तु भोगांस्ते परत्र भोगमागिनः । एतां ज्ञात्वा परां दृष्टिं परं तुष्टः प्रयच्छति

। काहं ते परं दास्ये संप्रामे शत्रुनिग्रहे । तदा ब्रह्मा मोक्षयिता गत्वा शत्रुनिषेकम् ।  
 त्वपुरं लप्स्यसे नष्टं शत्रुनाशात्परां मुदम् । बकटकं महद्वाज्यं त्रैलोक्ये ते भविष्यति  
 तत्त्रैलोके यदा धिष्णो भवतारं करिष्यसि । आत्रा सहपरं दुःखं स्वभार्याहरणादिम्  
 हत्वा शत्रुं पुनर्भार्यां लप्स्यसे सुरसौमिणी ।

शृद्धात्पा तां पुना राज्यं हत्वा स्वर्गं गमिष्यसि ॥ २६६ ॥

एकादश सहस्राणि वर्षाणां च पुनर्दिषम् । स्यातिस्ते विपुला लोके अनुराता जनेस्तथा  
 सातानिका नाम तु ये लोकाः स्यास्यन्ति भाषिताः ।

तयया ते तारिता देव रामरूपेण मानवाः ॥ २६८ ॥

गायत्री तु तदा रुद्रं धरद्वा प्रत्यभाषत । पतितेऽपि च ते लिंगे पूजां कुर्यन्ति ये नराः ।  
 ते पूताः पुण्यकर्मानः स्वर्गलोकस्य भागिनः । न तां गतिं ध्यातिहोत्रेन प्रती हुतपात्रे  
 यां गतिं मनुजा यांति तत्र लिंगस्य पूजनात् । गंगातीरे सदा लिंगं मित्यपत्रेण ये ता  
 पूजयिष्यन्ति सुप्रीता रुद्रलोकस्य भागिनः । प्राप्त्वापि सर्वमक्षतपमने त्वं न च पापनः ।

त्वयि प्रीते सुराः सर्वे प्रीता ये नात्र संशयः ।

त्वमुनेन हविर्देवाः प्रोक्ताः प्राप्य सदा ध्रुवम् ॥ २७३ ॥

मुंजने नात्र गंदेहो वेदोक्तं धन्यं यथा । गायत्रीं ब्राह्मणोस्तांश्च सर्वांश्चैवाग्रवीक्षित्वा  
 सुष्माकं प्रीजनं हत्वा सर्वनीर्घेषु मानवाः । परं सर्वं गमिष्यन्ति वीरात्राकर्षणं न गंतव्यं  
 धनप्रकारान्यविधान्दत्त्वा दानान्यनेकशः । आदेषु प्रीजनं हत्वा देव देवा भवन्ति ते  
 ये च ये ब्राह्मणभेदास्तेषामास्ये दिवौकसः । मुंजने च हविः क्षिप्तं कार्यं येषु निनामरा  
 स्युर्दि धारणे रुद्रास्त्रैलोक्यस्य न संशयः । प्राणायामेन धीरेण सर्वे पूता भविष्यन् ।

विशेषान्पुष्करे स्नात्वा मोक्षत्वा वेदमलम् ।

प्रतिग्रहणान्नमन्नं प्राप्य यत्र द्विजोत्तमाः ॥ ७३ ॥

पुष्करे स्नानं कृत्वा प्रीताः स्युः सर्वदेवताः ।

एकस्मिन्मोक्षिने विष्टे कोट्याः पश्यन्वात्मने ॥ २८० ॥

नि कुंजनां रुद्राणि च । भविष्यन्ति नारायणं हत्वा सुष्माकरेण

मदीयेतुजाप्येन जन्ममिस्तुत्रिमिःकृतम् । ब्रह्महत्यासमंपापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥२८२॥  
 दशभिर्जन्मभिर्जातं शतेन च पुराकृतम् । त्रियुगेन सदस्त्रेण गायत्री हन्ति किल्बिषम् ॥  
 एवं ज्ञात्वा सदापूताः जाप्ये तु मम वै कृते । भविष्यध्वं न संदेहो नात्र कार्याविचारणा  
 प्रणयेन त्रिमात्रेण सादं जप्या विशेषतः । पूताः सर्वे न सदेहो जप्या मां शिरसासाद्  
 भट्टाक्षरा स्थिता चाहं जगद्भ्रष्टां मया स्विदम् । माताहं सर्ववेदानां पदैः सर्वैरलंकृता ॥  
 जप्या मां भक्तिःसिद्धिं यास्यति द्विजसत्तमाः ।

प्राधान्यं मम जाप्येन सर्वेषां वो भविष्यति ॥ २८७ ॥

गायत्रीमात्रसरोऽपि वरं विप्रः सुसंयतः । नायं त्रितयतुर्वेदी सर्वांशी सर्वधिक्रयी ॥  
 यस्माद्विप्रेषु सावित्र्या श्रापो दत्तःसदस्यय । अत्र दत्तं हुतं वापि सर्वमक्षयकारकम् ॥  
 दत्तो वरो मया तेन बुध्माकं द्विजसत्तमाः । मन्निहोन्नपरा विप्रास्त्रिकालं होमदायिनः  
 स्वर्गं ते तु गमिष्यति सैकविंशतिभिःकुलैः ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवं शक्रस्य विष्णोश्च रुद्रस्य पायकस्य च ॥ २९१ ॥

ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च गायत्रीवरमुत्तमम् । तस्मिन्वै पुष्करे दृष्ट्वा ब्रह्मणःपार्श्वगात्रवत्  
 धारणीस्तु सदाकथारं लक्ष्म्या वै शायकारणम् ।  
 सुपतीनां च सर्वासां शायान्ज्ज्ञात्वापृथक् पृथक् ॥२९३॥  
 लक्ष्म्याश्चैव वरं प्रादाद्गायत्री ब्रह्मणः प्रिया ।

गायत्र्युपास ।

अङ्कुरिसत्तमसदा सर्वान्कुर्वन्ती धनशोभना ॥ २९४ ॥

शोभिष्यसे ॥ संदेहःसर्वेभ्यःप्रीतिदायिनी । येऽवया बोक्षिताःपुत्रि सर्वेते पुण्यमाजनाः  
 परित्यक्तास्त्वया ये तु सर्वे ते दुःखमागिनः । तेषां जातिः कुलं शीलं धर्मश्चैव वरानने  
 समायां ते च शोभन्ते दृश्यन्ते चैव पार्थिवैः । अर्थित्वंचैवतेशां तु करिष्यति द्विजोत्तमाः  
 सौजन्यं तेषु कुर्वन्ति त्वं नो ज्ञाता पिता गुरुः ।

वाधयोऽपि न संदेहो न जीवेयं त्वया चिता ॥ २९८ ॥

एवमिदं दृष्टे प्रसन्ना मे दृष्टिर्भवति शोभना । मनःप्रसीदतेऽत्यर्थं सत्यं सत्यं यद्वामि मे  
 एवं विधानि धावनानि त्वद्दृष्ट्या ये निरीक्षिताः ।

सज्जनास्ते तु धोष्यन्ति जनानां प्रीतिदायकाः ॥ ३०० ॥

इदं त्वं ननुपः प्राप्य दृष्ट्वा त्वां याचयिष्यति । त्वद्दृष्ट्या तु हतः पापो हागस्त्ययचनानुभूय  
 सर्वस्य समनुप्राप्य प्रार्थयिष्यति तं तु त्वः । वर्षेणाहं विनष्टोऽस्मि शरणं मे मुने भव  
 याक्येन तेन तस्यासौ नृपस्य भगवानृषिः । हृत्वा मनसि कादृश्यमिदं याचयं यद्विष्य  
 उत्पन्नस्यते कुन्ते राजा त्वदीये कुन्तनंदनः । सर्वरूपधरं दृष्ट्वा त्वं ते शायं हि भोक्तव्यमि  
 तदा त्वं सर्वतां त्यक्त्वा पुनः स्वर्गं गमिष्यसि । भावमेधरं न त्वं भर्ता साहसुनरिप  
 प्राप्स्यसे परदानेन भदीयेन सुयोधने ।

पुनस्तस्य उवाच ।

देवपत्न्यममदा सर्वांस्तुष्ट्या परिमार्गिताः ॥ ३०१ ॥

मपत्यैरपि हीनानां नैव तु त्वं भविष्यति । गौरवेषु तु गायत्र्या तदा सापि विबोधि  
 कृतिता परितोषेण वरान्दत्त्वा मनश्चिन्ता । समाप्तिं तस्य यज्ञस्य काशीर्गो ब्रह्मजः प्रिय  
 वरदा तौ तया दृष्ट्वा गायत्री वेदमात्मनम् । प्रणिदत्य तदा रक्षःस्तुनिर्मता वक्ता ॥ ३०२ ॥

इदं उवाच ।

ममोऽस्तु ते वेदमात्मनश्चाक्षयिर्गोधिने । गायत्री दुरंतर्णा वाणी क्षमयिष्याम्या ॥ ३०३ ॥

सर्वाणि स्तुतिशालात्राणि गायत्र्या निनिष्काम्या ।

ममराणि च सर्वाणि मृतमानि तथैव च ॥ ३०४ ॥

माय्यादिमर्षशास्त्राणि ये वाच्ये निषमात्मना ।

ममराणि च सर्वाणि त्वं तु देवि ममोऽस्तुते ॥ ३०५ ॥

इदं त्वं देवपत्नीऽसि दृष्ट्वा हि समाजना । विद्वन् विदुर्वा बहु वदन्मार्गैर्बोद्धता ।  
 एषा त्वं वरं दृष्ट्वा वदन्तं च सुनिर्मला । वसन्तवसने शोभे वसन्तोलायनात् ॥ ३०६ ॥  
 इदं त्वं देवपत्नीऽसि दृष्ट्वा । दिव्यकुंडलमालां वसन्तवसने सुनिर्मला ।  
 सुधेन त्वं विराजसे । ममदेवपत्नीत्वेन वदन्तं वसन्तोलायनात् ॥ ३०७ ॥

पुङ्गवाभोगसदृशो भुजो ते भूषणं दिवः । स्तनी ते रुचिरी देवि चतुर्लौ समचूचुको  
 रघनेनातिशुभ्रेण त्रिधलोमंगदर्पिता । सुमध्यवर्तिनी नागिगंभीरा शुभदर्शिनी ॥३१८॥  
 वेस्तीर्णजघना देवी सुश्रोणी च धरानने । सुजातवृत्तोरुयुगा सुजानुचरणा तथा ॥  
 त्रैलोक्यधारिणी सा त्वं भुवि सत्योपयाचना । मविष्यसि महामागे धरदा धरवर्णिनी  
 पुष्करे च कृता यात्रा दृष्टा त्वां संभविष्यति ।

ज्येष्ठे मासे पौर्णमास्यामग्न्यां पूजां च लप्स्यसे ॥ ३२१ ॥

ये च वा त्वत्प्रभावज्ञाः पूजयिष्यन्ति मानवाः । न तेषां दुर्लभं किञ्चित्पुत्रतोषनतोऽपि वा  
 कांतारेषु निमग्नानामदृश्यां वा महार्णवे । इत्युमिर्षानिदधानां त्वं गतिः परमा नृणाम्  
 त्वं सिद्धिः श्रीर्धृतिः कीर्तिर्होर्विद्यासम्पत्तिर्मतिः ।

संध्या रात्रिः प्रभा निद्रा कालरात्रिस्तत्रैव च ॥ ३२४ ॥

भस्मा च कमला मातर्ब्रह्माणी ब्रह्मवारिणी । जननी सर्वदेवानां गायत्री परमांगता ॥  
 जया च विजया चैव पुष्टिस्त्वं च क्षमा दया । सावित्र्यवरजा वासि सदा चेष्टापितुर्मम  
 बहुरूपा विभ्वरूपा सुनेत्रा ब्रह्मवारिणी । सुरूपा त्वं विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी ।  
 नगरेषु च पुण्येषु माध्वेषु धरानने । वासस्तथ महादेवि वनेषूपधनेषु च ॥ ३२८ ॥  
 ब्रह्मरूपानेषु सर्वेषु ब्रह्मणो धामतः स्थिता । दक्षिणेन तु सावित्रीमध्ये ब्रह्मा पितामहः ॥

भक्तर्षेदी च यज्ञानामृत्विजां चापि दक्षिणा ।

सिद्धिस्त्वं हि नृपाणां च वेल्लः सागरजा मता ॥ ३३० ॥

ब्रह्मवारिणि वा दीक्षा शोभा च परमा मता ।

उपोतिषां च प्रभा देवी लक्ष्मीर्नारायणे स्थिता ॥ ३३१ ॥

क्षमासिद्धिर्मुनीनां च नक्षत्राणां च रोहिणी । राजद्वारेषु तीर्थेषु नदीनां संगमेषु च ॥  
 पूर्णमापूर्णचन्द्रे च बुद्धिर्नीत्यां क्षमा धृतिः । उमा देवी च नारीणां भूषसे धरवर्णिनी  
 इन्द्रस्य चारुदृष्टिस्त्वं सहस्रनयनोपमा । ऋषीणां धर्मबुद्धिस्त्वं देवानां च परायणा  
 कार्यकार्णां च सीता त्वं भूतानां धरणी तया । स्त्रीणामवैधव्यकरी धनधान्यप्रदा सदा  
 व्याधि मृत्युं मयं चैव पूजिता शमयिष्यसि ।

या गतिः पुण्यशीलानामगतिः पापकर्मणाम् । योगसिद्धमहात्मानो यं विदुर्लोकमुत्तमम् ।  
यस्याष्टगुणमैश्वर्यं यमाहुर्देवसत्तमम् ।

यं प्राप्य शार्धतं विप्रा नियता मोक्षकांक्षिणः ॥ ३२ ॥

जन्मनो भरणार्थेयं मुख्यं ते योगमाविताः । यदेतत्तप इत्याहुः सर्पाश्रमनिवासिनः ।  
सैषं सैषं यथाहारादुद्धरं मनमास्थिताः । योऽनंत इति नामेभु मोक्षयते सर्वयोगिनि ।  
सहस्रमूर्त्ता रत्नाक्षः शोभादिभिरनुत्तमैः । यो यम इति विप्रैर्द्रैरिज्यते स्वर्गलिप्तगुणि ।  
मानास्थानगतिः श्रीमानेकः कथिगुत्तमः । यं देवं येसि वेत्तारं यज्ञभागप्रदायिनम् ।  
सुराग्निगूर्यर्थं द्राक्षं देवमाकाशविग्रहम् । तं प्रपद्यामहे देवं भगवच्छरणार्थिनः ॥ ३३ ॥

शरण्यं शरणं देवं सर्वदेवमयोद्धवम् ।

सुराणां चैव अष्टारं लोकानां च सुरैर्ययम् ॥ ३४ ॥

प्रियार्थं चैव देवानां सर्वंभ्य जगलःस्थिर्ना । कथ्यं पिङ्गणामुचिर्न सुराणां ह्ययमुत्तमम् ।  
येन अर्पितं तत्तं तं नमःस्मस्तुरोत्तमम् । येनाग्निना तु यज्ञता देयेन परमेष्ठिना ॥ ३५ ॥  
यथा नृष्टिः कृता पूर्वं यज्ञनृष्टिभ्यः पुनः । तथाप्रप्राप्यनंनेन लोकानां स्थितिर्वाग्निना ।  
अन्वाभ्यमानो भगवान् नृक्षोऽप्यथ च बुद्धिमान् ।

अन्वाभ्यमानो भगवान् नृक्षोऽप्यथ च बुद्धिमान् ।

यज्ञभूमौ स्थितस्तस्यां ब्रह्मा लोकपितामहः ।

सुरासुरगुरुः श्रीमान्सेव्यमानः सुरासुरैः ॥५२॥

उपासते ॥ तत्रैनं प्रजानांपतयः प्रभुम् । दक्षो वसिष्ठः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमः ॥५३॥

अंगिरा मृगुरत्रिश्च गौतमो नारदस्तथा । विद्यमानं चांतरिक्षं चायुस्तेजो जलं मही ॥

शब्दःस्पर्शश्च रूपं च रसो गंधस्तथैव च । विद्वत्तश्च विकारश्च यच्चान्यत्कारणं महत्

आयजुःसामाधर्षाख्या वेदाश्चत्वार एव च ।

शब्दःशिक्षा मिरुक्तं च कल्पश्छंदःसमन्विताः ॥ ५६ ॥

आयुर्धेदधनुर्वेदौ भीमांसा गणितं तथा । हस्तपश्यज्ञानसहिता इतिहाससमन्विताः ॥

एतैरंगैर्दधानैश्च वेदाः सर्वे विभूयिताः । उपासते महात्मानं सर्वोत्कर्षं पितामहम्

तपश्च क्रतवश्चैव संकल्पःप्राणएव च । एतेवान्ये च यद्वयःपितामहमुपस्थिताः ॥ ५६ ॥

मर्षोधर्मश्च कामश्च द्वेगोदर्यश्च सर्वशः । शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्तो ध्रुव एव च ॥६०॥

शनैश्चरश्चराहुश्च महाःसर्वे तथैव च । महतो विश्वकर्मा च पितरश्चापि भारत ॥ ६१ ॥

दिपाकरश्च सोमश्च ब्रह्माणं पर्युपासते । नायत्रीदुर्गतरणी घाणी सप्तविधा तथा ॥

सर्षाणि ध्रुतिशास्त्राणि यमाश्च नियमास्तथा ।

मक्षराणि च सर्षाणि मक्षत्राणि तथैव च ॥ ६३ ॥

भाष्याणि सर्वशास्त्राणि देहव्यति विशांपते । क्षणालया मुहूर्ताश्च दिनरात्रिस्तथैव च

अर्द्धमासाश्च मासाश्च ऋतवःसर्वएव च । उपासते महारमानं ब्रह्माणं दीवतेःसह ॥

अन्याश्च देव्यःप्रवरा ह्रीःकीर्तिर्पुतिरेव च । प्रभा धृतिःक्षमा भूतिर्नीतिर्यिद्याप्रतिस्तथा ॥

भ्रुतिःस्मृतिस्तथा क्षांतिःशांतिःपुष्टिस्तथा क्रिया ।

सर्षाश्वाप्सरसो दिव्या मृत्युगीतविशारदाः ॥ ६७ ॥

उपतिष्ठति ब्रह्माणं सर्षास्ता देवमातरः । विप्रवित्तिःशिविःशंकुरयःशंकुस्तथैव च ॥

योग्यान्केतुमानुश्रुतोऽप्रोध्यप्रो महासुखः । परिषःपुष्करश्चैव सांयोऽख्यपतिरेव च ॥

प्रहादोऽथ बलिः कुंभः, संहारो गगनप्रियः ।

मनुहादो हरिहरो वराहश्च कुयोरजः ॥ ७० ॥



योगिन्मयो वृत्तयोऽपि निगमसोऽपि वी कृतः । निष्कमः शक्यः श्रीमोऽपि व म निष्क ।  
 अथ यदो महापदो द्विषः कृतोऽपि । शक्यः शक्योऽपि व कृतः शक्यः शक्यः ।  
 कृतोऽपि शक्यः शक्यः शक्यः शक्यः शक्यः शक्यः ।  
 कृतोऽपि शक्यः शक्यः शक्यः शक्यः शक्यः शक्यः ।

यता च क्षमा कार्या रुद्रेण सह दैवतैः । इत्येयुगावसाने तु समाप्तिं च क्रतौगते ॥  
यया च प्रेषिता धूममेते च हनुपुंगवाः । संधिर्वा विग्रहोवापि सर्वैः कार्यस्तदैव हि ॥

पुलस्त्य उवाच ।

पुनस्तान्दानधान्यग्राहा वाक्यमाह स्वयं प्रभुः ।

दानघर्षेण विरोधोऽत्र यज्ञे मम कथञ्चन ॥ १३ ॥

मैत्रभावास्थिता यूयमस्मत्कार्यपरायणाः ।

दानया ऊचुः ।

सर्वमेतत्करिष्यामः शासनं ते पितामह ॥ १४ ॥

अस्माकमनुजा देवा भयं तेषां न विधते ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तदा तेषां परितुष्टः पितानहः ॥ १५ ॥

सुहृतां विष्टतां तेषामृषिकोटिस्थागता । श्रुत्वा पैतामहं यज्ञं तेषां पूजां तु केशवः ॥  
आंसनानि ददौ तेषां तदा देवः पिनाकधृक् । वसिष्ठोऽयं ददौ तेषां ब्रह्मणा परिषोदितः  
गामर्षं च सती दत्त्वा धृष्टा कुशलमवश्यम् ।

निषेरां पुष्करं दत्त्वा स्वीयतामिति चाब्रवीत् ॥ १८ ॥

ततस्त श्रुत्वा सर्वे जटाजिनधरास्तथा । शोभयन्तः सरःश्रेष्ठं गङ्गामिव दिर्घाकसः ॥  
मुञ्जाः कापायिणश्चैके दीर्घश्मश्रुधराः परे । विरलैर्दशानैः केचिद्विपिटाक्षास्तथापरे ॥  
मृदसन्नुवराः केऽपि केकराक्षास्तथापरे । दीर्घकर्णा विकर्णाश्च कर्णश्च श्रुतितास्तथा ॥

दीर्घफाला विकफालाश्च स्नायुचर्मधगुंठिताः ।

निर्गतं खोदरं तेषां मुनीनां माचितात्मनाम् ॥ २ ॥

हृष्टा ते पुष्करं दीर्घं दीप्यमानं समेततः । दीर्घलोमान्तरण्याद्य तस्य तीरे व्यथस्थिताः ॥  
यालवित्थ्या महात्मानो ह्यश्मकुट्टास्तथापरे । दंतोलूखलिनश्चान्ये संप्रक्षालास्तथापरे  
धायुमक्षा जटाहाराः पर्णाहारास्तथापरे ।

नानानियमयुक्ताश्च तथा स्वंद्विष्टप्रायिनः ॥ ५ ॥

सरस्यस्मिन्मुखं दृष्ट्वा सुरूपास्याः क्षणादनु । किमेतदिति चित्वाथ निरीक्ष्य च परस्मान्  
अस्मिन्स्तीर्थे दर्शनेन मुखस्येह सुरूपता । मुखदर्शनमित्येव नाम वृत्त्या तु तापसाः ।  
स्नाता नियमयुक्ताश्चसुरूपास्ते तदा भवन् । देवपुत्रोपमा जाता अनीपम्यगुणान्विताः  
शोभमाना नरश्रेष्ठ स्थिताः सर्वे धनौकसः । यज्ञोपवीतमात्रेण व्यभजंस्तीर्थमंजसा ।

जुह्वतश्चाग्निहोत्राणि चक्रुश्च विविधाः क्रियाः ।

चित्तयंतो हि राजेंद्र तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ १० ॥

न यास्यामो परं तीर्थं ज्येष्ठभाचो त्विदं सरः । ज्येष्ठपुष्करमित्येवनाम चक्रुर्द्विजातयः  
तत्र कुञ्जान्यहन्द्दृष्ट्वा स्थितांस्तीर्थसमीपतः । बभूवुर्विस्मितास्तत्र जना ये च समागताः

वृत्त्या दानं द्विजातिभ्यो मांडानि विविधानि च ।

श्रुत्वा सरस्वतीं प्राचीं स्नातुकामां द्विजागताः ॥ ११ ॥

सरस्वती तीर्थधरा नानाद्विजगणैर्युता । यदरेगुदकाश्मर्यप्लुक्ताभ्यर्चयिमीतकैः ॥ १४ ॥  
पीलोमैश्च पलाशीश्च करीरेः पीलुमिस्तथा । सरस्वतीतीर्थं दृष्ट्वैर्धन्यैः स्पन्दनैस्तथा ।

कपित्थैः करपीरैश्च विष्ण्वैरात्रातकैस्तथा । भतिमुककपंडैश्च पारिजातैश्च शोभिना ॥

कदंबवनभूयिष्ठा सर्पसत्त्वमनोरमा । घाघ्यंबुफलपण्डैर्दंतोलूखलिकैरपि ॥ १७ ॥

तथाश्मकुट्टमुष्णैश्च परिष्ठैर्मुनिभिर्भृता । स्वाध्यायघोषसंबुद्धा मृगयूषशताकुला ॥

अर्हिसैर्धर्मपरमैस्तथा चातीव शोभिता । सुप्रभा कांचनालया च प्राची नंदापिशालका ॥

स्रोतोमिः पंचमिस्तत्र वर्तते पुष्करे नदी । पितामहस्य सदसि वर्तमाने महीतले ॥ २० ॥

चित्तने यज्ञघाटे तु स्वागतेषु द्विजादिषु । पुण्याहघोषैर्वितनैर्देवानां नियमैस्तथा ॥ २१ ॥

देवेषु चैव व्यप्रेषु तस्मिन्मयविधौ तथा । तत्र चैव महाराज क्षीक्षिते च पितामहे ॥

यजतस्तस्य सूत्रेण सयंकामसमृद्धिना । मनसा वित्तिना हार्या धर्मार्थकुशलास्तथा ॥

उपतिष्ठन्ति राजेंद्र द्विजातीस्तत्र तत्र ह । जगुश्च देवगंधर्वा ननुतुभ्यास्तोगताः ॥ २४ ॥

पादिश्रानि च दिव्यानि वादयामामुर्जसा ।

तस्य यज्ञस्य मंवरया ननुपुर्णपत्रा मपि ॥ २५ ॥

विस्मयं परमं जगुः किमु मानुषयोनयः । वर्तमाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे ॥

अद्भुतचूडयो मीष्म तदा तुष्टासरस्वतीम् । सुप्रभां नाम राजेंद्र नाम्ना चैव सरस्वतीम् ।  
ते दृष्ट्वा मुनयःसर्वे वेगयुक्तां सरस्वतीम् । पितामहं भासयन्तीं कर्तुं ते बहूमेनिरे ॥२८॥  
एवमेवा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करैषु सरस्वती । पितामहायै सम्भूता तुष्ट्यर्थं च मनीषिणा  
पुण्यस्य पुण्यताकारि पंचस्रोतासरस्वती ।

सुप्रभा नाम राजेंद्र नाम्नचैव सरस्वती ॥ ३० ॥

यत्र ते मुनयश्शान्ता नानास्थाध्यायधादिनः । ते समागत्य ऋण्यस्सस्मर्यैसरस्वतीम्  
सामिध्याता महामाना ऋषिभिःसत्रयाजिभिः । समास्थितादिशं पूर्वाभक्तिप्रीतामहान्  
प्राचीं पूर्णवहानाम्ना मुनिबंधा सरस्वती । इदमन्यन्नहाराज ! शृण्वाश्चर्षधरं भुवि  
क्षतो मंकणको धिप्रःकुशाम्रेणेतिनः धुत्तम् । क्षतात्किलकरेतस्य राजश्शाकरसोऽस्तव  
स वै शाकरसंहृष्टा हर्षाविष्टःप्रनृतयान् । ततस्तस्मिन्ननृत्ते तु स्थावरं जंगमं च यत्  
प्रानृत्यत जगत्सर्वं तेजसा तस्य मोहितम् । शक्रादिभिस्सुरै राजन्नृपिभिश्च तपोधनै  
धिश्नस्तैश्च वै ब्रह्मा नायं नृत्येस्तथा कुह । आदिष्टो ब्रह्मणा रद्ग भूपेर्यै नराधिप  
नायं नृत्येष्टथा भीम तथा त्वं वक्तुमर्हसि । गत्वा रद्गो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव  
भो भो विप्रर्षभ त्वं हि नृत्यसे केन हेतुना । नृत्यमानेन भवता जगत्सर्वं च नृत्य

तेनायं धारितः प्राह नृत्यन्वै मुनिसत्तमः॥

मुनिदवाध ।

किं न पश्यसि मे देव करच्छाकरसोऽस्तवत् ॥ ४० ॥

तं तु दृष्ट्वा प्रनृतोऽहं हर्षेण महतामृतः । तं ब्रह्मत्वाप्रवीदेधो मुनिं रागेन मोहितम्  
अहं न विस्मयं धिप्रं मच्छामीह प्रपश्य माम् । एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठो महादेवेन कौरव  
ध्यायमानस्तदा कोऽयं प्रतिविद्धोऽस्मि येन हि ।

अंगुल्यग्रेण राजेन्द्र स्पर्शगुप्तादितस्तथा ॥ ४३ ॥

ततो भस्मक्षताद्राजनिर्गतं हिमपांडुरम् । तद्दृष्ट्वा मीडितश्चासी प्राह तत्पादयोःप  
नान्यद्देवादहं मन्ये रक्षात्परतत्प्रहत् । चराचरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृन् ॥४४॥  
त्वया सृष्टिमिदं सर्वं धर्दंतीह मनीषिणः । त्वामेव सर्वं विशति पुनरेव युगशये ॥४५॥

देवैरपि न शक्यस्त्वं पश्चित्तुं मया कुतः ॥ त्वयि सर्वं च दृश्यते सुरा ब्रह्मादयोऽपि  
 सर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता च यः । त्वत्प्रसादात्सुराः सर्वे भवन्तीहाकुतोभय  
 एवंस्तुत्या महादेवमृषिश्च प्रणतोऽब्रवीत् । भगवंस्त्वत्प्रसादेन तपो न क्षीयते त्विदं  
 ततो देवः प्रीतमना स्तमृषिं पुनरब्रवीत् । तपस्ते वर्द्धतां विप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा ॥ ५३ ॥  
 प्राचीमेवेह घत्स्यामि त्वया सार्द्धमहंसदा । सरस्वती महापुण्या क्षेत्रे चास्मिन्निबिडो  
 न तस्य दुर्लभं किञ्चिदिहलोके परत्र च । सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ॥ ५४ ॥  
 प्राचीतटे जाप्यपरो न चेह त्रियते पुनः । ब्रह्मपतो वाजिमेघस्य फलमाप्स्यति पुष्कलं  
 नियमैश्चोपवासैश्च कर्शयन् देहमात्मनः । जलाहारो वायुभक्षः पर्णाहारश्च तापसः

तथा स्थण्डिलशायी च ये चान्ये नियमाः पृथक् ।

करोति यो द्विजश्रेष्ठो नियमांस्तान्यतानि च ॥ ५५ ॥

स याति शुद्धदेहश्च ब्रह्मणः परमं पदम् । तस्मिंस्तीर्थे तु यैर्दत्तं तिलमात्रं तु कांचनम्  
 मेरुदानसमं तत्स्यात्पुरा ब्राह्म प्रजापतिः । तस्मिंस्तीर्थे तु ये धातुं करिष्यन्ति हिमालया  
 एकविंशकुलोपेताः स्युर्गं यास्यन्ति ते नराः । पितॄणां च शुभं तीर्थं पिङ्गेनैवेन तर्पिताः  
 ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति स्युः पुत्रेणेह तारिताः । भूयश्चान्नं न चेच्छन्ति मोक्षमार्गं प्रवर्तन्ति ते  
 प्राचीनतथं सरस्वत्या यथाभूतं शृणुष्व तत् । सरस्वती पुरा प्रोक्ता देयैः सर्वैः सयासत  
 तटे त्वया प्रयातव्यं प्रतीच्यां लघणोद्धेः । घडयाग्निमिमं नीत्वा समुद्रे निक्षिपस्व  
 एयं एते सुराः सर्वे भवन्ति भयवर्जिताः । अन्यथा घडवाग्निस्तु दहते स्येन तेजसा  
 तस्माद्रक्षस्व विबुधा नेतस्मादचिराद्गयात् । मातेषु भव सुधोनि सुराणामभयपदा

एषमुक्ता तु सा देवी विष्णुना प्रमविष्टुना ।

ब्राह्म नार्हं स्यतं प्रास्मि पिता मे त्रियतां स्वराट् ॥ ६४ ॥

तदाज्ञाकारिणी नित्यं कुमारीह धृतव्रत । पित्रादेशादिना नार्हं पदमेकमपि क्वचिद्

गच्छामि तस्मात्कोऽप्यन्य उपायश्चित्यतामहो ।

तदाशयं विदित्वा दुस्ते समेत्य पितामहम् ॥ ६६ ॥

नान्येन शक्यते नेतुं घडवाग्निः पितामहः । मदृष्टदोषाम्मुक्त्येकां कुमारीं तनयां ॥ ६७ ॥

सरस्वती समानीय दृष्ट्वांके वरवर्णिनी । शिरस्याग्राय सन्नेहमुवाचाथ सरस्वतीम् ॥

मां च देवासुराः प्राहुः सत्यं ब्रूहि यशस्विनीम् ।

नीत्या विनिक्षिपेदेने वादयं लवणांशुनि ॥ ६६ ॥

पितुर्पापं हि तच्छ्रुत्वा पियुक्ता कुरो यथा । पित्रा तदैष सा कन्या रुद्रे दीनमानसा  
शोभने सन्मुखंतस्याः शोकपाप्यापिलेशणम् । सिर्नविकसितं तद्वत्पयं सोयकणोक्षितम्  
सप्तपाविधमालोक्य पितामहपुररसराः । पियुधाः शोकमायस्य सर्वैर्यशमुपागताः ॥  
संस्तभ्य हृदयं तस्याः शोकसंतापिनं तदा । पितामहस्तामुवाच मारोदीनांस्ति ते भयम्  
मानलामभ्य भविता तव देवानुभावतः । नीत्या क्षारोदमध्ये तु क्षिपस्य ज्वलनं सुते ॥

एवमुक्ता तु सा बाला वाष्पाकुलितलोचना ।

प्रणम्य पद्मजमानं गच्छाम्युक्तवती तु सा ॥ ७५ ॥

मामैरुक्ता पुनस्तैस्तु पित्रा चापि तथैष सा । त्यक्त्वा भयं हृष्टमनाः प्रयातुं समवस्थिता  
तस्याः प्रयाणसमये शंखदुन्दुभिनिस्थनीः । मंगलानां च निर्घोषैर्जगदापूरितं शुभैः ॥ ७७ ॥  
सितांबरपरा कन्या सितवदनमंडिता । शरद्भुजसच्छायातारहारविभूषिता ॥ ७८ ॥  
सम्पूर्णचंद्रप्रदना पद्मपत्रायतेक्षणा । शुभां कीर्तिं सुरेशस्य पूरयन्ती दिशोदश ॥ ७९ ॥  
स्यतेजसा तद्गुह्यपाग्निः सृता भासपद्मगतः । अनुमज्जन्ती तां गंगा तथोक्ता वरवर्णिनी ॥  
ब्रूयामि त्वां पुनरहं कुत्र यातासि मे सखि । एवमुक्ता तया गंगा प्रोधाथ मधुरागिरम्  
यदैवायास्यसि प्राचीं दिशं मां वश्यसे शुभे । विबुधैस्तयं परिवृता दर्शनं स्तव्यं संभवे  
उद्दह्मुर्ही तदा मृत्वा त्यज शोकं शुचिस्मिते ।

बहं चोदह्मुर्ही पुण्या त्वं तु प्राची सरस्वती ॥ ८३ ॥

सत्र ऋतुशतं पुण्यं ज्ञानदानेन सुवते । याददाने तथा नित्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ ८४ ॥  
ये करिष्यन्ति मनुजा विमुक्तास्त ऋणैस्त्रिभिः । मोक्षमार्गं गमिष्यन्ति विचारोनात्र विद्यते  
तामुवाच ततो गङ्गा पुनर्दर्शनमस्तु ते । गच्छ स्वमालयं मदे स्मर्तव्याहं त्वयानघे ॥

यमुनापि तथैवं सा गायत्री च मनोरमा ।

सावित्र्या सहिताः सर्वाः सखीं संप्रेषयंस्तथा ॥ ८७ ॥

ततो विसृज्य तान्देवाञ्चदीभूता सरस्वती । उत्तंकस्याश्रमपद उद्भूता सा मनस्विनी ।  
 अधस्तात्प्लक्षवृक्षस्य अवरोप्य च तां तनुम् । अयतीर्णामहाभागा देवानां पश्यतां तदा  
 विष्णुरूपस्तरुः सोऽत्र सर्वदेवैस्तु धन्दितः । संसेव्यश्चद्विजैर्नित्यं फलहेतोर्महोदयः ।  
 अनेकशाखाधिततश्चतुर्मुख इवापरः । तत्कोटरकुटीकोटिप्रविष्टानां द्विजन्मनाम् ॥ १॥  
 ध्रूयंते विविधा घाचः सुराणां रक्तचेतसाम् । घनस्पतिरपुष्पोऽपि पुष्पितश्चोपलक्ष्यते  
 जातीचम्पकघटपुष्पैः शाखालग्नैः शुक्रैः शुभैः । केतकीय बलाकामिर्योमत सग्विरा ।  
 कोकिलामिस्समालेय फेनकैःपुष्पितेय सा । हरेणेव यथा गङ्गा प्लक्षेणैव हि सा तथा  
 तत्राभस्था तदा देवं प्रोषाचाध जनार्दनम् । समर्पयस्व तं वह्नि देवादेशं करोम्यहम् ।  
 पद्ममुक्तेन सा तेन प्रत्युक्ता विष्णुना तदा ।

न ते दाहमयं त्याज्यस्त्वया यं वह्निराद् स्वयम् ॥ १६ ॥

पश्चिमं सागरं नेतुं पादवज्रपलनं शुभे । एवं क्रमेण गच्छंस्या तदापः प्राप्स्यते शुभे ।  
 ततस्तं शातकुम्भस्थं कृत्वाऽसौ घडपानलम् । समर्पयत गोविन्दः सरस्वत्या महोररे ।  
 सा तं गृहीत्वा सुभ्रोणी प्रतीच्यभिमुखी ययौ । अंतर्दानेन संप्राप्ता पुष्करं सा महानदी  
 मर्यादापर्वते तस्मिन्सम्भूता विमला सरित् । पुष्करारण्यं विपुलं सुरसिद्धनिषेवितम्  
 पितामहेन यत्रासीद्यज्ञसत्रं निषेधितम् । सिद्ध्यर्थं मुनिमुख्यानामागताऽसौ महानदी ।  
 येषु यत्र कृतो होमः कुंडेष्यासीद्विरिचिता ।

तानि सर्वाणि संप्लाय्य तोयेनाप्युद्धता हि सा ॥ २०२ ॥

तत्र क्षेत्रे महापुण्या पुष्करे सा तथोत्थिता । तेन तत्पूर्वं प्रोक्तं वायुनाजगदायुषा ।  
 सापि तत्क्षेत्रमासाद्य पुण्यं पुण्या महानदी । सरस्वतीस्थितादेयी मर्त्यानां पापनाशिनी  
 तत्र ये शुभकर्माणः पुष्करस्थां सरस्वतीम् । पश्यन्ति ते न पश्यन्ति सुधोरातामघोमतिम्  
 यः पुनस्तत्र भायेन नटस्नानं समाचरेत् । स ब्रह्मलोकमासाद्य ब्रह्मणा सद मोदते ।  
 यस्तुदधात्तत्र दधिप्राद्विषाया मनोरमम् । सोऽप्यग्निलोकमासाद्यमुंतेमोगान्तुरांमनत्र  
 परं प्रायणं योऽपि मनयाददाद्द्विजातये । सोऽपि सदस्त्रज्ञानस्य परं दरागुणंलभेत्

अपेष्टं कुंडे नटस्नात्वा यः संतर्पयते पितरः । - -

स तानुद्धरते सर्वाभरकादपि शुद्धीः ॥ २०६ ॥

क्षेत्रे पैतामहे पूते पुण्यां प्राप्य सरस्वतीम् । नरर्कं प्रार्थयेदन्यत्तीर्थं ब्रह्मसुतोऽब्रवीत्  
तस्मात्सर्वेषु तीर्थेषु स्नातः प्राप्नोति यत्फलम् ।

तत्सर्वं प्राप्नुयान्मर्त्यो ज्येष्ठकुण्डे सहस्रप्लुतः ॥ २११ ॥

किमत्र घृणोक्तेन क्षेत्रं तीर्थं गतिश्शुभा । येनैतत्त्रितयं प्राप्तं प्राप्ता तेन गतिः परा ॥  
काले क्षेत्रे तथा तीर्थे स्नात्वा ह्युरथापि तत्र यः । प्रयच्छते द्विजायार्थं सोऽनन्तसुखमश्नुते  
कार्तिके मासि शुक्ले च वैशाखे शशिभूषणे । चंद्रसूर्योपरामे च काले च कुदज्जंगले ॥  
क्षेत्रेष्वेतेषु तीर्थानि यान्युक्तानि मुनीश्वरैः । तेषां पुण्यतमं तीर्थमिदमाह पितामहः ॥

कुण्डे तु मध्यमे स्नात्वा कार्तिक्यां यः पुमान्द्विजे ।

प्रयच्छते चापि द्रव्यं सोऽभ्यर्च्य ममाप्नुयात् ॥ २१६ ॥

एवं कनिष्ठकेऽप्यत्र कुण्डे स्नात्वा समाधिना ।

यः प्रयच्छति विप्राय तुरुपामपि शालिकाम् ॥ २१७ ॥

स प्रयाति नरः क्षिप्रमग्निलोकं मनोरमम् । त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो भुंक्ते तत्र महाफलम् ॥  
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गमनाय मतिः स्थिरा । पुरुषेण तु कर्तव्या पुष्कराद्यास्तपे शुभा ॥  
पुष्करारण्यमासाद्य प्राची यत्र सरस्वती । मतिः स्मृतिः शुभा प्रज्ञा मेधा बुद्धिर्दया परा  
सरस्वत्यास्तु पर्यायाण्येते संप्रकीर्तिताः । ततः प्रभृति यत्रासौ प्राचीभूता सरस्वती ॥  
तत्र स्थं तज्जलं येऽपि पश्यन्ति तत्संस्थिताः । तेऽप्यभ्यर्च्य फलं लभन्ते नात्र संशयः ॥

योऽप्यतीर्थं पुनस्तत्र कश्चित्कृत्यान् समाधरेत् ।

नरः समाधियुक्तो वै ब्रह्मणोऽनुवरो भवेत् ॥ २२३ ॥

शाकादिनापि हि पितृन् यस्तत्रार्चयते नरः । सोऽप्येति विपुलान्मोक्षांस्तेषामेषानुभाघतः  
ये पुनर्विधिना तत्र श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः । ते नर्यन्ति पितृन् स्वर्गं नरकादपि दुःखदात् ॥  
तुष्यन्ति पितरस्तस्य यस्तत्र कुशमिश्रितम् । स्नात्वा प्रयच्छते तोयं पूतं तेषां तिलाग्नितम्  
तेऽपि तुष्टाः पुनस्तस्य प्रयच्छन्त्यमृतं फलम् ।

सर्वेषामेव तीर्थानामिदमेवाधिकं स्मृतम् ॥ २२७ ॥



आदितीर्यमिदं तस्मात्तीर्थानां भुवि विश्रुतम् ।

धर्मापवर्गयोः ग्रीडानिधिभूतमवस्थितम् ॥ २२८ ॥

सरस्वत्या पुनश्चैव समेतं गुणवत्तरम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां वतुर्नामपि दायकम् ।  
येऽप्यत्र मलनाशाय पुमांसो विविशुर्जलम् । गोप्रदानसमं तेषां सुखेनैव फलं भवेत् ।  
तुषर्णादानेन तममेवमाहुर्मनीषिणः । तर्पणादिपण्डितानाञ्च मरकेष्वपि मस्तिनः ।  
यगं प्रयान्ति विमरस्तत्र पुत्रेण तारिताः । पुष्करेऽपि सरस्वत्यां ये विपंति जलं हता  
ने गमन्तेऽक्षर्याहोषामग्र्यविश्वेशयंदिताम् ।

स्वर्गनिध्रेणिका भूता पुष्करे च सरस्वती ॥ २३३ ॥

सा पुण्यवद्विस्मं प्राप्नुं गुमिशङ्कया महानदी । मुनिमिधर्मतत्त्वज्ञैस्तत्र तत्र निरूपिता  
तस्मात्सर्वत्र सा देवी पवित्रा मयंकः स्थिता । पुष्करे तु विशीरेण पूता गूतना । हि सा  
तदी सरस्वती पुण्या दुर्लभा जगति स्थिता । दुर्लभा सा कुटुम्बे प्रमाणे पुष्करे तथा  
तनीयं नयनीयानां प्रथमं विहितं भुवि । धर्मायकाममोक्षाणां वतुर्नामपि साधकम्  
साक्षी सरस्वती प्राप्य योऽवर्त्तयति हि मार्गते । स कार्त्तव्यं समुत्सृज्य हास्य विनिमिषति  
उपेष्टे उपेष्टा प्रयागस्य मध्यमे मध्यमा मृता ।

प्रदक्षिणं ततो गच्छेत्कर्त्तव्यांश्च विचारणः ॥ २३६ ॥

त्रिपथ्येनेनैव स्नानीत कुर्याद्यापि प्रदक्षिणम् ।

प्रयच्छति विदुषो वस्त्रोप नेपां निद्रान्निवन् ॥ २४० ॥

येऽस्मिन्पुनः पुनस्तस्य प्रयच्छन्ति वस्त्रान्तरम् । यः स्नान्वाश्रयतो निर्वर्त्तनः परागिनामृत  
अनुमोमपि नो मांसां लोकाणां सप्तमस्तनीः । स्नान्वाश्रयतो निर्वर्त्तनो वस्त्रोप  
विच्छिन्ना विदुषो वस्त्रोप नेपां निद्रान्निवन् ॥ २४० ॥

कर्त्तव्यांश्च मध्यमे च नृनीयं लोहपुष्करम् ।

सुगन्धार्द्राणि च शुभप्रयत्नानि च ॥ २४४ ॥

यदादेव प्रमोक्षाणां नन्दनैर्गर्भं नः ।

दत्तव्यं सर्वदेवेदं सर्वं प्रदोष्यतेऽहम् ॥ २४९ ॥

प्रयतः संयतस्तस्यां स्नात्वा दद्याद्द्विजे शुभाम् ।

गामेकां मन्त्रपूर्तां ॥ लोकानाप्नोति सोऽक्षयान् ॥ २४६ ॥

अथ बहुनोक्तेन राज्ञायपि द्वि योऽर्थिने । अर्थं प्रयच्छते स्नात्वा सोऽनन्तं सुखमश्नुते  
दानं प्रशंसन्ति तिलानां मुनिसत्तमाः । कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं च विहितं सदा  
विषयात्रेण गुहेनावि पिण्डं योऽथ प्रयच्छति ।

पितृणां प्रयतो भूत्वा पितृलोकं स यच्छति ॥ २४६ ॥

पुष्करारण्यमासाद्य पुनस्तस्मात्सरस्वती ।

भन्तधामं गता गन्तुं प्रवृत्ता पश्चिमामुखी ॥ २५० ॥

तेदूरे ततस्तस्य पुष्करस्य सुशोभना । खजूरवनमासाद्य कलपुष्पोपशोभितम् ॥  
तेपित्वा पुनर्दधी घनै मुनिमनोरमे । सर्वर्तुकुसुमाकोर्णे सिद्धचारणसेविते ॥ २५२ ॥  
नामसरिच्छ्रेष्ठा त्रिषु लोकेषु विभृता । मीननक्रछपोपेता विमलोदकपूरिता ॥  
सूक्त उपाय ।

१ देवप्रभः प्राह किमन्यासा सचिद्रा । एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन्नांदाशब्दा सरस्वती ॥  
गभूता येन कृता कारणेन सचिद्रा । एवमुक्ते पुलस्त्यः स भीष्मायैतत्पुरातनम् ॥  
कपातुमुपचक्राम नन्दा नाम यतस्सृता । क्षत्रव्रतधरो नित्यमासीद्राजा प्रमज्जनः ॥  
[सोऽऽसीत् धृगान्हर्तुं घनै तस्मिन्महायलः । ॥ २४९ ॥ ततस्तस्मिन्मृगीगुल्मात्तरे स्थिताम्  
मार्गणेन सुतीक्ष्णेन सां विख्याप्य पुरोगताम् ।

सा यिलोक्य दिशः सर्वास्तं दृष्ट्वा शरणागताम् ॥ २५० ॥

आह किं ते कृतं मूढं त्वयैतत्कर्म पुष्करम् ।

स्तनं तापत्रयच्छामि सुतस्याधोमुखी स्थिता ॥ २५१ ॥

सलोमेन विद्वाहं सरसा ह्यकुतोभया । विवर्तं गुमवत्सं च गूढमैधुनमागतम् ॥ २६० ॥  
वंचितं मृगं राजब्रह्मपात्राद्भया श्रुतम् । स्तनं तु तनयस्यास्य प्रयच्छंती त्वयादृता  
यापोनाशनिबन्धेन निर्दोषा धनमागता ।

तस्मात्स्वमपि दुष्टं दे कृथादित्यमवाप्स्यसि ॥ २६२ ॥

घनेऽस्मिन्कण्टकाकीर्णे व्याघ्ररूपं त्वमाप्नुहि॥ शापप्रदानं ध्रुत्वैवं स राजा पुरतः  
 प्रोधाच प्राञ्जलिभूत्वा तां मृगां व्यचिन्तयिष्यति॥ स्तनं तु तनयस्येह प्रयच्छतीति मे म  
 वक्षानेन हता भद्रे प्रसीद सुसमाधिना । व्याघ्ररूपमहं त्यक्त्वा प्राप्स्यामि मानुषं ।  
 एवंविधस्य शापस्य विमोक्षं शंस मे मृगि । एधमुक्ते मृगी तस्य प्रोधाच घनं शुभं  
 राजभ्रष्टशतांते तु शापस्यागतया गवा । नन्दया सह संवादमासाद्यतो मविष्यति  
 मृग्योक्ते घघने राजा व्याघ्र पयामवसत्तदा । नलदंष्ट्रायुधोपेतो व्याघ्ररूपोऽतिभीषण  
 तत्रासीत् मक्षयन्तामस्तेमृगान्हतया चतुष्पदः । द्विपदानपि तत्रस्थान्कालेन क्रमयोजित  
 एवं तत्र घने तस्य संघरसरशनं गतम् । आरमाणं निन्दमानस्य मृगमांसानि खादन्  
 कदाहं मानुषं भाषं गमिष्यामीदृशं पुनः । कुःसितं न करिष्यामि दियोनिकरणं ॥  
 कुर्यता मांसलोभेन मृगयां परिधायता । शापदःसहितं प्राशं मानुषाणां मयावह  
 दर्शनं दुःखदं मह्यं मृगाणां मानुषैः सह । पापेन वापशं नीतो हपापेऽपि सतां दुः

उत्पन्नो विहृतिं नीतः पश्य कालस्य पर्ययम् ।

तन्मागमे सुहृत् नान्ति हिंसाप्येकं विगर्हिता ॥ २३४ ॥

तथा तु प्राप्यते दुःखं न च मोक्षो मविष्यति ।

कथं मे मयिना मोक्षः कथं सत्या मृगां मयेन ॥ २३५ ॥

घने वर्षशते तस्य घसनस्तदने तदा । भावानं गोकुलं काले पयसोद्वहवापन  
 गोपाटपाटोत्संभानं तत्र नमवस्थितम् । घनोदकगटे मंथानायेनाभूतिं च घन  
 क्षीदिर्गोविःसमार्चार्चं पादवीरवि तद्वनम् । निशि वंशरघोरेण गोपीनां च शुभ्रवस्त्र  
 एवं तु घसनस्तस्य नर्तनंवनमंसि । इषा तुष्टा च पुष्टा च मंश ये नाम तद्वन

गोनन्दनस्य सा मुक्ता हंसवर्णा घटयथा ।

दीर्घायोना विमलवर्णा वंशुर्गोपी हनुष्यया ॥ २३६ ॥

वैदिकस्य शुभ्रवस्त्रा घटयती मयूखवता । सा च युद्धस्य सर्वेभ्यः पुत्राभ्यां निन्द  
 शासनशानं घनोदनेन समीक्षा च यथाशुभम् । यथेष्टकामा शुर्गोनादुर्गं घाति ये हन्  
 ऐर्दिनां वनं तत्राहं पश्यन्तः सन्निवसन्ते । घनेष्वहं दृष्ट्वा मृगस्य विवेकिनः ॥ २३७ ॥

स्य पूर्वोत्तरे भागे घोरे तृणसमाकुले । संकटे विप्रे दुर्गे भैरवे लोमहर्षणे ॥ २८४ ॥  
गसिद्धसमाकीर्णे बहुश्चापदसेविते । षष्ठीवृक्षादिगह्वरे शिवाशतनिनादिते ॥ २८५ ॥  
गोऽस्मिन्यसते रौद्रः कामरूपी मयंकरः । द्वीपी शोणितदिग्धांसो घोरदंष्ट्रो नलायुधः  
दो नाम स धर्मात्मा स च गोपीहिते स्तः । अञ्छिन्नाग्रैस्तृणैर्दोर्वर्गोर्धनं परिरक्षति  
स्य यूथपरिघ्रासा सा नन्दा तृणलिप्सया । चरन्ती व्याघ्रपुस्तः सा धेनुः प्रत्युपस्थिता  
अभ्यद्रवच्च तां द्वीपी तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

त्यमघ विहितो भक्षः स्वयं प्राप्तासि धेनुके ॥ २८६ ॥

तिपिनद्ध धत्तः श्रुत्या तिष्ठुरं रोमहर्षणम् । शुद्धकृपाजितं बालं भद्रमिदुसमप्रभम् ॥  
त्वं स्मरति सा धेनुः स्नेहाका गद्गदाक्षरम् । दहन्ती पुत्रशोकेन नन्दा सा पुत्रवत्सला  
दहन्ती कदणं चैव निराशा पुत्रदर्शने । द्वीपी दृष्ट्वा तु तां धेनुं मन्दमानां सुदुःखिताम् ।  
इयाव पवर्तं घोरं धेनुके किं प्रकृते । देवात्सुखोपपन्नासि भक्षस्त्वं मे यद्वच्छया ॥

हन्त्या वा हसन्त्या वा तवाप्तं जीवितं भवेत् ।

विहितं भुज्यते लोके स्वयं प्राप्तासि धेनुके ॥ २८७ ॥

मृत्युस्ते विहितोऽद्यैव कृपा किमनुशोचसि ।

यप्रच्छ तां पुनर्द्वीपी किमर्थं ददितं त्वया ॥ २८८ ॥

कौतुकं चात्र मे जातं मह्यमे कथयस्व वै । व्याघ्रस्य धत्तं श्रुत्या नन्दाघातमथाश्रयात्  
क्षंतुमर्हसि मे नाथ कामरूपिनमोऽस्तुते । त्वां समासाय लोकस्य परित्राणं न विद्यते  
जीयितार्थं न शोचामि प्राप्तव्यं मरणं मया । जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्य च  
तस्मात्परिहार्योऽर्थं न शोचामि मृगाधिप । देवैरपि यथा सर्वैर्मर्त्यव्यमघरीर्धुषम् ॥ २८९ ॥

तस्मात्तु नाहमेवैका व्याघ्र शोचामि जीयितम् ।

किंतु स्नेहेन वै साधो दुःखेन ददितं मया ॥ २९० ॥

अस्ति मे हृदि संतापस्तं ॥ त्वं भोतुमर्हसि । प्रथमे ययसि प्राप्ते प्रसूताऽहं मृगाधिप ॥  
इष्टः प्रथमजातश्च सुतस्तु मम बालकः । क्षीरपायी च मे यत्सस्तृणं नादायि जिघ्रति  
स च गोपकुले पदः क्षुधार्तो मामवेक्षते । त्वमहं चानुशोचामि कथं जीयिष्यते सुतः ॥



तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः । सखदत्त्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति  
 तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः । यस्तच्चनर्हान्वलीवर्दान्विषमे धाहयेत्पुमान् ॥  
 कथायां कथ्यमानायां धिष्णं कारयते तु यः । तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः  
 गृहे यस्यागतं मित्रं निराशं प्रतिगच्छति । तस्य पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 इत्येतैः पातकैर्घोरैरातमिष्यम्यहं पुनः । बुद्ध्या संप्रत्ययं द्वीपी पुनर्वचनमप्रधीत् ॥  
 व्याघ्र उवाच ।

संजातः प्रत्ययोऽस्माकं शपथैर्धनुके तप । कदाचिन्मन्यसे गत्वा मूर्खोऽयं वञ्चिता मया  
 अत्रापि केचिद्ब्रूयन्ति शपथे नास्ति पातकम् । कामिनीषु विवाहेषु गर्वामुक्तौ तथैव च  
 प्राणत्यागे समुत्पन्ने भ्रष्टातन्यं न च स्वया ।

लोकेऽस्मिन्नास्तिकाः केचिमूर्खाः पंडितमामिनः ॥ ३३० ॥

भ्रामयिष्यन्ति ते चित्रं चक्राकृद्भिव क्षणात् । कुतर्कहेतुवृत्तांतेष्वानावृतचेतसः ॥ ३३१ ॥  
 मोहयन्ति नराः क्षुद्रा मागमार्थविशारदाः । भक्तध्यान्यपि तथ्यानि दर्शयन्त्यतिपेशलाः ॥  
 स मे निम्नोन्नतानीषचित्रकर्मविदोजनाः । प्रायःकृतार्थो लोकोऽयं मन्यतेनोपकारिणम्  
 परसः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्वजतिमातरम् । न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन्कृते प्रतिकरोति यः  
 सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते ।

अपिदेवासुरजरैः शपथाः कार्यसिद्धये ॥ ३३५ ॥

कृताः परस्परं पूर्वं तान्न मन्यामहे वयम् । सत्येनापि शपेयस्तु देवाग्निगुरस्तनिधी ॥  
 तस्य वैषस्यतो राजा धर्मस्यादं निहृणति । मा ते बुद्धिर्मेवेदेवं शपथैरेव वञ्चितः ॥  
 त्वयैव दर्शितं सर्वं यत्प्रेष्टं कुरु सांप्रतम् ।

तंदोवाच ।

एषमेव महासाधो कस्त्वां वञ्चयितुं क्षमः ॥ ३३८ ॥

मात्मेव वञ्चितस्तेन यः परं वञ्चयिष्यति ।

द्वीप्युवाच ।

धेनुके पश्य गच्छ त्वं पुत्रकं पुत्रघत्सले ॥ ३३९ ॥

पाययित्वा स्तनं घत्समवल्लिह्य च मूर्द्धनि । मातरं भ्रातरं दृष्ट्वा सखीस्वजनशोधवान् ।  
 सत्यमेवाग्रतः कृत्वा शीघ्रमागमनं कुरु । एवं सा शपथं कृत्वा धेनुर्वै सत्यवादिनी ।  
 अनुज्ञाता मृगेंद्रेण प्रयाता पुत्रवत्सला । मधुपूर्णमुखी दीना चेपमाना सुदुःखिता ।  
 हुंभारवं प्रमुंचंती पतिता शोकसागरे । करीव चरणग्राहं गृहीतः सलिलाशये ॥ ३४३ ॥  
 अशक्ता स्वपरित्राणे विलपंती मुहुर्मूढः ।

सा तत्र गोकुलं प्राप्ता हरिन्निद्यास्तटे स्थिताम् ॥ ३४४ ॥

श्रुत्वा घत्सं तु कोशतं पर्यधावत संमुखी । उपसृप्य च तं यालं चाप्यपर्याकुलेक्षणम् ।  
 संप्राप्य मातरं घत्सःशंकितःपरिपृच्छति । न ते पश्याम्यहं स्वास्थ्यं धैर्यं नैवाद्य लक्ष्णे  
 उल्लिप्ता चापि ते दृष्टिर्भोता चातीव लक्ष्यसे ।

नन्दोवाच ।

पिय पुत्र स्तनं मेऽद्य कारणं यदि पृच्छसि ॥ ३४७ ॥

अशक्ताहं तयाख्यातुं कुरु तृप्तिं यथेप्सिताम् । अपश्चिमं तु ते पुत्र दुर्लभं मातृशोकम् ।  
 एकाहमद्य मे पीत्या प्रभाते कस्य पास्यसि । त्वां त्यक्त्वा पुत्रगत्यं शपथैरागता ह्वय  
 धुत्क्षामस्य च व्याघ्रस्य दातव्यमात्मजीवितम् ।

नन्दायाश्च घचः श्रुत्वा घत्सो घचनमप्रवीत् ॥ ३५० ॥

घत्स उवाच ।

तद् तत्र गमिष्यामि यत्र त्वं गंतुमिच्छसि । श्लाघ्यंममापि मरणं त्यया सह न संशयः  
 काकिनापि मर्तव्यंमयार्तेन त्यया विना । यदि मांसंहितं मातृवने व्याघ्रो हनिष्यति  
 गतिर्मातृभक्तानां ध्रुवं सा मे भविष्यति । तस्मादवश्यंयास्यामि त्यया सह न संशयः  
 यथा तिष्ठ मातृस्त्वं शपथाः संतु ते मम । जनन्या खे विमुक्तस्यजीवितेर्किं प्रयोजनम्  
 नाथस्यघनेनित्यं कोमे नाथोभविष्यति । नास्तिमातृसमोयन्धुर्बालानांश्रीरजीविनाम्  
 नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृसमा गतिः ।

नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसमंसुखम् ॥ ३५६ ॥

स्ति मातृसमो देव इह लोके परत्र च । एवं वै परमोधर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ॥

ये तिष्ठन्ति सदा पुत्रास्ते यांति परमां गतिम् ।

नन्दोवाच ।

ममैष विहितो मृत्युर्नित्यं पुत्रागमिष्यति ॥ ३५८ ॥

[ चायमन्यजीवानां मृत्युः स्यादन्यमृत्युना । अपश्चिममिममपुत्र मातृसंदेशमुत्तमम् ॥

। प्रातिष्ठस्य मद्वाक्यात्ततः शुश्रूषणं पुनः । जले स्थले च विचरन्प्रमादं तात मा कुरु ॥

। मादात्सर्वभूतानि चिनश्नन्ति न संशयः । न ॥ लोभेनवर्तय्यविषमस्थं कृणुं क्वचित् ॥

। तेमाद्विनाशः सर्वेषामिहलोके परत्र च । समुद्रमटवीं पुत्र विनांति लोभमोहिताः ॥

लोभात्कार्यमत्युग्रं विद्वानपि समाचरेत् ।

लोभात्प्रमादाद्विस्त्रंभात्त्रिभिर्नांशोभयेन्नृणाम् ॥ ३६३ ॥

। त्माहोमं न कुर्यात् न प्रमादं न विभ्यसेत् । मातमा हि सततं पुत्र रक्षितव्यः प्रयत्नतः

। तर्क्यः भ्रातृदेभ्यश्च भ्लेच्छचोरादिसंभटात् । तिरस्त्रां पापघोनीनामेकत्र वसतामपि

येपरीतानि विस्तानि पिशाप्यन्ते न पुत्रकः । नखीनां च नदीनां च मृद्गिणां शस्त्रधारिणाम्

न विस्वासस्तथा कार्यः स्त्रीणां प्रेप्यजनस्य च ।

न विश्यसेद्विश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ॥ ३६७ ॥

विश्वासाद्गुणमुत्पन्नं मूलमपि निरुज्जति ।

॥ विश्वसेत्स्वदेहेऽपि यलिष्ठे भीतचेतसि ॥ ३६८ ॥

। शन्यन्ति गूढमत्पथं सुप्तं मत्तं प्रमादतः । गन्धः सर्वत्र सततमाघातव्यः प्रयत्नतः ॥ ३६९ ॥

। गन्धः पर्यन्ति गन्धेन राजानभ्रातृवभ्रुवा । नैकस्तिष्ठेद्भूते घोरे धर्ममेकं च चिन्तयेत् ॥

। न चोद्वेगस्तथाकार्यः सर्वस्य मरणधुपम् । यथाहिपथिकः कश्चिप्यापामाधिरय तिष्ठति

विभ्रम्य च पुनर्याति तद्भुभूतसमागमः । पुत्र नित्यं जगत्सर्वं तत्रैकः शोचसे कथम् ॥

तापस्यं शोकमुत्सृज्य मद्वाक्यमनुपालय ।

शिरस्याधाय तं पुत्रमवल्लिह्य च मूर्धनि ॥ ३७३ ॥

। शोकेन महतापिष्टा वाष्पज्वाकुलहोचना । विनिःश्वसन्ती नागीष दान्यमुत्पन्नं मुद्गमुद्गुः ॥

। पुत्रहीनं जगत्सर्वं प्रदर्यतीव साऽमयन् । महार्पकनिमग्नेव तिष्ठन्ती चापसादनी ॥



विलप्य नन्दिनीपुत्रमुवाचेदं पुनर्वचः । नास्ति पुत्रसमः स्नेहो नास्ति पुत्रसमं सुखम् ।  
नास्ति पुत्रसमा प्रीतिर्नास्ति पुत्रसमागतिः । अपुत्रस्य जगच्छून्यमपुत्रस्य शृङ्गेऽसुखम्  
पुत्रेण लभते लोकमपुत्रो नरकं व्रजेत् । लोको घटति धाक्यानि चन्दनं बिलं शीतलम्  
पुत्रगात्रपरिष्वङ्गश्चन्दनादतिशीतलः । इति पुत्रगुणानुक्त्वा निरीक्ष्य च पुनः पुनः ॥ ३४॥

स्थमातरं सखीर्गोपीस्त्वय्यमाणा च पृच्छति ।

यूथस्याग्रे चरंतीं मामाससाद् मृगाधिपः ॥ ३८० ॥

मुक्ताऽहं तेन शपथैः पुनर्यास्यामि तत्र वै । सुतं च मातरं चैव सखीर्द्रुं च गोशुलम्  
आगता सत्यवाकेन पुनर्यास्यामि तत्र वै । मातः क्षमस्य तत्सर्वं दूरीः शील्यादि कृतं मम  
पालस्तथायं दौहित्रः किमत्रान्यदुग्र्वाम्यहम् । विपुले चंपके मातर्मन्द्रे सुरभि माविति ।  
यसुधारे प्रियानन्दे महानन्दे घटद्वये । आज्ञानाज्ज्ञानतो धापि यदुत्तं किञ्चिदपि ॥

तत्क्षमध्वम्महाभागा यद्यान्यच्च कृतं मया ।

सर्वाःसर्वगुणोपेताः सर्वा लोकस्य मातरः ॥ ३८५ ॥

सर्वाःसर्वप्रदा नित्यं रक्षध्वं मम पालकम् । अनायं विकलं दीनं रक्षध्वं मम पुत्रम्  
मातृशोकामिसंततं भगिन्यःपालयिष्यथ । भगिनीनामयं पुत्रो हार्पितस्त्वसुतो मया ।

पात्यो पालश्च सर्वाभिः पोष्यः पात्यश्च पुत्रवत् ।

तस्मादनायमयलं पुत्रवत्पालयिष्यथ ॥ ३८८ ॥

क्षमध्वं च महाभागा यास्येऽहं सत्यसंभ्रया । न वितामहती कार्या सखीमिध्वकथं  
प्रथमस्यास्य जातस्य स्थितं मरणमप्रतः । धृत्या तु मन्दावचनं माता सख्यश्चदुःस्थितः  
विषादं परमं अगमुदिमूधुश्च विस्मिताः । बहोऽत्र महदाश्चयं यद्व्याघ्रपवनं ॥ ३९० ॥  
प्रपतन्मुपतं भीमं नन्दा त्वं सत्यवादिनी । शपथैः सत्यवाक्येन धञ्चयित्वा महामयम् ।  
नारानीयं प्रयत्नेन न गंतव्यं कथंचन । नन्दे न चैव गंतव्यमधर्मं क्रियते त्वया ॥ ३९१ ॥

यदुपालं स्वसुतं त्यक्त्वा सत्यलोभेन गम्यते ।

अत्र गाथा पुराप्रोक्ता ऋषिभिर्दत्तवादिभिः ॥ ३९४ ॥

समुत्पन्ने रूपयैर्नास्ति पातकम् । उक्त्वाऽनृतं मधेयत्र प्राणिनां प्राणतत्त्वम्

अनृतं तत्र सत्यं स्यात्सत्यमप्यनृतं भवेत् । कामिनीषु विवाहेषु गणां मुक्तौ तथैव च  
प्राज्ञानां विपत्तौ ॥ शपथैर्नास्ति पातकम् ।

नंदोवाच ।

परेयां प्राणरक्षार्थं वदाम्येवानृतं वचः ॥ ३६७ ॥

नाहमर्थमुत्सहे वक्तुं जीवितार्थं कथंचन । एकः संश्लिष्यते गर्भे मरणे मरणे तथा ॥  
भुंक्ते चैकः सुखं दुःखमृतः सत्यं वदाम्यहम् । सत्येप्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्येप्रतिष्ठितः  
उदधिस्तत्पयाकथेन मर्यादा न विलंघ्यते । चिप्पये पृथिवीं इत्त्वावलिः पातालमाश्रितः  
उद्यतापिबलिर्वन्दः सत्यपाकथं ॥ चात्यजत् । प्रवर्धमानः शैलेन्द्रः शतःशृङ्गः समुत्थितः  
सत्येन संस्थितो विंध्यः प्रपन्धं नातिवर्तते ।

स्वर्गापवर्गानरकाः सत्यवाचि प्रतिष्ठिताः ॥ ४०२ ॥

यस्तु लोपयते वाचमशेषं तेन लोपितम् । योऽन्यथा संतमात्रमानमन्यथा प्रतिवचते ॥  
किंतेन न कृतं पापं धोरेणात्मापहारिणः । वास्यामिनरकं धोरेबिलोप्यारमानमात्मना  
तस्य वैमरुतो राजा धर्मस्यार्थं निहंसति । अगाधे सलिले शुद्धे सत्यवर्गार्थं क्षमाह्वे ॥

स्नात्वा पापयिनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ।

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।

अश्वमेधसहस्रादि सत्यमेव विशिष्यते ॥ ४०६ ॥

सत्यं साधुफलं धृतं च परमे ह्येवादिभिर्वर्जितं,

साधूनां निकटं सतां कुलधनं सर्वाधराणां फलम् ।

स्थाधीनं च सुदुर्लभं च जगतस्साधारणं भूयः ;

यम्लेच्छोऽप्यभिघार्य गच्छति दिवं तस्यज्यते वा कथम् ॥ ४०७ ॥

सद्य ऊचुः ।

नंदे सा त्वं नमस्कार्यासर्वैरपिपुण्यसुरैः । यात्वं परमसत्त्वेन प्राणांस्त्यजसिदुस्त्यजान्  
धूमःकिं तत्र कल्याणि या त्वंधर्मधुरंधरा । त्यागेनानेन न प्राप्यं त्रैलोक्येयस्तुकिंचन  
अविद्योगज्ञपद्यामस्त्यागादस्मान्मुनेर्नहि । भार्याःकल्याणविज्ञायानापदःसंतिकुत्रचिन्

दृष्ट्वागोपीजनं सर्वं परिक्रम्य च गोकुलम् । नन्दा संप्रस्थिता देवान्पृक्षांश्चापृच्छत्सापुन  
 शितिं घटनमग्निं च धायुं चापि निशाकरम् । दश दिग्देवता धृक्षान्नक्षत्राणि प्रदत्तः स  
 सर्पान्निशापयामास प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः । ये सञ्चिता घने सिद्धाः सर्वाश्च घनदेवताः ।

घने चरन्तं च तृणं ते रक्षन्तु सुतं मम ।

चंपकाशोकपुन्नागास्सरलाङ्गुनकिशुकाः ॥ ४१४ ॥

पृथ्व्यंतु पादपाः सर्वे संदेशं मम पिङ्गवम् । घटसमेकाकिनं क्षीनं चरन्तं विगमे घने ।  
 रक्षन्तु घटसकं बालं स्नेहात्पुत्रमिषोरसम् । मायापित्राधिहीनं च भर्तार्य क्षीनमानम्  
 पिचरन्तमिमां भूमिं क्रंदमानं सुदुःखिनम् । तस्येह क्रंदमानस्य मत्पुत्रस्य महायवे ।  
 महारोकाभिभूतस्य क्षुब्धवशासानुरस्य च । शृङ्गम्यैकाकिनः सर्वे जगद्वृक्षस्य प्रारण  
 यरमाणस्य कर्तव्यं सानुक्रोशस्तु रक्षणम् । मन्दिश्य नन्दा प्रीत्यर्थं पुत्रस्नेहपरां गता ।  
 गोकाग्रिना च सन्दीप्ता विच्छिन्ना पुत्रदर्शने । वियुक्ता यत्रवाकीय लतेषु पतितागो  
 मन्त्रेण दृष्टिरहिता प्रमथन्ती पदे पदे । भगच्छत्सापुनस्तत्र यत्रासीं निशिवासात् ।

भास्ने विस्फूर्जितमुलम्नीधनर्षी भयावहः ।

नायसस्याःसुतो यस्म ऊर्ध्व्यपुच्छोऽतिवेगवान् ॥ ४२२ ॥

भाग्यवानासुराग्नेर्मां मृगेंद्रस्याग्रतोऽभवत् । भागनं तु सुतं दृष्ट्वा मृष्युं तमग्रतः स्थितम्  
 त्वाम् दृष्ट्वा तु सा धेनुर्दिं वचनमब्रवीत् । मो भो मृगेंद्रागताहं सत्यधर्मग्रते स्थित  
 दृष्ट्वा नृनि यथाकाममस्मद्भांमेव नाग्रतम् । मन्त्रायस्व भूतानि विव त्वं शोचिर्न ह्य  
 मृतायां तु मयि त्वं भो भक्षयेमं तु बाणकम् ।

क्षीयुषाव ।

स्वागतं तत्र कण्वाणि धेनुके सत्यवादिनि ॥ ४२१ ॥

दि सत्यवतां विचित्राणाम् भवति हविन् । त्वयोक्तं धेनुके त्वं सत्यं प्रत्यागच्छेत्  
 त्वं मे कौतुहं शत्रं प्राप्तागच्छेत्कर्तुम् । तत्र सत्यवतांशुर्न्येनेति मया पुनः ।

सत्यया सां सत्यस्यार्जुनी वासयते कथम् ।

एव न कौतुहं शत्रं सत्यस्यार्जुनी मम ॥ ४२३ ॥

तस्मादनेन सत्येन मुक्तऽसि च भयाघुना । भगिनी भवती मह्यं भागिनेयः सुतस्तव ॥  
दत्तोपदेशस्य शुभे मम पापिष्ठकर्मणः । सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः  
सत्येन गौः क्षीरधारं प्रमुंचति दधिः प्रियाम् ।

॥ धै धन्यतमो गोपो यस्त्वेतर्क्षारेण जीवति ॥ ४३२ ॥

भूमिप्रदेशा धन्यास्ते सगृणावीर्यः शुभे । ते धन्याश्च कृतार्थाश्च तैरेव सुदृतं कृतम् ॥  
तैरातं जन्मनः सारं ये विप्रंति पयस्तप । सृगेन्द्रः प्रणयं तन्या विस्मयं परमं शतः ॥  
प्रत्यादेशोऽयमस्माकं सत्यं देवैः प्रदर्शितः ।

सत्यमिष्टं गघो दृष्ट्वा ॥ मे पाश्यास्ति जीवितम् ॥ ४३५ ॥

सत्करिष्याम्यहं कर्म येन मुच्येय किल्बिषात् । मया जीवसहस्राणि भक्षितानि शतानि च  
गतिं कामिहगच्छामि दृष्ट्वा गोः सत्यमीदृशम् । महं पापो दुराचारी नृशंसोजीवघातकः  
कास्तुलोकान्गमिष्यामि कृत्वा कर्म सुदारुणम् ।

गमिष्ये पुण्यतीर्णानि करिष्ये पापशोधनम् ॥ ४३८ ॥

पतिष्ये गिरिमारहा प्रवेक्ष्ये पा हुताशनम् । धेनोऽद्य यमया कार्यं तपः पापाद्विशुद्धये  
तदा दिशस्य संक्षेपान्न कालो विस्तरस्य तु ।

धेनुस्याच ।

तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानमेव च ॥ ४४० ॥

ब्राह्मे यज्ञमित्याहुर्दानमेकं कलौ युगे । सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम् ॥ ४४१ ॥  
भमयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम् । वरावराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति ॥  
स च सर्वभयान्मुक्तः परं प्रह्लाधिगच्छति । नास्त्यहिंसासमं दानं नास्त्यहिंसासमं तपः  
यथा हस्तिपदेऽन्यत्पदं सर्वं प्रलीयते । सर्वे धर्मास्तथा व्याघ्रे प्रलीयन्ते ह्यहिंसया ॥  
योगवृक्षस्य छायाया तापत्रयविनाशिनी । धर्मज्ञाने च पुण्याणि स्वर्गमोक्षौ कलानि च  
दुःखत्रयामिततस्य छाया योगतरोः स्मृता । न बाध्यते पुनर्दुःखैः प्राप्य निर्वाणमुत्तमम्  
इत्येतत्परमं श्रेयः कीर्तितं ते समासतः ।

ज्ञातं चैव त्वया सर्वं केवलं मां तु पृच्छसि ॥ ४४७ ॥

द्वीप्युवाच ।

अहं मृग्या पुरा शतो व्याघ्ररूपेण संस्थितः । ततः प्राणिबधात् सर्वमशेरं मम विस्मृतम् ।  
त्वत्संपर्कोपदेशाम्यां संजातं स्मरणं मम । त्वंचाप्यनेन सत्येन गमिष्यसि पतं गतिम् ।  
तदहं त्वां पुनः पृच्छे प्रश्नमेकं हृदि स्थितम् । साग्रं वर्णयितुं ज्ञानं चित्तयानस्य मे शुने  
भयत्या भाग्ययोगेन कदाचित् स्वर्गशोभने । कृतं धर्मस्य संस्थानं सतां मार्गं प्रतिष्ठितम्  
किं तेऽभिधानं कल्याणि ब्रूहि मेऽस्य सुव्रते ।

नंदोवाच ।

मम नंदेति संज्ञा तु कृता नंदेन स्वामिना ॥ ४५२ ॥

सांप्रतं भक्षयामीति ह्यतिष्ठः केन हेतुना । नंदेति श्रुत्वा तन्नाममुक्तश्रापप्रमंजनः ॥ ४५३ ॥  
पुनर्नृपत्यमापन्नो बलरूपसमन्वितः । एतस्मिन्नंतरे धर्मस्तो ज्ञात्वा सत्यवादिनीम् ।  
ब्रह्मं समागतस्तत्र प्राप्स्यीद्य पयस्विनीम् । तत्र सत्यव्रतादृष्टो धर्मोऽहमिह बागतः ।  
नंदे वृणीष्व भद्रं ते वरं वरतमं हि यत् । पयमुक्ता हि सा देवी नंदा तं प्रार्थयद्ब्रह्म ।  
तयानुभावात्ससुता गच्छामि पदमुत्तमम् । भवेदिदं शुभं तीर्थं मुनीनां धर्मदायकम् ।  
मन्नाम्ना च सरिदियं नंदा नाम सरस्वती । धरप्रदानाद्देवेश तदेतत्प्रार्थितं मया ॥ ४५४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

सा तत्क्षणाद्गता देवी स्थानं सत्यवतां शुभम् ।

प्रमंजनोऽपि तद्राज्यं संप्राप्तः प्रागुपार्जितम् ॥ ४५५ ॥

नंदा येन गता स्वर्गं नंदां प्राप्य सरस्वतीम् ।

तेनाख्यया बुधैस्तस्याः प्रोक्ता नंदा सरस्वती ॥ ४५६ ॥

सरस्वती पुनस्तस्माद्भनात्त्वज्जरसंज्ञितात् । दक्षिणेन पुनर्याता त्वाचयंती धरातलम् ।  
बागच्छन्नपि यस्तस्या नाम गृह्णाति मानवः । जीयन्सुखं स आप्नोति मृतो भयति त्वेवम् ।  
मत्र ये शुभकर्माणस्त्यजंति स्वां तनुं नराः ॥ ते विद्याधरराजानो भवंति सुप्तिनोजनाः ।  
नराणां स्वर्गनिःश्रेणीस्नानात्पानात्सरस्वती ।  
तत्र स्नानं प्रकुर्वन्ति येऽष्टम्यां सुसमाहिताः ॥ ४५७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ] \* श्रृण्विमिर्यज्ञोपवीतैः पुष्करस्य तीर्थविभागकरणम् \* १७५

ते मृताः स्पर्शमास्तात्र मोदन्ति सुमनोरमाः । सरस्वती सदा स्त्रीणां तत्र सौभाग्यदायिका  
उपोषिता तृतीयायामपि सौभाग्यभाजना । तत्र तद्दर्शनेनापि मुच्यते पापसंचयात् ॥  
सृष्टांति ये नराः केचित्तेऽपित्रेया मुनीश्वराः । रजतस्य प्रदानेन रूपवाञ्छायते नराः ॥  
पुण्यापुण्यजलोपेता नदीयं प्रलयः सुता । नंदानामेति पिपुला प्रवृत्ता दक्षिणामुखी ॥  
गत्वा ततो नातिदूरं पुनर्याता पराङ्मुखी । ततः प्रवृत्ति सादेर्या प्रसमप्रकटास्थिता ॥  
तस्यास्तदेषु पुण्येषु तीर्थान्यायतनानि च । संसेवितानि मुनिभिः सिद्धैश्चापि समंततः ॥  
तेषु सर्वेषु भवति धर्मं हेतुस्सरस्वती । स्नानात्पानात्प्रदानाद्वाहिरण्यस्य महानदी ॥  
दादकक्षितिर्गौरीणां नंदार्तीर्थं महोदयम् । दानं दत्तं नरैः स्नातैर्जनपरपक्ष्यं फलम् ॥

धान्यप्रदानं प्रवदंति शस्तं वसुप्रदानं च तथा मुनीन्द्राः ।

यैस्तेषु तीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुः प्रवरं प्रविष्टम् ॥ ४७३ ॥

मायोपदेशं प्रयतः प्रयत्नाद्यस्तत्र कुर्वात्प्रमदा पुमान्वा ।

तीर्थेषु सायुज्यमवाप्य सोऽयं भुङ्क्ते कलं ब्रह्मण्डे यथेष्टम् ॥ ४७४ ॥

तस्योपकण्ठे तु मृतास्तु ये धैः कर्मक्षयात्स्थावरजंगमाश्च ।

तैश्चापि सर्वैः सहसा प्रसह्य लभ्येत यदस्य फलं दुरापम् ॥ ४७५ ॥

ततस्तु सा धर्मफलप्रदा मन्त्रेणमादिदुःखार्दितचेतसां नृणाम् ।

सर्पात्मना पुण्यफला सरस्वती सेव्या प्रयत्नात्पुरुषैर्महानदी ॥ ४७६ ॥

इति श्रीवाचस्पत्याने प्रथमे खण्डिके नंदप्राचीमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ।

## एकोनविंशोऽध्यायः

ऋषिमिर्यज्ञोपवीतैः पुष्करस्य तीर्थविभागकरणम् ।

मीप्स उवाच ।

पुष्करस्य च नंदायाः द्युतं माहात्म्यमुत्तमम् । श्रृण्विकीर्त्यदायाता पुष्करे मुखदर्शनात्

सर्वेस्त्वरूपता लब्धा सर्वमेतन्मया श्रुतम् । यज्ञोपवीतीर्भक्तानि यानि तानि पदस्य मे ।  
 कथं तीर्थविभागस्तु कृतस्तेः सुमहात्मभिः । आश्रमे यानि तीर्थानि कृतान्यपि महर्षिभिः ।  
 पदस्यासः कृतः पूर्वं चिष्णुना यज्ञपर्वते । नागेस्तत्र पञ्चतीर्थं कृतं तैस्तु महाविभैः ।  
 पिंडप्रदानपापी च केन पूर्वं विनिर्मिता । उदङ्मुखी भूमिगता कथं गङ्गा सरस्वती ।  
 ब्राह्मणेर्वेदविद्वद्भिः कथं यात्रा त्रिपुष्करे । कर्तव्या यत्फलं तस्या जायते तत्प्रदस्य मे ।

पुलस्त्य उवाच ।

प्रश्नभारो महानेव मपता परिकल्पितः । तदेकाग्रमना भूत्वा शृणु तीर्थमहाफलम् ।  
 यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ।  
 प्रतिप्रहादुपायुक्तः संतुष्टो येन केनचिन् । महद्भारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ।  
 अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीले दृढमताः ।

भारमोचनश्च मृतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥ १० ॥

शूरीणां परमं गुह्यमिदं भक्तसत्तम । पूर्वं यत्र महाराज सत्रे वेतामहे तथा ॥  
 यतीनामुपगमसां येषां कोटिः समागता । मुखदर्शनमाश्रित्य स्थितान्ते अष्टपुष्करे ।  
 सुकपनां परां लब्ध्वा प्रीतास्ते मुनिसत्तमाः । हर्षेण महताविष्टा महादर्शनकीर्तिना ।  
 यज्ञोपवीतैस्ते भूमिमाप्य सर्वे धनुर्दिशम् । कृत्वा तीर्थविभागं च स्थितानतिरायका ।  
 आसन्नश्च सत्तमेयां तदा मुष्टः पितामहः । कोटिं कृत्वा तदा तेषां मानं दृष्ट्वा मनीषिणः ।  
 अष्टप्रभृति सुष्माकः धर्मवृद्धिर्भविष्यति । इहागम्य गरो यो ये यद्गतां प्रपन्नं जने ।  
 द्वापविष्यति कुराचं कृत्वा तीर्थकारिता । भविष्यति न नदिहो योजनानाममरुते ।  
 भाषं योजनानि नारं दीपं साधं हि योजनम् । यन्मन्त्रमार्ण तीर्थेभ्यः श्रुतिकोदितमनितम् ।  
 गमनादेव राजेन्द्र पुष्करस्य त्वरिदम् । राजगृहाभ्यन्तरेणाभ्यां यज्यमाग्नेनि मन्त्रे ॥

साम्बरी महामुण्या प्रविष्टा अष्टपुष्करे ।

तत्र प्रपन्नयो देवा अपरः निडुवात्मा ॥ २० ॥

अग्निपुष्टं हि राजेन्द्र योजनानाममरुते ।

तत्रानिर्देहं कुर्यात् त्रिन्दिशार्थमेतत् ॥ २१ ॥

गोमेधं च तदाप्नोति कुलं चैव समुदरेत् । एवं तीर्थविभागस्तु कृतस्तेस्तु महर्षिभिः ॥  
पितृन्देवांश्च सन्तर्प्य विष्णुलोके महीयते । तत्र स्नात्वा भवेन्मर्त्यो धिमलधन्वमा यथा  
ब्रह्मलोकमप्राप्नोति गतिं च परमां व्रजेत् । नृलोके देवदेवस्य तीर्थं त्रैलोक्यविधुतम् ॥  
पुष्करं नाम विद्ययातं महापातकनाशनम् । दशकोटिं सहस्राणि तीर्थानां ये महीयते ॥

सान्निध्यं पुष्करे येषां त्रिसन्ध्यं कुण्डनन्दन ।

आदित्या षस्यो रुद्रास्साध्याश्च समरुद्रणाः ॥ २६ ॥

गन्धर्वाप्सरस्तथैव नित्यं सन्निहिता विभोः ।

यत्र देवास्तपस्तपसा व्रेत्या ब्रह्मर्यस्तथा ॥ २७ ॥

दिव्ययोगा महाराज पुण्येन महतान्विताः । मनसाप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनस्विनः  
रूपान्ते सर्वपापानि नाकपृष्ठे स मोदते । तस्मिंस्तीर्थं महाराज नित्यमेव पितामहः ॥

प्राप्त परमप्रीतो देवदानयसम्मतः । पुष्करेषु महाराज देवाः सर्पिपुरोगमाः ॥ ३० ॥

सेद्धिं च समनुप्राप्तः पुण्येन महतान्विताः । तत्राभिषेकं यः कुर्यात्पितृदेवार्चने रतः ॥

भवमेधादरागुणं प्रपद्यति मनीषिणः । अप्येकं भोजयेद्विप्रं पुष्करारण्यमाधितः ॥ ३२ ॥

त्नैत तेन संप्रीता कोटिर्मवति पूजिता । तेनासौ कर्मणा भीष्म प्रेत्य चेह च मोदते ॥

तर्कमूलैः फलैर्वापि येन वा पर्नयेत्स्वयम् । तद्वै दद्यादुग्रह्मणाय श्रद्धावाननसूयकः ॥

नेय प्राप्नुयात्प्राप्तो हयमेघफलंनरः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम ॥

शमदं सरःपुण्यं पुष्करं नाम नामतः । वैखानसानां सिद्धानां मुनीनां पुण्यदं हि यत्

सरस्वती पुण्यतमा यस्माद्यातानहार्णवम् ।

आदिदेवो महायोगी यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ ३७ ॥

त आदिपराहेति नाम्ना त्रिदशपूजितः । दीनघर्णाश्च ये घर्णास्तीर्थं वेतामहे गताः  
॥ चियोर्नि प्रज्जत्येते स्नात्वा तीर्थं महात्मनः ।

कार्तिक्यां च विशेषेण योऽमिगच्छेत्तु पुष्करम् ॥ ३६ ॥

फलं तत्राक्षयं तस्य भवतीत्यनुदुश्रुम ।

सायं प्रातः स्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृताञ्जलिः ॥ ४० ॥



उपस्पृष्टं भवेत्तेन सर्वतीर्थं तु कौरव । जन्मप्रमृति यत्प्रापं स्त्रियो वा पुण्यस्य वा ।  
 पुष्करे स्नानमात्रेण सर्वमेतत्प्रणश्यति । यथा सुराणां प्रथमः सर्वेषां तु पितामह ।  
 तथैव पुष्करं तीर्थं तीर्थानामादि रुच्यते । तद्वद्दृष्ट्वा दशवर्षाणि पुष्करे निपतः शुचि ।  
 मृत्युस्तर्पानपामोति ब्रह्मलोकं स गच्छति । यस्तु वर्षेभ्यस्तं पूर्णमग्निहोत्रमुपासते ॥ ४७ ॥  
 कार्तिर्णी या घसेदेकां पुष्करे सममेव तु । पुष्करे दुष्करो होमः पुष्करे दुष्करं तत्  
 पुष्करे दुष्करं दानं पासश्चैव सुदुष्करः । ब्राह्मणो वेदविद्वांस्तु गत्वा ये श्वेष्टपुष्करम्

स्नानाद्भयेन्मोक्षभागी धादेन वितृत्तारकाः ।

नाममात्रोऽपि यो विप्रो गत्वा संध्यामुपासते ॥ ४७ ॥

यथांनि द्वादशीवेह तेन संध्या ह्युपासिता । भवेत्तु मात्र संदेहः पुरा प्रोक्तं सर्वभुक् ।  
 सावित्राकथितो होमः कुजे तस्य न जायते ।

या पत्नी ददते भर्तुः संध्योपास्ति करिष्यतः ॥ ४८ ॥

काकेनतु ताद्रेण तोयं मुक्ता दिव्यं यजेत् । ब्रह्मलोकमनुयाप्य तिष्ठति ब्राह्मणो दिव्य  
 एकाकिना गतेनापि संध्या यथा यथाक्रमम् ।

पुष्करेणाथ तोयेन शृंगारे निदिने न तु ॥ ४९ ॥

तेनापि द्वादशाह्वानि संध्योपास्ता न संशयः ।

भवेत्समीपता पत्नी कुर्यात्तः पितृभर्तव्यम् ॥ ५० ॥

दक्षिणां दिशमाख्याय गावश्च याजस्तनम् । पितृणां परमा मृतिः क्रियते द्वादशाह्वानि  
 पुण्यसहस्रविम्बेन धादेनामन्यमनुने । एतदर्थं हि विज्ञातः कुर्यात्तः द्वादशम् ॥ ५१ ॥  
 मर्त्ये गत्वा द्वादश्यामः पितृभ्यो धादतृचम् ।

तेनां पुत्रा धनं धान्यमविच्छिन्ना च संततिः ॥ ५२ ॥

मर्त्ये जात्र संदेह एतदाह पितृभ्यः । मर्त्ये गत्वा पितृभ्यो द्वादश्यामः ॥ ५३ ॥  
 कायमन्यं मे कथ्यं शृणुष्वैकमन्यम् । मर्त्ये गत्वा द्वादश्यामः ॥ ५४ ॥  
 मर्त्ये गत्वा द्वादश्यामः द्वादश्यामः । मर्त्ये गत्वा द्वादश्यामः ॥ ५५ ॥  
 मर्त्ये गत्वा द्वादश्यामः द्वादश्यामः । मर्त्ये गत्वा द्वादश्यामः ॥ ५६ ॥

कथयामि समासेन शृणु त्वं सुसमाहितः । पूर्वं कृतयुगे भीष्म दानवा युद्धदुर्मदाः ॥  
 कालेया इति विद्याता यथाः परमदारुणाः । ते तु वृत्रं समाश्रित्य नानाप्रहरणोद्यताः  
 समन्तात्पर्वधावन्त महेन्द्रप्रमुजान्सुरान् । ततो वृत्रवधे पक्ष्मकुर्वन्निदराः पुरा ॥६२॥  
 पुरन्दरं पुरस्सृत्य प्रह्माणमुपतस्थिरे । कृताञ्जलीस्तु तान्सर्वाभ्यग्मेष्टीत्युवाच ह ॥६३॥  
 विदितं मे सुराःसर्वं यद्दःकार्यं चिकीर्षितम् । तमुपायं प्रवक्ष्यामि यथा वृत्रं वधिष्यथ  
 दधीचिरिति विद्यातो महानृविद्यारधीः । तं मत्वासहितास्सर्वे वरं यः प्रतिपाद्यत ॥  
 स यो दास्यतिधर्मात्मा सुप्रतिनान्तघातमभा । स धाव्यःसद्विती सर्वैर्मथद्विर्जयकाक्षिभिः  
 स्वाम्यस्थीनि प्रयच्छस्व त्रैलोक्यहितकाक्षया ।

स शरीरं समुत्सृज्य स्वाम्यस्थीनि प्रदास्यति ॥ ६७ ॥

तत्पाद्विषमिर्महाघोरं बर्जं संक्रियतां दृढम् । मदच्छनुद्वनं दिव्यं तत्रात्मशानिः स्मृतम्  
 तेन यज्ञेण ये वृत्रं वधिष्यति शतक्रतुः । एतद्दः सर्वमावृषातं तस्मात्सर्वं विधीयताम्  
 पपमुक्तास्ततो देवा धनुःहाव्य पितामहम् । शतक्रतुं पुरस्सृत्य दधीचेराश्रमं ययुः ॥  
 सरस्वत्याः परेपारे नानादुमलतावृतम् । षड्विंशद्वीतनिबन्धेषुष्यं सामगैरिष ॥ ७१ ॥  
 पुंसोःकिलरयोन्मिश्रं जीवं जीवकनादितम् । महिषैश्च वरादैश्च वृमरैश्चमरैरपि ॥७२॥  
 तत्र तत्रानुचरितैः शार्दूलमयवर्जितैः । करैणुभिर्षारणैश्च प्रभिन्नकरटामुखैः ॥ ७३ ॥  
 स्वरोद्गारैश्च ग्रीडद्विः समन्तादनुनादितम् । सिंहव्याघ्रैर्महानादं नृद्विरज्जुनादितम् ॥  
 मयूरेष्वपि खलीनैर्गुहाकंदरवासिभिः । तेषु तेषु च कुजेषु नादितं सुममोरमम् ॥७५॥  
 त्रिविष्टपसमप्रलये दधीच्याश्रममागमन् । तत्रापश्यदधीचिं तं दिवाकरसमप्रमम् ॥  
 आञ्चदयमानंययुषा यथा लक्ष्म्या धनुर्मुञ्चम् । तस्य पार्श्वे सुरा राजन्ममिवयं प्रणम्यव  
 मथासेन वरं सर्वं यथोक्तं परमेष्ठिना । ततो दधीचिः परमप्रतीतश्च सुरोत्तमान् ॥७८॥

उवाच प्रणतो भूत्वा त्विदं कार्यकरं वचः ।

दधीचिरम्याच ।

इन्द्राद्यास्त्वागता देवाः किमर्थं तद्वदन्तु मे ॥ ७९ ॥

वीर्यमानानहं मन्ये हतप्रभसुरोत्तमाः । यदर्थं वीरितात्मानस्तद्वदन्तु निराकुलम् ॥८०॥



स समाप्यायितः शक्रो विष्णुना दैवतैः सह ।  
 ऋषिभिश्च महामागैर्षलवान्समपद्यत ॥ ९६ ॥  
 ज्ञात्वा यलस्यं त्रिदशाधिपं तं ननाद वृत्रस्तुमहानिनादम् ।  
 तस्य प्रणादेन घरादिशश्च खं घोरैर्गाश्चेति चचाल सर्वम् ॥ ९७ ॥  
 शतो महैद्रः परमामिततः श्रुत्वा रथं घोरतरं महान्तम् ।  
 भयेन मग्नस्त्वरितं मुमोच घञं महान्तं जलुतस्य शीर्षं ॥ ९८ ॥  
 स शक्रयज्ञामिहतः पपात महास्थनः काञ्चनमात्यधारी ।  
 यथा महाशैलधरः पुरस्तात्समन्दरो विष्णुकटात्प्रमुक्तः ॥ ९९ ॥  
 सस्मिन्हते दैत्यधरे भवार्तः शक्रः प्रदुद्राय सरः प्रवेष्टुम् ।  
 घञं च मेने स्थकरात्प्रमुक्तं वृत्रं मयाघैष हतं न पश्यति ॥ १०० ॥  
 सर्वे च वैषा मुदिताः प्रहृष्टाः महर्षयश्चैनमधो स्तुवन्ति ।  
 दोषाश्च दैत्यास्त्वरितं समेत्य जघ्नुः सुरा वृत्रवधामिततान् ॥ १०१ ॥  
 ते वध्यमानास्त्रिदशीस्तदानीं महासुरा वायुसमानवेगाः ।  
 समुद्रमेधाविबिधुर्मयार्ताः प्रविश्य वैषोदधिमप्रमेयम् ॥ १०२ ॥  
 कयाकुलं रत्नसमाकुलं च तदास्म मन्त्रं सहिताः प्रवक्षुः ।  
 तत्रस्म केचिन्मतिनिश्चयज्ञास्तांस्तानुपायान्परिचिन्तयन्तः ॥ १०३ ॥  
 भवार्दिता दैयनिकायततास्त्रैलोक्यवनाशाय मतिप्रचक्षुः ।  
 तेषां ॥ तत्र क्षयकालयोगाद्धोरामतिश्चिन्तयतो बभूव ॥ १०४ ॥  
 ये सन्ति पिथा तपसोपपञ्चास्तेषां विनाशः प्रथमं ॥ कार्यः ।  
 श्लोकाश्च सर्वे तपसा धियन्ते तस्मात्स्वरथं तपसा क्षयाय ॥ १०५ ॥  
 ये सन्ति केचिद्दि वसुन्धरायां तपस्थिनो घर्मविदश्च तज्ज्ञाः ।  
 तेषां वधश्च क्रियतां हि क्षिप्रं तेषु प्रनष्टेषु जगद्दिनाय ॥ १०६ ॥  
 एवं हि सर्वे गतबुद्धिमाणा जगद्दिनादौ परमप्रहृष्टाः ।  
 दुर्गं समाश्रित्य महोर्मिमन्तु रत्नाकरं वाष्पमालयं स्म ॥ १०७ ॥

समुद्रं ते समासाद्य धारुणं त्वम्मसांनिधिम् । कालेयास्समपद्यन्त त्रैलोक्यस्य विनश्यते ।  
 ते रात्रौ सममिकुन्दा वमन्मुस्तांस्तदा मुनीन् । आश्रमेषु च ये सन्ति पुण्येष्वपत्येषु च  
 वसिष्ठस्याश्रमे विप्रा भक्षितास्तेर्दुःखतममिः । अशीतिःशतमष्टौ च वनेवान्ये तपस्विनः  
 ऋषयस्तस्याश्रमं गत्वा पुण्यं द्विजनिपेक्षितम् । फलमूलाशनानां हि मुनीनां भक्षितं तन्म  
 यद्यं रात्रौस्म कुर्यन्तो विविशुश्चारणं दिवा । भर्द्वाजाश्रमंगत्वा नियता प्रह्ववारिद  
 घाताहाराद्युभक्षाश्च विंशतिश्च निपूदिताः । एवं क्रमेण मिक्षार्थं मुनीनां दानपास्तद  
 निशायां पर्यधाद्यन्त शक्ता भुजयलाधयात् । कालेन महता तेवै जघ्नुर्मुनिगणान्बहून् ।  
 नचैतानपयुधयन्त मनुजामनुजाधिपः । निःस्वाध्यायधनपदकारं नष्टयन्नोत्सवक्रियन् ।  
 जगदासीभिस्तसाहं कालेयमयपीडितम् । एवं प्रक्षीयमाणास्ते मानवा मनुजेश्वर ।  
 आत्मत्राणपरा भीताः प्राद्वघन्तु दिशोदश । केचिद्गुहां प्रविशिशुषिकीर्णाश्चापरे द्विजः  
 अपरे च भयोद्विग्ना भयात्प्राणान्समत्यजन् । केचित्सत्र महेष्वासाः शूराः परमर्षिणः  
 मार्गमाणाः परं यत्नं दानवानां प्रवक्रिरे । नचैताननुजगमुस्ते समुद्रं समुपाश्रिताः ।  
 शर्म न जग्मुः परममाजग्मुः क्षयमेव च । जगत्प्रशमने जाते नष्टयन्नोत्सवक्रिये ॥११॥

भाजग्मुः परमोद्विग्नास्त्रिदशा मनुजेश्वर ।

समेत्य समहेन्द्रास्तु भयान्मंत्रं प्रवक्रिरे ॥ १२१ ॥

नारायणं पुरस्सृष्ट्य वैकुण्ठमपराजितम् । ततो देवास्समेतास्ते तदोचुर्मधुसूदनम् ॥१२॥  
 त्वं नः क्षृष्टाद्य गोप्ता च भर्ता च जगतः प्रभोः । त्वया सृष्टं जगत्सर्वं यद्येहं यद्यनेहूति  
 त्वया भूमिः पुरा नष्टा समुद्रादुपकारेण । धाराहं रूपमास्थाय जगद्धेयं राममुत्पूष ।  
 आदिदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुःपुरा । नारसिंहं ययुः हृत्वा सृष्टितः पुदयोत्तम ।  
 अथप्यः सर्वमूतानां बलिध्यापि महासुरः । धामनं यपुरास्थाय त्रैलोक्यादुत्प्रेक्षितमवपा  
 यत्सुरःसुमहेष्वासो जंम इत्यमिविध्रुतः । यज्ञशोभकरः क्रूरस्थया सर्वनिपातिनः ।  
 एषमादीनि कर्माणि येषां संख्या न विद्यते । अस्माकं भयमीमानां त्वं गतिर्मेधुसूत  
 तस्मात्त्वां देयदेयं श्लोकार्थं ज्ञापयामहे । रक्ष श्लोकांश्च देवांश्च शक्यः च महतां भयान  
 भयत्प्रसादाद्भनेन्ते प्रजाःसर्वाश्चतुर्विधाः । स्वस्था भवन्ति मनुजा द्रव्यचर्च्यैर्विषोक्तैः

लोकाहोयं प्रवर्तन्ते अन्योन्यं च सम्प्राश्रिताः ।

त्वत्प्रसादान्निरुद्धिप्रास्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ १३१ ॥

इदं च समनुप्राप्ते लोकानां भयमुत्तमम् । जानीमो न च केनैते घड्यन्ते ब्राह्मणानिश्च  
ब्राह्मणेषु च क्षीणेषु पृथिवीक्षयमेव्यति । त्वत्प्रसादान्महाबाहो लोकास्सर्वे जगत्पते ॥

विनाशं नाभिगच्छेयुस्त्वया वै परिरक्षिताः ।

विष्णुदवाच ।

प्रित्तं मे सुरास्सर्वे प्रजायाः हृषकारणम् ॥ १३४ ॥

भवतां चापि वक्ष्यामि शृणुष्वं विपतञ्जराः । कालकेया इतिख्याता गणापरमदायकाः

ते वृत्रं निहतं दृष्ट्वा सहस्राक्षेण धीमता ।

जीवितं परिरक्षन्तःप्रपिष्टा वरुणालयम् ॥ १३६ ॥

ते प्रविश्योदधिं घोरं नानामाहसमाकुलम् ।

उत्सादनार्यं लोकस्य रात्रौ ध्वनन्ति मुनीनिह ॥ १३७ ॥

न तु शक्याःक्षयं नेतुं समुद्रान्तर्हिता हि ते ।

समुद्रस्य हृषे बुद्धिर्मेघद्विःपरिचिन्त्यताम् ॥ १३८ ॥

एतच्छ्रुत्वा घब्रो देवा विष्णुना समुद्रादृतम् ।

परमेष्ठिनमासाद्य भगस्तयस्याधर्मं ययुः ॥ १३९ ॥

तत्रापश्यन्महारत्नानं वारुणं दीप्ततेजसम् । उपास्यमानमृषिमिहैवैरिषं पितामहम् ॥

तेऽभिगम्य महात्मानं मैत्राघदणिमुत्तमम् । भयमत्तं तपोराशिं कर्मभिःस्वैरनुष्ठितैः ॥

देवाऊधुः ।

मनुषेणामित्तानां लोकानां त्वं गतिः पुरा । संश्लिष्टश्च सुरैर्भयार्णलोकार्थं लोककण्टकः

कोपात्प्रवृद्धःसमहान्मास्करस्य भगोत्तमः । घबस्तयानतिप्राप्तमन्यन्त्यःशूलो न घर्षते

तमसाच्छादिते लोके मृत्युनाभ्यर्दिताःप्रजाः । त्वामेव भायमामम्य निवृत्तिं परमांगताः

अस्माकं भयभीतानां नित्यमेव भयान्गतिः ।

ततस्त्वद्यं प्रयाचामस्त्वां वरं वरदो ह्यसि ॥ १४५ ॥

भीष्म उवाच ।

किमर्थं सहसापिन्ध्यः प्रवृद्धः क्रोधमूर्छितः । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामुने  
पुलस्त्य उवाच ।

अद्रिराजं महाशीलं मेरुं कनकपर्वतम् । उदयेऽस्तमये भानुः प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १४५ ॥  
ते दृष्ट्वा तु तदापिन्ध्यः शैलसूर्यमथाश्रवीत् । यथा हि मेरुर्मघता नित्यशः परिगम्यते ।  
प्रदक्षिणं च क्रियते मामेवं कुरु भास्कर । एवमुक्तस्ततः सूर्यः शैलेन्द्रं प्रत्यभाषत ॥ १४६ ॥  
नाहमास्मेच्छया शैलं करोम्येनं प्रदक्षिणम् । एषमार्गः प्रदिष्टो मे येनेदं निर्मितं जगत् ।  
एषमुक्तस्तदाकोधात्प्रवृद्धः सहसाचलः । सूर्याचन्द्रमसोर्मार्गं रोदुधुमिच्छन्परतप ॥ १४७ ॥

ततो हि देवाः सहितास्तु सर्वे सैत्राः समागम्य महाद्रिराजम् ।

निधारयामासुरधोत्पतन्तं न वै स तेषां वचनं वकार ॥ १४८ ॥

ततो हि जग्मुर्मुनिमाध्रमस्थं तपस्विनां धर्मवतां धरिष्ठम् ।

अगस्त्यमत्यद्भुतशीतवीर्यं तं चार्यमुखुः सहिताः सुरास्ते ॥ १४९ ॥

देवा ऊचुः ।

सूर्याचन्द्रमसोर्मार्गं नक्षत्राणां गतिं तथा । शैलराडावृणोत्येव विन्ध्यः क्रोधवशानुगः ।  
तं निवारयितुं शक्नोतान्यः कश्चिन्मुनीश्वर । तच्छ्रुत्वा वचनं विप्रः सुराणां शैलमभ्यगात्

सोऽभिगम्याश्रयीद्विन्ध्यं सादरं समुपस्थितम् ।

मार्गमिच्छाम्यहं दत्तं भयता पर्वतोत्तम ॥ १५० ॥

दक्षिणामभिगन्तास्मि विशं कार्येण केनचित् ।

यावदागमनं मे स्यात्सायस्यं प्रतिपालय ॥ १५१ ॥

निवृत्ते भवि शैलेन्द्र ततो वर्धस्य कामतः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अद्यापि दक्षिणदेशाद्वाह्णिर्न नियतते ॥ १५२ ॥

एतत्ते सर्वमाश्रयतं यथापिन्ध्यो न वर्धते । अगस्त्यस्य प्रभावेण यन्मा त्वं परिपृच्छसि  
तलेयास्तु यथाराजसुटेः सर्वे निवृद्धिताः । अगस्त्यद्वारा मासाय कृमे निगच्छः शृणु ॥

ते घड्यमानास्त्रिदशैर्दानया भीमनिःस्वनाः । चक्रुःस्तुमुलंपुदं  
 ते पूर्वं तपसादग्धा मुनिभिर्माचितात्मभिः । यतमानाः परं शक्या  
 ते हेमनिष्काभरणाः कुण्डलाङ्गधारिणः । निहता यद्वशोभंत पु  
 हतशिष्टास्ततः केचित्काले यदनुजोत्तमाः । विदार्य वसुधां देवीं  
 निहतान्दानवान्द्रुद्रा त्रिदशा मुनिपुङ्गवम् । तुष्टुबुर्विषिधैर्वाक्यैर्वि  
 त्यतप्रसादान्महाभाग लोकोः प्राप्तमहत्सुखम् । त्वत्तेजसा च निहताः  
 पूरयस्व महाविप्र समुद्रं लोकभावनम् । यस्वया सलिलं पीतं तदगि  
 एवमुक्तं प्रत्युवाच भगवान्मुनिपुङ्गवः । जीर्णतद्धि मया तोयमुपा  
 पूरणार्थं समुद्रस्य भवद्विर्यत्नमास्थितैः । एवं श्रुत्वा तु वचनं

विस्मिताश्च विषण्णाश्च बभूवुः सहितास्तुराः ।

परस्परमनुधाप्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ॥ १८७ ॥

प्रजाः सर्वामहाराज विप्राज्जमुर्यधागतम् ।

सिद्धिं विनाशं च विनाशं विनाशं



[ \* पुष्करसिंह आचार्यविरचितम् \*

॥ ११० ॥

सर्वप्रकारानाम् । अथ चोपायं तु यः स्यात्तदापुनः ।

॥ १११ ॥ अथैव विवक्ष्यते । अथैव विवक्ष्यते ।

॥ ११२ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ ११३ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ ११४ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ ११५ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ ११६ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ ११७ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ ११८ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ ११९ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ १२० ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ १२१ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ १२२ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ १२३ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

॥ १२४ ॥ अथैव विवक्ष्यते ।

भानृशंस्यं जयो धैर्यं तपःसत्यं क्षमार्जवम् ।

दया दानं जपश्चैव सर्वेषां तत्प्रतिष्ठितम् ॥ २१६ ॥

इदपत्क्रियतेकर्म तत्परत्रोपभुज्यते । ज्ञात्वा तदित्यं मुनयःपरमार्थपरायणाः ॥ २१७ ॥

न तत्र नास्तिका यान्ति न स्तेना नाजितेन्द्रियाः ।

न नृशंसा न पिशुना न हृत्पथा न मानिनः ॥ २१८ ॥

सत्यतेजस्विनःशूरा दयाघंतःक्षमापराः । यज्जानो यज्ञशीलाश्च निरीहा निरुपद्रवाः ।

निर्ममा निरुद्धकारास्तत्र गच्छन्ति पुष्करे ।

न रोगो न जरामृत्युर्भविताऽत्र महात्मनाम् ॥ २१९ ॥

न तत्र मूढा विशन्ति पुरुषा विषयात्मकाः । कामलोभमद्वोहकोधमोहैरुपद्रुताः ।

तुल्यमन्नापमानाश्च निर्द्वन्द्वास्संयतेन्द्रियाः ।

ध्यानयोगपराश्चैव ते तु गच्छन्ति पुष्करम् ॥ २२० ॥

आध्रमेपु यथोक्तेषु यथोक्तं वै द्विजातयः । ये वर्तन्ते समन्त्रास्तु तेषां लोकामहो दयाः

ये न हिंसन्ति भूतानि कर्मणा मनसा गिरा । अनृशंसतराः सन्तः सत्यदा च प्रियंवदाः ।

अग्निहोत्ररतानित्यं नित्यं चातिथिपूजकाः । नित्यं स्वाध्यायवन्तश्च नित्यं स्नानपरायणाः

मातृवत्स्यसुधर्षय तथा दुहितृवश्च ह । परदारान्मपश्यन्ति सततं विगतस्पृहाः ॥ २२१ ॥

येऽधिक्षिता न कुप्यन्ति न हिंसन्ति च हिंसिताः ।

समदुःखसुखाः सन्तो महात्मानो जितेन्द्रियाः ॥ २२२ ॥

ते हि सर्वे प्रपश्यन्ति पुरा चेकर्महीमिमाम् ।

समाधिना चिन्तयन्तो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ २२३ ॥

अधामपदनावृष्टिः फटाकिमहती तदा । कृच्छ्रं प्रायोद्वभूत्तत्र सर्वलोकः क्षुधार्तिः ।

ततो निरग्नेलोकेऽस्मिन्चात्मानं ते परीप्सवः । मृतं कुमारमादाय कृच्छ्रप्रायास्तपश्चरन्

अथ पर्यचरन्तत्र द्रिश्यमानान्हि तानृषीम् । दृष्ट्वा राजा विषादासंः प्रोषाचेहं पचस्तदा ।

राजोपाय ।

ब्राह्मणानां दृष्ट्वा वृत्तिरनिन्दिता । तस्मात्प्रतिग्रहान्मत्तो गृहीज्यन्नुनिसत्तमम्

अकिञ्चनत्थमधिकं रात्र्यादपि हितात्मनः ॥ २४८ ॥

कश्यप उवाच ।

अनर्थो ब्राह्मणस्यैव यस्त्वेव निचयो महान् ॥ २४९ ॥

अर्थैश्वर्यविमूढो हि श्रेयसो भ्रश्यते द्विजः । अर्थसंपद्धिमोहाय विमोहो नरकाय च ॥  
तस्मादर्थमनर्थादर्थं श्रेयोऽर्थोदूरतस्त्यजेन् । यस्य धर्मार्थमर्थेहा तस्यानीहा गरीयसी ॥  
प्रज्ञालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् । योऽर्थेन साध्यते धर्मः क्षयिष्णुः स प्रकीर्तितः ॥  
यः परार्थपरित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणः ॥

भरद्वाज उवाच ।

जीर्यति जीर्यतः केशा दंता जीर्यन्ति जीर्यतः ॥ २५३ ॥

यनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति । चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णीकानिष्पः  
तृष्णासूत्रं यथापस्त्रे समानयति सूचकः । तद्वत्संसारसूत्रं हि तृष्णासूत्र्योपनीयं  
यथा शृङ्गं दहोः काये वर्द्धमाने च वर्द्धते । भ्रान्तपारा दुष्पूरा तृष्णादुःखशतापह  
अधर्मदुःखा चैव तस्मात्तां परिचर्जयेत् ॥

गौतम उवाच ।

संतुष्टः को न शक्नोति फलैश्चाप्यतिवर्तितुम् ॥ २५७ ॥

दुग्धं इन्द्रियलोल्येन संकटान्ययगाहते । सर्वत्र संपदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम्  
रूपानदु गृहपादस्य तस्य चर्मोद्धृत्य भूः । संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्  
तस्तद्वत्तुल्यधनमितश्चेत्तद्व्यापयताम् । असंतोषः परदुःखं सन्तोषः परमसुखम् ॥ २६१ ॥  
सुखाद्यो पुण्यस्तन्मात्संतुष्टः संतर्न भवेत् ॥

विश्वामित्र उवाच ।

कामं कामयमानस्य यदि कामसमृद्धयति ॥ २६१ ॥

धेनमपरः कामो भूयो विध्यति याणयत् । न जानुकामः कामानामुपमोगेन शान्तयति ॥  
॥ २६२ ॥ कृष्णधर्मेव भूय यथाभियर्द्धते । कामानमिलयन्मोहात् नरः सुखमेधने ॥ २६३ ॥  
॥ २६४ ॥ यत्र त्रिष कपिब्रह्मः । अनुस्सागरपर्यन्तां यो मुक्ते पृथिवीमिमाम् ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥ ५५ ॥

अच्छिन्नचमधिकं राश्यादपि हिश्रवन्तः । २१८ ।

अथ ह्यस्य ।

अनयो ब्रह्मस्यैव सत्त्वर्यं निचयो भवति ॥ २७६ ॥

अथैवमर्थान्तरं हि धेयसो ज्ञस्यते हिम् । अर्थसंज्ञिनोऽप्यविनोदो नक्तवः ।  
 तस्मादर्थननपांलं धेयोऽर्थेदूरस्त्यजेत् । यस्य धर्माधर्मयोः स्वरत्नं धर्मपत्तं ।  
 प्रज्ञाहतादि पंकस्य दूरदृश्यं न वान् । योऽर्थेन साध्यते धर्मेषु दिव्युषः प्रकाशितः ।  
 यः परार्थपरित्यागः सोऽज्ञो बुद्धिबलः ॥

મણિવંશી રૂઢાણી

जायंति जायंतः केना दंता जायन्ति जायन्तः ॥ २५३ ॥

[illegible]

**गौतम उवाच ।**

मंतुः कौ म शप्तेति फलैश्चाप्यतिवर्तिनुम् ॥ २५७ ॥

सन्तुष्टः को न शङ्काति पल्लवाप्यातवातनुम् ॥ २५३ ॥  
 लुब्ध इन्द्रियलोल्येन संकटम्यवगाहते । सर्वत्र संयदस्तरूप सन्तुष्टं यस्य मानसम् ।  
 उपानद् गूढपादस्य तस्य चर्मावृतेषु भूः । संतोषामृतनुमानां यत्सुखं शान्तचेतसम् ।  
 बुद्धिच्छन्नलुब्धानामितद्वेनैव ध्यायताम् । असंतोषपरंदुःखं सन्तोषपरमं सुखम् ॥ २५४ ॥  
 सुखापी पुरुषस्तस्मात्सन्तुष्टः संततं भवेत् ॥

**विद्यामिश्र उपाख्य !**

कामं कामयमानस्य यदि कामसमृद्धयति ॥ २६१ ॥

कामं कामयमानस्य यदि कामसमृदयति ॥ २६१ ॥  
 यथैनमपटकामो भूयो विच्यति दाणघन् । न जानुकामः कामानामुपमोयेन शङ्कति ।  
 हृषिया हृण्ववर्मेव भूय एवामिवर्द्धते । कामानमिलयन्मोहाय नतःसुखमेपते ॥ २६२ ॥  
 ब्रह्मनाहवतमच्छायां वज्रप्रिय कपिव्रतः । वनुस्समात्पद्यन्तां यो मुंके पृथिवीमिमाम् ।

अथ उचुः ।

शक्तिखड्गगदाभिश्च चक्रतोमरसायकैः ॥ ७८ ॥

याधितेवेदना या तु क्षुधयासापि निर्जिता । श्वासकुष्ठक्षयाघ्नोली, ज्वरापस्मारपूलकैः  
 व्याधिभिर्जनितासापि क्षुधायानाधिकामवेत् । हिरण्याङ्गदकेयूरमुकुटोज्ज्वलकुण्डलाः  
 क्षुधायां न विराजन्ते तत्रये संस्थिता नराः । यथा भूमिगतं तोयं रश्मिरिमविकर्षति  
 तद्वच्छरीरजानाढ्यः शोष्यन्ते जठराग्निना । न शृणोति न चाप्राति वक्षुया नैव पश्यति  
 दह्यते क्षीयते मूढः शुष्यते क्षुधयार्दितः । न पूर्वां दक्षिणां चापि पश्चिमां नोत्तरामपि  
 न बाधो नैव बोद्धव्यं वक्षुधाविष्टो हि विन्दति । मूकत्वं बधिरत्वं च जडत्वमप्यङ्गुता  
 भ्रैरवत्वममर्यादं क्षुधायां संप्रवर्द्धते । जनकं जननी पुत्रान्मायां दुहितरं तथा ॥ २८५ ॥  
 भ्रातरं स्वजनं चापि त्यजति क्षुधयार्दितः । न पितृन्पुत्रयेत्सम्यग्देवं चापि गुरुं तथा ॥  
 ऋषीनुपगतांश्चापि क्षुधाविष्टो न विन्दति । एधमन्नविहीनस्य भवन्त्येतानि देहिनाम्  
 भग्नात्परमतो लोके न भूतं न भविष्यति । भन्नमूलं जगत्सर्वमन्ने चैव प्रतिष्ठितम् ॥  
 पितरो देवदेत्याश्च यक्षराक्षसकिन्नराः । मनुष्याश्च पिशाचाश्च सर्वे चान्नमयाः स्मृताः

कुक्कुटा वायसाः श्वान भालुर्विलेशयास्तथा ।

मत्स्याः फीटाः पिपीलाश्च सर्वे चान्नाशयाः स्मृता ॥ २८६ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भन्नं यद् जुषस्व च ।

भन्नदस्तृप्तिमाप्नोति शाश्वतीं स्थितिमक्षयाम् ॥ २८७ ॥

तपः सत्यं जपो होमोऽध्यानं योगः परागतिः । स्वर्गश्चैव सुखप्राप्तिः सर्वमन्नात्प्रवर्तते  
 चान्द्रो वायुणलोकश्च याम्यः कौयेरकस्तथा ।

गोर्लोको ब्रह्मलोको वा सर्वे चान्ने प्रतिष्ठिताः ॥ २८८ ॥

चन्दनागधूपानि शिशिरोप्यन्धनानि च । भन्नदानस्य च राजन्कलानाहन्ति योऽर्थम्  
 कृपारामधूपोत्सर्गवाप्यध्यायतनानि च । भन्नदानस्य चैतानि कला नार्हन्ति योऽर्थम्  
 पानीयं भूमिगायश्च भन्नं च तुलया भूतम् । देवैरपि पुरा सात तेषामन्नं विशिष्यते ॥

— नन्ने भन्नेनैव विषयं ॥

मो द्यो वै विष्णुः श्रीकृष्णपुण्डरीकः । अस्माकः कर्तृ-  
 त्वमिदं विदित्वा धर्मं श्रद्धया ध्यायेत् । धर्मो ध्यातुः प्रियः  
 भवति ॥ ३०८ ॥

देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३०९ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३१० ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३११ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३१२ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३१३ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३१४ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३१५ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३१६ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३१७ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३१८ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३१९ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३२० ॥

देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३२१ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३२२ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३२३ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३२४ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३२५ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३२६ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३२७ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३२८ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३२९ ॥  
 देवदत्तः श्रीकृष्णः ॥ ३३० ॥

नमोऽस्तुते ॥ ३३१ ॥

जितेन्द्रियाणामतिप्रियाणां गृहेऽपि धर्मो नियमस्थितानाम् ॥ ३१६ ॥

न शब्दशास्त्रे निरस्तस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ।

न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकचित्तप्रदणो रतस्य ॥ ३१७ ॥

एकांतशीलस्य हृदयतस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ।

अध्यात्मयोगे गतमानसस्य मोक्षो ध्रुवं नित्यमर्हिसकस्य ॥ ३१८ ॥

सुखं च दान्तः स्वपिति सुखेन प्रतिबुध्यते । समः सर्वेषु भूतेषु मनो यस्य प्रबुध्यते

न रथेन सुखं याति न हयेन न दन्तिना । यथात्मना विनीतेन सुखं याति महापथे

॥ कुर्याद्धरिः स्पृष्टः सर्पोपाप्यतिरोपितः । भर्त्सानित्यसंकुद्धो यथात्मा दमवर्जितः

न यमं यममित्याहुरात्मा वै यमउच्यते । आत्मा वै यमितो येन स यमस्तु विशिष्यते

यमो यम इति प्रोक्तो ब्रूया त्विजते जनः ।

आत्मा वै यमितो येन यमस्तस्य करोति किम् ॥ ३२३ ॥

कव्यावेभ्यश्चभूतेभ्योऽदान्तेभ्यश्च सदाभयम् । तेषां विप्रतिपेधार्थं दण्डः स्पृष्टः स्वर्गमुच्यते

दण्डो रक्षति भूतानि दण्डःपालयते प्रजाः । निवारयति पापिष्ठान्दण्डो दुर्जय एव वा

यामोयुवा लोहिताक्षःसर्वभूतमवावहः । दण्डःशास्ता मनुष्याणांयस्मिन्धर्मं प्रतिष्ठितः

नपाधमेपुःसर्वेषु दम एषोत्तममयम् । तानि लिङ्गानि बह्व्यामि यैर्दान्त इति कीर्त्तयते

अकार्पण्यमपाहृत्य संतोषः सुविधानता ।

मनसूया गुरोः पूजा दया भूतेष्वपैशुनम् ॥ ३२८ ॥

पद्मिरेप दमः प्रोक्त ऋषिभिः शांतबुद्धिभिः ।

दयार्थिर्नो धर्ममोक्षो तथा स्वर्गश्च पार्थिव ॥ ३२९ ॥

अपमाने न कुप्येत संमाने न प्रहृष्यति । समदुःखसुखोपीरः स शांत इति कीर्त्तयते

तेःसुखं हि शान्तस्तु सुखं हि प्रतिबुध्यते । श्रेयस्तरामतस्तिष्ठेदयमन्ता विनश्यति

अपमानितस्तु न ध्यायेत्तस्य पापं कदाचन । स्वधर्मपि चायेक्ष्य परधर्मं न दृश्येत

आत्मानमपि जानीयात्परं दोषेस्तुनाक्षिपेत् । मन्त्रैर्होत्रं क्रियामिषां जन्मनाप्यध्याय

सर्वं होतमंगं पठो यथा । अधीयते निरर्थं ते नामिजानन्ति ये दमन



भूतस्य हि दमो मूलं दमो धर्मः सनातनः । यो ह्यात्मनस्तुल्यते सुवर्णं तुलया दमम्  
स तेन पृथिमान्मयातो न तु द्रव्येण मोहितः । मृतानामपि सर्वेषां दम एव परायणम्  
यद्यर्थास्ते यद्धनानि यैस्तत्त्वार्थं चिद्विजः । दमेन तु विहीनश्च मृत्युस्य मेह गच्छति ॥

दमेन हीनं न पुनंति वेश यद्यप्यर्थाताः सद्यः पशुभिरंगैः ।

सादृश्यं च योगश्च कुलं च जन्म तीर्थाभिषेकश्च निरर्थकानि ॥ ३३८ ॥

अमृतस्येव त्वयेत अपमानस्य योगयित् । धियवश्च जुगुप्सेत संमानस्य सदा द्विजः ॥  
अपमानात्तपो वृद्धिः संमानाय तपःक्षयः । भवितुः पूजितो हिम्रो दुग्धा गौरिष गच्छति  
पुनराप्यायते धेनुः सत्पूर्णः सलिलैर्यथा । एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः ॥  
भाक्रोशकसमो लोके सुहृदन्वो न विद्यते । यस्तु दुष्टतमादाय सुहृत्तं स्यं प्रयच्छति  
भाक्रोशमानानाक्रोशोऽमृतं स्यं चिनिवर्तयेत् । सन्नियम्य तदारमानममृतेनाभिपिञ्चति  
कपालं घृष्टमूलानि कुचैलमसहायता । अनपेक्षा ब्रह्मचर्यं भवन्ति परमांगतिम् ॥ ३४४ ॥  
कामक्रोधी विनिर्झिष्य किमरण्येकरिप्यति । मन्वासेन तु वै शार्ङ्गकुलंशीले न धार्यते  
गुणैर्मन्वा पिधार्यन्ते क्रोधदसत्येन धार्यते । यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं संधारयति चात्मनः  
अक्रोधेन जपेद्दीर्घः कस्तेन सदृशो भुवि । यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं सन्तं संयम्य तिष्ठति  
तं सत्सारात्ममन्वे नास्मिन्सीदति यः पुमान् । एष वैतामहो गुह्यो ब्रह्मराशिस्सनातनः  
धर्मस्य निपमो यो हि मया ते कथितो भूशम् ।

अन्ये च यज्जनां लोका अन्येषां च तपस्विनाम् ॥ ३४६ ॥

अन्ये दमयतां लोकास्ते वै परमपूजिताः । एकः क्षमाधर्ता दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ॥  
यदिदं क्षमया युक्तमशक्यमन्यते जनः । न चैव दोषो मन्तव्यः क्षमा प्रजाधर्ता यतम् ॥  
प्रथमं योऽभिजानाति इष्टापूर्तं महोपते । परक्रोधमुको जपति जुहोति च यद्वर्त्तते ॥  
सर्वं क्षरति तत्तस्य मिथकुम्भाद्विषोदकम् । दमाध्यायमिमं पुण्यं प्रातस्तथाय यः पठेत्  
स धर्मनाममायस्य दुर्गाण्यतितिरिप्यति । दमाध्यायमिमं पुण्यं सततं ध्यायेद्विजः ॥  
स ब्रह्मलोकमप्नोति तस्मात्प्रच्यवते पुनः । श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैतत्प्रधार्यताम्  
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् । मत्पुत्रपरदारांश्च परद्रव्याणि लोभ्यते ॥



चिरवामित्र उवाच ।

नित्यकामेपरः सोऽस्तु दिवसे चैव मैथुनी ।

नित्यं तु पातकी चैव विसस्तेन्यं करोति यः ॥ ३७४ ॥

परपदात् पदतु परदारंश्च सेवतु । परनिन्दारतश्चास्तु विसस्तेन्यं करोति यः ॥ ३७५ ॥

मातरं पितरं चैव सोऽयमन्येतदुर्मतिः । स मातर्यन्यबुद्धिः स्याद्विसस्तेन्यं करोति यः ॥

परपाकं सदाश्नातु परनारी च सेवतु । वेदधिकयहृद्यास्तु विसस्तेन्यं करोति यः ॥

जमदग्निस्त्वाव ।

परस्य या ॥ प्रेथत्यं स तु जन्मनि जन्मनि । सर्वधर्मक्रियाहीनो विसस्तेन्यं करोति यः

शुनःसख उवाच ।

न्यायेन वेदानध्येतु गृहस्थोऽस्तु प्रियातिथिः ।

सत्यं वदतु बाज्रघ्नं विसस्तेन्यं करोति यः ॥ ३७६ ॥

भद्रिं जुहोतु मिथिवपहं यजतु नित्यशः । प्रह्वानस्सदनं यातु विसस्तेन्यं करोति यः ॥

श्रपय ऊतुः ।

इहमेव द्विजातीनां यदिदं शपधीकृतम् । स्वया कृते विसस्तेन्यं सर्वेषां नः शुनः सख ॥

शुनःसख उवाच ।

मया ह्यन्तर्हिताभ्यासन्विस्रानीमानि यो द्विजाः ।

धर्मं च धोतुकामेन जानीष्व मां च वासवम् ॥ ३८२ ॥

अलोमादक्षया लोका जिता यो मुनिसत्तमाः ।

विमानप्रधितिष्ठध्वं गच्छामस्त्रिदशालयम् ॥ ३८३ ॥

ततो महर्षयस्ते तु विद्याधाय पुरन्दरम् । ऊतुः पुरन्दरं वेदं वाक्त्र्यं धाम्नविशाखाः ॥

इहागत्य नरो यस्तु मध्यमं पुष्करंविशेत् । त्रिपात्रोपोषितो भूत्वा लभेदावश्यकफलम्

द्वादशे वार्षिकी दीक्षा स्मृता या ॥ वनीकसाम् ।

तस्याः फलं समग्रं च लभेदिह न संशयः ॥ ३८६ ॥

नासौ दुर्गतिमाप्नोति स्वमणैःसहमोदते । पिरिञ्चिस्थानमासाद्य तिष्ठेत् ऋक्षणोदिनम्

पुलस्त्य उवाच ।

इन्द्रेण सह संप्रीतास्तदा जग्मुस्त्रिषिष्टपम् । एवं विलोम्यमानास्ते लोभैर्बहुविधैरिदं  
नैव लोभं तदा चक्रुस्तेन जग्मुस्त्रिषिष्टपम् । इदं यः शृणुयाद्भिन्नमृषीणां चरितं शुभं  
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोके महीयते ॥ ३६० ॥

इति श्री पादपुराणे प्रथमे सुष्टिस्रष्टे सप्तसिंधादो नामैकोनविंशोऽध्यायः ।

## विंशोऽध्यायः

पुष्पवाहननृपस्याख्यानम् ।

भीष्म उवाच ।

अत्याश्रयं वती रम्या कथेयं पापनाशिनी । विस्तरेण च मे ब्रूहि याथातथ्येन पृच्छतः ।  
माहात्म्यं मध्यमस्यापि ऋषिभिः परिकीर्तितम् ।  
फलं चान्नस्य कथितं माहात्म्यं च वमस्य तु ॥ २ ॥

विष्णुना च पदन्यासः कृतो यत्र महामुने । कनीयसस्तथोत्पत्तिर्यथा भूता वदस्व मे ।  
पुलस्त्य उवाच ।

पुरारथन्तरे कल्पे राजासीत्पुष्पवाहनः । नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसन्निभः ।  
तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण भारत । कमलं काञ्चनं दत्तं यथाकामगमं नृप ॥ ५ ॥  
सप्तद्वीपानि लोकं च यथेष्टं विचरत्सदा । कल्पादौ तु समं द्वीपं तस्य पुष्करपासिना  
लोकेन पूजितं तस्मात्पुष्करद्वीपमुच्यते । तदेव ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य ततोऽम्बुजम् ॥

पुष्पवाहन इत्याहुस्तस्मात्तं देवदानवाः ॥ ८ ॥

नीपम्यमस्तीह जगत्त्रयेऽपि ब्रह्माम्बुजस्थस्य च तस्य राक्षः ।

तपोऽनुभाषादथ तस्य राक्षी नारी सहस्रैरमिवन्द्यमाना ।

तस्यात्मजानामयुतं बभूव धर्मात्मनामग्न्य धनुर्धराणाम् ।

तदत्मजोऽस्तानमिचिक्ष्व राजा मुनुर्महुर्विस्मयमाससाद ॥ १० ॥

सोऽध्यागतं पूज्य मृनिप्रधीरं प्रचेतसं वाक्यमिदं वभाषे ।

कस्माद्विभूतिरचलाग्रमस्यपूजा जाता कथं कमलजा सदृशी सुराङ्गी ॥ ११ ॥

भार्या मयात्पतपसा परितोषितेन दत्तं ममाम्बुजगृहं च मुनीन्द्र धाम्ना ।

यस्मिन्मण्डपमपि कोटिशतं नृपाणां सामात्यकुञ्जररथौघजनावृत्तानाम् ॥ १२ ॥

नालक्ष्यते कृतप्रसम्भरामिभिश्च सारागणेश्च रचिरश्मिभिरप्यगम्यम् ।

तस्मात्किमन्यजननीजठरोद्भवेन धर्मादिकं कृतमशेषजनातिगं यत् ॥ १३ ॥

सर्वमेवाथ तनयैर्यथानयापि सद्गार्यया तदखिलं कथय प्रचेतः ।

सोऽपरम्बधादधमवान्तरितं निरीक्ष्य पृथ्वीपते शृणु तदद्भुत हेतुवृत्तम् ॥

जन्मामघत्तय तु लुब्धकुलेऽपि घोरं जातस्त्वमप्यनुदिनं किल पापकारी ।

पपुरण्यभूत्तव पुनः पराङ्गसन्धिं दुर्गन्धिसरस्वकुलजाभरणं समन्तात् ॥ १५ ॥

नो ते सुहृच्चतुःपञ्चजनो न तादृक् नैव स्वसा न जननी च तदामिशस्ता ।

अतिसंमतापरमभीष्टमाभिमुखी जाता महीश तव योयिदित्यं सुरूपा ॥ १६ ॥

अभूत्तावृष्टिरीष रीद्रा कदाचनाहारनिमित्तमस्याम् ।

क्षुत्पीडितेन भवता तु यदा न किञ्चिदासादितं वन्यफलादिभक्ष्यम् ॥ १७ ॥

अधामिदृष्टं महद्भ्युजाढ्यं सरोवरं पद्मपरीतरोधः ।

पद्मान्यथादायततो बहूनि गतः पुरं वैदिश नामधेयम् ॥ १८ ॥

तन्मूल्यलाभाय पुरं समस्तं भ्रान्तं त्वयाशेषमहस्तदासोत् ।

क्रोता न कञ्चित्कमलेषु जातः क्लान्तः परं क्षुत्परिपीडितश्च ॥ १९ ॥

उपविष्टस्त्वमेकस्मिन्समार्यो भवनाङ्गणे । ततो राशौ भवांस्तत्र अधोपीन्मङ्गलध्वनिम्

समार्षस्तत्रगतवान्यत्रासी मङ्गलध्वनिः । तत्रमण्डलमध्यस्था विष्णोरर्चाविलोकिता

वैष्णवानङ्गयत्नी नाम विष्णुती द्वादशीव्रतम् । समाप्य माघमासस्य द्वादश्यां लवणाचलम्

न्यवेदयत्तु गुरवे शय्यां चोपस्कुरान्वितम् ।

अलङ्कृत्य दृषीकेशं सौघर्षं सममादरात् ॥ २३ ॥

सा तु दृष्ट्वा ततस्ताभ्यामिदं च परिचिन्तितम् । किमेभिःकमलैःकार्यवरं विष्णुरलङ्कृतः  
इति भक्तिस्तदा जाता दम्पत्योस्तु नरेश्वर । तत्प्रसङ्गात्सम्प्रत्यर्च्य केशयन्त्रवणावलम्ब  
शय्या च पुष्पप्रकरैः पूजिताऽभूच्च सर्वशः । अद्यानङ्गवती तुष्टा तयोर्ध्यान्यशतत्रयम् ।  
दीपतामादिदेशाथ कलधौतपलत्रयम् । न गृहीतं ततस्ताभ्यां महासत्त्वावलम्बनात् ।  
अनङ्गवत्या च पुनस्तयोरन्नं चतुर्विधम् । आनीय व्याहृतं खान्नं भुज्यतामिति भूपते ।

ताभ्यां च तदपि त्यक्तं भोक्ष्याथः श्वो वरानने ।

प्रसङ्गादुपचासो नौ तवाद्यास्तु शुभाषहः ॥ २४ ॥

जन्मप्रभृति पापिष्ठाद्यानां देवि दृढयने । त्वत्प्रसङ्गाद्भयद्वन्द्वे धर्मलेशोऽस्तु नाविह ॥ २५ ॥  
इति जागरणं ताभ्यां तत्प्रसङ्गादनुष्ठितम् । प्रभाते च तया दत्ता शय्या सलवणाबला  
ग्रामश्च गुरावे भक्त्या विप्रेभ्यो द्वादशीव तु । वस्त्रालंकारसंयुक्ता गावश्च कनकान्विताः  
भोजनं च सुहृन्मित्रदीनान्धरूपणीःसह । तच्च लुब्धकदासपर्यं पूजयित्वा विसर्जितम्  
स भर्वाल्लुब्धको जातः सपत्नीको नृपेश्वरः ।

पुष्करप्रकरात्तस्मात्केशवस्य तु पूजनात् ॥ २६ ॥

विनष्टाशेषपापस्य तथ पुष्करमन्दिरम् । तस्य सत्यस्य माहात्म्यादलोभतपसा नृप ।  
प्रादात्कामगमं दानं लोकनाथश्चतुर्मुखः । संतुष्टस्तयराजेन्द्र पुष्करं त्वं समाश्रय ॥ २७ ॥  
कल्पं स त्वं समासाद्य विभूतिद्वादशीवतम् । कुर्व राजेन्द्र निर्वाणमपश्यं समपाप्स्यसि  
एतदुचया तु स मुनिस्तत्रैवान्तरधीयत । राजा यथोक्तं च पुनरकरोत्पुष्पघादनः ॥ २८ ॥  
इदमाचरतो राजन्नखण्डयतता भवेत् । यथाकथंचित्कालेन द्वादशद्वादशीनृप ॥ २९ ॥  
कर्तव्या शक्तो देव विप्रेभ्यो दक्षिणा नृप । ज्येष्ठे गावः प्रदातव्यामप्यमेभूमिदत्तमा  
कनिष्ठे फाञ्जनं देयमित्येषा दक्षिणा स्मृता । प्रथमं ब्रह्मदेवत्यं द्वितीयं वैष्णवं तथा ।

तृतीयं रुद्रदेवत्यं त्रयो देवास्त्रिषु स्थिताः ॥ ३० ॥

इति कलुषविदारणं जनानां पठति च यस्तु शृणोति चापि भक्त्या ।

निरुद्धि न नृपानि देवलोके गमति च रोमसमा नियत्सराणि ॥ ३१ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ ४३ ॥

कथितं तेन रुद्रेण महापातकनाशनम् । नक्तमब्दं चरित्वा तु गवः सार्द्धं कुटुम्बिने ॥  
 हेमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद्विप्राय वाससी । एवं यः कुरुते पुण्यं शिवलोके समोदते ॥  
 एतदेव व्रतं नाम महापातकनाशनम् । यस्त्वेकमकेन क्षिपेद्देतुं वृषसमन्विताम् ॥ ४६ ॥  
 धेनुं तिलमयीं दद्यात्स पदं याति शोकम् । एतदुद्व्रतं नाम भयशोकविनाशनम् ॥  
 पञ्च नीलोत्पलं हेमं शर्करापात्रसंयुतम् । एकान्तरितनकाशी समांतेषूपसंयुतम् ॥ ४८ ॥  
 वैष्णवं च पदं याति नीलव्रतमिदं स्मृतम् । आषाढादि ऋतुर्मासमभ्यन्तं वर्जयेन्नरः ॥  
 भोजनोपस्करं दद्यात्स याति भयनं हरेः । जनप्रीतिकरं नृणां प्रीतिव्रतमिदोच्यते ॥  
 वर्जयित्वा मर्धोयस्तु दधिक्षोरपुनैक्षवम् । दद्याद्वस्त्राणिसूक्ष्माणि रसपात्रेणसंयुतम् ॥  
 संपूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति । एतद्वीर्यव्रतं नाम भवानीलोकदायकम् ॥  
 पुण्याशी यस्त्रयोदश्यां कृत्वा नक्तमधोपुनः । अशोकं काञ्चनं दद्याद्विष्णुयुक्तं दशाङ्गुलम् ॥  
 विप्राय वस्त्रसंयुक्तं प्रयुज्जप्रीयतामिति । कल्पं विष्णुपुरोस्थित्वाविशोकस्स्यात्पुनर्नृप ॥  
 एतत्कामव्रतं नाम सदाशोक विनाशनम् । आषाढादिब्रतैयस्तुवर्जयेद्यः फलाशनम् ॥  
 चातुर्मास्ये निवृत्ते तु घटसर्पिर्गुण्डान्वितम् । कार्तिक्यां तत्पुनर्हेमं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 स ह्यल्लोकमाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् । वर्जयेद्यस्तु पुण्याणि हेमन्तेशिशिरावृते ॥  
 पुण्यत्रयं च फाल्गुन्यां कृत्वा शतपात्रकाञ्चनम् । दद्याद्विकालवेलायांप्रीयेतां शिष्यकेशावी ॥  
 दद्यात् परंपदं याति सौम्यव्रतमिदं स्मृतम् । फाल्गुनादि तृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत् ॥  
 समांते शयनं दद्याद् गृहोपस्करान्वितम् । संपूज्य विप्रमिथुनं भवानीप्रीयतामिति ॥  
 गौरीलोके वसेत्कल्पं सौभाग्यव्रतमुच्यते । सन्ध्यामीनं नरः कृत्वा समांतेषु त्रुणमकम् ॥  
 वस्त्रपुगं तिलान्घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत् । लोकं सारस्वतं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥  
 एतत्सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदायकम् । लक्ष्मीमभ्यर्च्य पञ्चम्यामुपवासोभयेन्नरः ॥  
 समांते हेमकमलं दद्याद्देतुसमन्वितम् । स वै विष्णुपदं याति लक्ष्मीः स्यात्तज्जगज्जनि ॥  
 एतत्तुलसीव्रतं नाम दुःखशोकविनाशनम् । कृत्वापलेपनं शम्भोरष्टतः केशवस्य च ॥ ६५ ॥  
 याचदधं पुनर्दद्यात् धेनुर्जलघटस्तथा । जन्मायुतं स राजा स्यात्तत्तद्विषयपुरं यजेत् ॥ ६६ ॥

एतदायुर्मतनाम सर्वकामप्रदायकम् । भवेत्स्य भास्करं गङ्गां प्रेणम्यैकाममानसः ॥  
 एकभक्तनरः कुर्यादध्वमेकं विमत्सरः । यन्तांते विप्रमिथुनं पूज्यं धेनुप्रयान्वितम् ॥ ८९ ॥  
 वृक्षं हिरण्ययं दद्यात्सोऽप्यमेध फलं लभेत् । एतत्कीर्तिव्रतनाम भूतिकीर्तिफलप्रदम् ॥  
 पुनेन व्यपनं कृत्वा शम्भोर्षां केशवस्य वा । भक्षताभिः सपुण्याभिः कृत्वा गोमयमण्डलम्  
 समांते हेमकमलं तिलधेनुसमन्वितम् । शूलमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिष्यलोके महीयते ॥ ९१ ॥  
 सामगायनकंचैव सामयतमिहोच्यते । नवम्यामेकभक्तं तु कृत्वा कन्याश्च शक्तिः ॥

भोजयित्वा समंदद्यादेमकंचुफयाससी ।

हैमं सिद्धं च विप्राय दद्याच्छिष्यपदं यजेत् ॥ ९३ ॥

जगदीश्वरसुखः स्याच्छत्रुभिर्भाषयजितः । एतद्वीर्यव्रतनाम नराणां च सुखप्रदम् ॥ ९४ ॥  
 चैत्रादि चतुरोमासाञ्च दद्याद्वान्वितः । यतान्ते मज्जिकं दद्यात्तन्मयस्त्रसमन्वितम् ॥  
 तिलपात्रं हिरण्यं च ब्रह्मलोके महीयते । कल्पान्ते भूतिजननमानंदयतमुच्यते ॥ ९६ ॥  
 पंचामृतेन व्यपनं कृत्वा संपत्सरं विमोः । परस्परान्ते पुनर्दद्यादेतुं पञ्चामृताभ्याम् ॥  
 विप्राय दद्याच्छत्रुं च स पदं याति शांकरम् । राज्ञा भवति कल्याणं भूतिव्रतमिहोच्यते ॥  
 यज्ञयित्वा पुमान्मांसं यतान्ते गोप्रदो भवेत् । तद्वदेममृतां दद्यात्सोऽप्यमेधयज्ञं कर्त्तुम् ॥

अहिंसायतमिर्युक्तं कल्याणे भूयतिर्भवेत् ।

कर्ममुत्थाय वै ज्ञानं कृत्वा शाश्वतमर्चयेत् ॥ ८० ॥

भोजयित्वा यथाशक्ति मांसपत्रादिभूयः । मृगलोके परस्परान्ते मृगयतमिहोच्यते ॥  
 भाषादादिचतुर्मासं यज्ञं दद्यात् मवेन्नरः । विप्राय भोजनं दद्यात् कतिपयां गोप्रदो भवेत् ॥  
 सवेष्णवं पदं याति विष्णुयतमिहोच्यते ॥ भयनाद्यनं वायव्यं येन पुण्यतांति ॥  
 तदन्ते पुण्यजनानि पूजयेन्वा सर्वे नृप । दद्यात् शिष्यपदं यानि विप्राय पूजायाम् ॥  
 यज्ञच्छत्रप्रदकम् शंखागोप्यश्त्रप्रदम् । पावरसमे भवेद्यस्तु पञ्चरात्रं दद्यात् ॥  
 सन्ताने धातुदद्याद्वा यज्ञस्य शिवयोः । वासांसि च पिच्छाणि यज्ञस्य पुनर्दद्यात् ॥  
 ... यज्ञं वेष्णवं लोकं जिज्ञासां यावेच्छाम् । कल्याणं तत्रागच्छेत् मित्रमार्गं यत्नम् ॥



धत्तगुग्मं च विप्राय स तेजस्यो भयेन्नरः । खट्वलीकमवाप्नोति वीक्षितवतमिदं स्मृतम् ॥  
 कार्तिकादितृतीयायां प्राश्यगोमूत्रपापकम् ॥ नक्तं सरैदग्दमेकमध्वान्तेगोप्रदो भवेत् ॥  
 गौरीलोके वसेत्कल्पं ततो राजा मवेदिह । एतदुद्यमतं नाम सदा कल्याणकारकम् ॥  
 वर्जयेद्यतुरोमासान्यस्तु गन्धानुलेपनम् । शुक्तिगन्धाक्षतामृदाद्विप्राय सितवाससी ॥  
 पादणं पदमाप्नोति दृढव्रतमिदं स्मृतम् । वैशाखे पुष्पलधणं वर्जयेद्य गोप्रदः ॥ ६३ ॥  
 भूत्वा पिप्पुपदे कल्पं स्थित्वाराजामवेदिह । एतच्छान्तिव्रतं नाम कीर्तिकामफलप्रदम्  
 ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा तिलराशिसमन्वितम् । घृतेनान्यप्रदो भूत्वा बह्वि संतर्प्य स द्विजम्  
 संपूज्य विप्रदासपत्यं मान्यपत्रविभूषणैः । शक्तिखिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रांयतामिति  
 पुण्येऽह्नि दद्यादपरे ब्रह्म यात्यपुनर्भयम् । एतदुद्यमव्रतं नाम निर्माणफलदं नृणाम् ॥ ६७ ॥  
 पञ्चोभयमुखी दद्यात्प्रभूतसकलान्विताम् । दिनं पयोधतं तिष्ठेत्स याति परमं पदम् ॥  
 एतद्वै सुमतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभम् । अथै पयोधतः स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपम् ॥  
 पलादूर्ध्वं यथाशक्ति तण्डुलप्रस्थसंयुतम् ।  
 दत्त्वा ब्रह्मपदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम् ॥ १०० ॥  
 तप्तोपवासी यो दद्यादेतुं विप्रायशोभनाम् । सर्वेष्णवपदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम्  
 त्वादिशतपलादूर्ध्वं महीं हृत्वा तु काञ्चनम् । दिनं पयोधतस्तिष्ठेद्ब्रह्मलोके महीयते ॥  
 नम्रमिदं प्रोक्तं सप्तकल्पशतानुगम् । माघे मास्यथ चैत्रे वा शुद्धधेनुप्रदो भवेत् ॥  
 शुद्धव्रतं तृतीयायां गौरीलोके महीयते । महाव्रतमिदं नाम परमानन्दकारकम् ॥ १०४ ॥  
 पक्षोपवासी यो दद्याद्विप्राय कपिलाह्वयम् ।  
 ॥ ब्रह्मलोकमाप्नोति देवासुरसुपूजितः ॥ १०५ ॥  
 कल्पान्ते सर्वराजा स्यात्प्रभावव्रतमिदं स्मृतम् । वत्सरं त्वेकमकाशी सप्तस्य जलकुम्भदः  
 शिवलोके वसेत्कल्पं प्राप्तिव्रतमिदं स्मृतम् । नकाशीत्वष्टमीषु स्याद्भस्त्ररान्ते तु धेनुदः  
 पौरन्दरं पुरं याति सुगतिव्रतमुच्यते । इन्धनं यो ददेद्विप्रे वर्षादींश्चतुरस्त्वृत्तः ॥ १०८ ॥  
 घृतधेनुप्रदोऽन्ते च स परं ब्रह्म गच्छति ।  
 वैश्वानरव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १०९ ॥

एकादश्यां तु नकाशी यश्चक्रं विनियेदयेत् ।

हृत्वा समान्ते सौघर्षं विष्णोः पद्मवाप्नुयात् ॥ ११० ॥

पतङ्गपुष्पव्रतं नाम कल्पान्तेराज्यलामकृत् । पायसाशीसमान्ते तु दद्याद्विषय गोयुगम्  
लक्ष्मीलोके वसेत्कल्पमेतदेवाव्रतं स्मृतम् । सप्तम्यां नक्तभुग्दद्यात्समाप्ते गां पयस्विनीम्  
सूर्यलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिदं स्मृतम् । चतुर्थ्यां नक्तभुग्दद्यादेमन्ते गोयुगं तथा ।

पतङ्गेनायकं नाम शिघ्रलोकफलप्रदम् ।

महाफलानि यस्यस्यत्वा चातुर्मास्यं द्विजातये ॥ ११४ ॥

हेमानि कार्तिके दद्याद्योमान्ते गोयुगं तथा । पतङ्गसौघर्षं नाम सूर्यलोककृत्प्रदम् ।  
द्वादशद्वादशोपस्तु समाप्नोषोषणे नृप । गोयुगकाञ्चनेर्विषयपूजयेच्छक्तितो नरः ।  
परं पद्मवाप्नोति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम् । चतुर्दश्यां तु नकाशी समान्ते गोयुगप्रदः ।  
शैवं पद्मवाप्नोति शैवय्यकमिदं स्मृतम् । सतरात्रोपितो दद्यात्पुनः पुनः द्विजातये ।  
पर्यव्रतमिदं प्रादुर्ग्रहलोककृत्प्रदम् । असीं कार्शी समासाय जेतुं दत्ते पयस्विनीम् ।

शङ्खलोके वसेत्कल्पमिदं मन्त्रव्रतं स्मृतम् ।

मुखवासं पण्डित्यव समाप्ते गोप्रदो भवेत् ॥ १२० ॥

वादनं लोकमाप्नोति वादनव्रतमुच्यते । चान्द्रायणं च यः कुर्याद्वैमं चन्द्रं निदेशये  
चन्द्रव्रतमिदं मोक्षं चन्द्रलोककृत्प्रदम् । श्रेष्ठे पञ्चम्या योऽन्ते हेमधेनुप्रदो विषम् ।  
पाल्यय्माचतुर्दशो यद्व्रतमिदं स्मृतम् । सहस्रविधानकं कुर्यान्मृतावापां शिवाङ्गः ।  
समानेपेनुशो वातिमवान्नयन्मुच्यते । माघे निश्चार्द्रवासाः स्यात्सप्तम्यां गोप्रदोऽन्ते ।

द्विचि चन्द्रां वसित्वेह राजा स्यात्पवनप्रदम् ।

त्रिशाशोपितो दद्यात्सप्तम्यां भवनं गुणम् ॥ १२५ ॥

भाद्रित्यलोकमाप्नोति धामव्रतमिदं स्मृतम् । त्रिसप्तम्यां दत्तस्य मुतावापां विनोदः ।  
ददन्मोक्षमवाप्नोति मोक्षव्रतमिदं स्मृतम् ।

इत्यां सितद्वितीयायां निन्दो नृपव्रतप्रदम् ॥ १२७ ॥

३ गोप्रदो वाति विषय विषयमिदम् । कांस्यस्यैव सारं दक्षिणापदि ॥

समाप्ते गांच योदयात्सयातिशिषमन्दिरम् । कल्पान्ते राजराजस्स्यात्सोमव्रतमिदं स्मृतम् ॥  
प्रतिपत्स्वेकमकाशी समाप्ते च फलप्रदः । वैश्वानरपदं याति शिषिव्रतमिदं स्मृतम् ॥  
द्वैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमभ्वयुगान्वितम् । दद्यात्तृतोपचासः स दिविकल्पशतं वसेत् ॥  
तदन्ते राजराजस्स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम् । तद्वत्सेमरथं दद्यात्करिभ्यां संयुतं पुनः ॥

सत्यलोके वसेत्कल्पं सहस्रमपि भूमिपः ।

भवेदिहागतो भूम्यां करिव्रतमिदं स्मृतम् ॥ १३३ ॥

दशम्यामेकमकाशी समाप्ते दशधेनुदः । दोषं च काञ्चनं दद्याद्ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत् ॥  
एतद्विश्वव्रतं नाममहापातकनाशनम् । कन्यादानं तु कार्त्तिक्यां पुष्करे यः करिष्यति ॥

एकर्षिशतगुणोपेतो ब्रह्मलोकं गमिष्यति ।

कन्यादानात्परं दानं नैव चास्त्वाधिकं क्वचित् ॥ १३६ ॥

पुष्करे तु विशेषेण कार्त्तिक्यां तु विशेषतः । विप्राय विधिष्वदेयन्तेषां लोकोऽक्षयो भवेत्  
तिलपिष्टमयं कृत्वा गजं रत्नसमन्वितम् ।

विप्राय ये प्रयच्छन्ति जलमध्ये स्थिता नराः ॥ १३८ ॥

तेषां चैवाक्षयो लोको भविताऽऽभूतसंश्रवम् । यः पठेच्चतुर्गुणाद्यापि व्रतपष्टिमनुत्तमाम्  
मन्वन्तर्यातं सोऽपि गन्धर्वाधिपतिर्भवेत् ॥ १३९ ॥

पष्टिव्रतं भारत पुण्यमेतत्तद्विदितं विश्वजनीनमय ॥

धोतुं यदीच्छा तव राजराज शृणु द्विजातेः करणीयमेतत् ॥ १४० ॥

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते ॥ १४१ ॥

तस्मान्मनोविशुद्धयर्थं स्नानमादौ विधीयते । अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वाजलेः स्नानं समाचरेत्  
तीर्थं प्रकल्पयेद्विद्वान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् । नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः ॥

सदर्मपाणिर्विधिना भावान्तः प्रयतः शुचिः । चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरश्रं समन्ततः ॥  
प्रकल्प्यावाहयेद्गंगामेर्मिर्मन्त्रैर्विचक्षणः । विष्णोः पादप्रसूतासि वेष्णवी विष्णुदेवता ॥

प्राहि नस्त्वेन सस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ।

तिस्रः फोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां धायुर्ध्वयात् ॥ १४६ ॥

दिवि भुव्यंतरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि । नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च  
 दक्षापृथ्वी च सुमगा विम्बकायाशिवा सिता । विद्याधरीसुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी  
 क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी ।

एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्त्तयेत् ॥ १४६ ॥

भवेत्सन्निहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी । सप्तवाराभिजतेन करसंपुटयोजितम् ॥ १५० ॥  
 मूर्ध्नि कुर्याज्जलं भूपस्त्रिचतुः पञ्च सप्तधा । स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्य तु विधानतः  
 भद्रकान्ते रथकान्ते विष्णुकान्ते वसुन्धरे । मृत्तिके हर मे पावं यन्मया कुर्वते कृतम्  
 उद्धृतासि घराहेण कृष्णेन शतबाहुना । नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुयते ॥  
 एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य तु विधानतः । उत्थाय वाससी शुभ्रे शुभे तु परिधाय वै  
 सतस्तु तर्पणं कुर्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै । ब्रह्माणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतीन् ॥

देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।

क्रूरास्सर्पास्तुपर्णाश्च तरपो जम्भकादयः ॥ १५६ ॥

विद्याधरा जलधरास्तर्पेयाकाशगामिनः । निराधाराश्च ये जीवा पापधर्मरताश्च ये ॥  
 तेषामाप्यायनायैतद्दोषते सलिलं मया । कृतोपधीतो देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः ॥  
 मनुष्यास्तर्पयेद्भक्त्या ऋषिपुत्रानृषीस्तथा । सनकश्च सनन्द्श्च तृतीयश्च सनातनः ॥  
 कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा । सर्वे ते तृप्तिमायान्तु महत्तेनाभ्युना सश  
 मरीचिमश्वगिरिस्त्री पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।

प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ १६१ ॥

देवब्रह्मसृपीन्सर्पास्तर्पयेत्साक्षतोदकैः । अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जानु च भूतले ॥  
 अग्निप्यात्तास्तथा सौम्यान्हविष्मन्तस्तथोष्मपान् ।

सुकादिनो यद्विषदस्तथा चैवाज्यपान्पुनः ॥ १६३ ॥

संतर्पयेत्पितृन्भक्त्या सत्तिलोदकचन्दनैः । सदर्भपाणिर्घिघिना पितृन्स्वास्तर्पयेत्ततः ॥  
 पञ्चाक्षीग्रामगोत्रेण तथा मातामहानपि । संतर्प्य विधियद्भक्त्या श्वं मन्त्रमुदीरयेत् ॥

मेरुपर्वतं गन्धर्वान् मे मेरुपर्वतानि गन्धर्वाः ।

ते तृप्तिमखिला वान्तु येऽप्यस्मत्तोयकाङ्क्षिणः ॥ १६६ ॥

अथ विधिना सम्यगालिखेत्पद्मप्रथः । छाक्षताद्विस्सपुण्याभिः सतितागद्वन्दनैः ।  
दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानुकीर्तनैः । नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते पिप्पुरुषिणे ॥

इष्टं नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर । दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते  
एवं सूर्ये नमस्कृत्य- त्रिःकृत्वा च प्रदक्षिणम् ।

द्विजं मां काञ्चनं चैव दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा गृहं प्रजेत् ॥ १७० ॥

हृत्पथां ततःपुण्यां प्रतिमां चापिपूजयेत् । भोजनं च ततः पश्चादुद्विजपूर्वंच कारयेत्  
मनेन विधिना सर्वं श्रूयः सिद्धिमागताः ॥ १७२ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सुहृत्खण्डे स्नानविधिर्नामविंशोऽध्यायः ।

## एकविंशोऽध्यायः

### धर्ममूर्तिराजकथानकम् ।

बुलस्त्य उवाच ।

...सीत्पुरा बृहत्कक्षे धर्ममूर्तिर्जनाधिपः । सुहृच्छक्रस्य निहता येन दैत्यास्सहस्रशः ॥  
सोमसूर्यादयो यस्य तेजसा विगठप्रभाः । भवन्ति शतशो येन हानपात्र पराजिताः ॥

यथेच्छरूपाधारी च भानुपोऽप्यपराजितः ।

तस्य भानुमती भार्या सती प्रैलोक्यसुन्दरी ॥ ३ ॥

लक्ष्मीसदृशरूपेण निर्जितामरसुन्दरी । पाद्मस्तस्याग्रमहिर्षी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥  
दशनासीसहस्राणां मध्ये श्रीरिषिराजते । नृपकोटिसहस्रेण न कदाचित्समुन्यते ॥ ५ ॥

कदाचिदास्थानगतः पप्रच्छ स्वपुरोहितम् ।

विस्मयेनावृत्तो नत्वा वसिष्ठमुपि सत्तमम् ॥ ६ ॥

भगवन्केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा । कस्माच्च विपुलं तंजो मञ्छरीरे सशोत्तमम् ॥

वसिष्ठ उवाच ।

पुरा लीलावती नाम वैद्या शिवपरायणा ।

तया दशभ्यनुर्दशां पुष्करे लपन्नाचतः ॥ ८ ॥

हेमवृक्षामरैः सार्जं यथापद्रुपिधिपूर्यकम् । शूद्रः सुपर्णकारश्च कर्मकृतसोऽभवत्त-  
भृत्योलीलावतीगेहे तेन हेमोयिनिर्मिताः । तरयो हेमपुष्पाश्च धन्वायुक्तेन पार्ष्णि-  
भतिरूपेण संपन्ना घटितास्ते सुराभिराः । धर्मकार्यमिति ज्ञात्वा न गृहीतं च वेतन-  
उज्ज्वालितश्च ते पत्न्या सुपर्णमयपादपाः । लीलावतीगृहे चापि परिचर्या च पार्ष्णि-

कृताः सान्ध्यामशादयेन द्विजशुभ्रूषणादिका ।

सा च लीलावती वैद्या कालेन महताऽनघ ॥ १३ ॥

सर्वपापयिनिमुक्ता जगाम शिवमन्दिरम् । योऽसौ सुपर्णकारश्च दरिद्रोऽप्यतिसत्त्व-  
न मूढपमादाद्वेश्यातः स भयानिह साग्रतम् । सप्तद्वीपपतिर्जातः सर्पायुतसमप्रभः  
यया सुपर्णकारस्य तरयो हेमनिर्मिताः । सम्पगुञ्ज्यल्लिताः पत्न्या सेवमानुमती तव

तस्मान्मूलोकेष्वपराजितस्त्वमारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः ।

तस्मात्स्वमप्यत्र विधानपूर्वं धाम्याचलादीन्पते कुर्वन् ॥ १७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तथेति संपूज्य सुधर्ममूर्तिर्वचो वसिष्ठस्य ददौ च सर्वान् ।

धान्याचलादोन्विधिना स्मरारेलोकं गतोऽसौ सुरपूज्यमानः ॥ १८ ॥

पश्येद्यदीमानुपनीयमानान्स्पृशेन्मनुष्यैरिह दीयमानान् ।

शृणोति भक्त्याऽथ मतिं ददाति विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति ॥ १९ ॥

दुःस्वप्नप्रशममुपैति पठ्यमानैः शीलेन्द्रैर्मवभयभेदनैर्मनुष्यैः ।

यः कुर्यात्किमु नृपपुङ्गवेह सम्यक् शान्तात्मा सकलगिरीन्द्रसंप्रदानम् ॥ २० ॥

भीष्म उवाच ।

किमभीष्टवियोगशोकसंधानलमुद्धर्तुमुपोषणं वर्त धा ।

विभ्रवध्रुवकारि भूतलेऽस्मिन्मवभीतिरपि सुदृढं च यंसः ॥ २१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

परिवृष्टमिदं जगत्प्रियं ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात् ।

तच्च भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये घटमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम् ॥ २२ ॥

पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीवतम् । दशम्यां लघुभुविद्वाङ्गारभेत यमेन तु ॥

उषड्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तघातनपूर्वकम् ।

एकादश्यां निराहारः सप्तम्याभ्यर्च्य केशवम् ॥ २४ ॥

ध्रियं ब्रह्मचर्यं विधिबद्धोक्ष्येऽहं चापरेऽहनि । एवं नियमकृतसुप्त्वा प्रातस्तथायमातपः

ज्ञानं सर्वोपधौ कुर्यात्पञ्चगव्यजलेन तु । शुभ्रमाश्याम्बरधरः पूजयेच्छ्रीशानुत्पलैः ॥ २६ ॥

विशोकाय नमः पादौ जंघे च वरदाय वै । धीशाय जानुनी तद्वदूरु च जलशायिने ॥

कन्दर्पाय नमो गुह्यं माधवाय नमः कटिम् । दामोदरायैत्युदरं पार्श्वे च विपुलाय वै

नाभिं च पद्मानामाय हृदयं ममथाय वै । धीधराय विमोर्धक्षकरो मधुभिदे नमः ॥

वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्थं पद्ममुखाय वै ।

नासाग्रशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी ॥ ३० ॥

ललाटं वामनायेति हार्ये च पुनर्मुधी । मल्लकं माधवायेति किरीटं विश्वकपिने ॥ ३१ ॥

नमः सर्वात्मने तद्वच्चिर इत्यभिपूजयेत् । एवं सम्पूज्य गोविन्दं धूपमाख्यामुलेपनैः ॥

ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलं कारयेन्मृदा । चतुरस्रं समन्ताभारजिमात्रमुदक्प्लवम्

श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो घग्गत्रयसमावृतम् । त्रिरङ्गुलोच्छ्रिता यत्रास्तद्विस्तारो द्विरङ्गुलः

स्थण्डिलस्योपरिष्ठान्तु भित्तिरष्टांगुला भवेत् ।

नदी पालुक्याः सूर्ये लक्ष्म्याः प्रतिवृत्तिं न्यसेत् ॥ ३५ ॥

स्थण्डिले सूर्यमध्यस्थे लक्ष्मीमभ्यर्चयेद्बुधः ।

नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः प्रियै ॥ ३६ ॥

नमस्तुष्ट्यै नमः पुष्ट्यै सुष्ट्यै दृष्ट्यै नमोनमः । विशोका दुःखनाशाय विशोकावरदास्तु मे

विशोका मेऽस्तु संपत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये । ततः शुभ्राम्बरैः सूर्यं वेद्ययसम्पूजयेत्पल्लैः

भक्ष्यैर्नानाविधैस्तद्वत्सुवर्णकमलेन च । राजर्तुषु च पार्श्वेषु न्यसेद्दर्भोदकं बुधः ॥ ३१ ॥

ततस्तु नृत्यगीतानि कारयेत्सकलां निशाम् । यामत्रये व्यतीते तु तत उत्थाय मानव  
अभिगम्य च पिप्राणां मिथुनानि च पूजयेत् । शक्तिरह्मणी चैकं धायन्नमाद्यानुलेपनं  
शयनस्थानि पूज्यानि नमोऽस्तु जलशायिने । ततस्तु गीतवाद्येन राश्यां जागरणे कृते  
प्रभाते च ततः स्नानं कृत्वा द्वाग्दत्तमर्चयेत् । भोजयेच्च यथाशक्ति चित्तशाठ्येन वर्जितं

भक्त्या ध्रुत्वा पुराणानि तद्दिनं चातिवाहयेत् ।

अनेका विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् ॥ ४४ ॥

ग्रतान्ते शयनं दद्याद्वगुडधेनुसमन्वितम् । सोपधानं सविभ्रामं स्यात्स्तराचरणं शुभम् ॥

तथा लक्ष्मीर्नरेश त्वां न परित्यज्य गच्छति । तथा सुकृपतारोग्यमशोकं वास्तु मे सदा

यथा देवेन रहिता न लक्ष्मीर्जायते कचित् ।

यथा विशोकता मेऽस्तु भक्तिरग्रा च केशवे ॥ ४५ ॥

मन्त्रेणानेन शयनं गुडधेनुसमन्वितम् । सूर्यश्च लक्ष्म्यासहितो दातव्यो भूतिमिच्छता ॥

उत्पलं करपीरं घाण्ड्यलानं चैव कुङ्कुमम् । केतकं खिलपुवारं च मल्लिकागन्धपादला ॥

कदम्बं कुञ्जकज्जातीशस्तान्येतानि सर्वदा ।

भीष्म उवाच ।

गुडधेनुविधानं च समाचक्ष्व मुनीश्वर ॥ ५० ॥

किं कृत्वा देन मन्त्रेण दातव्या तदिहोच्यताम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

गुडधेनुविधानस्य यद्वृषमिह यत्फलम् ॥ ५१ ॥

तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम् । कृष्णाजिनं चतुर्दशं प्राग्भीषं चिन्त्यसेदुषि ॥

गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानाम्भीर्यं सर्वतः । लब्धेणकाजिनं तद्वद्वत्सं च परिकल्पयेत् ॥

प्राङ्मुखीं कल्पयेद्देनुंमृदा वा गांसघटसकाम् । उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदाभारवतुष्टयम्

घटसं भारेण कुर्वीत भारम्यां मध्यमा स्मृता ।

अर्द्धभारेण घटसस्यात्कनिष्ठा भारकेण ॥ ५५ ॥

चतुर्थांशेन घटसः स्याद्वगृहघितानुसारतः ।



धेनुवत्सो हतो चोमी सितसूक्ष्माभरावृतौ ॥ ५६

केकर्णाविभ्रुपादौ शुविमुकाफलेक्षणौ । सितसूत्रसिराजालौ सितकम्बलकम्बलौ ॥  
 व्रणण्डकपृष्ठौ द्वौ सितचामरलोमकी । विद्रुमसूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ ॥ ५८  
 अनाक्षियुगोपेतायिन्द्रनीलकनीमिकौ । क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहौ शुभ्रातिकमनीपकौ  
 वर्णभृङ्गाभरणौ राजतानुप्रवुरौ च तौ । नानाफलसमायुक्तौ धानगन्धकरण्डकौ ॥  
 येषं रचयित्वा तु धूपदीपैस्तथाचरेत् । या लक्ष्मीस्तर्ज्यभूतानां या च देवेष्वप्यस्थिता  
 नुक्पेणसा देवीममपारंपर्यपोहतु । विष्णोर्वंक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा याच विभावरी  
 चन्द्रार्कशकशकिरा सा धेनुर्वरदास्तु मे ।

स्वधा त्वं पितृमुष्यानां स्वाहा यज्ञभुजां यतः ॥ ६१ ॥

सर्वपापहरा धेनुस्तस्माद्भूतिं प्रयच्छ मे । एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 धानमेतद्देनूनां सर्वांसामपि पश्यते । यास्तु पापविनाशिन्यः पठन्त्येव दशर्धेनवः ॥ ६५ ॥  
 तं स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप । प्रथमा गुडधेनुः स्याद् धुनधेनुरथापरा ॥  
 जलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलनामिका । क्षीरधेनुः पञ्चमी च मधुधेनुस्तथा परा ॥  
 षष्ठी शर्कराधेनुरष्टमी दधिकक्षिप्ता । रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात्स्वरूपतः ॥ ६८ ॥

कुम्भास्त्वू रसधेनूनामितरास्तां स्वराशयः ।

सुवर्णधेनुं चाप्यत्र केचिद्विच्छन्ति मानवाः ॥ ६९ ॥

चनीतेन तैलैश्च तथान्येऽपि महर्षयः । एतदेव विधानं स्यात्त एवोपस्करास्त्वृताः ॥  
 तन्त्रवाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि । यथाधातुं प्रदातव्याः भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः  
 गुडधेनुप्रसङ्गेन सर्वास्तथ मयोदिताः । अक्षेयवत्फलदाः सर्वपापहराः शुभाः ॥ ७२ ॥  
 तानामुत्तमं यस्माद्विशोकद्वादशीव्रतम् । तद्भस्त्वेन चैवात्र गुडधेनुः प्रशस्यते ॥ ७३ ॥  
 मयते विपुले पुण्ये व्यर्थापाते तथा पुनः । गुडधेनवाद्यो देवा उपरागादि पर्वसु ॥ ७४ ॥  
 वैशोकद्वादशी चैवा सर्वपापहराशुभा । यामुपोष्य नरो याति तद्विष्णोः परमे पद्म्  
 हलोके स सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च । वेष्णवं पुरमाप्नोति मरणे स्मरणे हरेः ॥ ७६ ॥  
 नवार्घदशहस्त्राणि दश चाष्टौ च धर्मघित् ।

॥ शोफदुःखदौर्गत्यं तस्य सञ्जायते नृप ॥ ७७ ॥

नारी या कुर्वते या तु विशोफद्वादशीमिमाम् ।

नृत्यगीतपरा नित्यं साऽपि तत्फलमाप्नुयात् ॥

यस्मादग्रे हरेर्नृत्यमनन्तं गीतवादनम् ॥ ७८ ॥

इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सभ्यश्च मधुमुरनरकारैरर्चनं वाद्य पश्येत् ॥

मतिमपि च जनानां यो वदतीन्द्रलोके स वसति विबुधीधैः पूज्यते फलपमेकम् ॥

भीष्मउवाच ।

भगवन्भ्रोतुमिच्छामि वानमाहात्म्यमुत्तमम् । यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम् ॥ ८० ॥

पुलस्त्य उवाच ।

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा नृपसत्तम ॥ ८१ ॥

यत्प्रदातानन्तलोकाग्राप्नोति सुरपूजिताम् । पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च ॥ ८२ ॥

नतत्कलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते । तस्माद्दानं प्रवक्ष्यामि पर्यतानामनुकमान् ॥ ८३ ॥

प्रथमो धान्यशीलः स्याद्वृद्धिर्तीयो लवणाचलः । शुद्धाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः ॥

पञ्चमस्तिलरीलस्तथाप्यष्टः कार्पासपर्वतः । सप्तमो घृतशीलः स्यात्तृतीयस्तथाष्टमः ॥

राजतो नयमस्तद्वदशमः शर्कराचलः । वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः ॥ ८४ ॥

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये । शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरान्तं शशिक्षये ॥ ८५ ॥

विषाहोरसवय्वेषु द्वादस्यामणवा पुनः । शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा विधानतः ॥

धान्यर्क्षोत्तादयो देवाः कार्तिवर्षा ज्येष्ठपुष्करे । तीर्थेष्वायतनेष्वपि गोष्ठे वा मपनाङ्गणं ॥

मण्डपं कारयेद्वत्पा चतुरश्रमुदङ्मुखम् । प्रागुदकप्रवणं पुण्यं प्रादुर्मुखं वा विधानतः ॥

गोमयेनानुलितायां भूमावास्तार्यं वै कुर्यात् । तन्मध्ये पर्यन्तं कुर्याद्विष्कर्मपर्वताविव ॥

धान्यद्रोणसहस्रेण सर्वद्विरिहोत्तमः । मध्यमः पञ्चशतैः कनिष्ठश्च त्रिभिः शतैः ॥

मेघमंहाग्रहिमदस्तु मध्ये सुपर्णवृक्षत्रयसंयुक्तः स्यात् ॥

मूर्धन्यपश्चादमध्यादरेण कार्यं त्वनेकं च पुनर्द्वित्रायुः ॥ १३ ॥

----- विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रे ॥ १३ ॥

१ एकपिरोऽध्यायः ] \* धान्यादिदशविधशीलदानविधिघर्षणम् \*

२१३

पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो याम्येन गोमेदकपञ्चरागैः ॥ ६४ ॥  
 पञ्चाश गार्हत्मनीलरत्नैः सीम्येन वैदूर्यकपुष्परागैः ।  
 धीवज्रखण्डैरमितःप्रचालैर्लताग्नितो भौक्तिकप्रस्तारद्वयः ॥ ६५ ॥  
 प्रह्लादपवित्र्युर्मगधान्पुरारिदवाकरोऽप्यत्र हिरण्यमयः स्यात् ॥  
 तथेक्षुषंशावृतकन्दरस्तु घृतोदकप्रसवणो विशासु ॥ ६६ ॥  
 शुभ्राभ्यराण्यमुधराधलिः स्यात्पूर्वेण पीतानि च वक्षिणेन ।  
 चास्रांसि पञ्चादय कर्पूराणि रत्नानि चैषोत्तरी घनानि ॥ ६७ ॥  
 रौप्यान्महेन्द्रप्रमुखांस्तथाऽष्टौ संस्थाप्य लोकाधिपतीन्क्रमेण ।  
 नानाघनाली च समन्ततः स्यान्मनोरममाल्यविलेपनं च ॥ ६८ ॥  
 पितामहं चोपरि पञ्चवर्णममलान्पुष्पाभरणं सितं च ।  
 इत्थं निवेश्यामशीलमग्नौ मेरोस्तु विष्कम्भगिरीन्क्रमेण ॥ ६९ ॥  
 तुरीयमाग्रेण चतुर्विंशं च संस्थापयेत्पुष्पविलेपनाक्षरम् ।  
 पूर्वेण मन्दमनैकफलीञ्च युक्तं कामेन काञ्चनमयेन विराजमानम् ॥ ७० ॥  
 याम्येन गन्धमदतो विनिवेशनीयो गोपूरसंघयमयः कलधीतधाञ्च ।  
 ह्रीमेन यक्षपतिना घृतमानसेन वस्त्रेण राजतवनेञ्च सुसंयुतस्यात् ॥ ७१ ॥  
 पञ्चासिताचलमनेकसुगन्धपुष्पसौधर्णपिप्पलहिरण्यमयंसंयुतम् ।  
 आकारयेद्भजतपुष्पवनेन तद्वद्वस्त्रान्वितं दधिसितोदसरस्तथामे ॥ ७२ ॥  
 संस्थाप्य तं विपुलशीलमधोत्तरेण शीलं सुपाश्वर्यमपि मागमयं सप्तस्त्रम् ।  
 पुष्पैश्च हेमघटपादपरोखरं तमाकारयेत्कनककेतुविराजमानम् ॥ ७३ ॥  
 माक्षीकमद्रसरसा च घनेन तद्वद्वीप्येण आसुरवितानयुतं विधाय ।  
 होमश्चतुर्मिथवेदपुराणविद्विर्दान्तरनिन्द्यचरितारुतिमिद्विजेन्द्रैः ॥ ७४ ॥  
 पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं कार्यस्तिलैर्घण्टधूतेन समितकुशीञ्च ।  
 रात्रौ च जगत्समुद्रतमोत्तरपैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥ ७५ ॥  
 त्वं सर्वं देवमाण्ययामनिधे विरुद्धमस्मदुष्टद्वेषमरपर्वत नाशपाशु ।

क्षेमं विधास्य कुरु शान्तिमनुत्तमां च संपूजितः परममक्तिमता मया हि ।  
 त्वमेव भगवानीशो ब्रह्माविष्णुर्दिवाकरः । मूर्तामूर्तमयं बीजमतः पाहि सनातन ॥  
 यस्मात्त्वं लोकपालानां विश्वमूर्तेश्च मन्दिरम् ।

यद्वादित्यपत्न्यां च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ १०८ ॥

यस्मादशून्यममरेनारीभिश्च शिरस्तव । तस्मान्नामुदरामुष्माद्बुद्धुःकसंसारसागरात् ॥  
 एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मंदरं चाभिपूजयेत् । यस्माच्चैत्रयेन त्वं भद्रादयेन च पर्वत ॥  
 शोभसे मन्दरक्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव । यस्माच्चूडामणिर्जम्बूद्वीपे त्वं गन्धमादन ॥  
 गन्धर्वगणशोभापांस्ततः कीर्तिर्दृढास्तु मे । यस्मात्त्वं केतुमालेन यैत्राजेन घनेन च ॥  
 हिरण्यमाश्मशोभापांस्तस्मात्पुष्टिधुषास्तु मे । उत्तरेः कुक्षिर्ब्रह्मात्सावित्रेण घनेन च  
 सुपार्श्वराजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे । एषमामन्य सान्सर्वान्प्रभाते विमलेपुनः ॥  
 ज्ञात्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् । विष्कम्भपर्वतान्दद्याद्द्विगन्धःक्रमशोनृप ॥  
 गायो देयाश्चतुर्विंशदधवा दश पार्थिव । शक्तिः सप्त चाष्टौ वा पञ्च दद्यादशक्तिमात्र  
 एकापि गुरवे देया कपिलाऽथ पथस्थिनी । पर्वताग्रामशेषाणामेव एव विधिःस्मृतः ॥  
 त एव पूजने मन्त्रास्त एषोपस्कृताः स्मृताः । ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनां च सर्वतः  
 स्वमन्त्रैर्णैव सर्वेषु होमः शैलेषु पठ्यते । उपवासी भवेन्नित्यमशक्तो नक्तमिष्यते ॥  
 विधानं सर्वशीलानां क्रमशः शृणु पार्थिव । दानेषु चैव ये मन्त्राः पर्वतेषु यथाफलम् ॥  
 भन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्नं प्राणाः प्रकीर्तिताः । भन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदानेन वर्धते ॥  
 भन्नमेव यतोऽलक्ष्मीरुनमेव जनार्दनः । धान्यपर्यंतस्त्वये पाहि तस्मान्नगोत्तम ॥ ११३ ॥  
 भनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम् । मन्वन्तरातं सामं देवलोके महीयते ।  
 अप्सरोगणगन्धर्वैराकीर्णं विराजितः । विमानेन दिवः पृष्ठमायाति नृपसत्तम ॥  
 फर्मक्षये राजराज्यमाप्नोतीह ॥ संशयः । अथातः संप्रवक्ष्यामि लघणाचलमुत्तमम् ॥  
 यत्प्रदानान्नरो लोकमाप्नोति शिवसंयुतम् । उत्तमः षोडशद्रोणीः कर्तव्यो लघणाचलः  
 मध्यमश्च तदर्धेन चतुर्भिर्धमस्मृतः । विचहीनो यथाशक्ति श्रोणाद्बुद्धं च कारयेत् ॥  
 चतुर्धा शैव विष्कम्भपर्वतान्कारयेत्पृथक् । विधानं पूर्ववत्कुर्याद्ब्रह्मादीनां च सर्वतः ॥

कविशोऽध्यायः ] \* धान्यादिदशविधशैलदानविधिघर्णनम् \*

२१५

द्वन्द्वमयं सर्वलोकपालनिवेशनम् । सरांसि घनवृक्षादि तद्व्यान्यानिवेशयेत् ॥१२६॥  
 स्याज्जागरमन्त्राणि दानमन्त्रान्निबोधत । सौभाग्यरससंयुक्तो यतोऽयं लवणे रसः ॥  
 । शतमकत्वेन च मां पाह्यापन्नं नरोत्तम । यस्मादन्ये रसाः सर्वे नीत्कटा लवणं पिता  
 प्रेषश्च शिष्योर्नित्यं तस्माच्छान्तिप्रदो भव । विष्णुदेहसमुद्भूतो यस्मादारोग्यघर्णनः  
 तस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् ।

भनेन विधिना यस्तु दद्यात्तुल्यपर्यन्तम् ॥ १३१ ॥

इमांलोके वसेत्कल्पं ततो याति परां गतिम् । भतः परं प्रवक्ष्यामि गुह्यपर्वतमुत्तमम् ॥  
 परप्रदानान्तरः स्वर्गं प्राप्नोति सुरपूजितः । उत्तमो दशभिर्भारैर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः ॥  
 त्रिभिर्भारैः कनिष्ठः स्यात्तर्धेनाल्पवितवान् ।

तद्व्यामन्त्रणं पूजां दीप्तवृक्षान्सुरार्चनम् ॥ १३६ ॥

विष्कामपर्वतांस्तद्वत्सरांसि घनदेशताः । शोभं जगरणं तद्वत्सोकपाहाधिपासनम् ॥  
 धान्यपर्वतवत्कुर्वादिमं मन्त्रमुदीरयेत् । यथा देवेषु विश्वात्मा प्रचरोऽयं जनार्दनः ॥  
 सामयेदस्तु धेवानां महादेवस्तु योगिनाम् ।

प्रणवः सर्वमन्त्राणां भारीणां पार्वती यथा ॥ १३९ ॥

तथा रसानां प्रवरः सर्वभेक्षुरसो भूतः । मम तस्मात्परां लक्ष्मीं ददातु गुह्यपर्वतः ॥  
 यस्मात्सौभाग्यशायिन्या धामत्वं गुह्यपर्वत । निर्मितश्चादिपार्यत्यातस्माग्मां पाहिसर्वदा  
 भनेन विधिना यस्तु दद्यात्तुगुह्यमयं गितिम् । सम्पूज्यमानो गन्धर्वैर्गौरीलोके महीयते  
 पुनः कल्पशतान्ते च सत्तद्वापाधिपो भवेत् । आयुरारोग्यसंपन्नः शत्रुनिश्चापराजितः  
 भव पापहरं धर्मे सुपर्णाबलमुत्तमम् । यस्य प्रदानाद्भवनं वैरिभ्यः पालितं मानवाः ॥  
 उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः । तर्धेनाधमस्तद्वत्पवित्रोऽपि मानवः ॥  
 दद्यादेकपलाद्गुह्यं यथाशक्ति चित्तसतः । धान्यपर्वतपतस्ये विद्भ्याद्राजसुतम् ॥

विष्कामशैलांस्तद्वत् अतिविष्णुः प्रतिपादयेत् ।

नमस्ते सर्वषोडशैः श्लाघ्यमप्य ये नमः ॥ १४७ ॥

यस्मादनन्तरं तद्वत्तस्मात्पाहि शिलोच्चय । यस्माद्भनेरपत्यं त्वं यस्मात्पुत्रो जगत्पतेः

हेमपर्वतकूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम । अनेन विधिना यस्तु दद्यात्कनकपर्वतम् ॥  
 स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकारकम् । तत्र कल्पशतं तिष्ठेत्ततो याति परांगतिम् ॥  
 अथातः संप्रयक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः । यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम्  
 उत्तमो दशभिर्द्रोणैर्मध्यमः पञ्चमिः स्मृतः ।

त्रिभिः कनिष्ठो राजेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तितः ॥ १५२ ॥

पूर्ववच्चोपरं सर्वं विष्कम्भपर्वतादिकम् । दानमन्त्रं प्रयक्ष्यामि यथा च नृपपुङ्गव ॥  
 यस्मान्मधुपथे विष्णोर्देहस्येदसमुद्भवाः । तिलाः कुशाश्च मापाश्च तस्माच्छान्तिप्रदोभव  
 हव्यकज्योपुयस्माश्च तिला एव हि रक्षणम् । लक्ष्मीं च कुरुशैलेन्द्र तिलाचलनमोऽस्तुते  
 इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् ।

स धेष्ण्यं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ १५६ ॥

कार्पासपर्वतश्चैव विशद्वारैरिहोत्तमः । दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः कनिष्ठः पञ्चभिर्मतः ॥ १५७ ॥  
 भारेणादपथनो दद्याद्विचाराद्यविधर्जितः । धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्य राजसत्तमः ॥ १५८ ॥  
 प्रभातायां च शर्वर्या दद्यादिदमुदीरयेत् । त्वमेवावरणं यस्माद्भोकानामिह सर्वदा ॥  
 कार्पासाद्रे नमस्तस्मादधोऽध्वंसनो भव । इति कार्पासशैलेन्द्र यो दद्याच्छर्वसन्निधौ  
 रदलोके षसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह । अथातः संप्रयक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम् ॥

तेजोमयं घृतं पुण्यं महापातकनाशनम् ।

विशत्याघृतकुम्भानामुत्तमः स्याद् घृताचलः ॥ १६२ ॥

दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चमिस्त्वधमः स्मृतः ।

अल्पवित्तोऽपि कुर्यात् द्वाभ्यामिह विधानतः ॥ १६३ ॥

विष्कम्भपर्वतांस्तद्वचतुर्भागेन कल्पयेत् । शाळितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेद्  
 कारयेत्संहतानुशान्यथाशोभं विधानतः । वेष्टयेच्चुक्रुवासोभिरिधुवण्डफलादिकैः ॥  
 धान्यपर्वतपरसर्वं पिधानमिह पठ्यते । अधिवासनपूर्वं हि तद्वद्वोमसुरार्चनम् ॥ १६६ ॥  
 प्रभातायां च शर्वर्यां गुरवे विनिवेदयेत् । विष्कम्भपर्वतांस्तद्वद्विगम्यः शान्तमानसः  
 यस्मादमृततेजसि । तस्माद्घृताचिर्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शंकट

तेजोमयं ब्रह्म घृते चैव व्यवस्थितम् । घृतपर्वतरूपेण तस्मान्नः पाहि भूधर ॥

अनेन विधिना दद्याद् घृताचलमनुत्तमम् ।

महापातकयुक्तोऽपि लोकमायाति शाम्भवम् ॥ १७० ॥

रसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना । विमानेनाप्सरोमिथ्य सिद्धविद्याधरेवृतः ॥

दिपदुग्भिः सार्धं याचदाभून्सगुणम् । अथातः संप्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम् ॥

तलसहस्रेण पर्वतस्यादनुत्तमः । मध्यमः पञ्चशतिकलिशतेनाधमः स्मृतः ॥ १७३ ॥

शैलेन विष्कम्भपर्वताः द्युः समन्ततः । पूर्वेण चङ्गनोमेदं दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः ॥

पुष्परसीयुतः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः ।

षैडूर्यविदुमैः पद्मात्समिधो विपुलाचलः ॥ १७५ ॥

सरागैः ससौवर्णिकुत्तरेणापि विन्यसेत् । धान्यपर्वतपत्सर्वमत्रापि परिकल्पयेत् ॥

बाहनं कृत्वा वृक्षान्देवांश्च काञ्चनान् । पूजयेत्पुष्पगन्धाद्यैः प्रभाते स्वाद्विसर्जनम्

दुगुरुभृदिषान्य इमं मन्त्रमुदीरयेत् । यथा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः ॥

रत्नमयो नित्यमलः पाहि महाचल । यस्मादलप्रदानेन तुष्टिमेति जनार्दनः ॥

पूजामन्त्रप्रसादेन तस्मान्नः पाहि पर्वत ।

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमयं गिरिम् ॥ १८० ॥

ति वैष्णवं लोकममदेश्वरपूजितः । यावत्कल्पशते सार्धं पसेत्तत्र नराधिप ॥

योग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपोमवेत् । ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिदशामुत्रापि वा कृतम् ॥

तत्सर्वं नाशमाप्नोति गिरिर्वज्राहतो यथा ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि शैल्याचलमनुत्तमम् ॥ १८३ ॥

दानान्नरो याति सोमलोकं नरोत्तम । दशभिः पलसाद्वैरुत्तमो रजताचलः ॥

अर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धेनाधमः स्मृतः । अशकोविंशतेरुत्तुर्ध्वं कारयेच्छक्तिः सदा ॥

अमपर्वतास्तद्वत्तुषीयांशेन कल्पयेत् । पूर्वचद्राजतान्कुर्यान्मन्दरादीन्विधानतः ॥ १८६ ॥

वीरतमयास्तद्वह्नीकेशान्कारयेद्बुधः । ब्रह्मविष्णवर्कवान्कार्यो नित्यमोऽत्र हिरण्यमयः

तं स्यात्तद्वन्देयां पर्वतानां च काञ्चनम् । शैवं च पूर्वचद्रुर्वाद्योमजाग्रणादिकम् ॥

दद्यात्तद्वत्प्रभाते ॥ गुरवे रौप्यपर्वतम् ।

विष्कंभशैलानृत्तिगम्यः पूज्य षष्ठ्यभिभूषणैः ॥ १८६ ॥

इमं मन्त्रं पठन्दद्याद्भस्मपाणिर्चित्सरः । पितृणां बल्लभं यस्मादिन्द्रोर्वा शङ्करस्य च ॥  
रजतं पाहि तस्मान्नः शोकसंसारसागरात् । इत्थं निवेश्य यो दद्याद्रजातचलमुत्तमम् ॥  
गधामयुतसाहस्रफलमाप्नोति मानवः । सोमलोके सगन्धर्वैः किन्नराप्सरसांगणैः ॥  
पूज्यमानो पसेद्विद्वान्यापदाभूतसंश्रयम् । भयातः संप्रवक्ष्यामि शर्कराचलमुत्तमम् ॥  
यस्य प्रदानाद्विष्णुपर्वच्छास्तुष्यन्ति सर्वदा । भूमिः शर्करामारैरुत्तमः स्यान्महाबलः  
चतुर्भिर्मध्यमः प्रोक्तो भाराम्यामघमः स्मृतम् ।

भारेण चार्द्धभारेण कुर्याद्यः स्वल्पचित्तवान् ॥ १८५ ॥

विष्कंभपर्वतात्कुर्यात्तुरीयांशेन मानवः । धान्यपर्वतयत्सर्वं हीमाम्बरसुसंयुतम् ॥ १८६ ॥  
मेरोरुपरितः स्थाप्यं हिमं तत्र तद्व्रज्यम् । मंदारः पारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः ॥ १८७ ॥  
पतङ्गक्षत्रयं मूर्ध्नि सर्वेष्वपि निवेशयेत् । हरिचन्दनसंतानीं पूर्वपश्चिमभागयोः ॥ १८८ ॥  
निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले । मन्दरे कामदेवस्तु प्रत्यग्धनत्रः सदा भवेत् ॥

गंधमादनभृङ्गे तु धनदः स्यादुदङ्मुखः ।

प्राङ्मुखो वैदमूर्तिस्तु हंसः स्याद्विपुलाचले ॥ २०० ॥

हीमी भवेत्सुपाश्वे तु सुरमी दक्षिणामुखी । धान्यपर्वतवरसर्वमाषाहनमजादिकम् ॥  
कृत्वाऽथगुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् । अतिगम्यश्चतुरः शैलानिमान्मन्त्रानुवीरयेत् ॥  
सौभाग्यामृतसारोऽयं परमः शर्कराचलः । तस्मादानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा ॥  
अमृतं पियतां ये नृ पतिता भुवि शोकराः । देवानां तत्समुत्थस्त्वं पाहिनः शर्कराचल  
मनोभवधनुर्मध्यादुदुभूता शर्करा पुनः ।

तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ॥ २०१ ॥

यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति ब्रह्मनिद्राम् ॥  
चन्द्रसूर्यप्रतीकाशमधिष्ठानुजीविभिः । सहैव यानमुत्तिष्ठेत्ततो विष्णुप्रभो दिवि ॥  
कल्पशतान्ते नृ सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । आयुरारोग्यसंपन्नो यावज्जन्मायुतत्रयम् ॥



एकविंशोऽध्यायः ] • सौरधर्मवर्णने विशोकादिसप्तमीनां व्रतविधानवर्णनम् • २१

भोजनं शक्तिः कुर्यात्सर्वशैलेष्वमत्सरः । स्वयं चाक्षारलवणमग्नीमात्तदनुज्ञया ॥२०॥  
पर्यतोपस्कारान्तर्याग्रापयेदुद्राह्मणालयम् । पतस्ते सर्वमाख्यातं शैलदानमनुत्तमम् ॥

यदन्यद्रोचते तुभ्यं तन्मां पृच्छस्व पार्थिव ! ।

भीष्म उवाच ।

भगवन्भवसंसारसागरोत्तारकारकम् ॥ २११ ॥

किञ्चिद् व्रतं समाचक्ष्व स्वर्गारोग्यफलप्रदम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

सौरधर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम् ॥ २१२ ॥

विशोकसप्तमीं तत्तद्भक्तृतीर्थां फलसप्तमीम् । शर्करासप्तमीं कुर्यात्तथा कमलसप्तमीम् ॥  
मन्दारसप्तमीं पद्मीं सप्तमीं शुभसप्तमीम् । सर्षपाः पुण्यफलाः प्रोक्ताः सर्षादेवर्षिपूजिताः  
विधानमासां पश्यामि यथावदनुपूर्वशः । यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत्  
सा तु कल्याणिनी नाम विजयाद्य निगद्यते । प्रातर्गन्धेन पयसा स्नानं नद्या समाचरेत्  
शुक्लाम्बरधरः पद्मभक्तैः परिफलयेत् ।

प्रादुमुखोऽष्टदलं मध्येतद्भक्त्या च कर्णिकाम् ॥ २१३ ॥

पुष्पाक्षतात्रिद्वेषां विन्यसेत्सर्वतः क्रमात् । पूर्वेण तर्पनायेति मार्तण्डायेति च ततः ॥  
याम्ये दिवाकरायेति विधात्र इति नैर्ऋते । पश्चिमे घण्टायेति भास्करायेति धामिले  
सौम्ये विकर्तनायेति देवायेत्यग्रे दले । आद्यावन्ते च मध्ये च नमोऽस्तु परमात्मने ॥  
मन्त्रैरेतैस्तमन्त्रैर्ध्यायेत् । शुक्लेधेस्त्रैः फलेभ्यश्चैर्धूपमाद्यानुलेपनैः ॥

स्यण्डिले पूजयेद्भक्त्या गुह्येन लघुणेन च ।

ततो व्याहृतिमन्त्रेण विसृज्य द्विजपुङ्गवान् ॥ २१४ ॥

शक्तिस्तर्पयेद्भक्त्या गुह्यक्षीरपुतादिभिः । तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
एवं नियमदृष्टमुक्त्वा प्रातरुद्याय मानवः । हस्तस्नानजपो विप्रैः सहैवगुनरायसम् ॥  
भुक्त्वा च घेहविदुषि घेडात्प्रतर्जिते । पूजपात्रं सज्जनकं सोदकुंभं निवेदयेत् ॥ २१५ ॥  
प्रीयतामत्र भगवान्परमात्मा दिवाकरः । अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्

ततस्त्रयोदशे मासि गाश्च दद्यात्त्रयोदश ।

धस्त्रालंकारसंयुक्ताः स्वर्णशृङ्गाः पयस्विनीः ॥ २२७ ॥

एकामपि प्रदद्याच्च वित्तहीनो विमत्सरः । न वित्तशाठ्यं कुर्वीत यतो मोहात्पतत्यथः  
भनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कल्याणसप्तमीम् । सर्वपापघ्निर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥  
आयुरारोग्यमैश्वर्यमनंतमिह जायते । सर्वपापहरा चेयं सर्वदेवतपूजिता ॥ २३० ॥  
सर्वदुष्टोपशमनी सदा कल्याणसप्तमीम् । इमामनन्तफलदां यस्तु कल्याणसप्तमीम् ॥  
शृणोति यः पठेद्वापि स च पापैः प्रमुच्यते । विशोकसप्तमीं तद्वद्वक्ष्यामि नृपसत्तम ॥

यामुपोष्य नरःशोकं न कदाचिदिहाश्नुते ।

माघे कृष्णतिलैः स्नातः पंचम्यां शुक्लपक्षतः ॥ २३३ ॥

कृताहारःकृसरया दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासयतं कृत्वा ब्रह्मचारी निशि स्वपेत् ॥ २३४ ॥  
ततः प्रभात उदथाय कृतस्नानजपः शुचिः । कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममर्कावेति प्रपूजयेत् ॥  
कर्पीरेण रक्तेन रक्तपस्त्रयुगेन च । यथा विशोकं भुवनं त्वयैवादित्य सर्वदा ॥ २३६ ॥

तथा विशोकता मे स्यात्स्वद्वक्तिः प्रति जन्म च ।

पयं सम्पूज्य पण्णां तु भुक्त्वा सम्पूजयेद्द्विजान् ॥ २३७ ॥

स्वयं सम्प्राश्य गोमूत्रमुदथाय कृतनैत्यकः । सम्पूज्य विप्रान्यत्नेन गुडपात्रसमन्वितम्  
सद्वस्त्रयुग्मं पद्मं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् । भतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः ॥  
ततः पुराणध्वणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता । भनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः ॥  
कुर्यादावत्पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी । प्रतांते कलशं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ॥

शय्यां सोपस्कृतं दद्यात्कपिलां च पयस्विनीम् ।

भनेन विधिनायस्तु वित्तशाठ्येन घञ्जितः ॥ २४२ ॥

विशोकसप्तमीं कुर्यात्सप्ताति परमांगतिम् । यावज्जन्मसहस्राणां साम्रं कोटिरतममेव  
तावन्तशोकमाप्नोति रोगदौर्गत्यवर्जितः । यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम्

निष्कामं कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ।-

यः पठेच्छृणुवाद्वापि विशोकाभ्यां तु सप्तमोम् ॥ २४५ ॥

सोऽपीन्द्रलोकमासाद्य न दुःखी जायते कश्चित् ।

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि नाम्ना तु फलसप्तमीम् ॥ २४६ ॥

पौष्यनरः पार्विविमुक्तः स्वर्गभागवन्वेत् । मार्गशीर्षं शुभे मासि पञ्चम्यां नियतव्रतः ॥

पौष्य कमलं कारयित्वा तु काञ्चनम् । शर्करासंयुतं दद्याद्दुग्धाक्षणाय कुटुम्बिने ॥

काञ्चनं कृत्वा फलस्यैकस्य धर्मवित् । दद्याद्द्विकालवेलायां भानुर्मेघीयथामिति

शक्त्या तु विमानसम्पूज्य सप्तम्यां क्षीरभोजनम् ।

कृत्वा कुर्यात्फलव्याप्तं यावत्स्यात्कृष्णसप्तमी ॥ २५० ॥

पौष्याथ विधिवद्भनेनैव क्रमेण तु । तद्वर्द्धमफलं हत्वा सुवर्णकमलान्वितम् ॥

रापात्रसंयुक्तं वस्त्रमालासमन्वितम् । संवत्सरभनेनैव विधितोभयसप्तमीम् ॥ २५२ ॥

प्य दद्यात्कमलाः सुवर्णमन्त्रमुदीरयेत् । भानुरर्कोरविर्ब्रह्मासूर्यःशक्रोहस्तिः शिवः ॥

गन्धिमाषसुस्तृष्टा वरुणः प्रीयतामिति । प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नामकीर्तयेत्

पक्षं फलत्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् । व्रतान्ते विप्रमिश्रुनं पूजयेद्ब्रह्मभूरणोः ॥ २५५ ॥

राकलशं दद्यादेमपन्नफलान्वितम् । यथा न पिफलः कामस्तवद्वक्तारं सदा भवेत्

नक्तफलावातिरस्तु मे जन्मव्रतमग्नि । इमामन्तफलदां यः कुर्यात्फलसप्तमीम् ॥

भूतभक्ष्याश्च पुरास्तास्येदेकविंशतिम् ।

या शृणोति पठेद्वापि सोऽपि कल्याणभागवन्वेत् ॥ २५८ ॥

पावविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते । सुरापामादिकं किञ्चिद्ब्रामुष च वा हतम् ॥

सर्वं नाशमाप्सति यः कुर्यात्फलसप्तमीम् । शर्करासप्तमीवक्ष्ये तद्वत्कल्मषनाशिनाम्

सुरारोग्यमैश्वर्यं यपान्तं प्रजायते । माधवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां नियतव्रतः ॥

प्रातः स्नात्वा तिलैः शुद्धैः शुद्धमाल्यानुलेपनः ।

स्थण्डिले पद्ममालिष्य कुटुम्बेन स्वर्णकम् ॥ २६२ ॥

स्नानमः सवित्रेति गन्धपुष्पं निवेदयेत् । स्थापयेद्दुग्धम् च शर्करापात्रसंयुतम् ॥

पश्चैरलङ्कृत्य शुद्धमाल्यानुलेपनैः । स्वर्णपुष्पसमायुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥

शययेद्मयो यस्मात्त्वं पदेषु च पठ्यसे । त्वमेवामृतसर्वस्वमत धान्तिं प्रयच्छ मे ॥

पञ्चगव्यं ततः पीत्वा स्वपेत्तत्पार्श्वतः क्षितौ । सौत्सुकं जपन्नास्ते पुराणध्वजो न  
 भद्रोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनैत्यकः । तत्सर्ववेदविदुषे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ २६ ॥  
 भोजयेच्छक्तितो विप्रान्शर्कराधुनपायसैः । भुञ्जीतातैललवणं स्वयमप्यथ धाम्यतः  
 भजेन विधिता सर्वं मासि मासि समाचरेत् । संवत्सरान्ते शयनं शर्कराकलशान्वितं

सर्पोपस्करसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम् ।

गृहं च शक्तिमान्दद्यात्समस्तोपस्करान्वितम् ॥ २७ ॥

सहस्रेणाथ निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा ।

दशमिषां त्रिमिषांपि निष्केर्गकेन वा पुनः ॥ २८ ॥

पञ्चं स्यशक्तितो दद्यात्पूर्वपन्मन्त्रपाठनम् ।

वित्तशाठ्यं न कुर्यात् कुर्यान्दोषान्समश्नुते ॥ २९ ॥

अमृतं विपतो यकात्सूर्यस्यामृतमिन्द्रियः । समुत्पेतुर्जरण्यां ये शालिमुद्गोक्षवस्तु ते ॥  
 शर्कराधारसस्तस्मादिधुसारोऽमृनात्मवान् । इहा रवेरतःपुण्या शर्करा हव्यकम्पयोः  
 शर्करासतमी चेयं यात्रिमेषफलप्रदा । सर्वदुष्टोपशमनो पुत्रपौत्रविधिर्हिनी ॥ २९ ॥  
 यः कुर्यात्परया भक्षया ॥ परं ब्रह्मगच्छति । कल्पमेकं धनेत्स्यर्गे ततो याति परं परम्  
 इवमनघ शृणोति यः स्मरेद्वा परिपठतीह सुरेवरस्य लोके ।

मत्तिमपि च ददाति सोऽपि देवैर्यमपुरे परिपूज्यते मुनिभिः ॥ २९ ॥

भक्तः परं प्रचक्ष्यामि तद्वत्कमलसततमां । यस्यास्मिन्कांतनादेव तुष्यतीह विधाकरः ॥  
 यस्तन्नामलसतस्यां सुस्नातो गौरसंयतेः । तिलदाने च सौयज्यं निधाय कमलं गुग्गुलुम् ॥  
 पश्चयुग्मावृतं कृत्वा गन्धपुष्पैरपार्चयेत् । नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विषयधारिणे ॥  
 दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तुते । ततो द्विकालपेलायामुदङ्मुखमसमन्वितम् ॥  
 विप्राय दद्यात्सम्पूज्य पश्चमात्यविभूष्यते । शक्तिः कपिला दद्याद्दहृत्पविधानम् ॥  
 अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां भोजयेदुद्विजान् । यथाशक्तिं च भुञ्जीत विमानंनेत्यर्चयेत् ॥  
 भजेन विधिता गृहसततयां मासि मासि च । सर्वं समाचरेद्भक्तः वित्तशाठ्यविषयैः ॥  
 प्रव्रज्यते शयनं दद्यात्सुषुप्तं कर्मलान्वितम् ॥ ३० ॥

गाश्च प्रदद्याच्छ्रुतया ॥ सुवर्णस्य पयस्विनीः । भाजनासनदीपादीन्दद्यादिष्टानुपस्करान्  
अनेन विधिता यस्तु कुर्यात्कमलसप्तमीम् । लक्ष्मीमनन्तामभ्येति सूर्यलोके च मोदते

कल्पे कल्पे ततो लोकान्सप्त गत्वा पृथक् पृथक् ।

अप्सरोभिः परिवृतस्ततो याति परां गतिम् ॥ २८८ ॥

पश्येदिमां यः शृणुयान्मुहूर्ते पश्येद्भवयाऽप्य मतिं ददाति ।

सौऽप्यत्र लक्ष्मीममलामपाप्यगन्धर्वविद्याधरलोकमेति ॥ २८९ ॥

अतः परं प्रयक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् । सर्वकामप्रदां पुण्यां नाम्ना मन्दारसप्तमीम्  
माघस्यामलपक्षे तु पञ्चम्यां लघुभुङ्क्ष्वरः । इन्तकाष्टं ततः कृत्वा पक्षीमुपवसेद्दयुधः ॥

यिप्रान्सम्पूजयित्वा ॥ मन्दारं प्रार्थयेन्निशि ।

ततः प्रभात उदयाय कृत्वा स्नानं पुनर्द्विजान् ॥ २९० ॥

भोजयेच्छक्तितः कुर्यान्मन्दारकुसुम्राष्टकम् ।

सौवर्णं पुराणं तद्वत्पद्महस्तं सुशोभनम् ॥ २९१ ॥

पद्मं कृष्णतिलैः कृत्वा ताम्रवागेऽष्टपत्रकम् । हेममन्दारकुसुमैर्भास्कारायेति पूर्वतः ॥  
नमस्कारेण तद्वच्च सर्वायेत्यमले बले । दक्षिणे तद्वदकाय सपार्श्वेभ्यो च नैऋते ॥

पश्चिमे वैदधान्ये च वाप्येव चण्डभानवे । पूज्ये चोत्तरतः पूज्य मानन्दायेति तत्परम्  
कार्जकायां च पुराणं स्थाप्यः सर्पारमनेऽपि च ।

शुद्धयस्त्रैः समायेष्ट्य भक्ष्यैर्भाक्ष्यकलादिभिः ॥ २९२ ॥

एवमभ्यर्च्य तत्सर्वं दद्याद्देवधिदे पुनः । भुञ्जीतातैललवणं वाग्यतः प्राङ्मुखो गृही ॥  
अनेन विधिता सर्वं सप्तम्यां प्राप्तिं प्राप्तिं च । कुर्यात्संपत्सरं यावद्विचाराद्व्यविश्रितः

एतदेव प्रतान्ते ॥ निधाय कलशोपरि । गोमिर्विमषत्तः सार्द्धं दातव्यं भूतिमिच्छता ॥  
नमो मन्दारनाथाय मन्दारमधनाय च । त्वं रवे ! तारयस्यास्मानस्मात्संसारसागरात्

अनेन विधिता यस्तु कुर्यान्मन्दारसप्तमीम् ।

विद्याम्ना स सुखी भर्त्यः कर्त्यं च दिवि मोदते ॥ ३०२ ॥

इमामघौघपटलमीषणभ्यान्तर्हाविकाम् । गच्छन्सद्गुरु संसार्यर्चयां न स्पृतेवराः ॥

मन्दारसप्तमीमेतामीप्सितार्थफलप्रदाम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि सोऽपि पापैः प्रमु-  
 अधान्यामपि वक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीम् । यामुपोष्य नरो रोगशोर्काघातुप्रमु-

पुण्यमाश्वयुजे मासि कृतस्तानत्रयः शुचिः ॥

वाचयित्वा ततो विप्रानारभेच्छुभसप्तमीम् ॥ ३०६ ॥

कपिलो वृजयेद्व्रतया गन्धमाल्यानुलेपनैः । नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालया-  
 त्यामहं शुभकल्याणि स्वशरीरविशुद्धये । अथ कृत्वा तिलप्रस्थं ताम्रपात्रेण सं-  
 काञ्चनं वृषभं तद्वद्वस्त्रमाल्यगुडान्वितम् । सोपधानं च विभ्राममाज्जनासनसंयुत-  
 फलैर्नानाधिपैर्मध्येषु तपायसंसंयुतैः । दद्याद्द्विकालवेलायामर्यमाप्रीयतामिति  
 पञ्चगव्यं च संप्राश्य स्वपेद्भूमायसंस्तरे । ततः प्रभाते सज्जाते भक्त्या संतर्पयेद्वि-  
 भनेन विधिना दद्यान्मासि मासि सदा नरः । वाससी वृषभं हर्मतद्भद्रां काञ्चनोद्गा-  
 संघटसरान्ते शयनमिभ्रुदण्डगुडान्वितम् । ताम्रपात्रे तिलप्रस्थं सौचनं वृषभं तथ-  
 दद्याद्धेद्विदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति । अनेन विधिनाविद्वान्कुर्याद्यः शुभसप्तमी-  
 स्य धीर्विमला कीर्तिर्मवेज्जन्मनि जन्मनि । अप्सरोगणगन्धर्वैः पूज्यमानः पुरा-  
 तेन्द्रणाधिपो भूत्वा यापदाभूतसम्प्लयम् । कल्यादाषवतीर्णञ्च सप्तमीपाधिपो ॥  
 गहत्पासहस्रस्य ब्रह्महत्याशतस्य च । नाशायालमियं पुण्या पठ्यते शुभसप्तमं  
 इमां पठेशः शृणुयान्मुहूर्ते पश्येत्प्रसंगादपि दीयमानम् ।

सोऽप्यत्र सर्वाधविमुक्तदेहः प्राप्नोति विद्याभरतायकस्यम् ॥ ३१८ ॥

याघरसमास्सप्त नरः करोति यः सप्तमीं सप्तविधानयुक्ताम् ।

स सप्तलोकाधिपतिः क्रमेण भूत्वा पदं याति परं मुरारेः ॥ ३१९ ॥

इति धीपात्रपुराणे प्रथमे सृष्टिसर्गोऽध्यायः ।

## द्वाविंशोऽध्यायः

इन्द्रदक्षदापेनायिमास्तयोः पृथिव्यां जन्मवर्णनम् ।

भोष्म उवाच ।

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकःस्वर्लोकोऽथमहर्जनः । तपः सत्यं च सप्तैते देवलोकाःप्रक-  
पर्यायेण तु सर्वेषामाधिपत्यं कथं भवेत् । इह लोके शुभं रूपमायुरारोग्यमेव ।  
लक्ष्मीश्च विपुला ब्रह्मणःकथं स्यात्सुरपूजितम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

पुरा हुताशनःसाधै मास्तेन महीतले ॥ ३ ॥

आदिष्टः पुरुहतेन विनाशाय सुराद्विषाम् । निर्दग्धेषु ततस्तेन दानवेषु सहस्रशः  
तारकाः कमलाक्षश्च कालदंष्ट्रःपराधनुः । विरोचनस्तु संहादः प्रयातास्ते तदाच-  
अन्तःसमुद्रमाविश्य सन्निवेशमकुर्वत । अशक्ता इति तेषांऽप्यग्निमादताभ्यामुपेक्षि-  
ततःप्रभृति वी देवानामनुपास्यभुजङ्गमात्रम् । सम्पीड्य च मुनीन्सर्वान्प्रविशन्ति पुन-  
एवं युगसहस्राणि ते बीजाः सप्त पञ्च च । जलदुर्गबलाद्वाजम्पीडयन्ति जगत्त्रया-  
ततः पुनरप्यो षड्विमास्तायमराधिपः । आदिदेशाचिरादम्बुनिधिरेव विशोष्यताम्  
यस्मादस्मद्विप्रां चैव शरणं परुणालयः । तस्माद्ब्रह्मदुभ्यामप्येव शोषमेव प्रणीयता-  
तावूचतुस्ततः शकं मयशम्बरसूदनम् । अथर्षे एष देवेन्द्र सागरस्य विनाशनम् ॥ १  
यस्मात्तज्जीवनिष्कायस्य ब्रह्मः संक्षुप्तो भवेत् । तस्मादुपायमन्यं तु समाधाय पुरा-  
यस्य योजनमात्रेऽपि जीवकोटिशतानि च । निवसन्ति सुरार्धेष्ट ॥ कथं नाशमर्ह-  
पुलस्त्य उवाच ।

एषमुक्तः सुरेन्द्रस्तु क्रोधसंरक्तलोचनः । उवाचेदं पक्षो रोपादमराधग्निमास्तौ ॥ १

इन्द्र उवाच ।

न धर्माधर्मसंयोगं प्राप्नुयन्त्यमराःकचित् । भवन्ती तु विरोधेण महात्मानो च ति-  
ममाज्ञानवृत्ता यस्मान्मास्तेन समं त्वया । मुनिवत्परो भूत्वा परिगृह्य कलेवरम् ॥ १

धर्मार्थशास्त्ररहितां योनिं प्रति विभाषसो । तस्मादेकेन वपुषा मुनिरूपेण मानुषे ॥  
मास्तेन समं लोके तवो जन्म भविष्यति । यदा तु मानुस्त्वेऽपि त्वया गण्डूपशोषितः  
भविष्यत्युदधिर्वह्ने तदा देवत्वमाप्स्यसि ॥

पुलस्त्य उवाच ।

॥तीन्द्रशापास्पतितौ तत्क्षणार्त्तौ महीतले ॥ १६ ॥

भवात्तवन्तौ देहं च कुम्भाज्जन्मततोऽभवत् । मित्रावरुणयोर्धर्म्याद्वसिष्ठश्चात्मजोऽभवत्  
ततोऽगस्त्य उग्रतपा बभूव मुनिसत्तमः । अस्मदुभ्रातुःसर्वभ्राता वसिष्ठस्यानुजो मुनिः  
भीष्म उवाच ।

कथं च मित्रावरुणौ पितरावस्य तौ स्मृतौ । जन्मकुम्भादगस्त्यस्य यथाभूत्तद्वदधुना  
पुलस्त्य उवाच ।

पुरा पुराणपुङ्गवः कदाचिद्रन्ध्रमादने । भूत्वा धर्मसुतो विष्णुश्चचार विपुलं तपः ॥ १७ ॥

तपसा चास्य भीतेन विष्णुर्धर्मं प्रेषितावुभौ । शकेण माधवानङ्गावप्सरोगणसंयुतौ ॥

यदा च गीतवाद्येन भाषहावादिना हरिः । न काममाधवाभ्यां च मोहं नेतुमशक्यत ॥

तदा काममधुखीनां पिपादममज्जगणः । संक्षोभाय ततस्तेषामूर्ध्वदेशान्नराग्रजः ॥ १८ ॥

नारीमुत्पादयामास त्रैलोक्यस्यापि मोहिनीम् ।

संमोहितास्तया देवास्ती तु चैव सुरावुभौ ॥ १९ ॥

अप्सरणां समक्षं हि देवानामग्रवीक्षति ।

उर्यर्शाति च नाम्नेयं लोके कथार्ति गमिष्यति ॥ २० ॥

ततः कामयमानेन मित्रेणाह्वयतोर्वशी । प्रोक्ता मां रमयस्वेति चादमित्यप्रवीक्ष सा ॥

गच्छन्ती तु ततः सूर्यलोकमिन्दीवरक्षणा । पदगणेन वृता पश्चाद्वचनं तमभाषत ॥ २१ ॥

मित्रेणाहं वृता पूर्वं मम सूर्यः पतिः प्रभो । उवाच वदणश्चित्तं मयि संन्यस्य गम्यताम् ॥

गतायां यादमित्युक्त्वा मित्रशपमदादय ।

मयैव मानुषे लोके गच्छ सोमसुतस्मजम् ॥ २२ ॥

यतो मिथ्याधर्म एव त्यया हृतः । जलज्जन्मे ततो धीर्यं मित्रेण वदणेन च ॥



प्रक्षिप्तमथ सज्जाली द्वावेव मुनिसत्तमौ । निमिर्नाम नृपः स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीक्ष्यत ॥  
तदन्तरेऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्मवः । तस्य पूजार्मकुर्वाणं शशाप ॥ मुनिर्नृपम्  
पिदेहस्त्वं भवस्वेति शतस्तेनाप्यसौमुनिः । अन्योन्यशापादुभयोर्विशरीरे ॥ तंजसी  
जग्मतुश्शापनाशाय ब्रह्मार्जं जगत्तःपतिम् । मथ ब्रह्मसमादेशोचनेष्ववसन्निभिः ॥  
निमेपाःस्युश्च लोकानां तद्विधामायवार्धिष । वसिष्ठोऽप्यमयतस्मिन्नलकुम्भे च पूर्वपत्  
ततो जातभृतुर्बाहुः साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥

भगस्त्य इति शान्तात्मा यभूव ऋषिसत्तमः ॥ ३६ ॥

मलयस्वैकदेशे तु वैखानसविधानतः । समार्यः संवृतो विप्रैस्तपश्चक्रे सुदुष्करम् ॥  
ततः कालेन मदताः तारकादिनिर्षाडितम् । जगद्बीक्ष्य स कोपेन पीतयान्यठणालपम् ॥  
ततोऽस्य परदास्सर्वे यभूवुः शङ्कसदयः । ब्रह्मा पिण्डुश्च भगवान्परदानाय जग्मतुः ॥  
परं पृणीष्य भद्रं ते यश्चाभोष्टोऽत्रःवै मुने ।

भगस्त्यः उवाच ।

यावद् ब्रह्मसहस्राणां पञ्चविंशतिकोटयः ॥ ४३ ॥

यैमानिको भविष्यामि दक्षिणाभ्यारधमेनि । मद्रिमानोदयात्कुर्याद्यः कश्चित्पूजनं मम  
सप्तल्लोकाधिपतिः पर्यायेण भविष्यति ।

यस्तथाधर्मं पुष्करे तु मन्नाम्ना परिकीर्तयेत् ॥ ४५ ॥

स ब्रह्मपुण्यतां यातु पर एव कृतो मया । धाढं येऽत्र करिष्यन्ति पिण्डपूर्वं तु भक्तिः  
तेषां पितृगणास्तर्पे मया सह दिशि स्थिताः । वत्सकालं वसिष्यन्ति परमप्य पते मम  
परमस्तिपति तेऽप्युदया जग्मुर्देवा यथागतम् ।

तस्मादर्थः प्रदातव्यो ह्यगस्त्याय सदा युधेः ॥ ४८ ॥

भीष्म उवाच ।

कथमर्घ्यप्रदानं च कर्तव्यं तस्य ये मुनेः । पिधानं यदगस्त्यस्य पूजने तद्ददस्य मे ॥ ४९ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रत्यूषसमये विद्वान्कुर्यादस्पोदये निधिः । स्नानं शुभ्रतिलैस्तद्वज्जुःसाध्याम्यतो गृही

स्थापयेददणं कुम्भं मान्यपत्रविभूषितम् । पञ्चरात्रसमायुक्तं वृत्तपात्रेण संयुतम् ॥५॥

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सुवर्णमभ्यायतवाङ्गुदण्डम् ।

चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्ताचलसंयुतानि ॥ ५२ ॥

सकांस्यपात्राक्षतपुङ्गवयुक्तं मन्त्रेण दद्याद् द्विजपुङ्गवाय ।

उत्क्षिप्य कुम्भोपरि दीर्घबाहुमनन्यचेता यमदिङ्मुखाय ॥ ५३ ॥

श्वेतां च दद्याददिशक्तिरस्ति रौप्यैः तुरैर्हममुर्ध्नी सयत्साम् ।

धेनुं नरः क्षीरघर्ती प्रणम्य क्षण्यस्त्रयण्डाभरणां द्विजाय ॥ ५४ ॥

भासत्तरात्राङ्गुदये नृपास्य दातव्यमेतत्सकलं नरेण ।

यावत्समास्तसदशाधवा स्युरधोदुर्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित् ॥ ५५ ॥

काशपुष्पप्रतीकाश भस्मिमारुतसम्भवा । मित्रावरुणयोःपुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥

प्रत्यष्टं च फलत्यागमेवं कुर्यन्न सीदति ।

होमं कृत्वा ततः पश्चाद्भर्तयेन्मानवाःफलम् ॥ ५७ ॥

अत्रैव विधिना यस्तु पुमानर्थं निवेदयेत् । इमं लोकमवाप्नोति रूपारोग्यफलप्रदम् ॥

द्वितीयेनभुषलोकं स्थलोकं च ततः परम् । सतैव लोकानवाप्नोति सप्तार्धान्यःप्रयच्छति

इति पठति शृणोति यो हि साध्यश्चरितमपस्त्यसमर्चनं च परयेत् ।

मतिमपि च वदाति सोऽपि विष्णोर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरैर्घैः ॥ ६० ॥

भीष्म उवाच ।

सौभाग्यारोग्यफलप्रदमित्रक्षयकारकम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं यच्च तन्मे ब्रूहि महामते ॥६१॥

पुलस्त्य उवाच ।

यदुमायां पुरा देव उवाचान्धकस्तनः । कथामु सम्प्रवृत्तामु धर्म्यामु ललितामु च ॥

तदिदानीं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।

गौर्युवाच ।

दत्तः शापो हि सावित्र्या मह्यं लक्ष्म्ये सुरेश्वर ॥ ६३ ॥

यथा लक्ष्मीप्रधानत्वमहं यामि तथा यद ।

द्वाविंशोऽध्यायः ]

● गौरीतृतीयावतविधानम् ●

शङ्कर उवाच ।

भृगुष्वावहिता देवि तथैवान्यस्वयङ्कृतम् ॥ ६४ ॥

नराणामथ नारीणामाराधनमनुत्तमम् । नमस्ये पाथ वेशाखे पुण्ये मार्गशि  
शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नातः समीरसर्षपैः । गोरोचनं समोमूर्धं गोदुग्धं च घृतं  
दधिसन्दनसंमिश्रं ललाटे तिलकं न्यासेत् ।

सौभाग्यारोग्यकृपस्मात्सदा च ललिताप्रियम् ॥ ६५ ॥

प्रतिपक्षं तृतीयायां पुमान्वापि सुवासिनी । धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सि  
विधवा शुक्लवस्त्रं वै त्वेकमेव हि धारयेत् । कुमारी शुक्लवस्त्रे च परिवध्यान्तु य  
देवी च पञ्चमव्येन ततः क्षीरेण केवलम् । स्नापयेन्मधुना तद्भस्मपुष्पगन्धोदके  
पूजयेन्नुत्कृष्टपुष्पैस्तु फलेर्नानाभिधैरपि । धान्यलज्जाद्विलक्षणगुडक्षीरघृतान्विते  
शुक्लाक्षततिलैरर्चा कार्या देवि सदा त्वया । पादयोरर्चनं कुर्यात्प्रतिपक्षं घरानने  
घरदायै नमः पादौ तथा गुल्फौ श्रियै नमः ।

मशोकायै नमो जङ्घ्ये पार्वत्यै जानुनी तथा ॥ ७३ ॥

ऊरु माङ्गल्यकारिण्यै घामदेव्यै तथा कटिम् । पद्मोदरायै जठरं नमः कण्ठे धि  
करीसौभाग्यदायिन्यै बाहू च सुमुखश्रियै । मुखं दर्पयिनाशिन्यैस्मरदायै स्मिर्तं ।  
गौर्यै नमस्तथा नासामुत्पलायै च लोचने । तुष्ट्यै ललाटमलकं कात्यायन्यै नम  
नमोगौर्यै नमः पुष्ट्यै नमः कान्त्यै नमःश्रियै । रम्भायैललितायै च घामदेव्यै नम  
एवं सम्पूज्य विभिन्नद्वयतः पद्मालिखेत् । पद्मे षोडशभिर्युक्तं क्रमेणैव सकर्णित  
पूर्वेण विन्यसेद्गौरीप्रपण्णं च ततः परम् । भवार्तो दक्षिणे लङ्घद्रुद्रार्णो च ततः  
विन्यसेत्पश्चिमे भागे सौम्यां मदनवासिनीम् ।

वायव्ये पाटलामुद्रामुत्तरेण तथा उग्राम् ॥ ८० ॥

साध्यां पथ्यां तथा सौम्यां मङ्गलां कुमुदां सतीम् ।

मद्रां च मध्ये संस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि ॥ ८१ ॥

कुसुमैः शलाघ्रिपारं नमस्कारेण विन्यसेत् । गीतमङ्गलघोषं च कारयित्वा सुपासि

पूजयेद्रक्तवासोमी रक्तमाद्यानुलेपनेः । सिन्दूरं स्नानचूर्णं च तासां शिरसि वा  
सिन्दूरं कुङ्कुमं स्नानमर्त्तावेष्टं यतस्ततः । तथोपदेशारमपि पूजयेद्यत्नतो गुल्मम् ॥ ८० ॥  
न पूज्यते मुख्यं च सर्वास्तत्राफलाः प्रिया । जप्येच्च पूजयेद्गौरीमुत्पलैरसितैः स

यन्धुजीवैः प्रिये पूज्या कार्तिके मासि यत्नतः ।

जातोपुष्पैर्मार्गशिरे पाँचे पीतैः कुरण्टकैः ॥ ८१ ॥

कुन्धैः कुमुदपुष्पैश्च देवीं माघेऽपि पूजयेत् । सिन्दुपारेण ज्ञात्या वा कालान्तेऽप्यर्चयेत्  
चैत्रे तु महिषाशोकैर्वैशाखे गन्धपाटलैः । ज्येष्ठे कमलमन्दारैराषाढे च जलाम्बुजैः

मन्दारैरथ मालत्या धापणे पूजयेत्सदा ।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुयोदकम् ॥ ८२ ॥

यित्थपत्रार्ककुसुमाम्बुजगोभृङ्गधारि च । पञ्चगव्यं च यित्थं च प्राशयेत्क्रमशः सदा  
पत्रद्वान्नपद्मादी तु प्राशनं समुदाहृतम् । प्रतिपक्षं च मिथुनं तृतीयायां वराहने ॥ ८३ ॥  
भोजयित्वा च ये ह्येतया घस्त्रमाल्यानुलेपनैः । पुंसः पीताम्बरे दद्यात्स्त्रियाः कौशेयवास  
निष्पावजीरलघणमिक्षुदण्डगुडान्वितम् । स्त्रियै दद्यात्फलं पुंसः सुवर्णोत्पलसंयुतम्  
यथा ॥ देवि देवस्त्वां सम्परित्यज्य गच्छति । तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात्

कुमुदा विमला नंदा भवानी वसुधा शिवा ।

ललिता कमला गौरी सती रम्भाऽथ पार्वती ॥ ८५ ॥

नभस्यादिषु मासेषु प्रीयतामित्युदीरयेत् । यतान्ते शयनन्द्यात्सुवर्णकमलान्वितम्  
मिथुनानि चतुर्विंशद्वादशाथ समर्चयेत् । अष्टावष्टायवा भूयश्चतुर्मासेऽथवा चर्चयेत्  
पूर्वदत्त्वाथ गुरवे पञ्चादन्यान्समर्चयेत् । उक्तानन्ततृतीयायां सदाऽनन्तफलप्रदा ॥ ८८ ॥  
सर्वपापहरा देवी सौभाग्यारोग्यवर्धिनी । न चैनां पित्तशाल्येन कदाचिदापि लङ्घयेत्

नरो वा यदि वा नारी सोपवासघृतं चरेत् ।

गर्भिणी सूक्तिकानकं कुमारी घाऽथ रोगिणी ॥ ९० ॥

तदानीं कारयेत्प्रयत्ना स्थयम् । इमामनन्तफलदां पस्तृतीयां समाचरेत् ॥

साग्रं शिषलोके महीयते । विच्छिदीनोऽपि कुर्वीत यापद्वर्पमुपोषणम् ॥

पुण्यमन्त्रविधानेन सोऽपि कल्पमाप्नुयात् ।

नारी वा कुरुते या तु मात्मनः शुभमिच्छती ।

जन्म पौरुषमाप्नोति यौर्यनुग्रहकारिणम् ॥ १०३ ॥

ति पठति शृणोति वा य इत्थं गिरितनयाम्रतमिन्द्रलोकसंस्थः ।

मतिमपि च ददाति योऽपि देवैस्मरन्धूजनकिन्नरैः स पूज्यः ॥ १०४ ॥

न्यामपि प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् । रसकल्याणीनीमेतां पुराकल्पमधाधिनुः

माधे मासि तु सप्ताप्य तृतीयां शुक्लपक्षतः ।

प्रातर्तान्ध्रेण पयसा तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥ १०५ ॥

नापयेन्मधुना देवीं तथैवेक्षुरसेन तु । गन्धोदयेन च पुनःपूजनं कुङ्कुमेन तु ॥ १०६ ॥

दक्षिणाङ्गानि संपूज्य ततो धामानि पूजयेत् ।

ललितायै पद्ं देव्यै धामगुल्फी ततोऽर्चयेत् ॥ १०८ ॥

जह्ने जानु तथा शान्त्यै तथैवोदं धियै नमः ॥ १०९ ॥

रत्नलतायै च कटिममलायै तथोदरम् । स्तनौ मदन वासिन्त्यै कुमुदायै च कन्धराम् ॥

तुङ्गं भुजार्धं माधव्यै कमलायै सुखस्मिते । भूललाटं च रुद्राण्यै शङ्करायै तथालकम् ॥

रत्नायै ललाटं तु मोहनायै पुनर्धृषी । नेत्रे चन्द्रार्धधारिण्यै तुष्ट्यै च पद्मं पुनः ॥

उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठममृतायै नमस्तनुम् । रम्भायै च महाबाहू विशोकार्पणमः करौ

हृदयं मग्नपाङ्कायै पाटलायै तथोदरम् । कटिं सुरतवासिन्त्यै तथोक्तं पङ्कजधियै ॥ ११४ ॥

जानु जह्ने नमोर्गोत्र्यै गुन्तीशान्त्यै तथा चैव । धराधरायै पार्श्वौ तु विश्वकापेनमः शिरः

नमो भवान्यै कामिण्यै पासुदेव्यै जगच्छिव्यै । आनन्दायै नन्दायै सुमन्त्रायै नमोनमः

पद्मं सम्पूज्य विधिपुत्रद्विजदाम्पत्यमर्चयेत् । भोजयित्वा तथाम्नेन मधुरेण विमत्सरः

समोदकं पारिकुर्मं शुक्लाम्बरयुगलपम् । इत्या सुवर्णकमलं कन्धमाल्यैरप्यर्चयेत् ॥

प्रायस्तामत्रं कुमुदा गृह्णेयात्तुल्यमथम् । मन्त्रेण विधिना देवीं मासिमासि सदाधयेत् ॥

लक्षणं पञ्चयेन्माघे फाल्गुने च शुक्लपुनः । नवमीतं तथा चैत्रे पार्थं मधुच माधवे ॥

पानार्घ्यं उपेष्टमासे तु तथापादे च जीरकम् । भावये पञ्चयेत्क्षारं दधि माद्रपदे तथा ॥

घृतमाश्चयुजे तद्वदूर्जैर्बज्रं ॥ माक्षिकम् । धान्याकं मार्गशीर्षे तु पौषे धज्यां च शर-  
वतान्ते करकं पूर्णमेतेषां मासिमासि च । दद्याद्द्विकालवेलायां मदयपात्रेण संयु-  
लङ्कुकास्सेषकाश्चैव संयाचमय पूरिका । नारिका घृतपूर्णाश्च पिष्टपूर्णा च नन्दि-  
क्षीरशाकं च दध्यन्नं पिण्डशाकं तथैव च । माघादौ क्रमशो दद्यादेतानि करकोप-  
कुमुदा माधवी रम्भा सुमद्रा वाशिषा जया । ललिता कमलानङ्गा मङ्गला रतिलाला  
क्रमान्माघादिमासेषु प्रीयतामिति कीर्तयेत् । सर्वत्र पञ्चगव्यं च प्राशनं समुदाहृतम्  
उपघासीभवेन्नित्यमशक्तौ नक्तमिष्यते । कुर्यादेवमिदं नारी रसकल्याणिनीव्रतम्  
पुनर्माघे च संप्राप्ते शर्कराकलशोपरि । कृत्वा ॥ काञ्चनीगौरीं पञ्चरत्नसमन्विताम्

स्वकोयाङ्गुष्ठमात्रं च साक्षसूत्रकमण्डलुम् ।

चतुर्भुजामिदुयुतां सितनेत्रपटाधुताम् ॥ १३० ॥

तद्वद्गोमिधुनं चैव सुवर्णस्य सिताम्बरम् ।

सर्वस्त्रं भाजनं दद्याद्भूपानी प्रीयतामिति ॥ १३१ ॥

अनेन विधिना यस्तु रसकल्याणिनीव्रतम् । कुर्याच्च सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मुच्यते ।  
भवानां च सहस्रं तु न दुःखी जायते क्वचित् । अग्निष्टोमसहस्रेण यत्फलं तद्वानुयात

नारी वा कुरुते वा तु कुमारी वा वरामने ।

विधवा च वराकी वा सापि तत्फलभागिनी ॥

सौभाग्यारोग्यसंपन्ना गौरीलोके महीयते ॥ १३४ ॥

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गात्सकलकलुषमुक्तः पार्वतीलोकमेति ॥

मतिमपि च विधत्ते यो नराणां प्रियार्थं विबुधपतिजनानां लोकगः स्यादमोघः ॥

तथैषान्यां प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् ।

नाम्ना च लोकविख्यातामग्नानन्दकरीमिमाम् ॥ १३६ ॥

यदा शुक्लतृतीयायामपादशं भवेत्कचित् ॥ १३७ ॥

प्रदशं पापं च मघा दस्तो मूलमप्यापिवा । दर्शगन्धोदकैः स्नानं तदा सम्यक्समाचरेत्

२३३

शुक्लगन्धानुलेपनः । भवानोमर्चयेद्दक्षया शुक्लपुष्पैः सुगन्धिभिः

दादेवं च सकलमुपपिष्टं महासने । वासुदेव्यै नमः पादौ शङ्करायै नमो हरेः ॥१४०॥  
 द्वे शोफघनाशिन्यै मानदायै नमः प्रभोः । रम्भायै पूजयेद्गुरु शिवाय च पिनाकिने  
 तन्दिन्यै कटिं देव्याः शूलिनश्शूलपाणये । माघयै च तथा नामिमथ शम्भोर्भग्यायै  
 तौ चानन्दकारिण्ये शंकरस्येन्दुधारिणे । उत्फण्ठिन्यै नमःकण्ठं नीलकण्ठाय वै हरेः  
 सन्तुष्टलभारिण्यै रुद्राय जगतःप्रभोः । बाहू च परिरम्भिन्यै नृत्यप्रीताय वै हरेः ॥

देव्या मुखं विलसिन्यै वृषभाय पुनर्विभोः ।

स्मितं च स्मरणीयायै विभ्रवक्त्राय वै विभोः ॥ १४५ ॥

वे मन्दारघासिन्यै विभ्रधाम्ने त्रिशूलिनः । भुवौ नृत्यप्रियायै च शंभोर्वै पाशशूलिने  
 म्या ललाटमिन्द्राण्यै धृपवाहाय वैविभोः । स्वाहायै मुकुटं देव्या विभोगङ्गाधरायै  
 श्यकायौ विश्वभुजौ विश्वपादभुजौ शिबौ । प्रसन्नवरौ चन्द्रे पार्वतीपरमेश्वरौ  
 र्वं संपूज्य विधिवदप्रतः शिष्योः पुनः । पञ्चोत्पलानि रजसा नानावर्णेन कारयेत् ॥

शङ्खचक्रौ सकटके स्पष्टिकं गुम्फारकम् ।

याचन्तः पांसपस्तत्र रजसः पतिताभुवि ॥ १५० ॥

पद्मपंसहस्राणि शिष्यलोके महीयते । चत्वारिण्युत्पात्राणि सहिरण्यानि शक्तिः ॥  
 त्या द्विजाय करकमुदकेन समन्वितम् । प्रतिपक्षं चतुर्मासं यावदेतान्निवेदयेत् ॥१५२॥  
 इत्तु चतुरोमासाङ्गपूर्ववत्करकोपरि । चत्वारि घृतपात्राणि तिलपात्राण्यनन्तरम् ॥

गन्धोदकं पुष्पधारि चन्दनं कुङ्कुमोदकम् ।

अपक्वं दधिकुर्घं च गोशृङ्गोदकमेव च ॥ १५३ ॥

मोदकं तथा चारिकुप्टधूर्णान्वितम्पुनः । उशीरसलिलं चैव यक्षधूर्णोदकंपुनः ॥१५५॥  
 लोदकं च सम्प्राश्य स्वपेन्मार्गशिरादिषु । मासेषु पक्षद्वितयं प्राशनं समुदाहृतम् ॥  
 र्वत्र शुक्लपुष्पाणि प्रशस्तानि सदार्चने । दानकाले च सर्वत्र मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥१५७॥  
 री मे प्रीयतां नित्यमघनाशायमङ्गला । सौभाग्यायास्तु ललिता भवानो सर्वसिद्धये  
 त्सत्पान्तु लवणगुडकुङ्कुमसंगुत्तम् । चन्दनेन युतं कुम्भं सह स्पर्णांभुजेन च ॥

उमायाः प्रीतये हेमं तद्विदिशुफलेयुत्तम् ।

सास्तरावणां शय्यां सविधामां निवेदयेत् ॥ १६० ॥

सपत्नीकाय विप्राय गौरी मे प्रीयतामिति । आत्मानन्दकरीं नाम प्राप्नुयात्सम्पदं  
आयुरानन्दसम्पन्नो न क्वचिच्छोकमाप्नुयात् ।

नारी चा कुरुते यातुकुमारीविधया तथा ॥ १६१ ॥

सापितृफलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता । प्रतिपक्षमुपोष्यैवं मन्त्रार्चनविधानतः ॥ १६२ ॥  
रुद्राणां लोकमाप्नोति पुनरावृत्तिबुलमम् । इमां यः शृणुयान्नित्यं धावयेद्वापि भक्तिः  
शकलोकं सगत्वा तु पूज्यते कल्पसंस्थितः ।

शङ्कर उवाच ।

एवंविधा भवति चेन्नारी यतपरायणा ॥ १६५ ॥

सावित्री तु वराकीसातस्याः शापस्तुकीदृशः । न काचिद्गणनाच्चास्ति यतस्त्रैलोक्यसुखी  
सा पूर्यस्यापि वन्द्या च लक्ष्मीर्विष्णुप्रतिग्रहात् । मयापूर्वन्तवार्थाय दक्षयज्ञस्तुनाशिकः  
लक्ष्म्यर्थं विष्णुना चापि वारिधिर्मयितः पुरा ।

भाह्मकरी भवत्योश्च मा कुरुष्व भयं क्वचित् ॥ १६८ ॥

साविथ्या माननाकार्या कुपितायाः प्रसादनम् । मयाचविष्णुना चैव ब्रह्मणामानर्माप्नुना  
गमिष्ये ब्रह्मसदनं त्वं च तिष्ठ वरानने । एवमुत्था गतोऽहो गौरो तत्र व्यवस्थिता ॥  
कृतं युगं समग्रं च दृष्टे तस्मिन्नुताशनः । वर्हस्तु हव्यं देवानां प्रीणयानो जगत्प्रयत्नः ॥  
भोजनं द्विजमुख्येषु भोगान्निघाघरे गणे । कामाद्यानि मनुष्येषु सर्वमेव दर्शयन्तुः ॥

यदेनोक्तस्तदा विष्णुर्धर्मांस्ते त्वं प्रकीर्तय ।

गौरीधर्मान् सरस्वत्याद्यतं यत्परिकीर्तितम् ॥ १७३ ॥

इत्येवमुक्ते यद्रेण विष्णुः प्रोवाच सादरम् ।

विष्णुरवाच ।

नाहं धर्मं व्यापयिष्ये स्वकीयं शङ्कराधुना ॥ १७४ ॥

भवानाख्या तु माहात्म्यं मदीयं सुरसत्तम । त्वया च कथितं पूर्वं कृते वै पापसंक्षयः  
भविष्यति न सन्देहो भवान्यूतो भविष्यति ।



भीष्म उवाच ।

मधुरा गीर्भवेत्केन व्रतेन मुनिसत्तमः ॥ १७६ ॥

तथैव जनसौभाग्यं मतिविद्यासु कौशलम् । अभेदश्चापि दाम्पत्ये सङ्गो बन्धुजनेन च  
आयुश्च विपुलं पुंसां तन्मे कथय सत्तम ।

पुलस्त्य उवाच ।

सम्यक्पृष्टं त्वया राजशृणु सारस्वतं व्रतम् ॥ १७८ ॥

यस्य संकीर्तनादेव देवी तुष्येत्सरस्वती । यावद्भक्तः स्तवं कुर्यादेतद्व्यतमनुत्तमम् ॥ १७९ ॥  
प्राग्वासरादीं सम्पूज्य दिव्यं स्तवं समारमेत् । भयबा रविचारेण ग्रहतारायलेन च ॥  
पायसं भोजयेद्विप्रान्कुर्याद्ग्राहणपावनम् । शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानिशक्तिः  
गायत्रीं पूजयेद्भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः । यथा न देवि भगवान्ब्रह्मलोकपितामहः ॥  
त्वां परित्यज्य तिष्ठेच्च तथा भव वरप्रदा । वेदशास्त्राणिभर्माणि नृत्यगीतादिकंचयत्  
न विहीनं त्वपादेवि तथामे सन्तु सिद्धयः । लक्ष्मीर्मैधा धरा पुष्टिर्गौरीतुष्टिर्जयामतिः  
पृथाभिः पाद्मिनीपद्मिनीमूर्तिभिर्ममसारस्वति । एवं सम्पूज्यगायत्रीवीणाकमलधारिणीम्  
शुक्लपुष्पाक्षतैर्ममैतया सकमण्डलुपुस्तकाम् । मौनमेतन् भुञ्जीमत् सायंप्रातश्च धमेवित् ॥  
पञ्चम्यां प्रतिपक्षं च गांवविप्राय शोभनाम् । तथैव तण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् ॥  
क्षीरं दद्याद्विरथ्यं च गायत्री प्रीयतामिति । सन्ध्यायां च तथा मौनमेतत्कुर्वन्समाचरेत्  
न रात्र्यां भोजनं कुर्यात्पापन्मासास्त्रयोदश । समाप्ते तु मते दद्याद्भोजनं शुक्लतण्डुलैः ॥  
पूर्णे सङ्क्रत्युगमं तु गांवविप्राय शोभनाम् । दिव्यां वितानं घण्टांबसितनेत्रपदान्विताम्  
चन्दनं पद्मत्रयम् च दध्यन्नं सुरसं पुनः । अधोपदेशात्मनि भक्त्यासंपूजयेद्भगुरम् ॥  
चित्तशाठ्यं न रहितो पद्मश्रीमाल्यानुलेपनैः । अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सारस्वतं व्रतम्  
सौभाग्यमतिर्युक्तस्तु सुखमकण्ठश्च जायते । सरस्वत्याः प्रसादेन ब्रह्मलोके मदीयते ॥  
नारी वा कुरुते वा तु सापि तत्फलमागिनी । ब्रह्मलोके वसेद्वा अन्यथा च तत्फलायुतत्रयम्  
सारस्वतं व्रतं यस्तु शृणुयादपि वा पठेत् । विद्याधरपुरे सोऽपि वसेद्भगवत्युतत्रयम् ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिस्रष्टे व्रताध्यायो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## त्रयोविंशोऽध्यायः

### वैष्णवधर्मवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

वैष्णवा ये तु वैधर्मा याम्रुद्रः प्रोक्तवानिह । तान्मे कथयविप्रेन्द्रकीदृशास्तेफलं तु किम्

पुलस्त्य उवाच ।

पुरा रथन्तरे कल्पे परिपृष्टो महात्मना । मन्दरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम्  
कथमारोग्यमैश्वर्यमन्तममरेश्वर । अल्पेन तपसा देव भवेन्मोक्षः सदा नृणाम् ॥ ३ ॥

किं तज्ज्ञानं महादेव त्वत्प्रसादादधोक्षज ।

अल्पकेनापि तपसा महाफलमिहोच्यते ॥ ४ ॥

इति पृष्टः स विश्वात्मा ब्रह्मणा लोकभाजनः । उमापतिरुवाचेद् मनसः प्रीतिकारकम् ।

ईश्वर उवाच ।

अस्माद्रथन्तरात्कल्पाद्भूयो विंशतिमो यदा । धाराहोभविता कल्पस्तदा मन्वन्तरे शुभे  
वैवस्वताण्ये संप्राप्ते सप्तमे सप्तलोकधृक् । द्वापरारब्धं युगं तस्मिन्सप्तविंशतिमं यदा ।  
तस्यान्ते तु महातेजा वासुदेवो जनार्दनः । भारावतरणार्थाय त्रिधा दिव्यभूमिष्यति  
द्वैपायनस्तपिस्तत्र रौहिणेयोऽथ केशवः । कंसारिः केशिमधनः केशवः क्लेशनाशनः ॥  
पुरीं द्वापयती नाम साम्प्रतं या कुशस्थली । दिव्यानुभावसंयुक्तामधिपासाय शार्ङ्गिणाः

त्वष्टा तदाश्रया ब्रह्मन्करिष्यति जगत्पतेः ।

तस्यां कदाचिदासीनः समायां सोऽमितयुतिः ॥ ११ ॥

भार्यामिष्टं प्णिविद्वद्भिर्भूरिभिर्भूरिदक्षिणैः ।

कुरुमिदं धगन्धर्वैरन्यतः कैटभार्दनः ॥ १२ ॥

प्रवृत्तासु पुराणासु धर्मसम्यग्निघ्नीषु च । कथासु भीमसेनेन परिपृष्टः प्रतापवान् ॥ १३ ॥

पण्डित्य धर्मस्य पश्यत्यस्य च मेददत् । भविता स तदा ब्रह्मकर्ता चैव बुकोदत्

शोऽस्य धर्मस्य पाण्डुसनुर्महायज्ञः । यस्य सीक्षणां धृको नाम जठरे हव्यपाहनः  
संभाष्यते स धर्मात्मा तेन चासीं धृकोदरः ।

अतीत्यस्वादशीलश्च तामायातयलो महान् ॥ १६ ॥

तस्याप्यशकस्य सीयाग्नित्वादुपोषणे । इदं यतमशेषाणां यतानामधिकं यतः ॥

प्यति विश्वात्मा घासुदेवो जगद्गुरुः । अशेषयज्ञफलदमशेषाद्यविनाशनम् ॥

दुष्टशमनप्ररोपसुरपूजितम् । पवित्राणां पवित्रं यन्मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥

अविष्यं च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम् ॥ १६ ॥

घासुदेव उवाच ।

मी वतुर्दशयोद्गां दशोयु च भारत । भग्येष्वपि दिनर्शेषु न शकस्त्वमुपोषितुम् ॥

ततस्तपःश्रमिमां भीम तिष्ठि पापप्रणाशिनीम् ।

उपोष्य विधिनामेन गच्छ विष्णोः परं पदम् ॥ २१ ॥

तस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत्तदा । पूजेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत्

विष्णुमभ्यर्च्य नमो नारायणाय च । कृष्णाय पादौ संपूज्य शिरःकृष्णात्मनेति च

ठायेति वैकुण्ठमुच धीमत्सधारिणे । शङ्खिने गविने चैव चक्रिणे धरदाय वै ॥

नारायणस्तु वै संपूज्यावाहनकमात् । दामोदरायेत्युदरं कटिं पञ्चजनाय वै ॥

सौभाग्यनाथाय जाग्रुनी भूतधारिणे । नमो नीलाय वै जङ्घे पादौ विश्वभुजे पुनः

नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै ।

नमस्तुष्ट्यै नमः पुष्ट्यै धूर्त्यै ऽपुष्ट्यै नमो नमः ॥ २३ ॥

विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे । विषप्रमथनायेति गच्छं चामिपूजयेत् ॥ २८ ॥

संपूज्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ । गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ॥

न पयसासिकां कृसरमथपायसम् । सर्पिपासह भुक्त्वा मत्वा स्थानान्तरं पुनः

रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः । गृहीत्या घावयेदन्तानाचांतः प्रागुदङ्मुखः ॥

त्सायन्तर्मी कृत्वा सन्ध्यामस्तमिते रथौ । नमोनारायणायैति त्वामहं शरणं गतः

एकादश्यां निराहारः समम्यर्च्य च केशवम् ।

तां रात्रिं सकलां स्थित्वा शेषपर्यङ्कुशायिनम् ॥ ३३ ॥

सर्पिषा विश्वदहनं कृत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः । सदैव पुण्डरीकाक्षं द्वादश्यां क्षीरमोजनम् ।  
करिष्यामि यथात्मानं निर्विघ्नेनास्तु तद्य मे ।

एवमुक्त्वा स्वपेदु भूमाचितिहासकयां पुनः ॥ ३५ ॥

श्रुत्वा प्रमाते संजाते नदीं गत्वा विशांपते ।

ज्ञानं कृत्वा मुक्ता तद्वत्पापण्डानभिघर्जयेत् ॥ ३६ ॥

उपास्य सन्ध्यां विधिवत्कृत्वा च पितृतर्पणम् ।

प्रणम्य च हृषीकेशं शेषपर्यङ्कुशायिनम् ॥ ३७ ॥

गृहस्य पुरतो भवता मण्डपं कारयेद्बुधः । चतुर्हस्तां शुभां कुर्याद्वेदीमरिनिपूतम् ॥ ३८ ॥

चतुर्हस्तप्रमाणं तु विन्यसेत्तत्र तोरणम् । मध्ये च कलशं तत्र मापमात्रेण संयुतम् ॥

छिद्रेण जलसम्पूर्णमधः कृष्णाजिने स्थितः ।

तस्य धारां च शिरसा धारयेत्सकलां निशाम् ॥ ४० ॥

धाराभिर्भूरिभिर्भूरिफलं वेदेषिदोषिदुः । यस्मात्तस्मात्कुरुधेष्ट कारयेत्प्रपतो द्विजः ॥

दक्षिणे चार्धचन्द्रस्तु पश्चिमे वर्तुलं तथा । अक्षय्यपत्राकारं च उत्तरेण तु कारयेत् ॥

मध्ये तु पद्माकारं च कारयेद्विष्णुधोद्विजः ।

पूर्वतो वेदिकास्थानं स्थानं याम्ये च कल्पयेत् ॥ ४३ ॥

पानीयधारां शिरसि धारयेद्विष्णुतत्परः । द्वितीया वेदी देवस्य तत्र पद्मं सकाशकम् ॥

तस्य मध्ये स्थितं देवं कुर्याद्वै पुण्योत्तमम् ।

हस्तमात्रं च तत्कुण्डं कृत्वा तत्र त्रिमेषलम् ॥ ४५ ॥

योनिपद्मं ततस्तस्मिन्ब्राह्मणैर्यवसर्पिषी । तिलांश्च विष्णुदेवतैर्मन्त्रैरेषानले हुनेत् ॥

कृत्वा तु वैष्णवं सम्यग्यागं तत्र प्रकल्पयेत् । आज्यधारा मध्यमे तु कुण्डे दद्यात्पुस्तकं

क्षीरधारां देवदेवे धारिधारात्मनोपरि । निष्पावार्धप्रमाणां वै धारामाज्यस्य पातयेत्

स्वेच्छया क्षीरजलयोरविच्छिन्नां च शर्षरीम् । जलकुम्भाग्रमहावीर्यस्थापयित्वाप्रयोदश

अक्षयैर्नानाविधैर्यक्षान्तिपद्मैश्चैरुत्तमान् । प्रतानोदुम्बरे पात्रैः पञ्चरासमन्वितैः ॥

तुमिर्बह्वृचेर्दोमः कार्यस्तत्र उवङ्मुखैः । स्त्रज्जाप्यधनुर्मिथ्य यजुर्वेदपणयणैः ॥५१॥

चैष्णवानि च सामानि चतुर्मिः सामवेदिभिः ।

अरिष्टवर्गसहितान्यमितः परिपाठयेत् ॥ ५२ ॥

इवंद्वादश वै विमान्यस्त्रमात्मानुलेपनैः । पूजयेद्दङ्गुलीपैश्च कटकैर्हंससूत्रकैः ॥ ५३ ॥

शासोमिः शयनीपैश्च विचशास्त्रविचर्जितः । एवं क्षपातिवाह्या वै गीतमङ्गलनिःस्यनै

उपाध्यायस्य च पुनर्द्विगुणं सर्वमेव तु । ततः प्रभाते पिमले समुत्थाय त्रयोदश ॥५५॥

गायो देवाः कुक्षेष्ठ सर्षपगम्भस्तसंवृताः । पयस्विन्यःशीलपत्यः कांस्यदोहसमन्विताः

रीप्यद्वराः सपरस्ताश्च बन्धनेनामिभूषिताः ।

तास्तु तेषां ततो दस्या भक्ष्यभोज्येन सर्पितान् ॥ ५७ ॥

हत्वा वै प्राज्ञानां स्वर्गान्मन्त्रैर्नानाविधैस्तथा ॥

भुवत्या चाक्षाव्लक्षणमात्मना च पिसर्जयेत् ॥ ५८ ॥

अनुगम्य पदान्यष्टौ पुत्रभार्यासमन्वितः । प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः ॥

स्वं गुणाम्भया कुम्भागाश्चैव शयनानि च । शासोसि चैव सर्वेषां गृहाणिप्रापयेद्बुधः

प्रभाये यद्गृहप्यानामेकामपि सुसंस्कृताम् । शय्यां दद्याद्गृही भीमसर्वोपस्करसंगुताम्

तिहासपुराणानि पाचयित्वा तु वाहयेत् । तद्दिनं कुक्षार्दूल य इच्छेद्विपुलां धियम् ॥

तस्मात्स्वं सत्स्वमालम्ब्य भीमसेन विमरसतः ।

कुक्षं प्रथमिर्द्वं सम्यक्स्नेहाद्गुह्यं भवोदितम् ॥ ६३ ॥

यथा हृतमिदं धीर त्वग्राम्ना च भविष्यति । सा भीमहादशी क्षेया सर्वपापहरा शुभा

या तु कल्याणिनी नाम पुरा कल्पेषु पठ्यते ॥ ६४ ॥

एवं चादिकर्ता भव सौकरोऽस्मिन्कल्ये महावीरवप्यधान ।

यस्याः स्मृतेः कीर्तनतोऽप्यशेषं पापं प्रनष्टं त्रिदशाधिपस्य ॥ ६५ ॥

दृष्ट्वा च तामप्सरसामभीष्टां चेश्याहृतमन्यभयान्तरेषु ।

मासोरकन्या द्वि कुतूहलेन सेषोर्वशी सम्प्रति नाकपृष्ठे ॥ ६६ ॥

जाताऽथ सा वैश्यकुलोद्भवापि पुलोमकन्या पुच्छतपस्वी ।

तत्रापि तस्याः परिवारिकेयं मम प्रिया सम्प्रति सत्यभामा ॥ ६७ ॥

वृत्तं पुरा मङ्गलमेतदेव द्विजात्मजा चेद्वती चमूव ॥ ६८ ॥

अस्यां च कल्याणतिथौ विवस्थान्सहस्रधारेण सहस्रारिभः ।

स्नातः पुरा मण्डलमेत्य सद्धत्तेजोमयं खेटपतिर्यभूव ॥ ६९ ॥

इदमेव वृत्तं महेन्द्रमुष्पैर्यदुभिर्देवसुरारिकोटिभिश्च ।

फलमस्येह न शक्यते हि वक्तुं यदि जिह्वायुतकोटयो मुखे स्युः ॥ ७० ॥

कलिकलुषदिदारिण्यामनन्तामपि कथयिष्यति यादयेन्द्रधनुः ।

अपि नरकगतान्विनयैषा ह्यलमुद्धतुमिहैष यः करोति ॥ ७१ ॥

इदमनघ शृणोति पक्तिं भक्त्या परिपठतीह परोपकारहेतोः ॥

इह पट्टजनामिमच्छिमान्भयेद्य शक्यस्य ॥ पूज्यतामुपैति ॥ ७२ ॥

कल्याणिनी नाम पुरा विसर्गे या द्वादशी मापसितेऽमिपूज्या ।

सा पाण्डुपुत्रेण कृता भविष्यत्यनन्तपुण्याऽनघ भीमपूर्वा ॥ ७३ ॥

प्रक्षोषाच्च ।

पर्णाधमाणां प्रमथः पुराणेषु मया धृतः । सदाचारश्च भगवन्धर्मशास्त्राङ्गवितरः ।

पण्यव्रीणां समाचारं धोतुमिच्छामि तत्पथः ॥

ईश्वर उवाच ।

तस्मिन्नेव पुरे ब्रह्मसहस्राणि तु पौंड्र्य ॥ ७४ ॥

पामुदेवस्य नाडीणां भविष्यत्यमुत्रोद्भव । तामिदं सन्ततमये कोपितामिदुःखानि ।

पुष्पितोपपन्ने गुह्यव्यापारसंसृते । निर्मरं ह्यह पत्नीभिः प्रयस्तामिरह इह ॥ ७५ ॥

एतन्निष्यति विरवायमा कृष्णो यदुक्तोद्भवः । कुरङ्गनयकः धोमागमायता एतन्नेव ।

गच्छन्समापमार्गेण साधवो ब्राह्मणसमुत्त । साक्षात्कन्दर्परूपेण तेषां तानमृषिः ।

अनूयन्तानिः सावित्तामवेक्षितः । प्रकुर्वीत मन्मथस्यासां भविष्यति यद्वर्तते ।

तदरेह्य प्रमथान्सर्वदां ध्यानचतुष्टय । स्वयं प्रनुपैद्वति सा यो हविष्यति एतन्नेव ।

धरतोऽं एतन्नेव विनयन्तः प्रविनितम् । ततः प्रस्तादितो देव ईश पश्यति एतन्नेव ।

ताभिः शापाभितप्ताभिर्भगवान्भूतमाधनः । उत्तराश्रितदायानामुद्धर्ता ब्राह्मणप्रियः ॥

उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भावि कल्याणकारकम् ।

भवतीनामुपिर्दाल्भ्यो यदु द्रतं कथयिष्यति ॥ ८४ ॥

इत्युक्त्वा ता परित्यज्य गतोऽन्तर्धानमीश्वरः । ततःकालेन महता भारघतरणे कृते ॥

निवृत्ते मौसले तद्वत्केशवे दिव्यमागते । शून्ये यदुकुले सर्वे चोरैरपि जितेऽर्जुने ॥ ८५ ॥

इतास्तु कृष्णपत्नीषु दाशभोग्यास्तु चार्पुदे । तिष्ठन्तीषु च दीर्घतपसन्तस्तास्तु बभूवुर्मुख ॥

भागमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः ।

तास्तमर्ष्येण समूष्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ ८८ ॥

छाळ्यमानाबहुशोषापण्यांकुलेक्षणाः । स्मरन्त्यो विविधान्भोगान्दिव्यमात्यानुलेपनान्

भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम् । दिव्यानुभावां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च ॥

द्वारकावासिनः सर्वान्देवकृपान्कुमारकान् । प्रश्नमेतं करिष्यन्ति मुनेरभिमुखं स्थिताः ॥

इत्युभिर्भगवन्सर्पाः परिभुक्ता धर्मं बलात् ।

स्वधर्मश्न्यावितोऽस्माकमस्मिन् शरणं भवान् ॥ ९२ ॥

भाविष्टोऽस्मि पुरा ब्रह्मन्केशवेन च धीमता ।

कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागतः ॥ ९३ ॥

वेश्यानामपि यो धर्मस्तनो ब्रूहि तपोधन । कथयिष्येऽवदत्तासांयद्वातपश्चैकितायनः

दाल्भ्य उवाच ।

रत्नकीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे । भवतीनां समर्पाणां नारदोऽभ्याशमागतः ॥

ताशननुताः सर्वा भगवतोऽम्बरसः पुरा । अव्रणम्याषलेपेन परिपृष्टः स योगवित् ॥

कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश ।

तस्माद्वक्ष्यदानं च शापश्चायमभूत्पुरा ॥ ९७ ॥

प्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासपोः । सुवर्णोपस्करोत्सङ्गं द्वादश्यां शुक्लपक्षतः ॥ ९८ ॥

र्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यत्यजन्मनि । यद्वृत्त्वा प्रणामं मे कृपसर्मागम्यमत्सरात्

रिपृष्टोऽस्मि तेनाशु पियोगोषो भविष्यति । चोरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वंसमपाप्स्यथ

एवं नारदशापेन केशवस्य च शापतः । वैश्यात्त्वमागताः सर्वा भवत्यः काममोहिताः ॥  
 इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुष्वं वराङ्गनाः । पुरादेवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः ॥  
 दानवासुरदेव्येषु राक्षसेषु ततस्ततः । तेषां दारसहस्राणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥  
 परिणीतानि यानि स्युर्बलाद्भुक्तानि यानि वै । तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतांबराः  
 वैश्याधर्मेण वर्तन्त्यमधुना नृपमन्दिरे । भक्तिमन्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च ॥

राजतः स्वामिनश्चापि जीविकां च प्रलप्स्यथ ।

भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तिः ॥ १०६ ॥

यः कश्चिच्छुक्तकमादाय गृहमेप्स्यति यः सदा ।

निश्छिन्ननेषोपचर्यः प्रीतिभावेरदाम्भिकैः ॥ १०७ ॥

देवतानां पितॄणां च पुण्येऽह्नि समुपस्थिते । गोभूद्विरण्यधान्यानि प्रदेयानि च शक्तिः  
 यद्व्रतं वोपदेक्ष्यामि तत्कुर्वन् च सर्वशः । संसारोत्तारणायात्ममेतद्वैद्विदो विदुः ॥  
 यदा सूर्यदिने हस्तः पुष्यो वाथ पुनर्वसुः । भवेत्सर्वोपधिस्तानं सम्यङ्नारी समाचरेत्  
 तदा पञ्चशरारमा तु हरिस्सन्निधिमेप्स्यति ।

अर्चयेत्पुणरीकाक्षमनङ्गस्यानुकीर्तनैः ॥ १११ ॥

कामाय पादौ सम्पूज्य जह्नुं वै मोहकारिणे । मेढ्रं कन्दर्पनिधये कटिं प्रीतिमते नमः  
 नाभिं सौख्यसमुद्राय घामनाय तथोदरम् । हृदयं हृदयेशाय स्तनापाङ्गादकारिणे ॥  
 उत्कण्ठायेति वै कण्ठमास्यमानन्दकारिणे । वामांसं पुष्पचापाय पुष्पवाणायदक्षिणम्  
 मानसायेति वै मूर्ध्नि विलोलायेति मूर्धजम् । सर्वात्मने शिरस्तद्वदेव देवस्य पूजयेत्  
 नमःशिषाय शान्ताय पाशाङ्कुशधराय च । गदिने पीतवस्त्राय शङ्खचक्रधराय च ॥ ११६ ॥  
 नमोनारायणायेति कामदेवात्मने नमः । नमः शान्त्यै नमः प्रीत्यै नमो रत्यै नमः भ्रियै ॥  
 नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमः सर्वार्थसम्पदे । एवं सम्पूज्य गोविन्दमनङ्गात्मकमीश्वरम्  
 गन्धमाल्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्येन च भासिनी । तत आहूय धर्मं ब्राह्मणं वेदपाराम् ॥ ११९ ॥  
 नव्यङ्गमपि सम्पूज्य गन्धपुष्पार्चनादिभिः । शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् ॥  
 तस्मै विप्राय वै दद्यान्माष्यः प्रीयतामिति । यथेष्टाहारसम्भुक्त्रेणं द्विजमनुत्तमम् ॥



। कामदेवोऽयमिति चित्ते चधारयेत् । यद्यदिच्छति विघ्नेन्द्रस्तत्तुर्याद्विलासिनी  
। येन चात्मानमर्पयेत्स्मृतमापिणी । एषमादित्यचारेण सर्वमेतत्समाचरेत् ॥१२३॥  
उग्रस्पदानं च याचन्मासाज्जोदश । तत्तत्त्रयोदशे मासि सग्रासेवास्य भामिनी ॥

विप्रस्योपस्करीशुक्लां शय्यां दद्याद्विचक्षणा ।

सोपधानां सधिन्यासां स्थास्तरावरणां शुभाम् ॥ १२५ ॥

कोपानहञ्जत्रपादुकासनसंयुताम् । सपत्नीकमलदुत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ॥१२६॥  
वस्त्रैः सकटकैर्पूष्पमाध्यानुदेपनैः । कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम् ॥  
यात्रासनागतं हेमनेत्रपटावृतम् । सुकांस्यमात्रनोपेतमिश्रदण्डसमन्वितम् ॥१२८॥  
इनेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम् । यथान्तर्ग न पश्यामि कामदेशाययोः तदा  
। सर्वकामातिरस्तु विप्र सदा भव । तथा च काञ्चनं देवं प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः  
कोऽद्वाकामोऽदादिति वैदिकं मन्त्रमुदीरयेत् ।

ततः प्रदक्षिणीदृत्य विष्टुत्रं द्वित्रपुत्रधम् ॥ १३१ ॥

। तस्यैविकं सर्वं प्राह्वयस्य गृहं नयेत् । ततः प्रभृति योन्योऽपि गत्यर्थं गौहमागतः  
। अन्यं सुवर्पादेन ससङ्गुडो भयेरसदा । एवं त्रयोदशं पाचन्मासमेकं द्विजोत्तमम्  
। पेत्वा यथा कामं श्रेयसेषैव मन्त्रिणम् । तदनुजया कुर्यान्तं यावदस्यागमो भवेत् ॥  
मनोऽपि पशुं विघ्नं गर्भमूलकात्रकम् । ईवं वा मानुषं वा स्थापुपरागेण वा ततः  
। धारानष्ट पदाशयथाशक्ति समर्पयेत् । एतद्वि कथितं सभ्यभयतनां पिशेयतः ॥

स्वधर्मोऽयं यतो भावो वैश्यानामिह सर्वदा ।

शय्यया शय्यते देव न कदाचिदपि भवान् ॥ १३३ ॥

वा ममाप्यशून्येयं तदास्तु मनुगृह्ण । गीतघादिचर्चिर्वायं देवदेवस्य कारयेत् ॥१३८॥  
इः कथितं सर्वं वैश्याधर्ममदीयतः । पुरातनैः यत्रोक्तं दानार्थं पुरा मया ॥१३९॥  
। इह सामन्तं सर्वं भयताप्यपि मुच्यते । सर्वपापप्रयमनमन्तरालदायकम् ।

कदाचिर्नितो कथितं तदेतद्दुष्करं मतम् ॥ १४० ॥

करोति वाऽऽरोपमुद्गमेतत्तद्व्यापिनी माधवदोक्तसंस्था ।

सा पूजितादेवगणैरानन्दश्रुत्स्थानमुपैति धिष्णोः ॥ १४१ ॥

सपोधनः सोऽप्यभिधाय चैतद्वनङ्गदामप्रतमङ्गनानाम् ।

स्यस्थानमेप्यन्ति समस्तमिदं प्रतं करिष्यन्ति च देवयोने ॥ १४२ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिधण्डे वेश्याप्रतकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः

## चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रावणकृष्णपक्षीयद्वितीयायामशून्यशयनप्रतविधानम् ।

प्रसोपाच ।

गगन्पुण्ड्रस्थेह स्थिरपाध् परदायकम् । शोकव्याधिभयशुक्लं न भवेद्येन तद्वत् ।

शङ्कर उवाच ।

पणस्य द्वितीयायां कृष्णायां मधुमूतनः । क्षीरार्णवे सपत्नीकः सदा वसति नृप ।

तस्यां सगृह्य गोविन्दं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।

शोभन्निश्चयवानाञ्च ममकल्पशतानाम् ॥ १ ॥

अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पाम्बरावृताम् । अन्यङ्गाय च विप्राय वैष्णवाय कुटुम्बिने  
दातव्या वेदविदुषे न धन्यापतये क्वचित् । तत्रोपवेश्य दास्यत्यमलङ्कृत्य विधानतः ॥

पत्न्यास्तु भाजनं दद्याद्भक्ष्यमोज्यसमन्वितम् ।

ब्राह्मणस्यापि सोघर्णोमुपस्करसमन्विताम् ॥ १५ ॥

प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुम्भां निवेदयेत् । एवं यस्तु पुमान्कुर्यादशून्यशयनं हरेः ॥

वित्तशायने न रहितो नारायणपरायणः । न तस्य परस्या विरहः कदाचिदपि जायते ॥

नारी वा विधवा ब्रह्मन्यावचन्द्रार्कतारकम् ।

न चिरपी न शोकार्त्ता वृषती भवतः क्वचित् ॥ १६ ॥

न पुत्रपशुराजानि क्षयं यान्ति पितामह । सप्तकल्पसहस्राणि सप्तकल्पशतानि च ॥ १७ ॥

कुर्वन्मशून्यशयनं विष्णुलोके महीयते ।

ब्रह्मोवाच ।

कथमारोग्यमैश्वर्यं मतिर्धर्मस्थितिस्तदा ॥ २० ॥

अन्यङ्गाय परे भक्तिर्विष्णो वापि भवेत्कथम् ।

ईश्वर उवाच ।

साधु ब्रह्मंस्त्वया पृष्टमिदानीं कथयामि ते ॥ २१ ॥

विरोचनस्य संवाद् भार्गवस्य च धीमतः । ब्रह्मादस्य सुतं ब्रह्म द्विरष्टपरिपत्सत्म् ॥ २२ ॥

तस्य रूपमिदं ब्रह्मसोऽहसद् भृगुनन्दनः । साधु साधु महाबाहो विरोचन शिष्यं तव ॥

तत्तथा हसितं तस्य परच्छ सुरसूदनः । ब्रह्मन्किमर्थमेतत्ते हास्यं वै मामकं वृताम् ॥ २४ ॥

साधु ताड्यति मामेष मुनिर्यास्त्वं वदस्व मे । तमेवं वादिनं युक्तमुपायं पदतावरः ॥

पिस्मयाद्भुतमाहात्म्यादास्यमेतत्कृतं मया । पुरा दक्षयिनाशाय कुपिनस्य त्रिशूलिनः

अपतर्दीमयवन्नस्य स्वेदकिदुर्लभाद्वज्रः । भित्त्वा स सप्तपातालानन्दहस्तसत्तागरान् ॥

अनेकपक्वन्नपनोऽज्यलज्ज्वलनभीषणः । घोरमद्र इति क्वातः कल्पादायुर्तेयुतः ॥ २८ ॥

वृत्वा स यशमघनं पुनर्मृतस्य संतुलः । त्रिजगद्दहनाद्भूयः शिवेन विनिवारितः ॥ २९ ॥

कृतं त्वया घोरमद्र दक्षयशयिनाशनम् । इदानीमलमेतेन लोकाददेन वर्ज्यता ॥ ३० ॥

शान्तिप्रदानात्सर्वेषां प्रहणां प्रथमो भव । प्रहृष्टामिजनाः पूजां करिष्यन्ति कृतात्मकः ।

अङ्गारक इति ख्यातिं गमिष्यसि घरात्मज ।

देवलोके द्वितीयं च तव रूपं भविष्यति ॥ ३२ ॥

ये च त्वां पूजयिष्यन्ति चतुर्थ्यां तु दिने नरः ।

रूपमारोग्यमैश्वर्यं तेष्वनन्तं भविष्यति ॥ ३३ ॥

पद्ममुक्तस्ततःशान्तिमगमत्कामरूपधृक् । स जातस्तत्क्षणाद्वाजन्प्रहृष्टमगमत्पुनः ॥ ३४ ॥

स कदाचिद्द्वयांस्तस्य पूजार्धादिकमुत्तमम् । द्रष्टवान्किममाणं च शूद्रेण त्वं व्यवस्थितः ।

तेन त्वं रूपयाज्ञातो सुरः शत्रुकुलाशनिः । विविधा च रुचिर्जाता यस्मात्तव विदूरा

विरोचन इति प्राहुस्तस्मात्त्वां देवदानवाः । शूद्रेण क्रियमाणस्य व्रतस्य तव दर्शनात्

ईदृशी रूपसंपत्तिरिति विस्मितवानहम् । साधुसाध्विति तेनोकमहोमाहात्म्यमुत्तमम्

पश्यतोऽपि भवेद्गुणमैश्वर्यं किमु कुर्वतः ॥ ३८ ॥

यस्माच्च भक्त्या धरणीसुतस्य विनिगमानेन गद्याविदानम् ।

भालोकितां तेन सुरारिगर्भे सम्भूतिरेया तव दैत्य जाता ॥ ३९ ॥

अथ तद्वचनं धृत्या भार्गवस्य महात्मनः । प्रह्लादनन्दनो धीरः पुनः पप्रच्छ भार्गवम् ।

विरोचन उवाच ।

भगवंस्तद्गुप्तं सम्यक्धोतुमिच्छामि तत्त्वतः । दीयमानं तु यद्दानं मया द्रष्टुं भयान्तरे ।

माहात्म्यं च विधिं तस्य यथापद्रकुमर्हसि । इति तद्वचनं धृत्या विप्रः प्रोवाच सादृश्यं

चतुर्थ्यङ्गारकदिने यदा भवति दानव । मृदा स्नानं तदा कुर्यात्पद्मरागादिभूषितः ॥ ४३ ॥

अग्निमूर्द्धादिषो मन्त्रं जपेत्स्नात उद्दुम्बुलः ।

शूद्रस्तूर्ण्वास्मरन्मौममास्तां भोगविचर्जितः ॥ ४४ ॥

मयाऽऽमित भादित्ये गोमयेनानुलेपयेत् । प्राङ्गणं पुष्पमालाभिरक्षताग्निः समन्ततः ।

तद्भ्यर्च्यार्चिसेत्पञ्च कुङ्कुमेनाष्टपत्रकम् । कुङ्कुमस्याप्यभावेन रक्तचन्दनमिष्यते ।

चत्वारः फल्काः कार्या भक्ष्यभोज्यसमन्विताः । तण्डुलेरक्तशालेयाः पद्मरागैश्च संयुताः

चतुष्कोजेषु तान्कृत्वा फलानि विधिधानि च ।

तुर्षिशोऽध्यायः ] • अङ्गारकचतुर्ध्वजतविधानम् •

मन्धमाख्यादिकं सर्वं तथैव विनिवेशयेत् ॥ ४८ ॥

सुवर्णभृङ्गां कपिलामयान्यं रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहां सवस्त्राम् ।

धुरन्धरं रक्तखुरं च सौम्यं धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि ॥ ४९ ॥

मङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमप्यायतकाद्गुण्डम् ।

चतुर्भुजं हेममयं च ताम्रपात्रे गुह्योपरि सर्पियुकम् ॥ ५० ॥

सामस्वरथाय जितेन्द्रियाय धाम्नीश्रीलक्ष्यसंयुताय ।

दातव्यमेतत्सकलं द्विजाय कुटुम्बिने नैव तु दम्भयुक्ते ॥ ५१ ॥

इमिषुत्र महामास्रस्वेदोद्वह्य पिनाकिनः कपार्थी तयां प्रपन्नोऽहं गृहाणाह्यं नमोऽस्तु  
रन्नेजानेन दत्तवाच्यं रक्तचन्दनधारिणा । ततोऽर्चयेद्विप्रधरं रक्तमाख्यामबरादिभि  
दद्यात्तेनैव मन्त्रेण भीमं गोमिथुनान्वितम् ।

शय्यां च शक्तिमान्दद्यात्सर्षोपस्कारसंयुताम् ॥ ५२ ॥

पयदिष्टतमं लोके यथास्य दयितं भूदे । तत्तद्गुणवते देयं दत्तस्याक्षयमिच्छता  
ततः प्रदक्षिणं दृष्ट्वा विसृज्य द्वित्रिसप्तमम् । नक्तं क्षीराशनं कुर्यादेयं चाङ्गारकाष्टम  
चतुरो वाध वा तस्य यत्पुण्यं तद्वदामि ते । रूपसौभाग्यसंपन्नः पुमाञ्जमनि जग्नः  
विष्णो वाध शिषे भक्तः समष्टीवाधिपो भवेत् । सप्तकल्पसहस्राणि दद्रुलोके महीय

तस्मात्स्वमपि देयेद्गद्गद् प्रतमेतत्समाचर ॥ ५८ ॥

इत्येषमुक्तो भृगुमन्त्रेन चकार सर्वं च तमेव दैत्यः ।

त्वं चापि राजकुल सर्वमेतत्पतोऽक्षयं वेदयिदो वदन्ति ॥ ५९ ॥

भृशोति यश्चेनमन्यवेतास्तस्यापि सर्वमगवन्विधत् ॥ ६० ॥

इति धी पाण्डुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे अङ्गारकचतुर्ध्वजतं नाम चतुर्षिशोऽध्यायः ।



श्रीवाग्निपर्वेऽधरसम्पुटे तु सम्पूजयेद्भारत रोहिणीषु ॥ १२ ॥  
 मृगेऽर्चनीया रसना पुरारे रौद्रे तु दन्ता हरये नमस्ते ।  
 नमः सवित्रे इतिशङ्करस्य नासामिपूज्या च पुनर्वसौ च ॥ १३ ॥  
 ललाटमम्भोरुद्वहभाय पुष्येऽलकान्वेदशरीरधारिणे ।  
 सार्पे च मौलिं विबुधप्रियाय म्रधासु कर्णाविति पूजनीयौ ॥ १४ ॥  
 पूर्वास्तु गोमहाजननन्दनाय नैत्राणि संपूजयत्तमानि शम्भोः ।  
 अघोसराकाल्पगुनित्रे सृषौ च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये ॥ १५ ॥  
 नमोऽस्तु पाशाङ्कुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।  
 गयासुरानङ्गपुराग्धकामिचिनाशमूलाय नमः शिवाय ॥ १६ ॥  
 इत्यादिकाङ्गानि च पूजयित्वा विश्वेश्वरायेति शिरोऽभिपूजयम् ।  
 भत्रापि भोक्तव्यमौलमग्नमांसमक्षारमभुक्शोषम् ॥ १७ ॥

देवं नृपमकानि कृत्वा दद्यात्पुनर्वसौ । शालेषतण्डुलप्रस्थमौदुम्बरमध्ये घृतम् ॥ १८ ॥  
 साप्य पात्रे विप्राय सहिरण्यं निवेदयेत् । सप्तमे घस्त्रयुग्मं तु पारणे त्वयिर्कं भवेत्  
 तुर्दशे तु सम्प्राप्ते पारणे भारतादिके । ब्राह्मणं भोजयेद्ब्रह्मया शुबक्षीरधृतादिभिः ॥  
 षष्ठा च काञ्चनं पद्ममण्डपत्रं सकर्णिकम् । शुद्धमष्टाङ्गुलं तच्च पद्मरागदलान्वितम् ॥ २१ ॥

शय्यां सुलक्षणां कृत्वा विठ्ठलप्रन्थिवर्जिताम् ।

सौपधानवितानां च स्वास्तरावरणाश्रयाम् ॥ २२ ॥

हुकोपातहस्तत्रयामरासक्तदर्पणीः । भूषणैरपि संयुक्तां कलवस्त्रानुलेपनीः ॥ २३ ॥

तस्यां विधाय तत्पद्मलङ्कृत्य गुणान्विताम् ।

कपिलां घस्त्रसंयुक्तामतिशीलां पयस्विनीम् ॥ २४ ॥

रौप्यखुरां हैमशृङ्गीं खट्वां कांस्यदोहनाम् ।

दद्यान्मन्त्रेण तां घेनुं पूर्वाङ्गं नाटिलङ्घयेत् ॥ २५ ॥

यथैवादित्यशयनमशून्यं तच्च सर्वदा ।

कान्त्या धृत्या धिया पुष्ट्या तथा मे सन्तु वृद्धयः ॥ २६ ॥





ग्रीवाग्रिपर्शेऽधरसम्पुटे तु सम्पूजयेद्भारत रोदिषीषु ॥ १२ ॥

मृगेऽर्चनोया रसना पुरारे रोद्रे तु दन्ता हरये नमस्ते ।

नमः सवित्रे इतिशङ्करस्य नासामिपूज्या च पुनर्वसौ च ॥ १३ ॥

ललाटमम्भोरुहघटमाय पुष्येऽलकान्वेदशरीरधारिणे ।

सार्पे च मीलि विबुधप्रियाय मघासु कर्णाविति पूजनीयी ॥ १४ ॥

पूर्वास्तु गोब्राह्मणमन्दनाय मेवाणि संपूज्यतमानि शम्भोः ।

अधोसराफाल्गुनिभे भूषी च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये ॥ १५ ॥

नमोऽस्तु पाशाङ्कुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।

गयासुरानङ्गपुराण्यकादिबिनाशमूलाय नमः शिवाय ॥ १६ ॥

इत्यादिकाङ्गानि च पूजयित्वा विश्वेश्वरायेति शिरोऽभिपूज्यम् ।

॥ १७ ॥

नि हृत्वा दद्यात्पुनर्वसौ । शालेयतण्डुलप्रस्थमीडुम्बरमधो घृतम् ॥ १८ ॥

निवेदयेत् । सप्तमे वस्त्रगुम्भं तु पारणे त्वधिकं भवेत्

ते पारणे भारतादिके । ब्राह्मणे भोजयेद्ब्रह्मया शुद्धक्षीरघृताविभिः ॥

। शुद्धमध्याङ्गुलं तप्त पद्मरागवलान्वितम् ॥ २१ ॥

। हृत्वा विरुद्धप्रस्थिबर्जिताम् ।

। स्वास्त्यावरणाश्रयाम् ॥ २२ ॥

। भूषणैरपि संयुक्तो कलघस्त्रानुलेपनैः ॥ २३ ॥

। गुणान्विताम् ।

। पयस्विनीम् ॥ २४ ॥

। सवत्सा कांस्यदोहनाम् ।

पूर्वाङ्गं नातिलङ्घयेत् ॥ २५ ॥

तव सर्वदा ।

। तथा मे सन्तु वृद्धयः ॥ २६ ॥



श्रीवाग्निपर्शोऽधरसम्पुटे तु सम्पूजयेद्वास्त रोहिणीषु ॥ १२ ॥  
 मृगेऽर्चनीया रसना पुरारे रोद्रे तु दन्ता इत्ये नमस्ते ।  
 नमः सवित्रे इतिशङ्करस्य नासामिपूज्या च पुनर्वसौ च ॥ १३ ॥  
 ललाटमग्मोरुहधनुभाय पुष्येऽलकान्वेदशरीरधारिणे ।  
 सार्ये च मौलि त्रिबुधप्रियाय मघासु कर्णाविति पूजनीयी ॥ १४ ॥  
 पूर्वार्धसु गोब्राह्मणनन्दनाय नेत्राणि संपूज्यतमामि शम्भोः ।  
 अधोऽसराकालगुनिमे भूषो च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये ॥ १५ ॥  
 नमोऽस्तु पाशाङ्कुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।  
 गद्यासुरानङ्गपुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय ॥ १६ ॥  
 इत्याविकाङ्गानि च पूजयित्वा विश्वेश्वरायेति शिरोऽभिपूज्यम् ।  
 भद्राणि भोक्तव्यमतैलमग्नममांसमक्षारमभुक्शेषम् ॥ १७ ॥

इत्येवं नृपतकानि कृत्वा दद्यात्पुनर्वसौ । शालेयतण्डुलप्रस्थमौकुम्भरमधो घृतम् ॥ १८ ॥  
 संस्थाप्य पात्रे विधाय सहिरण्यं निवेदयेत् । सप्तमे वस्त्रयुग्मं तु पारणे त्वधिकं भवेत्  
 चतुर्दशे तु सप्ताप्ते पारणे भारतादिके । ब्राह्मणे भोजयेद्दक्ष्या शुद्धक्षीरघृतादिभिः ॥  
 कृत्वा च काञ्चनं पद्ममृषभं सकर्णिकम् । शुद्धमष्टाङ्गुलं तच्च पद्मरागदलान्वितम् ॥ २१ ॥

शय्यां तुलक्षणां कृत्वा विरुद्रप्रस्थिवर्जिताम् ।

सोपपानचितागां च स्वास्तरावरणाभयाम् ॥ २२ ॥

पादुकोपानहचक्रवामरासनदर्पणीः । भूयणीरपि संयुक्तां कलवस्त्रानुलेपनीः ॥ २३ ॥

तस्यां विधाय तत्पद्मलङ्कृत्य गुणान्विताम् ।

कपिलां वस्त्रसंयुक्तामतिशीलां वयसिनीम् ॥ २४ ॥

रौप्यचुरां हेमभृङ्गीं सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।

दद्यान्मन्त्रेण तां धेनुं पूर्वाह्णं नात्लिङ्गयेत् ॥ २५ ॥

यथैवादित्यशयनमशून्यं तच्च सर्वदा ।

कान्त्या धृत्या धिया पुष्ट्या तद्या मे सन्तु वृद्धयः ॥ २६ ॥

तथा न देवाः श्रेयांसं त्वदन्यमनघं विदुः । तथा मामुद्धराणेपदुःखसंसारसागरात् ।  
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च विसर्जयेत् । शय्यां गवादि वत्सर्षं द्विजस्य भजनं नयेत् ।

नैतद्विशील्य न दाम्भिकाय प्रकाशनीयं यतमिन्दुमौलेः ।

गौषिप्रदेवर्षिचिकर्मयोगिनां यश्चापि निन्दामधिकां पिपत्ते ॥ २६ ॥

भक्ताय दन्ताय च गुह्यमेतदाख्येयमात्मन्दकरं शिवञ्च ।

इदं महापातकिनां नराणां भयक्षयं वेदविदो वदन्ति ॥ ३० ॥

॥ यन्ध्रपुत्रेनंधनेर्षियुक्तः पत्नीभिरानन्दकरः सुराणाम् ।

नाम्येति रोमं न च दुःखमोदं या चापि नारी कुस्तेऽथ भक्त्या ॥ ३१ ॥

इदं घसिष्टेन पुराजुनेन कृतं कुत्रेण पुरन्दरेण ।

यत्कीर्तनादप्यखिलानि नाशमायान्ति पापानि न संशयोऽत्र ॥ ३२ ॥

इति पठति शृणोति वा य इत्थं रविशयनं पुरुद्वतबल्लभः स्यात् ।

अपि नरकगतान्पितृनशेषानपि द्विषमानयतीह यः करोति ॥ ३३ ॥

अभ्यर्त्थं च घटं चैधोदुम्भरं वृक्षमेव च । नन्दीशं जम्बुवृक्षं च यित्यं प्राहुर्महर्षयः ॥ ३४ ॥

मार्गशीर्षादिमासाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यामथ कमात् ।

एकैकं दन्तधवनं वृक्षेप्येतेषु कारयेत् ॥ ३५ ॥

दद्यात्समाप्ते दध्यन्नं चित्तानध्यजचामरम् । द्विजानामुदकुम्भांश्च पञ्चरत्नसमन्विताम् ॥

न यित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्यन्दोषानपाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

इति श्री पद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिस्रष्टे आदित्यशयनव्रतं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

## पड्विंशोऽध्यायः

रोहिणीचन्द्रशयनव्रतविधानम् ।

भीष्म उवाच ।

दीपांगुरारोम्यकुट्यातिवृद्धिमियुक्तः पुमान्दुपश्रुत्तान्वितः स्यात् ।

मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यक्व्रतं समाचक्ष्व ॥ शीतरश्मिः ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

पृष्टमिदं सम्यगक्षयस्वर्गकारकम् । रहस्यं तु प्रवक्ष्यामि यत्पुराणविदोविदुः  
गीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिदोच्यते । तस्मिन्प्रायणस्यार्चामर्चयेदिन्दुनामभिः  
सोमदिने शुक्ला भवेत्पञ्चदशी क्वचित् । अथवा ब्रह्मक्षत्रं वीर्णमास्यां प्रजायां  
स्नानं नरः कुर्यात्पञ्चगव्येन सर्वपैः । आप्यायत्येति च जपेद्द्विजानपराशरं पुनः ॥  
पि परया भक्त्या पापञ्जालापवर्जितः । सोमाय वरदायाध विष्णवे च नमोनम  
प्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनम् । पूजयेत्फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयन् ॥ ७ ॥

सोमाय शाम्याय नमोऽस्तु पादावनतधाम्नेसि च जानुभङ्गे ।

ऊरुद्वयं चापि जलोदराय सम्पूजयेन्मेढ्रमङ्गधाम्ने ॥ ८ ॥

नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिःशशाङ्कुस्य सदाचरनीयः ।

तथोदरं चाप्यमृतोदराय नाभिः शशाङ्कुस्य नमोऽभिपूज्या ॥ ९ ॥

नमोऽस्तु चन्द्राय मुखं च नित्यं दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः ।

ह्रास्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यमोहो तु कौमोदचनप्रियाय ॥ १० ॥

नासा च नायाय वरौपध्यामामानन्दधीजाय पुनर्भूषौ च ।

नैत्रद्वयं पद्मनिभं तथेन्दोरिन्दीवरग्यासकराय शौरैः ॥ ११ ॥

नमः समस्ताध्वरपूजिताय कर्णद्वयं दैत्यनिपूदनाय ।

ललाटमिन्दोददधिप्रियाय केशाः सुपुम्नाधिपतेः प्रपूज्याः ॥ १२ ॥

शिखः शशाङ्काय नमो मुरारेर्विश्वेश्वरायाध नमः किरीटम् ।

पद्मप्रिये रोहिणी नाम लक्ष्मिसौभाग्यसौख्यामृतसामराय ॥ १३ ॥

देवीं च सम्पूज्य सुगन्धिपुष्पैर्नैवेद्यधूपादिभिर्निदुपत्तीम् ।

सुप्त्वा तु भूमौ पुनरुत्थितो यः स्नात्वा च विप्राय हविष्यभुक्तः ॥ १४ ॥

देवः प्रमाते सहिरण्यधारि कुम्भोनमः पापविनाशनाय ।

सम्प्राश्य गोमूत्रममांसमध्वमक्षामप्राणथ विमर्शितं च ॥ १५ ॥

प्रासांश्च त्रीन्सर्पियुतानुपोष्य भुक्त्वेतिहासं शृणुयान्मुहूर्तम् ।

कदम्बनीलोत्पलकेतकानि जातिः सरोजं शतपत्रिका च ॥ १६ ॥

अमलानपुष्पाण्यथ सिन्दुघारं पुष्पं पुनर्भारतमल्लिकायाः ।

शुक्लं च पुष्पं करवीरपुष्पं श्रीचम्पकं चन्द्रमसे प्रदेयम् ॥ १७ ॥

आवणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा । यस्मिन्मासे यतादिः स्यात्तत्पुष्पैरर्चयेद्विप्रः ।

एवं संवत्सरं याचकुम्भोप्यथ विधिचक्रः । यतान्ते शयनं दद्याच्छयनोपसकरान्वितम् ॥

रोहिणीचन्द्रमिधुनं कारयित्वा तु काञ्चनम् । चन्द्रः पङ्क्तुलः कपयौ रोहिणीचतुर्जुला

मुकाफलाष्टकयुतां सितनेत्रसमन्विताम् । क्षीरकुम्भोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्विताम्

दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्ने शालीक्षुफलसंयुताम् । श्वेतामय सुवर्णास्यां सौम्यहुरसमन्विताम्

सवस्त्रभाजनां धेनुं तथा शङ्खं च भाजनम् । भूपर्णीद्विजदाम्पत्यमलङ्कृत्य गुणान्वितम्

चन्द्रोऽयं विप्ररूपेण समार्य इति कल्पयेत् ।

यथा ते रोहिणीकृष्णशय्यां त्यक्त्वा न गच्छति ॥ २४ ॥

सौमरूपस्य वै तद्वन्न मे भेदोविभूतिभिः । यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिः ॥ २५ ॥

भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्तच्चयि चन्द्र दृढास्तु मे ।

इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ॥ २६ ॥

रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम् । इदमेव पितृणां च सर्वदा यत्नं नृप ॥ २७ ॥

त्रेलास्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम् । चन्द्रलोकमयाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

नारी वा रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत् । सापि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

इति पठति शृणोति वा य इत्थमभ्युपगच्छन्तर्धनमिन्दुकीर्तनेन ।

मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरेर्भयनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः ॥ २८ ॥

इति श्री पद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिकण्डे रोहिणीचन्द्रशयनप्रतं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## सप्तविंशोऽध्यायः तटाकप्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

तटाकारामकूपेषु बापीषु नलिनीषु च । विधिं वदस्व मे ग्रहान्देवतायतनेषु च ॥ १ ॥

के तत्र ऋत्विजो विमा वेदी या कीदृशी भवेत् ।

दक्षिणापलयः कालः स्थानमाचार्य एव च ॥ २ ॥

द्रव्याणि कानि शस्तानि सर्वमाचक्ष्व सुमत ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ऋगुराजन्महाबाहो तटाकादिषु यो विधिः ॥ ३ ॥

पुराणेष्वितिहासोऽयं पठ्यते राजसूतम् । प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लं संप्राप्ते चोत्तरापणे ॥

पुण्येऽङ्घ्रि विप्रैः कथिते कृत्वा ग्राह्यवाचनम् । भगुर्भवेज्जिते देवो तटाकस्य समीपतः

चतुर्दंष्ट्रां समां देवीं चतुरक्षां चतुर्मुखीम् । तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः

वेद्यास्तु परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखलाः । नव सप्ताथ वा पञ्चदशतुल्यवन्ना नृपारमज

वितस्तिमात्रा योनिः स्यारपद्सप्ताङ्गुलिविस्तृता ।

गर्ताश्च हस्तमात्रास्स्युक्त्रिपर्योचिह्नमेखलाः ॥ ४ ॥

सर्वतस्तु सपर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः । भस्वत्योदुभयरप्लक्षधराणां कृतानि तु

मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् । शुभास्तत्राष्टहोतारो द्वारापालास्तथाष्टवै

भटी तु जापकाः कार्यं ब्राह्मणा वैदपाय्याः ।

सर्वलक्षणसंपूर्णान्मन्त्रज्ञान्विजितेन्द्रियान् ॥ ११ ॥

कुलशालसमायुक्तान्स्थापयेद्देहिजोत्तमान् । प्रतिगतेषु कलशाय यज्ञोपकरणानि च ॥

व्यजने चासनं शुभ्रं ताम्रपात्रं सुविस्तरम् । ततस्त्वनेकवर्णास्स्युर्वलयः प्रतिदेवतम् ॥

आचार्यः प्रक्षिपेद्भूमापनुमन्त्र्य विचक्षणः । अरत्निमाधोयूयः स्यारक्षीरक्षपिनिर्मितः

मासांश्च त्रीन्सर्पियुतानुगोप्य भुक्वेतिहासं शृणुयान्मुहूर्तम् ।

कदम्यनीलोत्पलकेतकानि जातिः सरोजं शतपत्रिका च ॥ १६ ॥

अमलानपुष्पाण्यथ सिन्दुधारं पुष्पं पुनर्मरिचमहिकायाः ।

शुक्लं च पुष्पं करवीरपुष्पं श्रीचम्पकं चन्द्रमसे प्रदेयम् ॥ १७ ॥

श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा । यस्मिन्मासे यथादिः स्यात्सत्पुष्पैर्व्येष्टं  
एवं संवत्सरं यावदुप्योप्य विधिप्रवरः । यतान्ते शयनं दद्याच्छयनोपस्कृत्य  
रोहिणीचन्द्रमिथुनं कारयित्वा तु काञ्चनम् । चन्द्रः पङ्कजः

मुकाफलाष्टकयुतां सितनेत्रसमन्विताम् । क्षीरकुम्भोपरि पुनः

दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्ने शालीभुफलसंयुताम् । श्वेतामथ

सयस्त्रभाजनां धेनुं तथा शङ्खं च भाजनम् ।

चन्द्रोऽयं विप्ररूपेण सभार्य इति कल्पयेत् ।

यथा ते रोहिणीरुष्णशय्यां त्यक्त्वा न गच्छति ॥ २४ ॥

सोमरूपस्य वै तद्वन्न मे भेदोपिभूतिभिः । यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिः

भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्तद्यपि चन्द्र इहास्तु मे ।

इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ॥ २६ ॥

ऽपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम् । इदमेव पितॄणां च सर्वदा यत्नं नृप ॥ २७ ॥

रेलाभ्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम् । चन्द्रलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्

गरी या रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत् । सापि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्

इति पठति शृणोति वा य इत्थमधुमयनाचर्नमिन्दुकीर्तनेन ।

मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरैर्मवनगतः परिपूज्यतेऽमरीचे ॥ २९ ॥

इति धी पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिलखण्डे रोहिणीचन्द्रशयनव्रतं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः



## सप्तविंशोऽध्यायः तटाकप्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

टाकारामकूपेषु चापीषु नलिनीषु च । विधिं चदस्व मे ब्रह्मन्देवतायतनेषु ॥ १ ॥

के तत्र ऋत्विजो विद्वां येदी वा कीदृशी भवेत् ।

दक्षिणाधलयः काष्ठः स्थानमाचार्य एव ॥ २ ॥

द्रव्याणि कानि शस्तानि सर्वमाचक्ष्व सुप्रत ॥

पुलस्त्य उवाच ।

भृगुराजन्महाबाहो तटाकादिषु यो विधिः ॥ ३ ॥

प्राणेष्वितिहासोऽयं पश्यते राजसूतम् । प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लं संप्राप्ते बीजरायणे ॥

पुण्येऽङ्गि विद्वांसः कथिते कृत्या प्राज्ञगवाचनम् । भृगुर्भर्षजिते देशे तटाकस्य समीपतः

चतुर्हस्तां समां येदीं चतुरस्रां चतुर्मुखीम् । तथा योऽश्वस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः

वेद्यास्तु परितो गतां दक्षिमात्रास्त्रिमेखलाः । नव सप्ताथ वा पञ्चशतशतं वा नृपात्मज

वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्पद्सप्ताङ्गुलिविस्तृता ।

गतांश्च हस्तमात्रास्त्युस्त्रिपर्योक्त्वितमेखलाः ॥ ८ ॥

सर्वतस्तु सवर्णाः स्युः पताकापञ्चसंगुताः । अश्वत्थोदुम्भारप्लक्षपटशाखा वृक्षानि च

मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् । शुभास्तत्राष्टोत्तारो द्वारापालास्तथापृथै

भटौ तु जापकाः कार्यां प्राह्वणा वेदपारगाः ।

सर्वलक्षणसम्पूर्णान्मन्त्रद्वान्वितेन्द्रियान् ॥ ११ ॥

कुलशालसमायुक्तान्स्थापयेद्देहिजीवमान् । प्रतिगतेषु फलशा मन्त्रोपकरणानि च ॥

व्यजने वासनं शुद्धं ताम्रपात्रं सुविस्तरम् । ततस्तथनेकवर्णास्त्युर्वलयः प्रतिद्वैपतम् ॥

धाचायेः प्रक्षिपेद्भूमावमुमन्त्र्य चिचक्षणः । अरक्षिमात्रोयूयः स्वतश्चोरवृक्षविनिर्मितः

यजमानप्रमाणोघा संस्थाप्योभूतिमिच्छता । हेमालङ्कारिणःकार्याः पञ्चविंशतिभूति  
कुण्डलानि च हैमानि केयूरफटकानि च । तथाङ्गुलिपवित्राणि वासांसि विविधा  
दद्यात्समानि सर्वेषामाचार्यं द्विगुणं स्मृतम् ।

दद्याच्छयनसंयुक्तमारुह्यपि यत्प्रियम् ॥ १७ ॥

सौवर्णौ कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यदुण्डुभौ । ताम्रौ कम्भीरमण्डूका धातसःशिशुमार  
एवमासाद्य तत्सर्वमादायेव विशांपते । शुक्लमास्याम्यरधः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥  
सर्षापथ्युदकैः सर्वैः स्नापितो वेदपारगैः । यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः  
पश्चिमद्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम् । ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च  
रजसा मण्डलं कुर्यात्पञ्चधर्णेन तत्त्ववित् । षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगमं चतुर्मुखम्  
चतुरस्रं तु परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम् । वेद्याभ्योपरितः कृत्वा ग्रहार्होक्तपत्तीस्ततः  
संन्यसेन्मन्त्रतः सर्पान्प्रतिदिक्षु विचक्षणः । कलशं स्थापयेन्मध्ये धारणं मन्त्रमाधित  
ग्रहप्राणं च शिष्यं पिण्डं तत्रैव स्थापयेद्विबुधः । विनायकंचविन्यस्य कमलामग्निकान्त

शान्त्यर्थं सर्वलोकानां भूतप्राप्तं न्यसेत्ततः ।

पुष्पमक्षयफलैर्गुल्मैश्च कृत्वाधियासनम् ॥ २६ ॥

कुम्भाश्च रत्नगर्भास्तान्यासोमिः परिवेष्टयेत् ।

पुष्पगन्धैरलङ्कृत्य द्वारपालान्समन्ततः ॥ २७ ॥

यजध्यमिति तान्द्रयादाधार्यमभिपूजयेत् । यद्गृह्यो पूर्वतः स्थाप्यो दक्षिणेन यजुर्विदो  
सामगो पश्चिमे स्थाप्यायुसरेणाप्यथर्वणो । उद्गृह्यो दक्षिणतो यजमान उपाधिरो  
यजध्यमिति तान्द्रयाद्याजकान्पुनरेव तान् । उक्तमन्त्रजाप्येन तिष्ठध्यमिति जापकान्  
एवमादिश्य तान्सर्वान्संधुश्याग्निं च मन्त्रवित् ।

तदुपादादुतो मन्त्रैराज्यं च समिधस्तथा ॥ ३१ ॥

ऋत्विग्भिश्चैव हातव्यं धारणरं च सर्वतः । ग्रहेभ्यो विधिष्वुपुत्वा तपेन्द्रायेभ्यश्च च  
मष्टुभ्यो लोकपालेभ्योविधिष्वग्निभ्यर्चने । शान्तिवृत्तं च यौद्रं च पापमार्तं च मङ्गलम्

जपेयं यौद्रं वृत्तं पूर्वतो यद्गृह्यः पृथक् ।

शाकं रौद्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं ज्ञातवेदसम् ॥ ३४ ॥

सौरं सूक्तं जपेयुस्ते दक्षिणेन यजुर्विदः । वैराजं पौरुषं सूक्तं सौषणं ख्यसंहितम् ॥  
शैशवं पञ्चनिधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च । चामदेव्यं बृहत्साम रौरवं च रथन्तरम् ॥  
मघां घृतं विकीर्णं च रक्षोघ्नं च यमं तथा । भाषेयुः सामगाराजन्पश्चिमद्वारमाधिताः  
आधर्षणाधोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा । जपेयुर्मनसा देवमाधिता वरुणं प्रभुम् ॥  
पूर्वेद्युरभितो रात्रादेवं हृत्वाधियासनम् । गजाश्चरथधम्मीकसंगमामृमज्जगोकुलात् ॥

सूदमादाय कुम्भेषु प्रक्षिपेदोषधीस्तथा ।

रोचनां च सतिद्वार्थां गन्धान्गुग्गुलुमेव च ॥ ४० ॥

स्नापनं तस्य कर्त्तव्यं पञ्चगव्यसमन्वितम् ।

पूर्वं कर्तुमंदाग्नौदेवं हृत्वा विधानतः ॥ ४१ ॥

अतिषाह्य क्षपामेवं विधियुक्तेन कर्मणा । ततः प्रभाते विमले सज्जाते तु शतं गधाम् ॥  
ब्राह्मणेभ्यः प्रज्ञातव्यमष्टपष्टयं वा पुनः । पञ्चाशद्वाथ पद्विंशत्पञ्चविंशति वा पुनः ॥  
ततश्चावसरमाप्ते शुद्धे लम्बे सुशोभने । वेदशस्त्रैः सगन्धर्वैर्षादींश्च विविधैः पुनः ॥ ४४ ॥  
कनकालङ्कृतां कृत्वा जले गामयतात्येत् । सामगाय च सा देवा ब्राह्मणाय पिशांपते  
पात्रीमादाय सौषणीं पञ्चरत्नसमन्विताम् । ततोनिक्षिप्यमकरान्मत्स्यादींश्चैव सर्वशः  
धृतां चतुर्भिर्विप्रैश्च देवदेवाङ्गुपाखीः । महानदीजलोपेतां दध्यक्षतविभूषिताम् ॥ ४७ ॥  
उत्तरमिमुजान्पुङ्गवां जलमध्ये तु कारयेत् । आधर्षणेन मुस्तातो पुनर्मायां तथैव च  
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्यथाऽऽगत्य च मण्डपम् ।

पूजयित्वा सदस्यान्वै पलिं दद्यात्समन्ततः ॥ ४९ ॥

पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि राजसूतम । चतुर्थीकर्म कर्त्तव्यं देवं तथापि शक्तिः ॥  
हृत्वा तु यज्ञपात्राणि यष्टोपकरणानि च । ऋत्विग्यस्तु समं दद्यान्मण्डपंविभजेत्युनः  
देमपात्रीं च शय्यां च विप्राय च निवेदयेत् । ततः सहस्रं विप्राणामथवाऽष्टशतं तथा ॥  
भोजनीयं यथाशक्ति पञ्चाशद्वाथ विंशतिः । एवमेव पुराणेषु तटाकविधिरन्यते ॥ ५३ ॥  
कृपयापीषु सर्वासु तथा पुष्कटिणीषु च । एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च ॥

मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात्प्रासादोद्यानभूमिषु । अयं त्वशक्तावर्धनविधिर्दृष्टस्वयंभुवा ।

स्थल्पेष्वेकाग्रिवत्कार्योचितशठवधिवर्जितैः ।

प्रावृट्काले स्थितं तोयमग्निष्टोमसमं स्मृतम् ॥ ५६ ॥

शरत्कालस्थितं यत्स्यात्तदुक्तफलदाक्यम् ।

वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमन्ते शिशिरौ स्थितम् ॥ ५७ ॥

भस्वमेधसमं प्राहुर्वसन्तसमये स्थितम् । ग्रीष्मेऽपि यत्स्थितं तोर्यराजसूयाद्विशिष्यते

पतान्महाराज विशेषधर्मान्करोति चोर्ण्यामतिशुद्धपुद्भिः ।

स याति ब्रह्मालयमेव शुद्धः कल्पाननेकान्द्वि मोक्षते च ॥ ५८ ॥

अनेकलोकान्विचरन्स्वरादीन्भुक्त्वा परार्धद्वयमद्भुताभिः ।

सहैष पिप्प्लोः परमं पदं यत्प्राप्नोति तद्योगवलेन भूयः ॥ ५९ ॥

इति श्री पद्मपुराणे प्रथमेऽष्टिसर्गोऽष्टौ तटाकप्रतिष्ठाविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

## अष्टाविंशोऽध्यायः

### पादपारोपणविधिवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

पादपानां विधिं ब्रह्मन्ध्यापद्विस्तारद्वयं । विधिना येन कर्त्तव्यं पादपारोपणं पुनः ॥

ये च लोकाः स्मृता येषां तानिदानीं पदस्य मे ।

पुलस्त्य उवाच ।

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु ॥ २ ॥

तटाकविधिरस्यैव समाप्य जगतीम्बर । श्रुत्विह्मण्डपसंभारमाचार्यं चापि तद्विधम्

पूजयद्ब्राह्मणांस्तद्वदेमयस्त्रानुत्पन्नेः । सर्पाभ्युदकेः सिक्तान्ध्वक्षतविभूषितान् ॥ ३ ॥

तैः सौपर्णया कायं सर्वेषां कर्णधेयम् ।

अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्देमशलाकया । फलानि सप्त चाप्यो घा कालधीतानि कारयेत्  
प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेद्यां तान्यधिवासयेत् । धूपोऽन्नगुग्गुलुःश्रेष्ठस्ताम्रपात्रेष्वधिष्ठितान्  
सप्तधान्यस्थितान्कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः कुम्भान्सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वाऽघनीभ्यः  
पूजयित्वा दिनान्ते च कृत्वा बलिनिवेदनम् ।

यथायत्नोक्तपालानामिन्द्रादीनां विधानतः ॥ ६ ॥

घनस्पतेरधिवास एवं कार्यो द्विजातिभिः । ततः शुक्लाम्बरधरां सौषर्णकृतमेखलाम् ॥

सकांस्पदोहां सौषर्णभृङ्गान्स्वामतिशालिनीम् ।

पयस्विनीं वृक्षमध्याधुत्सृजेद्वासुन्धुमुखीम् ॥ ११ ॥

ततोऽभिषेकमन्त्रेण वायमङ्गुलीतकैः । ऋत्यजुः साममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तदा ॥ १२ ॥  
तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्यान्नाक्षजपुङ्गवाः । स्वातःशुक्लाम्बरधरो यजमानोऽभिपूजयेत् ॥  
गोभिर्विभवतः सर्वांस्तृचजः सुसमाहितान् । हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयैः पवित्रकैः ॥  
वासीभिः शयनीपैश्च तथोपस्करपादुकैः । क्षीराभिषेचनं कुर्यादाधदिनवतुष्टयम् ॥  
होमश्च सर्पिषा कार्यो यथैः कृष्णतिलैरपि । पलाशसमिधः शस्ताभ्यर्चयेद्दहि तथोत्सवः  
वक्षिणा च पुनस्तद्वहेया तत्रापि शक्तितः । यद्यदिष्टतमं किञ्चित्तत्तदद्यादमत्सरी ॥ १७ ॥  
आचार्ये द्विगुणं दद्यात् प्रणिपत्य क्षमापयेत् । भजेन विधिना वस्तुकुर्पादुवृक्षोत्सवं बुधः  
सर्वान्कामानवाप्नोति पदं चानन्तमश्नुते । यश्चैवमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेद्बुधः  
सोऽपि स्वर्गं वसेद्वाज्यावदिन्द्रायुतप्रयम् ।

भूतान्भन्यांश्च मनुजान्स्तारयेद्गोमसमिताम् ॥ २० ॥

पत्मां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् । य इदं गृणुयान्नित्यं ध्याययेद्वापि मानवः ॥  
सोऽपि सम्पूज्यते देवैर्ब्रह्मलोके महीयते । भुवःस्थश्च पुत्रित्वं पादपा पश्यकुर्यते ॥ २२ ॥  
तीर्थेषु पिण्डदानादिघोषकाणां ददन्ति ते । यत्नेनापि च राजेन्द्र अभ्यर्थारोपणं फलम् ॥  
स ते पुत्रसदस्यस्य हृत्पमेकः करिष्यति । घनी चाभ्यस्थवृक्षेण भशोकः शोकनाशनः  
ऋक्षो यष्टप्रदः शीतः क्षीरीवायुः प्रदः स्मृतः ।

जम्बुकी कन्यकादात्री मार्यादा दादिमी तथा ॥ २५ ॥

अश्वत्थो रोगनाशाय पलाशो ब्रह्मदस्तथा । प्रेतत्वं जायते पुंसो रोपयेद्यो विमोतकम्  
 भङ्गोले कुलवृद्धिस्तु खादिरेणापि रोगिता । निम्बप्ररोहकाणां तु नित्यंतुष्येद्दिवाक  
 श्रोवृक्षे शङ्करो देवः पाटलायां तु पार्वतो । शिंशपायामप्सरसः कुन्दे गन्धर्वसत्तमाः ।  
 तिलिन्तिडीके दासवर्गा बभ्रुले दस्यवस्तथा । पुण्यप्रदः श्रीप्रदश्च चन्दनः पनसस्तथा ।  
 सौभाग्यदध्मपकश्च करीरः पारदारिकः । अपत्यनाशकस्तालो यकुलः कुलवर्द्धनः ॥ १० ॥  
 यदुभार्या नारिकेला द्राक्षा सर्वाङ्गसुन्दरी । रतिप्रदा तथा कोली केतकी शयुनाशिनी ॥  
 पद्ममादिनगाध्वान्ये येनोक्तास्तेऽपि दायकाः ।

प्रतिष्ठां ते गमिष्यन्ति यैस्तु वृक्षाः प्ररोपिताः ॥ १२ ॥

इति श्री पद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे वृक्षारोपणविधिर्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।

## ऊनत्रिंशोऽध्यायः

### सौभाग्यशयनव्रतविधानम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

तथैवान्यत्प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् । सौभाग्यशयनं नाम यत्पुराणविदो विदुः ॥  
 पुरा वृषेषु लोकेषु भूर्भुवःस्पर्शमहाविषु । सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थममपत्तदा ॥ २ ॥  
 वैकुण्ठं सर्वमासाद्य विष्णोर्वक्षस्थले स्थितम् । ततः कालेन कियता पुनः सांविधीनृप  
 महङ्गारावृते लोके प्रधानपुरयान्विते । स्पर्शार्थां च प्रवृद्धार्थां कमलासनठण्णयोः ॥  
 विह्वाकारा समुद्भूता घट्टिधालातिमीषणा । तथाभित्तस्तस्य हरेर्वक्षसस्तद्विनिःपुतम् ॥  
 यद्वक्षस्थलमाश्रित्य विष्णोः सौभाग्यमास्थितम् ।

रसरूपं न तदाचक्ष्णोति यत्तुघातले ॥ ६ ॥

उत्तिष्ठन्तगिरिक्षात्तु प्रह्मपुत्रेण धीमता । दक्षेण पीतमात्रं तद्रूपलाषण्यकारकम् ॥ ७ ॥  
 यत्नं तेजो महज्जानं दक्षस्य परमेष्ठिनः । शेषं यद्वत्तद्भूमावृष्ट्या तदुप्यजायत ॥ ८ ॥

उत्तराश्विऽध्यायः ]      \*० सौभाग्यशयनप्रतिविधानम् \*

ततस्तपोपधयो जाताः सप्तसौभाग्यदायिकाः ।

इक्षवस्तदराजश्च निष्पावाश्शालिधान्यकम् ॥ ६ ॥

विफारयथ गोक्षीरं कुसुमं कुसुमं तथा । लवणं चाष्टमं तद्वत्सौभाग्याष्टकं  
पीतं यदुपलभ्यते योगज्ञानविदा पुनः । दुहिता साऽभवत्तस्माद्या सतीत्यभि  
लोकानतीत्य लालित्वाहलिता तेन बोध्यते । त्रैलोक्यसुन्दरी देवीमुपयेमे पि  
त्रिविधसौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।

तामाराध्य पुमान्भवया नारी वा किं न विन्दति ॥ १३ ॥

भीष्म उवाच ।

कथमाराधनं तस्या ललिताया मुने षड् । यद्विधानं च जगतः शान्तये तद्वत्स ।  
पुलस्त्य उवाच ।

वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रियः । शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्ने तिलैः स्नानं समा  
तस्मिन्निहनि सा देवी किल विश्वरत्नता सती । पाणिप्रहृणिकैर्मन्त्रैश्चूडा वरा  
तथा सहैष विश्वेशं तृतीयायामधार्चयेत् ।  
फलैर्गानाविधैर्दीपैर्धूपैर्नैवेद्यसंगुतैः ॥ १७ ॥

प्रतिमां पञ्चमव्येन तथा गन्धोदकेन च । स्नापयित्वाऽर्चयेद्गौरीमिगुणोपरसं  
नमोऽस्तु पाटलाय तु पादौ देव्याः शिवस्य च ।

शिवायेति च सङ्कीर्त्य जपायै गुल्फपोर्तयोः ॥ १८ ॥

त्र्यम्बकायेति हृत्स्य भवान्यै जङ्घयोर्वयम् ।

शिरो ह्रस्वरायेति विजयायै च जानुनी ॥ २० ॥

सङ्कीर्त्य हस्किंशाय तद्योरुवधे नमः । ईशायेति कटिरत्ये शङ्करायेति शङ्करम् ॥ २  
कुक्षिद्वयं च कोटयौ शूलिनं शूलपाणये । मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चामिपूजयेत् ॥  
सर्वात्मने नमो रुद्रीशान्यै च कुचद्वयम् । शिववेदात्मने तद्वद्रुद्राण्यै कण्ठमर्चये  
त्रिपुरधाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम् । त्रिलोचनायेति ह्रं बाहू कालानलप्रिये ॥ २  
सौभाग्यमचनायेति भ्रूणानि सदाचरेत् । स्वाहा स्वधायै च मुखमीश्वरायेतिशूलि

अशोकवनवासिन्यै पूज्याद्योष्टौ च भूतिदो । स्थाणवे च हरं तद्वदास्यं चन्द्रमुखप्रिये ।  
 नमोऽर्धनारीशहरमसिताङ्गेति नासिकाम् । नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्मुखा ।  
 शर्पाय पुरदत्तारं वासुदेव्यै तथालकम् । नमः श्रीकण्ठनाथाय शिववेशांस्तथावयेत् ।  
 भीमोग्रभीमरूपिण्यै शिरःसर्वात्मनेनमः । हृष्यम्यर्च्यविधिबत्सौभाग्याष्टकमग्रतः ।  
 स्थापयेत्स्निग्धनिष्पाद्यान्कुसुमभक्षीरजीरकम् । तरुराजेभ्रुलयणं कुस्तुम्बुरुमथाष्टमम् ।  
 दद्यात्सौभाग्यकृद्यस्मात्सौभाग्याष्टकमित्युत । एवं निवेद्य तत्सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः  
 चैत्रे शृङ्गाटकान्प्राश्य स्वपेदुभूमाचरिन्दम । पुनः प्रमाते च तथा कृतस्तानजपःशुचिः ।  
 संपूज्य द्विजदाम्पत्यं माल्ययस्त्रचिभूषणैः । सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सौघर्णप्रतिमाद्वयम्  
 प्रीयतामेऽत्रललिता धातुणाय निवेदयेत् । एवं संपत्सरं यावत्तृतीयायां सदा नृप ॥३४॥  
 प्राशने दानमन्त्रे च विशेषोऽयं निबोधमे । गोशृङ्गाग्न्युमर्धौ प्रोक्तं वैशाले गोमयं पुनः

ज्येष्ठे मन्दारकुसुमं विल्वपत्रं शुक्लं स्मृतम् ।

धापणे दधि सम्प्राश्यं नभस्ये तु कुशोदकम् ॥ ३६ ॥

क्षीरं चाश्वयुजे मासि कार्तिके पूषदाज्यकम् ।

मार्गशीर्षे तु गोमूत्रं पीये सम्प्राशयेद् धृतम् ॥ ३७ ॥

माघे कृष्णतिलांस्तद्वत्पञ्चगव्यं च फाल्गुने ।

ललिता पित्रया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा ॥ ३८ ॥

वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती ।

उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥ ३९ ॥

तस्मिन्नु द्वादशे मासि द्वादश्यां कृष्णमर्चयेत् ।

तथा लक्ष्मीं च तत्रैव भर्त्रा सार्धमथाचरेत् ॥ ४० ॥

पौर्णमास्यामितस्तद्वत्सप्तदशः पितामहः । उपासनीयो विदुषा परब्रह्मी  
 सौभाग्याष्टकं तद्वच्च दातव्यं भूतिमिच्छता । महिषाशोकफलं कदम्बो  
 कुन्जकं कर्पूरं च याजमम्लानपङ्कजम् । सिन्दुवारं च सर्वेषु मासेषु कु  
 र्यात्कुसुमकुसुमं मालतीं शतपत्रिका । यथा लाभं प्रशस्तानि कर्पूरं ।



एवं संवत्सरं द्वादशद्वयोप्यविधिबन्धः । ह्यो च नक्तं कुमारी च शिवमभ्यर्च्य भक्तिः  
व्रतान्ते शयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् । उमामदेश्वरी हैमो वृषभश्च गवा सह ॥४६॥

स्यापयित्वा ■ शयनं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।

द्वादश्यां वत्सरं त्वेकं महालक्ष्म्या च केरावम् ॥ ४७ ॥

प्रह्लापं सह सावित्र्या पूजयित्वा नरस्तिवह ।

सर्वान्कामानवाप्नोति मनसा समप्रीप्सितान् ॥ ४८ ॥

अन्यान्यपि यथाशक्ति मिथुनान्यम्बरादिभिः । धान्यालङ्कारादीनैरन्यैश्च धनसञ्जयैः ॥  
चित्तशार्दूलैर्न रहितः पूजयेद्भुजविस्मयः । एवं करोति यः सम्यक्सौभाग्यशायनव्रतम्  
सर्वान्कामानवाप्नोति पद्ं वा नित्यमश्नुते ।

फलस्यैकस्य च त्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् ॥ ५१ ॥

यशः कीर्तिमवाप्नोति प्रतिमासं नराधिप । सौभाग्यारोग्यरूपैश्च वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥  
न विद्युक्तो भवेद्वाजन्सौभाग्यशयनप्रदः । यस्तु द्वादशयर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् ॥  
करोति सप्त चाष्टौषा प्रहल्लोके महीयते । पूज्यमानो वसेत्सम्यग्यायत्कल्यायुतंनरः ॥  
विष्णोर्लोकमधासाय शिवलोकगतस्तथा । नारी वा कुश्ले वा तु कुमारी वा नरेश्वर  
सापि सत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता । शृणुयादपि यश्चैव प्रवदादधया मतिम् ॥

सोऽपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोके विरं वसेत् ।

इदमिह मन्त्रेण पूर्यसृष्टं यतधनुषा च वृत्तं नरेण सद्रत् ॥

वृत्तमथ पपनेन नन्दिना च किमु जननाय महादुर्तं न वा स्यात् ॥५८॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिलक्षणे व्रताध्यायो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।



अप्रवीजगतः कार्यं प्राप्तामापदमुत्तमाम् । किं न जानासि वै देव यतो नो भयमागच्छम्  
दैत्यैर्यदाकृतं सर्वं धरदनाय ते प्रभो । कथितं वै भयासर्वं बाष्कलेऽथ दुरात्मनः ॥  
क्रियतां चाधिलभ्येन पिता त्वं नः पितामहः । तत्त्वं चिन्तयदेवेशान्त्ययं जगतस्त्विह  
तेषां च पश्यतां किञ्चिच्छीतस्मार्तादिकाः क्रियाः ।

न प्रापतन्त हानिस्तु तैरस्माकं दिने दिने ॥ २१ ॥

यथा हि प्राकृतः कश्चित्स्वार्थमुद्दिश्यभाषते । पित्राज्यसेतयास्माभिर्निरस्तोपकृतैः सदा  
यद्येनोपकृतं यस्य सहस्रगुणितं पुनः । यो न तस्योपकाराय तत्करोति बृथा मतिः ॥  
तस्योपकारार्थस्य निरूपस्यासतः पुनः । नरकेष्वपि संवासस्तस्य दुष्कृतकारिणः ॥  
नैतावतैव साधुत्वं कृते या तु प्रतिक्रिया । स्वार्थं कनिष्ठबुद्धीनामेतन्नापि प्रवर्तते ॥  
यद्यस्य ताम्रवत्स्थानं जगतो ह्यत्र दुःखदम् । शतपाहृदयं दीर्घं तन्न वृत्तिमुपागतम् ॥  
तत्र वा यत्र गन्तास्मि निमग्नानुद्धरस्व नः । उपायकथनेनास्य येन तेजःप्रवर्तते ॥ २७ ॥

यथाऽऽवशात् भया दृष्टं जगत्तत्त्वमवेक्ष्यताम् ।

निस्स्वाध्यायवर्णनं निवृत्तोत्सवमङ्गलम् ॥ २८ ॥

त्यक्ताध्ययनसंयोगं मुक्तवार्तापरिग्रहम् । दण्डनीत्या परित्यक्तं भ्वासमाश्रायशेषितम्  
जगदार्तिमपि प्राप्तं पुनः कष्टतरां दशाम् । एतावता हि कालेन वयं ग्लानिमुपागताः ॥

ब्रह्मोवाच ।

जानामि बाष्कलिं तं तु धरदनाय गर्वितम् । अजेयं भवतां मन्ये विष्णुसाध्यो भविष्यति  
निरुध्य संस्थितो ब्रह्मा भावं तत्त्वमयं तदा । समाधिरस्यस्य तस्यैव ध्यानमाश्राद्य तु भुञ्जः  
स्तोकेनैव हि कालेन चिन्त्यमानः स्थयामुवा । आजगाम मुहूर्तेन सर्वपापेभ्यः पश्यताम्  
विष्णुश्च वाच ।

भोभो ब्रह्मनिपर्तस्व ध्यानादस्मान्निवारितः । यदर्थमिष्यते ध्यानं सोऽहं त्वांसमुपागतः  
ब्रह्मोवाच ।

महाप्रसाद एषोऽत्र स्वामिनो हि प्रदर्शनम् । कस्यान्यस्यमवेक्ष्यैवाचिन्तायाजगतः प्रभो  
मनेष सावदुत्पत्तिर्जगदर्थं विनिर्मिता । जगदेतत्त्वदर्थीयं तत्त्वतो नास्ति विस्मयः ॥

इता पालनं कार्यं संहरेदुद्ग एव ॥ । एवम्भूने जगत्पस्मिन्प्रकृत्यास्य महात्मनः ।  
 । राज्यं वाष्कलिना त्रैलोक्यं सचराचरम् । भृत्यस्य कियतांसाह्यं मन्त्रदानेनकेराः

वासुदेव उवाच ।

शतो वरदानेनःअधयः स तु सांप्रतम् । बुद्धिसाध्यः स वै कार्यो दग्धनादिह दानवः  
 मनोऽहं भविष्यामि दानवानां विनाशकः । मया सहस्रजत्वेपवाष्कलेस्तु निवेशनम्  
 । गत्वा परं त्वेव मदर्थं याचतुमिमम् । वामनस्यास्य विप्रस्य भूमे राजन्पद्मयम्  
 । लब्धस्वमहाभाग याच्यैषा तु मयाकृता । शक्रेणोक्तोदानवेन्द्रोद्घातस्वमपिजीवितम्  
 । प्रतिग्रहं तस्य दानवस्य पितामह । तं यदुध्वा च ततो यत्नात्कृत्या पातालवासिनम्  
 करं रूपमास्थाय यथार्थं च दुरात्मनः । भविष्यामि न सन्देहो ब्रज शक्त्यरान्वितः  
 । एवम् तमुक्त्यैवमन्तर्धानं गतश्च वै । अथकालान्तरे विष्णोश्चक्षितेर्गर्भतांगते ॥ ४५ ॥

मेसान्धतिघोराणि प्रादुर्भूतान्यनेकशः । समस्तजगदाधारे विष्णो गर्भत्वमागतं ॥  
 भनं हि तदा जातं निमित्तं चैवमूर्जितम् । मालतीकुसुमानां तु सुगन्धःसुरभिर्वशी

अथ विहितविधानं कालमासाद्य देवस्त्रिदशगणहितायं सर्वभूतानुकम्पी ।

विमलपिरलयेऽश्वान्द्रशङ्खोदयभीरदितितनयभावं देवदेवश्चकार ॥ ४८ ॥

अथतरति च विष्णो सिद्धदेवासुराणामनिमिषनयनानां विप्रसेदुर्मुखानि ॥

अति विस्तरजोभिर्षागुभिः संघहर्द्विर्दिनमपि च तदासीजजन्म विष्णोः सुगर्भं ॥

अदितिरजनगर्भा सापि देवी प्रयान्ती नतजघनभरतां मन्दसंचाररम्या ।

अलसपदनश्वेदं पाण्डुमार्यं पहन्ती गुह्यतरमघनादं गर्भमेपोद्गच्छती ॥ ५० ॥

ततःप्रपिष्टे खलु गर्भपासं नारायणे भूतमविष्ययोगात् ।

विना पदं प्राप्तमनोरथानि भूतानि सर्षाणि तदा यमूयुः ॥ ५१ ॥

समीरणो पाति च मन्दमन्दम्पठस्तु पर्वेषु नगोद्वेषेषु ।

पिपिचमार्गेषु दिगन्तरेषु जनेषु यै सत्यमुपागतेषु ॥ ५२ ॥

पिमुच्यमाने गगने रजोभिः शनैश्शनैर्नश्यति चान्धकारे ॥ ५३ ॥

विष्णो श्रोहबुद्धिस्तदामयत् । तां निशामय राजेन्द्र देवमातुर्यथाक्रमम् ॥

किमनुक्रमणेनैव लक्ष्यामित्रिषिष्टम् । चाप्कलिं दानवेन्द्रं तं कुर्यां पातालवासिनम् ॥  
 शक्रस्य तु मया दत्तं धनं लाघण्यमेव च । दानवानां विनाशाय एकैव प्रभवाम्यहम् ॥  
 क्षिपामिशरजालानि धकयानान्यनेकशः । गदाघातांश्च विविधान्दानवानां विनाशने ॥  
 विद्युधान्देवलोक्तस्थानधोभूमेस्तु दानवान् । करोमि कालयोगेन तत्तु कार्यं व्रतेन मे ॥  
 निस्वृत्तासहस्रापाणीवक्त्रमेवामिसंस्थिता । येनेदंचिन्त्यते पूर्वं यन्न दृष्टं न च श्रुतम्  
 ग्रन्थं वै वनुमुण्यस्य कृतं कोपेन पश्य मे । कश्यपाय पुरादत्तं धनं लाघण्यमेव च ॥  
 किमयं विगतोत्साहो पायषोऽथ समाकुलाः । भ्रमतीव हि मे दृष्टिर्मैतद्रूपं प्रचिन्तितम्  
 प्रापिष्टा किमहं यस्मिन् केनाप्यसदृशं वचः । विकल्पवशमापन्नाभरोक्ष्णं हृदि ममशे सा  
 पार दिभ्यं घर्षाणां सदृशं दिव्यमीश्वरम् । ततः समभवत्तस्यां वामनोभूतधामनः ॥  
 गतेन येन चक्षुषिदानवानां हृतानिवै । जातमात्रे ततस्तस्मिन्देवदेवे जनार्दने ॥ ६४ ॥

नयः स्वच्छाम्युपाहिन्दो घर्षो गन्धवहोऽनिलः ।

कश्यपोऽपि सुखं लेभे तेन पुत्रेण भास्यता ॥ ६५ ॥

एषां मातस्रोत्साहस्त्रैलोक्यान्तत्वासिनम् । सञ्जातमात्रे तु तस्यो जनाधिप जनार्दने  
 स्वर्गलोके दुन्दुभयो विनेदुस्तेष्व तादृताः ।

अतिग्रहर्षास्तु जगत्त्रयस्य मोहश्च दुःखानि च नाशमीयुः ।

जगौ च गन्धर्षगणोऽतिमात्रं भावस्वरैर्मतृ विमिश्रिताश्च ॥ ६७ ॥

सुराङ्गनाभ्यामि च भाग्ययुक्ता नृत्यन्ति तत्राप्तरसां समूहाः ।

तपैव पिपाधरसिद्धसङ्गा विमानयानिर्मृदिता भ्रमन्ति ॥ ६८ ॥

पद्मन्ति सत्यानृतकार्यनिर्णयं तथाभिरङ्गं प्रतिद्वर्हयन्ति ।

गायन्ति नेयं विनिवृत्तपगा मुहुर्मुहुर्दुःखसुखप्रभृताः ॥ ६९ ॥

नृत्यन्ति वै स्वर्गगताश्च ते न धर्माजितं स्वर्गमिदो यजन्ति ॥ ७० ॥

इति विगतपिपादे निर्मले जायलोके तिमिरनिकरमुत्तम निर्वृत्तिप्राप्तुकामाः

तत्रोक्तुः केविदुष्यां जपत्रयमगधन्संग्रहणश्च केवि-

स्वेषं मोक्तव्यादैरविरट्यनसञ्जानुपादेस्तथान्ये ।

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैस्सम्यगिष्टेस्तु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्यैतत्त्वयि दृष्टे पुनर्यत्फलं भूमिदानेन गवांदानेन ऋत्विजे । ममाद्य तत्फलं भूतमयवा राजसूयस्य नात्वेन तपसालम्भ्यं दर्शनं तव वासव । एवं गेहे मया यत्ते प्रियं कार्यं तदुच्यते

चिकल्पोऽन्यो न भवता हृदि कार्यः कथञ्चन ।

कृतं च तद्विजानीया यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ ११४ ॥

पुण्योऽहं पुण्यतां प्राप्नो दर्शनात्तव शत्रुहन् । यत्ते देवघरैर्यन्ती घन्दितां खरणीं मयि किमागमनकृत्यं ते षट् सव्यं मयि प्रभो । अस्याश्चर्यमिदं मन्ये तवागमनकारणम्

इन्द्र उवाच ।

जानेऽहं वनुमुख्यानां प्रधानं त्वांतुचाष्कले । नास्याश्चर्यमिदं भाति त्वयि दृष्टेऽसुपे

चिमुखा नार्थिनो यान्ति भवतो गृहमागताः ।

अर्थिनां फल्यवृक्षोऽसि दाता चान्यो न विद्यते ॥ ११८ ॥

प्रभायां सूर्यतुल्योऽसिगाम्भीर्यं सागरोपमः । सहिष्णुत्वे धराचैव धियानारायणोऽसि ब्रह्मणः कश्यपकुले जातोऽयं धामनःशुभे । प्रार्थितोऽहमनेनैव भूमेर्देहि पद्मवन्

ममाग्निशरणार्थाय यत्र कुर्यां मखं त्वहम् ।

तदस्य कारणं कृत्वा अर्थितेया मम प्रभो ॥ १२१ ॥

लोकत्रयं मेऽपहृतन्त्वया विक्रम्य चाष्कले ।

निवृत्तिको निर्धनोऽस्मि यद्विस्तेन तदस्ति मे ॥ १२२ ॥

मयन्तं याचयिष्यामि पार्येनापि चात्मना । अर्थित्वेन ममाप्यस्य यद्योग्यं तत्समाजं जातोऽसिकायपेव त्वं यंतेवंशविचर्दनः । दित्यास्त्यंगभंसभूतः पित्रात्रेलोककृति

एवं भूतमहं छात्वा तेन त्वां याचयाम्यहम् ।

अस्याग्निशरणार्थाय दीयतां भूपदत्रयम् ॥ १२५ ॥

अर्थाय हस्यगात्रस्य धामनस्यास्य दानध । भूमिभागे च पारफ्ये दातुं न त्वहमुत्सरे पतदेव मया दत्तं यद्गवानांयतोऽसि मे । गुरवां यदि मन्यन्ते मन्त्रिणो वा पद्मवन् अर्थित्वेन मदीयेन स्यकुले चान्वयेऽपि च । गृहायातं मयि तथा यद्योग्यं तत्समाजं

दे ते रुचितं वीर दानवेन्द्र महायुते । तदस्मी दीयतां शीघ्रं वामनाय महात्मने ॥

धाष्कलित्वाच ।

देवेन्द्र स्वागतं तेऽस्तु स्वस्ति प्राप्नुहि मा विष्म ।

त्वं समीक्ष स्वधात्मानं सर्वेषां च परायणम् ॥ १३० ॥

यि भारं समावेश्य सुखमास्ते पितामहः । ध्यानधारणया युक्तश्चिन्तयानः परं पदम्

सङ्ग्रामैर्यदुभिः खिन्नो जगच्चिन्तामपास्य तु ।

क्षीराग्निध्वनीपमाधित्य सुखं स्वपिति केशवः ॥ १३१ ॥

लासे पर्वतश्रेष्ठे कृत्तिवासा उमापतिः । रमते भार्यया सार्धं भारं त्वयि निवेश्य वै ॥

न्ये च दानवाः सर्वे यत्निःसायुधास्तथा । असहायेनैव शक्त सर्वेऽपिदिनिपातिताः

दित्या द्वादशीमेह द्वादस्त्येकादशापि वा । अश्विनो वसवश्चैव धर्मश्चैव सनातनः

द्वयाद्गुणलमाश्रित्य त्रिदिवे मन्त्रमग्निः । त्वयाऽक्रतुशतैरिष्टं समाप्तवत्क्षिणीः ॥ १३६ ॥

त्वया च घातितो वृत्रो नमुचिः पाकशासन ।

त्वदाज्ञाकारिणा पूर्वं विष्णुना प्रमविष्णुना ॥ १३७ ॥

हिरण्यकशिपोर्भाता हिरण्याक्षोऽपि घातितः ।

हिरण्यकशिपुर्वोऽत्र जङ्घे कारोप्य घातितः ॥ १३८ ॥

त्रपाणिममायान्तमैरावणशिरोमतम् । सङ्ग्रामभूमौ दृष्ट्वा त्वां सर्वे नश्यन्ति दानवाः

। त्वया विजिताः पूर्वं दाम्बा बलवत्तराः । सहस्रांशेन तत्सुल्यो न भवामि कथञ्चन ॥

एवं विषोऽसि देवेन्द्र मम का गणना भवेत् ।

मां समुद्धर्तुं कामेन त्वयैवागमनं कृतम् ॥ १४१ ॥

हरिष्यामि न सन्देहो दास्ये प्राणानपिघ्नयम् । किमर्थदेवराजोका भूमिरेवात्वया हिमे

मिदाराः सुता गावो यज्ञान्यद्विद्यतेचसु । त्रैलोक्यपराज्यमखिलं विप्रस्यास्य प्रदीयताम्

एकीर्तिर्मेचेन्मह्यं पूर्वेषां च न संशयः । गृह्यातस्य शक्तस्य दत्तं धाष्कलिना न तु ॥

अन्योऽपि योऽर्थो मे प्राप्तः स मे प्रियतरः सदा ।

भवानत्र विरोधेन विचारं मा कृपाः क्वचित् ॥ १४५ ॥

अग्निष्टोमादिभिर्वैश्वसम्यगिष्टस्तु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्स्यत  
 यत्फलं भूमिदानेन गवांदानेन ऋत्विजे । ममाद्य तत्फलं मृत्यु  
 नाल्पेन तपसालम्भ्यं दर्शनं तव पासव । एवं गेहे मया यत्ते प्रियं  
 चिकल्पोऽन्यो न भवता हृदि कार्यः कथञ्चन ।

कृतं च तद्विजानीया यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ ११४ ॥  
 पुण्योऽहं पुण्यतां प्राप्तो दर्शनात्तव शशुहन् । यत्ते देववरैर्वन्द्यो वनि  
 किमागमनकृत्यं ते यद सर्वं मयि प्रभो । अत्याश्चर्यमिदं मत्वे  
 इन्द्र उवाच ।

जानेऽहं दनुमुष्यानां प्रधानं त्वानुवाप्स्यते । नात्याश्चर्यमिदं ना  
 धिमुखा नार्थिनो यान्ति भवतो गृहमागताः ।

अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि दाता चान्यो न विद्यते ॥ ११८ ॥  
 प्रभायां सूर्यतुल्योऽसिगाभीर्यं सागरोपमः । सहिष्णुत्वे धरावैभ  
 प्रह्लाणः कश्यपकुले जातोऽयं धामनःशुभे । प्रार्थितोऽहमनेनैव भूमे  
 ममाग्निशरणार्थाय यन्न कुर्यां मखं त्वहम् ।

तदस्य कारणं कृत्वा अर्थितैषा मम प्रभो ॥ १२१ ॥

लोकत्रयं मेऽपहृतस्तथा विकल्प्य दाप्स्यते ।

निर्वृत्तिको निर्धनोऽस्मि यदिस्तेन तदस्ति मे ॥ १२२ ॥

मयन्तं याचयिष्यामि परार्थेनापि चात्मना । अर्थित्वेन ममाप्यस्य यज्ञो  
 जातोऽसिकाश्यपेव त्वं वंशेवंशविवर्द्धनः । दित्यास्त्वंगर्भसम्भूतः विद्वान्

एवं भूतमाहं धात्वा तेन त्वां याचयाम्यहम् ।

अस्याग्निशरणार्थाय दीयतां भूपदत्रयम् ॥ १२५ ॥

अतीव हृद्यगात्रस्य धामनस्यास्य दानघ । भूमिभागे च पार्वत्ये दत्तं  
 एतदेव मया दत्तं यद्गवानां यतोऽसि मे । गुरवो यद्दि मन्यन्ते मन्त्रिणो  
 अर्थित्वेन मदीयेन स्पर्शले गन्तव्येऽसि मे । यत्तदाहं ते



१. पुण्यम् । शतं धीर दानवेन्द्र महाद्युते । तदस्मै दीयतां शीघ्रं वामनाय महात्मने ॥

वाष्कलित्याच ।

२. देवेन्द्र स्वागतं तेऽस्तु खल्वि प्राप्नुहि मा चिरम् ।

३. त्वं समीक्ष स्वधात्मानं सर्वेषां च परायणम् ॥ १३० ॥

४. समावेश्य सुखमास्ते पितामहः । ध्यानधारणया शुद्धश्चिन्तयातः परं पदम्

५. सद्ग्रामैर्षुभिः खिन्नो जगच्चिन्तामपास्य तु ।

६. क्षीरापिबद्भीपमाश्रित्य सुखं स्वपिति केशवः ॥ १३२ ॥

७. वतघ्रेष्ठे कृत्तिवासा उमापतिः । स्मरते भार्यया सार्धं भारं त्वयि निवेश्य वै ॥

८. तानवाः सर्वे बलितः सायुधास्त्वया । असहायेनैव शक् सर्वेऽपि विनिपातितः

९. द्वादशैवेह द्वास्तपेकादशापि वा । अश्विनो वसवश्चैव धर्मश्चैव सनातनः

१०. शलमाश्रित्य त्रिदिशे मलयमागिनः । त्वयाऽऽनुशतैरिष्टं समातयदक्षिणीः ॥ १३६ ॥

११. त्वया च घातितो वृत्रो नमुचिः पाकशासन ।

१२. त्वदादाकारिणा पूर्वं विष्णुना प्रमविष्णुना ॥ १३७ ॥

१३. हिरण्यकशिपोर्भ्राता हिरण्याक्षोऽपि घातितः ।

१४. हिरण्यकशिपुर्षोऽत्र जङ्घे कारोप्य घातितः ॥ १३८ ॥

१५. जेनमायातमैरापणशिरोगतम् । सद्ग्रामभूमौ दृष्ट्वा त्वां सर्वे नश्यन्ति दानवाः

१६. पिजिताः पूर्वं दानवा यत्नवसराः । सहस्रांशेन तत्तुल्यो न भवामि कथञ्चन ॥

१७. एवं विधोऽसि देवेन्द्र मम का गणना भवेत् ।

१८. मां समुद्धर्तुं कामेन त्वयैवागमनं कृतम् ॥ १४१ ॥

१९. किमर्थमिति न सन्देहः दास्ये प्राणानपि ध्रुवम् । किमर्थं देवराजोक्त्य भूमिरेवात्पया हिमे

२०. सुतो गावो यच्चान्यद्विघतेनसु । वैदोऽनराज्यमखिलं विप्रस्यास्य प्रदीयताम्

२१. तिमयेन्महां पूर्वेण च न संशयः । गृहायातस्य शक्रस्य दत्तं वाष्कलिना न तु ॥

२२. अन्योऽपि योऽर्थो मे प्राप्तः स मे प्रियतमः सदा ।

२३. भवानत्र विरोधेन विचारं मा कृथाः कञ्चित् ॥ १४५ ॥

अग्निष्टोमादिमिर्यैस्सम्यगिष्टैस्तु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्यैतत्त्वम् ।  
यत्फलं भूमिदानेन गवांदानेन ऋत्विजे । ममाद्य तत्फलं  
नाल्पेन तपसालम्भ्यं दर्शनं तव वासव । एवं गेहे मया यत्ते  
चिकल्पोऽन्यो न भवता हृदि कार्यः कथञ्चन ।

कृतं च तद्विजानीया यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ ११४ ॥  
पुण्योऽहं पुण्यतां प्राप्नो दर्शनात्तव शत्रुहन् ।  
किमागमनकृत्यं ते यद् सर्वं मयि प्रभो । अस्याश्चर्यमिदं मन्ये तव  
इन्द्र उवाच ।

जानेऽहं वनुमुत्पानां प्रधानं त्वां तुषाप्कले । नात्याश्चर्यमिदं भाति त्वया  
चिमुक्ता नार्थिनो यान्ति भवतो गृहमागताः ।

अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि दाता चान्यो न विद्यते ॥ ११८ ॥  
प्रभायां सूर्यतुल्योऽसि गाम्भीर्यं सागरोपमः । सहिष्णुत्वे धराचैव धिक्  
प्रक्षणः कश्यपकुले जातोऽयं वामनः शुभे । प्रार्थितोऽहमनेनैव भूमि  
ममाग्निशरणार्थाय यत्र कुर्यां भयं त्यहम् ।

तदस्य कारणं हृत्वा अर्थितेया मम प्रभो ॥ १२१ ॥

लोकत्रयं मेऽपहृतन्त्यया चिक्रम्य वाप्कले ।

निर्वृत्तिको निर्धनोऽस्मि यद्विस्तेन तद्वस्ति मे ॥ १२२ ॥

मवन्तं याचयिष्यामि परार्थेनापि चात्मना । अर्थित्वेन ममाप्यस्य पदोप  
जातोऽसि काश्यपेव त्वं वंशेवंशविचर्दनः । दित्यास्तवं गर्भसम्भूतः पित्र्ये

एवं भूतमहं धात्वा तेन त्वां याचयाम्यहम् ।

अस्याग्निशरणार्थाय दीयतां भूपद्वयम् ॥ १२५ ॥

अतीष हस्यगात्रस्य वामनस्यास्य दानघ । भूमिभामे च पारुष्ये  
एतदेव मया दत्तं यद्वयानर्पितोऽसि मे । गुरुर्यो यदि मन्यन्ते मन्त्रिणो  
अर्थित्वेन मदीयेन रूपकुले वानवयेऽपि च । गृहायाते



प्रापयित्वा ब्रह्मलोकान्स्वर्गां लोकाननुकमात् ॥ १३६ ॥

ध्रुवस्थानं सूर्यलोकं प्लाव्य तं यद्वपर्वतम् ।

प्रधिष्टा पुष्करं धारा धौत्वा विष्णुपदानि सा ॥ १३७ ॥

पदानि यानि जातानि वैष्णवानि धरातले ।

तत्राश्रमे तु यो गत्वा स्नानं चाप्यां समाचरेत् ॥ १३८ ॥

अश्वमेधफलं तस्य दर्शनादेव जायते । एकविंशकुलोपेतो वैकुण्ठे वासमानुपाद

भुजवा ॥ पिपुलान्भोगन्कल्पानां तु शतत्रयम् ।

तदन्ते जायते राजा सार्धभौमः क्षिताविह ॥ १८० ॥

तोयधारा तु सा भीष्म अंगुष्ठाप्राहिनिःसृता । नदीसार्वैष्णवीप्रोक्ताविष्णुपादसमुद्रा

अनेन कारणेनाभूद्गङ्गा विष्णुपदी नृष । यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

अंगुष्ठाप्रक्षता दण्डाद्यत्प्रधिष्टं जलं शुभम् । प्राप्तं देवनदीत्वं तु यातु विष्णुपदी तदी ।

देवनद्या तया व्याप्तं ब्रह्माण्डं सचराचरम् । विभूतिमिर्महाभाग सर्वाङ्गप्रहकार्यया ।

स वाष्कलिपर्यामनेन उक्तः पूर्य मे क्रमान् । अपोमुखस्तदा जात उत्तरं नास्पदित्ति ।

मौनीभूतं तु तं दृष्ट्वा पुरोधा वाक्पद्मप्रधात् ॥

शुक उवाच ।

स्थाभाविकी दानशक्तिर्न तु क्षण्डुं धर्य क्षमाः ॥ १८६ ॥

याचतीयं धरा देव सा दत्ताऽनेन ते प्रभो ।

मुलस्त्य उवाच ।

उक्तो वाष्कलिना विष्णुर्याधन्मात्रा धमुन्धरा ॥ १८७ ॥

या सृष्टा भवता पूर्वं सा मया न च गोपिता । अल्पाभूमिर्भयान्दीर्घा न तु सृष्टेः

इच्छाशक्तिः प्रभवति प्रभोस्ते देव सर्वदा । निरुत्तरस्तदा विष्णुर्मत्पा तं सत्यवा

ब्रूहि दानवमुख्य त्वं कर्तुं कामं करोम्यहम् । मम हस्तगतं सोयं त्यया दत्तं तु दा

तेन त्वं परयोप्योऽसि पराणां भाजनं शुभम् । वास्येऽहं भवतः काममर्थोयिनः ॥

पिङ्गलो हि तथा तेन देवदेवो जनार्दनः ॥

वाष्कलिख्यात् ।

भक्तिं वृणोमि देवेश त्वदस्तान्मरणं हि मे ॥ १६२ ॥

मज्जामि श्वेतद्वीपं ते दुर्लभं तु तपस्विनाम् ॥

पुलस्त्य उवाच ॥

माद्वैपमुक्ते विष्णुस्तां तिम्रस्वैकं युगात्तपम् ॥ १६३ ॥

१ धाराह्वरी यदाहं प्रवेक्ष्यामि धरातलम् । तदा हनिष्येऽहं त्वां तु मश्मे च यदैष्यसि ॥  
उक्तोऽप्य दानयस्तेन मयासर्वसत्प्रभः । धामनेन समाक्रान्ताः सर्वे लोकास्तदा नृप ॥  
भसुरैस्तैस्तदा त्वत्कं देवानां सत्पररक्षणैः । देवो हत्वा तु त्रैलोक्यं जगामादर्शनं विभुः  
१ पातालनिलयश्चापि सुखमास्ते स वाष्कलिः । शक्तोऽपि बालयामास विपश्चिद्भुवनत्रयम्  
१ भयं त्रैविश्वमो नाम प्रादुर्भावो जगद्भुरोः । गङ्गासम्भवसंयुक्तस्तर्धकल्मषनाशनः ॥  
विष्णोःपदानामेषा त उपपत्तिः कथिता नृप । यां धृत्वा तु नरोल्लोके सर्वपापैः प्रमुच्यते  
दुःस्पृष्टं दुर्विचिन्त्यं च दुष्करं दुष्कृतानि च ।

क्षिप्रं हि नाशमायान्ति हृष्टे विष्णुपदप्रये ॥ २०० ॥

युगान्तकमशो दृष्ट्वा पापिनो जगत्पतयः । सूक्ष्मतां दर्शिता भीष्म विष्णुता पददर्शने ॥  
यस्त्वारोहति तस्मिन्स्तु मौनवान्मानवो भुवि । एतथात्रिपुष्करीयात्रामभ्यर्चयन्फलं प्रजेत्  
मुच्यते सर्वपापैश्च मृतो विष्णुपुरं प्रजेत् ॥ २०३ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिलखण्डे विष्णुपदोत्पत्तिर्नामत्रिंशोऽध्यायः ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

नागतीर्थवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

भगवन्महदाश्चर्यं वाष्कलेर्वचनं हि यत् । कृतं त्रिविक्रमं क्व यदा संयमितो बलिः ॥



[त्रिशोऽध्यायः] ॥ ब्रह्मणा सर्वा रम्यन्ति "जनमेजयादहोमविष्यतीति" शापदानम् ॥ २७ ॥

प्यपशुपद्यादि तत्सर्वं भस्मसाद्भवेत् । त्वया सृष्टिः कृता देव क्षीयते तु भुजङ्गमैः  
एतज्जहात्वा यदुचितं तत्कुर्वन् पितामह ॥

ब्रह्मोवाच ।

✓ अहं रक्षां विधास्यामि भवतीनां न संशयः ॥ २२ ॥

प्रज्जम्ब्वं स्थानिकेतानि भीरुजो गतस्राग्धराः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्ते प्रजाः सर्वा ब्रह्मणा व्यक्तमूर्तिना ॥ २३ ॥

आजगमुः परमप्रीताः स्तुत्वा चैव स्वयम्भुषम् ।

प्रपाठान्तु प्रजास्येवं तानाहूय भुजङ्गमान् ॥ २४ ॥

शशाप परमकुदो वामुक्तिप्रमुखास्तदा ॥

ब्रह्मोवाच ।

महन्पह्नि भूतानि भक्ष्यन्ते वे दुरात्मभिः ॥ २५ ॥

इयंति तूरी र्ष्टमनुष्याः पशवस्तथा । इयन्मांसमत्रमवाप्तिर्यं क्षयं तपथ मानुषान्

अतोऽग्नस्मिन्मवे भूयान्मम कोपात्सुदारुणात् ।

भवतां हि क्षयो घोरो भावि यदस्वतेऽन्तरे ॥ २६ ॥

तथान्यः सोमर्षशीवो राजा वै जनमेजयः ॥

धक्ष्यते सर्पसत्रेण प्रदीप्ते हव्यपाहने ॥ २८ ॥

मातृव्यमुध तनयांस्तार्क्ष्यो घोरमक्षयिष्यति । पूर्वयो भविता नाशः सर्वेषां दुष्टघेतसाम्

शप्त्वा कुलसहस्रान्तु यावदेकं कुलं स्थितम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्ते तु वेपन्तो ब्रह्मणा भुजगोत्तमाः ॥ ३० ॥

निपत्य पादयोस्तस्य हृदम्बुर्वचस्तदा ।

सर्पा ऊचुः ।

भगवन्कुटिला जातिरस्माकं भूतमायन ॥ ३१ ॥

विपोल्वणत्वं क्रूरत्वं दन्तशूकत्वमेव च । सम्पादितं त्वया देव इदानीं शपसे कथम् ।  
ब्रह्मोवाच ।

यदि नाम मया सृष्टा भवन्तः कुटिलाशयाः । ततः किं बहुना नित्यं भक्षयध्वं गतव्यया  
नागा ऊचुः ।

मर्यादां कुरु देवेश स्थानं चैव पृथक्पृथक् । मनुष्याणां तथास्माकं समर्थं देव कायम् ॥  
शापो यो भवता दत्तो मनुष्योजनमेजयः । नाशं नः सर्पसञ्ज्ञेन उल्लापं च करिष्यति ॥  
ब्रह्मोवाच ।

जरत्काहरिति ख्यातो भविता ब्रह्मचित्तमः । जरत्कन्या तस्यदेया तस्यामुत्पत्स्यतेऽनुक-  
रक्षां कर्त्ता स धो विप्रो भवतां कुलपावनः । तथा करोमि नागानां समर्थं मनुजैः सह  
तदेकमनसः सर्वे शृणुध्वं मम शासनम् । सुतलं चितलं चैव तृतीयं च तलादलम् ॥  
वृत्तं च त्रिप्रकारं धो गृहं तत्र गमिष्यथ । तत्र भोगान्वद्बुविधान्भुञ्जाना मम शासनाद्  
तिष्ठध्वं सतमं यावत्कालं तं तु पुनःपुनः । ततो वैद्यस्यतस्यादौ काश्यपेदो भविष्यति  
वायादः सर्वदेवानां सुपर्णस्सर्पभक्षकः । तदा प्रसूतिः सर्पाणां वधा वै चित्रभानुना

भयतां चैव सर्वेषां भविष्यति न संशयः ॥ ४१ ॥

ये ये क्रूरा भोगिनी दुर्विनोतास्तेषामगतो भाविता नान्यथैतत् ।

कालव्याप्तं भक्षयध्वं च सस्रं तथापकारे ॥ वृत्ते मनुष्यम् ॥ ४२ ॥

मन्त्रैर्वधैर्गार्हपत्यैश्च तन्त्रैर्वधैर्जुष्टा मानवा ये भवन्ति ।

तेभ्यो भीतैर्वर्तितध्वं न चान्यक्षिते कार्यं चान्यथा धो विनाशः ॥ ४३ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इतीरिते ब्रह्मणा ये भुञ्जन्ता जग्मुः स्थानं सुतलाख्यं हि सर्वे ।

तस्युर्भोगाभ्युन्नमानाश्च सर्वे रसातले लीलया संस्थितास्ते ॥ ४४ ॥

एवं शप्यं तु ते लब्ध्वा प्रसादं च चतुर्मुखात् ।

तस्युः पातालनिलये मुदिने नान्तरात्मना ॥ ४५ ॥

कालान्तरे भूते पुनरेवं व्यवचिन्तयन् । भविता भारतो राजा पाण्डुरेयो महापराः



अस्माकं तु क्षयकरो दैवयोगेन केनचित् । कथं त्रिभुवने नाथः सर्वेषां च पितामहः ॥  
सृष्टिर्कर्त्ता जगद्धन्यः शापमस्मात्तु दत्तवान् । देवं विरञ्जितं त्यक्त्वा गतिं पृथग्विधये  
वेराजे भयनश्रेष्ठे तत्र देवः ॥ तिष्ठति । स देवः पुष्करस्थो वै यत्नं यजति साम्प्रतम् ॥  
गत्वा प्रसादयामस्तं वरं तुष्टः प्रदास्यति ।

एषं विचिन्त्य ते सर्वे नागा गत्वा च पुष्करम् ॥ ५० ॥

यत्नपर्वतमासाद्य शैलभित्तिमुपाधिताः । दृष्ट्वा नागांस्तथा भ्रान्तान्धारिधाराभ्य शीतलाः  
उदङ्मुखा ये निष्कान्ताम्सर्वेषां ॥ सुखप्रदाः । नागतीर्थं ततो जातं पृथिव्यां भरतर्षभ  
नागकुण्डं च वै केचित्सरितं चापरेऽश्रुवन् । पुण्यं तत्सर्वतीर्थानां सर्पाणां क्षिपनाशनम्  
प्रचक्षन्ति तत्र ये मर्त्या भधिभ्रातृपञ्चमीम् ।

न तेषां तु कुले सर्पाः पीडां कुर्यन्ति कर्हिचित् ॥ ५४ ॥

धामं पितृणां ये तत्र करिष्यन्ति नरा भुवि । ब्रह्मातेषां परं स्थानं दास्यते नात्र संशयः  
नागानां तु भयं ह्वात्वा ब्रह्मालोकपितामहः । पूर्वोक्तं तु पुनर्वाक्यं नागान्भ्रातृपञ्चमीम्  
पञ्चमी सा तिथिर्धन्या सर्वपापहरा शुभा ।

यतोऽस्यामेव सुतिथी नागानां कार्यमुदुष्टतम् ॥ ५७ ॥

यतस्यां सर्वतो यस्तु कद्दमलं परिपत्रयेत् ।

क्षीरेण स्नापयेन्नागांस्तस्य ते यान्ति मित्रताम् ॥ ५८ ॥

भीष्म उवाच ।

शिवदूती यथा जातायेन चैव निवेशिता । तन्मे सर्वयथातत्त्वं भवान्शंसितुमर्हति ॥ ५९ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

शिवा नीलगिरिं प्राप्ता तपसे धृतमानसा । रौद्रो जटोद्भवाशक्तिस्तस्याः शृणु नृपयतम्  
तपः कृत्वा चिरं कालं प्रसिंध्याम्यखिलं जगत् ।

एवमुदिश्य पञ्चाग्निं स्नापयामास भामिनी ॥ ६१ ॥

तस्यान्कालान्तरे देव्यास्तपन्त्यास्तप उत्तमम् । यस्मात् महातेजा ब्रह्मदत्तपरोऽसुरः ॥  
समुद्रमध्ये स्नात्वा पुण्यं महाधनम् । तत्राविष्टः सदैत्येन्द्रस्सर्वदेवमपङ्कतः ॥ ६२ ॥

अनेकशतसाहस्रकोटिकोटिशतौत्तमैः । असुरैरचितः श्रीमान्द्वितीयो नमुचिर्यया ॥ ६४ ॥  
कालेन महता सोऽथ लोकपालपुरं ययौ । जिगीषुः सैन्यसंघातो देवैर्वैरमरोचयत् ।

उत्तिष्ठतस्तस्य महासुरस्य समुद्रतोयं धवृषेऽतिवेगात् ।

अनेकनागप्रहमीनजुष्टमाश्रययत्पर्यंतसानुदेशात् ॥ ६६ ॥

अन्तस्थितानेकसुरारिसङ्घं विचित्रघर्मायुधचित्रशोभम् ।

भीमं यत्नं चलितं चारुयोधं विनिर्यया सिन्धुजलाद्विशालम् ॥ ६७ ॥

तत्र द्विषा वैरयभटान्युपेताः सयानघण्टाश्च समृद्धियुक्ताः ।

विनिर्ययुः स्थाकृतिभिर्भपाणां समत्पमुच्चैः खलु वर्यायन्तः ॥ ६८ ॥

अश्वस्तथा काञ्चनसूत्रनद्धा रोहीत मत्स्या इव ते जलान्ते ।

व्यघस्थितास्तेः सममेघ तूर्णं विनिर्ययुर्लक्षशः कोटिशश्च ॥ ६९ ॥

तथा रयिस्यन्दनतुल्यवेगाः सचक्रदण्डाक्षतवैशुयुक्ताः ।

रथाश्च यन्त्रोपरिपीडिताङ्गाश्चलत्पताकाः स्वनितं विचक्रुः ॥ ७० ॥

तथैव योधाः स्थगितास्तरीभिस्तितीर्षयस्ते प्रधराह्वपाणयः ।

रणे रणे लब्धजयाः प्रहारिणो विरेजुदम्बैरसुरानुगा भृशम् ॥ ७१ ॥

देवेषु वै रणे तेषु विद्रुतेषु विशेषतः । असुरास्सर्वदेवानामन्वधायस्ततस्ततः ॥ ७२ ॥

ततो वैषगणाः सर्वे द्रवन्तो भयविह्वलाः । नीलं गिरिवरं जग्मुर्पद्मदेवीस्वयं स्थिता ॥

रौद्री तपोनिवृता धन्या शाम्भवी शक्तिरुत्तमा ।

संहारकारिणी देवी कालरात्रीति यौ विदुः ॥ ७३ ॥

सा तु दृष्ट्वा तदा देवान्भयत्रस्तान्विचेतसः । पप्रच्छ विस्मयादेपी प्रोत्कुलाम्युजलोजन  
देव्युधाव ।

पृष्ठतो यो न पश्यामि भयं किञ्चिदुपागतम् । कथं ॥ विद्रुता देवाः सर्वे शक्रपुच्छत  
देवा ऊचुः ।

अयमापाति दैत्येन्द्रो रुर्ध्वमपराक्रमः । चतुरङ्गेण सैन्येन महता परिपारितः ॥ ७४ ॥

तस्माद्दीनाः पर्यं देवीं भयतीं शरणं गताः ।

पुलस्त्य उवाच ।

देवातामिति वै श्रुत्वा धाक्मुद्यैर्जहास सा ॥ ७८ ॥

तस्यां हसन्त्यां निश्चेरुर्वपद्भ्यो घटनात्ततः ।

पाशाङ्कुशधराः सर्वाः पीनोन्नतपयोधराः ॥ ७९ ॥

सर्पाशूलधरा भीमाः सर्पादंष्ट्राङ्कुशाननाः । भावदमुकुटाः सर्पाः सन्वददशनच्छदाः ॥

फूत्कारराचैरशिवैस्त्रासयन्त्यञ्जराचरम् ।

काञ्चिच्छुक्लाभ्यरधराः काञ्चिच्चित्राभ्यरास्तथा ॥ ८१ ॥

सुनीलवसनाः काञ्चिद्रक्तपागातिलालसाः । नानारूपैर्मुखैस्तास्तु नानावेषवपुर्धराः ॥

ताभिरेवं वृता देवी देवानामभयङ्करी । मा भैष्ट देवा भद्रं वो याचद्वदति दानयः ॥

चतुर्भुजलोपेतो दयस्तापस्तमागतः । तं भीलपर्वतवरं देवानां मार्गमार्गिणः ॥

देवानामप्रतः सैन्यं दृष्ट्वा देवी समाकुलम् । तिष्ठतिष्ठेति जल्पन्तो दैत्यास्ते समुपागताः ॥

ततः प्रवृत्ते युद्धं तासां तेषां महः भयम् । नाराचैर्भिन्नदेहानां दैत्यानां भुवि सर्पताम् ॥

रोपादण्डप्रमत्तानां सर्पाणामिव सर्पताम् । शक्तिर्भिन्नद्वयां गदासंचूर्णितोरसः ॥

कुटारैर्भिन्नशिरसो मुसलैर्भिन्नमस्तकाः । विद्धोदरास्त्रिशूलाग्रैश्छिन्नप्रीषा परासिभिः ॥

क्षतादप्यमातङ्गपादाताः पेतुराह्वये । रणभूमिं समासाद्य दैत्याः सर्वे रुदंयिना ॥ ८९ ॥

ततो बलं हतं दृष्ट्वा रुदमायान्तदाऽऽददे । तथा संमोहिता देव्यो देवाभ्रापिरणाजिरे ॥

तामस्या मायया देव्या सर्वमन्धन्तमोऽभवत् ।

ततो देवी महाशक्त्या तन्दैत्यं समताडयत् ॥ ९१ ॥

तपानु ताडितस्याजी दैत्यस्य प्रगर्ततमः । मायायामय नष्टायां तामस्यां दानघोरकः ॥

पातालमाघिशार्ङ्गं तत्रापि परमेश्वरी । देवीभिः सहिताकुन्दा पुरतोऽमितुक्वी स्थिता ॥

रतोस्तु दानवेन्द्रस्य भीतस्थामे गतस्य च । नत्वाग्रेण शिरश्छित्त्वा चर्मचादाय घेगिता ॥

निर्यावय्य पातालात्पुष्करं च पुनर्गिरिम् । कन्यासैन्येन महता बहुरूपेण भासयता ॥

देवैस्तु विस्मिदैर्दृष्टा चर्ममुण्डधरा द्रुपेः । स्वकीये तपसःस्थाने निविष्टापमेश्वरी ॥

ततो देव्यो महाभानाः पश्चिद्यै व्यवस्थिताः । याचयामासुरं व्यास्तां तु देवीं युभुक्षिताः ॥



त्रिवर्णमुखाय ।

दुःखिनं प्रवृत्तं वर्णं प्रकाशयति वीरवत् ॥ ११३ ॥

न च त्वं दुःखिने दान् तु कुरुः स्वविद्येभ्यः । प्रकाशं कुरुष्वसि प्रकाशं परिसंहरम्  
न तु कुरुष्वने दान् तु नागं प्रवृत्तं तु कुरुः ।

२३ उवाच ।

प्रकल्पयति तु यदा देवादेः सदा पूर्वं तु भद्रिने ॥ ११४ ॥

सूदाकर्मणि पूर्वं तु द्वावप्यवतारान् । पाण्डव मानसं प्रवृत्तं तु प्रवर्तते ।  
देवयोकादेवगताः सन्तुर्ध्यानागताः । तदासां गृहे यदा पूर्वं प्रकाशाय तु सदागताः ॥  
सप्तर्षीभ्यस्तथास्वैव ध्यानागताः सन्तुर्ध्यानागताः । सर्वो देवाः सिद्धिरिति । सद्गताः सन्तिनाया  
सर्वेनाया सद्गताः सन्तिनायाः सन्तिनायाः । सर्वो देवाः सिद्धिरिति । सद्गताः सन्तिनाया  
सर्वेनाया सद्गताः सन्तिनायाः सन्तिनायाः । सर्वो देवाः सिद्धिरिति । सद्गताः सन्तिनाया  
सर्वेनाया सद्गताः सन्तिनायाः सन्तिनायाः । सर्वो देवाः सिद्धिरिति । सद्गताः सन्तिनाया

त्रिवर्णमुखाय ।

भागो ह्यं देहिभोऽयं पुनर्धर्मं परित्यज्यते । भेदात् तानुसंहयं तु यवपतिरिति ॥  
इति भाग्येन कुरुष्वपूर्णं यामेवम् ।

गुणरत्नमुखाय ।

एवमुक्तमग्रा सोऽपि देवदेवो महेश्वरः ॥ १२२ ॥

महेश्वरोऽस्मात्तदा प्राह पार्थस्यार्थेव तस्मिन्धो ।

सिद्धमुखाय ।

मया ये साधिनं वानं प्रकाशयन्ति ह्यनम् ॥ १२३ ॥

अतएव य एषं वानं न चापविह दृश्यते । भवतीत्यागतास्वयं सदा देवमुप्यताम्  
सूदं भवतीनां यमवादेवं चित्तगतः । भास्वदितं न चाप्येन भवत्यर्थं च ददाप्यहम्  
सपोमां च मेनाभेवंतुं सौम्यतस्मिन्धो । अथयत्वं द्विसद्विज्ञानार्थं मे दृष्टव्यमिति ॥  
मेन चापि भोऽयेन यदा मृत्तिर्भविष्यति ।

पुलस्त्य उवाच ।

महाप्रसादं ता लब्ध्वा देव्यस्सर्वास्तदा शिवम् ॥ १२७ ॥

प्रणिपत्य स्थिताश्चैव इदं ध्वनमब्रवीत् । करिष्यन्ति शुभाचाराब्जिना हास्येन ये नराः

तेषां धनं पशुःपुत्रा दाराश्चैव गृहादिकम् ।

भविष्यति मया दत्तं यच्चान्यन्मनसि स्थितम् ॥ १२८ ॥

हास्येन दीर्घदशना दग्ध्वाश्च भवन्ति ते । तस्मान्ननिन्दा हास्यं च कर्तव्यं हि विज्ञात्वा

भवत्यो मातरःक्याता ह्यस्मिँल्लोके भविष्यथ । उपहारे नरा ये तु करिष्यन्तिवक्रीर्मुनि

चणकान्पूरिकाश्चैव वृषणैःसह पूषकान् । यन्धुभिःस्वजनैश्चैव तेषां वंशो न छिद्यते

अपुत्रो लभतेपुत्रं धनार्थी लभतेधनम् । रूपवान्सुभगो भोगी सर्वशास्त्रविशारदः ।

हंसयुक्तेन यानेन ब्रह्मलोके महीयते । शिवदूति मयाप्येवं तासां दत्तं च भक्षणम् ।

त्रपाकरं किं भवत्या उक्तोऽहं तन्निशामय । जयस्य देवि चामुण्डे जयभूतापहारिणि ।

जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तुते । विश्वमूर्तिपुते शुभे विक्रपाक्षि त्रिलोचने ।

भीमरूपे शिवे धिद्ये महामाये महोदरे । मनोजये मनोदुर्गे भीमाक्षि धुमितक्षये ॥ १३० ॥

महामारि विचित्राङ्गि भीमनृत्यप्रिये शुभे । विकरालि महाकालि कालिके पापहारिणि

पाशहस्ते वण्डहस्ते भीमहस्ते भयानके । चामुण्डे ज्वलमानास्ये तीक्ष्णबद्धे महाबले ।

शिषयानप्रिये देवि प्रेतासनगते शिवे । भीमाक्षि भीमपते देवि सर्वभूतभयङ्कुरि ॥ १३१ ॥

करालि विकराले च महाकालि करालिनि ।

कालि करालविक्रान्ते कालरात्रि नमोस्तुते ॥ १३२ ॥

सर्वशत्रुभूते देवि नमो देयनमस्तुते ।

पुलस्त्य उवाच ।

पर्वं स्तुता शिवदूती रथेण परमेष्ठिना ॥ १३३ ॥

तुतोप परमा देवी वाक्यं शेषमुवाच ह । परं वृषीण्य देवेश यत्ते मनसि पतंते ।

यत्तु उवाच ।

ये देवि स्तोम्यन्ति तेषां वरानने । तेषां तेषां परमा देवि मय सर्वगतासती

पर्वतमारुह्य यः पूजयति भक्तिः । सपुत्रपौत्र वशुमान्समृद्धिमुपगच्छतु ॥ १४५ ॥  
 त्वैवं शृणुयाद्वक्त्या स्तब्धं देवि समुद्रवम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छतु ॥  
 धराज्यो यवाराजा नवभ्यां नियतः शुचिः । मष्ट्रभ्यां च चतुर्दश्यां सोपवासो नरोत्तम  
 संवत्सरेण लभतां राज्यं निष्कण्टकं पुनः ।

एषा भवान्विता शक्तिः शिवदूतीति बोध्यते ॥ १४८ ॥

एवं शृणुयान्नित्यं भक्त्या परमया नृप । सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥  
 इत्थं पठते भक्त्या स्नात्वा ये पुष्करैरजले । सर्वमेतत्फलं प्राप्य ब्रह्मलोके महीयते ॥  
 त्रैलोक्यजितं गेहे सदा तिष्ठति पार्थिव । न तत्राग्निमयं घोरं सर्वबीरादिसम्भयम् ॥  
 पद्मेवं पूजयेद्भक्त्या पुस्तकेऽपि स्थितं युधाः ।

तेन खेष्टं भवेत्सर्वं वैलोक्यं स्ववराचरम् ॥ १५२ ॥

जायन्ते बहवः पुत्रा धनं धान्यं वरस्त्रियः ।

रत्नान्यम्बा गज्जा भृत्यास्तेषामाशु भवन्ति च ॥ १५३ ॥

यत्रेवं लिख्यते गेहे तत्राप्येष ध्रुवं भवेत् ॥ १५४ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सुष्टिकण्डे शिवदूतीविरितं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।

## द्वात्रिंशोऽध्यायः

### प्रेतपञ्चककयानकम् ।

भीष्म उवाच ।

केन कर्मविपाकेन प्रेतत्वं जायते पुनः । केन पात्रं प्रमुच्येत तन्मे धूहि महामते ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

महं ते कपपिप्पामि सर्वमेतद्दशेयतः । यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहं यास्यते नृपसत्तम ॥ २ ॥

येन जायेत प्रेतत्वं येन चास्मात्प्रमुच्यते । प्राप्नोति नरकं घोरं दुस्तरं त्रिदशैरपि ॥ ३ ॥

सतां सःमापणे चैव पुण्यतीर्षानुकीर्त्तने । मानवास्तु प्रमुच्यन्ते मापघ्नाः प्रेतयोनिषु  
धूयते हि पुरा भीष्म ब्राह्मणःशंसितव्रतः ।

पृथुस्सर्वत्र पिश्यातःसन्तोषे च सदा स्थितः ॥ ५ ॥

स्वाध्यापयुको गेहेषु नित्ययोगश्च योगवित् । जपयज्ञविधानेन युक्तं कालं क्षिपेच्च  
युक्तःक्षमादयाभ्यां च क्षान्त्या युक्तश्च तस्यचित् ।

अहिंसाहितचित्तश्च मार्दवे च तथा स्थितः ॥ ७ ॥

ब्रह्मचर्यसमायुक्तः तपोयोगसमन्वितः । युक्तः स पितृकार्येषु युक्तो वैदिककर्मसु ॥ ८ ॥  
परलोकभयेयुक्तो यत्कस्सत्यवचः प्रति । युक्तोमधुरवाक्येषु युक्तश्चातिथि पूजने ॥ ९ ॥

इष्टापूर्तसमायुक्तो युक्तो द्वन्द्वविषज्जने ।

स्वकर्मविधिसंयुक्तो युक्तःस्वाध्याय कर्मसु ॥ १० ॥

एवं कर्माणि कुर्यत्संसारविजिगीषया । यद्व्यन्यद्भान्यतीतानि ब्राह्मणस्य गृहेसतः ।  
तस्य बुद्धिरियं जाता तीर्थाभिगमनं प्रति । पुण्यैस्तीर्थजलैरेतत्किन्नं कुर्यां कलेबज्ज

प्रपतः पुष्करे स्नात्वा भास्करस्योदयं प्रति ।

हृतजप्यनमस्कारोऽप्यदुध्वानं प्रत्यपद्यत ॥ १३ ॥

अप्रतःपञ्चपुरवानपरयस्सोऽति भीषणान् । घने कण्टकवृक्षाढ्ये निर्जने पक्षिवर्जिते ।  
तान्द्रष्टुं चिन्ताकारान्मुषोराम्पापदर्शनान् ।

ईषत्सम्प्रस्तहृदयो व्यतिप्रबिभ्रलङ्कृतिः ॥ १५ ॥

अवलम्ब्य ततो धैर्यं भयमुत्सृज्य दूरतः । पप्रच्छ मधुराभापो के यूये चिन्ताःकुतः ।  
किं वा चैव हृतं कर्म येन प्राप्ताश्च वैहृतम् । कथमेवं विधाःसर्वे प्रस्थिताःकुत्रवाच्यनि

प्रेता ऊचुः ।

क्षुत्पिपासान्विता नित्यं महादुःखसमावृताः ।

हृतप्रज्ञा घयं सर्वे नष्टसञ्ज्ञा विचेतसः ॥ १८ ॥

न जानीमो दिशं चापि प्रदिशं चापिकाञ्चन । नातर्हिर्महर्षी चापि न जानीमोदिव्यंत्  
स्वमाख्यातमेतदेव सुखं भवेत् । प्रमातमिदमामाति भास्करोदयदर्शनान्



अहं पर्युपितो नाम सूचीमुखस्तथापरः ।

शीघ्रगो रोहकश्चैव पञ्चमो लेखकस्तथा ॥ २१ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

प्रेतानां कर्मजातानां नाम्नां च सम्मयःकुतः ।

किं तत्कारणमुद्दिश्य यतो यूयं सनामकाः ॥ २२ ॥

प्रेता ऊचुः ।

अहं स्यादु सशम्भुञ्जे दयां पर्युपितं द्विजे । एतत्कारणमासाद्य नामपर्युपितो मम ॥ २३ ॥

सूचिता बहवोऽनेन विप्राभ्यासायकारक्षिणः । एतत्कारणमुद्दिश्य सूचीमुखोऽभिधोमतः

शीघ्रगतोऽस्मिन्निप्रेणयाचितः प्रुधितेन च । एतत्कारणमुद्दिश्य शीघ्रगोऽद्विजस्तम ॥

गृहोपरितदास्वादेभुङ्क्तेद्विजमयेन हि । उद्विग्नमानसस्तत्र तेनासी रोहकः स्मृतः ॥ २६ ॥

मौने चापि स्थितो नित्यं याचितो घिलिजन्मदीम् ।

अस्माकमपि पापिष्ठो लेखको नाम नामतः ॥ २७ ॥

कृष्ण्येण लेखको याति रोहकस्तु अवाकिष्ठराः ।

शीघ्रगः पङ्क्तुतां प्रातःसूची सूचीमुखोऽमपत् ॥ २८ ॥

पर्युपितो लम्प्यमीधो लम्प्योदर उदाहृतः । गृहद्वृषण लम्बोष्ठः पापाद्स्मादजायत ॥ २९ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातमात्मवृत्तं सहेतुकम् । वृच्छस्य यदि ते भञ्जा पृष्टाश्च कथयामहे ॥

ब्राह्मण उवाच ।

ये जीवा भुवि तिष्ठन्ति सर्वेऽप्पाहारमूलकाः ।

मुष्माकमपि चाहारं धोतुमिच्छामि तत्पतः ॥ ३१ ॥

प्रेता ऊचुः ।

शृणुष्वाह्वयस्माकं सर्वसत्त्वविगर्हितम् ।

यच्छ्रुत्वा निन्दसे विप्र भूयोभूयश्च नित्यशः ॥ ३२ ॥

श्लेष्ममूत्रपुरीषेण योषिर्द्रुमलेन च । गृहाणि त्यक्त्वाश्वाणि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र चै

र्त्सामिर्दग्धानि कीर्णानि प्रकीर्णोच्छिष्टकानि च ।

मलेनापि जुगुप्स्यानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥ ३४ ॥

चित्तलज्जाविहीनानि होमहीनानि यानि च । मतेश्चैव विहीनानि प्रेताभुञ्जन्ति तत्र वै ॥ ३५ ॥

गुरधो नैव पूज्यन्ते स्त्रीजितानि गृहाणि च ।

क्रोधलोभगृहीतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥ ३६ ॥

अप्राप्ते जायते तात कथ्यमाने स्वभोजने । अस्मात्परस्परं चान्यत्र घक्तुमपि शक्यते ।

निवृत्तिं प्रेतभावस्य पृच्छामस्वर्था इदमत्र । यथा न भवति प्रेतस्तन्मे यद् तपोधन ॥ ३७ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

एकरात्रद्विरात्रादि कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः । मतेरन्यैः कृतैर्नित्यं न प्रेतो जायते नऽपि ।

श्रीनग्नीन्यञ्च चैकं वा योऽहन्यहनि सेयते । स वै भूतश्चापन्नो न प्रेतो जायते नऽपि ।

तुल्यो मानेऽपमाने च तुल्यः काञ्चनलोऽप्योः ।

तुल्यः शत्रौ च मित्रे च न प्रेतो जायते नऽपि ॥ ४१ ॥

द्वैपातिधिपूजासु गुरुपूजासु नित्यशः । रतो वै पितृपूजासु न प्रेतो जायते नऽपि ।

शुक्लाङ्गारकसंयुक्ता चतुर्थो जायते यद्वा ।

भक्षया धाम्दृष्टस्यां न प्रेतो जायते नऽपि ॥ ४३ ॥

जितक्रोधपिमर्शो यस्त्वनृणासङ्गविवर्जितः । धर्माधान्दानशीलश्च न प्रेतो जायते नऽपि ।

गोब्राह्मणांश्च तार्थानि पर्यतांश्च नरीस्तथा । देवांश्चैव तु यो घम्यान्न प्रेतो जायते नऽपि ।

प्रेता ऊचुः ।

धृताश्च विपिधा धर्माः पूज्यामो दुःखिता मुने । येन वै जायते प्रेतस्तन्मो यद् महाप्रभे ।

ब्राह्मण उवाच ।

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन ब्राह्मणेन विशेषतः । श्रियते हृदयस्थेन स वै प्रेतो भवेन्नऽपि ।

मातरं पितरं ब्रह्मन्मनिसौ तुल्यमेव च । मद्रक्षोर्वास्त्यत्रापि स प्रेतो जायते नऽपि ।

अपादपात्रनाश्चैव यात्रस्थश्च विवर्ज्यते । रतो वै गृहगोत्रासु स प्रेतो जायते नऽपि ।

म्यासादर्थं विवर्ज्यतेऽप्युदयकालः ।

निराम्यपात्रं हृदयः स प्रेतो जायते नऽपि ॥ ५० ॥

॥६॥ गोमूत्रकः स्तेनः सुरापो गुरुस्त्वयः । भूमिकन्यापहर्ता च स प्रेतो जायते नरः

सामान्यां दक्षिणां लब्ध्वा एक एव निगूहति ।

नास्तिकी भाषनिरतः स वै प्रेतोऽभिजायते ॥ ५२ ॥

एवं प्रुवाणे विप्रेन्द्र आकाशे दुन्दुभिसनः ।

पुण्यवृष्टिः पपातोष्यो देधेर्मुक्ता सहस्रशः ॥ ५३ ॥

द्वैतानां ॥ विमानानि आगतानि समन्ततः ।

अस्य विप्रस्य सम्भाषात्पुण्यसङ्कीर्तनेन च ॥ ५४ ॥

स्मारसर्वप्रयत्नेन सतां सम्भाषणे कुह । यदि ते श्रेयसा कार्यं गङ्गासुत अतन्निहतः ॥

प्रेतकं सर्वधर्मस्य पञ्चप्रेतकधामिमाम् । पदेहृदयोऽस्य कुले न प्रेतो जायते नरः ॥

भृणोति वाप्यभीक्ष्णं वा धद्रया परयाऽन्वितः ।

भवमा समन्वितो वापि न प्रेतो जायते नरः ॥ ५५ ॥

भीष्म उवाच ।

रन्तरिक्षे किमर्थं नु पुष्करं परिकीर्त्यते । मुनिभिर्धर्मशीलैश्च लभ्यते तत्कार्यं रिषह ॥

न ललभ्यते लब्धं लब्धं चैव फलप्रदम् । तस्मै सर्वं समाचक्ष्य कौतुकादेष पृच्छतः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

अधिकोदितस्मायाता दक्षिणापधवासिनी ।

स्नानार्थं पुष्करं राजन्पुष्करञ्च विपद्गतम् ॥ ६० ॥

मत्वा ते मुनयः सर्वे प्राणायामपरायणाः । ध्यायमानाः परं ब्रह्मस्थिता ह्यादरापरसरान्

ब्रह्मामर्ह्यपस्तत्र देवास्तेन्द्रास्समागताः । श्रुण्वोऽन्तर्हिताः श्रोत्रुर्नियमांस्तेसुदुष्कपन्

भाकारणं पुष्करस्य मन्त्रेण क्रियतां द्विजाः ।

आपोहिष्ठेति तिसृभिर्मुग्मिः सावित्र्यमेष्यति ॥ ६३ ॥

भयमर्पणजप्येन भवेद्विफलदायकम् । विप्रैर्वाक्यावसाने नु सर्वस्तेस्तु तयादृतम् ॥ ६४ ॥

वृत्तेनपुण्यतां प्राप्ता ये निदेशाश्च ते द्विजाः । गर्हिता धर्मशास्त्रेषु ते विप्रादक्षिणोत्तराः

ये चान्ये पार्वतीयाश्च धादे गार्हन्ति वेतनम् ।

एतस्मात्कारणाद्वाजन्वियत्येवं समास्थितम् ॥ ६६ ॥

कार्तिक्यां पुष्करं स्नानात्पूततामसिगच्छति । ब्रह्मणा सहितं राजन्सर्वेपापुण्यदाय

तत्रागतास्तु ये पर्णाः सर्वे ते पुण्यमाजनाः ।

द्विजैस्तुल्या न सन्देशो विना मन्त्रेण ते नृप ॥ ६८ ॥

भाग्येयं तु यदा श्रद्धं कार्तिक्यां भवति क्वचित् ।

महती सा तिथिर्मेया स्नाने दाने तथोत्तमा ॥ ६९ ॥

यदा याम्यं तु भवति श्रद्धं तस्यां तिथौ क्वचित् ।

तिथिः सापि महापुण्या यतिभिः परकीर्तिता ॥ ७० ॥

माज्ञापत्यं यदा श्रद्धं तिथौ तस्यां नराधिप ।

सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ॥ ७१ ॥

यदा चार्कं गुरो सोमे पारेष्यंतेषु पे त्रिषु ।

श्रीष्येतानि च श्रद्धाणि स्वयं प्रोक्तानि ब्रह्मणा ॥ ७२ ॥

मन्त्राद्यभेधिकं पुण्यं स्नातस्यभवति धुषम् । दानमक्षयतां याति विनृणां तर्गं तथ

विद्यावासु यदा मानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः ।

स योगः पुष्करो नाम पुष्करैष्यतिदुर्लभः ॥ ७३ ॥

भगवत्प्राप्तवतीर्णे तु तथै वैतामहे गुणे । स्नानं येन करिष्यति तेन लोकाभङ्गोदय

न स्पृहन्तेऽन्यपुण्यस्य कृत्स्नान्नष्टस्य च ।

करिष्यति महारात्रे सत्यमेतदुदाहृतम् ॥ ७४ ॥

संध्यांतां प्रवरं तथै वृषिष्यामिह वज्रने । नास्मत्प्रवरं पुष्करार्थं सोऽकेषु नृप नृप ॥

कार्तिक्या तु विशेषेण पुण्या पापहरा गुणा । उन्मूलकनाशमादागता च तारावर्गः ।

तथा अश्विनिं तथै पुष्करं मुनिरोचिषम् । इक्ष्मिणे शिवारं याति परंतायाविनाशः ।

वेत्याऽन्येचवर्ग्यं वर्णमेतद्विद्वत्तम् । तथा तथिष्यते तत्र च विषयपुष्करं वरः ।

मातृरक्षाते विषयार्थं चन्द्रमूर्तिर्वाचिषम् । चन्द्रपुष्पगन्धार्त्तं चन्द्रार्त्तं चन्द्रमूर्तिर्वा

रक्ष्यतेऽन्येवां तु वैतामहेऽथै विषयम् । तृतेऽन्युत्तरेऽन्ये चन्द्रार्त्तं चन्द्रमूर्तिर्वा

धीफलैः शिखरं भाति समन्तात्सुमनोहरैः । "

गुञ्जलिः पदपङ्क्तयः समन्तादुपशोभितम् ८३ ॥

लारायदचिरं शिखिरेकास्वाकुलम् । शृङ्गे मनोहरे तस्मिन्नुद्रता सुमनोरमा ॥

पुण्यजलोपेता नदीयं ब्रह्मणस्सुता । वंशस्तम्बास्सुविपुला प्रवृत्ता चोत्तरामुखी

ततो नातिदूरात्पुनर्याति पराङ्मुखी । ततः प्रभृति सा देवी प्रसन्ना प्रकटास्थिता

नं परित्यज्य प्राणिनामनुकम्पया । कनका सुप्रभा चैव नन्दा प्राची सरस्वती

ताः पुष्करेषु ब्रह्मणा परिभाषिता । तस्यास्तीरे सुरभ्याणितीर्थान्यायतनानि च

वतानि मुनिभिः सिद्धैश्चापि समन्ततः । तेषु सर्वेषु भविता धर्महेतुः सरस्वती ॥

क्षितिर्गौरीणां तर्क्षीयेषु महोदयम् । दानं दत्तं नरैः स्नातैर्जनयत्यक्षयं फलम् ॥

धान्यप्रदानं प्रघरं घदन्ति तिलप्रदानं च तथा मुनीन्द्राः ।

यैस्तेषु तीर्थेषु नरैः प्रदत्तं तद्धर्महेतुप्रघरं प्रदिष्टम् ॥ ६१ ॥

प्रायोपवेशं प्रयतः प्रयत्नापस्तेषु कुर्यात्प्रमदा पुमान्वा ।

तीर्थेऽपि संयोज्य मनोऽपि चेत्यं भुङ्क्ते फलं ब्रह्म गृहे यथेष्टम् ॥ ६२ ॥

तस्योपकण्ठे त्रियते हि यैस्तु कर्मक्षयात्स्थावरजङ्गमैश्च ।

ते चापि सर्वे सकलं प्रसह्य लभन्ति यज्ञस्य फलं दुरापम् ॥ ६३ ॥

ततस्तु सा धर्मफलारणी च जग्मादिदुःखार्चितचेतसां तु ।

सर्वात्मना शारुफला सरस्वती सेव्या प्रयत्नात्पुरुषैर्महानदी ॥ ६४ ॥

ये सलिलं पूतं पिबन्ति सततप्रराः । न ते मनुष्या देवास्ते जगत्यामिह संस्थिताः

नैस्तपोभिश्च यत्फलं प्राप्यते द्विजैः । तद्वन्न ज्ञानमात्रेण शूद्रेरपि स्वभाषजैः ॥

नात्पुष्करस्यापि महापातकिनोऽपि ये । तेऽपि तत्प्रापन्निर्मुक्ताः स्वर्गं यान्ति तनुक्षये

पवासी यज्ञस्य पुण्डरीकस्य यत्फलम् । तत्प्राप्नोति नरः क्षिप्रमल्पयासांसेन पुष्करे

प्रासेतिलान्यस्तु प्रपच्छति च सद्बुद्धिजे । यथाशक्तिं भक्त्या च सविष्णुमवनेवसेत्

तत्रोपवासं स्नानं च पञ्चमव्यपन्नं तथा ।

यः करोति नरः सोऽपि देहान्ते स्वर्गमाप्नुयात् ॥ १०० ॥

वसन्ति तत्समीपस्थाः येऽपि तत्स्करजातयः ।

तेऽपि तस्यानुभावेन स्वर्यान्ति च न संशयः ॥ १०१ ॥

येः पुनः शूद्रवृत्तिस्थास्त्रिपात्रोपोषितानराः । प्रयच्छन्ति द्विजेष्वयं ब्रह्मणः कृत्स्नमन्वितं  
ते मृता यानमारूढाः पद्मासनचतुर्भुजाः । ब्रह्मणा सह सायुज्यं प्राप्नुवन्त्यपुनर्भवम्  
गङ्गोद्भवं यत्र गङ्गा सम्प्राप्ता सतितां वराम् ।

सारस्वतीं द्रष्टुकामा सान्त्वार्थं प्रोद्धताऽम्बरात् ॥ १०४ ॥

तत्रगत्वा पयः पूतं सुरसिद्धनिषेधितम् । सारस्वतं च विमलं विद्याधराणाञ्चितम्  
पीतमेकाञ्जलिमितं येनाप्तं तेन तत्परम् । भवलोका दिशं पूर्वामाह गङ्गे सखि त्वया ।  
एकाकिनी धियुक्तास्मि क यास्येऽहमयान्धवा ।

तां विहाय ततो गङ्गा यदन्तीं शोककर्शितम् ॥ १०७ ॥

पूर्वदेशात्समायाता द्रष्टुं तां दोनमानसाम् । दृष्ट्वा च तां महाभागां परिष्वज्य तु पीडितान्  
नेत्रे प्रमृज्य चैतस्याः प्राह गङ्गा वचस्तदा ।

गङ्गोपाच ।

मा रोदीस्त्वं महामागे दुष्करं ते कृतं सखि ॥ १०९ ॥

देवकार्यं यदन्येन कर्तुं शक्येत नैव हि । एतस्मात्ते महामागे द्रष्टुं देवाः समागताः ।  
एषाञ्च कियतां पूजा वाङ्मनःकायकर्मणा ।

पुण्डस्थ उवाच ।

सारस्वती सुरेन्द्राणां कृत्वा पूजाविधिकमम् ॥ १११ ॥

क्रमेण ब्रह्मजा पद्मात्सङ्गता तु सखीजनम् । जेष्ठमध्यमयोर्मध्ये सङ्गमो लोकविधुतः ।  
पद्मान्मुषी ब्रह्मसुता जाह्नवी तु उदङ्मुषी । ततस्ते ध्रुव्या सर्वे पुष्करं ये समागताः  
विदित्वा पुष्करं कर्म तस्यां स्तुतिप्रकाशयन् ।

देवा ऊचुः ।

त्वं पुण्डिस्त्वं मतिर्लक्ष्मीस्त्वं धिया त्वं गतिः परा ॥ ११४ ॥

त्वं धृद्धा त्वं परा निष्ठा बुद्धिर्मेधा रतिसमा ।

त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं पवित्रं मते महत् ॥ ११५ ॥

ग्न्या रात्रिः प्रभाभूतिर्मघा भद्रासरस्वती । यज्ञविद्या महाविद्या शुद्धविद्यावशोभना  
भान्नीक्षिकी तु या वार्ता दण्डनीतिश्च कथ्यते ।  
नमोऽस्तु ते पुष्पजले नमः सागरगामिनि ॥ ११७ ॥  
ममस्ते पापनिर्मोके नमो देवि जगत्प्रिये ।

पुलस्त्य उवाच ।

एवं स्तुता हि सा देवी दिव्या स्वार्थपरायणैः ॥ ११८ ॥

एवं सा प्राङ्मुखी तत्र स्थिता देवी सरस्वती । सर्वतीर्थमयी देवी सर्वात्मसमन्विता  
गङ्गी सेति बुधैर्ज्ञेया ब्रह्मणो वचनन्तया । तत्र शुद्धाष्टं नाम तीर्थं पैतामहं स्मृतम्  
दर्शनेनापि वै तस्य महापातकिनोऽपि ये ।

भौगिभोगान्समश्नन्ति विशुद्धा ब्राह्मणोऽन्तिके ॥ १२१ ॥

प्रायोपवेशं ये तत्र प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः । ते मृता ब्रह्मयानेन दिवं यान्त्यकुतोभयाः ॥  
तत्रादपमपि यैर्दानन्दं ब्रह्मविदारमनाम् । जन्मान्तरातं तेषां तैर्देवं भावितात्मनाम् ॥  
खण्डस्फुटितसंस्कारं तत्र कुर्वन्ति ये नराः । ते ब्रह्मलोकमासाद्य मोदन्ते सुखितस्तदा  
योऽत्र पूजा जपो होमः कृतो भवति देहिनाम् ।

अनन्तं तत्फलं सर्वं ब्रह्मभक्तिरतात्मनाम् ॥ १२५ ॥

तत्र दीपप्रदानेन ज्ञानबभ्रुच्छीन्द्रियः । प्राप्नोति धूपदानेन स्थानं ब्रह्मनिवेपितम् ॥ १२६ ॥  
अथ किं बहुनोक्तं सङ्गमे यत्प्रदीप्यते । तद्वन्तत्फलं प्रोक्तं जीवतो वा मृतस्य च ॥  
स्नानाग्न्यापाचया होमादभन्तफलसाधकम् । रामेणामस्य वै तत्र पिण्डं दशरथस्य च ॥  
वृक्षं धातुं तत्र तेन मार्कण्डेयेन दर्शिते । तत्रवायो चतुष्कोणा तत्र पिण्डप्रदा नराः ॥  
हंसपुच्छेन यानेन सर्वयान्ति त्रिचिष्टयम् । तस्यां वाण्यां तु वै ब्रह्मा पितृमेधं चकार ह  
यं यज्ञविदां श्रेष्ठः समानवदक्षिणम् । वसवः पितरो ज्ञेया यद्वाश्चैव पितामहाः ॥

मादित्याश्च ततस्तेषां विहिताः प्रपितामहाः ।

त्रिदिवा अपि माह्व्य पुनरुक्ता विरिजिता ॥ १३२ ॥

भवद्भिः पिण्डदानार्थं ग्राह्यमत्रस्थितैस्सदा । यत्कृतं पितृकार्यं च तद्वन्तफलं भवेत्  
वृत्त्यर्थं पितरस्तेषां तुष्टाश्चैव पितामहाः । लभन्ते तर्पणात्तृप्तिं पिण्डदानाद्विधिना

तस्मात्सर्वं परित्यज्य प्राचीने पिण्डदो भवेत् ।

दत्त्वा पुत्रः प्रयत्नेन पितृन्सर्वांश्च तर्पयेत् ॥ १३५ ॥

प्राचीनेश्वरदेवस्य पुरोभूतं प्रतिष्ठितम् । आदितीर्थतद्विर्युक्तं दर्शनादपि मुक्तिम्

सृष्ट्वा तु सलिलतत्र मुच्यते जन्मबन्धनात् ।

मयगाहनाद् ब्रह्मणोऽसौ भवत्यनुवरः सदा ॥ १३७ ॥

आदितीर्थे नरः स्नात्वा यः प्रद्यात्समाधिना ।

अन्नमल्पमपि प्रायः प्रायशस्त्वर्गमाप्नुयात् ॥ १३८ ॥

यस्तत्र ब्रह्मभक्तानां नरः स्नात्वा ददेन्नमः । कसरेणापि हेम्नाथ सत्यर्गे मोक्षते सुखे

प्राचीं सरस्वतीं तत्र नरैः किं मुच्यते परम् ।

तस्यां स्नानात्फलं कृष्ये तपोयज्ञादिलक्षणम् ॥ १४० ॥

ये पियन्ति नराः पुण्यां प्राचीं देवीं सरस्वतीम् ।

न ते नराः सुराः क्षेया माकण्डेयैर्विरर्षयात् ॥ १४१ ॥

सरस्वतीं नदीं प्राप्य न स्नाने नियमः कश्चित् ।

भुक्ते वा न च वा भुक्ते विषा वा यदि वा निशि ॥ १४२ ॥

तर्त्तपि सवर्त्तपिनां प्राचीनप्रवरैश्मृतम् । वावर्त्तं पुण्यजननं प्राणिनां परिकीर्तितम्

ये पुनर्मां विहारमानस्तत्र स्नात्वा जनार्दनम् ।

पूजयन्ति यथाशक्ति ते प्रयान्ति त्रिविधम् ॥ १४४ ॥

देवानां प्रवरो विष्णुस्तेन यत्र सरस्वतीम् ।

संपिता तत्परतीर्थं क्षिप्तो ब्रह्मगुप्तोऽप्यमो ॥ १४५ ॥

उत्तस्तस्मान्महातीर्थं मन्यमाना महोदयम् । मन्दाकिनीमूर्धाक्षतां दिव्या तत्र सरस्वती

तर्त्तपिं सवर्त्तपिनां परं स्वाध्वन्मोऽप्रवर्त्तम् ।

मन्दाकिन्या समं यत्र कप्य पुण्यसमागमम् ॥ १४७ ॥



तत्र स्थाने स्थिता देवैःस्तुता देवी सरस्वती ।

मदवाञ्छैकाकिनीं तां तु दीनायां दीनमानसाम् ॥ १४८ ॥

सखीं तदासृजद्ब्रह्मा रूपिणीं विमलेशणाम् । हरिणीं हरिरप्याशु जज्ञे कमललोचनाम्  
पद्मिणीमपि देवेशो वज्रपाणिर्विसृष्टवान् । सुकुरङ्गवन्निदेशो नीलकण्ठो घुरध्यजः ॥  
सखीं सञ्जनयामास सरस्वत्याङ्गिलोचनः । बिलोत्पमाना साराङ्गसखीभिःसुरसुन्दरी  
प्रकृष्टा यामुमाकथा देवादेशान्महानदी । ततः सखीभिः सार्द्धं सा प्राचीनागन्तुमुद्यता  
सरस्वती समस्तानां तासां श्रेष्ठतमास्मृता । प्राची सरस्वतीतीर्थं ये विधन्तिमृगाभुवि  
तेऽपि स्वर्गं गमिष्यन्ति यद्येद्विजयरायया । चिन्तामणिशिवाश्चैवा प्राचीर्हेया सरस्वती  
तथा कामफलस्यैव हेतुभूता महानदी । दक्षिणां दिशालोक्य पुनःपश्चान्मुखीगता  
उक्ता तया तथामङ्गा दिशं प्राचीं व्रजस्वह । विस्मर्तव्या न चाहं ते व्रज देविपथागतम्  
इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिक्षण्डे तीर्थावतारो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

## अथस्त्रिशोऽध्यायः

### मार्कण्डेयोत्पत्तिकथानकम् ।

भीष्म उवाच ।

मार्कण्डेये न वैरामः कथमत्र प्रबोधितः । कथं समागमो भूतः कस्मिन्काले कदामुने  
मार्कण्डेयः कस्य सुतः कथं जातो महातपाः । ताक्षोऽस्य निगमं ब्रूहि पथाभूर्नमहामुने ॥

पुलस्त्य उवाच ।

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयोद्वयं पुनः । पुरा कस्ये मुनिः पूर्वं मृकण्डुनाम विधृतः  
भृगोः पुत्रो महामातुः समार्यस्तत्रवांस्तपः । तस्यपुत्रस्तदा जातो वसतस्तु वनान्तरे  
स पञ्चवार्षिको भूतो बालरथ गुणाधिकः । ब्रान्निवा सतदादृष्टो ग्रमन्यालस्तदाहूयो  
स्थित्वा समुचिरंकालं ब्राह्मण्यं प्रववुष्यत । तस्य पित्रा सत्ते पृष्टः कपदायुः सुतस्यमे

सङ्ख्ययाऽऽचक्षुष्य पर्षाणि तस्याल्पान्यधिकानि वा ।

मृकण्डुनैव मुक्तंस्तु च ज्ञानी वाक्यमप्रवीत् ॥ ७ ॥

पण्मासमायुः पुत्रस्य धात्रा सृष्टं मुनीश्वर । नैवशोकस्त्वया कार्यः सत्यमेतद्  
सतच्छ्रुत्वा पचो भीष्म ज्ञानिनायदुदाहृतम् । अथोपनयनं ब्रूते बालकस्य पि  
आह चैनं पिता पुत्रमृषींस्त्वमभिषादय । एषमुक्तः सर्वेपित्रा प्रहृष्टभ्राभिषादने  
न पर्षावर्षातां वेत्ति सर्ववर्षाभिषादनः । पञ्चमासास्त्यक्तिकान्ता दिवसाः पञ्च  
मार्गेणाथ समायाता ऋषयस्तत्र सप्त वै । घालेन तेन ते दृष्टाः सर्वे चाप्यभिषादि  
आयुष्मान्भव तै रक्तः स बालो दण्डमेखली । उक्तवैवं तेपुनर्बालमपश्यन्भीष्मजी  
दितानि पञ्च तस्यायुर्ज्ञात्वा भीताश्चतेनृप । तंगृहीत्वाबालकंचगतास्तेप्रह्मजोऽपि  
प्रतिमुच्य च तं राजन्मणिपेतुः पितामहम् । अयमावेदितस्तेस्तु तेन प्रह्माभिषादि

चिरायुर्ग्रहणा घालः प्रोक्तः स ऋषिसन्निधौ ।

ततस्ते मुनयः प्रीताः ध्रुत्वा वाक्यं पितामहात् ॥ १६ ॥

पितामहो ऋषीन्द्रश्च प्रोवाच विस्मयान्वितः ।

कार्येण येन चायातः कोऽयं बालो निवेद्यताम् ॥ १७ ॥

ततस्त ऋषयो राजन्सर्वे तस्मै न्यवेदयन् । पुत्रोमृकण्डोः क्षीणायुः सायुर्पञ्चदश  
अल्पायुपस्त्यस्य मुनिर्वदुध्येमां चापि मेखलाम् । यक्षोपधीतंदण्डं च दृष्ट्वाचैनमयो  
यं कंचित्पश्यसे बालममन्तं भूतले जनम् । तस्याभिषादः कर्तव्य एषमाह पिता  
अभिषादनशीलोऽयं क्षिती दृष्टः पश्चिमम् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन देशयोगात्पिताम  
चिरायुर्भणुष्वेति प्रोक्तोऽसीं तत्र बालकः । कथं पचो भवेत्सत्यमस्माकं भपत  
एषमुक्तस्तदा तैस्तु प्रह्मा लोकपितामहः । ऋतवाक्यादियं भूमिः संस्थिता सर्वतो

ग्रहोवाच ।

मत्समध्यायुण्बालो मार्कण्डेयो भविष्यति । ऋषीणांचापिमुह्यध्मत्सदायोनपि  
कल्पस्यावो तथा चान्ते मतो मे मुनिसत्तमः । एवं ते मुनयो घालं ग्रहलोकेपिताम  
संसाध्य देवयामासु भूयोऽध्येनं धरातलम् । तीर्थयात्रां गतापिप्रामार्कण्डेयोनिर्ज

जगाम तेषु यातेषु पितरं स्वमथाब्रवीत् । ब्रह्मलोकमहं नीतो मुनिभिर्ब्रह्मादिभिः ॥  
 दीर्घायुश्च कृतश्चास्मि वरान्दत्त्वा विसर्जितः । एतदन्यच्च मे दत्तं गतं त्रिंशत्कारं तव ॥  
 कल्पस्यादौ तथा चान्ते भविष्ये समनन्तरे । लोककर्तुर्ब्रह्मणोऽहं प्रसादात्तस्य वै पितः  
 पुष्करं वै गमिष्यामि तपस्तप्तं समुद्यतः । तत्राहं देवदेवेशमुपासिष्ये पितामहम् ॥  
 सर्वाकामवाप्तिकरं तर्षारातिनिवर्हणम् । सर्वसौख्यप्रदं देवमिन्द्रादीनां परायणम् ॥  
 ब्रह्माण्तोपविष्यामि सर्वलोकपितामहम् । मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा मृकण्डुर्मुनिसत्तमः  
 जगाम परमं हर्षक्षणमेकं समुच्छ्वसन् । धैर्यं तुमनसास्थाप्य इदं वचनमब्रवीत् ॥३३॥  
 भयं सफलं जन्म जीवितं च सुखावितम् । सर्वस्य जगतां श्रेष्ठं येन दृष्टः पितामहः  
 तथा दायाद्वामस्मि पुत्रेण घंशधारिणा । त्वं गच्छ पश्य देवेश पुष्करस्थं पितामहम्  
 दृष्टेऽस्मि जगन्नाथे न जरामृत्युरेष च । नृणां भवति सौख्यानि तथैश्वर्यं तपोऽक्षयम्  
 त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रसवणानि च ।

पुष्कराणि तथा त्रीणि न विद्यस्तत्र कारणम् ॥ ३७ ॥

कनीयांसंमध्यमं च तृतीयं ज्येष्ठपुष्करम् । शृङ्गश्यामिधानानि शुभ्रप्रसवणानि च ॥  
 प्रह्लादिष्युस्तथा रुद्रो नित्यं सन्निहितास्त्रिवः । पुष्करेषु महापञ्च नातः पुण्यतमं भुवि  
 चिरजं विमलं तोयं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । ब्रह्मलोकस्य पन्थानं धर्म्याः पश्यन्ति पुष्करम्  
 यस्तु वर्षशतं साप्रमग्निहोत्रमुपासितः । कार्तिकी वायसेदेकां पुष्करं सममेव च ॥४१॥  
 कर्तुं नमया न शकितं कर्मणा नैव साधितम् । तदयत्नात्तथा तात मृत्युस्तर्षहरोजितः  
 तत्र दृष्टस्तदेवेशो ब्रह्मलोकपितामहः । नान्योऽप्रत्यर्त्तयथा तुल्यो भविता जगतीतले ॥  
 भहं वै तोषितो येन पञ्चवार्षिकजन्मना । वरेण त्वं मदीयेन उपमा चिरजीविनाम् ॥  
 गमिष्यसि न सन्देहस्तथार्थावचनममम् । एवं वदन्ति ते सर्वे ब्रह्मलोकान्यपेक्षितान्  
 एवं लब्धप्रसादेन मृकण्डुतनयेन च । माधमः स्थापितस्तेन मार्कण्डाधम इत्युत ॥  
 तत्र स्नात्वा शुचिर्मूत्वा वाञ्छयेयफलं लभेत् । सर्वपापविशुद्धात्मा चिरायुर्जायते नरः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तथान्यं ते प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् । यथा रामेण वै तीर्थं पुष्करं नु विनिर्मितम्

चित्रकूटात्पुरा रामो मैथिल्या लक्ष्मणेन च । अश्वराश्रममासाद्य पप्रच्छ मुनिसत्तमम् ।

राम उवाच ।

कानि पुण्यानि तोर्थानि किं वा क्षेत्रं महामुने ।

यत्र गत्वा नरो योगिन्वियोगं सह बन्धुभिः ॥ ५० ॥

नैव प्राप्नोति भगवन्स्तनमाचक्ष्वसुव्रत । मनेन धनवासेन राहस्तु मरणेन च ॥ ५१ ॥

भरतस्य वियोगेन परितप्ये ह्यहं त्रिभिः । तद्वाक्यं राघवेणोक्तं ध्रुत्वा विप्रर्षभस्तदा ।

ध्यात्वा च सुचिरं कालमिदं वचनमब्रवीत् ।

अत्रिरुवाच ।

साधु पृष्टं त्वया धीर रघूणां वंशवर्धन ॥ ५२ ॥

मम पित्रा कृतं तीर्थं पुष्करं नाम विभ्रुतम् । पर्वतो द्वौ च चिख्यातौ मर्यादायश्चपर्वतौ

कुण्डत्रयं तयोर्मध्ये ज्येष्ठमध्यकनिष्ठकम् ॥ ५५ ॥

तेषु गत्वा दशरथं विण्डदानेन तर्पय । तीर्थानां प्रवरं तीर्थक्षेत्राणामपि चोत्तमम् ।

अवियोगा च सुरसा घापी रघुकुलोद्वह ॥ ५६ ॥

तथा सौभाग्यकूपोऽन्यः सुजलो रघुनन्दन । तेषु विण्डप्रदानेन पितरो मोक्षमाप्नुयुः

आभूतसमृद्धयं कालमेतदाह पितामहः । तत्र राघव गच्छस्य भूयोऽप्यागमनं क्रिया ।

तथेति चोत्तवा रामोऽपि गमनाय मनो दधे । श्लक्ष्णन्तमभिक्रम्य नगरं वैदिशन्तथा ।

धर्मपवतीं समुत्तीर्य प्रातोऽसी यष्टपर्वतम् । तमतिक्रम्य वेगेन मध्यमे पुष्करे स्थितः ।

पेतृन्सन्तर्पयामास अद्विर्देवांश्च सर्वशः । स्नानावसाने रामेण मार्कण्डेो मुनिपुङ्गव ।

आगच्छश्चिष्यसंयुक्तो द्रष्टुस्तत्रैव धीमता ।

गत्वा यै सम्मुखं तस्य प्रणिपत्य च सादरम् ॥ ६२ ॥

पृष्टोऽवियोगदः कृपः कतमस्यां दिशि प्रभो ।

सुतो दशरथस्याहं रामो नाम जनैः स्मृतः ॥ ६३ ॥

तेभाग्यघापीतां द्रष्टुमहं प्रातोऽत्रिशासनात् । तत्स्थानंती चैव कृपौ भगवान्प्रब्रवीतुमे

एवमुक्त्वा रामेण मार्कण्डः प्रत्युपाच ह ।

मार्कण्डेय उवाच ।

सत्पु राघव भद्रं ते सुकृतं भयता कृतम् ॥ ६५ ॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन यत्प्रसन्नोऽसीह साग्रतमम् ।

पद्मागच्छत पश्यस्य चापीं सामयियोगशाम् ॥ ६६ ॥

रघुर्योगश्च सर्वेभ्य कृप एवात्र जायते । मामुष्मिके चैहिके च जीयतोऽपि मृतस्य वा  
तद्वाच्यं मुनीन्द्रस्य भूत्वा लक्ष्मणपूर्यजः । सस्मार रामो राजानं तद्वा दशरथं नृप ॥

रत्नं सह शत्रुघ्नं भ्रातृनन्यांश्च नागरात् । एवं चिन्तयतस्तस्य सन्ध्याकालो व्यजायत  
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां मुनिभिः सह राघवः ।

सुप्याप तां निशां तत्र भ्रातृभार्यासमन्वितः ॥ ७० ॥

विभाषणवसाने तु स्वप्नान्ते रघुनन्दनः ।

पित्रा मात्रा तथा बान्धवोऽध्यायां स्थितः किल ॥ ७१ ॥

.येयाद्भङ्गले वृत्ते बहुभिर्वाग्धवैः सह । समासीनः सभार्योऽसावृषिभिः परिवारितः

लक्ष्मणेनाप्येवमेव दृष्टोऽसी सीतया तथा । प्रसन्ने तुमुदीनां तत्सर्वमेव प्रकीर्तितम् ॥

श्रुतिभिर्धृतयैर्युक्तः सत्यमेतद्रघूत्तम । मृतस्य दर्शने धादं कार्यमावश्यकं स्मृतम् ॥

वृद्धिकामास्तु पितरस्ताथा चैवाप्तकाङ्क्षिणः । ददन्ति दर्शनं स्वप्ने भक्तिर्युक्तस्य राघव

भयियोगस्तु ते भ्रात्रा पित्रा च भर्तृतेन च । चतुर्वर्शानां धर्माणां भविता राघव ध्रुवम्

कुलधार्ढ्यं तथा वीर राज्ञो दहस्यस्य च । भभी च श्रुतवः सर्वे तव भक्ताः कृतक्षणाः ॥

भद्रं च जमश्रिभ्य भारद्वाजभ्य लोमशः । देवराजः शमीकश्च वदेते वै द्विजोत्तमाः ॥

धादे च ते महाशार्ङ्गं संभारोस्त्वमूपाहर । मुख्यं चेद्भुविपिण्याकं बद्धरामलकैः सह ॥

ध्रीकलानि च पकानि मूलं चोद्यावचं बहु । मार्गेण चाथ मांसेनधान्येन विविधेन च

रुष्टिं प्रयच्छ विप्राणां धाददानेन सुवत । पुष्करारण्यमासाद्य नियतो नियताशनः ॥

पितृस्तर्यते यस्तु सोऽश्वमेधमवाप्नुयात् ।

। . स्नानार्थं तु वयं राम गच्छामो ज्येष्ठपुष्कलम् ॥ ८२ ॥

रघुवरा ते गताः सर्वे मुनयो राघवं नृप । लक्ष्मणं चाग्रवीद्रामो मेज्यमाहर मे मृगम्

शुद्धे क्षणे च शशकं कृष्णशाकन्तथा मधु ।

अम्बोर्याणि च मुख्यानि मूलानि विविधानि च ॥ ८४ ॥

एकानि च कपित्थानि फलान्यन्यानि यानि च ।

तान्याहरस्य वै श्राद्धे क्षिप्रमेवास्तु लक्ष्मण ॥ ८५ ॥

तथा तत्कृतवान्सर्वं रामादेशाच्च राघवः । यद्वरेडुदिशाकानि मूलानि विविधानि च ।

तत्राहृत्य च रामेण कृडाकारः कृतो महान् ।

परिपक्वं च जानक्या सिद्धं रामे निवेदितम् ॥ ८६ ॥

स्नात्वा रामो योगयात्र्यां मुनींस्ताननुपालयन् । मध्याह्नाद्यलिते स्य फालेकुतपक्षे

आयाताश्च राघवः सर्वे येशामेनानुमन्त्रिताः । तानागतानुमुनीन् दृष्ट्वा पदैक्षी जनकारमगा ।

रामान्तकं परित्यज्य श्रीशिताऽन्यत्र संस्थिता । विस्मयोत्फुल्लनयना चिन्तयानाचरेणै

प्राह्वणा नेह जानन्ति धातुकाले ह्युपस्थिताः ।

रामेण भोजिता विप्राः स्मृत्युक्तेन यथाविधि ॥ ८७ ॥

पैदिक्यश्च हृतास्तथाः सत्क्रियायास्तस्माद्विराटाः ।

पुराणोक्तो विधिश्चैव यैश्च देविकपूर्वकः ॥ ८८ ॥

भुक्तवत्सु च विप्रेषु दत्त्वा पिण्डान्यथाक्रमम् । श्रेयितेषु यथाशक्ति दत्त्वा नैव च शिखरे

गतेषु विप्रमुख्येषु त्रिपांरामोऽश्रूषीद्विदम् । किमर्थं सुबु नृणां सि मुनीन् दृष्ट्वा स्विहमन्त्र

कृत्यैव त्वमिदं तस्य कारणं यद् मा विष्णु । भवितव्यं कारणेन तस्य गोप्यं तस्य

शायितासि मम प्राणेऽहमेषस्य शुचिस्मिन्ने ।

पयनुक्त्य तदा मर्त्या जप्याऽवाहमुर्ध्वा स्थिता ॥ ८९ ॥

विमुञ्चन्ती साऽभ्युपार्त्ता राघवं पाकमश्रूषात् । शृणुयं नाथ यद्वदस्य माध्वमिह वाऽह

राम त्वया चिन्त्यमानो रात्रिर्दुस्तिष्ठह आगतः ।

उपांनत्रसंयुक्तो ह्यैवाम्यो च तयाविधौ ॥ ९० ॥

तस्यैव त्वमिह यद्वदस्य माध्वमिह वाऽह  
जपन्ति वाऽहमन्त्रा त्वानिदम् ।

अथस्त्रिशोऽध्यायः ] • आन्देसमागतान्द्विजान्दृष्टसीतायाः लज्जाकारणकथनम् • २६६

त्वया वै भोजिता विप्राः कृतं धादं यथाविधि ॥ १०० ॥

घनकलाजिनसंवीता कथं राक्षःपुरसरा । सर्वामि रिपुधीरघ्न सत्यमेतदुदाहृतम् ॥  
कौशेयानि च घस्त्राणि कैकेय्यापहतानिच । ततः प्रभृति चैवाहं वीरिणी तु धनाध्यम्  
हात्पाहं न घदेकिञ्चिन्मा ते दुःखं भवत्विति ।

नाहं स्मरामि वै मातुर्न पितुश्च परन्तप ॥ १०३ ॥

कदा भविष्यतीहान्तो यनवासस्य राघव । एतदेवानिर्शं राम चिन्तयन्त्याः पुनः पुनः  
प्रजन्ति दिवसा नाथ तथ पद्म्यां शोणम्यहम् ।

स्यहस्तेन कथं राक्षो दास्ये वै भोजनं त्विदम् ॥ १०५ ॥

दासानामपि यो दासो नोपभुञ्जोतयत्कञ्चित् । एतादृशी कथं त्वस्मै सम्प्रदातुंसमुत्सहे  
याहं राक्षो पुरा दृष्टा सर्वालङ्कारभूषिता । बालव्यजनहस्ता च वीजयन्ती मराधिपम् ॥  
सा स्येदमलक्षिणाङ्गी कथं यस्यामि भूमिपम् ।

व्यक्तं त्रिविष्टपं प्रातस्त्वया पुत्रेण तारितः ॥ १०८ ॥

दृष्ट्वा मां दुःखितां बालां घने क्षिप्रमनगसम् ।

शोकः स्वात्पार्थिवस्यास्य तेन नष्टास्मि राघव ॥ १०९ ॥

मघान्प्राणसमो राम न तु गोप्यं मम त्विह । सत्येन तेन वैवाथ स्पृशामि चरणीं तथ  
तच्छ्रुत्वा राघवः प्रीतः प्रियां तां प्रियवादिनीम् । अनुमानीयसुदृढं परिप्यग्यच सादरम्  
भुक्तौ भोज्यं तदा धीरो पश्चादुक्ता च जानकी ।

एवं स्थितीं तदा सा च तां रात्रिं तत्र राघवौ ॥ ११२ ॥

उदिते च सहस्रांशौ गमनाय मनो बभुः ।

प्रत्यङ्मुखं गतः कोशं ज्येष्ठं यावच्च पुष्करम् ॥ ११३ ॥

पूर्यमाणे पुष्करस्य यापत्तिष्ठति राघवः । शुधाव च ततो षाचं देवदूतेन भाषितम् ॥  
भोभोराघवमत्रं ते तीर्थमेतत्सुदुर्लभम् । अस्मिन्स्थानेस्थितो धीर आत्मनःपुण्यतां कुह  
देषकार्यं त्वया कार्यं हन्तव्या देवरात्रवः । ततो दृष्टमना धीरो ह्यर्चयितुश्चमणं षचः ॥  
सोमिरेऽनुपूर्वतोऽहं देषदेवेन ग्रहण्य । भत्राधमपदं हृत्वा मासमेकं च लक्ष्मण ॥

व्रतं चरितुमिच्छामि कायशोधनमुत्तमम् ।

तथेति लक्ष्मणेनोक्ते व्रतं परिसमाप्यतु ॥ ११८ ॥

पिण्डदानादिभिर्दानैः श्राद्धैश्चैव पितामहान् । पुष्करे तु तदा रामोऽतर्पयद्विधिवत्तत् ।  
कनकप्रासुभा चैव नन्दा प्राची सरस्वती । पञ्चस्रोताः पुष्करेषु पितॄणां तुष्टिदायिनो ।

वैनन्दिनीं पितॄणां तु पूजां तां पितृपूर्विकाम् ।

एवमित्वा तदा रामो लक्ष्मणं धाव्यमग्रयीत् ॥ १२१ ॥

एहि लक्ष्मण शीघ्रं त्वं पुष्कराज्जलमानय । पादप्रक्षालनं कृत्वा शयनं कुरु संस्तरे ।

विभाषयां निवृत्तायां यास्यामो दक्षिणां दिशम् ।

लक्ष्मणस्त्वग्रवीक्षाक्यं सीतया नीयतां पयः ॥ १२३ ॥

नाहं राम सर्वकाले दासभावं करोमि ते । इयं पुष्टा च सुभृशं पीयरी च ममाप्युत ।

किं त्वं करिष्यस्यतया भार्यया वद साम्प्रतम् ।

किं वा मृतस्य वै पृष्ट इयं यास्यति ते प्रिया ॥ १२५ ॥

रक्षसे त्वं सदाकालं सुपुष्टां चैव सर्वदा । हृष्टा चैवा ह्लेशयति सततं मां र्यूतम् ।

त्वं च ह्लेशयसे राम परत्र जायते क्षतिः । त्वत्कृते च सदा चाहं पिपासां ध्रुष्या त्वा ।

संसहामि न सन्देशः परत्र च निशामय । मृतानां पृष्ठतः कश्चिद्रतो नैव च हृष्यते ।

भार्यापुत्रौ धनं चापि एवमाहुर्मनीषिणः ।

मृतश्च ते पिता राम त्यक्त्वा राज्यमकण्टकम् ॥ १२६ ॥

विनिक्षिप्य धने त्वां च कौक्य्याः प्रियकाम्यया ।

इह स्थिता सा कौक्यी धनं सर्वं च वाग्धवाः ॥ १२७ ॥

महाराजो दशरथ एक पय गतोगतिम् ।

मन्येऽहं न त्वया सार्धं सीता यास्यति वै ध्रुवम् ॥ १२८ ॥

किमतया वद राघव साम्प्रतम् । ध्रुत्वावाधृतपूर्वं दिवावयं लक्ष्मणभाक्त्वि ।

विमना राघवस्तस्यो सीता चापि परानना ।

यदुक्तं लक्ष्मणेनाथ सीता सर्वं चकार ह ॥ १३३ ॥



जात्याभुतवा ततो धीरौ पुष्करपुष्करेक्ष्णौ । मीत्यादिभास्वीं तत्र गमनाय मनो दधुः

पद्मचिह्नं च सौमित्रे व्रजामो दक्षिणां दिशम् ।

सौमित्रिखवीद्राम नाहं यास्ये कथञ्चन ॥ १३५ ॥

व्रजत्वमनया साधे भार्यया कमलेक्ष्ण । नान्यद्वनंगमिष्यामि नैषायोध्यां च राघव ॥

अस्मिन्पदेवसिष्यामि वर्षाणीद्वचतुर्दश । मयायिनात्तयोध्यायां यदि त्वं न गमिष्यसि

अनेनवर्तमा भूप आगन्तव्यं त्वया विभो । यदि जीवामि तत्कालं पुनर्यास्येपितुःपुरम्

तपस्सम्भाषयिष्यामि मया त्वं किं करिष्यसि ।

व्रज सौम्य शिवः पन्था मा च ते परिपन्थिनः ॥ १३६ ॥

परयामि त्वां पुनः प्राप्तं सभार्यं कमलेक्ष्णम् । पितृपैतामहं राज्यमयोध्यायां नराभिष

शशुभ्रमरौ खोभौ त्यदाहाकरणे स्थितौ । अहं ते प्रतिकूलस्तु वनवासे विशेषतः ॥

अनाद्यं दिवा बाहं रात्रौ चैव परजय ।

कर्म कर्तुं न शक्नोमि व्रज सौम्य मयास्तुजम् ॥ १४२ ॥

एवं ब्रुवाणं सौमित्रमुपाच रघुनन्दनः । कथं पूर्वमयोध्याया निर्गतोऽसि मया सह ॥

यनेवत्स्याम्यहं रामःनपथर्षाणिषञ्च । न तु त्वया विरहितः स्वर्गेऽपि निवसे क्वचित्

या गतिस्ते नरक्याग्र मम सापि भविष्यति । प्रसादः क्रियतां मह्यं नय मामपि राघव

इदानीमर्धमार्गे त्वं कथं स्थास्यसि शत्रुहन् । लक्ष्मणस्त्यग्वीक्षाम नाहं गन्ता यनेपुनः

लक्ष्मणसंस्थितंहात्वारामोवचनमप्रवीत् । मामनुव्रज सौमित्र एको यास्यामिकामनम्

द्वितीया मे त्विर्यंसीतारामेणोक्तस्तुलक्ष्मणः । गृहीत्वाऽप्यसमुत्तस्वौरामचाक्यंसलक्ष्मणः

मर्यादापर्यन्तं प्राप्नो क्षेत्रसीमां परन्तपो । अजगन्धं च देवेशं देवदेवं पिनाकिनम् ॥ १४६ ॥

अष्टाङ्गप्रणिपातेननत्पारामखिलोचनम् । तुष्टाव प्रयतः स्थित्वा शङ्करं पार्यतीप्रियम् ॥

हठाञ्जलिपुटो भूत्वा रोमाञ्जितशरीरकः । सात्त्विकं भावमाफन्तो विनिर्धूतजस्तमाः

लोफानां कारणं देवं बुबुधे विबुधाधिपम् ॥ १५२ ॥

राम उवाच ।

१ जगतः

२ तस्य च पुनः सुखदुःखदश्च

यतं चरितुमिच्छामि कायशोधनमुत्तमम् ।

येति लक्ष्मणेनोक्तं यतं परिसमाप्यतु ॥ ११८ ॥

देमिर्दानैः धाद्वैश्चैव पितामहान् । पुष्करे तु तदा रामोऽर्चयद्विधिवत्त  
चैव नन्दा प्राची सरस्वती । पञ्चस्रोताः पुष्करेषु पितॄणां तुष्टिदायिनो  
नन्दिनीं पितॄणां तु पूजां तां पितृपूर्विकाम् ।

अयित्वा तदा रामो लक्ष्मणं वाक्पमव्रवीत् ॥ १२१ ॥

शीघ्रं त्वं पुष्कराज्जलमानय । पादप्रक्षालनं कृत्वा शयनं कुरु संस्तरे ।

अभावयां निवृत्तायां यास्यामो दक्षिणां दिशम् ।

लक्ष्मणस्त्वव्रवीद्वाक्यं सीतया नीयतां पयः ॥ १२३ ॥

यकाले दासभावं करोमि ते । इयं पुष्टा च सुभृशं पीवरी च ममाप्युत ।

तत्त्वं करिष्यस्यनया भार्यया यद् साम्प्रतम् ।

वा मृतस्य वै पृष्ट इयं यास्यति ते प्रिया ॥ १२५ ॥

दाकालं सुपुष्टां चैव सर्वदा । इष्टा चैवा क्लेशयति सततं मां रघूत्तम ।

ते राम परत्र जायते क्षतिः । त्वत्कृते च सदा चाहं पिपासां क्षुधया सह

सन्द्देहः परत्र च निशामय । मृतानां पृष्टतः कश्चिद्भूतो नैव च दृश्यते ।

वर्ष्यापुत्रौ धनं चापि एवमाहुर्मनीषिणः ।

तच्च ते पिता राम त्यक्तया राज्यमकण्डकम् ॥ १२६ ॥

निक्षिप्य घने तयां च कैकेय्याः प्रियकाम्यया ।

स्थिता सा कैकेयी धनं सर्वं च वाग्धयाः ॥ १२७ ॥

प्रायजो दशरथ एक पय गतो गतिम् ।

येऽहं न त्यया सार्धं सीता यास्यति वै भूषम् ॥ १२९ ॥

मनया यद् राघव साम्प्रतम् । श्रुत्वा चाधुनपूर्वं दिवाक्यं लक्ष्मणमापितम्

मना राघवस्तस्थौ सीता चापि परानना ।

दुर्कं लक्ष्मणेनाथ सोता सर्वं चकार ह ॥ १३३ ॥

वाभुक्षया ततो घोरौ पुष्करेपुष्करेक्ष्णौ । नीत्वाविमापरीं सत्र गमनाय मनो दधुः  
पल्लुचिष्ट च सौमित्रे व्रजामो दक्षिणां दिशम् ।

सौमित्रिद्वयीद्राम नाहं यास्ये कथञ्चन ॥ १३५ ॥

रमनया साधं भार्यया कमलेक्ष्ण । नान्यद्वनंगमिष्यामि नैवायोध्यां च राघव ॥  
त्यन्नेवसिष्यामि पर्याणीहचतुर्दश । मयाविनात्ययोध्यायां यदि त्वं न गमिष्यसि  
त्वेनैता भूप आगन्तव्यं त्वया विभो । यदि जीयामि तत्कालं पुनर्यास्येऽपितुःपुरम्  
तपस्तप्तभाषयिष्यामि मया त्वं किं करिष्यसि ।

व्रज सौम्य शिषः पन्था मा च ते परिपन्थिनः ॥ १३६ ॥

न त्वो पुनः प्राप्तं सभार्यं कमलेक्ष्णम् । पितृपैतामहं राघ्वमयोध्यायां नराधिप  
रतो चोभौ त्वद्वाङ्माफरणे स्थितौ । भद्रं ते प्रतिहृतस्तु वनवासं विदोषतः ॥  
अनारतं दिपा चाहं रात्रौ चैव परन्तप ।

कर्म कर्तुं न शक्नोमि व्रज सौम्य यथातुष्टम् ॥ १४२ ॥

पाणं सौमित्रिमुपाद्य श्मनुन्वनः । कथं पूर्वमयोध्यायां निर्गतांऽसि मया सह ॥  
स्याम्यहं रामः नयवर्णानिपञ्च च । न तु त्वया विरहितः स्वर्गोऽपि निषरं क्वचिन्  
तेस्ते नरत्वाप्त मम सापि भविष्यति । प्रसादः क्रियतां मह्यं नय मामपि राघव  
वर्धमार्गे त्वं कथं स्थास्यसि शत्रुदत्त । लक्ष्मणस्त्वग्रवीद्राम नाहं गन्ता वनेनुरः  
संस्थितं ह्यत्वारामोषवनमप्रर्थात् । मामनुज ॥ सौमित्र एको वाभ्यामिवात्मनम्  
मे त्वियंसीतारामेभोऽकस्तुल्यमणः । गृहीतवाऽथसमुत्सर्थात्तमपारयंरामः मणः  
वर्धतं प्राप्तां क्षेत्रसीमां परमार्थी । भद्रगन्धं च देवेयं देवदेवं पिनाकिनम् ॥ १४४ ॥  
विधातेननत्पारामस्त्रिभोचनम् । गुहाय व्रजतः स्थिरवा शत्रुरं पार्यतोऽपि ॥  
हेतुतो भूया रोमाञ्चितशरीरकः । सास्त्रिकं भाषमायनो विनिर्भूतः स्रग्मनाः  
लोफानां कारणं देवं बुबुधे विबुधाजिगम् ॥ १५२ ॥

राम उवाच ।

हस्तस्य योऽस्य जगतः तवरावास्य कर्ता हस्तस्य च पुनः पुनस्तु परम्

संहारहेतुरपि यः पुनरन्तर्काले तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १५३ ॥

यं योगिनो विगतमोहरजस्तमस्का भक्त्येकतानमनसो चिनिवृत्तकामाः ।

ध्यायन्ति निश्चलचित्तोऽमितदिव्यमाचं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

यश्चेन्दुखण्डममलं विलसन्मयूखं यदुध्वा सदा प्रियतमां शिरसा विभर्ति ।

यश्चार्धदेहमददद्गिरिराजपुत्र्यै तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १५५ ॥

योऽयं सहस्रद्विमलचाकविलोलतोयां गङ्गां महोर्मिपियमां गगनात्पतन्तीम् ।

मूर्ध्नां दधे क्षत्रमिव प्रविलोलपुष्पां तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १५६ ॥

कैलासशैलशिखरं परिकल्पमानं कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन ।

यत्पादपद्मविभूतं स्थिरतां दधार तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १५७ ॥

येनासद्वदनुमुताः समरे निरस्ता विद्याधरोत्तमजाश्च परैः समग्रैः ।

संयोजिता मुनिपराः फलमूलभक्षास्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १५८ ॥

दक्षाभ्यरे च नयने च तथाः भगस्य पूज्यस्तथा दशनपङ्क्तिमपाठयथ ।

स्तम्भ यः कुलिशयुतमथेन्द्रहस्तं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १५९ ॥

एतः कृतोऽपि विषयेष्वपि सकवित्ताज्ञानात्प्रयधुतगुणैरपि नैव युक्तः ।

यं संश्रिताः सुखभुजः पुराण भवन्ति तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६० ॥

भविष्यन्तिरपि कौटिसमानतेजाः सन्धासनं विबुधदानपसत्तमानम् ।

यः कालकूटमपि च्छसनं सुदीप्तं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६१ ॥

प्रहेन्दुरद्रमलयां च सख्यमुद्यानां दद्यात्तरं सुवयुषो भगवान्महेष्ट ।

नन्दि च मृत्युषुष्यनल्पुनकात्रहार तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६२ ॥

यापञ्चितः सुतससा हिमवन्निकुञ्जयुग्मतेन मनसाऽपि परेणप्ये ।

सर्वत्रयन्मकथयद् मृगये मदन्मा तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६३ ॥

वज्रनिर्देयं त्रिदशस्य भगवत्पदं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६४ ॥

योऽन्तर्द्विजोऽन्तर्गणैश्च सखोऽप्येव तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६५ ॥

प्रीदार्थमेवमगवान्मुयनानि सप्त नानानदीचिह्नमपादयमण्डितानि ।  
 सप्रहसकानि ध्यस्तुजस्तुक्रतादितानिर्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६५ ॥  
 यस्याबिलं जगदिदं वशवर्ति नित्यं योऽष्टामिरेव तनुभिर्भुवनानि भुङ्क्ते ।  
 यः कारणं सुमहतामपि कारणानां तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६६ ॥  
 शङ्खेन्दुबुन्दधवलं धृतमप्रचीरमारुह्यः क्षितिधरेन्द्रसुतानुयातः ।  
 यात्यम्यरं प्रलयमेघविभूषितं च तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६७ ॥  
 शान्तिमुनिपमनियोगपरायणंस्तैर्मैर्महोमपुरुषैः प्रतिनीयमानम् ।  
 भवपानतं स्तुतिपरं प्रसभं ररक्ष तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६८ ॥  
 यः सज्यपाणिफमलाग्रनखेन देवस्तत्पञ्चमं प्रसभमेव पुरस्तुराणाम् ।  
 प्राह्यं शिरस्तद्वपपनिभञ्जकर्त्त तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १६९ ॥  
 यस्य प्रणम्य वरणी वरदस्य भक्त्या स्तुत्वा च वाग्भिर्मलामिरतन्द्रितात्मा ।  
 दीप्तस्तमांसि नुदते स्वकरैर्घिवस्यास्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १७० ॥  
 ये त्वां सुरोत्तमगुहं पुरुषा विमूढा जानन्ति नास्य जगतः सचराचरस्य ।  
 पेश्वर्यमाननिगमानुशयेन पश्चात्ते यातनाप्रनुभवन्त्वविशुद्धचित्ताः ॥ १७१ ॥  
 तस्यैव स्तुयतोऽघोषच्छूलपाणिर्धृषध्वजः । उवाच वचनं हृद्यो राघवं तुष्टमानसः ॥

रुद्र उवाच ।

राम हृद्योऽस्मि भद्रं ते जातस्त्वं निर्मले कुले ।  
 त्वं चापि जगतां धन्यो देवो मानुषरूपधृक् ॥ १७३ ॥  
 त्वया नाथेन वी देवाः सुखिनः शाश्वतीः समाः ।  
 सेविष्यन्ते चिरं कालं गते वर्षे वतुर्दशे ॥ १७४ ॥  
 भयोध्यामागतं त्वां ये द्रक्ष्यन्ति भुवि मानवाः ।  
 सुखं तेऽत्र भजिष्यन्ति स्वर्गं प्राप्तं तथास्यम् ॥ १७५ ॥  
 देवकार्यं महत्कृत्वा नागच्छेथाः पुनः पुरीम् ।  
 राघवस्तु तथा देवं नत्वा शीघ्रं विनिर्गतः ॥ १७६ ॥

इन्द्रमार्गो नदीं प्राप्य जटाजूटं नियम्य च । अग्रधीलक्ष्मणं राम इदमर्पय मे धनुः ॥ १७७

रामवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा सीतां वै लक्ष्मणोऽग्रधीत् ।

किमर्थं देवि रामेण त्यक्तोऽहं कारणं विना ॥ १७८

अपराधं न जानामि कुपितो यन्महामुजः ।

रामेणाहं परित्यक्तः प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ १७९ ॥

नैव मे जीयितेनार्थो धिग्धिष्मांकुलपांसनम् । आर्यस्य येनयै मन्युर्जनितः पापकारिणः

फांस्तु लोकानामिष्यामि अपध्यातो महात्मना ।

उभौ हस्तौ मुखे कृत्वा साधुकण्ठोऽग्रधीदिदम् ॥ १८१ ॥

नापराध्यामि रामस्य कर्मणा मनसागिरा । स्पृष्टौ ते चरणौ देवि मम नान्यागतिर्भवेत्

ततः सीताऽग्रधीद्रामं त्यक्तः किमनुजस्त्यया । वैषम्यं त्यज्यतां याले लक्ष्मणो लक्ष्मिबर्धने

राघवस्त्यग्रधीत्सीतां नाहं त्यक्ष्यामि लक्ष्मणम् ।

न कदाचिदपि स्वप्ने लक्ष्मणस्य मतं प्रिये ॥ १८४ ॥

ध्रुतपूर्वं च सुधोनि क्षेत्रस्यास्य चित्तेष्टितम् ।

अत्र क्षेत्रे जनास्सत्यं सर्वे हि स्वार्थतत्पराः ॥ १८५ ॥

परस्परं न पश्यन्ति स्वात्मनश्च हितं वचः । न शृण्वन्ति पितुः पुत्राः पुत्राणां पितरस्तथा

न शिष्या हि गुरोर्वाक्यं शिष्यस्यापि तथा गुरुः ।

अर्धानुबन्धिनी प्रीतिर्न कश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥ १८७ ॥

इत्येवं कथयन्नेव प्राप्तो रेवां महानदीम् । चक्रेऽभिपेकं काकुत्स्थः सानुजः सहसीतया

तर्पयित्वा च सलिलैः स्वान्पितृन्द्वातान्यपि । उदीक्ष्य च मुहुः सूर्यं देवताश्च समाहितः

श्रुताभिपेकस्तु रराज रामः सीताद्वितीयः सहलक्ष्मणेन ।

श्रुताभिपेकः सहस्रलपुत्र्या गुहेन सार्धं भगवानिवेशः ॥ १९० ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सूचितेण्डे मार्कण्डेयाध्यामदर्शनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

## चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मदकृतपञ्चकालत्विग्दक्षिणादिसर्वकृत्यवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

कस्मिन्काले भगवता ब्रह्मणा लोककारिणा । यद्रियैर्वद्रुमारब्धं तद्ब्रह्मण्यक्तुमर्हति ॥ १ ॥

किं नामानो ब्रह्मजस्तं ब्रह्मणा ये प्रकल्पिताः ।

का च ये दक्षिणा तेषां दत्ता तेन महात्मना ॥ २ ॥

यथाभूतं यथा वृत्तं तथा त्वं मे प्रकोतय । सुमहत्कौतुकं जातं यज्ञं पैतामहं प्रति ॥ ३ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

पूर्वमेव मयाख्यातं यदा स्वायम्भुवो मनुः । सृष्ट्वा प्रजापतीन्सर्वाणुकः सृष्टिं कुर्वन् ये  
स्पर्शं तु पुष्करं गत्वा यज्ञस्याहृत्य विस्तरम् ।

सप्तममारान्समानाण्य पङ्कगारे स्थितोऽभवत् ॥ ५ ॥

गायन्ति नित्यं गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसां गणाः ।

ब्रह्मोद्गाता होताध्वर्युधत्वारो यज्ञवाहकाः ॥ ६ ॥

यैकैस्तत्रयश्चान्ये परिपाराः स्युर्दकृताः । ब्रह्मा च ब्रह्मणाच्छंसी होता आग्नीध्रएव च

आर्ग्याक्षिणी सर्वेपिद्या ब्राह्मी होवाचतुष्टयी । उद्गाता च प्रत्युद्गाता प्रतिहर्ता सुब्रह्मण्यः

चतुष्टयी द्वितीयैवा तूद्गातुश्च प्रकीर्तिता । होता च मैत्रायणस्तथाऽच्छावाक एव च

गायस्तुश्च चतुर्थोऽत्र सृतीया च चतुष्टयी । अध्वर्युश्च प्रतिष्ठाता नेष्ट्रोच्चेता तथैव च ॥

चतुष्टयी चतुर्थ्येषां प्रोक्ता शन्तनुनन्दन । एते वै षोडश प्रोक्ता ब्रह्मिणो वेदचिन्तकैः

तानित्रीणि पष्टिश्च यज्ञाः सृष्टाः स्वयम्भुवा । एतांश्चैतेषु सर्वेषु प्रवदन्ति सदाद्विजान्

सदस्यं केचिदिच्छन्ति त्रिसामाध्वर्युमेव च ।

ब्रह्माणं नारदं चक्रे ब्रह्मणाच्छंसी गौतमम् ॥ १३ ॥

यगमं च होतारमाग्नीध्रं चैव देवलम् । उद्गाताद्विरसः प्रत्युद्गाता च पुलहरतथा ॥

ततोऽस्य नन्ददेवनेत्यत्र तदा वचः ।

ब्रह्मवाच ।

एवमुक्त्वा ततः पर्वता तुभ्यम् ॥ ५१ ॥

ततोऽस्य नन्ददेवनेत्यत्र तदा वचः । प्रतिबोध्यमानस्य यथाऽशीष्मन्मायाति स

उल्लस्य उवाच ।

एवमुक्त्वा ततोऽस्य पर्वता ब्रह्मवाचः । तथाहृष्टी दम्पती तौ पार्वती परमेश

देवौ सः सः तुभ्यस्तदनुमेधस्य परमेष्ठिनः । इरादेव तु ख्येन ब्रह्मर्षीर्वाभिवावि

मिष उवाच ।

एवमुक्त्वा ततोऽस्य पर्वता ब्रह्मवाचः । तथाहृष्टी दम्पती तौ पार्वती परमेश

देवौ सः सः तुभ्यस्तदनुमेधस्य परमेष्ठिनः । इरादेव तु ख्येन ब्रह्मर्षीर्वाभिवावि

मिष उवाच ।

साविश्रुवाच ।

एवमुक्त्वा ततोऽस्य पर्वता ब्रह्मवाचः । तथाहृष्टी दम्पती तौ पार्वती परमेश

देवौ सः सः तुभ्यस्तदनुमेधस्य परमेष्ठिनः । इरादेव तु ख्येन ब्रह्मर्षीर्वाभिवावि

मिष उवाच ।

एवमुक्त्वा ततोऽस्य पर्वता ब्रह्मवाचः । तथाहृष्टी दम्पती तौ पार्वती परमेश

देवौ सः सः तुभ्यस्तदनुमेधस्य परमेष्ठिनः । इरादेव तु ख्येन ब्रह्मर्षीर्वाभिवावि

मिष उवाच ।

एवमुक्त्वा ततोऽस्य पर्वता ब्रह्मवाचः । तथाहृष्टी दम्पती तौ पार्वती परमेश

देवौ सः सः तुभ्यस्तदनुमेधस्य परमेष्ठिनः । इरादेव तु ख्येन ब्रह्मर्षीर्वाभिवावि

मिष उवाच ।

गोपुंषाच ।

वसिष्ठः स्वयम् । लक्ष्मीर्वाचते करे द्यावा पृथिवी चमदाभूता



पद्यामच्छ महाभागे यत्र तिष्ठति ते पतिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

नीता सा तु तदा ताम्बां देवी सा मध्यतः कृता ॥ ६६ ॥

पुरस्सरो विष्णुरुद्री शकाद्याश्च तथासुराः । गन्धर्वाप्सरसश्चैव त्रैलोक्यं सचराचरम्

तत्रायाता च सा देवी सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ।

सावित्रीं सुमुखीं दृष्ट्वा सर्वलोकपितामहः ॥ ६८ ॥

गायत्र्या सहितो ब्रह्मा इवं वचनमब्रवीत् । एषा देवी कर्मकरी भवं ते घराणः स्थितः ॥

समाविश घराणोद्दे यत्ते कार्यं मया त्विह । पशुमुक्ता च सा देवी स्वयं देवेन ब्रह्मणा ॥

अपयाऽधोमुखी देवी न च किञ्चिदबोधत । पादयोः पतिता देवी मायत्री ब्रह्मचोदिता

छतवत्यपराधं ते क्षम देवि नमोऽस्तुते ।

पुलस्त्य उवाच ।

भालिङ्गय सादरं कण्ठे सा परिष्वज्य पीडिताम् ॥ ७२ ॥

गायत्रीं सान्त्वयामास मान्यश्चैव पतिर्मम ।

कर्त्तव्यं वचनं तस्य स्त्रीणां प्राणेश्वरः पति ॥ ७३ ॥

उक्तं भगवता पूर्वं सृष्टिकाले पिरिञ्जिता । न च स्त्रीणां पृथग्यज्ञेन प्रतं नाप्युपोषणम्

भर्ता यद्रक्षते वाक्यं तत्तु कुर्यादकुत्सया । भर्तुं निन्दां या कुरुते स्पृशन्निन्दां तथैव च ॥

परिषाद् प्रलापं वा नरकं सा तु गच्छति । पत्यौ जीयति या नारी उपधासमनं घरेत्

आयुष्यं हस्ते भर्तुर्मृता नरकमुच्छति । एवं धात्वा त्वया भर्तुनं कार्यं पिरिप्यं तति ॥

न चास्य दक्षिणं त्वङ्गं त्वया सेव्यं कथञ्चन ।

सर्वकार्यं त्वहं चास्य दक्षिणं पक्षमाधिता ॥ ७८ ॥

सर्वं त्वमाधये स्साधियं पार्श्वं नारदपुष्करौ ।

ब्रह्मस्थानानि चान्यानि स्थितान्यायतनानि च ॥ ८१ ॥

लभे वै शोभमानेद् यावत्सृष्टिः प्रजापते । मयत्या च मयाचैव स्यात्तत्त्वं च न संशयः ॥

पुष्करे ब्रह्मणः पार्श्वे धामं च त्वं समाधय । मनेन चोपदेशेन मुखं तिष्ठ मयान्विता ॥

गायत्र्युवाच ।

एवमेतत्करिष्यामि तव निर्देशकारिका । तवैवाह्वा मया कार्या त्वं मे प्राणसमा सखी  
अहं ते त्वनुजा देवि सदा मां पातुमर्हसि ।

पुलस्त्य उवाच ।

देवदेवस्तदा ब्रह्मा पुष्करे विष्णुना सह ॥ ८३ ॥

स्नातायस्नाने देवानां सर्वेषां प्रददौ धरान् । देवानाञ्च पतिं शक्रं ज्योतिषाञ्च दिवाकरम्  
नक्षत्राणां तथा सोमं रसानां घटनं तथा । प्रजापतीनां दक्षं च नदीनां चैव सागरम् ॥  
कुशेरं च धनाध्यक्षं तथा चक्रञ्च रक्षसाम् । भूतानां चैव सर्वेषां गणानां च पिनाकिनम्  
मानवानां मनुं चैव पक्षिणां गरुडं तथा । ऋषीणां च वसिष्ठं च ब्रह्मणां च प्रभाकरम्  
एवमाक्षीनि वै दत्त्वा देवदेवः पितामहः । विष्णुं च शङ्करं चैव ब्रह्मा प्रोवाच सादरम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

पृथिव्याः सर्वतीर्थेषु भवन्तीं पूज्यसत्तमो । भवद्वयां न विनातीर्थं पुण्यतामेति कर्तुमिव  
लिङ्गं वा प्रतिमायापि दृश्यते यत्र कुत्रचित् । तत्तीर्थं पुण्यतां याति सर्वमेव फलप्रदम्  
मानवा ह्युपहारैश्च ये करिष्यन्ति पूजनम् । युष्माकं मां पुरस्कृत्य तेषां रोगमयंकुतः ॥

येषु राष्ट्रेषु युष्माकमुत्सवाः पूजनादिकाः ।

प्रवत्स्यन्ति क्रियाः सर्वा यत्फलं तेषु तच्छृणु ॥ १२ ॥

नाथयो व्याधयश्चैव नोपसर्गाः क्षुद्रयम् । विप्रयोगो न चापीठैरनिष्टैर्नापि सङ्गतिः  
नाक्षिरोगः शिरोर्तिर्वा पित्तशूल भगन्दराः । नामिबारं भयं तत्रापस्मारो न विपूचिका  
वृद्धिर्निकामतस्तस्मिन्सम्यग्बुद्धिरनुत्तमा । आरोग्यं सर्वतश्चैव दीर्घायुश्च प्रजाधनम् ॥  
नाकाले भविता मृत्युर्गायो नात्यपयोमुखः । नाकालफलित्वावृक्षा नोत्पातमयमण्यपि

एतच्छ्रुत्वा ततो विष्णुर्ब्रह्माणं स्तोतुमुद्यतः ॥ १७ ॥

विष्णु उवाच ।

नमोऽस्त्यनन्ताय विशुद्धचेतसे स्वरूपरूपाय सदस्रयाहये ।

सहस्ररश्मिप्रभवाय वेधसे विशालदेहाय विशुद्धकर्मणे ॥ १८ ॥

समस्त विश्वार्तिहाराय शम्भवे समस्त सूर्यालतिग्मतेजसे ।  
 नमोऽस्तु विद्याचितताय चक्रिणे समस्तधीस्थानकृते सदा नमः ॥ ९९ ॥  
 भनादिदेवाच्युत शेखर प्रभो भाव्युद्भवदुभूतपते महेश्वर ।  
 महत्पते सर्वपते जगत्पते भुवःपते भुवनपते सदा नमः ॥ १०० ॥  
 यज्ञेश नारायण जिष्णुशङ्कर द्वितीया विश्वेश्वर विश्वलोचन ।  
 शशाङ्क सूर्याच्युतवीर विश्वप्रवृत्तमूर्तेऽमृतमूर्ते भव्यय ॥ १०१ ॥  
 ज्वलद्भुताशाश्विनिरुद्धमण्डलप्रदेश नारायण विश्वतोमुख ।  
 समस्त देवार्तिहरा मृताम्यय प्रपाहि मां शरणगतं तथा विभो ॥ १०२ ॥  
 षडब्राह्मणेकानि विभो तवाह पश्यामि यज्ञस्य गतिं पुराणम् ।  
 प्रह्लाणमीशं जगतां प्रसूतिं नमोऽस्तु तुभ्यं प्रणितामहाय ॥ १०३ ॥  
 संसारचक्रकमणैरनेकैः ऋचिद्वान्देवघराधिदेवः ।  
 तत्सर्वविज्ञानविशुद्धसत्त्वरूपास्यसे किं प्रणमामहं त्वाम् ॥ १०४ ॥  
 पथं भवन्तं प्रहृतेः पुरस्ताद्यो वेद्यसी सर्वविदां वरिष्ठः ।  
 गुणान्वितेषु प्रसभं विधेयो विशालमूर्तिस्त्रिवद सूक्ष्मरूपः ॥ १०५ ॥  
 वाक्पाणिपादैर्पिगतेन्द्रियोऽपि कथं भवान्वे सुगतिस्तुकर्मा ।  
 संसारमये निहितेन्द्रियोऽपि पुनः कथं देववरोऽसिधेयः ॥ १०६ ॥  
 मूर्त्तादमूर्त्तं न तु लभ्यते परं परं वपुर्देव विशुद्धभावैः ।  
 संसारविच्छित्तिकरैर्यजद्विरतोऽवसीयेत चतुर्मुखतपम् ॥ १०७ ॥  
 परं न जानन्ति यतो वपुस्ते देवाद्योऽप्यद्भुतरूपधारिन् ।  
 विभोऽवतारैऽप्रतरं पुराणमाराधयेद्यत्कमलासनस्थाम् ॥ १०८ ॥  
 न ते तत्त्वं विश्वसृजोऽपि योनिमेकान्ततो वेत्ति विशुद्धभावः ।  
 परं त्वदं वेत्ति कथं पुराणं भवन्तमाद्यं तपसा विशुद्धम् ॥ १०९ ॥  
 पद्मासनो वै जनकप्रसिद्ध एव प्रसिद्धिर्हंसहरपुराणतः ।  
 सञ्चिन्त्यते नाथ विष्णुं भवन्तं जानाति नैवं तपसा पिहीनः ॥ ११० ॥



शदानीकुरु मे शान्तिं प्रादि मां सहभाष्यया । ब्रह्मा वै पातु मे पादौ जङ्घे वै कमलासनः  
 त्रिखिं मे कटिं पातु शृष्टिदुग्धमेव च । नामि पद्मनिभःपातु जठरं चतुराननः ॥  
 उरस्तु विश्वसूत्रपातु हृदयं पातु पद्मजः । सावित्रीपतिर्मकण्ठं हृषीकेशो मुखं मम ॥  
 पद्मवर्णाश्च नयने परमात्मा शिरो मम । एवंन्यस्य गुरोर्नाम शङ्करोनाम शङ्करः ॥१२६॥  
 नमस्ते भगवन्ब्रह्मभित्युक्त्वा विररामह । ततस्तुष्टो हरं ब्रह्मा वाक्पमेतदुवाचह ॥१३०॥  
 ब्रह्मोवाच ।

कां ते कामं करोम्यद्य पृच्छ मां यद्यदिच्छसि ।

इद उवाच ।

यदि प्रसन्नो मे नाथ धरदो यदि धा मम ॥ १३१ ॥

तदेकं मे वद विमो यस्मिन्स्थाने भवान्स्थितः ।

केषु केषु च स्थानेषु त्वां पश्यन्ति सदा द्विजाः ॥ १३२ ॥

नाम्ना च केन ते स्थानं शोभते धरणीतले । तन्मे वदस्व सर्वेश तवभक्तिरस्य च ॥  
 ब्रह्मोवाच ।

पुष्करेऽहं सुरश्रेष्ठो गयायां च चतुर्भुजः । कान्यकुब्जे देवगर्भो भृगुकक्षे पितामहः ॥  
 कावेर्यां खट्विकर्ता च नन्दिपुर्यां वृहस्पतिः । प्रभासे पद्मव्रज्जा च बालपुर्यां च सुरप्रियः

वाराणस्यां तु ऋग्वेदी वैदिशे भुवनाधिपः । पौण्ड्रके पुण्डरीकाक्षः पिङ्गाक्षो हस्तिनापुरे  
 जयन्त्यां विजयपद्मास्मि जयन्तः पुष्करावते । उग्रेषुपदास्तोऽहं तमोनद्यां तमोनदः ॥

महिच्छत्रे जयानन्दी काञ्चीपुर्यां जनप्रियः ।

ब्रह्माऽहं पाटलीपुत्रे अपिकुण्डे मुनिस्तथा ॥ १३८ ॥

महितारे मुकुन्दश्च श्रीकण्ठःश्रीनिवासिते । कामरूपे शुभाकारे वाराणस्यां शिवप्रियः

ह्रिकाक्षे तथा विष्णुर्महेन्द्रे भार्गवस्तथा । गोनर्दे स्थविराकार उज्जयिन्यां पितामहः

नौशाम्ब्यां तु महाबोधिरयोध्यां च राघवः । मुनीन्द्रश्चित्रकूटे तु धारादो विन्ध्यपर्वते

ङ्गाद्वारे परमेष्ठी हिमपत्यपि शङ्करः । देविकायां सुबाहस्तः स्रग्वहस्तश्चतुर्वर्ते ॥१४२॥

न्यायने पद्मपाणिः कुशाहस्तश्च नैमिषे । गोप्लक्ष्मेचैव गोपीन्द्रः सचन्द्रो यमुनातटे ॥

मीरण्यां पद्मतनुर्जलानन्दो जलन्धरे । कौङ्कणे चैव मद्राक्षःकाष्मिण्ये कनकप्रियः ॥



तत्सर्वनाशमायाति नात्रकार्याविचारणा । यस्त्येतानिच सर्वाणि गत्वा मां पश्यतेनरः  
भयते मोक्षभागी च यत्राहं तत्र वै स्थितः । पुण्योपहारैर्धूपैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥  
ध्यानेन च स्थिरेणाशु प्राप्यते परमेश्वरः । तस्य पुण्यफलं चाग्न्यमन्ते मोक्षफलं तथा  
स ब्रह्मलोकमाप्ताय तत्कालं तत्र तिष्ठति । पुनःसृष्टौ भवेद्देहो वैराजानां महातपाः ॥  
ब्रह्महत्यादिपापानि इहलोके कृतान्यपि । अकामतःकामतो वा तानि नश्यन्ति तत्क्षणम् ॥

इहलोके इरिद्रो यो भ्रष्टराज्योऽथवापुनः ।

स्थानेध्येतेषु वै गत्वा मां पश्यति समाधिना ॥ १६६ ॥

हत्वापूजोपहारं च स्नानं च पितृसर्पणम् । हत्वापिण्डप्रदानं च सोऽचिराद्बुधःपराजितः  
एकच्छत्रो भवेद्भ्राजा सत्यमेतन्नसंशयः । इहाराज्यानि सौभाग्यं धनं धान्यं धरस्त्रियः  
अपणति विविधास्तस्य धैर्यान्ना पुष्करैकता । इहं यात्राविधानं यःकुर्यते कारयेत् वा ॥  
पूजोति वा सपापैस्तु सर्वैरेव प्रमुच्यते । भगव्या गमनं येन कृतं जानाति मानवः ॥  
भक्त्यापा लोपेन बहुवर्षं कृतेन च । यात्रां श्रेयां सहृद्व्या वेदसंस्कारमाप्नुयात्  
केनच बहुनोक्तेन इदमस्तीह शङ्कर । भ्रातृभ्यं प्राप्यते तेन पार्थ चापि विनश्यति ॥  
वैश्वदेवकलैस्तुल्यं सर्वतीर्थफलप्रदम् । सर्वेषां चैव वेदानां समाप्तिस्तेनैव कृता ॥  
हत्वा पुष्करे सन्ध्यां सावित्रीं समुपासिता । स्वपत्नी हस्तश्चेन पौष्करेण जलेन तु  
हारेण धरेणैव मृण्मयेनापि शङ्कर । भानीयतज्जलं पुण्यं सन्ध्योपास्तिर्दिनक्षये ॥ १७॥  
माधिना समाधेया सप्राणायामपूर्विका । तस्यां कृतायां यत्पुण्यं तच्छृणुष्वहराद्यने  
द्वादशवर्षाणि भवेत्सन्ध्यासुवन्दिता । अभ्युद्योतकं स्नाने दाने दशगुणं तथा ॥  
वासेऽप्यनन्तं च स्वयं प्रोक्तं मयाऽनघ । सावित्र्याःपुरतोयस्तु दम्पन्योर्भोजनं इदम्  
गार्हं भोजितस्तत्र भयामीह न संशयः । द्वितीयं भोजयेद्यस्तु भोजितस्तेन केरापः ॥  
मीसहायोऽथर्वो परांस्तस्य प्रयच्छति । उमासहायस्तार्त्तवि भोजितोऽसि न संशयः

अथवा या कुमारीणां भक्त्याद्याद्यभोजनम् ।

तस्याःकुलेभवेद्बन्ध्या न कदाचिद्दुर्भगा ॥ १८४ ॥

न कन्या जननी कापि न भर्तुर्या न यत्तुमा ।

पुलस्त्य उवाच ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साविश्रम्रे तु भोजनम् ॥ १८५ ॥

पारत्रैहिकं वापि कामयद्विर्नरैः सदा । दातव्यं सर्वदा भीष्म कटुतैल विवर्जितम् ।

न चाम्लं न च वै क्षारं स्त्रीणां भोज्यं कदाचन ।

भक्ष्यं पञ्च प्रकारं च रसैः सर्वैस्सुसंस्कृतम् ॥ १८६ ॥

घृतपूर्णैः सुपकाश्च बहुक्षीर समन्विताः । शिखरिणी तथा पेया दधिक्षीर समन्विता ।  
आह्लादकारिणी पुंसां स्त्रीणां चातीवमल्लभा । धनधान्याञ्जनोपेतनारीणां च शताकुलम्  
पूपकं शष्कुलं तस्यांजायते नात्र संशयः । न ज्वरो न च सन्तापो न दुःखं न विषोमिह  
असौ तारयते स्थानां कुलानामेकविंशतिम् । बन्धुभिश्च सुतैश्चैव दासीदासैरनन्तैः ।  
पूरितं च कुलं तस्याः पूरिकां या प्रदास्यति । पथते च विरंकालं पुत्रपौत्र समन्विता  
कुलं च सकलं तस्य शष्कुलं यः प्रयच्छति । पुत्रिण्यो वै दुहितरो बन्धुभिः सहितं कुलम्  
शिखरिणी प्रदात्रीणां युवतीनां न संशयः । मोदते तु कुलं तस्याः सर्वसिद्धिं प्रयति  
मोदकानां प्रदानेन एवमाह प्रजापतिः । एतदेव तु गौरीणां भोजनं हर शस्यते ॥ १८७ ॥  
सुभगा पुत्रिणी साध्वी धनश्रद्धा समन्विता । सहस्रभोजिनी शम्भोजन्मज्जन्मभविष्यति  
पूपाणि चैव पुण्यानि कृतानि मधुराणि च । द्राक्षारस प्रधानं च गुडखण्ड समन्विता

शारदेन तु धान्येन कृत्वा खण्डं विमिश्रितम् ।

स्त्रीणां चैव तु पेयानि भक्ष्याणि च द्विजन्मनाम् ॥ १८८ ॥

इह चादिकथासांति धर्मायोग्यानि सर्वशः । यानियानि च पेयानि तानि योग्या विशालं  
प्रतिपूज्य विधानेन यमुदानैः सकञ्चकैः । कुङ्कुमेनानुलिप्ताश्च यः स्रग्दामभितस्तस्य  
दत्त्वा तृपान्हावश्चोर्नारिकेलं करेतथा । अक्षयोश्चैवाञ्जनं दत्त्वा सिन्दूरं चैव मल्लो  
गुडं फलानि हृषानि चाञ्जितानि मृदूनि च । हस्ते दत्त्वा सपात्राणि प्रणिपत्य विसर्ज्य  
स्वयं मुञ्जीत ये पश्चात्स बन्धुर्यालकैः सह । अथ यानैव सम्पत्तिस्तीर्थं दानं च भाव्यम्  
गृहे गतः प्रदास्यामि इष्टो देव प्रसाद मे । एवमेव पितृणां च भागत्य स्वोपमन्दिरे ॥ १८९ ॥  
तु धातुं कुर्याद्विधानतः । पितरस्तस्य वै शृता भवन्ति पञ्चगोत्रिण्य



चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ] \* पुष्करादितीर्थे पिबिषदानमहिमा \*

३१७

तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे ददतांशिव । न च पश्यन्ति ये नीचाः श्राद्धं द्विजातिभिः हृतम् ॥  
एकान्ते तु गृहे गुप्ते पितॄणां श्राद्धमिष्यते । नीचदृष्टया हतं तच्च पितॄन्मयोपतिष्ठति ॥  
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं गुप्तं च कारयेत् । पितॄणां वृत्तिर्दं प्रोक्तं स्वयमेव स्वयम्भुवा  
गौरीभक्त्याधिका या तु शस्ता द्वातक्रिया तु सा ।

राजसी मन्त्रसा ज्ञाता जनानां कीर्तिदायिनी ॥ २०६ ॥

गुप्तदानं सदा देवमात्मनो हितमिच्छता । पठान्नं दृश्यतामेति दीयमानं जनैर्भुञ्जि ॥  
दृश्यमानं तु तत्सुष्टयै दृश्यते नेह कर्हिचित् । एकस्मिन्मोजते विप्रे कौटिर्भयतिमोजिता  
भवनेनाप्रसन्देहः सत्यं पौराणिकं वचः । तीर्थे तु ब्राह्मणं नैव परिक्षेत कथञ्चन ॥  
अन्नार्पितमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुष्यवीत् । सक्तुभिः पिण्डदानं च संयाचैः पायसेन वा  
कर्त्तव्यमृषिभिर्द्वष्टं पिण्याकेनेज्जुदेन वा । तिलपिण्याकर्त्तव्यं भक्तिमद्भिर्नरैः सदा ॥ २१४ ॥

श्राद्धं तत्र तु कर्त्तव्यमर्घ्यावाहनपर्यजितम् ।

स्वर्धा तु गृध्राः काका वा नैव दृष्ट्या दृन्ति ते ॥ २१५ ॥

श्राद्धं तत्तैर्धिकं प्रोक्तं पितॄणां वृत्तिर्दं यम् । कर्त्तव्यं तत्प्रयत्नेन भक्तिरेवात्र कारणम् ॥

भक्त्या तुप्यन्ति पितरस्तुष्टाः कामान्दिशन्ति ते ।

पुत्रं पौत्रं धनं धान्यं कामान्यान्मनसेच्छति ॥ २१७ ॥

भक्त्याचाराधितो दद्यात्पुत्रांप्रीतः पितामह । भकालेऽप्यथकाले वा तीर्थे श्राद्धं सदानरैः  
प्राप्तैरेव सदा स्नानं कर्त्तव्यं पितृर्तर्पणम् । पिण्डदानं च कर्त्तव्यं पितॄणां चातिपातमम् ॥  
पितरो हि निरीक्षन्ते गोत्रजं समुपागतम् । भाषया परया युक्ताः काङ्क्षन्तस्तत्त्रिंशत्पते  
यिलभ्यो नैव कर्त्तव्यो नैव विघ्नं समाचरेत् ।

भच्छिन्ना सन्ततिस्तेषां सदा कालं भविष्यति ॥ २२१ ॥

पितरपुत्रदातारो वृद्धिधादामिकाङ्क्षिणः । तेन ते सन्ततिच्छेदं न कुर्यन्ति कर्हिचित्  
नतः श्राद्धं पुरा प्रोक्तं स्वयमेव स्वयम्भुवा । गुणोत्तरं तु यत्कार्यं द्विजेः पितृरापर्जः ॥  
तीर्थे क्षेत्रे गृहे अपि सङ्कान्तां ग्रहणेऽपि वा । पिबुषे भयनेवापि जन्मसौ च प्रसादिते  
तान्ये श्राद्धकालास्तु पुरास्यायम्भुवोऽप्रवीत् । हने श्राद्धेन वै पुंसां पीडनपरिदेदत्रा

तदा पुत्रकृतं चापि सर्वंत्यजति दुष्कृतम् । यथा न भविता पीडां ग्रहचोरनृपादिकान्  
 दुष्कृतं नश्यते सर्वं परत्र च गतिं शुभाम् । लभते नात्र संदेह प्रजापति बभो यथा ।  
 कृतेयुगे पुष्कराणि त्रेतायां नैमिषं स्मृतम् । द्वापरे च कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गां समाधेयम् ।  
 दुष्करः पुष्करे वासो दुष्करं पुष्करे तपः । दुष्करं पुष्करे दानं दुष्करः पुष्करे जपः ।  
 यदन्यत्र कृतं पापं तीर्थे तद्याति लाभचम् । न तीर्थं कृतमन्यत्र क्वचित्पापं व्यपोहति ।  
 सायंप्रातः स्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृताञ्जलिः । उपस्पृष्टं भवेत्तेन सर्वतीर्थेषु भास्त ॥१॥  
 सायम्प्रातरुपस्पृश्य पुष्करे नियतेन्द्रियः । कतून्सर्वानवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति ।  
 द्वादशाब्दं द्वादशाहं मासं मासार्धमेव च । यो वसेत्पुष्करे नित्यं स गच्छेत्परमां गतिम् ।  
 सर्वेषामेव लोकानां ब्रह्मलोकोपरि स्थितः । य इच्छेत्पुष्करं गन्तुं सोऽनुसेवेत्पुष्करम् ।  
 यथा लोम विलोमाभ्यां तथा व्यस्तसमस्तयोः ।

ज्ञातस्तु पुष्करे सम्यक्कोट्याश्च फलमश्नुते ॥ २३५ ॥

विधियतिक्रियमाणेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । पुष्करालोकनादेव नरः प्राप्नोति तत्फलम् ।  
 दशफोटिसहस्राणि तीर्थानां वै महीतले । सात्रिभ्यं पुष्करे तेषां त्रिसन्ध्यं कुर्यात् ।  
 यावत्तिष्ठन्ति गिरयो यावत्तिष्ठन्ति सागराः । तावत्पुष्करं मृत्यूनां ब्रह्मलोकं न संशयः ।  
 जन्मान्तरसहस्रैश्च भाजन्म भरणान्तिकम् । निर्वहेद्दुष्कृतं सर्वं सट्टस्नात्वा तु पुष्करं

पुष्करं दुष्करं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २३६ ॥

पुष्करे वाऽजगन्धं ये प्रपश्यन्ति स्म मानवाः ।

तेऽप्यशेषाघनिर्मुक्ता यान्ति रत्नसलोकताम् ॥ २३७ ॥

तत्रोप्य रजनीमेकां मयस्य सद्ने शुचिः । अम्युभक्षौ वायुभक्षः शिवसायुभयां प्रजे ।  
 अजकर्णे हृदे स्नात्वा दृष्ट्वा माहेभ्वरं पदम् । सुषर्णमोलिमालोष्य किं पुनः पतियते ।  
 एकहंसं कुरुक्षेत्रे गङ्गाभेदं च नैमिषे । पुष्करे तु भजे दृष्ट्वा मुक्तिरेवाविशिष्यते ॥२३८॥

इति धर्मशास्त्रपुराणे प्रथमे सुविसृष्टे ब्रह्मयज्ञवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

## पञ्चत्रिंशोऽध्यायः क्षेमङ्कुरुत्पचिवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

क्षेमङ्करी तु या देवी स्थिता पुष्करपर्वते । तस्या उत्पत्तिमाचक्ष्य परंकोतूहलं हि मे ॥

पुलस्त्य उवाच ।

॥ सा क्षेमङ्करीदेवी सर्वसत्त्वबलोकटा । सात्त्विकी परमाशक्तिःपुष्करं प्राप कारणे  
भूषणब्राम्हणा देवी नीलायतविलोचना । तस्यास्तपन्त्याःकालेन महत्त्वात्कुपितं मनः  
तस्यक्रोधात्समुत्सस्यःकुमार्यस्तौम्यलोचनाः ।

नीलकुञ्चितकेशाभ्या विभ्योष्ठाःपद्मलोचनाः ॥ ४ ॥

तैम्बरशनादामनूपुराढ्याःसुवर्चसः । एवंविधाःस्त्रियो देव्याःश्रुभिते मनसिद्रुतम् ॥  
सहस्रशःसमुत्सस्यःकोटिशोविविधामल्लाः । सुष्टा कुमारीस्तादेवीस्तस्मिन्नेषगिरौशुभाः  
तपसा निर्मितं देव्या पुरमाकाशं महत् । विशालरूपसौवर्णप्राकारेणोपशोभितम् ॥  
अन्तर्जलानि वेश्मानि मणिस्रोपानवन्ति च । रत्नजालमघाक्षणि भासन्नोपयनानि च  
प्राधान्येन प्रवक्ष्यामि कन्यानामानि तैऽनघ ।

विष्णुप्रभा चन्द्रकान्तिस्सूर्यकान्तिस्तथापरा ॥ ५ ॥

गम्भीरा द्वादशेशी च सुकेशी चापि सुन्दरी । नीलकेशी घृताक्षी च उर्वशी शीलमण्डिता  
चाक्षकर्णा विशालाक्षी धन्या पीनपयोधरा । चन्द्रप्रभा गिरिसुता तथा सूर्यप्रभानना  
खयप्रभा चारुमुखो सर्वदूती विभावरी । जया च विजयाक्षी तथा चैषापराजिता ॥  
पताश्रान्याश्च शतशःकन्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे । देव्या अनुचर्यःसर्वाःपद्मादृशधराःशुभाः  
ताभिःपरिवृतादेवी सिद्धासनगता स्थिता । यौवनस्था महाभागा पीनोन्नतपयोधरा ॥  
चम्पकाशोकपुन्नागनागकेशरत्नमभिः । सचामराब्जिता देवी यावदास्ते तपोऽन्यथा ॥  
तावदागतयोस्तत्र नारदो ब्रह्मणःसुतः । तं दृष्ट्वा सहसाऽऽयातं ब्रह्मपुत्रं तपोनिधिम् ॥

विद्युत्प्रभामुवाचेदमासनं दीयतामिति । पाद्यमाचनीयं च क्षिप्रमस्मै प्रदीयताम्  
 एवमुक्ता तदा देवी कन्या विद्युत्प्रभा शुभा । आसनं पाद्यमर्घ्यं च . . .  
 ततःकृतासनं दृष्ट्वा प्रणतं नारदमुनिम् । उवाच घनं देवी हर्षेण महताऽन्विता ॥

देव्युवाच ।

स्वागतं तेमुनिश्रेष्ठकस्माल्लोकादिहगतः । किं कार्यं देवयत्कृत्यं मानःकालात्ययो मने

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्तःसमुनिर्नारदःप्राह लोकचित् ॥ २१ ॥

नारद उवाच ।

ब्रह्मलोकादिन्द्रलोकं तस्माद्द्रौद्रमथाचलम् । इहस्थां त्वां च वैदेवि द्रष्टुमभ्यागतो ह्यम

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा मुनिवरस्तां देवीं सन्निरीक्ष्य च । अहोऽभयमहोर्धैर्यमहोकान्तिप्रदोषण ।  
 अहोनिष्कामता देव्या इतिखेदमुपाययौ । देवगन्धर्वसिद्धानां यक्षकिन्नररक्षसाम् ।  
 न रूपमीदृशं कापि स्त्रीष्वन्यास्विह दृश्यते । एवं सञ्चिन्त्य मनसा नारदोऽस्मिन्नन्विता  
 प्रणम्य देवीं वरदामुत्पपात नभस्तलम् । गतश्च त्वरयायुक्तःपुरीं वैत्येन्द्रपालिताम् ।

महिषाख्येन या भीष्म समुद्रान्तःस्थिता तदा ।

तत्राससाद् भगवान्महिषं दानवाकृतिम् ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा लब्धवरं पीरं देवसेन्यान्तकं महत् । स तेन पूजितो भक्त्या नारदो मुनिपुङ्गव  
 प्रीतारमा नारदस्तस्मै देव्यारूपमनुत्तमम् । भावय्यौ तद्यथान्यायं यद्दृष्टं पुष्करे क्व

नारद उवाच ।

असुरेन्द्र ऋणुष्येकं कन्यारत्नसमन्वितम् ।

येन लब्धेन लब्धं स्यात्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३० ॥

ब्रह्मलोकादहं वैत्य पुष्करारण्यमागतः । तत्र देवी पुरंदरं कुमारीशतसङ्कुलम् ॥ ३१ ॥  
 तत्र प्रधानाया कन्या तापसी प्रतधारिणी । आदेववैत्य यक्षाणां मध्ये काकिन्न द्रष्टुं

तादृशी तु शुभा वैत्य तादृग्ब्रह्माण्डमभ्यतः ।

तादृशी भ्रमता दृष्टा न कदाचिन्मया सतो ॥ ३३ ॥

तस्याश्च देवगन्धर्वाःसिद्धकिन्नरस्वारणाः । उपासाञ्चकिरे सर्वे ये चान्ये देवनायकाः

तां दृष्ट्वा च शुभां देवीं र्त्वां द्रष्टुं समुपागतः ।

भजित्वा देवताःसर्वा न तां लभेत कर्हिचित् ॥ ३५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा क्षणं स्थित्वा तमनुवाप्य नारदः ।

यथागतं ययौ धीमानन्तर्धानेन तत्क्षणात् ॥ ३६ ॥

गते तु नारदे वैत्यश्चिन्तयामासतां शुभम् । श्रुत्वाया नारदमुज्ज्वलात्सृज्यापिस्मितमानसः

तामेव चिन्तयन्नुर्म न लभे इत्यसत्तमः । तत्त्वज्ञानसर्वमन्त्राणां मन्त्रिणःसमुपाह्वयत् ॥

तस्याष्टौ मन्त्रिणो धीरानीतिमन्तो यदुभुताः । प्रघसो विघसश्चैव शङ्कुकर्णो विभाघसुः

विघुमाली सुमाली च पर्जन्योऽकूर एव च । एते मन्त्रिभराः सर्वे प्राधान्येनप्रकीर्तिताः

ते दानवेन्द्रमासाद्य ऊचुःहर्यं विधीयताम् । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रो महायलः ॥

उवाच कन्यालाभाय नारदावाप्तनिश्चयः ॥ ४२ ॥

महिषासुर उवाच ।

मह्यं हि कथितायाला नारदेन सुरर्षिणा । विम्योष्टी चारुसर्पाङ्गी चन्द्रकान्ततरा हि सा

स्तनी च पीनी कठिनी संहती चारुदर्शनी । मृणालकोमली बाहू नयने च तुतारके ॥

गम्भीरा वर्तुला नाभिखिलली शोभनोदय । विस्तोर्णजघना र्चय सुधोणी मृदुगामिनी

कवलीगर्भसङ्काशमूरुपुग्मं च शोभनम् । खरणी सुप्रभौ तस्या धरण्या सुप्रतिष्ठितौ ॥

परोपकारिणा तेन मुनिना भावितात्मना । एवमिधा मे कथिता भूता या वीर्यहारिणी

पुंसां वै धाविते लिङ्गे दृष्टा प्राणहरा हि सा ।

अवश्यं सा मया प्राप्ता युष्माकं सन्निधौ रणे ॥ ४८ ॥

सा पाऽजित्वा सुरान्यक्षयलभ्येत किलाङ्गना । एतदर्थं भवन्तो मे कथयन्तु विनिश्चयम्

कथं सालभ्यते बाला कथं देवाश्च निर्मिताः । भवेयुरिति ते सर्वे मन्त्रिणो दानवेन्द्रस्य

ऊचुःसम्मन्त्रिताःसर्वेकथयामो वयं तव । एवमुक्त्वा वचोऽयोचत्प्रघसो दानवेन्द्रस्य ॥



मसुरेन्द्र सुरैर्मनैस्त्वत्पराक्रममीयितः । साकन्यावश्यतामेति त्वयि शक्त्यमागते ॥  
 लोकपालैर्जितैः सर्वैस्तथैव मरुतांगणैः । नागैर्विद्याधरैः सिद्धैर्गन्धर्वैः सर्वतो जितैः ॥६॥  
 खदैर्बभ्रुमिरादित्यैस्तपमेवेन्द्रो भविष्यसि । इन्द्रस्य ते सतः कन्या देवगन्धर्वपांशितः ॥  
 पसमेपागमिष्यन्ति सर्वदा भयर्पादिताः ॥ ३० ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तस्तदा दैत्यः सेनापतिमुवाच ह । विकृपाक्षं महामेघं नीलाञ्जनसमप्रभम् ॥३१॥  
 महिषासुर उवाच ।

भानीयतां द्रुतसैन्यं हस्त्यश्परथपत्तिम् । येन देवांश्च गन्धर्वाञ्च वामो युधि दुर्जवान्  
 पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तो विकृपाक्षस्तं गृहीत्वा समूर्धनि । उवाच तं दानवेन्द्रं प्रजिपाय प्रशम्य च ॥  
 विकृपाक्ष उवाच ।

अपि रोधेन देवानां तिष्ठताञ्जघ्नतं समाः । जीवद्भिः प्राप्यते राज्यं भोगान्मोक्षं धनानि च  
 तमरथा न विरोधं सुरैर्गच्छ मदागुते । प्रदद्यात् ते परोक्षस्त्वज्रेण स्वयं द्विषीकमाम्  
 अनेनैव परेण त्वं स्वस्थाने तिष्ठ ये सुखम् । देवानां दानवानां च वन्याया कर्ताऽपि वाः  
 पतिस्तासां दानवेन्द्र सपेकर्तास्मि ते पचः । अक्षोपस्वर्धने सोमो जेतुं ह्येन वनेन च  
 तेषां प्रधानभूतानां कोटयस्त्वर्षद्वानि च । देवां स्ववत्प्रमाणांश्च शक्योऽप्युपाधिषम्  
 तेषां दैत्यसहस्राणि दानवानां महारमनाम् । संमत्तं चक्षुरव्यमास्मद् दैवा प्रहाणिः  
 प्रयाणं रोचयामास देवभ्यस्त्रिषोऽसया ॥ ३६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततो महिषदैत्यस्तु कामरूपी महावक्त्रः । मत्तं मार्गं समाकृष्टो विद्यागुम्फपंथम् ॥८॥  
 तमेन्द्रपुष्पासाय देवैः सह शक्त्यनुम् । अमिदुद्राह दैत्यैः दुष्टभ्यो देवाञ्जुपादिष्वथ ॥  
 शितान्याशय शस्त्राणि पादवानि विद्योषतः । अधिष्ठाय सुगन्धर्वो दृढदंष्ट्रिण्य भूतम्  
 तेषां प्रपन्नैः मुख्यं महतां भीमविक्रमम् । पौरं प्रवृज्य पोषावत्कन्योऽप्यमनि यजेन्मृ ॥  
 तत्राञ्जनो नीलदुर्हिर्मपयर्षो वक्रहस्तः । उदगधो अरुणधो महाधो भृशदिवजः ॥

स्वर्मानुर्वसुरष्टौघः सर्वे दुद्रुबुराहवे ॥ ८५ ॥

यथासङ्ख्येन तद्वच्च दैत्याद्वादशचापरे । आदित्यान्दैत्यसङ्घास्ते तेषां प्राधान्यतः  
भीमाक्षो गजकर्णश्च शङ्खकर्णस्तथैव च । रक्षाक्षो भीमदंष्ट्रश्च विद्युज्जिह्वस्तथैव च ।  
अतिकायो महाकायो दीर्घबाहुः कृतान्तदृष्टः । एतेद्वादशदैत्येन्द्रा आदित्यानभिदुद्रुः ।  
स्वं स्वं यलमुपादाय तद्वदग्रेऽपि दानयाः । यथासङ्ख्येन रुद्रास्तु दुद्रुबुर्भीमचित्रमा ।  
शेषान्देवाज्जेषदैत्या यथायोग्यमुपाव्रजन् । स्वयं महिषदैत्यस्तु इन्द्रदुद्राश्च वेगताः ।  
स चातिबलवान्दैत्यो ब्रह्मणो परदर्पितः । अवध्यः पुरुषेणाज्ञो यद्यपि स्यात्पिताकपुः ।  
आदित्यैवं सुभिः सर्वै र्वैश्चापि महद्भृशम् । असुरा यानुधानाश्च सङ्ख्याः पूरणकेशाः ।  
देवानामपि सैन्यानि निहतान्यसुरैर्युधि । एषम्भूते तदाभग्नं देवेन्द्रे विद्रुताः सुराः ॥ १ ॥  
अर्दिता विविधैः शस्त्रैः शूलपट्टिशमुद्गरैः । गतवन्ती ब्रह्मलोकमसुरैरर्दिताः सुराः ॥ ४ ॥

अथ विद्युत्प्रभो दैत्यस्तदा दूतो विसर्जितः ।

देव्याः सकाशं गम्या तु उवाच तनुमध्यमाम् ॥ ८५ ॥

प्रणम्य प्रणतो भूषा कुमारीशतसङ्कुलाम् । आस्थाने पितृवायसस्तथा वचनमब्रवीत् ।  
देवि पूर्यमृषिस्त्वासीददिसर्गेषु सम्भवः । संघटस्य ताज्जातः सुपादयो नाम वै भुवि ।  
तस्यामप्यमहातेजाः सिन्धुद्वीपः प्रतापवान् ।

स हि तीर्थं तपस्तेपे माहिष्मत्यां सुरोत्तमे । ॥ ८६ ॥

कुर्यन्निष्ठतस्तपो घोरं निराहारस्तपशोभने । दैत्यस्य विप्रवित्तेस्तु सुता सुरसुतोऽप्य ।  
माहिष्मतीति विख्याता रूपेणासद्गताभुवि । सखीभिः सा परिवृता विराहती पट्टस्य च ।  
आगता मन्दरत्रोणीं तथापश्यत्तपोपनम् । मुनेरम्बरसंसक्तविधिधद्रुममालिकम् ॥ १ ॥  
रतागृहेः सुविहितैर्वकुलेराप्रतिन्दुकैः । चन्दनैर्दरैः शालैः सरलेषु पशोर्मितम् ॥ २ ॥  
पिचित्रपतखण्डैश्च भूषितं कमहात्मभिः । दृष्टोत्तमं वनं रम्यमासुरो जगद्विक्रमा ।

माहिष्मतीं वराहोहा चिन्तयामास माग्निनो ।

भोगयित्वाऽहमेतांस्तु तापसानाधमे स्वाम् ॥ १०४ ॥

इति सार्धं सखीभिः परमाविद्या । यथैवं कल्प्य सा देवी महिषी सम्यग्भूता ।



महिषीभिः सहस्रयामिभ्योऽर्चयन्तु द्वाप्रधारिणी ।

तद्विधिं भीषन्तु तामिर्महानाहं ननाह सा ॥ १०६ ॥

भर्ता व भीषितस्त्राभिस्तां द्वाप्या दानचतुषा ।

भातुरी कोपयन्मनः शताह व सुलोचनाम् ॥ १०७ ॥

एवमुक्त्वा तदा सा तु सर्षाभिः सह वेष्टता । वादयोऽप्यनस्य शापान्तं कुरु जायती ॥

तस्यान्तश्चनं धृत्वा स मुनिः कथयान्वितः । शापान्तमकरोत्तस्या पाप्मं खेदमुपाचह

मुनिरुपाच ।

अनेनैव त्वं कथं पुनश्च प्रगृह्यसे । शापान्तो भविता भद्रे मद्भाष्यं न मृषा भवेत् ॥

पुनस्तथ उवाच ।

एवमुक्त्वा गता सा तु भवंशतीत्युत्तमम् ।

यत्र तंवे तपो घोरं तिस्र्युदीयः प्रतापवान् ॥ ११२ ॥

तत्रपिपुग्मती नाम देत्यकपाऽतिकविणी । सा दृष्टा तं न मुनिता पिपस्त्रा मज्जती जले

यस्कन्द व मुनिः द्रुकं शिलाद्रोण्यां महातपाः ।

तद्य माहिष्मती दृष्टा दिव्यगन्धिं सुगन्धिं च ॥ ११४ ॥

निद्रां सर्षामुपाचेद् पिषामि च जलं शुभम् ।

एवमुक्त्वा तु सा पीप्या तद्वद्रुकं मुनिसम्भवम् ॥ ११५ ॥

प्राय तमे मुनेर्वीर्याद्वरसदं जटरे भूभम् । तस्याः पुत्रोऽभवच्छ्रीमान्महायलपराक्रमः ॥

महिषेति स्मृतो नाम्ना प्रह्वयंशपिक्वर्णः । सुराणामपहृताजो ब्रैलोक्यं सम्मतोऽनये

भागव्य दास्यते सुभ्रं तव देवि महासुरः । तस्यात्मनः प्रदानेन कुरु देवि महत्कृतम् ॥

भारमना स्वयमात्मानं शोचमाना सुखी भव ॥ ११८ ॥

पृथार्थं योषनं प्राप्ता पीनी चमोपयोधरो । यदि तस्याद्गुलंलक्ष्मीं सफलं जीवितंभवेत्

भयत्या न तु सम्भेदः प्राप्तं ये जन्मनःफलम् । मां क्लेशय वृथा देवि यपभेदंसपीचनम्

समाप्या भव सुधोषि पतिं प्राप्नुहि दानचम् ।

स्वर्भानुर्वसुरष्टौघः सर्वे बुद्धयराहवे ॥ ८५ ॥

यथासङ्ख्येन तद्व्ययं देव्याद्वादशचापरे । आदित्यान्दैत्यसङ्ख्यास्ते तेषां प्राधान्यं  
भीमाक्षो गजकर्णश्च शङ्खकर्णस्तथैव च । रक्ताक्षो भीमवृद्धश्च विष्णुर्जिह्वस्त्वयं  
भक्तिकायो महाकायो दीर्घबाहुः कृतान्तकृत् । एतेद्वादशदैत्येन्द्रा आदित्यानभिर्दुष्ट-  
स्यं स्यं यत्प्रमुपादाय तद्व्ययंऽपि दानयाः । यथासङ्ख्येन यत्रास्तु बुद्धयुक्तो मणिर्द्वय-  
शेषान्देवाश्चोपरदेव्या यथायोग्यमुपाद्रवन् । स्वयं महिषदैत्यस्तु हर्षदुःशाप देव-  
स चातियत्प्रान्देत्यो द्रक्ष्यन्तो परवर्षितः । अयध्यः पुरुषेणात्री यद्यपि सारिपना-  
आदित्यैर्वंस्तुभिः सर्वै र्यदेवापि महद्भृशम् । भमुरा यातुधानाश्च सङ्ख्या पूर्यन्ते  
देवानामपि सैन्यानि निहतान्यसुरैर्वृण्धि । एवम्भूतं तद्वाग्ने देवैर्द्वे विदुताः सुग-  
भर्दिना विविधैः शस्त्रैः शूलपादशमुद्रैः । गतपन्थो द्रक्ष्यलोकमसुरैर्दिनाः सुग- ॥

अथ विपुलप्रभो देव्यस्तुता नूनो विसर्जितः ।

देव्याः सकलां गङ्गां तु उपास्य तनुमभ्यसाम् ॥ ६५ ॥

देवि पूर्वमृनिस्त्वासीदादित्योऽपु सामयः । संवत्सरायताम्रतः सुपास्यां ताम वै ॥  
तस्यामयमन्त्रान्त्रः सिन्धुवीरः प्रतापवान् ।

स हि ताम्रं लक्ष्मणे माद्विषम्यां सुरांशने । ॥ १८ ॥

कुर्वन्मिच्छन्त्यस्यो पारं निरुहायस्त्वयोनवे । देवस्य विप्रविभक्तु सुता सुभृती ॥  
 माद्विप्रस्यति विख्यात इवेवासदृशानृषि । सध्याति सा पतिव्या विप्रस्यति ॥  
 अथा मन्त्रद्वारा तद्व्यासकालीनम् । मुनेभ्यस्तत्त्वतः कविभिश्च नृपमार्तिनम् ॥  
 तदागृहे सुविशिष्टं कुर्वन्मिच्छन्त्यस्य । कश्चेन्नरे स्यात्तः स्यात्तः स्यात्तः ॥  
 विविधकालेषु नृषि कश्चेन्नरे स्यात्तः । इति भाष्यं कश्चेन्नरे स्यात्तः ॥

ସମସ୍ତଙ୍କ ସମ୍ମୁଖରେ ଶୁଭାଶୀର୍ବାଦ ପାଇଁ ଧନ୍ୟବାଦ ।

*(Signature)*

1. The first part of the document is a list of names and titles, including "The Hon. Mr. Justice" and "The Hon. Mr. Justice".

महिषीभिः सहस्राभ्यामिभ्योऽर्धेष्टाऽष्टाप्रधारिणी ।

अमुषि भीषिन् ताभिर्महानार्त्तं ननाह सा ॥ १०६ ॥

भर्ता च भीषिन्म्यामिन्नी ध्याया ध्यानचक्षुषा ।

धातुर्गो कोपममन्त्रः शप्ताह च तुलोन्नयम् ॥ १०७ ॥

तत्तादोऽपरे मां त्वं महिषी कथधारिणी । भर्ता भव महिष्येव पापकर्म शतं समा

पमुञ्च तदा सा तु सधोभिः सह धेयता । पादपोषणतस्य शाश्वतं कुरु जल्पती ॥

॥ गान्धर्वन धृष्टा सा मुनिः कद्वान्वितः । शाश्वतमकरोत्तस्या पाप्यं चेदमुपाचह

मुनिदयाच ।

नेनेव तु रूपेण पुनर्ममं प्रगृह्ये । शाश्वतो भविता भद्रे मद्यप्यं न मृया भवेत् ॥

पुनरुच्य उवाच ।

पपमुञ्च गता सा तु सर्वदातोऽमुत्तमम् ।

यत्र तेषे तपो पादं सिन्धुदीपः प्रतापवान् ॥ ११२ ॥

वपिपुमर्त्री माम् दैत्यकथाऽतिदुषिणी । सा दृष्टा तेन मुनिना विपश्चा मञ्जती जले

घस्काद् च मुनिः शुक्रं शिखादोऽप्यं महातपः ।

तद्य माहिष्मती दृष्टा दिव्यगन्धि सुगन्धि च ॥ ११४ ॥

निर्वा तर्पामुपाचेद् विषामि च जलं शुभम् ।

पपमुनया तु सा पीतया तदुक्तं मुनिसम्पदम् ॥ ११५ ॥

प्राप गर्भं मुनेर्वीर्याद्वरसदं जठरे शुभम् । तस्याः पुत्रोऽभवच्छ्रीमात्महायलपराक्रमः ॥

महिषेति स्मृतो नाम्ना प्रक्षयशधिकर्षणः । सुराणामपहृत्वाजौ त्रैलोक्यं सम्मतोऽनये

भागव्य दास्यते पुत्रं तप देवि महासुतः । तस्यात्मनः प्रदानेन कुरु देवि महत्कृतम् ॥

भारतना स्वपमात्मानं शोचमाना सुप्री भव ॥ ११८ ॥

पृथार्थं योषनं प्राप्ता पीनो चेमोपयोधते । यदि तस्याङ्गसंलक्षो सफलं जीवितं भवेत्

भयत्या न ॥ सन्नेहः प्राप्तं वै जन्मनःफलम् । मां क्लेशाय वृष्टा देवि वयश्चेदंसयोधनम्

समाप्या भव सुभोषि पतिं प्राप्नुहि दानवम् ।

किमनेन तु वक्त्रेण यन्मुखे तस्य नाप्यते ॥ १२१ ॥

सुधारसस्याभ्यधिकमास्वादं लभ शोभनम् । एवमुक्ता तदा देवी तेन दूतेन शोभना ।

जहास परमा देवी पाचं नोपाच किञ्चना ॥ १२२ ॥

तस्या हसन्त्याः सहितं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

ददर्श कुक्षौ सम्भ्रान्तः तत्क्षणात्समपद्यत ॥ १२३ ॥

ततोदेव्याः प्रतीहारी जया नामासितेक्षणा । देव्या हृदि स्थितं धान्यमुपाचतनुमध्यमा  
कन्यार्थं यस्यद्या दूत वचनं समुदोरितम् । इदं नाम व्रतं यास्याः कौमारं सार्धकालिकम्

अन्या अपि कुमार्योऽत्र सन्ति देव्याः पदानुगाः ।

तासामेकापि नो लभ्या किमु देवी स्वयं शुभा ॥ १२६ ॥

या हि दूतत्परायांस्त्वं किञ्चिदन्यद्विष्यति ।

एवमुक्तस्ततो दूतस्तावद्वयोग्निं महामुनिः ॥ १२७ ॥

आयातो नारदस्तूर्णमेतदूचे महातपाः । देवि देवैरहं प्रीत्या प्रेषितोऽस्मि तवान्तिकम्

देवाः सर्वे जिता मेरुं विहाय ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥ १२८ ॥

पिगता देवि दैत्येन महिषाक्षयेन निर्जिताः ॥ १२९ ॥

त्वां प्रहीतुं हि यत्नं स वृत्तयान्देवि दैत्यराट् । एवमुक्तासि देवि त्वं योध्यस्वपरात्ने

स्थिरीभूत्वा महादेवि तं दैत्यं प्रतिधातय ।

उत्तवैषान्तर्हितः सद्यो नारदः स्वेच्छया ययौ ॥ १३१ ॥

देवी च कन्याकोट्यस्ताः सन्नहन्तामुपाच ह ।

ततः कन्या महाभागाः सर्वास्ता देवि शासनात् ॥ १३२ ॥

यभ्युपारंरूपिण्यः खड्गचर्मघनुर्धराः । सङ्ग्रामदेतोः सन्तस्थुः सैन्यधिष्वसनाय वै ॥

तथ देवयत्नं त्यक्त्वा सा वै दैत्यचमूर्द्धतम् । आगता यत्र सा देवी संनद्धलीयत् महत्  
ततस्ता युयुधुः कन्या दानवैः सह दर्पिताः । क्षणेन तदुपलं ताभिश्चतुरङ्गं निपातितम्

शिरांसि तत्र केगञ्चिच्छिन्नानि पतितानि च ।

रतरेषां विदार्यागु कन्यायाः शोषितं पशुः ॥ १३६ ॥

अन्ये कपन्धभूनास्तु ननृतुस्तत्र दानवाः । एवं क्षणेन ते सर्वे विध्वस्ताः पापचेतसः ॥  
अपरे पिबुताः सर्वे यत्रासौ महिषासुरः । ततो हाहाकृतसर्वतदा दैत्यबलं महत् ॥  
एवं तदा कुलं दृष्ट्वा महिषो घाक्चमयवीत् । सेनापते किमेतद्धि बलं भग्नं ममाग्रतः ॥  
ततो यमहतो नाम दैत्यो हस्तिस्वरूपवान् । उघाध हतमेतद्धि कुमारीभिः समन्ततः ॥  
भवानपूर्यकन्यार्थो कथितं नारदेन ते । तथा हतमिदं सत्यं मये त्वां तु हनिष्यति ॥  
ततो दुद्राघ महिषस्तो कन्यां शुभलोचनाम् । गदामुसलहस्तश्च कन्यां दुद्राघ तां बलात्  
यत्र तिष्ठति सा देवी देवगन्धर्वपूजिता । तत्र पत्नोऽसुरः प्राप यत्र देवी व्यवस्थिता  
सा ॥ दृष्ट्वा तमायान्तं विशत्पाणिर्यभूच ह । धनुः खड्गं तथा शक्तिः शरःशूलं तथागदा  
सहस्रारं तथा चक्रं मुसलं भिण्डिपालकम् ।

परशुर्मकरचैव तथा घण्टा विशालिनी ॥ १४५ ॥

शतघ्नी मुद्गरो घोरो भुशुण्डी कुन्तमेघ च । हण्डपाशौ ध्वजश्चैव पद्मं चेतीहविंशतिः  
भूत्वा विशुजा देवी सिंहमास्थाय दंशिता । सस्मार रुद्रं देवेशं रौद्रं संहारकारिणम्  
ततो वृषध्वजः साक्षाद्बुद्धस्तत्रैव संवधी । तथा प्रणम्य विहसतः सर्वान्दैत्याञ्जयाम्यहम्  
त्वयि सन्निहिते देवे विष्णीवापि परमत्प । युष्मत्सन्निधिमात्रे तु पश्य देव सनातन  
एवमुक्त्वाऽसुरान्सर्वाङ्घ्रिघातुः परमेश्वरी ।

मुक्त्वा तमेकं महिषं वधार्थं सा तमभ्यगात् ॥ १५० ॥

तथा देवी ततः सोऽपि दृष्ट्वा दुद्राघ चेभ्वरीम् ।

कचियुध्यति दैत्येन्द्रः कचिन्मैव पलायते ॥ १५१ ॥

कचित्पुनर्भृशं चक्रे कचित्पुनरुपागमत् । एवं वर्षसहस्राणि दश तस्य तथा सह ॥ १५२ ॥

दैव्या विनिर्गतानि स्युर्युध्यतस्तस्य शोभने ।

वभ्राम सकलन्तवाजीं ब्रह्माण्डं भीतमानसम् ॥ १५३ ॥

ततः कालेन महता शतशृङ्गे महागिरौ । दैत्येश्वरं च तं दृष्ट्वा देवी पचनमग्रवीत् ॥

रूपलोभात्त्वया नीच दूतो योऽसौ ममान्तिकम् ।

प्रेपितो यत्त्वया तस्य सन्दिग्धं तद्गदस्व मे ॥ १५५ ॥

न मया तच्छ्रुत्पूर्वमिदानीं त्वन्मुखात्पुनः ।

धोतुमिच्छामि तद्वाक्यं भवाननुमधिष्यति ॥ १५६ ॥

पद्मभ्यामाक्रम्य शूलेन निहतोदैत्यसत्तमः । छिन्ने शिरसि खड्गेन तत्कण्ठादुत्थितः पुनः

रौद्रोऽपि सगतः स्वर्गं देव्या शस्त्रनिपातितः ॥ १५७ ॥

ततो देवगणाः सर्वे महिषं वीक्ष्य निर्जितम् । सेन्द्राद्यास्तु स्तुतिं च कुर्वन्त्यास्तुष्टेन वेतस  
देवा ऊचुः ।

नमो देवि महाभागे गम्भीरे भीमदर्शने । नयस्थे स्थितिसिद्धांते त्रिनेत्रे विभ्यतो मूर्ति  
विद्याविद्ये जपे जाप्ये महिषासुरमर्दिनि । सर्वगो सर्वविदेशि विभ्यद्विषि वैष्णवि ।  
धीतशोके ध्रुवे देवि पद्मपद्मायतेक्षणे । शुद्धसत्त्वव्रतस्थे च चण्डरूपे विभाचरी ॥ १५८ ॥

ऋद्धिसिद्धिमदे देवि सर्वसत्त्वमये ध्रुवे । विद्या पुराणशिख्यानां जननि भूतधारिणि ।  
सर्वदेवहृदयानां सर्वसत्त्वपतां शुभे । नमोऽस्तु ते महादेवि नमोऽस्तु परमेश्वरि ।

नमोऽस्तु सर्वभूतानां मातर्निस्थेऽक्षयेऽव्यये । न तेषां जायते किञ्चिद्गुणं रणसङ्कटे ।  
ये तु व्याघ्रमये घोरे वीरराजमये तथा । सर्वभूताभया देवी क्षेम्याक्षेमङ्करीति च ॥

विभाचरी भाचरी च सर्वशक्तिकरी तथा । सर्वासां भगवान्मह्यः सर्वगत्यात्पतिः स्मृतः  
यायत्यस्तु महाशक्त्यस्तावद्गुपस्तु शङ्करः ।

निगङ्गस्योऽपि यो देवि त्वां स्मरिष्यति मानवः ।

सोऽपि यन्धात्रमुच्येत स सुखं वसते सुखी ॥ १५९ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवं स्तुता सुरैर्वीची प्रणिपातपुरस्कृता । उवाच देवो सुधोनी वृणुष्वं वरमुत्तमम् ।  
देवा ऊचुः ।

देवि पुष्करसंस्थां त्वां स्तुवन्त्यनेन भक्तिः । ते सर्वकामसम्पन्ना भवन्तु पर परा  
पुलस्त्य उवाच ।

एवमस्ति त्विदं तान् देवानुवक्ष्या देवी परायणम् । विसर्जयिष्यामि त्वां देवी त्वयंतत्रैव संस्थित  
यः शृणुते जन्म देव्याः कुरुकुलोद्भव । सदा संयेत विरज इदं प्रजोत्पन्नामयम् ।

यः क्षेमङ्करीवृत्तान्तं प्रह्लादशक्तिसमुद्भवम् । स पुत्रपौत्रपशुमान्समृद्धिमुपगच्छति ॥ १७२ ॥

यश्चेद् शृणुयाद्वक्त्या देवीस्तोत्रमनुत्तमम् । सर्वबाधाविनिर्मुक्तं पदं निर्वाणमृच्छति ॥

य एतां देवै देव्या उत्पत्तिं त्रिभिधां स्थिताम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं निर्वाणमृच्छति ॥ १७३ ॥

स्रष्टराज्यपदो राजा सप्तम्यां नियतः शुचिः । भट्टम्यां च नयम्यां च उपवासी नरोत्तम

संघटसरेण लभने राज्यं निष्कण्टकं नृपः । या सा त्रिवेदसम्भूता वेदशक्तिः परावरा ॥

एषा ह्यनारिमका सर्वा सारिधकी प्रह्लासंहिता ।

एषैव रक्ता राजसी वैष्णवी परिकीर्तिता ॥ १७७ ॥

एषैव कृष्णा तामसी रौद्री देवी प्रकीर्तिता । परमात्मा यथा देव एक एव त्रिधा स्थितः

मपरा च परा चैव तथैवान्या परावरा । त्रिधा व्यवस्थिता शक्तिरेकैका त्रिविधा भवेत्

एषं शृणुयात्सर्वं क्षेम्यायाः परमं शिवम् । सर्वपापविनिर्मुक्तं पदं निर्वाणमाप्नुयात्

यश्चेत् पठने भक्त्या नयम्यां नियतः शुचिः । सराज्यापर्यवहारेण भवेन्न्यः परिमुच्यते

यत्रैवं लिखिता गेहे सदा तिष्ठति धारिता । न तत्राग्निभयं घोरं चौर्यसर्पादिकं नृप ॥

यश्चेत्तत्पूजयेद्भक्त्या पुस्तके लिखितं बुधः । तेन घेष्टं भवेत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

जायन्ते पशवः पुत्रास्तथा धान्यं वरस्त्रियः ।

रत्नाग्नश्चा गजा भूत्या ग्रामाश्चाशु भवन्त्युत ॥ १८४ ॥

यस्येदं तिष्ठते गेहे तस्याप्येतद् धुवं भवेत् । एतदेव रहस्यं मे कीर्तितं नृपसत्तम ॥

क्षेमङ्करीभवं ते तु सर्वक्षेमङ्करं शुभम् । क्षेम्या क्षेमङ्करी देवी सर्वेषां भयनाशिनी ॥

वदस्य खलु माहात्म्यं देवीनां सम्भवस्थथा ।

नवकोट्यस्तु चामुण्डा भेदभिन्ना व्यवस्थिताः ॥ १८७ ॥

या रौद्री तामसी शक्तिः सा चामुण्डा प्रकीर्तिता ।

भटादरा तथा कोट्यो वैष्णव्या भेद उच्यते ॥ १८८ ॥

या सा तु राजसी शक्तिः पालने चैव वैष्णवी ।

या ब्राह्मी शक्तिः सत्त्वस्था सा चानन्ता प्रकीर्तिता ॥ १८९ ॥

क्षेमदुर्या न सङ्ख्या तु प्राद्वी शक्तिः परावरा ।

ब्रह्माणी सा भुवि ज्ञेया सृष्टिरूपा जगत्स्थिता ॥ १६० ॥

एतासां सर्वभेदेषु पृथगेकैकशोभनाः । सर्वासां भगवान्स्त्रः सर्वगतवात्पतिः स्मृतः ।  
यायत्यस्ता महाशक्त्यस्तापद्गुपाणि शङ्करः । कृत्तिवासास्तु भजते पतिरूपेण सर्वदा ।

यश्चाराधयते तास्तु तस्य स्त्रोऽपि तुष्यति ।

सिध्यन्ते तास्तदा देव्यो मन्त्रिणो नात्र संशयः ॥ १६३ ॥

इति श्री पद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे क्षेमदुर्युत्पत्तिर्नाम पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

## पट्त्रिंशोऽध्यायः

वैष्णवीचामुण्डारूपस्त्रशक्तिविहितदैत्यवधवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

या सम्भूता शरीरात्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।

गायत्र्यष्टभुजा भूत्वा ख्याता विशभुजा तथा ॥ १ ॥

सैव खान्याभयहेयी देवकार्यत्तिकीर्पया । महिषाख्यासुखधनं कुर्वती ब्रह्मणो रता ॥ २ ॥  
वैष्णव्या निहतो दैत्यः कतमो यो महाबलः । चामुण्डया स्त्रशक्त्या कतमो हानवोदृढ

पुलस्त्य उवाच ।

इदं जगत्स्थितं भीष्म गङ्गा सिकतसङ्ख्यया । यत्किञ्चिद्वधते वृत्तं तत्सर्वं येन सर्वविद्

स्वायम्भुषो हतो दैत्यो वैष्णव्या मन्दरे गिरौ ।

महिषाख्योऽभिप्राप्यश्च स च वैधस्यते पुनः ॥ ५ ॥

पिण्ड्ये महाबलपराक्रमः । अथवा हानशक्तिश्च महिषोऽज्ञानमूर्तिमान् ।

तु भयतोह न संशयः । मूर्तिपक्षे चेतिहासो मन्मूर्तिः स्येनवाध्यत ।

ख्याप्यते वेदपादैस्तु महन्तेर्येदपादिभिः ॥ ८ ॥



इदानीं शृणु मे राजन्पञ्चपातकनाशनम् । यजनं देवदेवस्य ब्रह्मपुत्र वसुप्रदम् ॥ १० ॥

इह जन्मनि दारिद्र्यव्याधिकुष्ठादिपीडितः ।

अलक्ष्मीघानपुत्रस्तु यो मयेत्पुरुषो भुवि ॥ १० ॥

तस्य सद्यो भवेद्दक्ष्मीरायुः पूर्णं सुतास्तुल्यम् ।

कृत्वा तु मण्डलगतं लोकपालसमन्वितम् ॥ ११ ॥

ब्रह्माणं तु परं देवं यः पश्यति विधानतः । पूजितं नवनामेन मन्त्रमूर्तिमयोनिजम् ॥

कार्तिके मासि शुक्लायां पौर्णमास्यां विशेषतः । सर्वासु पायजेदेवं पूर्णिमासु विधानतः

सङ्क्रान्तौ च महाबाहो चन्द्रसूर्यमहेऽपिवा । यः पश्यति क्षिप्तं देवं पूजितं गुरुणा नृप ॥

तस्य सद्यो भवेत्सुष्टिः पापार्थ्यसञ्च जायते । स मान्यो देवतानां च भवतीह नराधिप ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां भक्तानां तु परीक्षणम् । संवत्सरं गुरुः कुर्याज्जातिशौचक्रियादिभिः

उपपन्नमिति ह्यात्वा हृदयेनावधारयेत् । तेऽपि भक्तियुता ध्यात्वा त्वाचार्यं परमेश्वरम्

संवत्सरं गुरौ भक्तिं कुर्युर्विष्णो यथा तथा । प्रसादयेयुश्च ततः पूर्णं संवत्सरं गुरुम् ॥

भगवन्त्यत्प्रसादेन संसारार्णवतारणम् । परब्रह्मोपासनेन विरिञ्च्याराधनेन च ॥ १६ ॥

सहस्रशीर्षजप्येन मण्डलब्राह्मणेन च । ध्यानेन स्थातृधास्माकमुपदेशः प्रदीयताम् ॥ २० ॥

इच्छामो वैदिकीं लक्ष्मीं विशेषेण प्रसादयताम् ।

अभ्यर्षितो गुरुस्त्वैव मेधाघो तैस्तदा ततः ॥ २१ ॥

यथाविधि सप्रभ्यर्चं ब्रह्माणं विष्णुमग्रतः ।

ते बद्धनेत्राः स्थाप्यास्तु कार्तिकस्य चतुर्दशीम् ॥ २२ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते चौरथाय वस्त्रपद्यासनास्तु ते । ध्यात्वा गुरुं सहस्रारे श्वेतपद्मोपवीतकम्

श्वेतमात्म्याम्बरधरं श्वेतगन्धानुलेपनम् । निर्गम्य च बहिन्यां ययुर्नित्यमतन्द्रिताः ॥

क्षीरवृक्षोत्थमाचार्या दापयेदन्तधावनम् । ते च तं भक्षयेयुर्हि नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥

इतच्छा सटाकं वा गृहे चापि विधानतः । तद्भक्षयेयुर्मन्त्रेण मन्त्रितं परमेश्विनः ॥ २६ ॥

आपोहिष्ठेति मन्त्रेण सप्तशृङ्गोऽभिमन्त्रितम् ।

देवस्य त्वेति वै जप्त्वा युञ्जानेति करे न्यसेत् ॥ २७ ॥



ईशानं पश्चिमे स्थाप्यतत्पुरुषं चोत्तरे तथा । मधोरस्सर्वतः पूज्य एषा पूजा तु मण्डले  
 पूर्वतो भास्करं पूज्य दक्षिणेन दिपाकरम् । प्रभाकरं पश्चिमे तु ग्रहराजमथोत्तरे ॥४८॥  
 एवं पूज्य विधानेन प्रह्वारणं परमेभ्यम् । दिङ्मण्डले तु विन्यस्य अष्टौ कुम्भान्विधानतः  
 ग्राह्यं तु कलत्रं मध्ये नवमं तत्र कल्पयेत् । स्नापयेन्मुक्तिकामं तु ग्रहणो वै घटेन तु ॥  
 धीकामं यैष्णवेनेह कलशेन तु पार्थिव । राज्यार्चिनं स्नापयेच्च ऐन्द्रेण कलशेन च ॥  
 द्रव्यप्रतापकामं ॥ भान्नेयघटघारिणा । मृत्युञ्जयविधानाय याम्येन स्नापयेन्नरम् ॥५२॥  
 दुष्टप्रध्वंसनायालं नैऋतेन विधीयते । स्नापयेद्वाङ्मोनाशु पापनाशाय मानवम् ॥५३॥  
 शरीरारोग्यकामं तु पायज्येनाभिषेचयेत् । द्रव्यसम्पत्तिकामस्य कौबेरेण विधीयते ॥  
 रौद्रेण ज्ञानकामस्य लोकपालघटास्तिघमे । एकैकेन नरः स्नात्वा सर्वदोषविषर्जितः ॥  
 जायते ब्रह्मसदृशो राजा सघोऽधवा नरः । अथवा दिक्षु सर्वास्तु यथा सङ्ख्येन लोकपान्

पूजयेत्तु स्थनाम्ना तु कुम्भरेष विधानतः ।

एवं सम्पूज्य देवास्तु लोकपालान्प्रसन्नधीः ॥ ५७ ॥

पश्चात्परीक्षिताग्निप्याग्निकदनेशान्प्रवेशयेत् ।

दध्याग्नेध्या धारणया वायुना विष्णुनेक्षतः ॥ ५८ ॥

सोमेनाप्यापितान्दृष्ट्वा भाषयेत्समयास्ततः ।

न मिन्याद्ब्राह्मणान्देवान्विष्णुं ब्राह्मणमेव च ॥ ५९ ॥

इन्द्रमादित्यमग्निं च लोकपालान्ब्रह्मास्तथा । गुरुं च ब्राह्मणं चापि मुनीन्द्रं पूर्वदीक्षितम्

एवं तु समयाभ्यास्य पश्चाद्वोमं तु कारयेत् ।

उक्तमा भगवतेब्रह्मणे सर्वरूपिणे हुं फट् स्वाहा ॥ ६१ ॥

षोडशाक्षरमन्त्रेण होमयेज्ज्वलितेऽनले । गर्माधानादिकारस्सर्वा आहुतीस्सम्प्रदापयेत्

तिसृमिस्तु व्याहृतिभिर्दक्षदेवस्य सन्निधौ । होमान्ते दीक्षितः पश्चादापयेद्गुरुदक्षिणाम्

इत्यश्वयानशकटहोमधान्यादिकं नृप । दापयेद्गुरुवे प्राञ्चो मध्यमे मध्यमं तथा ॥६४॥

दापयेदपरे युग्मं सहिरण्यन्तु तद्गुरोः । एवं कृते तु यत्पुण्यं भवत्सञ्जायते तथा ॥६५॥

तन्न शक्यं निगदितुमपि वर्षशतैरपि । दीक्षितोऽथ पुन भूत्वा पात्रं वै शृणुयाद्यदि ॥



तद्वच्चर्च पादुके च तपोपानत्समन्वितम् । सम्पूर्णाङ्गाय दातव्यं ब्राह्मणाय विशेषतः ॥  
सात्यामङ्गारकं पूज्य क्षपयेन्नक्तभोजनेः । अष्टावेवं च यावच्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्  
भङ्गारकं च सौवर्णं स्थापितं तादृग्भाजने । दापयेद्ब्राह्मणायाथ सम्पूर्णाङ्गाय चैव हि  
नक्षत्रानुक्रमेणैव क्षिपेन्नक्तानि सप्त वै । अष्टमे तु कर्मात्खेटान्सौवर्णाद्यायेपद् बुधः ॥  
अग्निकार्यं च कुर्यात् यथा द्रष्टुं विधानतः । एवं कृते भवेद्यज्ञे तन्निबोध नराधिप ॥  
असौम्याश्चप्रहास्तस्यैसौम्यरूपा भवन्ति च । सर्वे रोगा विनश्यन्ति तुष्टिमायान्तिश्चेताः  
न विरुन्धन्ति तं नायाः पितरस्तर्पितास्तथा ।

दुस्स्थप्रनाशो भवति ऋणघतां पठतां तथा ॥ ६२ ॥

यदि भौमो रपिस्तुतो भास्करोराहुणासह । केतुश्चमूर्ध्नि तिष्ठन्ति रौद्राःपीडाकराग्रहाः  
भनेन हतमात्रेण ससौभाग्या भवन्ति हि । य एषं कुरुते राजन्सदा भक्तिसमन्वितः ॥

तस्य सानुग्रहाःसर्वे शान्तिं गच्छन्ति नाम्यथा ।

शनैश्चरं राहुकेन लोहपात्रेषु विन्यसेत् ॥ ६५ ॥

लौहेन कारयेद्येनाग्राहणेभ्यश्च दापयेत् ।

कृष्णं वज्रयुगं देयमेतेषां प्रीणनाय वै ॥ ६६ ॥

सौवर्णाङ्गाश्च दातव्याः शान्तिश्रीविजयेऽप्युभिः ।

यतास्ते सर्व एते हि ग्रहास्तसौवर्णका नृप ॥ ६७ ॥

दातव्याः शान्तिमिच्छद्भिर्वतास्ते द्विजभोजनम् ।

यथाशक्ति दक्षिणा च ग्रहाणां प्रीतये तथा ॥ ६८ ॥

अल्पायासेन राजेन्द्र सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।

शङ्कुराग्धानमन्विच्छेदारोग्यं भास्करात्तथा ॥ ६९ ॥

दुताशनाद्धनं हीच्छेद्गतिमिच्छेज्जनार्दनात् ।

ग्राहयं पितामहाच्चैव सर्वजन्तुप्रशान्तिदम् ॥ ७० ॥

भीष्म उवाच ।

यस्त्वयाकपितोयज्ञो यज्जनां तु फलं मदत् । तद्यायुषस्त्वत्पतयाभ्यनैःप्राप्तुं न शक्यते

स्वल्पायासेन यत्पुण्यं संवत्सरमुपोषणम् । भवेत्तन्मे मुनिश्रेष्ठ कथयस्व महाफलम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

इदमर्थं महाराज श्वेतो राजा महायशः । वसिष्ठं पृष्टवान्प्रश्नं क्षुधया पीडितो भृशम् ।

आसीदिलावृते वर्षे श्वेतो राजा महाबलः । स महीं सकलां जिघे सप्तद्वीपां सपत्नान् ।

महापुत्रो वसिष्ठश्च आसीत्तस्य पुरोहितः । सकदाचिन्मृपथेष्टो जित्वा परमधार्मिकः ।

पुरोहितमुवाचेदं वसिष्ठं जपतां वयम् ।

श्वेत उवाच ।

भगवन्नश्वमेधानां सहस्रं कर्तुमुत्सहे ॥ ६ ॥

सुवर्णरूप्यरत्नानां दानं कर्तुं द्विजातिषु । पृथिव्यामन्नदानं तु दातुन्नेच्छामि वै पुरो

नान्नेन किञ्चिद्दत्तेन दत्ते हेमि द्विजे प्रभो ।

पुलस्त्य उवाच ।

न किञ्चिद्वस्तिवति धात्या न दत्तं सत्कदाचन ॥ ८ ॥

रक्तयस्त्रमलङ्कारं ग्रामांश्च नगराणि च । अद्वादुग्राहणेभ्योऽसौ श्वेतो राजामहायशः ।

नान्नं जलं तेन राजा दत्तमासीत्कदाचन । ततोऽश्वमेधैर्यहुभिर्यथाऽसौ नृपसत्तम ।

स्वर्गं गतः पुण्यजिततपस्तप्यार्थुद्वयम् । ब्राह्मीं सलोकतां प्राप्तःसर्वालङ्कारभूषितः ।

नृत्यन्त्यप्सस्तस्तत्र गायन्ते सिद्धयोषितः । तुभ्युद्वर्तारदस्तत्र द्वावप्यनुगतां सदा ।

भगायेतां महाप्राज्ञीं मुनयश्च तपोऽन्विताः । वेदोक्तग्रन्थैः स्तुन्यन्ति भनेककृतुयाजिनम् ।

एवं विभगयुक्तस्य राज्ञस्तस्य महात्मनः । क्षुधया पीड्यते देहं तृष्णया च विशेषतः ।

स तथा पीड्यमानस्तुक्षुष्याराजसत्तमः । विमानेनाप्यसौ स्वर्गत्यसचाऽगाढस्पर्शम् ।

यत्रात्ममूर्तिस्तत्रागारपुरा दग्धा महावने । तत्रास्थानि स्वयं गृह्य लिहन्नास्तेसपार्थिवः ।

पुनर्यिमानमाह्ला यथो नाकं नराधिपः । मय कालेन महता ॥ राजा संश्लिप्ततः ।

स्यान्यस्थानि लिहन्गृष्टोचसिष्टेनपुरोधसा । उक्तञ्च किन्नुराजेन्द्रस्यास्थिमक्षानराधिप

राजा वसिष्टेन महर्षिणा । उवाच वचनं चेदं श्वेतो राजाऽप्य तं मुनिम्

पाठोऽहमन्नदानं पुरा मया । न दत्तं मुनिगार्हूलं तेन मांशस्त्रयायजे ॥

एवमुक्तस्तदा राजा वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः । उवाच तं नृपं भूयो वाक्यमेतन्महामुनिः ॥  
किं करोमि राजेन्द्र ध्रुवितस्य बिशेषतः । पस्तु कस्यापि किञ्चिद्दि नादत्तमुपतिष्ठति  
रज्ज्वेगप्रदानेन भोगघात्रापते नरः । अन्नदानप्रदानेन सर्वकामैः प्रदीपितः ।

तन्न दत्तं त्वया राजन्स्तोकं मत्वा नराधिप ॥ १२३ ॥

श्वेत उवाच ।

अस्तस्य च सम्भूतिर्यथा भवति मे गुरो । वसिष्ठ त्यत्प्रसादेन तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥

वसिष्ठ उवाच ।

रस्त्येकं कारणं येन जायते नात्र संशयः । तच्छृणुष्व नरक्यात्र कथ्यमाणं मया तव ॥

॥सीन्द्राजा पुरा कल्पे विनीताश्चेति कीर्तितः । स चाश्वमेधमारभे यज्ञकर्तुं वरं नप ॥

यजनान्ते द्विज्रेन्नेभ्यो दत्तं योऽश्यादि याचितम् ।

नान्नं दत्तं तेन किञ्चित्स्वल्पं मत्वा यथा त्वया ॥ १२७ ॥

ततः कालेन महता मृतोऽसी जाह्नवीतटे । मायापुर्यां विनीताश्वः सार्वभौमोऽभवन्नृप

स्पर्शं च गतपादसोऽपि यथा राजा भयान्प्रभो ।

असावपि ध्रुवापिष्ट एवमेवागतोऽभवत् ॥ १२८ ॥

मर्त्यलोके नदीतीरे गङ्गायां नालपर्यते । विमानेनार्कवर्णेन भास्वता देववन्नृप ॥ १३० ॥

वदशं तस्स्यकं देहं तथा स्पर्शं च पुरोहितम् । होतारं ब्राह्मणं नाम यजन्तं जाह्नवीतटे ॥

तं ब्रह्मासावपि पुनः पर्यट्छद्द्विजोत्तमम् । ध्रुवायाः कारणं राजन्सहोता तमुवाच ॥

तिलधेनुं च ये राजन्पुतधेनुं च सप्तम । जलधेनुं च धेनुं च रसधेनुं च पार्थिव ॥ १३३ ॥

देहि शीघ्रं येन भवांस्तद्भुधावर्जितो दिवि । स्मेत यावदादित्यस्तपते दिवि चन्द्रमाः

एवमुक्तस्ततो राजा तं पुनः पृष्टवानिदम् । तिलधेनुस्त्विति ब्रूहि तथा हृत्वा दद्यादयम्

पुरोहित उवाच ।

विधानं तिलधेनोस्तु तच्छृणुष्व नराधिप ।

धेनुस्स्यात्पोडशादक्ष्णा चतुर्भिर्वत्सको भवेत् ॥ १३६ ॥

क्षुद्रण्डमयाः पादादन्ताः पुष्पमयाः शुभाः । नासा गन्धमयी तस्या जिह्वा गुडमयी तथा

पुच्छेन्नज्जलनीपास्यादुघण्टाभरणभूषिता । ईदृशी कल्पस्त्विता स्वर्णभूषिता कल्प  
रौप्यगुरां कांस्यदोहा पूर्वधेनुविधानतः । कृत्वा तां ब्राह्मणायाशु दापयेन्मन्त्रतोः

स्थितां कृष्णाजिने धेनुं वासोभिर्गोपितां शुभाम् ।

सूत्रेणामूत्रितां कृत्वा पञ्चरत्नसमन्विताम् ॥ १४० ॥

सर्वोपधिसमायुक्तामभ्यपूतां तु दापयेत् । मन्त्रमेजायतां सप्तपानं सर्वरसास्तथा ॥ १४१ ॥

कामान्सम्पादयास्नाकं तिलधेनो द्विजेऽपिता ।

गृह्णामि देवि त्वां मनया कुटुम्बार्थं विशेषतः ॥ १४२ ॥

देहिकामान्पिताः सप्तां तिलधेनो नमोऽस्तुते । पयंविधानतो दत्ता तिलधेनुर्नृपोत्तम

सर्वकामसमाप्ति कुर्वन् नात्र संशयः । जलधेनुस्तर्पयेद्द कुमारेण प्रकल्पिता ॥ १४३ ॥

दत्ता तु विधिनाकामान्सप्त सप्तांगप्रच्यति । धेनुशतं तथा दत्तं पूजिमानिवर्मेन हि

साधिया इव ये स्वर्गं सर्वकामप्रदा भवेत् । पुनर्धेनुस्तथा दत्ता विधानेन विधत्तये

सर्वकामसमाप्ति कुर्वन् कान्तिरा भवेत् । रसधेनुस्तथा दत्ता कान्तिकेमासि वाधि

सप्ताङ्कामान्नयच्छेत्तु नित्यं सा गतिरा भवेत् ।

पल्लवे सर्वमाभ्यासं समासादुपदुविस्ताम् ॥ १४८ ॥

भगार् पल्लवुरिष्टं प्रक्षणा सर्वकर्मणा । तृणया क्षुधया यज्ञा पीडितो राजसवन

तद्दानं कार्त्तिके देय पूर्वदेहि नराधिप । प्रक्षणात् सर्वसम्पन्नं भूतार्थोत्पीयुत ॥ १४९ ॥

देवरावदयक्षेध पुच्छेन्नज्जलनीपा विना । पल्लवसङ्घं कृत्वा सर्वतो रक्षाविष्टम् ॥ १५० ॥

सुरवर्षं कन्दारं कार्त्तिके दद्यादग्निने । यद्यथा पञ्चदशानां तु कार्त्तिके ददेत् ॥ १५१ ॥

पुनो रक्षय पुनरे दद्यादेन्दुजिह्वाभय । यद्याप्यष्टाङ्गकौतुकिनि वाणि भूतानि वाणि ॥ १५२ ॥

अग्नि रक्षति वेतेन सम्राट्पञ्चकजिन तव । यद्यदेवेऽतो राजसवनव ॥ १५३ ॥

सर्वं यत्तं लक्षणम् यद्याप्यस्य विशेषतः । कःपुनस्तत्तं चेद्दद्यात्तत्तदेव ॥ १५४ ॥

तेन तं पुन दत्तं तत्तं कार्त्तिके भवेत् ।

यज्ञोवाच ।

विधिं यद्याप्यस्य दत्ता कर्मपुण्यमवेत् ॥ १५५ ॥



कालं देवां विप्रतीर्थं सर्वं त्वं यद् मेऽनघ । हृत्नेन येन सर्वस्य फलभागी भवाम्यहम् ॥

कुतिसतस्यास्य भापस्य क्षमस्मास्यादचिराच्च मे ।

यसिष्ठ उवाच ।

एवं धृत्वा ततो राजन्पुरोधास्तस्य स द्विजः ॥ ५८ ॥

प्रह्लाण्डं कारयामास सौवर्णं सर्वधातुभिः । युतं निष्कसहस्रेण पद्मं तत्र ह्यकल्पयत्

तत्र प्रह्लातस्य मध्ये पद्मरागेरलङ्कृतः । सावित्र्या चैव गायत्र्या ऋषिभिर्मुनिभिः सह ॥

नारदायाः सुताः सर्वे इन्द्राद्याश्च दिव्यौकसः । सौवर्णचिप्रह्ला.सर्वे प्रह्लाणस्तु पुर.सराः ॥

पराहकरी भयगर्वाहृक्ष्यासह सनातनः । नील मरकतं चैव भूषाणां तस्य कारयेत् ॥

गोमेदेस्तस्य पैशोभां कारयेत् च बुद्धिमान् ।

मौक्तिकेधापि सोमस्य शोभां यज्जर्दिवाकरे ॥ १६३ ॥

प्रह्लाणां चैव सर्वेषां सुवर्णानिध दाययेत् । स्वर्णात्सप्तगुणं रौप्यं रौप्यास्ताम्रं तथाविधम्

ततः सप्तगुणं कार्यं कांस्वंसप्तगुणं तथा । कांस्यात्सप्तगुणं कार्यं त्रपु चैव नराधिप ॥

त्रपुसप्तगुणं सोतं सीताहोहं च कारयेत् । सप्तद्वीपास्तमुद्राश्च सप्तचै कुलपर्वताः ॥

अनपासूयथा कृत्वा निपुर्णैः शिल्पिभिस्ततः । पादपाद्रीनि भूतानि राजतामेव कारयेत्

भारण्यानि च सत्त्वानि सौवर्णानि च कारयेत् ।

बृक्षान् धनस्पतांगुल्मतुष्यवर्णानि वीरधः ॥ १६८ ॥

सर्वं प्रकल्प्य विधिवत्तीर्थं देयं विचक्षणः । कुरुक्षेत्रे गयायां च प्रयागेऽमरकण्डके ॥

दारपत्ण्यां प्रभासे च गङ्गाद्वारे च पुष्करे । तीर्थेष्वेतेषु चै देयं ग्रहणे शशितूर्ययोः ॥

दिनच्छिद्रेषु सर्वेषु अयने दक्षिणोत्तरे । न्यतीपाते बहुगुणं विषुवे च विशेषतः ॥

वातव्यमेतद्राजेन्द्र विचारं नैव कारयेत् । शालाग्रिहोत्रिणां कृत्वा सुकूपं च गुणान्वितम्

सपत्नीकं च सम्पूज्य भूषयित्वा च भूषणीः । पुरोहितं मुख्यतमं कृत्यान्वे च तथाद्विजाः

चतुर्विंशद्वगुणोपेताः सप्तलोका निमन्त्रिताः । अङ्गुलीयानि च तथा कर्णवेष्टं च दाययेत्

एवंविधांस्तु ताम्पूज्य तेषामग्रे सुसंस्थितः । अष्टाङ्गप्रणिपातेन प्रणम्य च पुनः पुनः ॥

पुरोहिताय पुनः कृत्वा चैकरसमुष्टम् । यूयं चै ब्राह्मणाः प्रीता मैत्रत्वेनानुष्टुत ॥ १७६ ॥

सौमुख्येन द्विजश्रेष्ठा भूयःपूततरस्तथा । भवतां प्रीतियोगेन स्वयं प्रीतः पितामहः ॥ १७९ ॥  
 ब्रह्माण्डेन तु दत्तेन तोषं यातु जनार्दनः । पिनाकपाणिर्मगधाञ्छकश्च त्रिदशेश्वरः ।

एते तोषं समायान्तु अनुध्यानाद्द्विजोत्तमाः ।

एवं स्तुत्वा ततो राजा ब्राह्मणान्चेदपारान् ॥ १८० ॥

ब्रह्माण्डं तु गुरोः प्रादात्सविधानं पुनः क्षणात् । सर्वकामैस्ततस्तृप्तो ययौ स्वर्गं नराधिप ।  
 तेनैव गुरुणा तच्च विभक्तं ब्राह्मणैः सह । दत्तं तेनापि चान्येभ्यो ब्रह्माण्डं च नराधिप ।  
 ब्रह्माण्डे भूमिदाने च प्राही चैकोन चै मवेत् । शृङ्खल्योपमवाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः ।  
 सर्वेषां चैव प्रत्यक्षं दातव्यं परिकीर्त्य चै । दीयमानं च पश्यन्ति तेऽपि पूता भवन्ति वि-  
 दर्शनादेव ते मुक्ता भवन्त्येव न संशयः । या भीमव्यादशी प्रोक्ता स्वर्णतोय मृगाजिनम्-  
 पतानि कृत्वा पश्यन्तु द्रुष्टैरेतैः क्रियाफलम् । अयत्नादेव लभ्येत कर्तुंश्चैव सलोकता ।  
 सदा गाधः प्रणम्याश्च मन्त्रेणानेन पार्थिव । नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।

नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ।

मन्त्रस्य चास्यस्मरणाद्रौदानफलमाप्नुयात् ॥ १८१ ॥

तस्मात्स्यमपि राजेन्द्र पुष्करे तीर्थ उत्तमे । कार्तिकां तु विशेषेण गोदान फलमाप्स्यसि  
 यत्किञ्चिद्विद्यते पार्थ स्त्रियो वा पुरुषस्य वा । पुष्करे ह्यनमात्रेण तद्दर्शने प्रपश्यति ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि भासमुद्रात्तु भारत ।

पुष्करे तान्युपायान्ति कार्तिकशं तु विशेषतः ॥ १८२ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे ब्रह्माण्डदानं नामपद्मत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

### सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

अन्नदानमाहात्म्यवर्णनप्रस्तानाद्रामकथानकवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

सर्वं पुराणाध्यसंयुतम् । तथा श्रुतेन ब्रह्माण्डं गुरवे प्रतिपादितम् ॥ १ ॥

धुत्वेतत्कौतुकं जातं यथा तेनास्थिलेहनम् । कृतंभुधापनोदार्थं भन्नदानाद्विना द्विज ॥  
 तदहं धोतुमिच्छामि पृथिव्यां ये च पार्थिवाः । भन्नदानादिवंप्राप्ताः कतवक्षान्नमूलकाः  
 कथं तस्यमतिर्नष्टा श्वेतस्य ॥ महात्मनः । न दत्तं तेनान्नदानमृषिभिर्घा न दर्शितम् ॥  
 भ्रह्म माहात्म्यमन्नस्य इह दत्तस्य यत्फलम् । परत्रभुज्यते पुमिभः स्वर्गश्चाक्षयतां व्रजेत्  
 भन्नदानं परंप्रियाः कीर्तयन्ति सदोत्थिताः । भन्नदानात्सुरेन्द्रेण वैलोक्यनिह भुज्यते ॥  
 एतकतुरिति प्रोक्तः सर्वरेष द्विजोत्तमैः । तेनापस्थां कृत्स्नदृशीं प्राप्तावांलिदशेष्वरः ॥  
 एनादेव गतः स्वर्गं त्यक्तः सर्वधृतं दयाः । अपरं च पुरावृत्तं निवृत्तं यदि कर्हिचित् ॥  
 भूयोऽपि धोतुमिच्छामि तन्मे षद् महामते ।

पुलस्त्य उवाच ।

एतदाख्यानकं पूर्यमगस्त्येन महारमना ॥ ६ ॥

रामाय कथितं राजंस्तप्ते वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।

भीष्म उवाच ।

कस्मिन्वंशसमुत्पन्नो रामोऽसौ नृपसत्तमः ॥ १० ॥

यस्यागस्त्येन कथितश्चेतिहासःपुरातनः ।

पुलस्त्य उवाच ।

रघुवंशे समुत्पन्नो रामो नाम महाबलः ॥ ११ ॥

देवकार्यं कृतं तेन लङ्कायां रावणो हतः । पृथिवी राज्यसंस्थस्य ऋषयोऽभ्यागता गृहे  
 प्राप्तास्ते ॥ महात्मानो राघवस्य निवेशनम् । प्रतीहारस्ततो राममगस्त्यवचनानुव्रुतम्  
 भाषेदयामास ऋषीप्रसादांस्तांश्च त्वरान्वितः । ब्रूवा रामं द्वात्पालपूर्णचन्द्रमिषोदितम्  
 द्वात्पाल उवाच ।

शौचव्यासुत भद्रं ते सुप्रमातावशर्वरी । ब्रह्मभ्युदयन्तेऽद्य सम्प्राप्तो रघुनन्दन ॥ १५ ॥

मगस्त्यो मुनिभिः सार्धं द्वारि तिष्ठति ते नृप ।

पुलस्त्य उवाच ।

धुत्वा प्राप्तान्मुनीन् रामस्तान्भास्करसमद्युतीन् ॥ १६ ॥

प्राह पाक्यं तदा द्वाःस्थं प्रवेशय त्यराधितः ।

किमयं नु त्यया द्वारि निरुद्धा मुनिसत्तमाः ॥ १७ ॥

रामपाक्यान्मुनीस्तास्तु प्रायेणयथासुखम् ।

इहा ॥ तान्मुनीन्प्राप्तान्प्रयुषाच कृताश्रयिः ॥ १८ ॥

रामोऽमिषाद्य प्रपन्न आसनेषु स्थधेशयत् । ते तु काञ्चनचित्रेषु स्वाहर्षाणेषु सुभे  
 कुशोत्तरेषु घासीनाःसमन्तामुनिपुङ्गवाः । पाद्यमाचमनीयं च दत्तं चार्घ्यं पुण्ड्रिकं  
 रामेन कुशलं दृष्ट्वा श्रुत्यःसर्वं पश्य तं । महर्षयो धेनुविन्द इदं पश्यन्मप्रपन्नः ॥ ११

**सत्य ऊचुः ।**

पुण्यं नो महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन । त्वं तु दिव्या बुभुक्षितं पश्यामो हविर्भि-  
 ह्वा साक्षादतिशयेन वाचनेन दुरात्मना । पत्रां ते रघुशार्ङ्गं तस्या यथोक्ता ॥  
 भवहायेन येनैव त्वया राम रणे हतः । यादृशं ते कृतं कर्म तस्य कर्ता न विदमे ॥  
 ॥ सगन्धर्विर्नृपः पञ्चाङ्गुलः स्यात्तस्य । दृशनात्तव वाक्त्र सर्वं ज्ञातात्मानिन-  
 स्य त्वस्य कथामेव कृतमर्थमात्रेणम् । इत्थां पुण्यामिमां धीर जगत्पुण्य-  
 ॥

दिष्ट्या वर्जसि वा ह्यस्य त्रयेनामिनिधिदम ।

दृष्टस्मान्नास्तिश्चामि याव्यामथाध्यामन्व सान् ॥ २१ ॥

भारतं मे प्रविष्टम् मया केन्द्रगमनम् । भर्तिनं साधुषां मूर्खो बध्नति न पालयति ।

भूतः पुनः प्रकृतं भाग्यं प्राप्नुते ॥ १७ ॥

पुनस्तु उवाच ।

एवमुक्त्वा तु ते सर्वे मुखोऽर्धाङ्गिण्यमबभूवुः ॥ २१ ॥

[illegible]

एतस्मिन्नेवदिषसे वृद्धो जानपदो द्विजः । मृतं पुत्रमुपादाय राजद्वारमुपागतः ॥ ३५ ॥

उवाच विविधं वाक्यं स्नेहाक्षरसमन्वितम् ।

ब्राह्मण उवाच ।

दुष्कृतं किन्तु मे पुत्र पूर्वदेहान्तरे कृतम् ॥ ३६ ॥

त्वामेकपुत्रं यदहं पश्यामि निधनं गतम् । अप्राप्तयौवनं बालं पञ्चवयं गतायुषम् ॥ ३७ ॥

अकाले कालमापन्नं दुःखाय ममपुत्रक । अकृत्वा पितृकार्याणि गर्तो वैवस्वतक्षयम् ॥

रामस्य दुष्कृतं व्यक्तं येन ते मृत्युरागतः । बालवध्वा ब्रह्मवध्या स्त्रीवध्या चैव राघवम्

प्रवेक्ष्यति न सन्देहःसभार्ये तु मृते मयि ।

पुलस्त्य उवाच ।

शुभाब राघवःसर्वं दुःखशोकसमन्वितम् ॥ ४० ॥

निवार्य तं द्विजं रामो वसिष्ठं वाक्यमप्रवीत् ।

राम उवाच ।

किं मयाच च कर्तव्यं कार्यमेवविधे स्थिते ॥ ४१ ॥

प्राणानहं जुहोम्यग्नौ पर्वताद्वा पते ह्यहम् । कथं शुद्धिमहंयामि धृत्वा ब्राह्मणभाषितम्

पुलस्त्य उवाच ।

वसिष्ठस्याप्रतःस्थित्वा राज्ञोद्दीनस्य नारदः । प्रत्युवाच धूर्तवाक्यमूर्पाणां सन्निधौ तदा

नारद उवाच ।

भृशु रामयथाऽकाले प्राप्तो वै बालसंक्षयः । पुराकृतयुगे राम सर्वत्र ब्राह्मणोत्तरम् ॥

अब्राह्मणो न वै कश्चित्तपस्तपति राघव । अमृत्यवस्तदा सर्वे जायन्ते विरजोचिनः ॥

त्रेतायुगे पुनःप्राप्ते ब्रह्मक्षत्रमनुत्तमम् । अधर्मो द्वारदे तेषां वैश्यादूनांस्तथाविशत् ॥

एवं निरन्तरं जुष्टमुद्भूतमनृतं पुनः । अधर्मस्य त्रयःपादा एको धर्मस्य चागतः ॥ ४३ ॥

ततःसर्वे भृशं त्रस्ता वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः । भूयःपादस्तु धर्मस्य द्वितीयःसमपद्यत ॥

तस्मिद्वापरसंज्ञे तु तपो वैश्यं समाविशत् । युगत्रयस्य वै धर्म्यं धर्मस्य प्रतितिष्ठति

फलसंज्ञे ततः प्राप्ते पतमाने युगेऽन्तिमे । अधर्मभ्रान्तं चैव बहूपाते नरर्षभ ॥ ४० ॥

न शूद्रो लभते कर्तुं तपउग्रं नरर्षभ । भविता शूद्रयोग्यां तु तपधर्या कलौयुगे ॥ ५१ ॥  
 स ते विषयपर्यन्ते राजत्रु प्रतरन्तपः । शूद्रस्तपति दुर्वृद्धिस्तेन वा शब्धः कृतः ॥ ५२ ॥  
 यस्याधर्ममकार्यं वा विषये पार्थिवस्य हि । पुरे वा राजशार्दूल कुरुते दुर्मतिर्नरः ॥  
 क्षिप्रं स नरकं याति यावदाभूतसमृद्धम् । चतुर्थं तस्य पापस्य भागमश्नाति पार्थिवः ॥  
 स त्वं पुरुषशार्दूल गच्छस्व विषयं स्वकम् । दुष्कृतं यत्र पश्येथास्तत्र यत्नं समाचर ॥  
 पर्यं ते धर्मवृद्धिश्च यत्नस्य वर्धनं तथा । भविष्यति नरश्रेष्ठ बालस्यास्य च जीवतम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

नारदैनैवमुक्तस्तु साक्षर्यो रघुनन्दनः । प्रहर्षमतुलं लेभे लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥

राम उवाच ।

गच्छ सौम्य द्विजश्रेष्ठं समाभासय लक्ष्मण ।

बालस्य च शरीरं त्वं तैलद्रोण्यां निधापय ॥ ५४ ॥

गन्धैश्च परमोदारैस्तेलैश्चैव सुगन्धिभिः ।

यथा न शीर्यते बालस्तथा सौम्य विधीयताम् ॥ ५५ ॥

यथा शरीरं गुप्तं स्याद्बालस्याविलष्टकर्मणः । विपत्तिः परिभेदो वा न भवेत्तत्तथा पुं

पुलस्त्य उवाच ।

तथा सन्दिश्य सौमित्रि लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।

मनसा पुष्पकं दध्यावागच्छेति महायशाः ॥ ६१ ॥

द्विषितं तनु पित्राय फामगं हेमभूषितम् । आजगाम मुहूर्तात्तु समीपं राघवस्य हि ।  
 सोऽप्रयात्माञ्जलिर्वाक्यमहमस्मि नराधिप । अग्रे तव महाबाहो किङ्करः समुपस्थितः ।  
 मापितं सुचिरं ध्रुत्वा पुष्पकस्य नराधिप । भमिवाचमहर्षोस्तान्निमानं सोऽप्रयात्मा  
 धनुर्गृहीत्वा तूष्णीं च खड्गं चापि महाप्रभम् । निक्षिप्य नगरेवीरौ सौमित्रि भातदुर्न  
 प्रायात्प्रतीचीं स्थापितो विचिन्त्यनुसमाहितः । उत्तरामगमत्पश्चादिशं हिमपदाश्रितम् ॥

पूर्वामपि दिशं गत्वा तथापश्यन्नराधिपः ।

सर्वां शुद्धसमाचारामादरांमिष निर्मलाम् ॥ ६७ ॥

ततो दिशं समाकामदक्षिणां रघुनन्दनः । शीलस्य चोत्तरे पार्श्वे ददर्श सुमहत्सरः ॥  
तस्मिन्सरसि तप्यन्तं तापसं सुमहत्तपः । ददर्श राघवो भीमं लम्बमानमधोमुखम् ॥  
तमुपागम्य काकुत्स्थस्तप्यमानं तु तापसम् । उवाच राघवो वाक्यं धन्यस्त्वममरप्रभ  
कस्यां योनीं तदोवृद्धिर्यतेते दृढनिश्चयः । अहं दक्षरथी रामःपृच्छामि त्वां कुतहलात्  
कोऽर्थो व्यपसितस्तुभ्यं स्वर्गलोकोऽभवेतरः ।

किमर्थं तप्यसे वा त्वं ध्योतुमिच्छामि तापस ॥ ७२ ॥

ब्राह्मणो वाऽसि भद्रं ते क्षत्रियो वाप्य दुर्जयः ।

वैश्यस्तृतीयवर्णो वा शूद्रो वा सत्यमुच्यताम् ॥ ७३ ॥

पःसत्यात्मकं नित्यं स्वर्गलोकपरिमहे । सात्त्विकं राजसं चैवतच्चसत्यात्मकं तपः ॥  
गुणकारहेतुर्हि सृष्टं तद्वै विरिञ्चिना । रौद्रक्षत्रियतेजोजं तत्तु राजसमुच्यते ॥  
रस्योत्सादनार्थाय तद्यासुरमुदाहृतम् । अङ्गानि निहृते यो वा असुन्दिग्धानि भागशः  
ज्ञातिं साधयेद्वापि सिद्धिं वा मृत्युमेव वा । आसुरो ह्येव ते भावो न च मेत्वंद्विजोमतः  
त्य ते यदतः सिद्धिरनृते नास्ति प्रीतिरितम् । तस्य तद्वापितं धृत्वा रामस्यात्किमृकर्मणः  
अवाक्छिरास्तथा भूतो वाक्यमेतदुवाच ह ।

शूद्रतापस उवाच ।

स्वागतं ते नृपश्रेष्ठ विराट्पुत्रोऽसि राघव ॥ ७४ ॥

पुत्रभूतोऽस्मि ते चाहं पितृभूतोऽसि मेऽनघ । अथवा नैतदेवं हि सर्वेषां नृपतिः पिता  
सत्वमर्क्योऽसि भो राजग्वयंते विषये तपः । चरामस्तत्रभागोऽस्ति पूर्वसृष्टः स्वयम्भुवा  
न धन्याः स्मोर्वरं रामधन्यस्त्वमसि पार्थिव । यस्य ते विषये ह्येवं सिद्धिमिच्छन्ति तापसाः  
तपसा त्वं मदीयेन सिद्धिमाप्नुहि राघव । यदेतद्भवता प्रोक्तं योनीं कस्यां तु ते तपः  
शूद्रयोनिप्रसूतोऽहं तपउग्रं समास्थितः । देवत्वं प्रार्थये राम स्वशरीरेण सुमत ॥ ८४ ॥  
न मिथ्याहं वदे भूपदेवलोकजिगीषया । शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्भूकं नामनामतः

पुलस्त्य उवाच ।

भापतस्तस्य काकुत्स्थः खड्गान्तु रुचिरप्रभम् । निष्कप्यकोशादिमलं शिरश्चिच्छेदय

तस्मिञ्छूद्रेहतेदेवाः सेन्द्राध्वाग्निपुरोगमाः । साधुसाध्वितिकाकुत्स्थं प्रशशंसुर्मुहुर्मुहुः ।  
पुष्पवृष्टिश्च महती देवानां सुसुगन्धिनी । भाकाशाद्विप्रभुक्तानु राघवं सर्वतोऽकिम् ।

सुप्रीताध्वाद्भुवन्देवा रामं धाक्यचिदांघ्रम् ।

देवा ऊचुः ।

सुरकार्यमिदं सौम्य कृतं ते रघुनन्दन ॥ ८९ ॥

गृहाण च वरं राम यमिच्छसि महाव्रत ।

पुलस्त्य उवाच ।

देवानां भाषितं श्रुत्वा राघवः सुसमाहितः ॥ ९० ॥

उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सहस्राक्षं पुरन्दरम् ।

राम उवाच ।

यदि देवाः प्रसन्ना मे घराहो यदि धाप्यहम् ॥ ९१ ॥

कर्मणा यदि मे प्रीता द्विजपुत्रः स जीयतु । वरमेतद्धि भवतां काङ्क्षितं परमं हि मे ।  
ममापराधाद्बालोऽसौ ब्राह्मणस्यैकपुत्रकः । भ्रातृकालः कालेन नीतो वैष्वस्ततश्च यत्न  
तं जीवयत भद्रं धो नानृतीस्यामहं गुरोः । द्विजस्य संभृतो ह्यर्थो जीवयिष्यामि ते सुखम्  
मदीयेनायुषायालं पादेनादेन वा सुराः । जीवेद्यं घरो मह्यं वरकोट्यधिको वृतः ॥ ९२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

राघवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा विपुचसत्तमाः ।

प्रत्यूचुस्ते महात्मानं प्रीताः प्रीतिसमन्विताः ॥ ९३ ॥

देवा ऊचुः ।

नेर्घृतो भयं काकुत्स्थ ब्राह्मणस्यैकपुत्रकः । जीर्णितं प्राप्तवान्भूयः समेतश्चापि कपुनिः  
। तस्मिन्मुहूर्ते काकुत्स्थ शूद्रोऽयं विनिपातितः । तस्मिन्मुहूर्ते सहसा जीयेन समयुगल  
यस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते साधयामः परंतपः । भगस्यस्याधमपदे द्रष्टारस्महामुनिम् ।  
। तथेति प्रतिज्ञाय देवानां रघुनन्दनः । आद्यरोह विमानं तं पुष्पकं देमनूयितम् ।  
इति धो पद्मपुराणे प्रथमे मृष्टिखण्डे शूद्रतापस्यधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।



## अष्टत्रिंशोऽध्यायः

रामस्यागस्त्याथमगमनवर्णनम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

ततो देवाः प्रयातास्तेष्विमानैर्दुर्भिरतदा । रामोऽप्यनुजगामाशु कुम्भयोनेस्तपोवनम् ॥  
उक्तं भगवता तेन भूयोऽप्यागमनं कथाः । पूर्वमेव सभायां च यो मां द्रष्टुं समागतः  
तदहं देवतादेशात्तरकार्यायं महामुनिम् । पश्यामि तं मुनिं गत्वा देवदानवपूजितम् ॥४॥  
वपदेशं च मे तुष्टः स्पर्शं वास्यति सत्तमः । दुःखी येन पुनर्मर्त्ये न भवामि कदाचन ॥५॥  
पिता वशरथो मह्यं कौसल्या जननी तथा । सूर्यवंशे समुत्पन्नस्तथाप्येष सुदुःखितः ॥  
रात्र्यकाले वनेवासो भार्यया चानुजेन च । हरणं चापि भार्याया राघवेन कृतं मम ॥  
भसहायेनतु मया तीर्त्वा सागरमुत्तमम् । कबुध्वातु तां पुरीं सर्वां हृत्वा तस्य कुलक्षयम्  
इष्टा सीता मया त्यक्ता देवानां तु पुरस्तदा । शुद्धांतामां तथोचुस्ते मया सीतातथागृहम्  
समानीता मीतिमता लोकबाधया द्विसंजिता । वने वसति सा देवी पुरं चाहं वसामि ये  
जातोऽहमुत्तमे वंशे उत्तमोऽहं धनुष्मताम् । उत्तमं दुःखमापन्नो हृदयं नैव मिच्छते ॥  
वज्रसारस्य सारेण धाम्नाहं निर्मितो ध्रुवम् । इदानीं ब्राह्मणादेशाद्ब्रूमामि धरणीतले ॥

तपःस्थितस्तु शूद्रोऽसौ मया पापो निपातितः ।

देववाक्पाप्नु मे भूयः प्राणो मे हृदि संस्थितः ॥ १२ ॥

पश्यामि तं मुनिं वर्यं जगतोऽस्य हिते रतम् । दृष्टेन मे तथा दुःखं नाशमेष्यति सत्परम्  
उदयेन सहस्रांशोर्हिमं यद्वद्विलीयते । तद्वन्मे दुःखसम्प्राप्तिः सर्वथा नाशमेष्यति ॥१४॥

इहा च देवान्सम्प्राप्तानगस्त्यो भगवानृषिः ।

अर्घ्यमादाय सुप्रीतः सर्वांस्तानभ्यपूजयत् ॥ १५ ॥

ते तु गृह्य ततः पूजां सम्भाष्य च महामुनिम् । जग्मुस्ते त्रिदशा इष्टा नाकपृष्ठं सहानुगाः  
गतेषु तेषु काकुत्स्थः पुण्यकादवह्य च । अग्निवाद्यितुं प्राप्तः सोऽगस्त्यमृषिमुत्तमम्

राम उवाच ।

सुतो दशरथस्याहं भवन्तमभिवादितुम् । आगतो वै मुनिश्रेष्ठ सौम्येनेक्षस्व वधुषा  
निर्भूतपापस्त्वां दृष्ट्वा भवामीह न संशयः ।

पुलस्त्य उवाच ।

एतावदुक्त्वा स मुनिमभिवाद्य पुनः पुनः ॥ १६ ॥

कुशलं भृत्यवर्गस्य मृगाणां जनस्य च । भगवद्दर्शनाकांक्षी शूद्रं हत्वा त्विदमागतः ।

अगस्त्य उवाच ।

स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ जगद्गम्य सनातन । दर्शनात्तव काकुत्थ पूतोऽहं मुनिभिः सा  
त्वत्कृते रघुशार्दूल गृहाणार्घं महाद्युते । स्वागतं नरशार्दूल दिष्ट्वा प्राप्तोऽसि शत्रुहर  
स्यं हि नित्यं बहुमतो गुणैर्बहुमिरुत्तमैः । अतस्त्वं पूजनीयो वै मम नित्यं इति स्थितं  
सुत हि कथयन्ति त्वां शूद्रघातिनमागतम् । ब्राह्मणस्य च धर्मेण त्वया वैजीयितः सुप्र  
उध्यतां चेह भगवन्सकाशो मम राघव । प्रभाते पुष्पकेनासि गन्ताऽयोध्यां महामते  
इदं चामरणं सौम्य सुरतं विभक्तकर्मणा । दिव्यं दिव्येन वपुषा वीष्यमानं स्यतेजसा  
प्रतिगृहीष्य राजेन्द्र मतिप्रयं कुह राघव । लब्धस्य हि पुनर्हानिं सुमहत्फलमुत्पन्ने ।

त्वं हि शक्तः परित्रातुं सेन्द्रानपि सुरोत्तमान् ।

तस्मात्प्रदास्ये विधिवत्प्रतीच्छस्व मर्याम ॥ २८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

अर्धोपाच महाबाहुरिक्ष्वाकुणां महारथः । कृताञ्जलिर्मुनिश्रेष्ठं स्वं च धर्ममनुस्मरन् ।

धीराम उवाच ।

प्रतिग्रहो वै भगवंस्तव मेऽत्र विगर्हितः । क्षत्रियेण कथं विप्र प्रतिग्राह्यं चित्रान्नम् ।  
प्राह्मणेन ॥ यदत्तं तन्मे त्वं पकुमर्हसि । सपुत्रो गृहघानस्मि समर्थाऽस्मि महामुने ।

आपदा च न चाकान्तः कथं प्राह्यः प्रतिग्रहः ।

भार्या मे मुचिरं नष्टा न चान्या मम विद्यते ॥ ३२ ॥

दोषमागी च भवामीह न संशयः । कष्टं चैव दशांप्राप्यक्षत्रियोऽपि प्रक्षिप्यन्ते ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ] • भगस्त्याग्रमे रामाय दिव्याभरणदानवर्णनम् •

३४६

कुर्वन्नदोषमाप्नोति मनुरेवात्र कारणम् । वृद्धौचमातापितरौसाध्वी भार्या शिशुःसुतः ॥  
अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तृवश मनुश्चवीत् । नाहं प्रतीच्छे विप्रयं त्वया दत्तं प्रतिग्रहम् ॥

न च मे भयता कोपः कार्यो वै सुरपूजित ॥ ३६ ॥

भगस्त्य उवाच ।

न च प्रतिग्रहे दोषो गृहीतपार्थिवैर्नृप । भयान्वैतारणे शकस्त्रैलोक्यस्यापि राघव ॥  
तारय ब्राह्मणं राम विशेपेण तपस्विनम् । तस्मात्प्रदास्य विधिषत्प्रतीच्छस्व नराधिप  
राम उवाच ।

क्षत्रियेण कथं विप्र प्रतिग्राह्यं विज्ञानता । ब्राह्मणेन यथा दत्तं तन्मे रथं वक्तुमर्हसि ॥

भगस्त्य उवाच ।

भासन्कृतयुगे राम इहभूते पुरातने ॥

अपार्थिवाः प्रजाः सर्वाः पुराणां च चतुर्मुखम् ॥ ४० ॥

ताः प्रजा देवदेवेशं राजार्थं समुपागमन् । सुराणां विद्यते राजा देवदेवःशतक्रतुः ॥  
श्रेयसेऽस्मासु लोकेशपार्थिवं कुरु साम्प्रतम् । यस्मिन्पूजां प्रयुज्जानाःपुरयाभुज्जतेमहीम्  
ततो ब्रह्मा सुरश्रेष्ठो लोकपालान्संघासवान् ।

समाहूयाग्रवीरसर्वास्तेजोभागोऽत्र युज्यताम् ॥ ४३ ॥

ततो ब्रह्मलोकपालाभ्यनुर्भागं रघतेजसा । अक्षयश्च ततो ब्रह्मा यतो जातोऽक्षयोनृप ॥  
तं ब्रह्मा लोकपालानामंशं पुंसामयोजयत् । ततो नृपस्तदा तासां प्रजानां क्षेमपण्डितः  
तत्रैन्द्रेण ॥ भागेन सर्वानाक्रापयेन्नृपः । वारुणेनचभागेनसर्वान्पुष्पातिदेहिनः ॥ ४६ ॥  
कौबेरेणतर्पाशीनरवर्षान्दिशतिपार्थिवः । यक्षयाम्योनृपेभागेनशास्ति च ये प्रजाः ॥  
सत्र चैन्द्रेण भागेन नरेन्द्रोऽसि रघूत्तम । प्रतिगृह्णोष्वाभरणं तारणार्थं मम प्रभो ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततो रामः प्रजब्राह्म मुनेर्हस्तान्महात्मनः । दिव्यमाभरणं चित्रं प्रदीप्तमिव मास्करम् ॥  
प्रतिगृह्य ततोऽगस्त्याद्राघवः परधीरहा । निरीक्ष्य सुचिरं कालं विचार्य च पुनः पुनः  
मौक्तिकानि चिचिब्राणि धात्रीफलसमानि च । जाम्बूनदनिबद्धानि वज्रविद्रुमनीलकैः ॥

पद्मरागेः सगोमेधैर्वैदूर्यैः पुष्परागकेः ।

सुनियदं सुविमकं सुदृढं विश्वकर्मणा ॥ ५२ ॥

दृष्ट्वा प्रीतिसमायुक्तो भूयश्चेदं व्यचिन्तयत् ।

नेदृशानि च तद्धानि मया दृष्टानि कानिचित् ॥ ५३ ॥

उपशोभानि वदन्ति पृथ्वीमृत्युसमानि च । विभीषणस्य लङ्कायां न दृष्टानि मया पुनः  
इति सञ्चिन्तय मनसा राघवस्तमृषिपुनः । मागमं तस्य दिव्यस्य प्रपुं समुपवस्रजे  
राम उवाच ।

भरतपुत्रमिदं ब्रह्मप्रप्राप्यं ॥ महाक्षिणाम् । कथं भगवता प्राप्तं पुत्रो वा येन विजिज्ञे  
पुनूदलवशाद्येव पृच्छामि त्वां महामते । करतले स्थिते रत्ने कर्मफलं प्रकाशने  
अथमं तद्वाज्जानीयात्सर्वशास्त्रेषु गदितम् । दिशः प्रकाशयेद्यत्तन्मध्यमं मुनिसत्तम  
ऊर्ध्वगं त्रिशिखं यत्स्यादुत्तमं तदुदाहृतम् । एतामुत्तमजातानि स्रविभिर्कीर्तितानि

भाभर्याणां यद्वनो हि दिव्यानां भगवान्निधिः ।

एवं वदति काकुत्स्थे मुनिर्षास्वमयाप्रधीम् ॥ ६० ॥

भगस्तथ उवाच ।

भगु राम पुरादृष्टं पुत्रयेतायुगेमदम् । द्वापरे ममनुव्रान्ते वने यदुदलवानम् ॥ १ ॥  
भाभरं मुदहावाहो निशेष मयुकरम् । पुरा येतायुगे द्वासीदृश्यं यदुविस्तारम् ॥ २ ॥  
समस्तयोद्भवस्य मृगयाप्रविषञ्जितम् । तस्मिन्निष्पुदरेऽरण्ये विर्भावस्ता ॥ ३ ॥  
अहमहमिदं सौम्य तदृश्यमुवाच मे । तस्यावश्यस्य दध्यं तु युक्तं मूलजले ॥ ४ ॥  
यत्केन्दुचिदाकारेणैवास्ति मुखावने । तस्यावश्यस्य मध्ये तु पद्मयोद्भववानम् ॥ ५ ॥  
इत्यकारदवाकाशं बहवाकोपतोन्नितम् । तत्राभरं मयादृष्टं सतः पश्योन्नितम् ॥ ६ ॥  
विस्मयिह्यदृष्टवाक्यं बहवर्हिकार्थयुतम् । स्मरणे तस्य सामुद्रकाकां स्मृत्वा ॥ ७ ॥  
देवं पुण्यनुकम्पितं सर्वविस्मयिजितम् । तत्रावभवत् तानि देवयोः पुत्रयोः ॥ ८ ॥  
प्रधानं पुराणस्य समस्तदृष्टवान् । अथार्यं यममदम्पुत्राणां वीर्यम् ॥ ९ ॥  
स्मृतं यत्तत्तस्य सारं यत्किञ्चित् । तद्वं विवर्तमानं मुनिभिः ॥ १० ॥

अस्य तीरे न वै प्राणी को धाप्येप सुरर्षभः ।

मुनिर्षा पार्थिवो धापि क मुनिः पार्थिवोऽपि वा ॥ ७१ ॥

अथवा पार्थिवमुतस्तस्यैवं सम्भवः कृतः । अतीतेऽहनि रात्रौ वा प्रातर्वापि मृतो यदि

अवश्यं तु मया ज्ञेया सरसोऽस्य विनिष्क्रिया ।

यावदेवं स्थितश्चाहं चिन्तयानो रघूत्तम ॥ ७२ ॥

अथापश्यं मुहूर्तांस्तु दिव्यमद्भुतदर्शनम् । विमानं परमोदारं हंसयुक्तं मनोजघम् ॥ ७४ ॥

पुरस्तत्र सहस्रं तु विमानेऽप्सरसां नृप । गन्धर्वाश्चैव तत्संख्या रमयन्ति परं नरम् ॥

गायन्ति विष्णोयानि धादयन्ति तथापरे । अथापश्यं नरं तस्माद्विमानावधरह्य तु ॥ ७६ ॥

शबमांसं भक्षयन्तं ज्ञात्वा रघुकुलोद्भव । ततो भुक्त्वा यथाकामं समांसं बहुषीपरम् ॥

अवतीर्थ सरः शीघ्रमाठरोह दिवं पुनः । तमहं देवसङ्काशं धिया परमयान्वितम् ॥ ७८ ॥

भोभोस्वर्गिन्महाभाग पृच्छामि त्वां कथं त्विदम् ।

तु गुप्तिस्तस्तवाहारो गतिश्चेयं तषोत्तमा ॥ ७९ ॥

यदि गुह्यं न चैतत्ते कथय त्वघ मे भवान् । कामतः श्रोतुमिच्छामि किमेतत्परमं घवः

को भवान्घटसम्बेदमाहारश्चविगर्हितः । त्वयेदं भुञ्ज्यसे सौम्य किमर्थं क्व च पतसे ॥

फलपायमैश्वरो भावः शक्त्यैव विनिर्मितः ।

आहारं च कथं निन्द्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ८० ॥

तूष्ठा च भापितं तत्र मम राम सतांबर । प्राञ्जलिः प्रत्युवाचेर्दं सस्वर्गो रघुनन्दन ॥

श्वेत उवाच ।

शृणुष्यामि यथावृत्तं ममेदं सुखदुःखजम् । कामो हि दुरन्तिक्रम्यः शृणु यत्पृच्छसे द्विज

प वैदर्भको राजा पिता त्वि महायशसः वासुदेव इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु धार्मिकः

तस्य पुत्रद्वयं ब्रह्मन्द्राम्यां स्त्रीभ्यामजायत ।

महं श्वेत इति ख्यातो यधीयान्सुरयोऽभवत् ॥ ८६ ॥

पितर्युपरते तस्मिन्पौरा मामभ्यपेक्षयन् । तत्राहं कारयन्पुत्र्यं धर्मं चासं समाहितः ॥

एवं पर्यसद्वस्त्राणि बहूनि समुपाव्रजन् । मम राज्यं कारयतः परिपालयतः प्रजाः ॥ ८८ ॥

सोऽहं निमित्ते कस्मिंश्चिद्वैराग्येण द्विजोत्तम । मरणं हृदये कृत्वा तपोधनमुपागमम् ।  
सोऽहं वनमिदं रम्यं भृशं पक्षिविवर्जितम् । प्रविष्टस्तप नास्पातुमस्यैव सरसोऽन्तिवे  
राज्येऽभिषिच्य सुर्यं भ्रातरं तं नराधिपम् ।

इदं सरः समासाद्य तपस्तप्तं सुदारुणम् ॥ ६१ ॥

दशवर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महाबने । शुभं तु भवनं प्राप्तो ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ ६२ ॥  
स्वर्गस्थमपि मां ब्रह्मन्भुत्पिपासे द्विजोत्तम । अवाधेतां भृशं चाहमभवं व्यपितेन्द्रिफ-  
ततस्त्रिभुवनश्रेष्ठमघोचं वै पितामहम् । भगवन्स्वर्गलोकोऽयं क्षुत्पिपासाविवर्जितः ।  
कस्येयं कर्मणः पक्तिः क्षुत्पिपासे यतो हि मे । आहारः कञ्चमे देव ब्रूहित्वं भीषिताम्  
ततः पितामहः सम्यक्चिरं ध्यात्वा महामुने ।

मामुवाच ततो वाक्यं नास्ति भोऽयं स्वदेहजम् ॥ ६३ ॥

ऋते स्वानि तु मांसानि भक्षय त्वं तु नित्यशः । स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता तपउत्तम-  
नादत्तं जायते तात इवेत पश्य महीतले । आग्रहाद्विष्णुमाणाय भिक्षापि प्राणिने पुत्र ।  
न हि दत्ता गृहे भ्रान्त्या मोहादतिथये तदा । तेन स्वर्गागतस्यापि क्षुत्पिपासे तवापुत्र-  
स त्वं प्रपुष्टमाहारैः स्वशरीरमनुत्तमम् । भक्षयस्व च राजेन्द्र सा ते वृत्तिर्भविष्यति ।  
पयमुक्तस्ततो देयं ब्रह्माणमहमुक्तपान् । भक्षिते च स्वके देहे पुनरन्यन्न मे विनो ।  
क्षुधानिवारणे नैव देहस्यास्य चिर्नोदनम् । खादामि ह्यक्षयं देव प्रियं मे न हि जायते ।  
ततोऽप्रवीत्युनग्रंहा तव देहोऽक्षयः कृतः । दिने दिने ते पुष्टात्मा शयः श्वेत भविष्यति  
याषद्वर्षशतं पूर्णं स्वमांसं खाद भोऽनृप । यद्वागच्छति चागस्त्यः श्वेतारण्ये महातप-  
भगवानतिदुर्धर्षस्तदा कृच्छ्रादिमोक्षयसे । स हि तारयितुं शकः सेन्द्रानपि सुरामुप-  
आहारं कुत्सितं चेमे राजर्षे किं पुनस्तप । सुरकायं महत्तेन सुकृतं तु महात्मना ।  
उद्धि निजलं कृत्वा दानवाश्च निपातितः । विन्ध्यश्चादित्यविद्रेपाद्भ्रमं नो निवारि-

लम्पमाना मही चेपा गुह्येनाधिपासिता ।

दक्षिणादिन्ध्रिं याता त्रैलोक्यं विषमं स्थितम् ॥ १०८ ॥

मया गत्वा सुरैः सार्धं प्रेषितो दक्षिणादिशम् ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ] • अयस्त्येन श्वेतराष्ट्रः सत्काशाद्रत्नकङ्कुणप्रतिग्रहघर्णनम् • ३५३

समां कुरु महाभाग गुरुत्वेन जगत्समम् ॥ १०६ ॥

एवं च तेन मुनिना स्थित्या सर्वा धरा समा । कृता राजेन्द्र मुनिना एवमद्यापिदृश्यते ॥  
सोऽहं भगवतः धृष्ट्या देषदेषस्य भाषितम् । भुञ्जे च कुत्सिताहारं स्थशरीरमनुत्तमम् ॥  
पूर्णं वर्षशतं चाद्यं भोजनं कुत्सितं च मे । क्षयं नाभ्येति तद्विप्रवृत्तिश्चापि ममोत्तमा ॥  
तं मुनिं रुच्छसन्तप्तमभिनतयामि दिवानिशम् । कदा वै दर्शनं मह्यं समुनिर्दास्यतेवने ॥  
एवं मे चिन्तयानस्य गतंवर्षशतान्विह । सोऽयमस्यो हि गतिर्ग्रहान्मुनिर्मे भविताद्युचम् ॥  
गतिर्भविता मह्यं कुम्भयोनिमृतेद्विजम् । ध्रुवैरथं भाषितं राम दृष्ट्वाहारं च कुत्सितम् ॥  
अप्यापय्या युक्तस्तं नृप स्वर्गंगामिनम् । करोम्यहं सुधाभोज्यं माशयामि च कुत्सितम् ॥  
वेन्त्यभित्ययोचं तमगस्त्यः किं करिष्यति । महमेतत्कुत्सितं तेनशयामि महामते ॥

इत्थितं प्रार्थयस्वास्मान्मनः प्रीतिकरं परम् ।

सत्यग्रीं मां ततः प्राह कथं ब्रह्मचरोऽन्यथा ॥ ११८ ॥

कर्तुं मुने मया शक्यं न चाभ्यस्तारयिष्यति । ऋते वै कुम्भयोनिर्तं मैत्रायणसम्भयम् ॥  
अपृष्टोऽपि मया ब्रह्मन्नेवमूचे पितामहः । एवं ब्रुवार्णं तं श्वेतमुकधानहमस्मि सः ॥

भागतस्तथ भाग्येन दृष्टोऽहं नात्र संशयः ।

ततः स्वर्गो समां हारावा दण्डवत्पतितो भुवि ॥ १२१ ॥

तमुत्थाप्य ततो रामाब्रवीं किं ते करोम्यहम् ।

रात्रोवाच ।

आहारात्कुत्सिताद्ब्रह्मंस्तारयस्वाद्यदुष्टतात् ॥ १२२ ॥

येन लोकोऽक्षयः स्वर्गो भविता त्वत्कृतेन मे । ततः प्रतिग्रहो दत्तो जगद्वन्द्यनृपेण हि ॥  
भवाग्मात्रमुत्कृष्टात् प्रतीच्छस्व प्रतिग्रहम् । इदमाभरणं सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम ॥  
ब्रह्मर्षे प्रतिवृत्तीष्य प्रसादं कर्तुमर्हसि । इह गात्रं सुघर्णं च धनं यस्यसमन्वितम् ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विप्र्ये ददाम्याभरणं त्वहम् ।

सर्वकामप्रदं तुभ्यं सर्वान्भोगांश्च ते द्विज ॥ १२६ ॥

तारणे ॥ भवान्मह्यं प्रसादं कर्तुमर्हति ।

वासोऽस्मि ते धरा रोहे भक्तं मां भज शोभने ॥ २८ ॥

अगस्त्य उवाच ।

तस्यैवं तु घृषाणस्य मदोन्मत्तस्य कामिनः । भार्गवी प्रत्युवाचेद् बचः सविनयं

भरजोघाच ।

भार्गवस्य सुतां चिद्धि शुक्रस्याङ्घ्रिकर्मणः । भरजां नाम राजेन्द्र उद्येष्टामाश्रमवासी  
शुक्रः पिता मे राजेन्द्र त्वं च शिष्यो महात्मनः । धर्मतो भगिनी चार्ह भगामिन्

एवं विधं यच्चो यत्तुं न त्वमर्हसि पार्थिव ।

अन्येभ्योऽपि सुदुष्टेभ्यो रक्ष्या चार्ह सदा त्वया ॥ ३२ ॥

क्रोधतो मे पिता रौद्रो भस्मत्वं त्वां समानयेत् ।

अथवा राजधर्मेणासम्बन्धं कुरुषे यत्नात् ॥ ३३ ॥

पितरं याचयस्यत्वं धर्मदूष्टेन कर्मणा । धरयस्व नृपश्रेष्ठ पितरं मे महाद्युतिम् ॥

अन्यथा विपुलं दुःखं तव घोरं भवेद्बुधम् । क्रुद्धो हि मे पिता सर्वत्रैलोक्यमभिनि

अगस्त्य उवाच ।

ततोऽगुभं महाघोरं भ्रुत्पादण्डः सुदारुणम् । प्रत्युपाच मदोन्मत्तः शिरसाभिनतः

दण्ड उवाच ।

प्रसादं कुरु सुभ्रोणि कामोन्मत्तस्य कामिनि । त्वया रुद्धाममप्राणाविशीर्यन्ते गुण  
त्वां प्राप्य घैरं मेऽत्रास्तु यथो वापि महत्तरः । भक्तं भजस्य माभीरुत्पविमि

अगस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा तु तां कन्यां यत्नात्सङ्गृह्य यातुना । अन्येन राजा हस्तेन विधत्ता सा तया

भङ्गमङ्गे समान्निष्ठप्यामुखे चैव मुखं कृतम् । विस्फुरन्ती यथाकामं मैथुना योषवत्

तमनर्थं महाघोरं दण्डः कृत्वा सुदारुणम् । नगरं स्वं जगामाशु मदोन्मत्तः । य इति

भार्गवी रुदती रीना आधमस्याविदूरतः । प्रत्यपालयदुद्विग्ना पितरं देवसमिप्य

३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००



॥ अनचत्वारिंशोऽध्यायः ] \* दण्डराजकथानुकम्पम् \*

३५३

तस्य रोयः समभषत्क्षुधार्तस्यमहात्मनः । निर्दहप्रिवलोकांस्त्रींस्तांश्चिष्यान्समुवाच ह  
भार्गव उवाच ।

पश्यध्वं विपरीतस्य दण्डस्यादीर्घदर्शिनः । विपश्चिं घोरसङ्क्रुशां दीप्तामग्निशिखामिव  
यत्राशं दुर्गतिं प्राप्स्यन्तानुगच्छ न संशयः । यस्तु दीप्तदुताशस्य भविः संस्पृष्टपानिह ॥  
यस्मात्सकृतयान्पापमीदृशं घोरसम्मितम् ।

तस्मात्प्राप्स्यति दुर्मेधाः पांस्तुवर्षमनुत्तमम् ॥ ४८ ॥

कुराजादेशसंयुक्तः सभृत्यबलवाहनः । पापकर्मसमावारो यधंप्राप्स्यतिदुर्मेतिः ॥  
समन्ताद्योजनशतं विषयं चास्य दुर्मेतेः । धुनोतु पांस्तुवर्षेण महता पाकशासनः ॥  
सर्वसत्त्वानि यानीह जङ्गमस्थापराणिवै । सर्वेषां पांस्तुवर्षेण क्षयः क्षिप्रं भविष्यति ॥  
दण्डस्य विषयोयावत्तापरासयनमाधमम् । पांस्तुवर्षमिवाकस्मात्सततत्र भविष्यति  
भगस्य उवाच ।

इत्युक्त्वा क्रोधसन्तप्तस्तमाध्रमनिपातिनम् । जनं जनपदस्यान्ते स्थापयतामित्युवाच ॥  
उक्तमात्रे उशनसा भाध्रमायसस्यो जनः । क्षिप्रं तु विषयात्तस्मात्स्थानं वधे च यावतः  
तं तद्योक्त्वा मुनिजनमरजामिदमप्रणीत् ।

भार्गव उवाच ।

भाध्रमे त्वं तुदुर्मेधे यस्य खेह समाहिता ॥ ५५ ॥

एवं योजनपर्यन्तमाध्रमं कविष्यमम् । भरजेविरजास्तिष्ठ कालमत्र समारुहन् ॥

भगस्य उवाच ।

धुत्वा नियोगं विप्रैररजामिदमप्रणीत् । तथेति पितरं प्राह भार्गवं भृशदुःखिता ॥  
इत्युक्त्वा भार्गवो पासं तस्मादन्यमुपाकमम् । सताहं भस्मसादुभूतं यथोक्तं दण्डवादिना  
तस्माद्दण्डस्य विषयो विन्यस्तस्य मानुष । शमो द्युशनसा राम तदाभूदपेक्षिते ॥  
उक्तः प्रभृति काकुत्स्थ दण्डकारण्यमुत्पतं । एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां पृच्छसि राघव  
सन्ध्यामुपासितुं वीर समस्यो ह्यतिपतं । एते महर्षयो राम पूर्णकुम्भाः समन्ततः ॥  
छत्रोदका नखपात्र पूजयन्ति दिवाकम् । सर्वे च विनिरुदस्ते स्तोत्रैर्ब्रह्मरिभिः हतेः

वासोऽस्मि ते परारोहे भक्तं मां मज्ज शोभने ॥ २८ ॥

अगस्त्य उवाच ।

तत्सपेयं तु युवाणस्य मदीन्मत्तस्य कामिनः । भार्गवी प्रत्युवाचेदं वचः सति

अरजोवाच ।

भार्गवस्य सुतां चिद्धि शुभस्याक्षिप्तकर्मणः । अरजां नाम राजेन्द्रज्येष्ठामात्र  
शुकः पिता मे राजेन्द्र त्वं च शिष्यो महात्मनः । धर्मतो भगिनी चाहं भवामि

एवं विधं वचो वक्तुं नत्थमर्हसि पार्थिव ।

अन्येभ्योऽपि सुदुष्टेभ्यो रक्ष्या चाहं सदा त्वया ॥ ३१ ॥

क्रोधनो मे पिता रीद्वोमस्मत्त्वं त्वां समानयेत् ।

अथवा राजधर्मेणासम्बन्धं कुरुषे यत्नात् ॥ ३३ ॥

पितरं याचयस्वत्वं धर्मदृष्टेन कर्मणा । धरत्यस्व नृपश्रेष्ठ पितरं मे महत्पुत्रि  
अन्यथा विपुलं दुःखं तव घोरं भवेद्बुधम् । कुडोहि मे पिता सर्वत्रैलोत्पन्नः

अगस्त्य उवाच ।

ततोऽशुभं महाघोरं धृत्वादण्डः सुदारुणम् । प्रत्युवाच मदीन्मत्तः शिरसाभि

दण्ड उवाच ।

प्रसादं कुरु सुभोणि कामोन्मत्तस्य कामिनि । त्वया स्तुतममप्राणाविहीनः  
एषां प्राण्य येन मेऽन्नास्तु वधो यापि महत्तरः । भक्तमजस्य मांभीदत्यविमर्शः

अगस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा तु तां कथ्यते यत्नारस्तद्वृत्त्यं यादुना । अन्येन राजाहस्तेन विषादना  
भक्तमज्जे समानिदृश्यते नयेवैव मुखं हृतम् । विस्फुरन्ती यथाकाममैशुवारोव  
तामग्रां महाघोरं दण्डम् । नगरं स्वं जगामाशु मदीन्मत्तः  
भक्तः सती दानाः । प्रत्यपान्तवदुद्धिप्रा पितरं देवस्य

तस्य रोषः सममपत्क्षुपार्तस्यमहात्मनः । निर्दहन्निघलोकांस्त्रींस्ताडिशप्यान्समुपावह

भार्गव उवाच ।

पश्यध्वंविपरीतस्य दण्डस्यादीर्घदर्शिनः । विपत्तिं घोरसद्भाशां दीप्तामग्निशिखामिव  
यन्नाशं दुर्गतिं प्राप्तस्तानुगच्छ न संशयः । यस्तु दीप्तदुताशस्य भस्विः संस्पृष्टवानिह ॥

यस्मात्सदृतावान्पापमीदृशं घोरसम्मितम् ।

तस्मात्प्राप्स्यति दुर्मैघाः पांसुवर्षमनुत्तमम् ॥ ४८ ॥

कुराजादेशसंयुक्तः सभृत्यपलपाहनः । पापकर्मसमाचरो बध्मप्राप्स्यतिदुर्मैतिः ॥  
तमन्ताघोजनशतं विषयं चास्य दुर्मैतेः । धुनोतु पांसुवर्षेण महता पाकशासनः ॥  
उर्वसत्त्वानि यानीह जङ्गमस्थाधराणि वै । सर्वेषां पांसुवर्षेण क्षयः क्षिप्रं भविष्यति ॥  
दण्डस्य विषयोपावृत्ताघटसचनमाश्रमम् । पांसुवर्षमिवाकस्मात्सत्तरात्रं भविष्यति  
भगस्स्य उवाच ।

त्युचया क्रोधसन्ततस्तमाश्रमनिपासिनम् । जनं जनपदस्यान्ते स्वीयतामित्युवाच ह  
कमात्रे उशनसा भाभमाचसधो जनः । क्षिप्रं तु विषयात्तस्मात्स्थानं चक्रे च पाह्यतः  
तं तथोचया मुनिजनमरजामिदमवधीत् ।

भार्गव उवाच ।

आश्रमे त्वं सुदुर्मैघे वस चेह समाहिता ॥ ५५ ॥

[ योजनपर्वन्तमाश्रमं दक्षिणप्रभम् । अरजेचिरजास्तिष्ठ कालमत्र समाश्रितम् ॥

भगस्स्य उवाच ।

त्वा नियोगं विप्रपैररजा भार्गवी तदा । तथेति पितरं प्राह भार्गवं भृशदुःखिता ॥  
युचया भार्गवो घासं तस्मादन्यमुपाक्रमत् । सप्ताहे भस्मसादुभूतं यथोक्तं ब्रह्मवादिना  
मादण्डस्य विषयो विन्ध्यशैलस्य मानुषः । शतो ह्युशनसा राम तदाभूदर्पणवृत्ते ॥  
ततः प्रभृति काकुत्स्थ दण्डकारण्यमुच्यते । एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां पृच्छसि राघव  
सन्ध्यामुपासितुं वीर समयो ह्यतिवर्तते । एते महर्षयो राम पूर्णकुम्भाः समन्ततः ॥  
ह्योदका नरव्याघ्र पूजयन्ति दिवाकरम् । सर्वैश्च विभिरभ्यस्तेः स्तोत्रैर्ब्रह्मादिभिः कृतेः

रधिरस्तं गतो राम गत्वोदकमुपस्पृश ।

पुलस्त्य उवाच ।

ऋषेर्वचनमादाय रामः सन्ध्यामुपासितुम् ॥ ६३ ॥

उपचक्रामतत्पुण्यं स सरो रघुनन्दनः । अथ तस्मिन्वनोद्देशे रम्ये पादपशोभिते  
नदीपुण्ये गिरिचरे कोकिलाशतमण्डिते । मानापक्षिरघोद्याने नानामृगसमाकुले  
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णं नानाद्विजसमावृते । गृध्रोत्कृष्टप्रवसितौ यद्वन्यर्पणान्वितौ  
अथोत्कृष्टस्य भवनं गृध्रः पापघनिश्चियः । ममेदमिति हृत्वा सौ कलहं तेन चाकरो  
राजा सर्वस्यलोकस्य रामो राजीवलोचनः । तं प्रपद्यावहं शीघ्रं कस्यैतद्भवनं भवेत्  
गृध्रोत्कृष्टं प्रपद्येतां जातकोपायमर्पिणौ । रामं प्रपद्यतां शीघ्रं कलिव्याकुलचेतसौ  
तौ परस्परविद्वेषौ स्पृशतश्चरणौ तथा । अथ दृष्ट्वा राघवेन्द्रं गृध्रो घबनमप्रवीत्

गृध्र उवाच ।

सुराणामसुराणां च त्वं प्रधानो मतो मम । बृहस्पतेश्च शुकाश्च त्वं विशिष्टो महामरि  
परायणो भूतानां मर्त्ये शक इषापरः । दुर्निरीक्षो यथासूर्यो हिमवानिव गौरवे  
सागरश्चासि गाम्भीर्यं लोकपालो यमो ह्यसि ।

क्षान्त्या धरण्या तुल्योऽसि शीघ्रत्वे ह्यनिलोपमः ॥ ७३ ॥

गुरुस्त्वं सर्वसम्पन्नो विष्णुकुलोऽसि राघव । अमर्यो दुर्जयो जेता सर्वास्त्रविधिपाता  
शृणु त्वं मम देवेश चित्ताप्यं नरपुङ्गव । ममालयं पूर्ववत्तं यानुधीर्येण ये प्रभो ॥ ७५ ॥  
उत्कृष्टो हर्षते राजस्तत्समीपे विशेषतः । ईदृशोऽयं दुराचारस्त्वदाशालङ्घको नृप  
प्राणान्तिथेन दण्डेन राम शसितुमर्हसि । पपमुक्ते तु गृध्रेण उत्कृष्टकोपास्पमप्रवीत्  
शृणु देव मम क्षाप्यमेकचित्तो नराधिप । सोमाच्छकाश्च सूर्याश्च धनदाश्च यमास्तथा  
जायतेऽपेनृपो राम किञ्चिद्भवति मानुषः । त्वं तु सर्वमयो देवो नारायणपरायणः  
प्रोच्यते सोमता राजन्सम्पत्कार्ये विचारिते ।

सम्यग्रक्षसि तापेभ्यस्तमोघ्नो हि यतो मयान् ॥ ८० ॥

दोषे दण्डात्प्रजानां त्वं यतः पापमयापहः ।

दाता प्रहर्ता मोक्षो च तेनेन्द्र इव नो मवान् ॥ ८१

अभृष्यः सर्वभूतेषु तेजसा चानलो मतः । अमीक्ष्यं तपसे पापांस्तेन त्वं रामभास्करः  
साक्षाद्विज्ञेयशतुल्यस्त्वमथवा घनदाधिकः ।

चित्तायत्ता तु पत्नी श्रीर्नित्यं ते राजसत्तम ॥ ८३ ॥

घनदस्य तु कोशेन घनदस्तेन वै मवान् । समः सर्वेषु भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥  
शत्रौ मित्रे च ते दृष्टिः समन्ताद्याति राघव । धर्मेण शासनं नित्यं व्यवहारविधिक्रमैः

यस्य रूप्यसि वै राम मृत्युस्तस्याभिधीयते ।

गीयसे तेन वै राजन्यमदस्यभिधिधृतः ॥ ८६ ॥

यश्चासौ मानुषो भाषो भवतो नृपसत्तम । भानृशंस्यपरो राजा सर्वेषु रूपयान्पितः ॥  
दुर्बलस्यत्वेनायस्य राजा भवति वै बलम् । असश्रुयो भवेद्यधुरमतेषु मतिर्भवेत् ॥  
अस्माकमपि नायस्त्वं ध्रुवतां मम धार्मिक । भवता तत्र मन्तव्यं यथैते किल पक्षिणः

योऽस्मन्नायः स पक्षीन्द्रो भवतो विनियोज्यकः ।

अस्वाम्यं देयनास्माकं सन्निधौ भवतः प्रभो ॥ ९० ॥

भवतैव हृतं पूर्वभूतमामं चतुर्विधम् । ममालयमपिष्टस्तु गृध्रो मां पापते नृप ॥ ९१ ॥

भवान्देवमनुष्येषु शास्ता वै नरपुङ्गव ।

पुलस्त्य उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा ॥ वै रामः सचिवानाहुयत्स्ययम् ॥ ९२ ॥

पिष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो राष्ट्रवर्धनः । अशोको धर्मपालश्च

महाबलः ॥

एते रामस्य सचिवा राज्ञो दशरथस्य च । नीतियुक्तमहात्मानः

तुरान्ताश्च कुलीनाश्च नयेमन्त्रे च

गान्धर्वः च

गृध उवाच ।

इयं पद्ममती राम मानुषैर्यदुवाहुमिः । उच्छ्रितैराचिता सर्वा तदा प्रभृति मनुजैः  
उलूकस्त्यग्रपीद्रामं पादपेरुपशोमिता । यदैष पृथिवी राजंस्तदाप्रभृति मे गृहम् ।

एतच्छ्रुत्वा तु रामो वै समासद उवाच ह ॥ १०० ॥

राम उवाच ।

न सा समा यत्र न सन्ति वृद्धाः वृद्धा न ते ये न यदन्ति धर्मम् ।

नासौ धर्मो यत्र न चास्ति सत्यं न तत्सत्यं यच्छलमभ्युपैति ॥ १०१ ॥

ये तु सम्याः समां गत्वा तूष्णीं ध्यायन्त आसते ।

यथाप्राप्तं न वृषते सर्वे तेऽनृतवादिनः ॥ १०२ ॥

न वक्ति च धृतं यश्च कामकोधात्तपामयात् । सदसं वारुणाः पाशाः प्रतिमुञ्चन्ति तं

तेषां संवत्सरे पूर्णे पाश एकः प्रमुच्यते । तस्मात्सत्यं तु वक्तव्यं जानता सत्यमत्र

एतच्छ्रुत्वा तु सविद्या राममेवाग्र्यंस्तदा । उलूकः शोभते राजसत्तु गृध्रो महामते

त्वं प्रमाणं महाराज राजा हि परमा गतिः । राजमूलाः प्रजाः सर्वा राजा धर्मः सत्ता

शास्ता राजा नृणां येषां न ते गच्छन्ति दुर्गतिम् ।

वैषस्वतेन मुक्ताश्च भवन्ति पुरुषोत्तमाः ॥ १०३ ॥

सविद्यानां वचः श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् । ध्रुवतामभिधास्यामि पुराणं यदुदाह

र्योः सचन्द्रार्कनक्षत्रासपर्यंतमहीदुमम् । सलिलार्णवंसंगमं शैलोक्यं सचयवप

एकमेव तदाहासीत्सर्वमेकमिचाम्बयम् । पुनर्भूः सहलक्ष्म्या च विष्णोर्जठरमाविशत्

तां निगृह्य महातेजाः प्रविश्य सलिलार्णवम् । सुध्याप हि कृतात्मनः ॥ यदुच्यते तान्य

विष्णोः सुप्ते ततो ग्रहा विवेश जठरं ततः । यदुच्यते च तं स्मृत्यामहायोगीसमाविध

नाभ्यां विष्णोः समुद्भूतं पद्मं हेमविभूषितम् ।

स तु निर्गम्य वै ग्रहा योगी भूत्वा महाप्रभुः ॥ ११३ ॥

सिद्धधुः पृथिवीं पायुं पर्यतांश्च महीमहान् । तदन्तराः प्रजाः सर्वा मानुषाश्च सरीसृपा

जपपुत्राण्डजान्सर्वान्ससर्जं स महातपाः । तस्य गात्रसमुत्पन्नः केटमो मधुनासद -

दानवीं तौ महावीर्यौ घोरौ लब्धवरी तदा । दृष्ट्वा प्रजापतिं नृ कोधाविष्टावभौनृ  
वेगेनमद्वतामोक्तुं स्वयम्भुवमघावताम् । दृष्ट्वासत्त्वानिसर्वाणिनिस्सरन्ति पृथक्पृथक्  
ग्रहणा संस्तुतो विष्णुर्हत्वा तौ मधुकैटमौ । पृथिवीं धर्षयामास स्थित्यर्थं मेदसातयोः  
मेदो गन्धा तु धरणी मेदिनीत्यभिधांगता । तस्मान्नगृध्रस्य गृहमुलूकस्य तदाऽभवत्

तस्माद्गृध्रस्त्वसत्यो वै पापकर्मा परालयम् ।

स्वीयं करोति पापात्मा दण्डनीयो न संशयः ॥ १२० ॥

ततोऽशरीरिणी घाणो अन्तरिक्षात्प्रभापते । मा वधी राम गृध्रत्वंपूर्वं दग्धं तपोबलात्  
पुरा गौतमदग्धोऽयं प्रजानाथो जनेश्वर । ग्रहदत्तस्तु नामैव शूरः सत्यप्रतः शुचिः ॥  
गृहमागत्यविप्रोऽस्य भोजनं प्रस्थयाचत । सार्धं वर्षशतं चैव भुक्तयान्पुनस्ततम् ॥ १२१ ॥  
ग्रहदत्तस्तु वै तस्य पाद्यमर्घ्यं स्वयं ततः । आत्मनैवाकरोत्सम्यग्भोजनार्थं महाद्युते ॥  
समाविश्य गृहं तस्य आहारे तु महात्मनः । नारीं पूर्णस्तनीं दृष्ट्वाहस्तेनाधपरामृत्वा  
अध कुञ्जेन मुनिना शापो दत्तः सुदादणः । गृध्रत्वं गच्छवैमूढ राजा मुनिमधामपीत्  
हृषां कुव महाभाग शापोद्धारो भविष्यति । दयानुस्तद्वचः धृत्वा पुनराह नराधिप ॥  
दत्तस्त्वयते रघुकुले रामो नाम महायशः । इक्ष्वाकूणां महाभागो राजारानीपलोचनः  
तेन दृष्टो विपापस्त्वं भविता नरपुङ्गव । दृष्टो रामेण तच्छ्रुत्वा यभूय पृथिवीपतिः ॥  
दृष्टत्वं त्वय्य वै शीघ्रं दिव्यगन्धानुलेपनः । पुरुषो दिव्यरूपोऽसौ यभावे तं नराधिपम्  
ज्ञापुराचय धर्मवत्त्वत्प्रसादहं विभो । विमुक्तो नरकाद्दोरादपापस्तु त्वया हनः ॥  
वैसर्जितं मया गाढ्यं नररूपी महीपतिः । उलूकं ग्राह धर्मज्ञ स्वगृहं पिश कौशिक ॥  
अहं सन्ध्यामुपासित्वा यमिष्ये यत्र वै मुनिः ।

अपोदकमुपस्पृश्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ॥ १२३ ॥

आधर्मं प्रापिशद्रामः कुम्भयोनेर्महात्मनः । तस्यागस्त्यो बहुगुणं फलमूर्लं च सादाम्  
रसवन्ति च शाकानि भोजनार्थमुपाहरत् ।

सभुक्तयान्नरन्यामस्तदन्तममृतोपमम् ॥ १२५ ॥

प्रीतश्च पतिपृष्ठं तां रात्रिं समुवाचसत् । प्रभाते फलपुण्याय हृत्पाऽऽदिकमरिम्भम् ॥

ऋषिसममिच्छकाम गमनाय रघूत्तमः । अमिवाद्याध्वीन्द्रामो महर्षि कुम्भसम्ममम् ।  
आपृच्छे साधये ब्रह्मन्ननुज्ञातुं त्वमर्हसि । धन्योऽस्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनेन महामुने

दिष्ट्या चाहं भविष्यामि पाचितात्मा महात्मनः ।

एवं मृषति काकुत्स्थे वाक्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १३६ ॥

उवाच परमप्रीतो वाप्पनेप्रस्तपोधनः । अत्यद्भुतमिदं वाक्यं तव राम शुभाक्षरम् ॥१४०॥  
पावनं सर्वभूतानां त्वयोक्तं रघुनन्दन । मुहूर्तमपि राम त्वां मैत्रेणोक्षन्ति ये वराः ।  
पाचितास्सर्वसूक्तैस्ते कथ्यन्ते त्रिदिवौकसः । ये च त्वां घोरचक्षुर्भिरीक्षन्ते प्राणिनो भुवि  
ते हता ब्रह्मक्षणेन सद्यो नरकगामिनः । ईदृशस्त्वं रघुध्रेष्ठ पावनः सर्वदेहिनाम् ॥१४१॥  
कथयन्तश्च लोकास्त्वां सिद्धिमेप्स्यन्ति राघव । गच्छ स्वानातुरोऽविघ्नपन्थानमकुतोभयः  
प्रशाधि राज्यं धर्मेण गतिस्तु जगतां भवान् । एवमुक्तस्तु मुनिना प्राञ्जलिप्रमहो नृप

अमिवाद्यितुं चक्रे सोऽगस्त्यमृषिसत्तमम् ।

अमिवाद्य मुनिश्रेष्ठास्तांश्च सर्वान्स्तपोऽधिकान् ॥ १४६ ॥

अधारो हत्तदा ज्यमः पुष्पकं हेमभूषितम् । तं प्रयान्तं मुनिगणा आशीर्वादैस्समन्ततः ।  
अपू पुजन्नरेन्द्रं तं सहस्राक्षमिवामराः । ततोऽर्धद्विषसे प्राप्ते रामः सर्वार्थकोविदः ।  
अयोध्यां प्राप्य काकुत्स्थः पद्भ्यां कक्षामवातरत् । ततो विसृज्य कबिरं पुष्पकं कामवाहितम्

कक्षान्तराद्विनिष्कम्य द्वास्स्थाग्राजाऽग्रीदिदम् ।

लक्ष्मणं भरतं चैव गच्छध्वं लघुचिकमाः ॥ १५० ॥

ममागमनाख्याय समानयत मा वरम् । श्रुत्वाऽप्यभाषितं द्वास्स्था रामस्याक्लिष्टकर्मकः  
गत्वा कुमारपादौ राघवाय न्यषदेयन् । द्वास्स्थेः कुमारपातोती राघवस्य निदेशतः  
दृष्ट्वा तु राघवः प्राप्नो विप्रो भरतलक्ष्मणौ । समालिङ्ग्य तु रामस्तौ वाक्यं चेदमुवाच च  
कृतं मया यथातथ्यं द्विजकार्यमनुत्तमम् । धर्महेतुमतो भूयः कर्तुमिच्छामि राघवी ।

राजसूयं कर्तुत्तमम् । सहितो यष्टुमिच्छामि यत्र धर्मश्च शाख्यः

पूर्वं ब्रह्मणा लोककारिणा । शतत्रयेण यज्ञानामिष्टं पष्ट्यधिकेन च ।  
इहा हि राजसूयेन सोमो धर्मेण धर्मयित् ।



प्राप्तः सर्वेषु लोकेषु कीर्तिमानमनुजमम् ॥ १०५ ॥

इहा हि राजसूयेन मित्रः शत्रुनिर्वहण । मुहूर्तममुं न ॥ १०६ ॥

तस्माद्वधन्तो सञ्चिन्त्य कार्येऽस्मिन्व ॥ १०७ ॥

भरत उवाच ।

त्वं धर्मः परमः साधो न्ययि सर्वा वसुन्धरा ॥ १०८ ॥

प्रतिष्ठिता महाबाहो यशश्चामितविधम् । मर्त्यानाञ्च सर्वे न्या प्रजापतिमिव मया ॥

निरीक्षन्ते महारमानो लोकनाथ तथावयम् । प्रजाध्वपितृवद्राजन्वप्यन्ति त्वा महामते ॥

पृथिव्या गतिभूतोऽसि प्राणिनामिह राघव । सन्धमेवविध यज्ञं नाहर्तासि परमप ॥

पृथिव्या सर्वभूतानां विनाशो दृश्यते यत । धृयते राजशार्दूल सोमस्य मनुजेश्वर ॥

ज्योतिषां सुमहद्युद्धं सङ्ग्रामे तारकामये । तारावृत्तपदेर्भायां हता सोमेन कामत ॥

अत्र युद्धं महद्दुष्टं देवदानवनाशनम् । वरुणस्य कर्ता भोरे सङ्ग्रामे मत्स्यकण्डपाः ॥

निवृत्ते राजशार्दूल सर्वे नष्टा जलेचरा । हरिश्चन्द्रस्य यज्ञान्ते राजसूयस्य राघव ॥

भाडीयकं महद्युद्धं सर्वलोकविनाशनम् ।

पृथिव्या यानि सत्त्वानि तिर्यग्योनिगतानि वै ॥ १०९ ॥

दिव्यानां पार्थिवानां च राजसूये क्षयः श्रुतः ।

स त्वं पुरुषशार्दूल बुद्ध्या सञ्चिन्त्य पार्थिव ॥ ११० ॥

णिनां च हितं सौम्यं पूर्णं धर्मं समावर । भरतस्य वचः श्रुत्वा राघव प्राह सादरम्

राम उवाच ।

तोऽस्मि तव धर्मज्ञ पाकयेनानेन शत्रुहन् । निवर्तिता राजम्यान्मतिर्मे धर्मवत्सल ॥

पूर्णं धर्मं करिष्यामि कान्यकुब्जे च धामनम् ।

स्थापयिष्याम्यहं वीर सा मे ख्याति दिवंगता ॥ १११ ॥

भविष्यति ॥ सन्देशो यथा गङ्गा भगीरथात् ॥ ११२ ॥

इति श्री पादपुराणे प्रथमे सुष्टिखण्डे यज्ञनिवारणं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

## चत्वारिंशोऽध्यायः

विभीषणवृत्तजिज्ञासयाभरतेन सह रामस्यलङ्काप्रतिगमनम् ।

भीष्म उवाच ।

कथं रामेण विप्रये कान्यकुब्जे तु घामनः ।

स्थापितः क्व च लब्धोऽसौ विस्तराग्रम कीर्तय ॥ १ ॥

तथाहि मधुरा चैवा या घाणी रामकीर्तने । कीर्तिता भगवन्महां मनः कर्णसुखाया ।  
अनुरागेण तं लोकाः स्नेहात्पश्यन्तिराघवम् । धर्मज्ञश्च वृत्तज्ञश्च युद्धया च परिनिष्ठितः  
प्रशस्तिपृथयीं सर्षा धर्मेणसुसमाहितः । तस्मिंश्चासति ये राज्यं सर्वकामफलानुमा  
रसयन्तः प्रभूताश्च पातांसि विविधानि च । भट्टपृथ्व्या पृथिवी निःसपत्न्यामहम्भम्

देयकार्यं कृतं तेन राघवो लोककण्टकः ।

सपुत्रोऽमात्यसहितो लीलयेष निपातितः ॥ ६ ॥

तस्य युद्धिस्समुत्पन्ना पूर्णं धर्मे द्विजोत्तम । तस्याहं वरितं सर्वं धीनुज्जामि वै पुत्रे

पुलस्त्य उवाच ।

कस्यविरय कालस्य रामो धर्मपथे स्थितः । यद्यकार महाबाहो भृगुर्ध्वकम्पना गृ  
सस्माररापरेन्द्रस्तु कथं राजाविभीषणः । लङ्कायांसंस्थितो राज्यं कल्पितिवाराभक्त

गीर्षांषेषु प्रातिकूल्यं विनाशस्य तु लक्ष्मणम् ।

मया तस्य तु तद्वत्तं राज्यं चन्द्रार्धकालिकम् ॥ १० ॥

तस्याविनाशतः कीर्तिः स्थिता मे मायवी मयेन ।

राघवेन तस्मात्तं विनाशापारमनस्त्वह ॥ ११ ॥

विध्वस्तः स च पारितो देवकार्यमयायुना । तदिदानीमयाप्येयः स्वयं गत्वा विजित्वा  
सन्देहस्यं दितं तस्य देन क्रियेत्सहायकम् । एवं विजयलक्ष्मणव रामस्याग्निमोक्ष  
मयतो रामं दृष्ट्वाऽश्रोदिदम् । किं त्वं विजयतो देव न तदस्य वदन् व

अत्तारिणोऽव्यायः ] • वनवाससमयेऽध्युषितस्थलानां भरतायदर्शनम् • ३

विकार्यं धरायां वा स्वकार्यं वा नरोत्तम । एवं ब्रुवन्तं भरतं ध्यायमानमवस्थितम्  
प्रवृत्तीन्द्राद्यो धाक्यं रहस्यं तु न वै तव । भवान्वदिश्चरः प्राणो लक्ष्मणश्च महाया  
पवेयं भवतो नास्ति मम सत्यं विचारय । एषा मे मदती चिन्ता कथं देवैर्विभीषणः  
गतेते यद्वितायं चे दशग्रीवो निपातितः । गमिष्ये तदहं लङ्कां यत्र चासीं विभीषणः

तं च दृष्ट्वा पुरीं तां तु कार्यमुक्त्वा च राक्षसम् ।

आलोक्य सर्वेषुधां सुग्रीवं वानरेश्वरम् ॥ १६ ॥

रहाराजं च शत्रुघ्नं भ्रातृपुत्रांश्च सर्वेशः । एवं वदति काकुत्स्थे भरतः पुरतः स्थितः  
इषाच राक्षसं धाक्यं गमिष्ये भवता सह । एवं कुरु महायाहो सौमित्रिहि तिष्ठतु  
त्युक्त्वा भरतं रामस्सौमित्रिं चाह वै पुरे । रक्षाकार्यां त्वया धीर यापद्गमनं हि न  
र्यं लक्ष्मणमादिश्य ध्यात्वा वै पुष्पकं नृप । मादरोह स वै यानं कौसल्यानन्दपर्धन  
पुष्पकं तु ततःप्राप्तं गान्धारविषयो यतः । भरतस्य सुतो दृष्ट्वा जगन्नीति निरीक्ष्य च  
इषां दिशं ततो गत्वा लक्ष्मणस्य सुतो यतः । पुरेषु तेषु यद्वात्रमुपित्वा रघुमन्त्रो ॥

गतो तेन विमानेन दक्षिणामभितो दिशम् ।

गङ्गायामुनसभेदं प्रयागमुपिसेवितम् ॥ २६ ॥

अभिवाद्य भरद्वाजमचेराधमममीयतुः । सभाप्य च मुनींस्तत्र जनस्थानमुपागतौ ॥

राम उवाच ।

अत्रपूर्वं कृता सीता रावणेन दुरात्मना । इत्या ब्रह्मयुवं गृध्रं योऽसौ पितृसप्तोहि भौ  
अत्रास्माकं महद्युद्धं ककधेन कुबुद्धिना । हतेन तेन . . . . . रावणालये ॥  
सप्यमूके गितिवरे . . . . . सहानुजः

अत्रैव निहतो बाली सुग्रीवायै परन्तप । एषा सादृश्यते नूनं किष्किन्धाबालिपत्नि  
 यस्यां वै सहिधर्मात्मा सुग्रीवो धानरेश्वरः । धानरैःसहितोवीर तावदास्ते समागता  
 धानरैस्सह सुग्रीवो यावदास्ते समागतः । तावत्तत्रागतो वीर्ये पुण्यां भरतपत्नी  
 द्रुपदा सन्नातरो प्राप्नो प्रणिपत्याग्रवीरिदम् ।

क युवां प्रस्थितौ वीरौ कार्ये किंतु करिष्यथः ॥ ३७ ॥

चिनिघ्रेऽप्यासने तौ च ददाचर्यं स्वयंतदा । एवं समास्थिते तत्र धर्मिष्ठे तृणनृने ।  
 बह्वदोऽथ हनूमांश्च नलोनीलश्च पाटलः । गजो गघाक्षो गणयःपनसश्च महाययाः ।  
 पुरोधसो मन्त्रिणश्च दैपदो दधियक्त्रकः । नीलशतचलिर्मन्त्रो द्विपिदो गन्धमारु  
 धीत्पाहुस्सुबाहुश्च वीरसेनो विनायकः । सूर्यामःकुमुदश्चैव सुपेनो हरिगुण्यः ।  
 म्रपमो पितरश्चैव गघाचरो भीमचिक्रमः । श्वशुराजश्च धूषश्च सहसैर्मैररागतः ।  
 भन्तपुराणि सर्वाणि द्वातातारतयेव च । अवरोधोऽङ्गदस्यापि तथान्यःपरिवारिकः  
 प्रहर्षमनुलंघ्राप्य साधुसाध्विति चाब्रुवन् । धानराश्च महात्मानःसुग्रीवसहितास्तदा ।  
 धानर्यश्च महाभागास्तारापास्तत्र राघवम् । भमिघ्रेऽप्याधुकण्ठ्यश्च प्रणिपत्येदमब्रुवन्

ह सा देवां त्यया देव या विनिर्गत्य राघवम् ।

गुद्वि हृत्या दिने षडौ पितुरग्र उमापतेः ॥ ४६ ॥

त्ययानीतां पुंसं राम न तां पश्यामि तेऽग्रतः । न विना त्वं तथा देव शोभसे तृणनृव

त्यया विवापि साध्या सा बन्धु तिष्ठति ज्ञानकी ।

अन्यां नार्यां न ते चेति नार्याहीनो न शोभसे ॥ ४६ ॥

कौशुमुन्मं मियोपद्रव्यवाक्युपयथा । एवंवदन्ती तां तारांताराधिसमानवाम् ॥ ४७ ॥  
 अह प्रवचसां धेष्टो रामो राज्ञीपलोचनः । चाटदंष्ट्रे विशाढासि काढो हि पुरलेख  
 सखं चाटलं बिद्धि अदेतश्चरावगम् । विगृह्यताःस्त्रिय सर्वाःसुग्रीवोऽभिमुखः

सुग्रीव इवाव ।

मयन्तो येन कार्येण इहाकर्त्ता नरेश्वरी । तयापि कण्ठ्यां शोभं हृत्यकातोहि ॥ ४८ ॥  
 अवाचदेवं सुग्रीवं नार्यां राघवोदिष्टः । भावकश्चैव ममत्वं संप्रुत्वा राघवम् ॥ ४८ ॥

तौ चाब्रवीच्च सुग्रीवो भवद्गथां सदितःपुरीम् ॥५३॥

गमिष्ये राक्षसं देव द्रष्टुं तत्रविभीषणम् । सुग्रीवेणैवमुक्ते ॥ गच्छस्वेत्याह राघवः ॥  
सुग्रीवो राघवो तौ च पुष्पकेतुस्थितालयः । तापत्प्राप्तेविमानं तु समुद्रस्योत्तरंतटम् ॥  
अनवीद्वस्तं रामोद्वात्र मे राक्षसेश्वरः । चतुर्भिःसचिवैःसार्धं जीयितार्थं विभीषणः ॥  
प्राप्तस्तोलक्ष्मणेन लङ्काराज्येऽभिषेचितः । अत्रचाहं समुद्रस्य परेपारेस्थितस्नयहम् ॥  
वर्शनं दास्यसे मेऽसौ क्षातिकार्यं भविष्यति । तावन्नदर्शनं मह्यं वसन्तेन शत्रुहन् ॥  
ततःकोपःसमुद्भूतश्चतुर्थेऽहनि राघव । धनुरायम्य वेगेन दिव्यमस्त्रं करे धृतम् ॥५४॥

हृष्ट्वा मां शरणान्वेषी भीतो लक्ष्मणमाधितः ।

सुग्रीवेणानुनीतोऽस्मि क्षम्यतां राघव त्वया ॥ ६० ॥

प्रतोमपोत्क्षितशरो मरुदेशाद्वपांरुतः । ततस्समुद्रराजेन भृशं चिनयशालिना ॥ ६१ ॥  
इकोऽहं सेतुपद्मेन लङ्कां त्वं यत्रराघव । लङ्घयित्वा नरक्याग्र वारिपूर्णं महोदधिम् ॥  
॥ सेतुर्मयायदःसमुद्रे परुणालये । त्रिभिर्दिनैःसमाप्तिं वै भीतो पानरसस्रमैः ॥ ६३ ॥  
पमेदिषसे यदो योजनानि चतुर्दश । द्वितीयेऽहनि पद्त्रिंशत्तृतीयेऽर्धशतं तथा ॥  
यं सा दृश्यते लङ्का स्पर्णप्राकारतो रणा । भयरोधो महानत्र हतो पानरसस्रमैः ॥  
त्रिशुक्लचतुर्दशं महद्युद्धमभूदिह । मष्टचत्वारिंशदिनं यत्रासौ राघवोदतः ॥ ६६ ॥  
अमहस्तो नीलेन हतो राक्षसपुङ्गवः । हनूमता च धूम्राक्षो ह्यत्रैव चिनिपातितः ॥  
होदरातिकार्यो च सुग्रीवेण महारमना । हतोमया कुम्भकर्णो लक्ष्मणेनेन्द्रजिह्वा ॥  
या चात्र दशग्रीवो हतो राक्षसपुङ्गवः । अत्र सम्भाषितुं प्राप्तो प्रह्ला लोकपितामहः ॥  
चंत्यासहितो देयःशूलपाणिर्वृषभ्यजः । महेन्द्रायाःसुरगणाःसगन्धर्वाःसकिन्नराः ॥  
पिता मे च समागतो महाराजत्रिविष्टपात् । वृत्तभ्याम्परस्तांस्तद्वैर्विधाभरणैस्तथा ॥  
तेषां समक्षं सर्वेषां ज्ञानकीशुद्धिमिच्छता । उक्ता सांता हृष्यपाहं प्रविष्टागुप्तिमागता ॥  
असुरैश्च सुरैर्दृष्टा गृहीता पितृशासनात् । भयाप्युक्तोऽथ राजाऽदनयोऽप्यं गच्छपुत्रक

न मे स्वर्गो बभूवतस्त्वया हीनस्य राघव ।

क्षांतोऽहं त्वया पुत्र प्राप्तोऽस्मीन्द्रसत्त्वोक्तताम् ॥ ७४ ॥

लक्ष्मणं चाग्रयोद्राजा पुत्र पुण्यं त्वयार्जितम् ।

आत्रा सममयोदिव्यांलोकान्प्राप्स्यसि चोत्तमान् ॥ ७५ ॥

आहूय जानकीं राजा वाक्यं चेदमुवाच ह । न च मन्युस्त्वयाकार्यो मर्तांप्रतिबु-  
धयातिर्भविष्यत्येवाभ्या मर्तुस्ते शुमलोचने । एवं वदति रामे तु पुष्पके च व्यवसि-

तत्र ये राक्षसघरास्ते गत्वा ऽऽशु विभीषणम् ।

प्राप्तो रामः ससुग्रीवश्चारा इत्थं तदाऽवदन् ॥ ७८ ॥

विभीषणस्तु तच्छ्रुत्वा रामागमनमन्तिके । चारांस्तान्पूजयामाससर्वकामधनार्थि-  
भलङ्कृत्य पुरीं तां तु निष्क्रान्तः सचिवैः सह । दृष्ट्वारामंविमानस्थंमेराविषद्विबाक-  
भट्टाङ्गप्रणिपातेन नत्वा राघवमग्रधीत् । अद्य मे सफलजन्म प्राप्ताःसर्वेमतोऽप्या-  
यद्दृष्टो देववरणौजगद्दन्धावनिन्दितौ । कृतःश्लाघ्योऽस्म्यहं देवशकादीनांदिर्बोकस-  
आत्मानमधिकमन्ये त्रिदशेशात्पुरन्दरात् । देवस्यवर्धनात्तेऽद्य स्पृहणीयो दिर्बोकस-  
अभियन्त सरामं तु आलिङ्ग्य भरतंहरिम् । लङ्कां प्रवेशयामास विशिष्टायात्रिविष्टा-  
राघणस्य गृहे वीप्ते सर्वरत्नोपशोभिते । उपविष्टे तुङ्गाकुसुस्थे अर्धदंस्वा विभ्रांयज-  
उवाच प्राञ्जलिभूत्वा सुग्रीवं भरतं तथा । इहागतस्य रामस्य यदास्येन तदस्ति मे  
इयं च लङ्का रामेण रिपुंश्रेलोक्यकण्टकम् । इत्या तु पापकर्माणं दत्तापूर्वं पुरांमम  
इयंपुरी इमेक्षरा अमीपुत्रास्तथाहाहम् । सर्वमेतन्मयादत्तं सर्वमक्षयमस्तु ते ॥ ८८  
ततःप्रवृत्तयःसर्वालङ्कावासिजनाश्च ये । आजगम् राघवं द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः ॥ ८९  
उक्तो विभीषणस्तैस्तु रामं दर्शय नःप्रभो । विभीषणेन कथिता राघवाय महात्मने  
तेषामुपायनंसर्वं भरतो रामचोदितः । जग्राहयानरेन्द्रश्च धनरत्नोपसञ्चयम् ॥ ९१  
एवं तत्रश्रुत्वा रामोहावसद्राक्षासालये । चतुर्योऽहनि सप्रगते रामेवापिसमास्थिते  
केरुकी पुत्रमाहेत्वं रामं द्रक्ष्यामि पुत्रक । यधूमिस्सहितागत्वा त्वं विभ्रापणपुत्रक  
दृष्टे तस्मिन्महत्पुण्यं प्राप्यतेमुनिसत्तमैः । विष्णुरेव महाभागधनुर्मूर्तिस्सनाढ्य-

संतालक्ष्मीर्महाभाग न शुद्धा साप्रजेन ते ।

पित्रा ते पूयमाध्यात देवानां दिविसङ्गमे ॥ ९५ ॥

३ रघूणां वै विष्णुः पुत्रो दशरथस्य तु । भविष्यतिविनाशाय दशग्रीवस्य रक्षसः ॥  
विभीषण उवाच ।

कुरुष्व वै मातृगृहाण नवमन्वयम् । पात्रं चन्दनसंयुक्तं वधिक्षोद्राक्षतैःसह ॥  
पार्थ सह कुरु राजपुत्रस्य दर्शनम् । सरमामप्रतःकृष्या याश्चान्या देयकन्यकाः ॥  
स्य राघवाभ्याश्च तस्मादग्ने ब्रजाम्यहम् । एषमुत्तमा गतं रक्षो यत्ररामो व्यपस्थितः  
उत्सार्य दानवान्सर्वाग्रामं द्रष्टुं समागतान् ।

सभां तां विमलां कृत्वा रामं स्वामिमुखेस्थितम् ॥ १०० ॥

विभीषण उवाच ।

अप्यं शृणु मे देव घटतश्च विशांपते । दशग्रीवं कुम्भकर्णं याचमानं चाप्यजीजनत् ॥  
ज्ञा देवमातान्पादौ ते द्रष्टुमिच्छति । तस्यास्तु त्वं कृपां कृत्वा दर्शनं दातुमर्हसि  
राम उवाच ।

तस्यासमीपं तु मातृदर्शनकाङ्क्षया । गमिष्ये राक्षसेन्द्र त्वं शीघ्रयाहि ममाग्रतः  
प्रतिश्राप्य तु तं वाक्यमुत्तस्यो च घरासनात् । मूर्ध्निषाञ्जलिमाधाय प्रणाममकरोद्विभुः  
अभिषादयेऽहं भयतीं माताभवसि धर्मतः । मद्वता तपसाच्चापि पुण्येन विधिधेन च ॥  
इमौते चरणौ देवि मानयो यदिपश्यति । पूर्णस्स्यात्तदहं प्रातो हृद्देमौपुत्रयत्सले ॥  
कौशल्या मे पथामाता भवती च तथामम । केकली चाग्रयोद्रामं विरंजीप सुखीमप  
भर्त्रा मे कथितं वीर विष्णुर्मानुषरूपधृत् । भवतीर्षा रघुकुले हितार्थे त्रिदिशोकसाम्  
दशग्रीव विनाशायमूर्तिशतुं विभीषणे । वालिनो निधनंवीच सेतुपथं च सागरे ॥  
पुत्रो दशरथस्त्वैव सर्वं स च करिष्यति । इदानीं त्वं मयाज्ञातःस्पृष्ट्वा तद्गर्भमारितम्  
सोतालक्ष्मीर्मवान्विष्णुर्देवा वै बानरास्तथा । गृहं पुत्रगमिष्यामि स्थिरकीर्तिमयाप्नुहि  
सरमोषाच ।

रथे घटसं पूर्णमशोकवनिकास्थिता । सेविता ज्ञानकीर्देवी सुखंतिष्ठति ते प्रिया ॥

नित्यं स्मरामि वै पादौ सीतायास्तु परन्तप ।

कदा द्रक्ष्यामि तां देवीं चिन्तयानात्पहर्निशम् ॥ ११३ ॥

किमर्थं देवदेवेन नानीता जानकीत्विह । एकाकी नैवशोभेया योपिता च तयाविना ।  
 समीपे शोभते सीता त्वं च तस्याः परन्तप । एवं ब्रुवन्त्यां भरतः केयमित्यब्रवीद्वचः ।  
 ततश्चेद्भित्तिचिद्रामो भरतं प्राह सत्वरम् । विभीषणस्य भार्या वै सरमानाम् तामतः ।  
 प्रियासखी महाभागा सीतायास्सुदृढमता । सर्वकालकृतं पश्य न जाने किं करिष्यति ।  
 गच्छत्वं सुभगेभर्तुं गेहं पालय शोभने । मां त्यक्त्वा हि गता देवीभाग्यहीनं गतिर्यथा  
 तया विरहितः सुभु रतिविन्दे न कर्हिचित् । शून्या एव दिशः सर्वाः पश्यामीह पुनर्भवेन  
 विसृज्य तां च सरमां सीतायास्तु प्रियासखीम् ।

गतायामथ केकस्यां रामः प्राह विभीषणम् ॥ १२० ॥

देवतेभ्यः प्रियं कार्यं नापराध्यास्त्वया सुराः । भावयाराजराजस्य धर्तितन्यं त्वयाऽनघ ।  
 लङ्कायामानुषोयोयो वै समागच्छेत्कथञ्चन । राक्षसैर्न च हन्तव्योऽद्भुतव्योसौ यथावदम्  
 विभीषण उवाच ।

भावयाहं नरक्याम् करिष्ये सर्वमेव तु । विभीषणे हि पदं पायू राममुपाय ह ।  
 इहास्ति धैष्णवीमूर्तिः पूर्वपद्मे चलिष्यया । तां नयस्व महाभागे कान्यकुजे प्रतिष्ठय ।  
 विदित्वा तद्मित्राय पायुना समुदावृतम् । विभीषणस्तपलङ्घ्य रत्नैः सर्वैश्च धामनम् ।  
 मानीय चार्पयद्रामे पाक्यं चेदमुपाय ह । यदा वै निर्जितः शको मेघनादेन राघव ।  
 तदा वै धामनस्तथैव आनीतो जलजैक्षण । नयस्व तन्निमं देव देवदेयं प्रतिष्ठय ॥ १२१ ॥

तथेति राघवः कृत्वा पुष्पकं च समावृत्तम् ।

धनं रत्नमसङ्ख्येयं धामनं च सुरोत्तमम् ॥ १२२ ॥

गृह्य सुप्रीयभरतायाः कृदौ धामनादनु । यजन्नेषाम्यदे रामस्तिष्ठेत्प्राह विभीषणम् ।  
 राघवस्य पचः धृत्वा भूयोऽप्याह सराघवम् । करिष्ये सर्वमेतद्धि यदाहो विभो त्वया  
 सेतुनानेन राजेन्द्र पृथिव्यां सर्वमानसाः । भागस्य प्रतिवाधेरघ्नाशमङ्गो भवेत्तव ।  
 कोऽयं मे निपमो देव किञ्चुकार्यं मया विभो । ध्रुवैश्च राघवो पाक्यं राक्षसोत्तमनात्तिम्

कार्मुकं गृह्य हस्तेन रामः सेतुं द्विषाऽच्छिनत् ।

त्रिविम्बज्य च धेगेन मध्ये वै दशयोजनम् ॥ १२३ ॥



छित्त्वा तु योजने चैकमेकं सण्डश्रयं कृतम् । वेलावनं समासाद्य रामः पूजामुमापते ॥  
रुत्वा रामेश्वरनाम्ना देवदेवं जनार्दनम् । अभिषिञ्च्यथ संगृह्य धामनं रघुनन्दनः ॥  
दक्षिणादुदधेऽथैव निजंगाम रघरान्वितः । अन्तरिक्षादभूद्वाणी मेघगम्भीरतिः स्वना ॥

रुद्र उवाच ।

मोहो रामास्तु भद्रं ते स्थितोऽहमिह साम्प्रतम् । यावज्जगदिदं राम यावदेवा धरास्थिता  
त्रापदेश च ते सेतुतीर्थं स्यात्यस्यति राघव । ध्रुत्वेवं देवदेवस्य गिरंताममृतोपमाम् ॥

राम उवाच ।

मस्ते देवदेवेश भक्तानामभयदुर । गौरीकान्त नमस्तुभ्यं दक्षयज्ञपिनाशन ॥ १३६ ॥  
नमो भयाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च । पशूनांपतये नित्यं खोग्राय च कपर्दिने ॥ १३७ ॥  
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय दिशांपते । ईशानाय भगवताय नमोऽस्त्वन्धकघातिने  
नीलग्रीवाय घोराय वैधसेवेधसास्तुत । कुमारशत्रुनिज्जाय कुमारजननाय च ॥ १३८ ॥  
बिलोहिताय धूम्राय शिवाय ऋदनाय च । नमो नीलशिखण्डाय शूलिने दैत्यनाशिने ॥  
उग्राय च त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे । भनिन्यायाम्बिकामर्त्रे सधर्देष्टुताय च ॥  
अभिगम्याय काम्याय सद्योजाताय वै नमः । वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे ॥  
तृप्यमानाय तप्याय ब्रह्मण्याय जयाय च । विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते  
नमोनमोऽस्तु दिव्याय प्रपन्नार्तिहराय च । भक्तानुकम्पिने देव विश्वतेजो मनोगते ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवं संस्तूपमानस्तु देवदेवो हरो नृप । उवाच राघवं वागव्यं भक्तिमन् पुनः स्थितम् ॥

रुद्र उवाच ।

मोहो राघव भद्रं ते ब्रूहि यत्ते मनोगतम् । यावदेव प्रयच्छामि नास्त्येदं मया हि ते  
पुष्कराक्ष महादेव देवदेवस्सनातनः । भवान्नारायणो नूनं गूढो मानुष्यो निपु ॥ १५० ॥  
अथतीर्थो देवकार्यं कृतं तच्चानघ त्वया । इदानीं स्वं प्रजक्षणं कृतकार्योऽसि शत्रुहन्  
त्वयाकृतं परंतीर्थं सेत्वाप्यं रघुनन्दन । आगत्य मानवा राजन्प्रश्येयुरिहसागरे ॥ १५२ ॥  
महापातकयुक्ता ये तेषां पापं विलीयते । ब्रह्मवध्यादि पापानि यानि कष्टानि कानिचित्

दर्शनादेव नश्यन्ति नात्रकार्या विचारणा । गच्छत्वं वामनं स्थाप्य गङ्गातीरे ॥ १५० ॥

पृथिव्यां सर्वशः कृत्वा भागानष्टौ परन्तप ।

श्वेतद्वीपं स्वकं स्थानं यज देव नमोऽस्तु ते ॥ १५१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रणिपत्य ततो रामस्तोत्रं प्राप्तं पुष्करम् ।

विमानं तु न यारयूष्यं वेष्टितं तप्तु राघवः ॥ १५२ ॥

किमिदं वेष्टितं यानं निरालम्बेऽम्बरे स्थितम् ।

मयित्त्यं कारणेन पश्येत्याह स्म यानरम् ॥ १५३ ॥

सुग्रीवो रामपचनादपरीयं धरातले । स च पश्यति प्रज्ञायां सुरसिद्धसमन्वितम्  
प्रप्रसिद्धसहितं चतुर्वेदसमन्वितम् । दृष्ट्वाऽऽगत्याप्रवीश्रामं सर्वलोकपितामहः  
सहितो लोकपालेभ्यः परमेश्वरमस्तुतुगणैः । तं देव पुण्यकं नैव लङ्घयेद्वि विनामस्य  
भवत्तार्यं ततो रामः पुण्यकाशं ममूषिताम् । नत्वा विविधैर्देवैर्वापय्या सह मन्त्रिणा  
भट्टाङ्गप्रणिपातेन पञ्चाङ्गानिर्दिष्टावनिः । तुष्टाय प्रणतो भूत्वा देवदेवं विविधैर्भक्तैः

राम उवाच ।

नमामि लोकपालं प्रजापतिमुत्तमम् । देवनायं लोकनाथं प्रजानाथं जगत्पतिम्  
वमस्ते देवदेवस्य सुरासुरनमस्कृतः । नूतनमयमवन्नाथ इति निरुद्धोऽभवत् ॥ १५४ ॥  
काशस्थं वृद्धरात्रं च मृगव्यासनाथकः । तारणधासि देवस्त्यं त्रेलोक्यप्रभुं त्रिभुवः ।  
द्विरप्यमनं पद्मनं वेदमनं स्मृतिप्रदं । महासिद्धो महाधीर्मा महादुर्गो व देवधी ।  
काशस्थं काशस्थं च नन्दप्रभो विशुभरः । पदं कर्णमंको निव, पदुनीं वृत्तिप्रदं  
दन्तविहंसिन्धुः कर्णोद्गतां ह्यो हृदि । उदी मुच्यते दिव्यो देवो रघुर्देवः ॥ १५५ ॥  
नृसिंहो सुराध्यक्षः सर्वलोका सर्वनाथः । सर्वतः सर्वदासो बभूव सा ॥ १५६ ॥  
वज्रमुपगो देवः कृष्णः कृष्णवर्णः ॥ देवलोकोद्भवं नाम भोक्तारं त्रेलोक्यप्रभुम् ।  
नृपुण्ड्रं नृपुण्ड्रं च धार्मिकं सुमतः । इत्युक्तं प्रणतो गुरुवामनो गुरुदामः ॥ १५७ ॥

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां अष्टाध्यायः ॥ १८ ॥

वप्यदो दानवानां विष्णोर्लब्धवस्तथा । कर्मकर्ताऽधर्महता नभयहस्त एव च ॥  
 अग्निमुखो ह्यग्निकेतुर्मुनिरूपो दिशांपतिः । उत्सवो वेदस्रष्टासिचतुर्गंधिपस्तथा ॥  
 दक्षिणे धामतश्चापि पत्नीभ्यामुपसेवितः । मिथुश्च मिथुरुपश्च त्रिजटी लब्धनिश्चयः ॥  
 चित्तवृत्तिकरः कामो मधुर्मधुकरस्तथा । धानप्रस्थोपनगत आधमो पूजितस्तथा ॥  
 जगदाता च कर्ता च पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः ।

धर्माध्यक्षो विरूपाक्षस्त्रिधर्मो भूतभाषनः ॥ १३३ ॥

त्रियेक्षो यदुरुपश्च सूर्यायुतसमप्रभः । मोहको बन्धकश्चैव दानवातां विदीपतः ॥ १३४ ॥  
 देवदेवश्च पद्माङ्गुलिनेत्रोऽञ्जजटस्तथा । हरिश्मधुर्धनुर्धार्गनामो धर्मपराक्रमः ॥ १३५ ॥

पुनस्तस्य उवाच ।

एवं स्तुतस्तु रामेण ब्रह्मा ब्रह्मचिदांपरः । उवाच प्रणतं रामं करे गृह्य पितामहः ॥  
 प्रसोषाच ।

विष्णुस्त्वं मानुषे देहेऽप्यतीर्णो यत्तुधातवे । हतं तद्वपता सर्पं देवकार्यं मदापिभो ॥  
 संस्थाप्य वामनं देवं आहूय दक्षिणे तटे । भयोभ्यां स्वपुरीगत्वा सुरतो कं प्रजस्य च  
 पुनस्तस्य उवाच ।

विष्णो ब्रह्मणा रामः प्रणिपत्य पितामहम् । आहूतः पुष्पकं यानं सम्प्राप्तो मधुरांपुरीम्  
 तस्मीक्ष्य पुत्रसहितं शत्रुघ्नं शत्रुघातिनम् । सुतो व गणयः धीमाग्भरतः स हरीश्वरः ॥  
 शत्रुघ्नो भ्रातरौ प्रातौ शकोपेन्द्राविषाकर्ता । प्रणिपत्य ततो मूर्ध्नापञ्चाङ्गादिद्रुतावनिः  
 उत्थाप्य बाहुमारोप्य रामो भ्रातामभ्रुवा । भरतश्च ततः पश्चात्पुत्रोपसृतननम् ॥  
 उपिष्टोऽथ रामाय सोऽर्घ्यमाहाय सत्पथम् । शस्यं निवेदयामास बाणद्वौ गणदे तदा  
 धृत्या प्राप्तं ततो रामं सर्पा ये माधुरो जगः । यवां प्राप्स्यन्तूदित्वा द्रुमैर्न गमायताः  
 सम्भाष्य प्रहृताः सर्पा निगमान्प्राह्वणीः सह ।

दिनानि पञ्चो गित्वाऽत्र रामो गन्तुं मनो हवे ॥ १८४ ॥

शत्रुघ्नश्च ततो रामे पात्रिनोऽथ गजान्तथा । हतः हतं च कर्कशं ततोऽप्यभ्यहृत् ॥  
 गमस्तथाह ततः प्रीतः सर्वमेतन्मया तव । एवं पुष्टो नेदमिच्छिष्य गजभ्यो गन्तुरे जने

एवमुक्त्वा ततो रामः प्राप्नो मध्यन्दिने रथौ । महोदयं समासाद्य गङ्गातीरे स वामन  
प्रतिष्ठाप्य द्विजानाह भाविनः पार्थिवांस्तथा । मया कृतोऽयं धर्मस्य सेतुर्भूतिविबधः

प्राप्ते काले पालनीयो न च लोप्यः कथञ्चन ।

प्रसारितकरेणैव प्रार्थनेया मया कृता ॥ १६४ ॥

नृपाः कृते मयार्थित्वे यत्क्षेमं क्रियतामिह । नित्यं दैनन्दिनी पूजा कार्या सर्वैस्तत्क्षि

प्रामान्दत्त्वा धनं तच्च लङ्काया आहृतं च यत् ।

प्रेषयित्वा च किष्किन्धां सुग्रीवं वानरेश्वरम् ॥ १६६ ॥

अयोध्यामागतो रामः पुष्पकं तमधामधीत् ।

नागान्तव्यं त्वया भूयस्तिष्ठ यत्र धनेश्वरः ।

कृतकृत्यस्ततो रामः कर्तव्यं नाप्यमन्यत ॥ १६७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवंते भीष्म रामस्य कथायोगेन पार्थिव । उत्पत्तिर्धामनस्योक्ता किं भूयः भोतुमिच्छति

कथयामि तु तत्सर्वं यत्र कीर्तुहलं नृप । सर्वं ते कीर्त्तयिष्यामि येनार्थो नृपतन्त्र ।

इति धी पाद्मपुराणे प्रथमे सुष्टिकण्डे वामनप्रतिष्ठा नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।

## एकचत्वारिंशोऽध्यायः

भीष्मस्य पुलस्त्यं प्रति विष्णोर्नाभिपद्मोत्पत्तिवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

कथितं वामनस्यैव माहात्म्यं विस्तरेण वै । पुनस्तस्यैव माहात्म्यमन्यद्विष्णोर्लोकां व

पद्मं कथमभूदेष नामो येनामपञ्चगत् । कथं च वैष्णवी सृष्टिः पद्ममध्यं प्रवत्सुत ।

कथं पादौ महाकस्येऽभयत्पद्मस्य जगत् । जलानपगतस्यैव नामो जातं जलानुपन्न ।

प्रभायं पद्मनामस्य स्वपत्तः सागराम्भसि ॥ पुष्करे तु कथं जातं देवा वदन्ति यतः पु

एतदाख्याहि निखिलं योगं योगविदां घर । शृण्वतस्तस्य मे कीर्ति न तुस्तिरुपजायते  
कियताचैव कालेन शोभतेपुरुषोत्तमः । कियन्तं वै स्वपिति च कति कालस्यसम्भवाः

कियता वाथ कालेन प्रोत्तिष्ठति मदायशाः ।

कथं चोत्थाय भगवान्सृजते निखिलं जगत् ॥ ७ ॥

के प्रजापतयस्तावदासन्पूर्वं महामुने । कथं निर्मितवांस्तत्र चैतं लोकं सनातनम् ॥ ८ ॥

कथमेकार्णये शून्ये नष्टे स्थावरजङ्गमे । भूगोलके प्रदग्धे तु प्रनष्टोत्तराक्षसे ॥ ९ ॥

नष्टानलानिलाकाशे नष्टधर्मे महोत्तले । केवले गह्वरीभूने महाभूतविपर्यये ॥ १० ॥

किन्तु विश्वपतिः साक्षान्महातेजा महापुतिः ।

भास्ते यथाध्याननिष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ॥ ११ ॥

शृण्वतः परया भक्त्या ब्रह्मघ्रेतद्वेषतः । चकुर्महंसि धर्मज्ञ यशो नारायणात्मकम् ॥ १२ ॥

भद्रिजः स्रुपविष्टस्य भगवन्चकुर्महंसि ॥ १३ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

नारायणस्य पशसः ध्रुवणे या तप स्पृहा । सर्वशान्त्यवपूनस्य न्याय्यं कुरुकुलोद्भव ॥

शृणुष्याद्विपुराणेषु देवेभ्यश्च यथाभूतिः । ब्राह्मणानां च वदतां धृत्या वै सुमहात्मनाम्

यथा च तपसा ब्रह्मा बृहस्पतिसमपुतिः ।

पराशरसुतः श्रीमान्गुरुर्द्वैपायनोऽग्रणी ॥ १६ ॥

तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाभक्ति यथाभूति । यद्विज्ञातं मया सम्यग्विपिमार्गेण सत्तम ॥

कः समुत्सहते हातुं परं नारायणात्मकम् । विश्वावितारं ब्रह्मार्पं न पेदयति तत्पतः

तत्कर्मविश्वदैवानां तद्ब्रह्मस्य महर्षिषु । स इत्यस्त्वर्ययज्ञानां ॥ तत्त्वं तत्पद्विनाम् ॥

अध्यात्ममध्यात्मविदां नरकं च विकर्मिणाम् । अधिदैवं च तदैषमधिदैपतसंज्ञितम् ॥

अधिभूतं च तदुभूतं परं च परमार्थिनाम् । स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्तपः कथयो विदुः ॥

यः कर्त्ता कारको बुद्धिर्यतः क्षेत्रज्ञ एवच । प्रणवः पुरुषः शास्त्र एकश्चेति विभाष्यते

प्राणः पञ्चविषयश्चैव भुवमक्षरमेव च । कालः पाकश्च यज्ञश्च वरा धार्पात्मनेव च ॥

उच्यते विविधैर्भाविः ॥ एवायं तु तत्पद्यम् । स यथ भगवान्सर्वं करोति न करोतिच

सोऽस्मिन्कारयते सर्वं स्थानिनां च कृतिः कृता ।

यजामहे तमेवाद्यं स एवोत्थाननिर्वृतः ॥ २५ ॥

योवका यच्च यक्तव्यं यश्चाहं तदुब्रवीमि ते । श्रूयतेयश्च वैश्राव्यं यच्चान्यत्परित्रिंश  
या कथा याश्च श्रुतयो यो धर्मो धर्मतत्परः । विश्वं विश्वपतिर्यश्च स तु नारायणः स

यत्सत्यं यदनृतमादिमज्यभूतं यच्चान्त्यं निरवधिकं च यद्विष्णुम् ।

यत्किञ्चिच्चरमचरं यदस्ति चान्यत्सर्वतरपुरुषधरः प्रधानभूतः ॥ २६ ॥

चत्वाढ्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।

तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा कुरुनन्दन ॥ २६ ॥

यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रहः । स्वधर्मनिरताः शान्ता जायन्ते यत्र मानव

विप्राः स्थिता धर्मपरा राजवृत्तिस्थिता नृपाः ।

कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुधूपवस्तथा ॥ २७ ॥

तदा सत्यं च सत्त्वं च धर्मश्चैव विपर्यत । सद्भिरावरितो धर्मो देव लोकाः प्रवर्तन्ते  
एतद्वृत्तयुगे वृत्तं सर्वेषामेव पार्थिव । प्राणिनां धर्मसंज्ञानां नराणां नीचजन्मनश्च

प्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते ।

तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥ २८ ॥

द्वान्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यपस्थितः ।

यत्र सत्यं च सत्त्वं च क्रिया धर्मो विधीयते ॥ २९ ॥

त्रेतायां विवृतिर्यान्ति पर्णा लोभेन संयुताः । चातुर्यर्ष्यस्य वैदुर्यं क्षान्तिर्वीर्यमेव च  
एषा त्रेतायुगगतिर्विविधा देवनिर्मिता । द्वापरं द्विसहस्रं तु वर्षाणां कुरुनन्दन ॥ ३० ॥

तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणायुगमुच्यते । तत्राप्यतीषार्धपराः प्राणिनो रत्नसंलम्ब

यदा नैकृत्तिकाः क्षुद्रा जायन्ते कुरुनन्दन ।

द्वान्यां धर्मः स्थितः पद्म्यामधर्मस्त्रिभिर्विपर्यतः ॥ ३१ ॥

पिरर्ष्यपनैर्धर्मः क्षपमेति कर्तो युगे । प्रक्षप्यभावश्च द्रव्यते तथास्ति च विपर्ययः ।  
मयोपवासास्त्यज्यन्ते कर्तो ये युगपर्यये । तदा वर्षसहस्रं तु वर्षाणां द्वे युगे तथा ।

सन्ध्यया सहसङ्ख्यातः कूटः कलियुगस्तथा ।

यत्रार्धमध्वतुष्पादौ धर्मः पादपरिग्रहः ॥ ४२ ॥

कामिनस्तापसाः शुद्धा जायन्ते-यत्र मानवाः ।

न चावसायिकः कश्चिन्नसाधुर्न च सत्यवान् ॥ ४३ ॥

नास्तिका ग्राह्यणा भक्ता जायन्ते तत्र मानवाः ।

भङ्गकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहयन्धनाः ॥ ४४ ॥

विप्राः शूद्रसमाचारास्सन्ति सर्वे कलौ युगे । आध्रमाणां विपर्यासः कलौ सम्प्रतिघर्तते

वर्णानां चैव सन्देशो युगान्ते कुठनन्दन । यथा द्वादशसाहस्री युगाख्या पूर्वनिर्मिता ॥

सहस्रयुगपर्यन्तं तद्दर्शयामुच्यते । ततोऽहनि गते तस्मिन्सर्वेषामेव जीविनाम् ॥

शरीरनिवृत्तिं हृष्ट्या कालः संहारयुद्धिमान् ।

देवतानां च सर्वेषां ग्राह्यणानां महीपते ॥ ४८ ॥

दैत्यानां दानवानां च यक्षराक्षसपक्षिणाम् ।

गन्धर्वाणामप्सरसां भुजङ्गानां च पार्थिव ॥ ४९ ॥

पर्यतानां नदीनां च पशूनां चैव सत्तम । तिर्यग्योनिगतानां च किमीनां दंष्ट्रिनां तथा

सर्वभूतपतिः पञ्च भूत्वा भूतानि भूतहृत् । जगत्संहारकार्पायं कुर्वते पेशसं महन् ॥

भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी आददानो भूत्वा वायुः प्राणिनां प्राणिजातम् ।

भूत्वा वह्निर्निर्दहन्सर्वलोकां भूत्वा मेघो भूय उग्रोऽभ्यवर्षन् ॥ ५२ ॥

भूत्वा नारायणो योगी सर्वमूर्तिर्विभाषसु । गमस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान्

ततः पीत्यार्णवान्सर्वाग्निदीर्घाश्च सर्वतः । वर्षतानां च सलिलं सर्वमादाय योगयिन् ॥

भूत्वा चैव सहस्रार्चिर्महतीं भित्वा रसातले । रमते जलभादाय पिबप्रसमनुत्तमम् ॥

मूर्त्तामूर्त्तं तदन्यथ यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम् । तत्सर्वमरयिन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः ॥

वायुश्च चलयान् भूत्वा विधुन्यानोऽन्विलं जगत् ।

प्राणापानं समासाद्य वायुनाऽप्यमते हृदि ॥ ५७ ॥

ततो देवगणानां च सर्वेषां चैव देहिनाम् ।

पञ्चेन्द्रियगुणास्सर्वे भूतान्येव च यानि च ॥ ५८ ॥

घ्रेयं घ्राणं शरीरं च पृथिवीं संधिता गुणाः । लोकयात्राभगवता मुहूर्तेन विनारिता ।  
जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संधिताः सलिले गुणाः । रूपंचक्षुर्विभागधनेत्रं ज्योतिः संधिता गुणाः ।  
स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनं संधिता गुणाः । शब्दः श्रोत्रे च श्रवणं गगनं संधिता गुणाः ।  
मनोबुद्धिश्च चित्तं च क्षेत्रज्ञं चेति संधिताः । परेण परमेष्ठी च हृषीकेशमुपाधिताः ।  
ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारिताः । वायुना परिनुन्नाश्च भूमिशालामाश्रिताः ।  
तेषां संहरणोद्भूतः पापकः शतधा ज्वलन् । प्रदहन्निहं विरवं वृत्तः संवर्त्तकोऽनलः ।  
सपर्वतद्रुमाङ्गुष्माङ्गुलतापह्नीस्तृणानि च । विमानानि च दिव्यानि पुराणिविविधानि च

यानि चाध्वयणीयानि सूर्याण्यप्यदहद् भूशम् ।

भस्मीकृत्य तु तान्सर्षांल्लोकाल्लोकगुरोर्गुरुः ॥ ६६ ॥

स भूर्ति धारयामास युगान्ते लोकसंभयाम् ।

सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाघनः ॥ ६७ ॥

दिव्यतोयेन हविषातर्पयामास मेदिनीम् । ततः क्षीरनिकाशेन स्यादुना परमात्मना ।  
शिशिरेण च पुण्येन मही निर्घाणमागमत् । तेन तोयेन समूका पयस्साध्वन्यतो ध्रुव  
एकार्णावजलीभूता सर्वसत्त्वविपजिता । महासत्त्वान्यपि बिभुं प्रविष्टान्यमिर्ताजसम् ।  
नष्टार्कपयनाकाशे सूक्ष्मेजगतिसंवृते । संशोपमात्मना कृत्या समुद्राणां च देहिनाः ।

दग्ध्या सङ्कोच्य च तथा स्वपितृयेकः सनातनः ।

पौराणं रूपमास्थाय स्वपितृयमितविक्रमः ॥ ७२ ॥

एकार्णावजले ध्यापी योगी योगमुपासितः ।

अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णावामसि ॥ ७३ ॥

न चैव कश्चिद्व्यक्तं व्यक्तो वेदिनुमहति । कश्चेव पुष्टो नाम कियोगः कश्च योगवत् ।  
न वृष्टे नैषममिथो नैष पार्श्वे न चाप्रतः । कश्चिद्विज्ञायते तस्य दृश्यते देयसत्तनः ।

नमः क्षितिपथनमपः प्रकोशनं प्रजापतिं भुवनधरं सुरेश्वरम् ।

पितामहं धृतिनिलयं मुनिं प्रभुं समापयन्त्यनमरोचयत्प्रभुः ॥ ७६ ॥



एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः । प्रच्छाद्य सलिलेनोर्ध्वं हंसो नारायणायते ॥  
महतो रजसो मध्ये महार्णवसमस्य वै । धारिजाक्षो महाबाहुरक्षयं ब्रह्म यद्विदुः ॥  
आत्मरूपसरूपेण तमसा संवृतः प्रभुः । मनः सात्त्विकमादाय यत्र तत्सत्त्वमाहितम् ॥  
राधातथ्यं परं ज्ञानं भूताय ब्रह्मणे ततः । रहस्यं च तथोद्दिष्टं यद्योपनिषदां स्मृतम् ॥  
पुरो यज्ञ इत्येतत्परमं परिकीर्तितम् । यज्ञान्यः पुरुषाव्यः स्यात्स एष पुरुषोत्तमः  
। च यज्ञकरा विप्रा य अद्विज इति स्मृताः । अस्मादेशं पुरा भूतायकत्रेभ्यः ध्रुयते तथा  
ब्रह्माणं प्रथमं यज्ञादुद्गातारं च सामगम् । होतारं च तथादुध्वयुं बाहुभ्यामवृजत्प्रभुः  
ब्रह्माणं ब्रह्मणाच्छंसि स्तोतारौ चैव सर्वशः । मेद्राद्यमग्रावयणं प्रतिष्ठातारमेव च ॥

उव्रात्प्रतिहोतारं पोतारं चैव पार्थिव ।

पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रमुन्नेतारं च याजुषम् ॥ ८५ ॥

अच्छावाकमधोरुन्यां सुब्रह्मण्यं च सामगम् । एवमेवं स भगवान्योदरीताञ्जगत्पतिः ॥  
स्य यम्भूः सर्वयज्ञानामृषिजोऽसृजदुत्तमान् । तदाचैव महायोगी पुरुषो यज्ञसंक्षितः ॥  
वेदाश्चैव तथा सर्वे सहाङ्गोपनिषत्क्रियाः । स्य पितृकेणवि चैव यदाध्ययमभूत्पुरा ॥  
ध्रुयतां तु तदा विप्रो मार्कण्डेयः कुतूहलात् । गीर्णो भगवतातेन कुक्षावासीन्महामुनिः  
यदुध्वं सहायुस्तस्यैव धरतेजसः । अटंस्तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवी तीर्थगोचरः ॥ १० ॥

आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायत्नानि च ।

देवाग्राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च ॥ ११ ॥

जपहोमपराः शान्तास्तपोभिरमलाः स्मृताः ।

मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्व्यवक्रान्तिनिर्गतः ॥ १२ ॥

निष्कामन्तं न चात्मानं जानीते देवमायया । निष्काम्य तस्य उदरादेकार्णवमधोजगत्  
सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत ।

तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं व्यत्ययं चात्मजीवितम् ॥ १४ ॥

देवदर्शनसंदृष्टो हिस्मयं परमं भवः । सोऽचिन्तयदमोघात्मा मार्कण्डेयोऽथ गड्ढितः ॥

किं नु स्याच्चित्तसंमोहः किं नु स्वप्नोऽनुभूयते । व्यक्तमन्यतरो भाव एतयोर्भवितामम

हि स्वप्रोक्ष्यं सत्ययुक्तं यत्सत्यमर्हति । नष्टचन्द्रार्कपवनोद्भेदपर्वतभूतलः ॥ ११ ॥  
 तमः स्यादयं लोक इति शोकमुपागतः । वदर्श चापि पुरुषं स्वपत्नं पर्वतोपमम् ।  
 लिलेऽर्धमयोमनं जीमूतमिव सागरे । तपन्तमिव तेजोभिरामुकशशिभास्करम् ।  
 गाम्भीर्यात्सागरमिव भासमानममहोजसा ।

देवं द्रष्टुमिहायातः को भवानिति चिस्मयात् ॥ १०० ॥

यैव च मुनिः कुक्षिं पुनरेव प्रवेशितः । स प्रविष्टः पुनः कुक्षिं मार्कण्डेयः सचिस्मयम् ।  
 यैव च पुनर्भूयो विज्ञानस्यप्रदर्शनम् । स तथैव यथा पूर्वं पृथिवीमदत्ते वनम् ।  
 ग्यतीर्षजलोपेनं विविधान्याधमाणि च । कतुमिर्यत्रमानाश्च समाप्तगुहक्षिणौ ।  
 परपदेवकुक्षिस्थान्यत्रस्थाभ्युत्तरोद्विजान् । सतुगृत्तमाश्रिताः सर्ववर्णाप्राज्ञानपूर्वकाः ।  
 स्यात् प्राधमाः सम्यग्यथापूर्वविलोकिताः । एवं पर्यशतं साग्रं मार्कण्डेयेन धामना ।  
 ता पृथिवीं सर्वात्तकुक्षौ हि समीक्षयन् । ततः कदाचिरथ ये पुनः कुक्षेरिनिर्गतः ।  
 तं स्वप्रोक्षणावायां बालमेकं निरीक्ष्य यः । तथैवेकाणं वज्रले नीहारेणातृतान्दरे ।  
 ज्यनन्दोद्दिने लोके सत्यभूतविषजिने । स मुनिर्चिस्मयापिष्टः फौगूहलसमन्वितः ।

बालमादित्यसदृशं न शक्नोत्यमिषोक्षितुम् ।

सोऽप्यचिन्तयदेकान्ते स्थिरया रात्रिलसन्निधौ ॥ १०१ ॥

इष्टमिदं मेने शङ्कितो देवमायया । भगव्ये सलिले शेने मार्कण्डेयः रात्रिः प्रभः ।  
 श्रुतकरो द्रष्टुमयत्रयस्त्रयोदशकः । स तस्मै मगयानाह स्वागतं बाल भो इति ।  
 शपे मेघनुत्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः । मार्कण्डेय न निज्यमागच्छस्व प्रमादितम् ।  
 मार्कण्डेय उवाच ।

। मया कोनंयति मां कुर्वन्तरिमर्ष मम । दिग्भक्तसहस्राक्षं भगवंश्चैव मे भक्तः ।  
 त्वेव च सदान्तो देवेष्वपि यदोक्तिः । मां प्रशान्तिं हि सत्वेहो दीपान्तिविजितम् ।

यस्यो योगमासाद्य मयाय एवभक्तोक्तिः ।

मार्कण्डेयेति मानुष्या मृत्युमोक्षितुमर्हति ॥ ११२ ॥

एवं द्रष्टुमिष्टं कोप्यत्तर्कदेवो महाशक्तिः । तदेव यत्तत्तन्मूर्त्यो वनात् मृत्युर्हति ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः] भगवन्मार्कण्डेयसंवादे भगवता स्वार्त्तमनोमाहात्म्यवर्णनम् ३८१

श्रीभगवानुवाच ।

॥ हंते जनको घत्स हृषीकेशः पितागुरुः । आयुःप्रदाता पौराणः किं मां त्यं नोपसर्पसि  
मां पुत्रकामः प्रथमं त्वत्पिताऽङ्घ्रिरसो मुनिः ।

पूर्वमाराधयामास तपस्तीर्थं समाश्रितः ॥ ११८ ॥

तं दृष्ट्वा घोरतपसं त्रिदशोत्तमतेजसम् । दत्तवांस्त्वामहं पुन महर्षिमिति जसम् ॥

कस्तस्मुत्सहते चान्यो योगिभूतात्मगात्मकम् ।

ब्रह्ममेकार्णवगतं कीदृन्तं योगमायया ॥ १२० ॥

ततः प्रहृष्टद्वयो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।

मूर्ध्नि यदाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः ॥ १२१ ॥

नामगोत्रे ॥ सम्प्रोच्य दीर्घायुर्लोकपूजितः । तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमधाकरोत्  
मार्कण्डेय उवाच ।

इच्छामि त्वत्पतो ज्ञानुमिमां मायां त्वयानघ ।

यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ॥ १२३ ॥

किं संवद्वैष भगवाँल्लोके विघ्नायसे प्रभो ।

तर्कयेऽहं महात्मानं को ह्यन्यः स्थानुमर्हसि ॥ १२४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अहं नारायणो ब्रह्मसर्षभूतविनाशनः । अहं सहस्रशीर्षास्यः सहस्रपदगन्धुनः ॥ १२५ ॥

आदित्यवर्णः पुरयो मुखे ब्रह्ममयो हृद्गम् । अहमग्निर्हृष्यपहः सप्तसप्तभिरन्यितः ॥ १२६ ॥

अहमिन्द्रपदः शक्रः ऋतूनां परिधरसतः । अहं योगिषु सादुपश्रव्यो युगान्तःवनं पव य

अहं सर्षाणि सत्त्वानि देवतान्यपिष्ठानि च ।

भुजगानामहं शेषस्तादृषोऽहं सर्वपक्षिणाम् ॥ १२८ ॥

एतान्तः सर्वभूतानां विश्वेयः कालसंज्ञितः । अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्षाधमनिशादिनाम् ॥

अहं दयापरो धर्मः क्षीरोदोऽहं महार्णवः । परसत्यं तत्परं तदेक अहमेव प्रजापतिः ॥

अहं सादुपमहं योगो ह्यहं तत्परमं पदम् । अग्निं न्या क्रिया बाह्वहं विद्याधिरागृहः

अहं ज्योतिरहं घायुरहं भूमिरहं जलम् । आकाशोऽहं समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ।  
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः । अहं पुराणं परमं तथैवाहं परायणम् ॥१३१॥

भविष्ये चापि सर्वत्र भविष्यत्सर्वसङ्ग्रहः ।

यत्किञ्चित्पश्यसे चिप्र यच्छृणोषि च किञ्चन ॥ १३४ ॥

यद्यानुभषसे लोके तत्सर्वं मामनुस्मर । विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेऽद्यापि च पश्याम् ।

युगे युगे च रक्षामि मार्कण्डेयाखिलं जगत् ।

तदेतत्कथितं सर्वं मार्कण्डेयावधारय ॥ १३६ ॥

शुभ्रपुरपि धर्मेषु कुक्षौ चर सुखं मम । मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवाश्च ऋषिभिः सह ।

व्यक्तमव्यक्तयोगं मामघगच्छ मुरद्धिपम् । महमेकाक्षरो मन्त्रस्त्यक्षरश्च पितामहः ।

परब्रह्मर्गं ओंकारः परमात्मप्रदर्शनः । एवमादिपुराणं च वदते मां महामते ॥ १३८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

पक्त्रमाहुतधानीशो मार्कण्डेयमथो हरिः । ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः ।

यवक्ष्यं विविधमुपाश्रितं तु तन्महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे ।

शनेश्वरन्मभुरथ हंसव्रतः सिंसृजज्जगद्दिहरति कालपर्यये ॥ १४१ ॥

अथचैवं शुचिर्भूत्वा चचार स तु ये तपः । छादयित्वाऽऽत्मनो देहं पयसाभ्युन्नसम्भवः ।

सतो महात्मातिबलोमर्त्यलोकविसर्जने । महतां चैव भूतानां विभ्यो विभ्रमचिन्तयन् ।

तस्य चिन्तयमानस्य नियते संस्थितेऽर्णवे ।

निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति संक्षये ॥ १४४ ॥

ईशः संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिलं गतः । अथान्तरादपां सूक्ष्ममपच्छिद्रमभूत्पुनः ।

शब्दं प्रति ततो भूतो मास्तश्छिद्रसम्भवः । संलब्ध्वान्तरसंक्षोभं व्यपर्यत समीरणः ।

नभस्पता यत्पता वेगाद्विशोभितोऽर्णवः ।

तस्यार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नग्भासि मप्यतः ॥ १४७ ॥

कृष्णयत्मां सममयत्प्रभुर्यैश्वानरो महान् ।

सतः संशोषयामास पावकः सलिलं यद् ॥ १४८ ॥

समस्तजलधिशिद्धद्रममयद्विस्तृतं नमः । आत्मतेजोभवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः  
 आकाशं छिद्रसम्भूतं वायुराकाशसम्भवः । अथ सङ्घर्षसम्भूतं पावकं वास्य सम्भवम्  
 पृथ्वा पितामहो देवो महाभूतविभावनः । दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थमुत्तमम्  
 ब्रह्मणो जन्मसदितं यदुरुपो ह्यचिन्तयत् । चतुर्युगानां संख्यातं सदृशं युगपर्यये ॥

यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् ।

बहु जन्म विशुद्धात्मा ब्रह्मणो हरिरुच्यते ॥ १५३ ॥

ज्ञानं दृष्ट्वा तु विश्वात्मा योगिनां याति योग्यताम् ।

तं योगधन्तं विज्ञाय सङ्पूर्णश्चर्यमुत्तमम् ॥ १५४ ॥

॥ ब्रह्मणि विश्वस्य न्ययोजयत् योगवित् । ततस्तस्मिन्महातोये महेशो हरिरच्युतः  
 जलक्रीडां च विधियत्स चक्रे सर्पलोकहृत् । पद्मं नाम्बुद्रवं चैकं समुत्पादितवांस्ततः  
 सहस्रवर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्मयम् ॥ १५५ ॥

हुताशनज्वलिग्निलोऽज्ज्वलप्रभं समुत्थितं शरदमलार्कतेजसम् ।

विराजते कमलमुदारवर्चसं महात्मनस्तनुस्त्वचायशैवलम् ॥ १५६ ॥

एति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिलखण्डे पद्मप्रादुर्भावो नामैकवत्वारिंशोऽध्यायः ।

## द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

पद्ममध्याद् ब्रह्मण उत्पत्तिकथनम् ।

बुलस्त्य उवाच ।

अथ योगवतां ध्रेष्टमसृजद्भूरिपर्वसम् । अष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥  
 तस्मिन्हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते । सर्वतेजोगुणमये पार्थिवैर्लक्षणेवृते ॥ २ ॥  
 तच्च पद्मं पुराभूतं पृथिवीरूपमुत्तमम् । नारायणसमुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः ॥ ३ ॥

यत्पद्मं सा रसा देवी पृथिवी परिकल्प्यते ।

ये पञ्चकेशरा मुखशस्तान्दिव्यान्पर्वतान्विबुधः ॥ ४ ॥

हिमवन्तं च नीलं च मेरुं निपथमेवच । कैलासं शृङ्गवन्तं च तथाद्रिं गन्धमादृतम् ।  
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेवच । उदारं पिञ्जलं चैव विन्ध्यमस्तं च पर्वतम् ।

एत एव गणानां च सिद्धानां च महात्मनाम् ।

आश्रयाः पुण्यशीलानां सर्वकामफलप्रदाः ॥ ७ ॥

एतेषामन्तरे द्वीपो जम्बूद्वीप इतिस्मृतः । जम्बूद्वीपस्य संस्थानं यद्विषया यत्र च क्रिया  
तेभ्योयद्वृष्यते तोयं दिव्यामृतसोपमम् । दिव्यपरीर्यशताधाराः सरस्यः सर्वतः स्फुटा  
यान्येतानीह पद्मस्य केसराणि समन्ततः । असंख्येयाः पृथिव्यां ते विविधास्त्वैवपर्वताः  
यानि पर्णानि पद्मस्य भूरि पूर्वाणिपार्थिव । ते दुर्गमाःशलचितास्तेच्छदेशाःप्रकीर्तिताः

यान्यधोभागपद्माणि तानि चासास्तु भागशः ।

दैत्यानामसुराणां च पन्नगानां च पार्थिव ॥ १२ ॥

तेषां मध्येऽन्तरं यत्तु तद्रसातलसंक्षिप्तम् । महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ।  
पद्मस्य चान्तरे पद्म एकार्णवगता मही । चतुर्दिशासु सङ्ख्याताभ्रधाराः सलिलाकणः  
एवंनारायणस्यार्थे मही पुष्करसमभवा । प्रादुर्भावोऽप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंज्ञितः  
एतस्मात्कारणाद्यज्ञे पुराणैः परमर्विभिः । यद्विषैर्वेददृष्टान्तेष्वक्षेयूपचिन्तिः कृता ॥ ११ ॥  
एवं भगवता तेन विश्वं व्याप्यधराचिता । पर्वतानां नदीनां च रचना चैव निर्मिता ।

विश्वस्य यश्चाप्रतिमप्रभापः प्रभाकरामो परुणोऽमितद्युतिः ।

शनैः स्वयम्भूर्व्यसृजत्सुपुतं जगन्मयः पद्मनिधिं महार्णवे ॥ १८ ॥

पिप्रस्तपसि सम्भूतो मधुनाम महासुरः । तेनैव च सहोबुभूतो ह्यसुरो नाम कैटभः ।  
तौरजस्रतमसोभूतो सम्भूतो तामसो गणौ । एकार्णवं जगत्सर्वं क्षोभयेतां महाक्षौ  
दिव्यरक्ताम्बरधरा श्वेतदीप्तोप्रदंष्ट्रिणौ । किरीटमुकुटोदयोकेयूरपल्लयोरुग्रपत्नी ॥ २१ ॥  
महाविभूतताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ । महामिष्टे संहननौ जङ्गमादिवपर्वतौ ।  
नयमेघप्रतापशायदित्यप्रतिमानौ विगुलामोहकेयूरफराभ्यामतिभीषणौ ॥ २३ ॥

। कम्पयन्तौ हरिमिव शयानं मधुसूदनम् ।

ॐ तत्र विचरन्तौ ॥ पुष्करे विश्वतोमुखौ । योगिनां श्रेष्ठमत्यन्तं दीप्तं ददृशुस्तदा  
नारायणं समाह्वयतं सृजन्तमखिलाः प्रजाः ।

दैवतानि च विश्वानि मानसांश्च सुतानृपीन् ॥ २६ ॥

तस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ । दुष्टौ युयुत्सु सङ्कुद्धौ कोधव्याकुलितेक्ष्णौ  
स्त्वंपुष्करमध्यस्थः सितोष्णीपश्चतुर्भुजः । आषाढगजयन्मोहादास्ते त्वं विगतस्पृहः  
स्वागच्छावयोर्भुजं देहि त्वं कमलोद्भव । आषाढ्यां परमेशाम्यामशकः स्थातुमर्णवे ॥  
प्रकश्च भवेत्तुभ्यं येन चाग्रनियोजितः । कः श्रेष्ठः कश्च ते गोप्ता केन नाम्नाभिधीयते  
ब्रह्मोवाच ।

शरः प्रोक्ष्यते लोकेषिष्णुश्चानन्तराक्षिभृत् । तत्सकाशानुजातं मां श्रेष्ठारमयगच्छतम्  
मधुकैटभायूचतुः ।

ययोः परमं लोके किञ्चिदस्ति महामुने । आषाढ्यां छाद्यते विश्वं तमसा रजसा च ये  
स्तमोमयाषाढासृषीणामतिलङ्घिनी । धर्मशीलं छाद्यन्तौ नाशकौ सर्वदेहिनाम् ॥

आषाढ्यां युज्यते लोको दुस्ताराभ्यां युगे युगे ।

आषाढ्यं च कामश्च यज्ञस्तस्य परिग्रहः ॥ २७ ॥

अथ मयो यत्र यत्र धीः कीर्तिरेव च । येषां यत्काङ्क्षितं किञ्चित्तत्तदापापि विन्द्य  
ब्रह्मोवाच ।

आषाढ्यांसंहतीदृश्या युषां पूर्वपराजितौ । तं समाधाय गुणिनं सत्यं चास्मिन्माभितः

यः परो योगयुक्तमा योऽक्षरं स त्वमेव च ।

रजस्तमसश्चैव यः श्रेष्ठः विश्वसम्भवः ॥ २८ ॥

ततो भूतानि जायन्ते सात्विकानीतराणि च । स एव युषयोर्नाशं पातु देवः करिष्यति  
स्वप्नेष ततो देवो यदुयोजनविस्तृता । बाहू नारायणो ब्रह्महृत्तयानारममायया ॥

कृष्यमाणो ततस्तस्य बाहुभ्यां बाहुशालिनौ ।

चेत्तुस्तौ विगलितौ शत्रुनादिव पौषरी ॥ २९ ॥

ततस्तापाहनुर्गत्वा घातुर्देवं सनातनम् । पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणिपत्य नम्रदुर्भौ ॥ ३० ॥

जानीवस्त्वां विश्वयोनिं त्वामेकं पुरुषोत्तमम् ।

आचयोश्चैव हेतुं त्वां जानन्ती बुद्धिकारणम् ॥ ४२ ॥

अमोघदर्शनं सत्यं यतस्त्वां चिद्वशाश्वतम् । ततस्त्वाममितो देवकाङ्क्षावः प्रसमीक्षितुम्  
अमोघदर्शनोऽसि त्वं नमस्ते समितिञ्जय । तमिच्छाधोवरं देव त्वया हितमस्मिन् ।

श्रीभगवानुवाच ।

किमर्थं मामनुग्रूथ युवामसुरसत्तमौ । गतायुष्को युवां भूयस्त्वहो जीवितुमिच्छयः ।

मधुकैटभावूचतुः ।

यस्मिन्नकश्चिन्मृतवान् देव तस्मिन् यद्यं प्रभो । इच्छावः पुत्रतां चैव भयतः सुमहात्मानः ।

श्रीभगवानुवाच ।

युययोर्बाढमेतत्स्याद्द्विष्ये कलिसम्भवे । भविष्यथो न सन्देहः सत्यमेतदुग्रवीमि वाम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्वधरः सुरोत्तमः ।

रजस्तमोजो तु तदाञ्जनोपमौ ममर्वताघूर्तलेऽमप्रभुः ॥ ४८ ॥

स्थित्वा तस्मिन्स्तु कमले ग्रहा ग्रहविदां धरः ।

ऊर्ध्वयाहुर्महातेजास्तपाघोरं समाश्रितः ॥ ४९ ॥

प्रज्वलन्निष तेजोमिर्भामिः स्यामिस्तमोनुदः । यमासे स तुघर्मात्मासहस्राङ्गुरिवाङ्गुलिः  
अध्यान्यद्रूपमास्थाय प्रभुर्नाशयणोऽन्ययः । भाजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशः  
साङ्ख्याचार्यश्च मतिमान्कविलो ग्रहणां धरः । उभावपि महात्मानो पूजितौ तत्र तत्पत्नी  
सौ प्रातावूचतुस्तत्र ग्रहणां ममिहो जसम् । परापरविशेषज्ञौ पूजितौ च महर्षिभिः ॥  
ग्रहसम्परिष्यन्ते विशालं जगदास्थितौ । ग्रामणीस्सर्वभूतानां ग्रहा त्रैलोक्यपूजितौ  
तयोस्तद्भजनं धृत्या विबोध्य गतयोः परम् । श्रीनिमान् तत्पत्नीलोकान्यधेयं ग्रहणधुत्ति  
पुत्रं स्पृशन्मयं चैकं समुत्पादिवान्मुषम् । तदाग्रे चागतस्तस्य ग्रहमानससम्भवः ॥

उत्पन्नमात्रो ग्रहान्मुक्कयान्मानसः सुतः ।

किदुर्मस्त्य साहाय्यं प्रीतिं भगवानिति ॥ ५३ ॥



ब्रह्मोवाच ।

देव कपिलो नाम ब्रह्मनारायणस्तथा । धदतो भवतस्त्वं तु तत्कुरुष्व महामते ॥  
क्षणा स तथोक्तस्तो प्राहभूष समुत्थितः । शुश्रूषस्मि युवयोः किंकरोमि वृताञ्जलिः  
श्रीमगवानुवाच ।

स्तत्पमधुरं ब्रह्म भद्रादशविधं च तत् । यस्तत्पममृतं तत्तु परंपदमनुस्मर ॥ ६० ॥  
तद्वचो निशम्यैवं स यथो दिशमुत्तराम् । गत्वा च तत्र स ब्रह्म भगमउत्तानचक्षुषा ॥  
तो ब्रह्मा भुयर्नामद्वितीयमसृजत्प्रभुः । सङ्कल्पयित्वा मनसा तमेव च महामना ॥  
॥ सोऽप्यब्रवीद्वाक्यं किंकरोमिपितामह । पितामहसमाज्ञातो ब्रह्माणं समुपस्थितः  
क्षणस्यामृतरसोऽनुभूतस्तेन वै ततः । प्राप्तः स परमं स्थानं सतयोः पारम्यमागतः  
तस्मिन्नपि गते सोऽथ तृतीयमसृजत्प्रभुः ।

मोक्षप्रवृत्तिशुशालं सुधर्नामयुतं प्रभुः ॥ ६५ ॥

सोऽपितं धर्ममास्थाय तयोरेषागमद्रतिम् । एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येतेगताःशम्भोर्महात्मनः  
तानृहीत्या सुतांस्तस्य तौगतावूर्जितां गतिम् । नारायणश्च भगवान्कपिलश्च यतीश्वरः  
यं कालं ते गता ब्रह्म ब्रह्मा तं कालमेषव । तपोघोरतरं भूयः संश्रितः परमं परम् ॥  
न च शकस्ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन् । शरीरार्थासतो भार्यामुत्पादयति तच्छुभाम्  
मात्मनः सङ्कशान्पुत्रानसृजद्वै पितामहः । विश्वेप्रजानां पतयो येम्यो लोकापिनिःसृताः  
विश्वेश प्रथमं तावन्महारमातपसात्मजम् ।

सर्वत्र संहतं पुण्यं नाम्ना धर्मं स स्पृशान् ॥ ७१ ॥

दर्शं मरीचिमग्निं च पुलस्त्यं पुलहंकनुम् । पतिष्ठंगौतमं चैव भृगुपद्गिरसं मुनिम् ॥  
अत्यद्भुतास्स्वहृत्स्येन क्षेपास्तेन महर्षयः । त्रयोदशगुणारम्भा ये यंशान्नु महर्षिणाम् ॥  
अदितिर्दितिर्दनुः काला भनायुः सिद्धिकाशसा । प्राची मोधाचमुरसापिनताकद्रोषच  
दक्षस्यापत्यमेतद्वै कन्यद्वादशवार्थिव । नक्षत्राणि च चन्द्रस्यविद्यतिस्ततः सोत्रिणाः ॥  
मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः किळ । तस्मै द्वादशकन्याश्च दक्षस्ताभ्यान्वमन्यत  
नक्षत्राणि च सोमाय तपैव दत्तवान्गिः । रोहिण्यादीनि सर्पाणि पुण्यानि कुप्यन्दनः

जानीवस्त्वां विश्वयोर्नि त्वामेकं पुरुषोत्तमम् ।

आवयोश्चेव हेतुं त्वां जानन्तौ बुद्धिकारणम् ॥ ४२ ॥

अमोघदर्शनं सत्यं यतस्त्वां चिद्दर्शाश्च तम् । ततस्त्वाममितो  
अमोघदर्शनोऽसि त्वं नमस्ते समितिञ्चय । तमिच्छावोवरं देव त्वया

श्रीभगवानुवाच ।

किमर्थं मामनुब्रूथ युवामसुरसत्तमौ । गतायुष्कौ युषां भूयस्त्वहो जीविनि

मधुकैटभावूचतुः ।

यस्मिन्नकश्चिन्मृतवान्देव तस्मिन्वधं प्रभो । इच्छाधः पुत्रतां चैव भवतः पु

श्रीभगवानुवाच ।

युवयोर्बाढमेतत्स्याद्द्विष्ये कलिसम्भवे । भविष्यथो न सन्देहः सत्यमेतदु

पुलस्त्य उवाच ।

वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्वधरः सुतोत्तमः ।

रजस्तमोजो तु तदाञ्जनोपमौ ममर्दतायूरुतलेऽमृष्यभुः ॥ ४८ ॥

स्थित्वा तस्मिन्स्तु कमले ग्रहा ग्रहाचिदांघर ।

ऊर्ध्वं वा द्रुमं हाते जास्तपाघारं समाधितः ॥ ४९ ॥

प्रज्वलन्निव तेजोभिर्भाभिः स्वाभिस्तमोनुदः । यमासे स तु धर्मात्मा सहस्रगुणै

भयान्यद्रूपमास्थाय प्रभुर्नारायणोऽन्ययः । भाजगाम महातेजा योगाचार्यो

साङ्ख्याचार्यश्च मतिमान्कपिलो ग्रहणांघरः । उभाधपि महात्मानौ पूजितौ त

तो प्राप्तावूचतुस्तत्र ग्रह्याणममितोजसम् । पराचरविशेषशी पूजितौ च महर्षे

ग्रहसम्परिवेजन्ते विशालं जगदास्थितौ । ग्रामणीस्सर्वभूतानां प्रदा त्रैलोक्य

तपोस्तद्वचनं ध्रुत्वा विबोध्य गतयोः परम् । त्रीणिमान्मृतर्षास्तोफान्यथेयं

पुत्रं स्पृशन्मयं चैकं समुत्पादिवान्भुषम् । तदाग्रे चागतस्तस्य ग्रहमानसक

उत्पद्यमाथो ग्रह्याणमुक्त्वा नमानसःसुतः ।

किमुर्मस्तप साहाय्यं प्रणीतु भगवानिति ॥ ५३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

लो नाम ब्रह्मनारायणस्तथा । घटतो भयतस्त्वं तु तत्कुरुष्व महामते ॥  
अथोक्तस्तौ ब्राह्मभूष समुत्थितः । शुश्रूषुरस्मि युवयोः किंकरोमि कृताञ्जलिः

श्रीमगवानुवाच ।

१ ब्रह्म भद्रादशविधं च तत् । यत्सत्यममृतं तत्तु परंपदमनुस्मर ॥ ६० ॥  
शम्भैवं स ययौ दिशमुत्तराम् । गत्वा च तत्र स ब्रह्म भगमज्ञानचक्षुषा ॥  
सुषर्णामद्वितीयमसृजत्प्रभुः । सङ्कल्पयित्वा मनसा तमेव च महामना ॥  
प्रथीद्वाक्यं किंकरोमिपितामह । पितामहसमाज्ञातो ब्रह्माणं समुपस्थितः  
तरसोऽनुभूतस्तेन वै ततः । प्राप्तः स परमं स्थानं सतयोः पार्श्वमागतः  
स्मिन्नपि गते सोऽथ तृतीयमसृजत्प्रभुः ।

शेषप्रवृत्तिशृणुष्व सुषर्णामयुतं प्रभुः ॥ ६५ ॥

१ धर्ममास्थाय तयोरेवागमद्वन्तिम् । एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येतेगताःशम्भोर्महात्मनः  
त्या सुतास्तस्य सौगतावूर्जितां गतिम् । नारायणश्च भगवान्कपिलश्च पतौश्यरः  
१ ते गता ब्रह्म ब्रह्मा तं कालमेव च । तयोरोरतरं भूयः संधितः परमं पदम् ॥  
कस्ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन् । शरीरार्थात्ततो भार्यामुत्पादयति तच्छृणुमाम्  
१ सद्गुणान्पुत्रानसृजत् पितामहः । विश्वेप्रजानां पतयो येभ्यो लोकायिनिःसृताः  
विश्वेशं प्रथमं तावन्महात्मातपसात्मजम् ।

सर्वत्र संहतं पुण्यं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान् ॥ ७१

विमर्शि च पुलस्त्यं पुलहंकनुम् । वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमद्विरतं मुनिम् ॥  
स्त्यकृत्येन द्वेयास्तेन महर्षयः । त्रयोदशगुणारम्भा ये यंशान्नु मरुपिणान् ॥  
इतिर्दनुः काला भनगुः सिद्धिकाशसा । प्राचीं प्रोधाचगुरसाश्विनशक्रद्रौषध  
त्यमेतद्वै कल्पद्वादशशर्षिष । नक्षत्राणि च चन्द्रस्यर्षिशतिस्सप्त चोर्विजराः ॥  
अथपः पुत्रस्तस्मा निर्मितः किल । तस्मै द्वादशकन्याश्च दक्षस्ताभ्यान्वमन्यत  
१ च सोमाय तथैवं दत्तवान्पिः । रोहिण्यादीनि सखांश्चि पुण्यानि कुन्जन्दनः

तथैव दशधर्माय दत्ताश्रापिमनोरमाः । लक्ष्मीस्सरस्वती सन्ध्याविश्वेशा च महायमः ।

देवी सरस्वती चैव ब्रह्मणा निर्मिताः पुरा ॥ ७८ ॥

एताः पञ्चवरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय पार्थिव । दत्ता धर्माय भद्रं ते ब्रह्मणा दृष्टकर्मणा ।

यारूपार्थयती पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी । सुरमिः सहसा भूत्या ब्रह्मणं समुपस्थितः ।

ततस्तामगमद्रुद्रा मयिने लोकपूजितः । लोकसर्जनहेतुषो गवामर्थाय सप्तमः ॥ ८१ ॥

जज्ञे चैकादश सुतान्यपुलान्धर्मसंश्रिताम् । रक्तसंध्याभ्रसङ्काशान्महतस्तिग्मतेजसः ।

ते खन्तो द्रवन्तश्च गतवन्तः पितामहम् । रोदनाद्रुद्रवणाश्रुय रद्रा पथेति तेष्वृक्षः ।

निम्नं तिश्चेव सन्ध्यश्च तृतीयश्चाप्ययोनिरजः ।

मृगध्याधः कपर्दी च महाविश्वेश्वरश्च यः ॥ ८४ ॥

अहिपुंज्यश्च भगवान्कपाली चैव पिङ्गलः । सेनानीश्च महातेजा रद्राश्चैकादशम् ।

तस्यामेव सुरस्यां च गायोजाताः सुराश्च ये । भद्रश्चैव तु हंसश्च तथैव नृपसप्तमः ।

भोषण्यः प्रवरायाश्च सुरभ्यास्तास्तमुत्पिताः ।

धर्माहर्क्षमस्तथा कामं साध्यान्साध्या व्यजायत ॥ ८७ ॥

भवं च प्रभयं च वृक्षादयं सुवहं तथा । भरणं वरणंचैव विश्वामित्रचतुर्थो ॥ ८८ ॥

हविष्मन्तं तनूजं च विधानामिमतापि । परसरं चैव भूतिः ॥ सर्पासुरनिद्रश्च ।

सुरपाणं वृहत्कान्ति महालोचनमसृष्टम् । वासवानुगता देवी जनवामास वै सुरः ।

धरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं धूपमध्यम् । विश्वापत्तुं तृतीयं च चतुर्थं सोममस्तवत् ।

ततोऽनुरुपनायं च यम तन्मादनन्तरम् । सप्तमं च तथा पायुमष्टमं निम्नं त्रिंशत् ।

धर्मस्यापस्तममेतद्वै सुरगदां तदजायत । विश्वेदेवाश्च विश्वापां धर्मागत्राता इति ।

दशश्चैव महाबाहुः पुष्करस्तम एव च । चाक्षुषश्च ततोऽग्निश्च तन्मादनन्तरम् ।

विश्वन्तश्च गुर्वालो निरुजश्च महापथाः । रद्रुधातिसिद्धीरा भारकाश्चैव ।

विश्वदेवाश्चैवमता विश्वेषां जनयामुताम् ।

मरुत्पती मरुत्पती देवान्जनयामुताम् ॥ ९१ ॥

अग्निश्चैव विश्वोक्तिः सावित्री दिवमेव च । भ्रमरं शङ्खं च सुवहं च मरुत्पती ।

राजं चैव राजं च विश्वायुं सुमतिं तथा । अश्वगं चित्ररश्मिं च तथा च निपथं नृपम्  
भूय एवं चात्मविधिं चारित्रं पादमात्रगम् ।

वृहन्तं वै वृहद्रूपं तथा चैव सनाभिगम् ॥ ६६ ॥

रत्नवती प्रजा जज्ञे ज्येष्ठान्तं मरुतां गणम् । अदितिः कश्यपाञ्जज्ञे आदित्यान्नादशीवहि  
इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोऽश्रोऽर्यमा रविः ।

पूषा मित्रश्च वरदो घाता पर्जन्य एव हि ॥ १०१ ॥

येते द्वादशादित्याथरिष्टास्त्रिदिवीकसाम् । आदित्यस्यसरस्यत्यां जज्ञाते द्वौसुतोऽपरी  
ऽश्वेष्टौ गुणधेष्टौ त्रिदिवस्यातिसंमतौ । वनुस्तु दानवाञ्जज्ञे दितिर्देत्यान्वजायत ॥

एता तु कालकेयांस्तानसुरान्वाक्षसांस्तथा । मनायुषायास्तनया व्याधयश्च महाबलाः  
दिका प्रहमाता च गन्धर्वजननी मुनिः । प्राचीत्यप्सरसां माता पुण्यानां भारतेतरा

क्रोधाद्याः सर्वभूतानि पिशाचायाश्च पार्थिव ।

जज्ञे यक्षगणांश्चैव राक्षसांश्च विशापते ॥ १०६ ॥

ऽप्सरानि सत्त्वानि एता गाश्चैव सौरमी । पुराणपुरुषश्चैव मायां विष्णुर्हरिः प्रभुः  
कथितस्तेऽनुपूर्वेण संस्तुतश्च महर्षिभिः ॥ १०८ ॥

यश्चैश्मप्रयं शृणुयात्पुराणं सदा नरः पर्वसु चेत्पठेत् ।

अवाप्य लोकं स हि पीतरागः परत्र च स्पर्गफलानि भुङ्क्ते ॥ १०९ ॥

पामनसा धावाकर्मणा च क्षतुर्धिधम् । प्रसादयति यः कृष्णं तस्य कृष्णः प्रसादति  
राज्यं च लभते राजा निर्धनधोत्तमं धनम् ।

क्षीणायुर्लभते चायुः पुत्रकामोऽथ सन्ततिम् ॥ १११ ॥

यक्षार्धिनस्तथा कामांस्तपांसि विधिधानि च ।

यं यं कामयते कामं तं तं लोकेश्वरपुत्रमेव ॥ ११२ ॥

सर्वं पिहाय य इमं पठेद्देवोष्करं हरेः । प्रादुर्भावं नरधेष्ठ न तस्य द्यगुर्न भवेत् ॥ ११३ ॥

एष षोष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः । कर्तितस्तु महाबाह्व व्यासधृतिनिर्द्दरान्

विष्णुत्वं शृणु मे विष्णोर्हरित्वं च हृतेयुगे । वैकुण्ठस्थं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च

ईश्वरस्य हितस्यैवा कर्मणां गहना गतिः । साम्प्रतं भूतमव्यं च शृणुपुत्रन्यथा ॥  
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एव भगवान्प्रभुः ।

नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽप्य एव च ॥ ११७ ॥

एव नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातनः । ब्रह्मा वायुश्च सोमश्च धर्मः शक्रोवृक्षश्च  
अदितेरपि पुत्रत्थमेत्यजः कुस्मन्दन । एव विष्णुरिति कथात इन्द्रस्याबरजो वि  
प्रसादनं तस्य चिभोरदित्याः पुत्रकारणम् । यद्यार्थं सुरशत्रूणां वैत्यदानवरसाम  
प्रधानात्मा पुरा ह्येव ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः । सप्तर्थां सुरान्कल्पे ब्रह्माणं च प्रज  
असृजन्मानसांस्तत्र ब्रह्मयंशाननुत्तमान् । तेभ्योऽभवन्महात्मन्यः परं ब्रह्म सनातन

एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तितम् ।

कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ १२३ ॥

वृत्ते वृत्रवधे भीष्म धर्तमाने कृते युगे । भासीतत्रैलोक्यविष्ण्यातः सङ्ग्रामस्तारकान्  
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे सङ्ग्रामदुर्जयाः । प्रन्ति देवासुरान्सर्धान्सयक्षोपापाक्ष  
ते वध्यमाना विमुखाश्छिन्नप्रहरणारणे । शतारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभु  
पतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्घाणाङ्गारवर्चसः । साकंचन्द्रग्रहणं छादयन्तो तमस्तल  
चण्डविद्युद्गणोपेता घोरनिर्हादकारिणः । अन्योन्ययेयाभिहताः प्रवधुः सप्तमास्ता  
दीप्ततोयाः सनिर्घातैःसहस्रज्ञानलानिलैः । रवेस्सुघोरैरुत्पातैर्वह्ममानमिषाम्बरम् ॥ १२४ ॥

पेतुरल्कासहस्राणि निपेतुः खचराण्यपि ।

दैवानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ १२५ ॥

चतुर्युगान्तसमये लोकानां यद्गवं भवेत् । अरूपवति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे  
तस्मादुदुष्प्रथितं सर्वं न प्राश्नायत किंचन । तिमिरौघपरिक्षिता न रेतुश्च दिशो दश  
पिचेश रूपिणी काली कालमेघावगुण्डिता । घोरैर्मातृभिर्भूतार्का घोरैश्च तमसा वृ  
तान्यनौघान्सतिमिरान्दोर्म्यामाच्छिद्य स प्रभुः । वपुःस्यंदर्शयामासदिव्यंरूपं वपुर्ह  
यलाहकाञ्जननिभं यलाहकतनूरहम् । तेजसा वपुषा चैव रूपं रूपमिषाचलम् ॥ १२५ ॥

दीप्तं पीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।

भूधान्धकारघपुत्रं युगान्ताग्रिमिषोत्थितम् ॥ १३६ ॥

वृषद्विगुणपीनांसं किरिताच्छन्नमूर्धजम् । बभौ चामीकराव्येत्युघैरुपशोभितम् ॥

चन्द्रार्ककिरणोद्योतं गिरिकूटमिषोच्छ्रितम् ।

मन्दकानन्दितकरं कौस्तुभोद्भासितोरसम् ॥ १३८ ॥

शक्तिवित्ररुलोदमं शङ्खचक्रगवाधरम् । विष्णुशीलं क्षमाशीलं श्रीयत्सं शार्ङ्गपाणिनम् ॥

त्रिदशोदारकलदं स्वर्गस्त्रीवाक्यह्रमम् । सर्वलोकमनः कान्तं सर्वसत्त्वमनोहरम् ॥ १४० ॥

मायापिशालपिटपं तोयदोषसमप्रभम् । पिपाहङ्गुर्यानाल्यमहाभूतप्ररोहणम् ॥ १४१ ॥

विरोरपत्रैर्निचितं प्रह्नक्षत्रपुष्पितम् । दैत्यलोकमहास्कन्धं मर्त्यलोकप्रकाशितम् ॥ १४२ ॥

सागराकारनिर्हावं रसात्कलतलाधयम् । नागेन्द्रपाशैर्घटितं पक्षिजन्तुसमन्वितम् ॥ १४३ ॥

शीलानाहायंगन्धाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम् । बन्धकानन्दसलिलं व्यकाहङ्गुरफेनिलम् ॥

महाभूतकर्तोर्घोषं प्रह्नक्षत्रपुद्गुदम् । विमानवाहनैर्व्याप्तं तोयदाडम्पराकुलम् ॥ १४५ ॥

जन्तुमत्स्यगणाकर्षणं शैलशङ्खकुलैर्युतम् । त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम् ॥

धीरपूक्षलतागुल्मं भुजगोत्सृष्टशीयलम् । द्वादशार्कमहाद्वीपं रत्नैकादशपत्तनम् ॥ १४७ ॥

यस्य पर्यतोपेतं त्रैलोक्याम्भोमहोदधिम् । सन्ध्यासन्ध्योर्मिसलिलमापूर्णां निलशोभितम्

दैत्यपक्षगणग्रामं रक्षोगणभ्रयाकुलम् । पितामहमहावीर्यं स्वर्गस्त्रीरत्नसङ्कुलम् ॥ १४९ ॥

धीर्कीर्तिकान्तिलक्ष्मोभिर्नदीभिश्च समाकुलम् । कालयोगमहावर्षप्रलयोत्पत्तिवेगितम्

सत्संयोगमहापारं नारायणमहार्णवम् । देवातिदेवं वरदं भक्तानां भक्तवत्सलम् ॥ १५१ ॥

अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम् । हर्यम्बरधसंयुक्तसुपर्णध्वजशोभिते ॥ १५२ ॥

चन्द्रार्कचक्ररचितं दद्यात्क्षत्रतान्तरे । अग्निरश्मिसंयुक्ते दुर्वर्शे मेरुकुपरे ॥ १५३ ॥

तारकाचित्रकुसुमे प्रह्नक्षत्रचन्द्रपुरे । मयेष्वभयदे व्योमिन् देवदैत्यापराजिते ॥ १५४ ॥

हर्यम्बरधसंयुक्तमुक्ताशोभसमन्वितम् । ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्यलोकमधेरधे ॥ १५५ ॥

ते हताञ्जलयः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः । जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः ॥ १५६ ॥

एतेषां च गिरः ध्रुवाश्च विष्णुर्देवदेवतः । मनश्च के विनाशाय दानधानां महामृधे ॥

आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुराश्रितः । उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिबन्धिदं वचः

चिष्णुस्त्वाच ।

शान्तिं व्रजत मद्रं घो माभैष्ट मरुतां गणाः ।

जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ॥ १५६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततोऽस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्धाक्येन तोयिताः ।

देवाः प्रीतिं परां जग्मुः प्राश्यामृतमियोत्तमम् ॥ १६० ॥

तस्तमश्च संहृत्य चिनेशुश्च बलाहकाः । प्रचबुध शिवा चाताः प्रसन्नाश्च दिशो दश ।

प्रप्रापानिज्योतीं पितॄन् चक्रुः प्रदक्षिणम् । न विप्रहं प्रहाश्चक्रुः प्रसन्नाश्चापिसिन्धव ।

वैरजा अभवन्मार्गा लोकाः स्वर्गादयत्नयः । यथार्थमुहुस्सस्तिश्वुधुमे न तथार्थवः ।

वासञ्जुभानोन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु । महर्षयो धीतथोका वेदानुचोर्धायत ।

क्षेपु च हविः पाकं शिवमाप च पायकः । प्रवृत्तधर्मसंवृत्ता लोका मुदितमानसाः ।

विष्णोः सत्यप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधना मिरः ।

ततोऽभयं विष्णुमुखाच्छ्रुत्वा दैतेयदानवाः ॥ १६६ ॥

योगं विपुलं चक्रुर्बुद्धाय विजयाय च । मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनित्यान्तरमव्ययम् ।

तुश्चक्रं सुविपुलं सुकल्पितमहायुधम् । किङ्किणीजालनिर्घोषं क्षीपिचर्मपरिष्कृतम् ।

रुचिरं रश्मिजालैश्च हेमजालैश्च शोभितम् ।

ईदामृगगणाकीर्णं पक्षिसङ्घविपजितम् ॥ १६६ ॥

व्याघ्रशङ्खचक्रं पयोधरनिनादितम् । स्वक्षं रथवरोदारं सूपस्थं यतनोपमम् ॥ १७० ॥

रापरिघसम्पूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् । हेमकेयूरखल्यं चन्द्रमण्डलकूपम् ॥ १७१ ॥

रताकं ध्वजोपेतं सादित्यमिष मन्दरम् । गजेन्द्राभोगवपुषं कवित्केसरवर्चसम् ।

कमृक्षसहस्रेण सुपाराम्बुदनादितम् । दोलमाकाशगं दिव्यं रथं पररथावतम् ॥ १७३ ॥

अभ्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेढं क्षीप्रमिषांशुमान् ।

तारस्तु क्रोशविस्तारमायामे च तथाविधम् ॥ १७४ ॥

नीलाञ्जनचयोपमम् । फाललोहस्यरत्नानां समूहावद्वह्नुवत् ॥ १७५ ॥



तेमिरोद्गारकिर्णं गजन्तमियतोयदम् । लोहजालेन महता सगपाक्षेण दंशितम् ॥  
 भायसेः परिधेः पूर्णशेषनीयेष्व मुद्गरैः । प्रासेःपाशेष्व चित्तैरसंगुत्तैश्च कण्टकैः ॥  
 गोभितं प्रासनीयश्च तोमरेः सपर्यवधेः । उपतं द्विपतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम् ॥  
 कं परसहस्रेण सौऽध्यारोहद्रथोत्तमम् । विरोचनस्तु सङ्खुद्रो गदापाणिपस्थितः  
 मुने तस्य सेन्यस्य दोमभृङ्ग इषाचलः । युक्तं ह्यसहस्रेण ह्यग्रीयस्तु दानवः ॥  
 दूदितं दानपञ्चदं परिचक्राम पोर्यपान् । पिप्रचित्सितुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः ॥  
 रन्दनं धाहयामास परानीकस्य भर्जनः । व्यापतं किङ्कुसाह्वं धनुर्यिस्फारयन्महत्  
 चाहपमुत्ते तस्थौ स प्ररोह इषाचलः । खरस्तु विकिरन्कोधाग्नेप्राभ्यां रोपजं जलम् ॥

स्फुरन्तोष्ठनयनः सङ्ग्रामं सौऽभ्यकाङ्क्षत ।

त्यष्टाःत्यष्टादशहयं धानमास्थाय दानवः ॥ १८४ ॥

श्वेतमेघप्रतीकाशो युद्धायामिमुखः स्थितः ।

भरिष्ठो बलिपुत्रश्च पश्चिो दुर्धरायुधः ॥ १८५ ॥

युद्धायामिमुखस्तथो धराधरविकम्पनः ।

किशोरस्त्यतिसंहर्षात्किशोर इष बोदितः ॥ १८६ ॥

धमवदैत्यमध्ये स प्रहमये यथा रविः । लम्बस्तु नयमेघाभः प्रलम्बाभरभूषणः ॥

दैत्यज्यूहगतो भाति सनाहार इवांशुमान् । घसुन्धराभस्तन्नु दशनीष्टेक्षणायुधः ॥

इसंस्तिष्ठति दैत्यानां मध्ये क्रूरमहाब्रह्मः । अन्ये ह्यगतास्तत्र भस्तेभेन्द्रगताः परैः ॥

तिहव्याप्रगताभ्यान्वे घराहर्षेण वापरे । केचित्खरोध्रयातारः केचित्तोयदपाहनाः ॥ १८७ ॥

पत्तपश्चापरे दैत्या भीषणा विकृताननाः ।

एकपादास्त्यपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १८८ ॥

बास्फोटयन्तो बहवः स्यनन्तश्च तपापरे । द्रुतशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः ॥ १८९ ॥

ते गदापरिघेघोरैः शिलामुद्गरपाणयः । बाहुभिः परिधाकारैस्तर्जयन्ति स्म देवताः ॥

प्रासेः खड्गैश्च पाशैश्च तोमराकुशपट्टिशैः । चिकीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारेश्च मुद्गरैः

खड्गैः शूलैश्च शैलैश्च परिघैर्घोषतायुधैः । युक्तं बलाहकगणैः सर्वतः संवृतं नमः ॥

२६. इत्येवं सैन्यं सर्वसत्त्वमदोत्कटम् । देवताभिमुखं तस्यो मेघानीकमिवोदितम् ।  
 तेजो च तदेत्यसद्वस्त्रगाढं वाप्यग्निमैतान्बुदतोयकल्पम् ।

यत्नं यत्नोपाकुलमभ्युर्ध्वं पुपुत्स्योन्नतमिवावनासे ॥ १६७ ॥

भूतस्तो रेत्यसैन्यस्य विस्तारः कुरून्ध्व । सुपापमपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं भू  
 इति धो पाद्मपुराणे प्रथमे सूक्तिरुक्ते रेत्यसेनावर्णनं नाम द्वित्रित्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

## त्रित्रित्वारिंशत्तमोऽध्यायः

देवसैन्यानां तारकासुरसैन्यैः सह युद्धवर्णनम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

भावेत्या वसवो रुद्रा भस्विनौ च महायत्नौ ।

सकलः सानुगाश्चैव समतद्ग्रन्थधाकमम् ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच । लोकापालः सहस्रहृक् । मामपीः सर्वदेवानामाकरोह परद्विपम् ॥ २ ॥  
 सख्ये चाऽयं रथः पार्श्वे पक्षिप्रवरकेतनः । सुचारु चक्रचरणौ हैमच्छत्रपरिप्लुतः ॥ ३ ॥

रथपार्श्वे चरन्मैत्रेयुपातः सद्वज्रशः । वीर्यमद्विज्व स्यर्गस्थैर्ब्रह्मर्षिभिरभिप्लुतः ॥ ४ ॥  
 वज्रधिरकारितोऽभूत् पियुविन्द्रायुधप्रभैः । युक्तं यत्नाहकगणैः पर्वतरिप कामगैः ॥ ५ ॥

वज्रध्वजः सभगपान्पश्यति सफलं जगत् । हविर्निपु गायन्ति पित्रा मलमुक्षेस्थिताः ॥ ६ ॥  
 स्वर्गसङ्ग्रामपातेषु देवतूर्यनिनादिषु । सशः यमुपनृत्यन्ति शतशो ह्यप्सरोगणाः ॥ ७ ॥

केतुजा बागराजेन राजमानो यथा रविः । युको हयसद्वज्रेण मनोमाद्यतरं हता ॥ ८ ॥  
 सप्तमथ धरो भाति युको मातलिना तदा । कृत्स्नः परिप्लुतो मेघर्भास्कारस्येव तेऽव ॥ ९ ॥

कालयुक्तं च मुद्राम् । तस्यो सुपापानीके देवानां चैव दर्शयन् ॥ १० ॥  
 सेत्विहानीध पद्मगोः । शङ्खमुकाङ्गदधरो बिभ्रतोऽयमयं पद्मः ॥ ११ ॥

हवेः शक्तिकतोपमैः ।

प्राग्धीरितजलाकारैः कुर्वंल्लोलाःसदृशः ॥ १२ ॥

पाण्डुरोद्धूतघसनः प्रवालरुचिराङ्गदः । मणिश्यामोत्तमयपुर्हारकेणार्चितोदरः ॥ १३ ॥

वरुणः पाशधूम्रमध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् ।

युद्धवेष्टामभिलपन्मिन्नवेल इषाणंघः ॥ १४ ॥

यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि । युक्तश्च शंखपद्माभ्यां निर्धानामधिपःप्रभुः ॥

राजराजेश्वरः श्रीमान्गदापाजिरदृश्यत । विमानयोधी धनशो विमाने पुष्पकेस्थितः ॥

॥ राजराजः शुशुभे यक्षेशो नरपाहनः । ईक्षमाणः स्वसङ्ग्रामं साक्षादपि शिषःस्थितः ॥

पूर्वपक्षे सहस्राक्षः पितुराजश्च दक्षिणे । वरुणः पश्चिमे पक्षे उत्तरै नरपाहनः ॥ १८ ॥

चतुष्पक्षाश्च चत्वारो लोकपाला महाबलाः ।

आत्मदिक्षु चरन्तश्च तस्य देवचलस्य ते ॥ १९ ॥

सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनानिलगामिना । प्रियाज्जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः ॥

उद्वास्तामयौ चक्रे मेदपर्यन्तगामिना । त्रिदिवद्वारचक्रेण तपसा लोकमप्ययम् ॥ २१ ॥

सहस्ररश्मियुक्तेन ध्राजमानेन तेजसा । चत्वार मध्ये देवानां द्वादशारमा दिपाकरः ॥

सौमः श्वेतहयो भाति स्यन्दने शीतरश्मिमान् ।

हिमतोयप्रपूर्णाभिर्भाभिराहाश्चक्रगत् ॥ २३ ॥

तमृक्षयोगानुगतं शिशिरांशुं द्विजैश्चरम् । दृष्ट्वाभयाद्भुक्तनुं नैशस्य तमसः एवम् ॥

ज्योतिगामीश्वरं ज्योमि रसद् प्रभुमन्ययम् ।

मोषधीनां पवित्राणां निधानममृतस्य च ॥ २५ ॥

जगतः परमं भागं सौम्यं सर्वमयं रक्षम् । दृष्ट्वागुर्निपातं सौमं हिमद्वहरणं स्थिरम् ॥

यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा मिद्यते नृपु । सप्तस्वर्गगतो योकोऽर्धाङ्गधार चकार च ॥

यमादुरग्निकर्तारं सर्वप्रमथमीश्वरम् । सप्तस्वर्गगता यस्य योनिर्गोमिच्छावने ॥ २८ ॥

यं पदन्ति चतुर्भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम् । यमादुराकाशगमं शोण्यं शब्दयोनिञ्च ॥

स पायुः सर्वभूतायुद्भूतः स्येन तेजसा । पर्वो ग्रन्थयन्देस्थान्प्रतिहोमं ॥ तोदरः ॥

मारुतो देवगन्धर्वेर्विद्याधरणोःसह । चिकीड रश्मिभिस्तुष्टेर्निन्दुं कैरपि क्वच्यते ॥ ३१ ॥

एवं तद्दानवं सैन्यं सर्वसत्त्वमदोत्कटम् । देवताभिमुखं तस्थौ मेघानीकमिवोदितम्

रेजे च तदैत्यसहस्रगाढं धाव्यग्निशीलाम्बुदतोयकल्पम् ।

बलं बलौघाकुलमभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ॥ १६७ ॥

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तारः कुलनन्दन । सुराणामपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं  
इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे दैत्यसेनावर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

देवसैन्यानां तारकासुरसैन्यैः सह युद्धवर्णनम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

आदित्या वसधोरुद्रा अश्विनौ च महायलौ ।

सयलाः सानुगाश्चैव समनह्यन्यथाक्रमम् ॥ १ ॥

पुरुहूतश्च पुरतो लोकपालः सहस्रद्रुक् । ग्रामणीः सर्वदेवानामाहरोह परद्विषम् ।  
सज्ये चास्य रथः पाशैर्ध्वं पक्षिप्रवरकेतनः । सुबाहवकचरणौ ह्रीमच्छत्रपरिवृतम् ।  
दैवगन्धर्वयक्षोघैश्नुयातः सहस्रशः । वीक्षितमद्भिश्च स्वर्गस्वर्गं ह्यर्पिभिरभिधुतः ।  
यद्रविस्फाटितोद्भूतैर्विद्युदिन्द्रायुधप्रभैः । युक्तं बलाहकगणैः पर्यतैरिष कामदै ।  
यमाकूढः सभगचान्पयैति सकलजगत् । हविर्दानेषु गायन्ति विप्रा मन्त्रमुषेस्त्रिधा ।  
स्वर्गसङ्ग्रामयातेषु देवतूर्यनिनादिषु । सदा यमुपनृत्यन्ति शतशोऽप्यसुरोपमा ।  
केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः । युकोहयसहस्रेण नोमादत्तं दत्ता ।  
सम्यग्रथं परो माति युको मातलिना तदा । कृत्स्नः परिवृतो यमस्तु दण्डमुपम्य कालयुक्तं च मुद्वहम् ।  
तस्थौ सुराणानां केचनभिः सागरैर्युको लेलिहानैश्च पद्मगैः । शङ्खमुक्ताङ्गदधरो वि

कालप्रदानसमाधिष्य हयैः शशिकरोपमैः

दानवा दैवतैः सार्द्धं मानाप्रहरणोद्यमाः । समीयुर्युध्यमाना चै पर्वता इव पर्वतैः ॥ ५१ ॥  
तत्सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं यमौ । धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥ ५२ ॥  
ततो हयैः प्रजचितैर्वारणैश्च प्रचोदितैः । उत्पतद्भिश्च गगने सासिहस्तैः समन्ततः ॥

क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः सम्पतद्भिश्च सायकैः ।

चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैः सुदारुणैः ॥ ५४ ॥

तद्युद्धमभवदुधोरं देवदानवसंकुलम् । जगत्खासजनं युगसंवर्तकोपमम् ॥ ५५ ॥  
स्वहस्तामुक्तैः परिघैर्मुद्गरेभ्यश्चैव पर्वतैः । दानवास्समरे जघ्नुर्देषानिद्रपुरोगमान् ॥ ५६ ॥  
ते बाध्यमाना घलिमिर्दानवैर्जितकाशिभिः । विषण्णवदना देवा जमुर्गतिः परा मृष्टे ॥  
ते बाह्यशूलमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः । भिन्नोरस्कादितिसुतैः स्रवद्रक्ता रणे बहू ॥

सूदिताः शरजालैश्च निर्यत्नाञ्च शरैः कृताः ।

प्रविष्टा दानवी मायां न शेकुस्ते विवेष्टितुम् ॥ ५६ ॥

उत्तम्भितमिवाभासि निष्प्राणसदृशाकृतिः । बलं सुराणामसुरैर्निष्पयत्नायुधं कृतम् ॥

दैत्यचापच्युताग्धोरांश्छित्त्वा धज्जेण ताम्रशरान् ।

राको दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥ ६१ ॥

स दैत्यप्रमुखान्सर्चान्छित्त्वा दैत्यबलं महत् । तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमयाकरोत् ॥

तेऽन्योन्यं बान्धवुध्यन्त दैत्यानां बाहनानि च ।

घोरेण तमसाविष्टाः पुटदूतस्य तेजसा ॥ ६३ ॥

मायापाशैर्विमुक्तास्तु यत्नवन्तः सुरोत्तमाः । शिरासिदैत्यसङ्घानां तमोभूतान्यपतायन्

अपध्यस्तापिसंज्ञाञ्च तमसानीलवर्चसा । पेतुस्ते दानवास्सयश्छिन्नप्रपक्षा श्वाश्रयः ॥

तथाभिभूतदैत्येन्द्रमन्धकारमिवावतारम् । दानवं देहसदनं तमोभूतमिवाभयत् ॥ ६६ ॥

तथासृजन्महामायां मयस्तां तामसौ ददन् । युगान्तोद्योतजननीं सृष्टामौर्वेण पङ्क्तिना ॥

सा ददाह च तां शार्ङ्गं मायामयविकल्पिताम् ।

दैत्याश्चादित्यचपुषा सद्य उत्तस्थुराहये ॥ ६८ ॥

मायामौर्घासमासापदह्यमानादिर्वाकसः । भेजिरेचन्द्रविषयंशांतांशुस्रष्टिर्जं हरम् ॥ ६९ ॥

सृजन्तः सर्पपतयस्तीक्ष्णं रोपमयं विषम् । शम्भूता विलम्बाश्च चेक्ष्यान्तानना दिवि ।  
पर्वताश्च शिलाभृङ्गैः शतशाखैश्च पादपैः । उपतस्युः सुरगणान्प्रहतुं दानवं बलम् ।

यः स देवो हृषीकेशः पद्मनामस्त्रिविक्रमः ।

युगान्ते कृष्णवर्त्मा च विश्वस्य जगतः प्रभुः ॥ ३४ ॥

सर्वयोनिः सः समधुहा हृष्यभुक्कतुसंस्थितः ।

भूम्यम्बुष्योम भूतात्मा श्यामः शान्तिकरोऽरिहा ॥ ३५ ॥

सोमार्कामिमयं चक्रमुद्यम्योत्तमतेजसम् । भविष्यममरादीनां चक्रे चक्रगदाधरः ॥ ३६ ॥

सध्येनालम्ब्य महतीं सर्वायुधविनाशिनीम् । करेण कालीवपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम्

शेपैर्भुजैः प्रदीप्तामैर्मुञ्जगारिष्वजः प्रभुः । वधारयुधजालानि शार्ङ्गादीनि महाबलः ।

स कश्यपस्यात्मभवं द्विजं भुजगभोजनम् ।

भुजगेन्द्रेण घटने निषिष्टेन विराजितम् ॥ ३६ ॥

अमृतारम्भसंयुक्तं मन्दराद्रिमिषोच्छ्रितम् । देवासुरविमर्देषु बहुशो दृष्टविक्रमम् ॥ ३७ ॥

महेन्द्रेणामृतस्यार्थं पत्रेण कृतलक्षणम् । विचित्रपत्रघसनं धातुमन्तमिषाचक्षम् ॥ ३८ ॥

स्फीतक्रोधाचलम्बेन शीतांशुसमतेजसा । भोगिभोगावसक्तेन मणिरत्नेन भास्यता ॥ ३९ ॥

पक्षान्यां चाह पद्मान्यामावृतं दिवि लीलया ।

युगान्ते सेन्द्रवापाभ्यां तोयदाभ्यामिषाम्बरम् ॥ ४३ ॥

नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलङ्कृतम् । भदृणावरजं धीमानारुह्य समरे प्रभुः ॥ ४४ ॥

सुवर्णवर्णवपुषं सुवर्णं खेचरोत्तमम् । तमन्वयुः सुरगणा मुनयश्च समाहिताः ॥ ४५ ॥

गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुबुधैः गदाधरम् । तद्वैधवणसंश्लिष्टं वैषस्यतपुःसरम् ॥ ४६ ॥

पारिराजपरिक्षिप्तं देवराजविराजितम् । पवनावदनिर्घोषं सम्प्रदीतद्रुताशनम् ॥ ४७ ॥

विष्णोर्जिष्णोः सहिष्णोश्च भ्राजिष्णोस्तेजसा धृतम् ।

यत्नं बलवद्बुद्धिके युदाय समवर्तत ॥ ४८ ॥

स्यस्त्यस्तु देवेभ्य इति बृहस्पतिरुवाच । स्यस्त्यस्तु देत्येभ्य इति उवाच वासनादौ

ताभ्यां, यदाभ्यां सञ्ज्ञे तुमुलो विप्रहस्तथा । पुराणामसुराणां च परस्परवैरिणाम्

नास्ति लोके यशो मूलं ब्रह्मचर्यात्परन्तप ॥ ८८ ॥

ते निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम् । ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः ॥  
अयोगवेशधरणमसङ्कल्पव्रतकिया । अग्रह्मचर्या चर्या च त्रयं स्याद्भग्नसंश्रितम् ॥  
दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः । नन्विषं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसीप्रजा  
यद्यस्ति तपसो धीर्यं युष्माकं विजितात्मनाम् ।

सुजध्वं मानसान्पुत्रान्प्राजापत्येन कर्मणा ॥ ६२ ॥

नसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः । नोदारयोगं धीजं चयतमुक्तं तपस्विनाम्  
दिदं लुप्तधर्माख्यं युष्माभिरिह निर्भयैः । श्यादृतं सद्भिरत्यर्थमसद्विरिष संमतम् ॥  
वीतान्तरात्मानमेव हृत्वा मनोमयम् । दारयोगं विनास्त्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ॥  
मात्मानमात्मामे द्वितीयं जनयिष्यति । प्राजापत्येन विधिना दिधक्षन्तमिष प्रजाः

वरुण उवाच ।

स्तु तपसा विष्टो निवेश्योदं द्रुताशने । ममन्थकेन र्धमेण पुत्रस्य प्रसवारणिम् ॥

तस्योदं सहसा भिस्वा वरोऽसौ ह्यग्निरुत्थितः ।

जगतो दहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निस्रस्तमपद्यत ॥ ६८ ॥

उर्वस्योदं विनिर्मितं और्ध्वं नामान्तकोऽनलः । दिधधुरिपलोकां ग्रीजने परमकोपनः  
उत्पद्यमानधोवाचपितरं दीनयागिरा । क्षुधा मे बाधते तात जगद्वक्षे त्यजस्व माम् ॥  
त्रिदिशो हि मिर्जालैर्जम्भमाणो दिशो दश । निर्दहन्सर्वभूतानि पशून्धे सोऽन्तकोपमः  
पतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनिमुर्वसमागतः । उवाच वार्यतां पुत्रो जगत्स्त्वं इयां कुद ॥  
मस्यापत्यस्य ते विप्रकरिष्ये साह्यमुत्तमम् । तथ्यमेतद्वचः पुत्र भूय त्वं पशून्धे ॥

और्व उवाच ।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे त्वं भगवश्शिशोः ।

मतिमेतां ददासीद परमात्मन्दिताय धे ॥ १०४ ॥

प्रभातकाले सम्प्राप्ते कादित्तव्ये समागमे ।

भगवंस्तर्पितः पुत्रः कौर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ॥ १०५ ॥

नानाभौर्धनयद्भिन्नानष्टचेतसः । शशंसुर्वज्रिणंदेवाः सन्तप्ताः शरणीयिनः ॥ ३१ ॥  
 न मापया सौम्ये हन्यमाने च दानवैः । ओदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत्  
 वरुण उवाच ।

ह्यारिजः शक्रतपस्तेषु सुदारुणम् । उर्वः स पूर्वं तेजस्वी सद्रुशो ब्रह्मजोगुणेः  
 तमिषावित्थं तपसा जगद्व्ययम् । उपतस्फुर्मनिगणा देवा देवर्षिभिः सह ॥ ३२ ॥  
 कशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः । सृष्टिं पिडापयामास पुरा परमतेजसम् ॥ ३३ ॥  
 तपस्ते ॥ पवनं धर्मसंहितम् । शृण्वंशेषु भगवद्विद्वन्मूलमिदं बुद्धम् ॥ ३४ ॥

एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रायान्यो न विद्यते ।  
 कौमारं प्रथमास्थाय क्रेशमेवानुवर्तसे ॥ ३५ ॥  
 बहूनि पित्र गोत्राणि मुनोनां भावितात्मनाम् ।  
 एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजाः ॥ ३६ ॥  
 एषमूनेषु सर्वेषु पुत्रैर्मै नान्ति कारणम् ।

मवांश्च तापसश्रेष्ठः प्रजापतिसप्तगुणिः ॥ ३७ ॥

स्य वंशाय पर्यवर्तमानमरमना । समापत्स्वोन्नतं तेजोद्धितोपां कुरु ये क्षुद्र  
 कुटो मुनिभिर्मुनिर्मनसि नादितः । जगद् दानुनिगणान्यवर्त चैवमर्थात् ॥  
 विदितोऽधर्मो मुनोनां शाश्वतः पुत्र । भावं हि केवलं कर्मवशमूलाद्वाप्सि ॥  
 ते प्रमृत्स्व प्रज्ञावस्यात्मवर्जिनः । प्रज्ञावर्गे गुरुवर्ति प्रज्ञावर्गि-वाप्यवे ॥  
 त्रसन्ति यो येषु दानवैः सन्तपितः । प्रसमाकं च वने गृहिरेनाथननिशितम् ॥  
 वायुमहाश्च द्रव्योद्भवस्तिस्रस्तथा । भगवद्गुहा द्यौं यत्र पश्चाद्विश्रान्तम् वे ॥  
 एतं तस्मिन् निश्चिन्तो मनोरथि गुरुभटे ।

प्रज्ञावर्गे पुनस्तस्य प्रत्ययन्ति वरां वन्तिम् ॥ ८९ ॥

दृष्टवान्मया दृष्टवान्मया विप्रवर्तते । एतद्वातुः पतेतोऽहं दृष्टवर्तवित् ॥ ९० ॥  
 निश्चिन्तो यतो दृष्टवर्ते निश्चिन्तो ततः । ये निश्चिन्ता दृष्टवर्तानुद्वेगवर्तिनिश्चिन्तक-  
 रातिनः योमं विद्वत्सिद्धिर्वाप्सि योमं निश्चिन्ता वद ॥



श्रवत्पाप्मोऽध्यायः ] \* उर्वस्योरोः सकाशादर्धानलोत्पत्तिवर्णनम् • ३६६

नास्ति लोके यशो मूलं ब्रह्मचर्यात्परन्तप ॥ ८८ ॥

१ निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम् । ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः ॥  
 २ योगवेशधरणमसङ्कुलपवतक्रिया । अब्रह्मचर्या चर्या च त्रयं स्यादग्निसंज्ञितम् ॥  
 ३ दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः । नन्वियं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसांश्च ज्ञा  
 यद्यस्ति तपसो धीर्यं युष्माकं विजितात्मनाम् ।

सृजध्वं मानसान्पुत्रान्प्राजापत्येन कर्मणा ॥ ९२ ॥

४ सा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः । नोदारयोगं धीर्जनं च जतमुर्धतपस्विनाम्  
 ५ देवं लुप्तधर्माख्यं युष्माभिर्हि निभंये । व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरपि संमतम् ॥  
 ६ दीनान्तरात्मानमेष कृत्वा मनोमयम् । दारयोगं पिनास्राद्ये पुत्रमारमतनूयम् ॥  
 ७ मातमानमात्मामे द्वितीयं जनयिष्यति । प्राजापत्येन विधिना दिधक्षन्तमिष प्रजाः

वरुण उवाच ।

उर्वस्तु तपसा विष्टो नियेश्योर्दं हुताशने । ममगन्धेकेन र्ध्वेन पुत्रस्य प्रसवारविम् ॥

तस्योर्दं सहसा भित्त्वा परोऽसौ ह्यग्निदत्तितः ।

जगतो बहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निस्समपद्यत ॥ ९८ ॥

उर्वस्योर्दं विनिर्भिष धीर्षो नामान्तकोऽनलः । दिधधुरिपलोकांस्तीक्ष्णे परमकोपनः

त्यपमानधोपाधपितरं दीनवागिरा । ध्रुवा मे बाधते तात जगद्भक्षो त्यक्तमय माम् ॥

विधारोहिभिर्ग्यालैर्जंभमाणां दिशो वर । निर्दहन्तरंभूतानि पट्टये क्षोभ्तकोपनः

तस्मिन्नगरे ब्रह्मा मुनिमुपसमागतः । उपाच वापतां पुत्रो जगत्सर्वं दपो बुद्ध ॥

स्वारत्यस्य ते विप्रकरिष्ये साह्यमुत्तमम् । तप्यमेतद्वयः पुत्र शृणु त्वं वरुणवर ॥

धौर्व उवाच ।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे त्वं भगवांश्चिद्योः ।

मत्किमेतां दशर्षाह परमात्मनिदत्ताय ये ॥ १०४ ॥

प्रभातकाले सम्प्राप्ते कारिष्येऽथ्ये समागमे ।

भगवत्सर्पितः पुत्रः बौद्ध्येऽप्यस्यने सुधम ॥ १०५ ॥

कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं तु किमात्मकम् ।

विधास्यतोह भगवान्बोर्त्यतुल्यं महोजसः ॥ १०६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

पडवामुखे च वसतिः समुद्रे धी भविष्यति । मम योनिर्जलं विप्र तन्नामैवं प्रजत्यप  
तत्रापमास्ते नियतं पिबन्वारिमयं हविः । तद्धारि विस्तरं विप्र पितृजाम्यालयं च त्र  
स्तो युगान्ते भूतानामेव चाहं च पुत्रक । सहितोविचरिष्यामि निष्पुत्राणकराणि ।  
एषोऽग्निरस्तकाले ॥ खलिलाशी मया कृतः । दहनः सर्वभूतानां स देवास्तु रराक्षम् ।  
एवमस्तिपतितं सोमिः संवृतञ्चालमण्डलः । प्रविशेशार्णवमुखं नत्सोर्धं पितरं प्रभुम् ।  
प्रतिपातस्ततो प्रह्ला ते च सर्वे महर्षयः । मीर्यस्याग्नेःप्रभाषज्ञाःस्यां स्वांगतिमुपासाः  
हिरण्यकशिपुर्दंष्ट्रा तदात्ममहदद्भुतम् । उभं प्रणतसर्पाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ॥ १११ ॥

हिरण्यकशिपुश्चाव ।

भगवन्मदुतमिदं सं वृत्तं लोकसाक्षिकम् । तपसा ते मुनिभ्रेष्ठ परितुष्टः विनामः ।  
महं तु तप पुत्रस्य तप चेव महायत । भूत्य इत्यपमृत्यः श्लाघ्यस्त्वमिह कर्मणा ।  
तन्मां पश्य समापन्नं तवैषाराधनेरतम् । यद्विर्सादेन्मुनिर्धेष्ट तथैव स्यात्परायणः ।

उभं उवाच ।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्यतेऽहं शुद्धमृतः ।

मास्ति ते तपसानेन मर्षःचेवेह सुमत ॥ ११३ ॥

तमेव मायां गृहीष्य ममपुत्रेण निर्मिताम् । निरिधनमग्निसमर्थं दुस्त्रयां पापकरीम् ।  
एषा ते स्वस्य घण्टस्य घण्टागारिणिप्रदे । रक्षिष्यतयामपशं च विपशं च प्रपशं च  
पश्य उवाच ।

एषा दुर्षिपहा माया देवेशि नृसदा । भोर्वेण निर्मितं पूर्वं पापकरोवन्नुत ।  
नृसिन्धुप्यधिने देवे निवारयेता न संशयः । छापो हस्याः पुणः १११. गृह्य देवेन तं  
पदंता द्रष्टुं नृपया बजंभ्यां भगवन्मसुधी । वीपशं मे तस्या शक मोयपोनिर्दिष्टम्  
तदसद्वृत्त्यं वादोनिधं सम्यक्तुः । मायामेतां इतिष्यामि तवत्परादृशं महत्

पुलस्त्य उवाच ।

रयमस्त्विति संतुष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः । सन्दिदेशाप्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम्  
इन्द्र उवाच ।

गच्छ सोमसहायस्त्वं भयपाशधरस्य वै । असुराणां विनाशाय जयार्थं त्रिदिगौकसाम्  
त्वमतः प्रतिपीर्यथ ज्योतिषामपि चेश्वरः । त्वन्मयान्सर्वलोकेषु रसान्वेदधिदोषिदुः ॥  
त्वया समो न लोकेऽस्मिन्विद्यते शिशिरायुधः । क्षयकृदी तवाल्पके समरे चैव चाम्बरे  
प्रवर्तयस्य होरात्रात्कालं संमोहयन्नगत् । लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्कः शशविग्रहः ॥

न पिदुः सोम ते मायां ये च न क्षत्रयोनयः ।

त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः ॥ १२६ ॥

तमः प्रोत्सार्य सहसा भासयस्य खिलं जगत् । शीतभानुर्हिमतनुज्योतिषामधिपः शशी  
अपि तत्कालयोगात्मा इज्यो यज्ञरथोऽव्ययः ।

ओषधीशः क्रियायोनिरपां योनिरनुष्णगुः ॥ १२७ ॥

शीतांशुश्चुताधारध्वजः श्वेतबाहुनः । त्वं कान्तिकान्तवपुषां त्वंसोमः सोमपायिनाम्  
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्यमृक्षराद् ।

तद्गच्छ त्वं महासेन वरुणेन वरुधिना ॥ १२८ ॥

शमयस्पासुरीं मायां यया दह्यामहे रणे ॥ १२९ ॥

सोम उवाच ।

जगमां वदसि युद्धार्थं देवराजयच्छद् । एष वर्धामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम् ॥ १३० ॥

तान्मे शीतनिर्दग्धान्प्रशस्य हिमवेष्टितान् । विमायाग्निसदांश्चैव दैत्यसङ्क्षुब्धमहाहवे  
यथा हिमकरोत्पृष्टाः स पाशा हिमवृष्टयः । वेष्टयन्ति च तान्दैत्याम्बायुर्मेषगणानिव ॥

शी पाराशीतांशुचरी वरुणेन्दु महाबली । जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ॥

द्रावन्नुनाथी समरे तौ पाशहिमयोधिनौ ।

मृधे चेतुरम्भोभिः ध्रुम्याविव महार्णवी ॥ १३१ ॥

न्यामापरितं सर्वं तद्दानवबलं महत् । जगत्संचर्त्तकाम्भोदैः प्रवर्षेत्त्रिसंवृतम् ॥ १३२ ॥

तावुद्यतापम्बुनाथो शशाङ्कचक्षुषाम्बो । शमयामासतुस्तां तु मायां देत  
शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्चास्कन्दिता रणे । न शोकश्चलितुं दैत्या विशिष्य  
शीतांशुनिहतास्ते ॥ दैत्यास्सर्वे निपातिताः । हिमद्रावितसर्वाङ्गा निरूप

तेषां ॥ दिधि दैत्यानां निपतन्ति शुभानि वै ।

पिमानानि चिचिन्नाणि निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ १४४ ॥

तान्पाशहस्तप्रथितांश्छादितांश्चांतरश्मिभिः । मयो दर्श मायावी दान  
सशैलजालां पिततां खड्गपट्टिशहासिनीम् ।

पादपोत्फरकूटस्थां कन्दराकीर्णकाननाम् ॥ १४६ ॥

सिंहव्याघ्रगणाकीर्णां मदस्त्रिद्वेचयूथपैः । ईहामृगगणाकीर्णां पथनाघूर्जित  
निर्मितां स्वेन पुत्रेण कुजन्तीं दिवि कामगाम् ।

प्रथितां पार्वतीं मायां ससृजे स समन्ततः ॥ १४८ ॥

सासिशन्दैशिशलाघर्षैः सम्पतद्भिध्वा पादपैः । जघान द्वेचसङ्कांस्तान्दानवा  
नैशाकरी घारुणी च माये भन्तर्हिते तदा । अमवद्वहोरसञ्चारा पृथिवीप  
भद्रमप्रहरणेनापि न शिलाभिर्घशीकृतः । न चारुदो हुमगणैर्द्वेधोऽदृश्यत  
तदपभ्यस्तधनुषं भद्रप्रहरणाविलम् । निष्ययत् सुरानीकं वर्जयित्वा य  
सहि युद्धगतः श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत ।

सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः ॥ १५३ ॥

काट्यः कालमेघामः समीक्षन्कालमाहवे । देवासुरविमर्दं च द्रष्टुकामस्त  
ततो भगवतादिष्टो रणे पावकमारुतो । चोदितोविष्णुयाचयेन ततो मा  
ताम्यामुदुभ्रान्तवेगाभ्यां प्रबुद्धाभ्यां महाहवे ।

दग्धाऽसा पार्वती माया मस्मोभूता ननाश ह ॥ १५६ ॥

सोऽनिलोऽनलसंयुक्तस्सोऽनलध्यानिलाकुलः ।

दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्वपि भूर्जितो ॥ १५७ ॥

पायः प्रजवितस्तत्र पद्मादग्निश्च मारुतात् । चेतुर्दावनानीके क्रोडन्

मर्त्सीभूतेषु भूतेषु प्रपत्तस्तृप्तस्तसु च । दानवानां विमानेषु निपत्तस्तु समन्ततः ॥  
पातस्कन्धापचिद्वेषु हृतकर्मणि पापके । मायावेषेप्रवृत्ते ॥ स्तूयमाने गदाधरे ॥ १६० ॥

निप्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तयन्त्रिणे ।

प्रहृष्टेषु च देवेषु साधुसाध्विति जल्पिषु ॥ १६१ ॥

जये दशशताक्षस्य दैत्यानां च पराजये । दिक्षु सर्वास्तु शुद्धास्तु प्रवृत्ते धर्मविस्तरे ॥  
मपावृत्ते बन्धपथे स्वस्थानस्थे दिवाकरे । प्रवृत्तिस्थेषु भूतेषु नृषु चारित्र्यतस्तु च ॥

मभिप्रयन्त्रिणे मृत्यो ह्यमाने हुताशने । यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गमार्गं दिशस्तु च ॥

लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु सन्धानवतिषु । भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्मणाम् ॥

दैवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विपीदति । त्रिपादविग्रहे धर्मेऽधर्मे पादपरिग्रहे ॥ १६६ ॥

मपावृत्ते महाद्वारे पतमाने च सत्पथे । लोकेषु धर्मवृत्तेषु प्रवृत्तेष्वाम्रेषु च ॥ १६७ ॥

प्रजारक्षणयुक्तेषु राजमानेषु राजसु । प्रशान्तेषु च लोकेषु शान्ते समसि दानवे ॥ १६८ ॥

भस्मिमास्तयोस्तस्मिन्वृत्ते सङ्ग्रामकर्मणि ।

तन्मयाविमला लोकास्ताभ्यां जयहृतविद्याः ॥ १६९ ॥

मिदं दैत्यभयं भूत्या मादतामिहृतमहत् । कालनेमीति विख्यातो दानयः प्रत्यद्वश्यत ॥

मास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः । मन्दराद्रिप्रतीकाशो महारजतसंवृतः ॥ १७१ ॥

शतप्रहरणोद्गमः शतपाशुः शताननः । शतशीर्यः स्थितः धीमान्छतशृङ्ग इवाचलः ॥ १७२ ॥

जै महति संवृद्धो निद्राघ इव पाषकः । धूम्रकेशो हरिश्मधुर्वन्तुरो विकटाननः ॥

त्रैलोक्यान्तरविस्तारं धारयन्त्रिपुलं वपुः ।

पाशुमिस्तुलयन्तशोमक्षिपन्पद्मयो महीधरान् ॥ १७४ ॥

यन्मुनिभ्यासैर्वृष्टिकाराग्रालाहकान् । तिर्यगायतरकाक्षं मन्वरोदग्रधर्चसम् ॥ १७५ ॥

धक्षन्तमिवायान्तं सर्वान्देवगणान्मृधे । तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशो दश ॥

पतकाले हपितं द्रष्टुं मृत्युमिबोत्थितम् । सुतलेनोच्छ्रययता विपुलाङ्गुलिपर्वणा ॥

व्याभरणपूर्णं किञ्चिच्चलितकर्मणा । उच्छिद्यतेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ॥ १७८ ॥

नवान्देयनिहतान्प्रवृन्तं तिष्ठतेति च । तं कालनेमिं समरेद्विपतां कालनेमिनाम् ॥ १७९ ॥

धीक्षन्तेस्मसुराः सर्वे मय विह्वललोचनाः । तंधीक्षन्तेस्मभूतानि प्रसन्नं कालनेमिनः ।

त्रिचिह्नं चिह्नमन्तं नारायणमिधापरम् ।

सोऽभ्युच्छ्रयं पुनः प्राप्तो मास्ताधूर्षिताघटः ॥ १८१ ॥

प्राक्कामदसुरो यो वृधुं त्रासयन्सर्वदेवताः । समेषि वान्सुरेन्द्रेण परिष्वक्तो भ्रमज्जने

कालनेमिर्बभौ देवः सविष्णुरिष मन्दरः । मध विष्वधिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः

कालनेमिनमायान्तं दृष्ट्वा कालमिधापरम् । दानवाननुविप्रीयुः कालनेमिर्महासुराः ॥ १८२ ॥

व्यघर्षत महातेजास्तपान्ते जलदोयथा । तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः

उत्सथुरपरिधान्ताः पीत्वेधामृतमुत्तमम् । ते धीतभयसन्त्रासा मयस्तारपुरोगमाः ॥ १८३ ॥

तारकामयसङ्ग्रामे सततं जितकाशिनः । रैजुरा यो धनगता दानवा युद्धकाश्विनः

मन्त्रमभ्यसतां तेषां व्यूहं च परिधापताम् ।

प्रेक्षतां चाभयतप्रीतिर्दानं कालनेमिनम् ॥ १८४ ॥

ये तु तत्र मयस्यासन्मुखा युद्धपुरस्सराः ।

ते तु सर्वे भयं त्यक्त्वा हृष्टा यो वृधुमुपस्थिताः ॥ १८५ ॥

मयस्तारो पराहृष हयग्रीवश्च दानवः । विप्रचित्सितुतः श्वेतः खरलम्बाकुमावपि ।

धरिणो बलिपुत्रश्च किशोराव्यस्तपैव च । स्वर्मानुभामरप्रव्यश्चक्रयोधी महासुरः ।

पतेऽरुषेदिनः सर्वे सर्वतपसि सुस्थिताः । दानवाः कृतिनोज्जमुः कालनेमिनमुद्धतम् ।

ते गदाभिस्तुगुर्योभिश्चकैरधपरश्वधैः । कालकल्यैश्च मुसलैः शेषणीयैश्च मुद्गैः ।

भश्मभिश्चाद्रिसदृशीस्तथा शैलैश्च दादणैः । पट्टिशैर्मिण्डिपालैश्च परिचक्षोः समावसैः ।

घातिनीभिश्च गुर्घोभिः शतघ्नीभिस्तपैव च ।

युगेयन्त्रैश्च निर्मुक्तैर्लाङ्गुलैरप्रताडितैः ॥ १८६ ॥

दोर्मिरापतमानैश्च पाशैश्च परिधादिभिः । भुजद्वयकशैर्लेहिलहानैर्विसर्पद्विभ्यः साधकैः ।

पद्मैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः । चिकीशैरसिमिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ।

सन्दीप्यमानैश्च प्रगृहीतशरास्रैः । ततः पुरस्तरय तदा कालनेमिनमादधे ॥ १८७ ॥

वैत्यानां द्रव्ये चमूः । यैर्निमीलितसर्पाङ्गा गन्धालीचामपुत्रागमे ।

देवतानामपि चमूर्मुमुदे शकपालिता । उपेता शिशिरोष्णाम्यां तेजोभ्यां चन्द्रसूर्यं  
 पायुषेगंधती सौम्यां तारागणपताकिनी । तोयदाबद्वसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ॥ २०२  
 यमेन्द्रधनदैर्गता परणेन च धीमता । सा ग्रहीताग्निपचना नारायणपरायणा ॥ २०३  
 सासमुद्रौघसदृशी दीप्यमाना महाचमूः । रराजाल्लवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी  
 तयोध्मभ्योस्तदानीं तु बभूव स संग्रामगमः ।

घाघापृथिव्योः संयोगो यथास्याद्युगपर्यये ॥ २०५ ॥  
 तपुदमभयदोरं देवदानवसङ्कुलम् । क्षमापराक्रमपरं सदर्पं विनयस्थ च ॥ २०६ ॥  
 निक्षत्रमुर्वलाभ्यां तु भीमाभ्यां च सुरासुराः ।  
 पूर्वापरभ्यां संरक्षाः सागराभ्यामिचाम्बुदाः ॥ २०७ ॥  
 ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः ।  
 घनाभ्यां पार्यंतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां यथा नगाः ॥ २०८ ॥

समाजघ्नुस्तथा भेरीः शङ्खान्धध्मुरनेकशः । ब्रह्माण्डं च भुवं चैव विशाक्ष समपूरयन् ॥  
 व्याघाततलनिर्घापो धनुषां कूजितानि च । दुग्धुभीनां चनिर्हादोदैत्यमन्तर्दधुःस्वनम्  
 येऽभ्योन्यमभिसम्पेतुर्पातयन्तः परस्परम् । घभञ्जुर्षाहुमिर्षाहुद्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ॥  
 देवानामशनीघोराः परिघांश्चोत्तमायुधान् ।

निस्त्रिशान्सखन्तुः सङ्ख्ये गदागुर्धोश्च दानवाः ॥ २१२ ॥  
 दानिपातैर्भद्राङ्गुषाणैश्च शकलीकृताः । परिवेत्तुर्भृशं केचित्पुनः केचित्तु जग्मिरे ॥  
 ततो रथैश्च तुरगैर्विमानैश्च गजविभिः । समीयुस्तेऽतिसंख्या रोषादन्योन्यमाह्वये ॥  
 संघर्षमानास्समरे सन्दष्टौष्ठपुटाननाः । रथारथैर्नियुध्यन्ते पादाताश्च पशतिभिः ॥  
 रोषारथानां तुमुलः सशब्दः शब्दघाहिनाम् । नभोनभस्वान्हि यथा नभस्ये जलदस्थनैः  
 अभजिरे रथान्केचित्केचित्संमृदिता रथे । सम्बाधमन्ये सम्प्राप्ता नशेकुञ्जलितुं रथाः  
 भग्न्योन्यमध्ये समरे दोभ्यामुत्क्षिप्य दंशिताः ।

संहृष्टमाणास्सबला जघ्नुस्तत्रासिचर्मणः ॥ २१८ ॥  
 मस्त्रैरन्येविनिर्मिता रक्तवेमुहता युधि । क्षरज्जलानां सदृशजलदानां समागताः ॥

सदस्त्रशस्त्रप्रथितं क्षिताक्षितगदाविलम् । देवदानवसङ्घुष्टं सङ्कुलं युद्धमावभौ ।  
 तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम् । अन्योन्यवाणघर्षेण युद्धदुर्विनमावभौ ॥ २२१ ॥  
 एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिस्सदानवः । अवर्धत समुद्रोद्यैः पूर्णमाण इवाम्बुदः ।  
 तस्य विद्युलता पीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः । गात्रैर्नगनिष्पिष्यैर्विनिपेतुर्यलाङ्काः ।  
 क्रोधान्निभ्यसतस्तस्य भ्रूभेदस्येदघर्षिणः । साग्निस्रुकुलिङ्गाः प्रततामुद्यानिश्चेरवर्षिः

तिर्यग्भ्यं च गगने घवृधुस्तस्य यादयः ।

पर्यतादिव निष्कान्ताः पञ्चास्या इव फनगाः ॥ २२५ ॥

सोऽस्त्रजालैर्यदुषिधैर्धनुभिः परिवेरपि । दिव्यमाकाशमावब्रू पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ।

सोऽनिलोद्वभूतवसनस्तस्थौ सङ्ग्रामलालसः ।

सन्ध्यातपप्रस्तशिलः साक्षान्मेरुरिधाचलः ॥ २२७ ॥

ऊरुवेगप्रमथितैः शृङ्गशैलाप्रपादपैः । अपातयदेवगणान्यज्रेणेव महानिरीद ॥ २२८ ॥

यादुभिश्च सनिस्त्रिशैश्छिन्नभिन्नशिरोरुहाः ।

न शेकुञ्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ॥ २२९ ॥

मुष्टिभिर्निहताः केचित्केचिच्च द्विदलीकृताः । यक्षगन्धर्वपत्न्याः समहोराकिञ्चराः ।

तेन वित्रासिताःपेतुः समरे कालनेमिना । न शेकुर्यज्वन्तोऽपि यत्नं कर्तुं पिबेत्स

द्वेन शकः सहस्राक्षोऽस्पन्दितः शरवन्धनैः । निष्प्रयत्नः हतः सङ्ख्ये छलितुंनशशाक

निर्जलाग्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः । निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे ।

रणे वैश्रवणस्तेन परीतः कालरूपिणा ।

घिलर्पेहोक्पालेशस्त्याजितो धनदः क्रियाम् ॥ २३४ ॥

यमः सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणो रणे । याम्यामघस्थां सन्त्यज्य भीतःस्यांदिशमाविश

सलोकपालानुत्सार्य हृत्या तेषां ॥ कर्मतत् । दिक्षु सर्वासु देवं स्वं चतुर्धादिश्चेत्त

स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुवर्षितम् । जह्वा लक्ष्मीं सोमस्यवज्वास्यविषयमह

वीतांशं धर्मद्वारा समास्करम् । शासनं चास्य विषयं जह्वा दिनकर्म न



सप्तमुद्रात्समानीयसप्तस्थाः सखितोयत्नात् । चकाराभिमुखाधीर्वादिषभूताधसिन्धवः ।

भयः स्वयशगाः हृत्पा दिविजा याश्च भूमिजाः ।

छादयामास जगतीं सुगुप्तं धरणीधरः ॥ २४१ ॥

सस्ययभूरियाभाति महाभूतपतिर्गहान् । सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वलोकभयावहः ।

सलोकपालैकपुष्पभद्रसूर्यग्रहात्मवान् । पाषकानिलसम्भूतो रराज युधि दानवः ।

पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवोपमे । तं तुष्टुर्वैत्यगणा देवा इव वितामहा ।

पञ्च तं नाम्यपमन्त पिपरीतेन कर्मणा । येदोधर्मः क्षमा सत्यं धीश्च नारायणाधया ।

तैषामनुपस्थानात्सक्रोधो दानयेभ्यः । वैष्णवं पद्मन्विच्छ्रमसगतो वैद्यता यतः ।

सदृशं सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् । दानधानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ।

सत्रलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् । भाकटं स्वर्णपत्राढ्यं खेचरं काश्यपं खगः ।

दुष्टदैत्यविनाशाय दृष्ट्वा कस्थमिष स्थितम् ।

दानवो विष्णुमक्षोभ्यं यमाये क्षुब्धमानसः ॥ २४२ ॥

कालनेमिरुवाच ।

अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः । अर्णवावासिनश्चैव मधोश्च कौटभस्य च ॥

अयं स रिपुरस्माकमसमः किल कथ्यते । अनेकसंयुगेऽनेन दानवा बहवो हताः ॥ २४३ ॥

अयं ॥ मिर्षुणो लोके स्त्रीबालनिरपत्रपः ।

येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम् ॥ २४४ ॥

अयं स विष्णुर्देवानां वैकुण्ठश्च दिवीकसाम् ।

अनन्तो भोगिनां मध्ये स्वयम्भूश्च स्वयम्भुषः ॥ २४५ ॥

अयं स नापो देवानामस्माभिर्विप्रकृष्यते । अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हतः ॥

अस्य च्छायामुपाधित्य देवा मलमुखे लिताः ।

आज्यं महर्षिर्मिदं सप्तशुचन्ति त्रिधाकृतम् ॥ २४६ ॥

अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम् । अस्य चक्रप्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥

अयं ॥ किल युद्धेषु सुरार्थं त्यक्तजीवितः । स विभुस्तेजसा युक्तं चक्रं क्षिपति शत्रूषु ॥

अयं स फालो दैत्यानां फालभूते मयि स्थिते ।

अतिक्रान्तस्य फालस्य फलंप्राप्स्यति केशवः ॥ २५८ ॥

दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेव समागतः । निष्पिष्टो बहुनासङ्ख्ये मध्येव प्रपश्या  
यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामद्य संयुगे । इमं नारायणं हत्वा दानवानां मयावा  
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणानहम् । जात्यन्तरगतोऽप्येव बाधतेदानवाम्मुषे  
एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति ध्रुतः । जघानैकार्णवे घोरे तावुमौ मधुकैटभौ  
त्रिधा भूतं वपुः कृत्वा सिंहस्याखं नरस्य च । पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पु  
यं सुतं गर्भमाधत्त ह्यदितिर्देवतारणिः । श्रीहोफानाजहारैकः क्रममाणस्त्रिभिः ॥

भूयस्त्विदानीं सम्प्राप्ते सङ्ग्रामे तारकामये ।

मया सह समागम्य स देवो विनशिष्यति ॥ २६५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिप्रं नारायणं रणे । वाग्मिरप्रतिरूपाभिर्पुत्रमेवाभ्यरोचयत्  
क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः । क्षमाबलेन महता सस्मितं चेदमप्रवीण

नारायण उवाच ।

अल्पं दर्पयलं दैत्यस्थिरमक्रोधजं यलम् । हतस्त्वं दर्पजेर्दोषैर्हित्वा यो भापसेक्षम्  
अभ्रमस्त्वं मम मतो धिगेतस्तववाग्वलम् । के तत्र पुरुषाः सन्ति यत्र गर्जन्ति योनि

अहं त्वां दैत्यं पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम् ।

प्रजापतिवृत्तं सेतुं त्यक्त्वा कः स्वस्तिमान्भवेत् ॥ २७० ॥

अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारघातकम् ।

स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ॥ २७१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवं ह्युपति पाक्यं तु मृधे धीयत्सधारिणि ।

जहास दानवः कोपाद्वस्ताभ्रके च सायुधान् ॥ २७२ ॥

सर्वायुधगणाग्रणे । कोपाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णोर्वक्षस्यपातयत् ॥

दानवाद्यापि समरे मयतापुुरोगमाः । उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवग्रणे ॥२७४॥  
 स ताव्यमानोऽतिपलैर्द्वैत्यैः सर्वायुधोद्यतेः । न चचाल ततो युद्धे कम्प्यमान इवाचलः  
 संयुक्तश्च सुपर्णेन कालनेमिर्महासुरः । सर्वप्राणेन महतीं गवामुद्यम्य बाहुभिः ॥२७५॥  
 घोरां ज्यलन्तीं मुमुचे संरुधो गरुडोपरि । कर्मणातेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमागमत्  
 तदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्ध्नि सा गदा । सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्षतं च यपुरात्मनः ॥  
 क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे । व्यथयित्त च वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ॥ २७६ ॥  
 भुजाभ्यास्य व्यथयन्त व्यासयन्तो दिशो दश । विदिशश्चैव जंचापिगांचैव प्रत्यपूरयन्  
 षडूधे स पुनर्लोकान्कामान्नुकाम इयोजसा । तं जयाय सुरेन्द्राणां वर्धमानं नभस्तले ॥  
 श्रवयः सहगन्धर्वास्तुष्टुमुर्मधुसूदनम् । स चां किरीटेन लिखञ्छिरसा भास्वरेण च ॥

पट्टम्यामात्रान्य पशुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ।

सहस्रकरतुल्यामं सहस्रात्मरिक्षयम् ॥ २८३ ॥

दीमानिसदृशं घोरां वर्शनेन सुदर्शनम् । सुपर्णरेणुपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम् ॥२८४॥  
 मैत्रोऽस्मिन्नारुधिरेः सिकं दानवसम्भवैः । भवित्तीयं ग्रहरणं ध्रुवपर्यन्तमण्डलम् ॥

ह्यदाममालानिचितं कामगं कामरूपिणम् ।

स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ॥ २८६ ॥

दधार रोषेणापिष्टं नित्यमाहयदर्पितम् । क्षपण्यायस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्यायुजङ्गमं  
 कण्यादानिध भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृधे । तमप्रतिप्रकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा  
 चक्रमुद्यम्य समरे कोपदीप्तो गदाधरः । प्रपष्टं दानवं तेजः कुर्वाणं स्वैन तेजसा  
 बिच्छेद बाहूस्तेनैव समरे कालनेमिनः । तच्च पञ्चशतं घोरेसाग्निधूर्णादृहासि वै  
 तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाद्य बलाद्धरिः । सञ्छिन्नबाहुर्विशिरानप्राकम्पत दानवः ।

कथन्धावस्थितः सहस्रैः विशाख इव पादपः ।

तं पितृत्य महापक्षी धायोः कृत्वा समं जवम् ॥ २९२ ॥

उरसाताडयामास गरुडः कालनेमिनम् । सतस्यदेहोऽमिमुखो विबाहुः स्वात्परिग्रमन्  
 निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन्धरणीतुलम् । तस्मिन्निपतितेदैत्येदेवाः सर्वागणास्तथा

अयं स कालो दैत्यानां कालभूते मयि स्थिते ।

अतिक्रान्तस्य कालस्य फलंप्राप्स्यति केशवः ॥ २५८ ॥

दिष्ट्येदानीं समक्षं मे पिप्पुरेप समागतः । निष्पिष्टो बहुनासदृश्ये मध्येव प्रवृत्तः ।  
यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्व्वपामद्य संयुगे । इमं नारायणं हत्वा दानवानां मयः  
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणानहम् । जात्यन्तरगतोऽप्येव बाधतेदानवान् ।  
पयोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति ध्रुतः । जघानैकार्णवे घोरे ठाबुमी मधुकरः ।  
द्विधा भूतं वपुः कृत्वा सिंहस्याङ्गं नरस्य च । पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुः ।  
यं सुतं गर्भमाधत्त ह्यदितिर्द्वैतारणिः । श्रील्लोकानाजहारैकः ।

भूयस्त्विदानीं सम्प्राप्ते सङ्ग्रामे तारकामये ।

मया सह समागम्य स देवो चिनशिष्यति ॥ २६५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एषमुक्त्वा बहुविधं क्षिप्रं नारायणं रणे । चाग्निरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवान्मरोचनः ।  
क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न शुकोप गदाधरः । क्षमाबलेन महता सस्मितं चेष्टमानः ।

नारायण उवाच ।

अलं वर्पबलं दैत्यस्थिरमक्रोधजं बलम् । हतस्त्वं वर्पजैर्दोषैर्हित्वा यो भाषसेऽहम् ।  
अधमस्त्वं मम मतो धिगेतस्तववाग्यलम् । के तत्र पुरुषाः सन्ति यत्र गर्जन्ति वीरिनः ।

अहं त्वां दैत्यं पश्यामि पूर्व्वपां मार्गंगामिनम् ।

प्रजापतिहृतं सेतुं त्यक्त्वा कः स्वस्तिमान्भवेत् ॥ २७० ॥

अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारघातकम् ।

स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ॥ २७१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवं भूषति वाक्यं तु मृधे धीवत्सधारिणि ।

जहास दानवः क्रोधादस्तांश्चक्रे च सायुधान् ॥ २७२ ॥

स बाहुशतगुणस्य सर्वायुधगणाग्रणे । क्रोधाबुद्धिगुणरक्ताक्षो पिप्पुर्बलस्यपत्नम् ।

नवाध्यापि समरे मयतापुुरोगमाः । उद्यतायुधनिस्त्रिंश विष्णुमभ्यद्रघव्रणे ॥२७४॥  
 तादृग्मानोऽतिपलेर्देत्यैः सर्वायुधोद्यतेः । न च्चाल ततो युद्धे कम्प्यमान इवाचलः  
 युक्क सुपर्णेन कालनेमिर्महासुरः । सर्वप्राणेन मदतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥२७५॥  
 तां ज्वलन्तीं मुमुचे संरुधो गरुडोपरि । कर्मपातेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमागमत्  
 ता तेन सुपर्णस्य पातित्वा मूर्ध्नि सा गदा । सुपर्णं व्यधितं दृष्ट्वा क्षतं च घपुरात्मनः ॥  
 रोधसंरक्तयत्नो वैकुण्ठश्चक्रमाददे । व्यषर्क्षत च वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ॥ २७६ ॥  
 जिह्वास्य व्यधर्षन्त व्याप्तपन्तो दिशो दश । विदिशश्चैव खंवापिगांचैव प्रत्यपूरयन्  
 युद्धे स पुनर्लोकान्कान्तुकाम इषीजसा । तं जयाय सुरैर्भ्राणां वर्धमानं नभस्तले ॥  
 इषयः सहगन्धर्पास्तुष्टुर्धुर्धुस्तनम् । स पां किरीटेन लिखञ्जिरसा भास्वरेण च ॥  
 पट्ट्यामाक्रम्य घसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ।

सहस्रकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ॥ २८३ ॥

तिताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम् । सुधर्णरेणुपर्यन्तं यज्जनाभं भयाचहम् ॥२८४॥  
 दोऽस्मिन्नादधिरैः सिकं दानवसम्भयैः । भव्तितीयं ग्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ॥

स्रग्दाममालानिखितं कामर्णं कामरूपिणम् ।

स्ययं स्वयम्भुवा सुष्टं भयवं सर्वविद्धियाम् ॥ २८६ ॥

क्षपार रोपेणाधिष्टं नित्यमाहवद्वर्षितम् । क्षपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्याणुजङ्गमाः  
 कव्यादानि च भूतानि रुति यान्ति महामृधे । तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा ॥

चक्रमुद्यम्य समरे कोपदीप्तो गदाधरः । प्रगष्टं दानवं तेजः कुर्वाणं स्वैन तेजसा ॥

चिच्छेद बाहुस्तेनैव समरे कालनेमिनः । तच्च चक्रशतं घोरं सान्निभूर्णादृहासि वै ॥

तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाद्य बलाद्धरिः । सच्छिन्नबाहुर्विशिरात्रप्राकम्पत दानवः ॥

कयन्धापस्थितः सङ्क्ष्ये विशाख इव पादपः ।

तं चित्त्य महापक्षौ धायोः कृत्वा समं जवम् ॥ २९२ ॥

उरसाताडयामास गरुडः कालनेमिनम् । सतस्यदेहोऽभिमुखो चिबाहुः छात्परिग्रमन्

निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन्धरणीतलम् । तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्पिगणास्तथा

साधुसाध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन् । अपरे ये तु दैत्या वी युजे दृष्टपराक्रम  
ते सर्वे बाहुभिर्व्यासा नरोकुञ्चलितुं रणे । काञ्चित्केशेषु जग्राहकाञ्चित्कण्ठेष्वपीदृश  
चकर्त कस्यचिद्वक्त्रं मध्येऽगृह्णातथापयम् । ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासव  
गगनादुभ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले । तेषु सर्वेषु दैत्येषु हतेषु पुरुषोत्तमः ॥ २१८ ॥  
शक्रप्रियंततः कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः । तस्मिन्विमर्दे संवृत्ते सङ्ग्रामे तारकामये  
तं च देशं जगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः । सर्वैर्ग्रहार्पिभिः सार्द्धं गन्धर्वाप्सरसां  
देवदेवं हरिं देवः पूजयन्वाक्यमब्रवीत् ॥ २०१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

कृतं देव महत्कर्म सुराणां शक्यमुद्धृतम् । निधनेन च दैत्यानां वयं च परितोषिता  
योऽयं त्वया हतो विष्णो कालनेमिर्महासुरः ।  
त्वामेतस्य श्रुते ह्यस्मिञ्शास्ता कञ्चिन्न विद्यते ॥ २०२ ॥

एष देवान्परिमर्षेल्लोकांश्च सचराचरान् । श्रुयीणां कथनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्शि  
तदनेन त्वदीयेन परितुष्टोऽस्मि कर्मणा । यदयं कालकल्पस्ते कालनेमिर्निपाति  
तदागच्छस्य भद्रं ते गच्छाम दिवमुत्तमाम् । ब्रह्मार्पयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सद्यो  
कं चाहं तव दास्यामि परं परभृतांघर । स्वस्थानस्थेषु देवेषु तेषां च परदो भया  
निर्यातमेतत्त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम् । अस्मिन्नेष मूढे विष्णो शक्राय सुमहा  
पुलस्त्यं उवाच ।

एषमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः । देवाश्चक्रमुद्यान्सर्वांनुपाच शुभया नि  
विष्णुदवाच ।

भूयतां त्रिदशास्सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः । सुपर्णासहितैस्तत्र पुरस्सृत्य पुरन्द  
भस्माभिः समरे सर्वैः कालनेमिमुद्याहताः । दानया विक्रमोपेताः शक्रादपि महता  
अस्मिन्महति सङ्ग्रामे ह्येषे तु विनिश्चृताः । पिरोचनस्तु दैतेयः स्थर्मानुधमश्वा  
स्वां दिशं मज्जतां शक्रो दिशं परण एष च । यावयां यमः पालयतामुत्तरां च धराधिप  
सह सदा योगं गच्छतां चन्द्रमास्तथा । भयमृतमुर्धं सूर्या मज्जतामयनेः सह ।

भाज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः । ह्यन्तामग्रयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा ॥  
देवाश्च बलिहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः । श्राद्धेन पितरश्चैव तुष्टिं यान्तु यथासुखम् ॥

वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः ।

अयो वर्णाश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयन्त्वात्मजैर्गुणैः ॥ ३१७ ॥

कतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयेर्द्विजातिभिः । दक्षिणाश्चोपपद्यन्तां याज्ञिकैश्चपृथक्पृथक्  
गाश्च सूर्यो रसान्सोमो वायुः प्राणाश्च प्राणिषु । तर्पयन्तः प्रवर्तन्तामेते सौम्यैः स्वर्गभिः  
यथावदनुपूर्वेण महेन्द्रमलयोद्भवाः । त्रैलोक्यमातरः सर्वाः समुद्रं यान्तु सिन्धवः ॥

दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीष्म शान्तिं प्रजस्य देवताः ।

स्थस्ति षोऽस्तु नमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ३२१ ॥

स्वगृहे स्वर्गलोके वा सङ्ग्रामे वा पिशेपतः । विभ्वस्तीक्ष्ण गन्तव्यं नित्यं क्षुद्रादिशानवाः  
छिद्रेषु प्रहज्येते न तेषां संस्थितिर्ध्रुवा । सौम्यानां निजभाषाणां भवतामार्जवे मा  
पुलस्त्य उवाच ।

पथमुक्त्वा सुरगणान्विष्णुस्त्ययपराक्रमः । जगाम ब्रह्मणा सार्द्धं ब्रह्मलोकं महायशा  
देवानां महतीं प्रीतिमुत्पाद्य भगवान्प्रभुः ॥ ३२५ ॥

एतदक्षर्यमभवत्सङ्ग्रामे तारकायये । दानवानां च विष्णोश्च यन्मांत्वं परिपृच्छसि ।

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सप्तविंशे पक्षोद्भवदेवासुरयुद्धो नाम

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

शङ्करमाहात्म्यवर्णनारम्भः ।

भीष्म उवाच ।

श्रुतः पक्षोद्भवो ब्रह्मन्विस्तरेण त्वयेरितः । समासङ्गपमाहात्म्यमुत्पत्तिं च गुरुरस्य च ॥

ध्रोतुमिच्छामि ते ग्रहान्यथाभूतः कृतं च यत् । तारकश्च कथम्भूतो दानवो बलवत्तरः ।  
कार्तिकेयेन स ग्रहान्कथं ध्वस्तो महासुरः । कथं रुद्रेण मुनयः प्रेषिता मन्दरं गिरिम् ।  
कथं लब्ध्वा उमा तत्र रुद्रेण परमेष्ठिना । एतदाख्याहि मे सर्वं यथाभूतं महामुने ॥ ४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

कश्यपेन पुरा प्रोक्ता दितिर्देत्यारणिः शुभा । वज्रसारथ्यैश्चाङ्गैः पुत्रो देवि भविष्यति  
वज्राङ्गो नाम पुत्रस्तु भविता धर्मवत्सलः । सा च लब्धवरा देवी सुपुत्रे वज्रपुत्रिणम्  
स जातमात्र एवाभूत्सर्वशास्त्रार्थवारगः । उवाच मातरं भवया मातः किं कल्याण्यहम्  
तस्योवाच ततो हृष्टादितिर्देत्याधिपस्य तु । बहवो मे हताः पुत्राः सहस्राक्षेण पुत्रक ।  
तेषामपचितिं कर्तुं गच्छ शक्यं यथाय तु ।

यादमित्येष तां चोत्तया जगाम त्रिविधं यत्नात् ॥ ६ ॥

यदुध्या ततः सहस्राक्षं पाशेनामोघवर्चसा । मातुरन्तिकमागच्छद्दुःखायः क्षुद्रमूर्ता यथा  
पतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा कश्यपश्च महातपाः । आगतौ तत्र यत्रास्तां माता पुत्रायभीतकौ ।  
दृष्ट्वा तु तावुषाचेर्द् ब्रह्मा कश्यप एव च । मुञ्चेनं पुत्रं देवेन्द्रं किमनेन प्रयोजनम् ।  
अयमानो यथः प्रोक्तः पुत्रसम्भावितस्य तु ।

भस्मद्वाक्येन यो मुक्तस्त्वदस्तामृत एव सः ॥ १३ ॥

परस्य गौर्यामुक्तः शत्रूणां शत्रुराहवे । स जीवन्नेव हि सृतो दिवसे दिवसे पुनः ।

एतच्छ्रुत्या तु वज्राङ्गः प्रणतो वाक्पमप्रपीत् ।

न मे कृत्यमनेनास्ति मानुराष्टा कृता हि मे ॥ १५ ॥

त्वं सुरासुरनाथो वै मान्यश्च प्रपितामहः । करिष्ये त्वद्वचो देव एव मुक्तः शतश्रुः ।  
तपसे मे रतिर्देवानिर्विघ्नं तद्य मे मयेत् । त्वत्प्रसादेन भगवन्नित्युचया पिरराम ॥

तस्मिन्सूणी स्थिते देत्ये प्रोषाचेर्द् पितामहः ।

प्रक्षोषाच ।

तपस्त्वं कुरु मापन्नः सोऽस्मच्छसनसंस्थितः ॥ १८ ॥

अनया वित्तशुद्धया हि पर्याप्तं जन्मनः फलम् ॥



इत्युक्त्वा पद्मजः कन्यां ससर्जायतलोचनाम् ॥ १६ ॥

तामस्मै प्रददौ देवः पत्न्यर्थं पद्मसम्भयः । वराङ्गीति च नामास्याः कृत्वा यातः पितामहः ।

वज्राङ्गोऽपि तथा सार्द्धं जगाम तपसे वनम् ।

ऊर्ध्ववाहुस्सदैत्येन्द्रोऽचरद्र्षसहस्रकम् ॥ २१ ॥

कालं कमलपद्माक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः । तावद्याधोमुखः कालं तावत्पञ्चाग्निमभ्यतः ॥

निराहारो घोरतपास्तपोराशिरजायत । ततः सोऽन्तर्गले चक्रे वासं वर्षसहस्रकम् ॥

जलात्तरं प्रविष्टस्य तस्य पत्नी महामता । तस्यैव तीरे सरसः स्थिताऽसौ मौनमाश्रिता

निराहारं तपोघोरं प्रविशेश महाद्युतिः । तस्यां तपसि वर्तन्त्यामिन्द्रश्चक्रे विभीषिकाम्

गत्वा तु मर्कटाकारस्तदाश्रमपदं महत् । वृत्तौ चक्रे यत्नयाम्यगन्धाद्यर्चाकरणद्वयम् ॥ २७

ततस्तु सिंहरूपेण भीषयामास भामिनीम् । ततो भुजङ्गरूपेणाप्यदशधरणद्वयम् ॥ २७

तपो यत्नयामास्ता तु न बध्यत्वं जगाम ह । भीषिकाभिरनेकाभिः क्लेशयन्पाकशासः

विरराम यदा नैव वज्राङ्गमहिषी तदा । शीलस्य दुष्टतां मत्वा शापं दातुं समुद्यता

तां शापामिमुखीं दृष्ट्वा शीलः पुरुषविग्रहः । उवाच तां वरारोहां वराङ्गीं भीतलोचनः

शील उवाच ।

माहं महाव्रते दुष्टः सेव्योऽहं सर्वदेहिनाम् । विप्रियेतं करोत्येव वपितः पाकशासनः

एतस्मिन्नन्तरैजातः कालो वर्षसहस्रकः । तस्मिन्प्रात्वा तु भगवान्काले कमलसम्भयः

दुष्टः प्रोवाच वज्राङ्गं तदागत्य जलाशयम् ।

प्रहोवाच ।

ददामि सर्वकामं त उत्तिष्ठ दितिनन्दन ॥ ३३ ॥

एषमुक्तस्तदोत्थाय स दैत्येन्द्रस्तपोनिधिः ।

उवाच प्राञ्जलिर्वाचयं सर्वलोकपितामहम् ॥ ३४ ॥

वज्राङ्ग उवाच ।

आसुरो मास्तु मे भाषः सन्तु लोका ममाक्षयाः ।

तपस्यमिरतिर्मोऽस्तु शरीरस्यास्य वर्तनम् ॥ ३५ ॥

एषमस्त्विति तं देवो जगाम स्वकमालयम् ।

घञ्जाङ्गोऽपि समाप्ते तु तपसि स्थिरसंयमः ॥ ३६ ॥

सङ्गन्तुमिच्छन्स्वां भार्यां न ददर्शाश्रमे स्वके । ध्रुवाविष्टः सशीलस्य गहनं प्रविवेश ॥

आदातुं फलमूलानि स च तस्मिन्न्यलोकयत् ।

यदन्ती स्वां प्रियां दीनां तरुप्रच्छादितातनाम् ॥ ३८ ॥

तां विलोक्य ततो दैत्यः प्रोवाच परिस्रान्त्वयम् ।

घञ्जाङ्ग उवाच ।

केन तेऽपहृतं भद्रे यमलोकं गियासुना ॥ ३९ ॥

कं धा कामं प्रयच्छामि शीघ्रं प्रवूहि मानिनि ।

घराङ्गयुवाच ।

प्रासितास्म्यपविद्धास्मि ताडिता पीडितास्मि च ॥ ४० ॥

रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेभ्य भूरिशः । दुःखस्यान्तमपश्यन्ती प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिता  
पुत्रं मे तारकं देहि तस्माद्दुःखमहार्णवात् । एषमुकस्तु दैत्येन्द्रः कोपव्याकुललोचनः  
शक्तोऽपि देवराजस्य प्रतिकर्तुं महासुतः । तप एव पुनर्भर्तुं व्यवस्यत महाबलः ॥ ४१ ॥  
आत्मा तस्य तु सङ्कुलं प्रह्ला कूरुतरं पुनः । आजगामत्वरायुको यत्रासौ वितिनन्दनः

प्रह्लांवाच ।

किमर्थं पुत्रभूयस्त्वं कर्तुं नियममुपतः । तदहं ते पुनर्दास्ये काङ्क्षितं पुत्रमोजसा ॥

घञ्जाङ्ग उवाच ।

उत्थितेन मया दृष्टा समाधानाच्चदाश्रया । प्रासितेन्द्रेण मामाह सा घराङ्गी सुतापती  
पुत्रं मे तारकं देहि तुष्टो मे त्वं पितामह ।

प्रह्लांवाच ।

मलं ते तपसा धीर मा फलेहो दुस्नरे विश ॥ ४३ ॥

तारको नाम भविष्यति महाबलः । देवर्षामन्तिनीनां तु धर्मितकविमोक्षक  
इत्युक्तो दैत्यनाथस्तु प्रणम्य प्रपितामहम् ।

गत्वा तां नन्दयामास महिषीं कर्षितान्तराम् ॥ ४६ ॥

तो दम्पती कृतार्थौ तु जग्मतुः स्वाधर्मं तदा । आहितं तु तदा गर्भं वराङ्गी वरपरिणी  
पूर्णवर्षसहस्रं ॥ दधारोदर एव हि । ततो वर्षसहस्रान्ते वराङ्गी सात्यसूयत ॥ ५१ ॥  
जायमाने तु दैत्ये तु तस्मिँह्लोकभयङ्करे । खचाल सर्वा पृथिवी प्रोदुभूताश्च महार्णवाः  
बेलुर्धराधराश्चापि वनुर्वाताश्च भीषणाः । जेपुर्ज्यं मुनियरा नेदुर्व्यालमृगा अपि ॥ ५३ ॥  
तर्ही कान्तिश्चन्द्रसूर्यौ नीहारच्छादितादिशः । जाते महामसुरे तस्मिन्सर्वे चापिमहामुराः  
माज्जमुर्हर्षितास्तत्र तथा चासुरयोषितः । जगुर्हर्षसमाविष्टा ननुतुङ्गाप्सरोगणाः ॥  
ततो महोरस्ये जाते दानवानां महाघुते । विषण्णमनसो देवाः सहेंद्रा अभयस्तदा ॥  
वराङ्गी तु सुतं वृद्धा हर्षेणापूरिता तदा । यदु मेने च दैत्येन्द्रो विज्जातं तं तदा तथा ॥

जातमात्रस्तु दैत्येन्द्रस्तारकश्चोमविक्रमः ।

अभिविक्रोऽसुरैर्मुष्यैः कुजग्भमहिषादिभिः ॥ ५८ ॥

सर्वासुरमहाराज्ये पृथिवीतुलनक्षमे । स तु प्राप्तमहाराज्यस्तारको नृपसत्तम ॥ ५९ ॥

उवाच दानवभ्रेष्ठो युक्तियुक्तमिदं वचः ।

तारक उवाच ।

भृशुध्वमसुराः सर्वे पाक्यं मम महायत्नाः ॥ ६० ॥

धराक्षयकरा देवाः सर्वेषामेष दानवाः । भस्माकं जातिधर्मेण विकृतं धैरमक्षयम् ॥ ६१ ॥

वर्षं तपश्चरिष्यामः सुराणां निग्रहाय तु । स्थपाद्रुयलमाधित्य सर्वं वषट् संशयः ॥ ६२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तच्छ्रुत्वा संमत् कृत्वा पारियात्रं ययौगिरिम् । निराहारपञ्चतपापत्रभुग्वारिभोजनः

शतं शतं समानां तु तपांस्येतान्यथाकरोत् । एवं तु कर्षिते देहे तपो राक्षसमागते ॥

प्रह्लाऽऽगत्याह दैत्येन्द्रं वरं वरय सुवत । स पदे सर्वभूतेभ्यो न मे मृत्युर्भवेदिति ॥

तमुवाच ततो प्रह्ला देहिनां मरणं ध्रुवम् । यतस्ततोऽपि वरय मृत्युं यस्माच्च राट्टस्ये ॥

ततः सञ्चिन्त्य दैत्येन्द्रः शिशोर्वै सप्तवासरात् । वये महामसुरे मृत्युं मोहितोऽप्यतेपत्र

जगामोमित्युदाहृत्य प्रह्ला दैत्यो निजं गृहम् ।

अथाह मन्त्रिणस्तूर्णं यत्नं मे सम्प्रयुज्यताम् ॥ ६८ ॥

यदि धो मत्प्रियं कार्यं निग्राह्याः सुरसत्तमाः । निगृहीतेषु मेप्रीतिर्जायतेचानुलाऽसुप्तः

तारकस्य धनः ध्रुत्वा प्रसन्नो नाम दानवः ॥

सेनानीर्देत्यराजस्य सज्जं चक्रे यत्नं च तत् ॥ ७० ॥

आहत्य मेरीं गम्भीरां दैत्यानां ह्य सत्त्वः । दशकोटीश्वरा दैत्या दैत्यानां वण्डविभक्तः ।  
तेषामप्रेसरो जम्भः कुजम्भोऽनन्तरोऽसुरः । महिषः कुञ्जरो मेघः कालनेमिर्निमित्तपा

मन्थनो जम्भकः शुम्भो दैत्येन्द्रा दशनायकाः ।

अन्ये च शतशस्तत्र पृथिवीतुलनक्षमाः ॥ ७३ ॥

गह्वरानां सहस्रेण चकाटकविभूषिताः । स कूरपरो वारुणतुर्यो जनविस्तृतः ॥ ७४ ॥  
स्यन्दनस्तारकस्यासीद्व्याघ्रसिंहस्यारवभिः ।

युका रथास्तु प्रसन्नजम्भको जम्भकुम्भिनाम् ॥ ७५ ॥

मेघस्य द्वीपिभिर्युक्तः कुष्माण्डैः कालनेमिनः । पर्वतामभ्यतुर्द्वौ निमेषैव महापद्मः ।  
शतहस्ततुरङ्गस्यो मन्थनो नाम दैत्यराट् । जम्भकस्तूष्माण्डो गिरीन्द्रां महाबलः ।

शुम्भो मेघं समाकूटोऽन्येऽप्येवं विप्रपाहनाः ।

प्रवण्डाश्चित्रपर्माणः कुण्डलोष्णीफभूषिताः ॥ ७८ ॥

तदुयलं दैत्यसिंहस्य भीमरूपं व्यजायत । प्रसन्नमत्तमा तदुत्तुरङ्गस्य सङ्कुलम् ॥ ७९ ॥

प्रतस्थेऽमरयुद्धाय बहुपक्षिपताकिम् । पतस्मिन्नन्तरे पायुर्देवदूतोऽसुरालये ॥ ८० ॥  
दृष्ट्वा तदानपयलं जगामेन्द्रस्य रासितुम् । स गत्वा तु सर्वा दिव्या महेन्द्रस्य महाबलः ।  
शशंसमप्ये देवानां तत्कार्यं समुपस्थितम् । तच्छ्रुत्वा देवराजस्तु निमीलितचिह्नो बभूव ।

वृहस्पतिमुवाचेदं धावयं काले महाभुजः ।

इन्द्र उवाच ।

सम्प्राप्नोति विमर्दोऽयं देवानां दानवैः सह ॥ ८३ ॥

किमत्र तदुद्गृही नीत्युपायोऽप्युद्दिष्टम् । पतच्छ्रुत्वा तु पवनं महेन्द्रस्य गिरिपतिः ।  
इत्युवाच महाभागो वृहस्पतिश्चार्थाः ।

गृहस्पतिश्वाच ।

सामपूर्णा धृता नीतिश्चतुरङ्गा पताकिनी ॥ ८५ ॥

जैर्गीपतां सुरधेष्ठ स्थितिरेषा सनातनी । सामभेदस्तथादानं दण्डध्याङ्गचतुष्टयम् ॥  
। सान्त्वगोचरेऽग्रा नभेषास्त्येकधर्मिणः । न दानमत्र संसिद्ध्यैप्रसहोवापहारिणाम्  
१कोऽभ्युपायो दण्डोऽत्र भयतां यदि रोचते । एवमुक्तः सहस्राक्ष एधमेतदुपाचह ॥

कर्त्तव्यं च सञ्चिन्त्य प्रोवाचामरसंसदि ।

इन्द्र उवाच ।

भयधाने न मे पाचं मृगुर्ध्वं नाकवासिनः ॥ ८६ ॥

भयन्तो यन्मोकारो दिव्यात्मानो हि सान्वयाः ।

स्ये महिम्नि स्थिता नित्यं जगतः पालने रताः ॥ ८७ ॥

येऽपतांसमरोद्योगः सैन्यं संयोज्यतांमम । आह्वयन्तां च शस्त्राणि पूर्यन्तां शस्त्रदेवताः

पाहनानि विमानानि योजयध्वं ममेश्वराः ।

यदंसेनापतिं कृत्वा शीघ्रमेव दिवौकसः ॥ ८८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

त्युक्तास्समनह्यन्त देवानां ये प्रधानतः । याजिनामयुनेनाजौ हेमघण्टापरिष्कृतम् ॥

। नाध्वर्यगुणोपेतं सम्प्राप्तं देवदानवैः । रथं मातलिना युक्तं देवराजस्य दुर्जयम् ॥

। मौ महिषमास्थाय सेनाप्रे समप्रसृत । षण्डकिङ्कटवृन्देन सर्वतः परिवारितः ॥ ८९ ॥

। अकालोद्गतश्वालापूरितोऽम्बरगोचरः । हुताशनस्त्यजाकटः शक्तिहस्तो ध्वजस्थितः ॥

। यनोऽङ्कुराहस्तश्च विस्तारितमहाजवः । भुजगेन्द्रसमाकटो जलेशो भगवान्स्थयम् ॥

। त्युक्ते रथे देवो राक्षसेशो विषाकरः । तीक्ष्णशङ्खयुतो भीमः समरे समप्रस्थितः ॥

। हासिहरथे देवो धनाध्यक्षो गदायुधः । चन्द्रादित्वावश्विनौ च चतुरङ्गबलान्विताः ॥

। सेनान्योदेवराजस्य दुर्जया भुवनत्रये । कोटयस्तास्त्रयस्त्रिंशद्देवदेवतिकायिनाम् ॥

हिमाचलाभे सितवाक्चामरे सुवर्णपद्मामलमुन्दरस्रजि ।

। कृतामिरामोऽञ्जलकुङ्कुमाङ्कुरे कपोललीलातिकदम्बसङ्कुले ॥ ९० ॥

स्थितस्तदैवरावणनामकुञ्जरे महामनाश्चित्रचिभूषणाम्बु ।

विशालयज्ञः सुवितानभूषितः प्रकीर्णकेयूरभुजङ्गमण्डलः ॥ १०२ ॥

सहस्रद्वन्द्वितपादपल्लवस्त्रिविष्टपेऽशोभत पाकशासनः ।

तुरङ्गमातङ्गकुलोघसङ्कुला सीतातपत्रध्वजशालिनी च ॥ १०३ ॥

यभूय सा दुर्जयपत्तिसन्तता चिमाति नानायुधयोधदुस्तरा १०४ ॥

ततोऽभ्यिनी च मरुतः ससाध्याः सपुरन्दराः । यक्षराक्षसगन्धर्वादिदयानास्त्रपात्र

जम्बुद्वैत्येश्वरं सर्वे सम्भूय तु महायलाः । न चैवास्त्राप्यसज्जन्त गात्रे यद्वाचलोप

भधोरपादपल्लव्य तारकादानपाधिपः । जघान कोटिशो देवान्करपार्जितिरैव च ।

हस्तशेषाणि सैन्यानि देवानां विप्रमुद्रुयुः । दिशो भूतानि सन्त्यज्य रजोपकरणानि च ।

दृष्ट्वा तान्निद्रुतान्देवांस्तारको पाक्वमप्रवीत् ॥ १०६ ॥

तारक उवाच ।

मायधिष्टसुरान्देव्या यज्ञाङ्गाय च मन्दिरे । शीघ्रमानीयदर्श्यं तावदान्पावत्यं गुरान्

पुलस्त्य उवाच ।

लोकपालास्ततो दैत्यो यदुध्या केद्रमुखाग्रणे । सद्यन्मुद्रुः पारोः पशुगालः पशुनि

स भूयो रथमःस्थाय जगाम । चन्द्रमालयम् ।

सिद्धगन्धर्वसङ्घुष्टं पिपुलाचलमस्तकम् ॥ ११२ ॥

सूयमानां दितिसुनेरप्सरसोभिः सुमेधितः ॥ ११३ ॥

इति धो पाण्डुरागे प्रथमे सृष्टिकण्डे देवासुरसङ्ग्रामे तारकत्रयो नाम

चनुधत्वारिशनमोऽध्यायः ।

## पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सर्वदेवकृतं ब्रह्मस्तोत्रम् ।

पुलस्त्य उवाच ।

प्रादुरासीत्प्रतीहारः शुभ्रचोनांशुकाम्बरः । सज्जानुभ्यां महौ गत्वापिहितास्यश्चपाणिना  
उपाचानापिलं पावयमन्पाक्षरपरिप्लुतम् । दैत्येन्द्रमर्कचृन्दामं विन्नत भास्करं ययुः॥  
कालनेमिः सुरान्वदुभ्या प्रादाय द्वारितिष्ठति । स विष्ठापयति स्थेयं कषन्दिनिचयैः प्रभो  
सप्रिशम्याप्रपीडित्यः प्रतीहारस्य भाषितम् । यथेष्टं स्वीयतामेभिर्गृहं मे भुषनत्रयम् ॥  
केवलं पासधं त्येकं मुण्डयित्वा विमुच्यताम् । सितवस्त्रपरिच्छन्नशुनःपादेनचिह्नितम्  
एवं हृते ततो देवा दूषमानेन चेतसा । जमुर्जगद्वगुहं प्रपुं शरणं कमलोद्भवम् ॥६॥  
पिनिर्दिण्णास्तमासाध शितोभिर्दरणीगताः । तुष्टुदुःसुष्टुपर्णाढ्यैर्वचोभिः कमलम् नास  
देवा ऊचुः ।

नमस्तपोङ्गराङ्गरादिप्रसूत्ये चिन्मत्स्थानामभेदस्य पूर्वकम् ।  
सम्भूतस्यानन्तरं सत्यमूले संहारेच्छोस्ते नमः सत्त्वमूर्त्ते ॥ ८ ॥  
व्यस्रीनां त्पामादिभूतं महिम्ना चास्मादस्मानभिधानाद्विचिन्त्य ।  
पापापृथ्व्योरुदुर्ध्वलोकास्तथाधश्चाण्डादस्मात्त्वं विभागं चकथ ॥ ६ ॥  
व्यक्तं मेरुर्गजरागुस्तवाभूदेवं विद्यस्त्वत्प्रणीतोऽवकाशः ।  
व्यक्तं देवा जहिरि यस्य देहाहं हस्यान्तश्चारिणो देहभाजः ॥ १० ॥  
घोस्ते भूर्दा लोखने चन्द्रसूर्यौ व्यालाः केशाः ध्योत्ररन्ध्रे दिशस्ते ।  
गात्रं यज्ञः सिन्धवः सन्धयो वै पादौ भूमिस्तद्दरं ते समुद्राः ॥ ११ ॥  
मायाकारः कारणं त्वं प्रसिद्धो वेदैः शान्तो ज्योतिरर्कस्त्वमुक्तः ।  
वेदार्थेन त्वां चिदृषन्ति बुद्ध्या हृत्पद्मान्तः संनिविष्टं पुराणम् ॥ १२ ॥  
त्वां चात्मानं लब्धयोगा गृणन्ति साहसैर्यास्ताः सप्तसुह्रमाः प्रणीताः ।

तासां हेतुर्याष्टमी चापि गीता तास्वन्तस्थो जीवभूतस्त्वमेव ॥ १३ ॥  
 दृष्ट्वा मूर्तिं स्थूलसूक्ष्मां चकार ये वै भावाः कारणे केचिदुक्ताः ।  
 सम्भूतास्ते त्वत्त एधादिसर्गं भूयस्तास्त्वां वासनान्तेऽभ्युपेयुः ॥ १४ ॥  
 त्वत्सङ्केतस्त्वन्तरायो निगूढः कालोऽमेयोध्वस्तसङ्ख्या विकल्पः ।  
 भावाभावाव्यक्तिसंहारहेतुः सोऽनन्तस्त्वं तस्य कर्ता निधानम् ॥ १५ ॥  
 स्थूलस्सर्पोऽनर्थभूतस्ततोऽन्यस्सोऽर्थस्सूक्ष्मो यो हि तेभ्योऽपि गांतः ।  
 स्थूलाभावाध्वावृत्ता यैश्च तेषां तेभ्यः स्थूलस्त्वं पुराणे प्रणीतः ॥ १६ ॥  
 भूतं भूतं भूतिमदुभूतभावं भावे भावं भावितं त्वं युनक्षि ।  
 युक्तं युक्तं व्यक्तिभाषाग्निरस्य स्थाने स्थाने व्यक्तिवृत्तिं करोषि ॥ १७ ॥  
 इत्थं देवो व्यक्तिभाजां शरण्यस्त्राता गोताभावितोऽनन्तमूर्तिः ॥ १८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

विरेमुत्तराः स्तुत्या प्रह्लाणमित्रिकारणम् । तस्युर्मनोभिरिष्टार्थसम्प्राप्तिप्रार्थनास्तत्  
 एवं स्तुतो विरिञ्चिस्तु प्रसादपरमं गतः । भमरान्धखोऽप्याह घामहस्तेन निर्दिष्ट  
 प्रह्लोवाच ।

नारी या भवृकाऽकस्माद्वस्तसन्त्यक्तभूषणा । न राजसे कुतश्चक म्लानपत्रसरोरुः  
 हुताशनधियुक्तोऽपि धूमेन ॥ विराजसे । तृणौघेन प्रतिच्छन्नो दग्धदायधिरपितः ॥  
 यमामयशरीरेणक्लिष्टोनाथ विराजसे । दण्डेनालम्बनेनेव कृष्टो येन पदे पदे ॥ २१ ॥  
 रत्ननीवरनाथ त्वं किमीत इषभापसे । राक्षसेन्द्र हुतादाने त्यमरातिभूतो यथा ॥  
 तनुस्ते घघ्नो च्छुष्का परीतस्येय घह्निना । विमुक्तकधिरं चाथ पदं त्वं प्रचिलोक्य  
 पायो मयान्विचेतस्वः खड्गाग्रैरिषनिष्ठतः ।

किं त्वं नतोऽसि धनद सन्त्यज्येय कुपेस्ताम् ॥ २६ ॥

सन्तोऽविन्दध्वं बहुशूराताम् । भवतांकेनचाक्षितातोयतानस्तदुज्यताम्

पुलस्त्य उवाच ।

मुरास्तेन प्रह्लाणा प्रह्लावर्तिना । घावां प्रधानभूतपाप्मे मारुतमचोदयन् ।



अथ शक्रमुखैर्देवः पथनः प्रतिचोदितः । प्राहदेवं चतुर्वक्त्रं भवान्वेत्ति वराचरम् ॥

पायुस्वाच ।

पुरुहूतमुखाः सबला निमिषा विजिताः प्रसमं किल दैत्यशतैः ।

कतवो विहिता भवता स्थितये जमतां च मदाद्भुतचित्रगुणाः ॥ ३० ॥

अपि यमकृतः श्रुतकामफला विहिता ऋष्यस्तत एव पुरः ।

अपि नाकमभूत्किञ्च यद्वभुजां भवतो विनियोगवशारसततम् ॥ ३१ ॥

अपहृत्य विमानगणं सहतो दनुजेन महाकरभूमिसमः ।

कृतधानसि सर्वगुणातिशयं यमशेषमहीधरराजतया ॥ ३२ ॥

मज्जभूपितमंशुमतामर्षिं सुरधामगिरिं गगनेऽपि सदा ।

अधिधास्यद्विहारविधानुचितो दनुजेन परिष्कृतशृङ्गतटः ॥ ३३ ॥

प्रथिलम्यितरत्नगुहानिषहो यदुदैत्यसमाभयतां गमितः ।

असुरस्य च तस्य भयेन गतं सविषादशरीरनिमित्ततया ॥ ३४ ॥

उपभोग्यतयाऽधिकृतं सुचिरं विमलद्युतिपूरितविषयदनम् ।

भवतैष विनिर्मितमादियुगे सुखेति समूहवरं कुलिशम् ॥ ३५ ॥

दितिजस्य शरीरमवाप्य गतं शतधा मतिभेदमिच्छापिबुः ॥ ३६ ॥

याणश्च युधिषिद्धाङ्गा द्वारि द्वास्थेर्निर्दिशिताः ।

लब्धप्रवेशाः कृच्छ्रेण वरं तस्यामरद्विपः ॥ ३७ ॥

समायाममरा देव प्रकृष्योपनिवेशिताः । येत्रहस्तैरजल्पन्तस्तथोपहसिता परैः ॥ ३८ ॥

महार्थाः सिद्धसर्वार्था भवन्तः स्वल्पभाषिणः ।

शास्त्रयुक्तमथ ब्रूतमाऽमरा बहुभाषिणः ॥ ३९ ॥

समेयं दैत्यसिंहस्य न शक्रस्य विशृङ्खला । यद्वहिरिति दैत्यस्य प्रेथ्यैर्चिह्नसिता यद् ॥

श्रुतवो मूर्तिमन्तश्चाप्यदनिशमुपासते । कृतापराधं सत्रासं न त्यजन्ति कथञ्चन ॥

कन्त्रीलयनयोपेतं सिद्धगन्धर्वकिन्नरैः । सुरगमुपधाविष्टं गीयते तस्य घेदमसु ॥ ४० ॥

कृताकृतोपकरणीर्मित्रादिगुल्लाघवैः । शरणागतसन्त्यागी त्यक्तसैत्यप्रतिभयः ॥ ४१ ॥

इति निश्शेषमथघानिश्शेषं केन शक्यते । तस्या विनयमाख्यातुं स्रष्टा तत्र परायणम्  
पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वाव्ययमद्वायुः शनैर्देवविचेष्टितम् । सुरानुवाच भगवांस्ततः स्मितमुखाभ्युजः ।  
ब्रह्मोवाच ।

अथयस्तारको दैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः । यस्य वध्यस्सनाद्यापि जातत्रिभुवने पुमान्  
मया स परदानेन छन्दयित्वा निवारितः । तपसः साम्प्रतं राजा त्रैलोक्यरुहनात्मकः ।  
स तु पत्रे पथं दैत्यशिशुतः सप्तपासरात् । सतु सतदिनो बालः शङ्कुराघोमविष्यति  
तारकस्य निहन्ता स माय्करामो मविष्यति ।

साम्प्रतं चाप्य पत्नीकः शङ्कुरो भगवान्प्रभुः ॥ ४६ ॥

हिमाचलस्य बुद्धिनायाच देवी मविष्यति । तस्याः सकाशायः सनुररण्यापावकोपध  
अनिष्यति ॥ तं प्राप्य तारको न मविष्यति । मयाऽभ्युपायः कथितोयथैव हिमविष्यति  
शेषं चाप्यस्य विभयं विमज्जध्यमनन्तरम् । स्तोककालं प्रतीक्ष्यं निर्विशङ्को न वेतसा  
पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वाग्निदशास्त्रेण साक्षात्कमलयोगिना ।

जगमुस्ते प्रचिफटयेतं यथायोगं द्विषीकसः ॥ ५३ ॥

कनो बानेषु देवेषु ब्रह्मः लोकपित्रामहः । निशां सन्जार भगवांस्तो देवी दूर्यताममम  
कनो भगवती रात्रिपलस्थे पित्रामहम् । तां विविक्तं समालोक्य ब्रह्मोवाच विभावर्त्त  
ब्रह्मोवाच ।

विभावर्त्तमहम्कालं देवतां सनुरस्मिभम् । तत्कर्त्तव्यं त्वयादेवि शत्रु कार्येभ्यनिष्क्रम  
तारको नय देवदेवः सुर्यावृत्तिर्निर्दिष्टः । तस्याजयाय भगवत्प्रवविष्यति केनः ।  
सुतं ॥ मन्त्रेण तस्य तारकस्यान्तः किल ।

शङ्कुरस्यावधमर्द्धी सतो दधमुप तु वा ॥ ५८ ॥

सा मितुः बुद्धिर्देवां कर्त्तव्यमन्त्रावधमर्द्धी । मन्त्रिर्वादिमर्द्धीत्यव बुद्धिः सोऽन्त्रावध  
मन्त्रा बुद्धिं प्रमत्तवम् । सा तस्यद्विर्द्धीत्यव मन्त्रो निदधेऽन्त्रे ।

प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म किञ्चित्कालं निवर्त्तस्यति । तयोः सुततपसोर्भवितायोमहान्सुतः

भविष्यति स दैत्यस्य तारकस्य विनाशकः ।

जातमात्रा च सा देवी स्वल्पसंज्ञेव भामिनी ॥ ६२ ॥

विरहोत्कण्ठिता गाढं हरसङ्गमलालसा । तयोःसुततपसोः संयोगः स्याच्छुभावहः ॥

ततस्ताभ्यां तु जनितः स्वल्पो घाक्लहोभवेत् ।

ततस्तु संशयो भूयस्तारकस्य च दृश्यते ॥ ६४ ॥

तयोः संयुक्तयोस्तस्मात्सुरतासक्तिकारणे ।

धिष्णं त्वया विधातव्यं यथा ताम्यां तथा शृणु ॥ ६५ ॥

भर्त्स्यमेव तन्मातुः स्वेन रूपेण संज्ञया । ततो विद्वस्य शर्वस्तां विषण्णो नर्मपूर्वकम्

भर्त्सयिष्यति तां देवीं ततः सा कुशिता सती ।

प्रयास्यति तपश्चतुर्ं ततः सा तपसा युता ॥ ६७ ॥

जनयिष्यति तं शर्षादमितद्युतिमण्डलम् । सम्भविष्यन्ति हन्ताऽसौ सुरारीणामसंशयम्

त्वयापि दानवा देवि हन्तव्या लोकदुर्जयाः । यावत्सुरेभ्यो देवसङ्घातगुणसञ्ज्ञया ॥

तत्सङ्गमेन तावद्यं दैत्याहन्तुं न शक्यसे । एवं हते तपस्तपसा त्वयासर्वं करिष्यति

समाप्तनियमा देवि यदा क्षोमा भविष्यति । तदा स्वमेव साकारं शैलजा प्रतिपरस्यते ॥

तदा त्वयापि सहिता भयानी सा भविष्यति । रुपांशेननुसंयुक्ता उमायास्त्वं भविष्यति

एकाऽनंशेति लोकस्त्रयां वरदे पूजयिष्यति । भेदैर्षद्गुणिधाकारैः सर्वगां कामसाधिनाम्

भौकारवयत्रा गायत्री त्वमिति ब्रह्मादिभिः । भावन्तैर्हजिताकाराराजभिर्भ्रमहाभुजैः

त्वंभूरिति विशां माता शूद्रैर्शोषेति पूजिता । शान्तिर्मुर्ननामक्षोभ्याद्यानियमिनामपि

त्वं महोपायसन्देहो नोतिर्नयविसर्पिणाम् । परिचित्स्त्वमयांतां त्वमीदामाजिह्व्यथा

त्वं मुक्तिरसर्वभूतानां त्वं गतिः सर्वदेहिनाम् ।

रतिस्त्वं रतचित्तानां प्रीतिस्त्वं हृदि देहिनाम् ॥ ७१ ॥

त्वं कीर्तिः सत्यभूतानां त्वं शान्तिर्दुःखकर्मणाम् ।

त्वं शान्तिः सर्वभूतानां त्वं गतिः ऋतुयाजिनाम् ॥ ७८ ॥

जलधीनां महावेला त्वं च लीला विलासिनी । प्रियकण्ठग्रहानन्ददायिनी त्वंविमा  
इत्यनेकविधैर्देवीरूपैल्लोकैस्त्वमर्चिता । ये त्वां स्तोष्यन्ति घग्दे पूजयिष्यन्ति चापि  
ते सर्वकामानाप्यस्यन्ति नियता नात्र संशयः ॥ ८१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता तु निशादेवी तथेत्युक्त्वा कृताञ्जलिः । जगाम त्वरिता तूर्णं गृहं हिमगिरे  
तत्रासीनां महाहर्म्यैरत्नभित्तिसमाभ्रयाम् । ददर्श मेनामापाण्डुच्छयिवक्त्रसरोरु  
किञ्चित्क्षामां मुखोदग्रस्तनभाराचनामिताम् ॥ ८२ ॥  
महोपधिगणाचक्ष्मन्त्रराजनिषेचिताम् ।

उदूढकनकोन्नद्धजीघरक्षामनोरमाम् ॥ ८३ ॥

मणिदीपागणज्योतिर्महालोकप्रकाशिते । प्रकीर्णबहुसिद्धार्थमनोहपरिवारके ।  
शुद्धवीनांशुकच्छत्रभूशम्यास्तरणोज्ज्वले । धूपामोदमनोरम्ये सज्जसर्वोपयोगि  
ततः क्रमेण दिवसे गते दूरं विभाचरी । विजृम्भितमुखोदकं ततो मेना महापुढे ॥ ८४ ॥  
प्रसुप्तप्रायपुरुषे निद्राभूतोपचारके । स्फुटालोके शशभृतिभ्रान्तरात्रिपिहङ्गने ॥ ८५ ॥  
रजनीचरसञ्चारभूतैरावृतचत्परे । ग दकण्ठग्रहालने शुभगोष्ठजने ततः ॥ ८६ ॥  
किंविदाकुलतां प्राप्ते मेनानेप्राप्नुजद्वये । भाषिवेश मुले रात्रिः सुखमद्भुतसङ्गमा ॥ ८७ ॥  
उन्मादाय जगन्मातुः क्रमेण जठरान्तरे । भाषिवेशातुलं जन्म मन्यमाना कदा तु वै ॥ ८८ ॥  
अरञ्जयदुगृहं देव्या गुहारण्ये विभाचरी । ततो जगत्यानिर्घाणहेतुर्हिमगिरिप्रिया ॥ ८९ ॥  
प्रप्लवे मुहुर्न सुमगे प्रासूयत गुहारणिम् । तस्यां ॥ जायमानायां जन्तपः स्थाणुब्रह्म  
भमपन्सुक्षितः सर्वे सर्वलोकनिवासिनः । नारकाणामपि तदा सुखं स्यत्तत्तमं महे ॥ ९० ॥

अभयत्पूरसत्त्वानां चेतः शान्तं च देहिनाम् ।

ज्योतिगामपि तेजस्तु सुतरां चामवत्तदा ॥ ९१ ॥

पनाधिताधोपधयः स्वाव्यवन्ति फलानि च ।

गन्धयन्ति च मात्स्यानि विमलं ॥ नमोऽभयम् ॥ ९२ ॥

सुप्रस्यर्शो दिशश्च सुमनोहराः । शत्रुदुष्टनाशक योगपतिपद्मगुणोपायकाः ॥ ९३ ॥

ममपत्न्युपिषी देषी शालिमालाकुलापि च ।

तथांसि दीर्घधीर्णानि मुनीनां भाषितात्मनाम् ॥ ६८ ॥

तस्मिन्मगतानि साकल्यं काले निर्मलचेतसाम् ।

पिस्मृतानि च शास्त्राणि प्रादुर्भावं प्रपेदिरे ॥ ६९ ॥

भाषस्तीर्थमुष्यानां तदा पुण्यतमस्त्वभूत् । भन्तरिक्षेऽमराभ्यासन्विमानेषु सहस्रशः

महेन्द्रब्रह्मादीनामुपबृंहिपुरोगमाः । पुण्यवृष्टिं प्रमुमुक्षुस्तस्मिस्तुद्दिनभूधरे ॥ १०१ ॥

गुणगन्धर्वमुष्याश्च ननुतुभ्याप्सररोगणाः । मेघप्रभृतयश्चापि मूर्तिमन्तो महाबलाः ॥

तस्मिन्महोत्सवे प्राप्ते दिव्याः प्रसूतपाणयः ।

सागरास्सरितश्चैव समाजमुभय सर्वशः ॥ १०३ ॥

मरीचोऽमपत्नोके तदा सर्वेभ्यराचरे । संसेन्यधाधिगम्यश्च साश्रयश्चावलीतमः ॥

तुभ्योत्सवं देवा जग्मुः स्यान्निलयांस्तदा । देवनागेन्द्रगन्धर्वशैललीलावतीगणैः ॥

मरीचसुतादेषी त्वहम्पूर्विकयाततः । क्रमेणबुद्धिमावीता विद्याज्ञानलसैर्युधैः ॥ १०६ ॥

मेघ ऊरुसौभाग्यप्रदोर्ध्वगुणव्रजे । सम्पूर्णलक्षणा जाता हिमालयसुता तथा ॥ १०७ ॥

तस्मिन्नन्तरे शशो नारदं देवसंमतम् । देवर्षिमथ सस्मार कार्यसाधनतत्परः ॥ १०८ ॥

स तु शक्रस्य पित्राय कारुक्षितं भगवांस्तदा ।

भाजगाम मुदा युक्तो महेन्द्रस्य निवेशनम् ॥ १०९ ॥

तं तु दृष्ट्वा सहस्राक्षः समुत्थाय महासनात् ।

यथार्हं ॥ पाद्येन पूजयामास वासयः ॥ ११० ॥

यन्मणिहितं पूजां प्रतिगृह्य यथाविधि । नारदः कुशलं देवमपृच्छत्पाकशासनम् ॥

पृष्टे च कुशले शक्रः प्रोवाच वचनं प्रभुः ॥ ११२ ॥

इन्द्र उवाच ।

कुशलस्याद्दुःकुस्तापत्संवृत्तो भुवनत्रये । तत्कलोद्भवसम्पत्तौ त्वं मया विदितो मुने ॥

येतस्येव तत्समस्तं त्वं तथापि परिबोदितः । निर्बृतिं परमां यासि निवेद्यायं सुहृज्जने

तद्यथा शैलजा देषी योगं यायात्पिनाकिना । शीघ्रतपोयमः सर्वैस्समत्पक्षैर्विधीयताम्

पुलस्त्य उवाच ।

अवगम्यार्थमखिलं तत आमन्त्र्य नारदः । शीघ्रं जगाम भगवान्हिमशैलनिकेतनम् ।  
तत्र द्वारे स चिप्रेन्द्रश्चित्रवेत्रलताकुले । चन्दितो हिमशैलेन निर्गतेन पुरो मुनिः ॥ ११७ ॥  
स ह प्रविश्य भवनं भुवो भूयणतां गतम् । निवेदिते स्वयं हेमे हिमशैलेन विस्तृते ॥

महासने मुनिचरो निपस्तादानुलघुतिः ।

यथार्हमध्यं पाद्यं च शैलस्तस्मै न्यषेदयत् ॥ ११८ ॥

मुनिः स प्रतिजग्राह तमध्यं चिधिचक्षदा । गृहीतार्घ्यमुनिश्रष्टमपृच्छच्छलक्षणा गिरा  
कुशलं तपसः शैलः शनैः फुल्लाननाम्युजः । मुनिरप्यद्विराजानमपृच्छत्कुशलं तदा ॥

नारद उवाच ।

भहो धर्मोचितस्तेऽस्ति संनिवेशो महागिरैः । पृथुत्वं मनसा तुभ्यं कन्दराणां तवान्न  
शुद्धत्वं ते गुणौघानां स्थावरादतिरिच्यते । प्रसन्नता च तोयस्य मुनिन्यश्चाधिका तव

न लक्षयामः शैलेन्द्र कुत्रापिनयता स्थिता ।

नानातपोभिर्मुनिभिर्ज्वलनार्कसमप्रभैः ॥ १२४ ॥

पायनैः पाचितो नित्यं त्वं कन्दरसमाश्रयैः । अवमत्यधिमानानि स्वर्गधासधिरागिणः  
पितुर्गृहस्थासीना देवगन्धर्वकिन्नराः । भहो धन्योऽसि शैलेन्द्र यस्य ते कन्दरं ह्य

अध्यास्ते लोकनाथो हि रामध्यानपरायणः ॥ १२७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तयति देवर्षो नारदे सादरं गिरा । हिमशैलस्य महिषो मेता मुनिदिदृक्षया ॥ १२८ ॥  
अनुयाता दुहित्रा तु स्वत्पालिपरिवारिका । लज्जा प्रणयनघ्राहो प्रविवेश निकेतनम्  
यत्रस्थितो मुनिचरः शैलेन सहितो पश्यो । तं दृष्ट्वा तेजसो राशिं मुनिं शैलप्रिया तदा ॥  
पयन्दे गूढयदना पाणिपद्महताञ्जलिः । तां घिलोक्य महाभागां देवर्षिमितवृत्तिः ॥

आशीर्भिरमृतोद्गाररूपामिस्तां व्यपर्दयत् ।

ततो विहिमतचित्ता तु हिमपद्मिगुप्तिका ॥ १३२ ॥

नारददेवा मुनिमद्भुतरूपिणम् । पृष्ट्वा पततेति सांख्युक्तां श्रुतिनां स्तब्धयामिव

वृक्षार्थोऽध्यायः ] \* नारदेद पार्वत्याः सामुद्रिकलक्षणस्पष्टीकरणम् \* ४२७

कण्ठे गृहीत्वा पितर्यङ्क्ते सा तु समाविशत् ।

उवाच माता तां देवीमभिवन्द्य पुत्रिके ॥ १३४ ॥

यत्नं तपोधन्यं पतिमाप्स्यसिसम्मतम् । इत्युक्ता तु ततो मात्रा वस्त्रेण पिहितानना  
किञ्चित्कम्पितमूर्द्धा तु वाक्यं नोवाच किञ्चन ।

ततः पुनरुवाचेदं वाक्यं माता सुतां तदा ॥ १३६ ॥

ते पन्थ्य द्वेषिं ततो दास्यामि ते शुभम् । रत्नकीडनकं रम्यं स्थापितं यच्चिरं मया  
पूजा सा ततो वेगाद्गुदस्य चरणौ तदा । वचन्दे मूर्ध्नि सन्धाय पाणिपङ्कजकुङ्कुमलम्  
तु वन्दने तस्या मातासखिमुखेन तु । सोदयामासशनकैस्तस्याः सौभाग्यदर्शिताम्

शरीरलक्षणानां च परिहानाय कौतुकात् ।

स्त्रीस्वभावात्स्यदुहितुभिर्गतां हृदि समुद्वहन् ॥ १४० ॥

रा तद्विज्ञितं शैलो महिष्या हृदयेन तु । अनुदीर्णाकृतिर्मेने रम्यमेतदुपस्थितम् ॥  
तः शैलमहिषीसण्या मुनिवरस्ततः । स्मिताननो महाभागो वाक्यं प्रोवाचनारदः  
नारद उवाच ।

तोऽस्याः पतिर्भद्रे लक्षणैश्च विषर्जितः । उत्तमहस्ता सततं चरणैर्षमिचारिभिः

सुच्छायास्या भविष्येयं किमन्यदुपभुमाप्यते ।

धुत्यैतत्सम्प्रमाषिष्टो ध्वस्तधैर्यो हिमाचलः ॥ १४४ ॥

नारदं प्रत्युवाचाथ साश्रुकण्ठो महागिति ॥ १४५ ॥

हिमवानुवाच ।

सास्यातिदोषस्यदुर्विज्ञेयागतिर्विधः । सुपुत्र्या चावश्यभाविन्या देवाप्यतिशयात्मना

कर्त्रा प्रणीता मर्यादा स्थिता संसारिणामियम् ।

यो जायते हि यद्वीजाज्जनितुः सोऽर्थसाधकः ॥ १४७ ॥

निताचापि जातस्य न कश्चिदिति च स्फुटम् । स्वकर्मणोऽपि जायन्ते विविधाभूतजातयः

पण्डजो ह्यण्डजाज्जातः पुनर्जायते मानवः । मानुषोऽपि सर्पसृप्यामानुषस्ये न जायते

यपि जातो ध्रेष्टायां धर्मस्योत्कर्षणे न तु । अपुत्रजन्मनः दोषा प्रापिनः समवस्थिताः

मनुजास्तत्र सुतरां नयेन सहधर्मिणः । क्रमेणाध्रमसम्प्राप्तिर्ब्रह्माप्तिरादनु ॥ १९  
तस्यकर्तृनियोगेन संसारो येन वर्धितः । संसारस्य हि नोत्पत्तिः सर्वस्युपदिग्नि-  
कर्त्रा तु शास्त्रेषु सदा सुतलामः प्रशंसितः । प्राणिनां मोहनार्थाय नरकत्रायक-  
स्त्रिया विरहिता सृष्टिर्जनूनां नोपपद्यते ।

स्त्रीजातिस्तु प्रकृत्यैव कृपया दैन्यभागिनो ॥ १५३ ॥  
शास्त्रालोचनसामर्थ्याद्बुद्धयितं तासु कर्तृणा । तस्यां नोपरिमादवा भवेदिति च वे-  
शास्त्रेषूकमसन्दिग्धं बहुवारं महाफलम् । दशपुत्रसमा कन्या याऽपि स्याच्छ्रेष्ठ-  
वाक्पमेतत्फलप्रदं पुंसां ग्लानिकरं फलम् । कन्या हि कृपयासौक्यापितुर्दुःखवि-  
यापि स्यात्पूर्णसर्वार्था पतिपुत्रसमन्विता । किं पुनर्दुर्भगा हीना पतिपुत्रधना-  
त्वं चोक्तयान्सुता या मे शरीरे दोषसङ्ग्रहम् ।

भदो मुष्ट्यामि शुष्यामि ग्लामि सीदामि नारद ॥ १५४ ॥  
भयुकमपि धकज्यमप्राप्यमपि साम्प्रतम् । अनुग्रहाय मेछिन्धि दुःखं कन्याधर्य !  
परिच्छिन्नेऽप्यसन्दिग्धमेतः परिभवाध्रयात् । तृणामुष्णातिनिष्पातं फललोभाध्रया-  
स्त्रीणां हि परमं जन्म कुलानामुभयात्मनाम् । इहामुत्रसुखायोक्तं सत्यतिप्रसिद्धं  
दुर्लभः स्यात्सतः स्त्रीणां विगुणोऽपि पतिः किल । न प्राप्यते विना पुण्यैः पतिर्नार्याः क-  
यतो निस्साधनो धर्मः परिणामोत्थिता रतिः ।

धनं जीवितपर्यन्तं पत्यो नार्याः प्रतिष्ठितम् ॥ १५५ ॥  
निर्दैनो दुर्मुखो मूर्खः सर्वलक्षणवर्जितः । दैवतं परमं नार्याः पतिरुक्तं सर्वैष हि  
त्वया देवर्षिणा प्रोक्तं न जातोऽस्याः पतिः किल । एतदोर्भाग्यमनुलमसहस्रं बहु-  
चराचरे भूतसर्गे चिन्ता सा व्यापिता मुने । स न जात इति धृत्या मनोरंभाद्बु-  
मनुप्यदेववार्तानां शुभाशुभनिवेदकम् । लक्षणं हस्तपादाभ्यां लक्षणं विहितं हि  
सेवमुत्तानहस्तेति त्वयोक्ता मुनिपुङ्गव । उत्तानहस्तता प्रोक्ता यावतामवर्षिण-

शुभोदयानां धन्यानां न कदाचित्प्रयच्छताम् ।

सुच्छाययास्याभरणौ त्वयोक्ता व्यभिचारिणौ ॥ १५६ ॥



वि धेयसो द्याया मुने न प्रतिभाति यः । शरीरतृप्ताध्याये नृपकफलनिवेदिनः ॥

पुनश्च उवाच ।

स्वादिशरीरे महादुःखविचारिणि । भिन्नपूर्वमुपाग्रेहं नारदो देवपूजितः ॥१३२॥

भारद् उवाच ।

एवमेव महति त्वया दुःखं निरुच्यते । भपरिच्छिन्नवाक्यार्थो मोहं पाप्मिमहागिरे

। शृणु गिरं यतो रहस्यपरिनिष्ठितम् । समाहितो महार्हतमपोक्तस्य विचारणाम्

ततोऽस्याः पतिर्देवा यामपोक्तदिमाचल । सनज्जालोमहादेवो भूतभक्ष्यमपोद्वयः ॥

यः शास्त्रं शास्ता शृणुः पामे यतः । मन्त्रैर्नृमुनयो गर्भं तन्मन्त्ररादिताः ॥१३३॥

। नै पामेरास्य सत्वं कीदृशका गिरे । प्रमाण्डतस्तदिच्छातः सम्भूतो भुवनप्रभुः ॥

शुद्धं शुभं जातो नानाजातिमहाकनुः । मन्यसे मायया जातं विष्णुं धावि युगेयुगे

मनो न विनाशोऽस्ति स्वाध्यायान्तेऽकिंभूधर । संसारे जायमानस्य विद्यमानस्य देहिनः

नश्यते देह एवात्र नारमनो नाश उच्यते ।

• प्रक्षादिस्थावरान्तोऽयं संसारो यः प्रकीर्तितः ॥ १८० ॥

॥ ममृशुदुःपातां हनितां परिधर्तते । महादेवोऽचलः स्थाणु नृजातो जनकोऽजरः

पृथिवि पतिः सोऽस्या जगन्नाथो निरामयः । यदुक्तं न मया देवो लक्षणैर्वर्जितातय

शृणु त्वयापि वाक्यस्य समवसरेण विचारणम् । लक्षणं देवि कोह्यद् शरीराय यथाभयः

स वायुर्नर्त्तमान्यपरिणामप्रकाशकः । भनन्तस्याग्रमेयस्य सौभाग्यस्य तु भूधर ॥

नैवाहो लक्षणाकारः शरीरे संविधीयते ।

भतोऽस्या लक्षणं गात्रे ह्येह नास्ति महामते ॥ १८५ ॥

यथाहमुक्तवानस्या उत्तमकरता सदा । उत्तानो यतः पाणिरेव देव्याः सदैव तु ॥

सुपसुमुनिमातपरदात्री भविष्यति । यद्यप्रोक्तं मया पादो सुच्छायो ध्वमिचारिणी

मतः शृणु त्वमस्यापि व्याख्योक्तिं शैलसत्तमः ।

चरणी पद्मसंकाशो स्रच्छायस्यानखोज्ज्वलो ॥ १८८ ॥

सुपसुराणां नमतो किरीटमणिकान्तिभिः ।

यमेवं विधैर्भावेर्द्वेषानुगमनं विना । क्रोधः क्रूरतरात्सङ्गाद्वीर्येया महासर्पा  
पत्यान्मूर्ध्निविध्यस्तपेयाधारमहाबला । तामस्यचिनिषोक्ष्यामि मनसोपि  
धाय धेयद्वाराणि सन्तोषमपकृष्य च । भवगन्तुं हि मां तत्र न कश्चिदिह परि  
कल्पमात्रसंस्थानं विरूपाक्षमनोभवम् । प्रविश्याथ क्रियारम्भोगम्भीरावर्तुः  
भविष्यामि हरस्याहं तपःस्यस्य स्थिरात्मनः ।

इन्द्रियग्राममावृत्त्यरभ्यसाधनसंविधिः ॥ २२५ ॥

तयित्वेति मदनो भूतभर्तुस्तदाभयम् । जयाम जगतीसारं सरलदुमवेक्षिकम्  
तसत्त्वसमाकीर्णमचलं प्राणिसङ्कुलम् । नानापुष्पलताजातं सानुसंस्थानं  
यैर्मनूष्यमोदुषुषं नीलश्यामल सानुकम् । तत्रापश्यत्प्रिनेत्रस्य रम्यं कश्चिद्विस्तृतम्  
कं घोरलोकेष्टमीशानसदृशयुतिम् । एकं कुङ्कुमकिञ्चनपुत्रपिङ्गजरासरम् ।  
प्राणि तमभ्यप्रमुषं चामद्वभूषणम् । ततो निर्मालितोद्युपपन्नान्तलोचनम् ।  
शापमृत्तुस्थानं नासायंशामगोचरम् । भर्ताय रम्यसिद्धेभ्युचर्मललोचनम्  
ता हि फणांमुकनिश्वासानलपिङ्गलम् । प्रेरकपोलपर्यंतनुमिलतिविश्राम  
सानुकिपर्यन्तनामिमूलनिवेशितम् । प्रद्यात्रतिस्थनासाप्रनिषदोरमभूषणम् ।  
शुद्धं कामः क्यमप्रातान्तिकः शनैः । ततो समरकङ्कारमालम्ब्य दूमसानुम्  
प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण भयस्य मदनो मनः ।

शुद्धस्तमधाकर्ष्य मधुरं मदनोभयम् ॥ २२५ ॥

गार दक्षतनयां दयितो अनुमानसः । ततः सिवस्य शनकैस्तिरोधावाभिहितम् ।  
सनाधिप्रायना तस्यां लक्ष्यश्रवणकरिणो ।

ततस्क्रमयत्रो वाक् प्रमूढविहितालयः ॥ २२६ ॥

विदेय विदुषार्थ्यां विहृतिं मदनान्मिथम् ।

इन्द्रोपसमाविशो धेयं नाटन्य पूरतिः ॥ २२८ ॥

य मदनं मिथ्या योगप्रयासमाहूय । ततः तया प्रत्यवाविशो जगतामिहम् ।  
मदोतो दुर्बो दोषतासाम्प्रदायः । हरयान्कैः सांध्य बालाद्यमलम् ॥

हिस्थलं समासाद्य उपतस्थे भयध्वजः । अनुयातो हि साहो न मित्रेण मधुनासह ॥  
हकारतरुर्दृष्ट्वा मन्दमास्तनिर्घुतम् । स्वयकं मदगो रम्यं ह्रस्वक्षसि सत्पथम् ।

मुमोच मोहनं नाम मार्गणं मकरध्वजः ॥ २४२ ॥

। तस्य हृदये शुद्ध नाम शाली महाशरः । पपात परयः प्रांशुः पुष्पवाणो विमोहनः ॥

■ करणसन्दोहे विद्धे तु हृदये भयः । बभूव भूतपोऽकम्प्य धैर्योऽपि मदगोन्मुखाः ॥

१: प्रभुत्वाद्वासानामावेशं स्वमपश्यत् । धार्क्यं बहु वभाषेऽथ प्रत्यूहप्रसवात्मकम् ॥

१: कोपानलोद्भूतघोरहुङ्कारभीषणे । बभूव वदने नेत्रं तृतीयमनलाकुलम् ॥ २४३ ॥

। स्य रौद्रवपुर्णो जगत्संहारभैरवम् । तदन्तिकस्थे मदने व्यस्फारयत् धूर्जटिः ॥

तन्नेत्रं विस्फुलिङ्गे न कोशतां नाकधासिनाम् ।

गमितोभस्मगं तूर्णं कन्दर्पः कामदर्पकः ॥ २४८ ॥

स तु तं भस्मसात्कृत्वा हर्नेत्रोद्घोऽनलः ।

व्यजृम्भत जगद्गुणं श्लाघा हुङ्कारध्वजम् ॥ २४९ ॥

। भयो जगद्धेतोर्षमज्जज्ञातवेदसम् । सहकारे मर्षा चन्द्रे सुमनस्स्यपरेष्वपि ॥

भृङ्गेषु कोकिलास्ये च विभागेन स्मरानलम् ।

स याद्व्याम्यन्तरे विद्धो हरोऽथ स्मरमार्गणः ॥ २५१ ॥

भागेष्वेतेषु संचिष्टं वीक्षणवीच हुताशनम् । विभक्तं लोकसंक्षोभकरं दुर्पारजृम्भितम् ॥

तत्प्राप्तिस्नेहसम्पूर्णकामेन हृदये विल । उपलग्नहर्निशं भीमोदुःखस्य वशागोऽमपम् ॥

विलोक्त्वा हरहुङ्कारज्वालाभस्मीकृतं स्मरम् । विललाप रतिः मूर्धं वन्नुता मधुना सह ॥

कठोविलप्य बहुधो मधुना परिसान्त्विता । जगाम शरणं देवमिन्दुवीलि त्रिलोचनम् ॥

भृङ्गानुवातां सहस्रशः पुष्पितां सहकारजाम् । लतां पत्रदुमच्छात्रां ज्ञातां परभृतां तर्क्षाम् ॥

निश्चयं तु जटाजूटं कुटिलैरलकैरतिः । उद्धर्त्य गार्धं शुद्धेण हृदयेन स्मरभस्मना ॥

जानुम्यामपनि गत्वा प्रोधाचेन्दुषिभूषणम् ॥ २५८ ॥

रतिरप्याद्य ।

नमः शिवायास्तु मनोमयाय जगन्मयायादुत्पत्तये नमः ।

नमः शिवायास्तु सुरार्चिताय तुभ्यं सदा मकल्लापराय ॥ २५६ ॥  
 नमो भवायास्तु भवोद्भवाय नमोऽस्तु ते ध्वस्तप्रनोमवाय ।  
 नमोऽस्तु मायामदनाश्रयाय नमो निसर्गामलभूषिताय ॥ २६० ॥  
 नमोऽस्त्यमेयाय गुणायनाय नमोऽस्तु सिद्धाय पुरातनाय ।  
 नमः शरण्याय नमोगुणाय नमोऽस्तु ते भीमगजानुगाय ॥ २६१ ॥  
 नमोस्तु नानाभुषनर्द्धिकर्त्रे नमोस्तु भक्तमिमत्प्रदाय ।  
 नमोऽथकर्मप्रसुधे नमः सदा अनन्तरूपाय सदैव तुभ्यम् ॥ २६२ ॥  
 भक्त्यकोपाय सदैव तुभ्यं शशाङ्कुचिह्नाय नमोस्तु तुभ्यम् ।  
 भस्मीमलीलापरमस्तुताय वृषेन्द्रयानाय पुरातकाय ॥ २६३ ॥  
 नमः प्रसिद्धाय महौषधाय नमोस्तु नानाविधरूपकाय ।  
 नमोऽस्तु कालायनमः कलाय नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय ॥ २६४ ॥  
 चराचराचार्यैचिचार्यैर्धर्ममाचार्यैर्मुत्प्रेक्षितभूतसर्गम् ।  
 त्वामिन्दुमौलिं शरणं प्रपन्ना प्रियास्तयेऽहं सहसा महेशम् ॥ २६५ ॥  
 प्रयच्छ मे कामपशः समृद्धिं पतिं विना तं भगवन्नजीवे ।  
 प्रियः प्रियायाः पुरुषेशनित्यस्ततोऽपरः कोभुवनैष्यिहास्ति ॥ २६६ ॥  
 प्रभुः प्रभावी प्रभवः प्रियाणां प्रपीणपर्यायपरावरतपः ।  
 एवमेव नाथो भुवनस्यगोप्ता दयालुरुन्मूलितमकमीतिः ॥ २६७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्थं स्तुतः शङ्कर इन्दुमौलिर्नृपाकपिर्मग्नमथकान्तया तु ।  
 तुतोप दोषाफल्गण्डधारी उवाच चैनां मधुरं निरीक्ष्य ॥ २६८ ॥

शङ्कर उवाच ।

मपिप्यति च कामोऽयं काले कान्तेऽचिरादथ ।

अनङ्ग इति लोकेषु स विष्याति गमिष्यति ॥ २६९ ॥

शित्वापत्य निरीक्षं कामपल्लभा । जगामोपपन्नं चान्यत्रतिस्तुदिनपर्वने ।

रतोद चापि बहुशो दीना रम्ये स्थले स्थले । मरणव्यथसायापि निवृत्ता च शिवाद्या  
अथ नारदवाक्येन बोधितो हिमभूधरः । कृताभरणसंस्कारं कृतकौतुकमङ्गलाम् ॥  
स्वर्गपुष्पकृतापीडां शुभ्रचीनां शुक्राम्बराम् । सखीभ्यां संयुतां शैलोगृहीत्वा स्वसुतांततः  
जगाम सुभगे योमे तदासम्पूर्णमानसः । स काननान्युपाकम्य वनान्युपवनानि च ॥  
ददर्श दत्ती नारीमप्रतर्क्यां महोदसम् । न रूपेणेदृशी लोके रम्येषु वनसानुषु ॥२७५॥  
कौतुकेन परामृष्टां दृष्ट्वा रुदतीं गिरिः । उपसृप्य ततस्तस्या निकटं सोऽप्यपृच्छत ॥

हिमवानुवाच ।

कासि कस्यासि कदागणि किमर्थं चापिरोदिवि । नैतद्वपमहं मन्येकार्णां लोकसुन्दरि  
सा तस्य धनं ध्रुत्वा उपाच मधुना सह । रुदन्ती शोकवधनं भवसन्ती दैव्यवर्धनम् ॥  
रतिरुवाच ।

कामस्य दयितां भार्यां रतिं मां विद्धि सुप्रत ।

गिरावस्मिन् भगवान्गिरिशस्तथसिस्थितः ॥ २७६ ॥

तेन प्रत्यूहवृष्टेन कोपाद्विस्फार्यलोचनम् । विमुञ्चाग्निशिखाञ्चालां कामोभस्मावरोपितः  
अहं तु शरणं याता तं देवं भयविह्वला । स्तुतवत्यथ सन्तुष्टस्ततो मां गिरिखोऽप्रवीत्  
तुष्टोऽहं कामदयिते कामोत्पत्तिर्भविष्यति । स्वत्स्तुतिचाप्यधीयानो नरो भवतामदाश्रयः  
लप्स्यते काङ्क्षितं कामं निवर्तमरणादपि । प्रतीक्षकाणां तद्वाक्चमाशायेश्वशादहम्  
शरीरं परिरक्षिष्ये किञ्चित्कालं महाद्युते । इत्युक्तस्तु तया रत्या शैलः सम्ब्रमभीषणः  
पाणावादाय तनयां गन्तुमिच्छत्स्वकंपुरम् । भाविनोऽवश्यभाविताद्विप्रीभूतभाविनी  
लज्जमाना सखिमुल्लेख्या च पितरं गिरिम् ॥२८६॥

शैलपुत्रपुवाच ।

दुर्भगेन शरीरेण किममानेन कारणम् । कथं च तां दशां प्राप्तश्शङ्करो मे पतिर्भवेत् ॥  
तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यन्तु तपस्यतः । दुर्भगत्वं बृथा लोके विहिते सति साधने  
तपसि न्नष्टसन्देहा ततः स्वार्थजिगीषया । एवन्तपः करिष्येऽहं यामीत्युक्त्यतीं सुताम् ॥

उवाच पात्रा शैलेन्द्रो गद्गदस्वरघर्ण्या ॥ २८७ ॥

हिमवानुवाच ।

उ मेति चापलं पुत्रि नक्षमंतावकं वपुः । सोढुं क्लेशानुरूपस्य तपसःसौम्यदर्शि ॥२६॥

भाविन्यपि च कार्याणि पदार्थानि सदैव तु ।

भाविनोऽर्था भवन्त्येव बहवोऽनिच्छतोऽपि हि ॥ २६२ ॥

तस्मान्न तपसा तेऽस्ति बाले किञ्चित्प्रयोजनम् ।

भवन् चैव गच्छामि चिन्तयिष्यामि तत्र वै ॥ २६३ ॥

इत्युक्ता तु यदानैव गृहमन्वेति शैलजा । ततोऽद्विध्विन्तयाविष्टः स्वसुतां प्रशशंस च ।

ततोऽन्तरिक्षे दिव्या तु घागभृद्बुवनत्रये । उमेति चापलं पुत्रि त्वयोक्ता तनया यतः ।

उमेति नाम तेनास्या भुपनेषु भविष्यति । सिद्धिर्भूतिर्मतीत्वेयासाधयिष्यति चिन्तितम्

इति श्रुत्वा तु वचनं स तदाकाशमण्डले । अनुष्ठाय सुतां शैलो जगामाशु स्वमन्दिरम्

पुलस्त्य उवाच ।

शैलजापि ययौ शैलमगम्यमपि दैवतैः । सखीभ्यामनुयाता तु नियता नगराजजा ।

शृङ्गं हिमवतः पुण्यं नानाधातुपिभूषितम् । दिव्यपुष्पलताकीर्णं भ्रमरोद्बुधुष्टपादपम् ।

दिव्यप्रम्रवणोपेतं मनोरथशतोज्ज्वलम् । नानापक्षिसमायुक्तं चक्रपाकोपशोभितम् ।

जलजस्थलजैःपुण्यैः प्रफुल्लैर्यशोभितम् । विश्वकन्दरसङ्गुहां दिव्यगेहसमन्वितम् ।

विहङ्गसङ्घसङ्घुष्टं कल्पपादपसङ्कुटम् । तत्रापश्यन्महाशास्त्रं शास्त्रिनं हरितच्छदम् ।

सर्वतुङ्गसुमोपेतं चक्रपाकोपशोभितम् । नानापुष्पशताकीर्णं नानापिधकलान्वितम् ।

त्यक्तं सूर्यस्य दक्षिभिर्भिन्नसंहतपल्लवम् । तत्राम्बराणि सन्त्यज्य भूपणानि च शैलजा

संवातापदकलैर्दिव्यैर्दर्भनिर्मितमखला । त्रिःस्नाता पाटलाद्वारा यभूप शरदाशतम् ।

शतमेकैर्नर्तनैर्न पर्वेनावर्त्तयत्तदा । निराहारा शरं साऽभूत्समानां तपसोनिधिः ।

ततउद्वेजिताः सर्वे प्राणिनस्तपसोऽग्निना । ततः सस्मार भगवान्मुनीन्सत शतव्रतुः ।

ततः समागम्य मुदिताःसर्वे समुदितास्तथा । पूजितास्ते महेन्द्रेण पद्मस्तुत्यप्रयोजनम्

श्रवय ऊचुः ।

विप्रार्थं हि सुगन्ध संस्मृतास्तु पयं त्यया । शक्रः प्रोवाच शृण्वन्तु भगवन्तःप्रयोजनम्

शक्र उवाच ।

दिमाचले तपो धोरं तप्यते मूधरात्मजा ।

तस्यामिमतयोगेन भवन्तः कर्तुमर्हथ । तपः समापनं देव्या जगदर्थं त्वरान्विताः ।

तथेत्युचया ततः शैलं सिद्धसङ्गतसेवितम् ॥ ३११ ॥

ऊजुरागम्य मुनयस्तामथो मधुराक्षम् । पुत्रिकस्ते व्यर्चासतः कामः कमललोचने ॥

तानुषाच ततो देवी सादरं गौरवान्मुनीन् । ३१३ ॥

देव्युवाच ।

तपस्यन्तो महाभागाः प्रोह्य मौनंमवाहुराम् । बन्धनायनियुक्ताधीर्याचयत्यधिकक्षिप्तम्

सुप्रसन्नमुखा सूर्यं गृहीत्वासनमादितः । उपविष्टाः धर्मं मुक्त्वा ततः प्रक्ष्यथ मामनु

त्युक्तास्ते ततश्चक्रुस्तत्रासनपरिमहम् । साचतान्त्रिधिषत्पूर्वं पूजयित्वा विधानतः ॥

उवाचादित्यसङ्काशान्मुनीन्सप्तश्लोचिः । त्यसवायतात्मकंमौनंनत्याचविधिषन्मुनीन्

भगवन्तोऽपि मौनान्ते तस्याः सत्पर्ययोऽप्यथ ।

गौरवाधारतां प्राप्तां पप्रच्छुस्तां पुनस्तथा ॥ ३१८ ॥

अपि गौरवार्मेण मनसा चारुहासिनी । मुनीन्सत्यांस्तथालोक्य प्रोवाचप्रोह्यदायमम्

भगवन्तो विजानीथ प्राणिनां मनसेप्सितम् । शरीरादिभिरत्यर्थं कर्तव्यंस्ते हि देहिनः

त्रैविशु निपुणास्तत्र घटन्तेविविधोद्यमैः । उपायैर्दुर्लभान्भावाग्राप्नुवन्ति हतन्द्रिताः

रपरे ॥ परिच्छिद्य नानाकारानुपक्रमाद् । देहान्तरार्थं सारम्भमाधयन्ति हि तद्ब्रह्मम् ।

मित्याकाशसम्भूतकुसुममग्निभूयितम् । विन्ध्यभृङ्गं स्वपुष्कामो हस्तः प्रसरते मुहुः

हं किल भवं देवं पतिं प्राप्तुं समुद्यताः । प्रकृत्यैव दुराराध्यं तपस्यन्ते च सम्प्रति ॥

सुरासुरैरनिर्णीतं परमार्थक्रियाधयम् ।

साम्प्रतं चापि निर्दग्धो मदनो धीतरागिणा ॥ ३२५ ॥

कथमाराधयेद्दीशं माहृशी ताहृशं शिवम् ॥ ३२६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

त्युक्ता मुनयस्ते तु स्थिरतां मनसस्ततः । ब्रह्मस्यैव यच्चःप्रोचुः प्रकृमात्रवृत्तार्थकम्

मुनय ऊचुः ।

द्विविधं तु सुखं तावत्पुत्रिलोकेविभाव्यते । शरीरस्यास्य संयोगश्चेतसश्चापिनिर्वृत्तिं

प्रकृत्या तु स दिवासा भीमो भस्मास्थिभूषणः ।

कपाली मिथुको नग्नो विरूपाक्षोऽस्थिरक्रियः ॥ ३२१ ॥

प्रमत्तोऽभ्यस्तकाकारोऽभीमत्सोऽकृतसङ्ग्रहः । पत्या न तेन चास्त्यर्थोऽमूर्तानर्थेनकाङ्क्षि

यदि स्वस्य शरीरस्य सुखमिच्छसि शाश्वतम् ।

तत्कथं ते महादेवाद्भूतमाजो जुगुप्सितात् ॥ ३२२ ॥

अथन्नरवसासास्थिकपालहृन्भूषणात् । भ्रसदुग्रभुजङ्गेन्द्रकृतभूषणभूषितात् ॥ ३२३ ॥

श्मशानवासिनो रौद्रप्रमथानुगतादपि । सुरेन्द्रमुकुटवातनिघृष्टचरणोऽरिहा ॥ ३२४ ॥

हरिस्तजगद्धाता श्रीकान्तोऽनन्तमूर्तिमान् । जप्यो यद्भुजामस्ति तथेन्द्रः पाकशासन

देवतानां निधिश्चास्तिज्वलनस्सर्वकामधुक् । वायुरस्तिजगद्धातायः प्राणस्सर्वदेहिनाम्

तथा वैश्वणो राजा सर्वार्थमहिमाप्रभुः । एभ्य एकतमं कस्मान्न त्वं सम्प्राप्तुमिच्छसि

उत्तान्यस्मादिह प्राप्यं सुखं ते मनसेहितम् । एवमेतत्तथा पुत्रि प्रभायो लोकसम्पदाम्

अस्मिन्देहे परे वापि कल्याणप्राप्तये तव । पितुरेवास्ति ते सर्वसुरेभ्यो यन्निवेदितम् ।

वरस्य प्राप्तयेऽङ्गेशस्सचाप्यत्राफलस्तदः । प्रायेण प्रार्थितो ह्यर्थस्समर्थो ह्यतदुत्तरम् ।

स्वस्थानविनिर्ग्रोहित्वात्पुत्रि तत्रापि लभ्यते ॥ ३४० ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तवत्सु कुपिता मुनिवर्येषु शैलजा । उवाच क्रोधरक्ताक्षी पितृकुरहशन्वया ।

देव्युवाच ।

असदुग्रहस्य का नीतिर्व्यसनस्य क यन्त्रणा । विपरीतार्थबोद्धारः सत्पथे केन योजिता

एवं मां पितृदुष्प्रज्ञामस्यानासदुग्रहप्रियाम् । न मां प्रति विचारोऽस्ति यदहङ्कारमात्रिनो

प्रजापतिसमाः सर्वे भयन्तः सर्वदर्शिनः । न नूनं पितृ तं देवं श्राभ्यर्त जगतः प्रभुम् ॥

भजर्मशानमव्यक्तममेयमहिमोद्दयम् । आस्तांश्चकर्म सद्वायं सम्योचं तावदावृत् ॥ ३४१ ॥

पितुस्तं न इत्थिहमुखा अपि सुरेवयः । यत्तस्य विमयं स्वोत्थं भुषनेषु विदुर्मिह ॥



कृतं सर्वभूतानां तद्व्ययनचित्थकिम् । कस्यैतद्गगनं मूर्तिः कस्याग्निः कस्य मातुः

कस्य भूः कस्य परुषः कश्चन्द्रार्कपिलोचनः ।

कस्यार्चयन्ति लोकेषु लिङ्गं भक्त्या सुरासुराः ॥ ३४८ ॥

प्र प्रहोभरा देवा विष्ण्वन्द्राद्या महर्षयः । प्रभावं प्रभवंचापि तेषामपिनचित्थ किम्

देनेः कस्यपाज्जाता देवा नारायणादयः । मरीचेः कस्यपः पुत्रो ह्यदितिर्दक्षपुत्रिका

विचित्रापि दक्षश्च पुत्री तौ ब्रह्मणः किल । ब्रह्मा हिरण्यमादण्डादेषसिद्धविभूतिकाः

स्य प्रादुरभूदयानात्प्राकृतः प्राकृतांशकः । अयं नारायणेनैव स्वर्कायेकछासमाधयात्

रेरितः प्रयातेष जन्म नारायणात्मकम् । सावि कर्मण एषोक्तः प्रेरणाविबशात्मनाम्

योगमाशविदुष्टस्य मतिरेव हि सा भवेत् । इष्टानैव वदार्थान्वैविपरीतान्हि मन्यते ॥

कस्य इयहातेषु इष्टेषु हसते सदा । धर्माधर्मफलप्राप्तौ विष्णुमेव निषोधत ॥ ३५५ ॥

विद्वत्पमित्यं मुनयोऽसकृच्च मे गिरं गिरीशधुतिभूमिसन्निधौ ।

उत्कृष्टकेशार इषावर्नीतले सुषीजमुष्टिं सुफलाय कर्पकाः ॥ ३५६ ॥

ते तां धृत्वा हि तां रम्यां प्रकमात्प्रकमकियाम् ।

पाचं वाचापतिप्रख्याः प्रोचुब्ध स्मितसुन्दराः ॥ ३५७ ॥

मुनय उचुः ।

। लोकविधानं तु सत्यं तत्कार्यमुत्तमम् । प्रायः प्रालेयशीलस्यशङ्कातःकालकपिणः

मुत्कण्ठिताः सर्वे ये ये कार्यार्थमुद्यताः । तेषांत्वरन्तेचेतांसिक्किन्तुनाममहात्मनाम्

लोकपात्रानुगन्तव्या विशेषेणविबक्षितैः । यतस्तद्वर्मेभ्यस्ते तत्प्रामाण्यं परं धृताः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा मुनयो जग्मुस्त्वरितानुहिनाचलम् । तत्र ते पूजितास्तेन हिमशीलेन सादृशम्

ऊर्जुर्मुनिवराः प्रीताः स्थल्पकं तु त्वरान्विता ॥ ३६२ ॥

मुनय उचुः ।

देवो दुहितरं साक्षात्पिनाकी तव मार्गते । तच्छीघ्रं पावयात्मानमाहुत्येवानलेहुतम् ॥

कार्यं हि तच्च देवानां सुचिरं परिवर्तते । जगदुदारणायैव विधातव्यः समुद्यमः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तस्तु तदा शैलो हर्षविशयशान्मुनोन् । असमर्थाऽमवद्वक्तुमुत्तरं प्रार्थयन्निव  
स्ततो मेता मुनीन्वन्द्य प्रोवाच स्नेहविक्रया । दुहितुस्तान्मुनींश्चैववचनं स्वपमर्षव  
मेनोवाच ।

यदर्थं दुहितुर्जन्म चेच्छन्त्यपि महाफलम् । तदेधोपस्थितं सर्वं प्रक्रमेणैव सप्तप्रत्न  
कुलजन्मपयोरूपपिभुत्सैस्सहितोऽपियः । धरस्तस्यापिनाहूय सुता देया ह्यपावत  
दिग्वासा जटिलः शूली-दाघकामोऽपि कामदः ।

स तु मत्सुतया घोः कथं नाम उपास्यते ॥ ३६६ ॥

मुनय ऊचुः ।

येभ्यर्ममगच्छस्य शङ्करस्य सुरासुराः । आराध्यमानपादाञ्जयुगलाश्च सुनिर्गताः ।  
स्योपयोगि यद्वपं तेन तत्प्रार्थ्यते चिरम् । घोः तपस्यते बाला तेन रूपेण निर्गता ।  
यत्सा मतानि दिव्यानि नयिष्यति समापनम् ।

तदभ्रापहिता तापदस्मास्वेव भविष्यति ॥ ३६७ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा गिरिणा सार्द्धं ययुर्नृवास्त्रि शैलजा ।

जितार्कज्वलनभ्याला तपस्तेजो मयीष्टुमा ॥ ३६८ ॥

प्रोक्ता सा मुनिभिः स्निग्धं मानिष्याह वचोऽर्धवत् ॥ ३६९ ॥

उमोवाच ।

हे क्षुद्रात्फलेच्छामि ऋते शर्घात्पिप्साकिनः । स्थितं च तारतम्येन प्राणिनां परमर्द्धिम्  
रतेभ्यर्पकार्याणि प्रमाणमतुलं महत् । यस्मान्नकिञ्चिदपरं यच्च यस्मात्प्रयतेते ।  
यस्येश्वर्यमनाद्यन्तं तमहं शरणं गता ।

समः सत्यपसायश्च दीर्घेण विपरीतकः ॥ ३७० ॥

निशम्यते पार्श्वं देव्या मुनिवरास्तदा । आनन्दाद्गुपरीताक्षाः सस्यजुस्तातपस्थिरम्  
ऊचुश्च पद्मप्रीताः शैलजां मधुरं वचः ॥ ३७१ ॥

श्रवय ऊचुः ।

अत्यद्भुतमहो पुत्रि ज्ञानमूर्तिरिषामला । प्रसादयसि नो भावं भवभावप्रतिध्रयात् ॥  
तु विप्रो वयं तस्य देवस्यैश्वर्यमद्भुतम् । त्वन्निश्चयस्य दृढतां वेत्तुं वयमिहागताः ॥

अचिरादेष्ट तत्पङ्क्तिं कामस्त्वेष भविष्यति ।

आदित्यस्सप्रभो याति रत्नेभ्यः का युतिः पृथक् ॥ ३८२ ॥

कोऽर्धोषर्णान्स्वकांस्त्यक्त्वा तथा त्वं गिरिशं विना ।

यामोऽनेकाभ्युपायेन तमभ्यर्थयितुं वयम् ॥ ३८३ ॥

स्माकमपि चैवोऽर्थः सुतरां हृदि धर्तते । भतस्त्वमेव सा बुद्धिर्यसो नीतिस्त्वमेव हि

भक्तो निःसंशयं कार्यं शङ्करोऽपि विधास्यति ॥ ३८५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा पूजितास्सर्वे मुनयो गिरिकन्यया ।

प्रययुर्गिरिशं द्रष्टुं प्रस्थं हिमवतो महत् ॥ ३८६ ॥

ज्ञानः ज्ञावितात्मानः पिङ्गाब्जजटासटाः । भृङ्गानुयातपाणिस्थमन्दारकुसुमम्रजः ॥

आप्य तु गिरेः प्रस्थं ददृशुः शङ्कराश्रमम् । प्रशान्ताशेषसत्त्वौघं पर्यस्तमितकाननम् ॥

शब्दसौमसलिलप्रयातं सर्वतो दिशम् । तत्रापस्थस्ततो द्वावि धीरकं वैत्रपाजिनम् ॥

तमेते मुनयः पूज्या विनीताः कार्यगौरवात् । ऊर्ध्वमधुरभावाभिस्ते वाचं धाम्नितां पराः

श्रवय ऊचुः ।

द्रष्टुं वयमिहागताः शङ्करं गुणनायकम् । त्रिलोचनं विज्ञानीहि सुरकार्यप्रचोदिताः ॥

त्वमेव नो गतिस्तत्र यथाकालानतिक्रमः । स्यात्प्रार्थनैवा प्रायेण प्रतीक्षारमयी प्रभो ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तो मुनिभिः सोऽथ गौरवात्तानुवाचह ।

धीरक उवाच ।

स धनस्यापरां सन्ध्यां कर्तुं मन्दाकिनीं गतः ॥ ३९३ ॥

क्षणेन भाषिता विप्रास्ततो द्रक्ष्यथ शूलिनम् ॥ ३९४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता मुनयस्तत्स्थुर्यज्ञात्कार्यविचक्षणाः । गम्भीराम्बुधरं प्रावृद्धपिताश्वतका यथा  
तथा क्षणेन निष्पन्नसमाचारक्रियाविधिम् । धीरासनवृत्तोद्देशं मृगचर्मनियामितम् ।  
ततो घिनीतो जानुभ्यामवलम्ब्य महीं मुदा । उवाच धीरको देवं प्रणयैकसमाश्रयम् ।

धीरक उवाच ।

सम्प्राप्ता मुनयः सप्त द्रष्टुं वां वीक्षतेजसम् । विमो समादिशद्रष्टुं ततो ध्यानमिहाह्वसि  
पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तो धूर्जटिस्तेन धीरकेन महात्मना । धूमङ्गसंज्ञया तेषां प्रवेशाङ्गं वदौ तदा ॥ ३१६ ॥  
मूर्ध्वकम्पेन तान्सप्त धीरकोऽपि महामुनीन् । आजुहाय विदूरस्थान्दर्शनाय पिताकिः  
त्वेरायद्वजटास्ते च लम्बकृष्णाजिनाभराः । विविशुर्वेदिकादिव्यागिरिशस्यविभोस्ततः  
यद्वपाणिपुटाक्षितनाकपुष्पोत्करास्ततः । पिताकिपादयुगलं बन्ध नाकनियामिनः ॥  
ततः स्निग्धेक्षिताः सन्तो मुनयः शूलपाणिना । गिरीशं तु ततो दृष्ट्वा ते समं तुष्टुवर्तुम् ॥

मुनय ऊचुः ।

अहो कृतार्था वयमेव साम्प्रतं सुरेश्वरैर्वन्दितपादपल्लवम् ।

विलोकयामो गुणगौरवार्दिभिः समादिशेः कार्यमशेषरक्षणम् ॥ ४०४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततः प्रहस्य सर्वज्ञ उवाच मुनिसत्तमान् ॥ ४०५ ॥

शङ्कर उवाच ।

भयतो यदृदि गतं कार्यं तत्कुस्ताधुना ॥ ४०६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता मुनयस्तूर्णं ययुर्यत्र च शैलजा । यमापिरे विभागज्ञा गिरिजां गिरिगङ्गे ॥  
ऋषय ऊचुः ।

रम्यं प्रियमनोहारि मा क्यं तपसा बह । प्रीतस्ते शङ्करः पाणिमेष प्रतिप्रदीप्यति ॥  
पितरं पूर्वमागताः । पित्रा सह गृहं गच्छ वयं यामः स्वमन्दिरम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता तपसः सत्यं फलमस्तीति चिन्त्य सा ।

त्वरमाणा ययौ वेश्म पितुर्दिव्यं सुशोभितम् ॥ ४०८ ॥

सा तत्र रजनीं त्रिं वर्षायुतसमां सती । हरदर्शनसंज्ञानसमुत्कण्ठा दिग्गदि ॥

ततो मुहूर्ते प्राहो नु तस्याश्चक्षुः सुदृन्क्रियाम् ।

नागामङ्गलसन्दोहाभ्यधावत्कर्मपूर्वकम् ॥ ४१० ॥

दिव्यमङ्गलसंयोगात्मन्दिरे यद्गुमङ्गले । उपासत गिरि मूर्त्तां श्रुतव सध्वकामिका ॥

वायवः सुखवाक्षासम्संमार्जनविधौ गिरैः । हर्म्येषु श्रीः स्वयं देवा कृतनानाप्रसाधना

कान्तिः सर्वेषु भावेषु श्रद्धिश्च भरणकुला । चिन्तामणिप्रभृतयो रत्नाश्लेषं समस्तत

उपस्थूलताश्चापि कल्पकाद्यामहाद्रुमाः । श्रीवधोर्मनिमन्यश्च दिव्योपधिसमर्पिता

रसाश्च घातवश्चैव सर्वशैलस्य किङ्कराः । किङ्कुरास्तस्य शैलस्य व्यग्राश्चाधमघनिन

नयः समुद्रा निजिलाः स्थावरं जङ्गमं च यत् । न सर्वहिमशैलस्य महिमानमप्यर्जयन् ॥

भगवन्मुनयो नागा यथागन्धर्वकिन्नराः । शङ्करस्यापि विबुधागन्धमादत्तपर्यन्ते ॥

सज्जमण्डनसम्भारास्तस्फुर्निर्मलमूर्त्तयः । शर्वस्याथ जटाजूटे चन्द्रखण्डं पितामह ॥

वयन्ध प्रणयोदारविस्फारितविलोचनः । कमलमाला विपुला वामुण्डा मुनिपञ्चनी

ववाच गिरिषी काली पुत्रं जनय शङ्कर । यो दैत्येन्द्रकुल हत्या मां रक्तमर्पयिष्यति ॥

सौरिष्यतंसिकाररत्नं कण्ठाभरणमुज्ज्वलम् । भुजङ्गाभरणा गृह्य सज्ज शम्भो पुनोऽभयम्

शक्रोगजाजिनं तस्य वसाम्यकाग्रवद्वधम् । दध्रेऽसम्भसन्धिवद्विस्तीर्णमुखद्वजम् ॥

वायवश्चवुस्तीक्ष्णा तीक्ष्णं हिमगिरिप्रभम् ।

द्वयं विभूषयामासुर्हरयानं मनोजघम् ॥ ४२५ ॥

पिरैर्जुनयनान्तस्थाः शम्भोऽसूर्यानलेन्दवः । स्वा द्युति लोकनाथस्य जयत कमंसाक्षिण  
वितामस्मसमायत्त कपाले रजतप्रभम् । मनुजास्थिमयीं मालां नियन्ध च पाजिता  
मेताधिपः पुरे दूरे समकः समवर्तत । नानाकारमहारत्नभूषणधनदाइतम् ॥ ४०८ ॥  
विहायोदीप्तसर्पेन्द्रकण्ठकेन स्वपाणिना । कर्णात्तंसं चकारेशो ह्यमल तक्षकस्ययम् ॥

निष्पन्नाभरणंचैव प्रसाध्येषं प्रसाधनैः । तत्राप्येषां नियमतो ह्यभवन्त्यप्रमूर्तयः ॥  
मुमोचाभिनवान्सर्वरम्यशालिरसौपथीन् । व्यग्रा तु पृथिवी देवो सर्वभावान्तोऽप

गृहीत्वा षष्ठः साक्षाद्ब्रह्माभरणानि च ।

पुष्पाणि च विचित्राणि नानारत्नमयानि ॥ ४३२ ॥

तस्यौ साभरणो देवःसर्वज्ञःसर्वदेहिनाम् । ज्वलनश्चापि दिव्यानिर्हैमान्याभरणानि  
जातरूपविचित्राणि प्रयतः समुपस्थितः । वायुर्वर्षी च सुरभिः सुखसंस्पर्शनोऽभिमुख  
छत्रं चन्द्रकरोहामं हासितं च शतक्रतुः । जग्राह मुदितः धीमान्याहुर्भिव्रंभूषक  
जगुर्गन्धर्वमुष्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः । पादपन्तोऽति मधुरं जगुर्गन्धर्वकिन्तपः  
मुहूर्ताद्गतपस्तत्र जगुश्च ननृतुश्चरैः । चपलाश्च गणास्तस्फुल्लोडयन्तो हिमाचल  
उपविष्टः क्रमाद्धाता विश्वकृद्गगनेत्रहा । चकारौघाद्विकं कृत्यं पत्न्यासह यथोदितम्  
दत्ताप्यौ गिरिराजेन सुरवृन्दैर्धि नोदितः । भवसत्तां क्षपां तत्र पत्न्यासह पुरातनक  
ततो गन्धर्वगीतेन नृत्येनाप्सरसामपि । स्तुतिभिर्द्वैपद्यानां विष्णुद्वौ विष्णुधाधिप

भामन्य हिमशैलेन्द्रं प्रभाते जाययासह ।

जगाम मन्दरगिरिं वायुयेगेन शृङ्गिणा ॥ ४४१ ॥

ततो गते भगवति नीललोहिते सहोमपारतिमनुभूतभूषण ।

सयान्धयो भवति हि कस्यनो मनो विभ्रङ्गलं जगति हि कस्यका विभुः ।

पुरौघानेषु रम्येषु विविक्तेषु धनेषु च । सुरकण्डयोदेव्यापिजहार भगाशिवा ॥ ४४१ ॥

ततो षडुत्तिथे काले पुत्र नाम्ना गिरिःसुता । सखोभिः सहिताफोडां चक्रेह्रिमनुष्यैः ॥ ४४१ ॥

फदाचिद्रन्ध्रतलेन गात्रमभ्यङ्ग्यशीलजा । चूर्णेच्छतंयामास मलेनापूर्तिं तनुम् ॥ ४४१ ॥

तनुवर्त्तनकं गृह्य नरं चक्रे गजाननम् । पुरुषंकीडतीदेवी तत्राप्यक्षिपद्भ्रमति ॥ ४४१ ॥

जाह्नव्या शिषयाऽसक्या ततः सोभूद्वृहत्तनुः । कायेनातिपिरात्नेन जगदपुरापतरा ॥ ४४१ ॥

पुत्रेत्पुष्याच तं देवो पुत्रेत्पुत्रेचब्राह्मणी । गाङ्गेय इतिदेवेस्तु पूजितोऽभूद्ब्रह्मकः ॥ ४४१ ॥

धिनायकाधिपत्यं च वृदापस्य पितामहः । पुनः साकीडतीचक्रे तर्हं च परपरिणी ॥ ४४१ ॥

मनोऽमङ्गुरंरुदमद्योक्तस्य शुमानना । परदयामास तं चापि हतसंस्कारममृतम् ॥ ४४१ ॥

स्वतिमुषेर्विप्रैर्विदस्यतिपुरोहितैः । ततोदेवैः समुनिभिः प्रोक्तादेवी त्विदं वचः ॥

मुनिदेवाञ्जुः ।

ना दर्शितेमार्गे मर्यादां कर्तुमर्हसि । फलं किं भविता देवि कल्पितैस्तदुत्रके ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता ह्यर्पपूर्णाङ्गी प्रोवाचातिशुभांगिरम् ॥ ४५३ ॥

पार्यंत्युवाच ।

निरुद्धके प्राप्ते यः कृपं कारयेद् बुधः । विन्दौ विन्दौ च तौ यस्य स वसेत्पृथ्वरं दिवि

पुंसमा वापी दशपापी समो हवः । दशहृदसमा कन्या दशकन्यासमो ह्रुमः ॥ ४५५ ॥

एषा वै शुभमयांदा नियतालोकभाविनी ॥ ४५६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तास्तु ततो विप्रा बृहस्पतिपुरोगमाः । जग्मुः स्वमन्दिरारण्ये च भवानीव न्यमानरम्

गते पुने पुदेवोऽपि शङ्करः पर्वतात्मजाम् । पाणिना लभ्य पादेन स्वमावाप्तमगच्छत ॥

विश्वप्रसादजननं प्रसादाद्वाङ्मोपुरम् । लम्बमोक्तिकदामानं मालिकाकुलवेदिकम् ॥

मुनदकलपीतं च श्रीङ्गागृहमनोगतम् । प्रकीर्णकुसुमामोदमत्तालिङ्गकुलकृतम् ४६० ॥

केन रोद्रीवसङ्गीतगृहान्तरितमिदम् । सुगन्धिधूपसङ्घातं मनः प्राप्यमलक्षितम् ॥

कीङ्गामयूरनारीभिरभितो रमसार्णितम् । हंससङ्घातसन्दिग्दस्फटिकस्तम्भतोरणम् ॥

मनाविलमसम्भ्रान्त्या बहुशः किन्नराकुलम् । शुक्रैर्यत्राभिदृश्यन्ते पद्मरागविनिर्मिताः ॥

मित्रयो जातिसम्भ्रान्त्या प्रतिविम्बितमौकिकाः ।

तत्राक्षैः प्रियया देवो विहर्तुमुपचक्रमे ॥ ४६४ ॥

वच्छेद्भ्रतीलभूमानो क्रीडन्तो यत्र संस्थितौ । वपुःसहायतां प्राप्तौ विमोदरसनिष्ठौ

चंपकीडतोस्तत्र देवीशङ्करयोस्तदा । प्रादुर्भूतो महाशब्दः पतिताभयरगोचरः ॥

नृत्वा कौतुकादेवो किमेतदिति शङ्करम् । पर्यपृच्छत्सुरवरं हरं विस्मितपूर्वकम् ॥

वाच देवो नैतत्ते दृष्टपूर्वं शुचिस्मिन् । एते गणेशाः क्रीडन्ते शैलेऽस्मिन्मतिप्रयाः सदा

पता प्रहस्येण नामभिः क्षेत्रसेवनेः । येरुहं तापितः पूर्वं त एते मनुजोत्तमाः ॥

मत्समीपमनुप्राप्ता मम हृद्याः शुभानने ।

कामरूपा महोत्साहा महारूपागुणान्विताः ॥ ४३० ॥

कर्मभिर्विस्मयं तेषां प्रयामि बलशालिनाम् । सामरस्यास्य जगतः सृष्टिसंहरणम् ।  
प्रह्वचन्द्रेन्द्रगन्धर्वैस्सकिन्नमहोरगे । विवर्जितोऽप्यहं नित्यं नैमिर्विरहितो जे ।  
हृद्या मे बाह्वस्तर्वाङ्गि त पते क्रीडितागिरौ । इत्युक्तानुतदादेवीत्यक्त्वा तं विस्मयाकुलं

गयाक्षान्तरमासाद्य प्रेक्षते चकितानना ।

यावन्तस्ते कृशा दीर्घा हस्याः स्थूला महोदराः ॥ ४३४ ॥

व्यामेभ्यवदनाः केचित्केचिन्मेवाज्जरूपिणः । भनेकप्राणिरूपाश्चन्धालास्याः कृष्णपिङ्गला  
सौम्या भीमाः स्मितमुखाः कृष्णपिङ्गजटास्सदा । नानाविहङ्गवदनानानाविधमुपतना  
कौशेयचर्मयसना नग्नाश्चान्ये विरूपिणः । गोकर्णा गजकर्णाश्च बहुवनश्रेष्ठजोदराः ।

यहुपादा यहुभुजा दिव्यनानारूपपाणयः ।

भनेककुसुमापीडा नानाव्याकुलभीषणाः ॥ ४३८ ॥

कृतनानायुधधरा नानाकवचभूषणाः । विविधवाहनाकृता दिव्यरूपा विषधराः ॥ ४३९ ॥  
वीणावाद्यजोद्वृष्टा नानास्थानकर्तृकाः । गणेशास्तास्तथा ब्रह्मा देवी प्रोधाश्च शङ्कर

देव्युषाश्च ।

गणेशाः कति सङ्ख्याताः किं नामानः किमात्मकाः ।

एकैकशो मम प्रूहि निष्ठिता ये पृथक्पृथक् ॥ ४८१ ॥

शङ्कर उवाच ।

कोटिकोटिश्च सङ्ख्याता नानाविख्यातपौरुषाः । जगदापूरितं सर्वमेभिर्मोर्मैर्महावतैः ।  
सिद्धक्षेत्रेषु रथ्यासु जीर्णोद्यानेषु वेश्मसु । दानधानां शरीरेषु घालेष्टमन्त्रेषु च ।  
पते विशन्ति मुदिता नानाहारविहारिणः । ऊष्मपाः फेनपाश्चैव धूमपा मधुपायिनः ।

मेघाहारा रुधिरपास्सर्वभक्षा ह्यमोजनाः ।

देवादास्तापसाहारा नानावाद्यरतिप्रियाः ॥ ४८५ ॥

न हि पशुमनन्तर्याम्यन्यन्ते हि गणाः पृथक् ॥ ४८६ ॥



देष्पुषाच ।

गणपमुत्तमासङ्गः गृह्णाहो मुद्रमेवम् । मनः शिनेन चञ्जेन चपलो रजिताननः ॥  
द्विदशोत्पत्तानां च द्वादशमा मधुरावृत्तिः । पाषाणशकटोत्तानकांस्यतालप्रघर्षकः ॥  
सो गणेश्वरो देव किं नामा किञ्चनानुगः । य एव गणगानिषु दत्तकर्णो मुद्रमुद्रुः ॥

शर्प उवाच ।

एव वीरको देवि तद्द मे हृदयप्रियः । नानाध्वंशगुणाधारो गणेश्वरगणार्चितः ॥

देष्पुषाच ।

इयस्य तुलस्याग्नि ममोरकण्डा पुरान्तक ।

कराग्रमीहरो पुत्रं दृष्ट्वाभ्यानन्दशायकम् ॥ ४४१ ॥

शर्प उवाच ।

एव तुलस्नेऽस्तु नयनानन्दकारकः । एवामात्रा कृतार्थो हि वीरकोऽपि तुमध्यमे

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा प्रेम्पामास पित्रयो हर्षजोरतुकाम् ।

वीरकानयनायाशु बुद्धिता भूभूतः सर्वाम् ॥ ४४३ ॥

साऽप्येता त्वरा युक्ता प्रासादादभ्यरक्षुषाः । गणपं गणमध्यस्थं सूर्यकोटिप्रपतनम् ॥

पित्रयोवाच ।

एहि वीरक चापदवाच्यया देर्षी प्रतोषिता ।

त्यामाह्वयति घोरयुक्तस्त्यक्तया पाषाणग्रण्डनम् ॥ ४४५ ॥

देव्याः सर्मापमागच्छद्विजयानुगतः शनैः । प्रासादशिखरोत्पुङ्गुरकाम्बुजनिभद्युतिः ॥

तं दृष्ट्वा प्रस्थितानल्पस्यादुक्षीरपयोधरा ॥ ४४७ ॥

गिरिजोवाच ।

पिष क्षीरमिदं पतस्र द्युतं पिष यथेच्छकम् ॥ ४४८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

उवाच देवी सस्नेहं गिरा मधुरघर्षया ॥ ४४९ ॥

गिरिजोवाच ।

एहि सद्यो हि जातोऽसि मे पुत्रको देवदेवेन दत्तोऽधुना वीरक ।  
 उक्तवत्यङ्ग भाषाय पर्यष्वजतं कपोले चुचुम्यामराप्तन्दिनी ॥ ५०० ॥  
 मूर्ध्न्युपाधाय संमार्ज्य गात्राणि चामूपयामास दिव्यैः स्वयं भूषणैः ।  
 किङ्किणीमेषलानूपुरैः सम्मणिप्रोक्तकेयूरहारैरमूल्यैर्गुणैः ॥ ५०१ ॥  
 कोमलैः पद्मैश्चित्रितभ्रातृभिर्मङ्गलैः कङ्कुणीर्दिव्यमन्त्रोद्भवैः ।  
 तस्य शुद्धैस्ततो भूरिभिश्चाकरोन्मिश्रसिद्धार्थकैरङ्गरक्षाविधिम् ॥ ५०२ ॥  
 पद्ममादाय बोधाच्च कृत्वा कजं मूर्ध्नि गोरोचनापत्रमङ्गोत्तमलैः ।  
 वरस घत्साधुनाक्रीड साह्यं गणैर्यमत्तो यज श्वभ्रवजं शनैः ॥ ५०३ ॥  
 व्यालमालाकुलाः शैलसानुद्रुमा दन्तिभिर्मग्नशाखापरं भङ्गिनः ।  
 जाह्नवीमण्डलभ्रुग्धतोयाकुलं मा विरोधा यदुव्याघ्रजुष्टे घने ॥ ५०४ ॥  
 घटस सङ्ख्येषु दुर्गेषु यद्वीरकपुत्र भावाय तं स्वच्छचित्तो जनः ।  
 प्रार्थितं भक्ष्यमायाति भाषिण्यसौ भाव्यतां सोऽपि निर्वर्त्य सर्वैर्गुणैः ॥ ५०५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तोऽनया वीरको मातरं सस्मयन्नाह लीलावशाविद्वधीः ।  
 एव मात्रा स्वयं मे दृतः कङ्कुणः पत्रकश्चित्रितः पाटलैर्विन्दुभिः ॥ ५०६ ॥  
 चाटपुष्पैरियं मालतीभिः कृता मालिका मे शिरस्याहिता कोमला ।  
 तोपयामीश्वरीमित्ययं सत्वरं चिन्तयित्वाऽमत्रजु बाह्यतः क्रीडनम् ॥ ५०७ ॥  
 स्वैर्गुणैः संयुतो वीरको हर्षितो दक्षिणात्पश्चिमं पश्चिमादुत्तरम् ।  
 उत्तरात्पूर्वमभ्येत्य सकृदा युता प्रेक्षने तं गवाक्षान्तराद्वीरकम् ॥ ५०८ ॥  
 शैलपुत्री यहिः क्रीडितारं जगत्स्नेहतः पुत्रलुब्धायतस्तोऽत्रकः ।  
 मोहमायाति यः स्थलवेत्ता जडो मांसविण्मूत्रसङ्घातदेहोद्बद्धः ॥ ५०९ ॥  
 द्रष्टुमभ्यन्तरं नाकघासेश्वरेष्विन्दुमूर्तिं प्रविष्टेषु कक्षान्तरम् ।  
 पादनान्येधमारोहमाणास्ततां लोकपालास्त्रपूगं मुहूर्त्तापधि ॥ ५१० ॥

सङ्ग एषोऽपि खड्गाकारो निर्मलः हन्तकः कस्य केनाहतो घृत मः ।  
 नोभयेदस्तदण्डेन किंममहे भीममूर्त्यङ्गणेनास्ति हृत्पं गिरौ ॥ ५११ ॥  
 पारा एषोऽस्ति ते नात्रको यध्यते मा वृथा लोकपालानुगास्तिष्ठत ।  
 एषमेवैतदित्यद्भुवंस्ते तदा धीक्ष्य देवानुमं धीरकं रक्षकम् ॥ ५१२ ॥  
 ग्राह देवी घने पर्वते निर्जराध्यग्निशालामुत्ते भूतले भूतपाः ।  
 निर्भराम्भोनिपातेषु नो मञ्जतात्पुष्पजालापनदेषु धामस्यपि ॥ ५१३ ॥  
 प्रोचनानाद्रिकुञ्जपगाहेष्वथो मादतास्फोटसंरक्षणे कामतः ।  
 काञ्चनोत्तुङ्गदृङ्गाधरोदक्षितो हैमरेणूत्करासङ्गपिङ्गुतिः ॥ ५१४ ॥  
 खेवराणां घने चापि रम्ये धर्मो रूपसम्पत्प्रकारो गणो पासितुम् ।  
 मन्दरै कन्दरै चारु पापीनरे कुन्दमन्दारपुष्पप्रपालामुजे ॥ ५१५ ॥  
 सिद्धनारीभिरापीतकृपामृतं चिस्तुतेनैवमात्रैरनुमेषिभिः ।  
 धीरकं शैलपुत्री निमेषान्तरादस्मरत्पुत्रगृध्नुयिनोदार्धिनी ॥ ५१६ ॥  
 सोऽपि तादृक्क्षणायातपुष्पोदयो यो हि जन्मान्तरेऽस्वामत्रापन्नकः ।  
 कोऽतस्तस्य लुप्तिः कथं जायते योऽपि भाषात्रगद्वेषसा संजता ॥ ५१७ ॥  
 कल्पितः प्रेक्षणं दिव्यगीतक्षणं नृस्यलोलैर्गणेशैः प्रवृत्तपक्षम् ।  
 सिद्धनादाकुले गच्छरीले उचलद्रुज्जाले नृदरसान्त्रान्नेक्षणम् ॥ ५१८ ॥  
 कुलनातामालालिकालेक्षणं गृध्रमूले विलोलांमरान्नेक्षणम् ।  
 स्वल्पपट्टे जले पट्टुजाद्वेषणं मानुरट्टे शुभे निष्कलद्रुक्षणम् ॥ ५१९ ॥  
 परिष्कण्डिते पाललीलापिसारी मण्डेशाधिशो देवनामन्दकारी ।  
 निकुञ्जेषु विद्याधरांर्द्रातशालपिनाकीष लान्तापित्यभोः सार्यान् ॥ ५२० ॥  
 कार्ष्ण भुषणे गोभिस्ततो दिनकरे गते । देशान्तरं तदा पञ्चाङ्ग दूरलो पार्ष्णोऽथ ॥  
 मित्रत्वमस्य सुदृढं हृदये द्योतयन्निव ।  
 नित्यमावाधितो विप्रैः धीमान्विजनतः पुनः ॥ ५२२ ॥  
 चतोरसपितुर्मैदर्यकारं पतिष्यतः । जनेष्वेषाम्यवस्येति भूषणे ॥ ५२३ ॥

दिनेनानुगतो भानुः स्वजनं परिपूरयन् । सन्ध्या यद्वाञ्जलिपुटा मुनयोऽमिमुखा रविः  
 याचद्ध्यासते शीघ्रं निवार्योष्णामिमाविताम् ।  
 व्यजृम्भताथ लोकेऽस्मिन्कमाद्रेभावरं तमः ॥ ५२५ ॥  
 कुटिलस्येव हृदये कालुष्यं दूषयन्मनः ।  
 ज्वलत्फणिकणारत्नदीपोद्योतितमिचितिके ॥ ५२६ ॥  
 शयने शशिसङ्घातरत्नवल्लोत्तरच्छदे । नानारत्नद्युतिलसच्छक्वापचिदम्बके ॥ ५२७ ॥  
 रत्नैः किङ्किणिजालेन लसन्मुकाकलापके । कमनोयचलह्रीलावितानाच्छादितान्वरे ॥  
 मन्दरे मन्दसञ्चारं गते गिरिसुतायुतः । तस्यौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः ॥ ५२८ ॥  
 शशिमौलिः सितज्योत्स्नास्फारपूरितगोचरः ।  
 गिरिजाप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः ॥ ५२९ ॥  
 विभाषर्या च समृक्ता यभूषातीव गोमयी । तामुवाच ततो देवः क्राञ्जकेलिकलायुतम्  
 इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिलक्षणे गौरीविवाहवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

### पट्चत्वारिंशोऽध्यायः

कृष्णवर्णायाः पार्वत्याः शङ्करेण विनोदकरणम् ।

शर्व उवाच ।

शरीरे मम सन्वङ्गि सिते भास्यसितद्युतिः । भुजङ्गी वासिता शुभ्रे संश्लिष्टा चन्द्रेण  
 चन्द्रातपेन समृक्ता रुधिराम्बरसंवृता । रजनीवासिते पक्षे द्विदोषं ददासि मे ॥ १ ॥  
 पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकण्ठा पिनाकिनम् । उवाच कोपरकाक्षी भुङ्कुटी विह्वला  
 देव्युवाच ।

स्वरूपेण जनः सर्वो जाह्नवेन परिभूयते । अपश्यमर्थो प्राप्नोति यण्डनं शशिमण्ड-

तपोभिर्दीर्घचरितैर्यात्वां प्रार्थितवत्यहम् । तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदेपदे ॥  
नैवास्मि कुटिला शर्वं विपसा न च धूर्जटे । सविपस्त्वं जगत्स्यातो व्यक्तदोषाकराश्रयः

त्वं हि मुष्णासि दशनान्नेत्रहन्ता भगस्य ॥

आदित्यस्त्वां विज्ञानाति भगवान्द्वादशात्मकः ॥ ७ ॥

मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् ।

यस्त्यं मामास्थ कृष्णेति महाकालोऽसि विधृतः ॥ ८ ॥

पास्याम्यहं परित्यक्तुमारमानं तपसा गिरिम् । जीवन्त्या न मया कृत्यं धूर्तेन परिभूत्या  
कापालिकेनधुद्रेण श्मशाने नित्यवासिना । भूत्याचिल्लिप्तस्वाङ्गेन मातृमध्यस्थचारिणा

पुलस्त्य उवाच ।

निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरंहरः । उवाचानिष्टसम्भ्रान्तः प्रचलेनेन्दुमौलिना ॥

शर्व उवाच ।

मगारमजासि गिरिजे नाहं निन्दापरस्तव । चादूक्तिबुद्ध्या तु मया कृत उन्मादसंधयः

विकल्पः स्वस्थचित्ते तु गिरिजे न मम क्रमात् ।

यद्येवं कुपिता भोरु तत्तवाहं न वै पुनः ॥ १३ ॥

मर्मघादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते । शिरसा प्रणतेनैव रचितस्ते मयाञ्जलिः  
विहीनो ह्यारमानेन निन्दितेनैति विक्रियाम् । असतां तु सतां न श्यान्मर्मस्पृष्टो नरः किल

पुलस्त्य उवाच ।

अनेकैश्चादुभिर्दोषी देवेन प्रतियोधिता । कोपंतीक्ष्वं न त्वयाज सती मर्मणि घटिता ॥

अवष्टब्धमधाच्छिद्यवासः शङ्करपाणिना । विपर्यस्तालका येगाद्वन्तुमैच्छधर्शलजा ॥

तस्या व्रजन्त्याः कोपेन पुनराह पुनस्तकः ॥ १८ ॥

शर्व उवाच ।

सत्यं सर्वैरप्यवैस्तनोपि सदृशं पितुः । हिमाचलस्य शृङ्गस्थमेघजालाकुलं मनः ॥

तथा दुरणगाहोभ्यो गहनो हि तवाशयः । काठिन्यमश्रुसारेभ्यो धनेभ्यो बहुलं गता ॥

कुटिलत्वं निम्नगाभ्यो दुःखेभ्यस्तत्वं हिमादपि ।

सङ्क्रान्तं सर्वमेवैतत्तन्वङ्गि हिमभूषणम् ॥ २१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशंशैलकन्यका । कोपकम्पितमूर्द्धा सा प्रफुरद्दशनच्छदा ।  
उमोवाच ।

स्यात्सर्वदोषदानेन निन्दायां गुणिनो यत्नात् । तवापि दुष्टसम्पर्कतिसङ्क्रान्तं सर्वमेवैतं  
व्यालेभ्योऽनेकजिह्वत्वं भस्मानोऽस्नेहवृत्तिता ।

हृत्कालुष्यं शशाङ्कोत्थं दुर्याधत्वं विपादपि ॥ २४ ॥

किं चात्र बहुनोक्तेन भलं वाचां धमेन ते । श्मशानवासास्त्रिभोस्तस्य नम्रत्वात्तवनप्रप  
निर्घृणत्वं कपालित्वाद्या ते विगता चिरम् ॥ २५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा मन्दिरात्तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा ।

तस्यां व्रजन्त्यां देवेश्यां गणैः किलकिलाहता ॥ २६ ॥

कमातर्गच्छसीत्युक्त्वा खड्गिर्धाबितं पुनः । विष्टम्य चरणौ देव्या धीरको धाम्परा  
प्रोधाचमातः किन्धेतत्कयासिकुपितानुरा । अहं त्वामनुयास्यामि व्रजन्तीस्नेहवृत्तिता  
न चेत्यतिष्ये शिखराद्गिरेशस्य त्वयोक्तिभक्तः । उग्रम्य घृणं देवी दक्षिणेन तु पाणि  
उवाच धीरकं माता त्वं शोकं पुत्र मा कृथाः । शैलाम्रात्यतिनुं नैव न च गन्तुं मया

युक्तं ते पुत्र गच्छामि येन कार्येण तच्छृणु ।

कृष्णेत्युक्ता हरेणाहं स्तम्भितास्मयमानिता ॥ २९ ॥

साऽहंतपःकरिष्यामियेन गोरीत्यमाप्नुयाम् । पप खीलम्पटोदेयो यातायांमप्यनन्त  
द्वाररक्षात्वयाकार्यानिर्त्यग्न्धान्ववेक्षणम् । यथा न काचित्प्रविशेद्योषितत्र हरान्ति  
परस्त्रियं चापि धदेया मम पुत्रक । शीघ्रमेव करिष्यामि यथा युक्तमनन्तरम्

पुलस्त्य उवाच ।

इत्यपि देवेशी धीरकोवाच साम्प्रतम् । मानुराज्ञा मृताहारगुणविताज्ञो गतम्  
रक्षां स द्रष्टुं प्रणिपत्यतु मातरम् । देवी चापश्यदायान्तीं सखीं मानुर्विभूषिताम्

सुमामोदिनी नाम तस्य शैलस्य देवताम् । सापि दृष्ट्वा गिरिसुतां स्नेहविक्रयमानसा  
क पुत्रि गच्छसीत्युच्चैरालिङ्गयोवाच देवता ।

सा तस्याः सर्वमाचक्ष्यौ शङ्करात्कोपकारणम् ॥ ३८ ॥

पुनश्चोवाच गिरिजा देवतां मातृसंमिताम् ॥ ३९ ॥

उवाच ।

नेत्यं शैलाधिराजस्य देवता त्वमनिन्दिते । सर्वतः सन्निधानं ते मनसाऽतीववत्सला  
तस्तु ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं त्वयाम्बिके । अन्यस्त्रीसम्प्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यः प्रयत्नतः  
रहस्ये प्रयत्नेन निषेध्यः सततं गिरौ । पिनाकिनः प्रविष्टायां यकव्यं मे त्वयाऽनये  
ततोऽहं संचिधास्यामि यत्क्षमं तदनन्तरम् ॥ ४२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

त्युक्तातां तथेत्युक्त्वा जगाम सा गिरिं शुभा । उमापि पितृव्यार्न जगामाद्रिसुतादुतम्  
त्तरिष्टं समाविश्य मेघमालापिलप्रभम् । भूषणानि ततो न्यस्य वृक्षबल्कलधारिणी ॥

श्रीम्ने पञ्चाग्निसन्तता वर्षासु च जलोपिता ।

वन्याहारा निराहारा शुष्कस्थण्डिलशायिनी ॥ ४५ ॥

एवं साधयती तत्र तपः सा च व्ययस्थिता । ज्ञात्वा गतां गिरिसुतां दैत्यस्तत्रान्तरेयली  
अन्धकस्य सुतोदृष्टः पितुर्वधमनुस्मरन् ।

देवान्सर्षान्विजित्वाजी वक्रभ्राता रणोत्कटः ॥ ४७ ॥

आदिर्नामान्तप्येक्षी सततं चन्द्रमौलिनः । आजगामामररिपुः पुरं त्रिपुररतिनः ॥ ४८ ॥  
स तत्रागत्य दृष्टो धीरकं द्वार्यवस्थितम् । विविक्ष्य सोऽपि च परं दत्तं कमलयोनिना  
इते किलान्धके दैत्ये गिरिदोनासुरद्विपा । आदिभ्रकार विपुलं तपः परमदारुणम् ॥

समागत्याप्रवीद्वह्ना तपसा परितोपितः । किमादे दानवधेष्टे तपसा प्राप्नुमिच्छसि  
प्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे ॥ ५२ ॥

प्रह्णोवाच ।

जातानामिह संसारे चिन्ता मृत्युं न युज्यते ।

यतस्ततोऽपि दैत्यैर्न मृत्युः प्राप्यशरीरिमिः ॥ ५३ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युको दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाम्बुजसम्भवम् ॥ ५४ ॥

आदिरुवाच ।

रूपस्य परिवर्तते मे यदास्यात्पद्मसम्भव । तदामृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमतोऽस्म्यहम्

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तस्तु तथोवाच तुष्टः कमलसम्भवः । यदाद्वितीयो रूपस्य विवर्तस्ते भविष्यति  
तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति । इत्युकोऽमरतां मेते दैत्यसुनुर्महाबल

तस्मिन्काले त्वसंस्मृत्य तद्वधोपायमात्मनः ।

प्रतिहर्तुं द्वेष्टिपथे धीरकस्याभवंस्तदा ॥ ५८ ॥

भुजङ्गरूपी रन्ध्रेण प्रविशेश दूराः पथम् । पण्डित्य गणेशस्य दानवो रौद्रदुर्जयः ॥ ५५ ॥

अलक्षितो गणेशेन प्रविश्याथ परांतनुम् । भुजङ्गरूपं सन्त्यज्य जमाहाय महासुप्त

उमाकूपं रमयितुं गिरिशं मूढचेतनः । कृत्वा मायामयं रूपमप्रतर्क्य मनोहरम् ॥ ५६ ॥

सर्वैरवयवैः पूर्णं सर्वाभिज्ञानवृद्धितम् । कृत्वा भगान्तरे वस्ते दैत्यो घञ्जमयं दृढम्

तीक्ष्णाम्रं पुष्टिमोहेन गिरिशं हन्तुमुद्यतः । कृत्वा उमाकूपसंस्थानं गतो दैत्यो ह्यतिव

पापो रम्याकृतिश्चिबभूवनाम्बरसंयुतः । तं दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तमालिङ्ग्य महासुप्त

मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरेः । अपृच्छत्साधुमार्यं ते गिरिपुत्रि न हन्निमम

या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह परर्षाणिनी । त्वया विरहितं शून्यं मम स्थानं जगत्त्र

प्राप्ता प्रसन्नपदने युक्तमेवंचिद्यं त्वयि । इत्युको दानवेन्द्रस्तु तं वभाषे स्मयप्रयुतैः ॥

स चाबुध्यदमिमानैः प्राह त्रिपुरघातिनम् ॥ ६८ ॥

दैत्य उवाच ।

तपसः कामाद्वरं लब्धुं हिमाचलम् । रतिश्चतय मे नाभूत्ततः प्राप्ता त्वदन्तिकम्

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तः शङ्कः शङ्कां चित्ते प्राप्तां विचारयन् ।



हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननः ॥ ७० ॥

रूपिता कुपितं बुद्ध्या प्रहृत्या ॥ हृदयता । अप्राप्तकामा संप्राप्ता किमेतत्संचिजानती  
ति चिन्त्य हरस्तस्या भूमिदानं विचारयन् । नापश्यद्वामपार्श्वे तु तदङ्गं पद्मलक्षणम्  
शेणामाचर्तारचितं ततो देवः पिनाकधृत् । बुद्ध्यातां दानवीं मायामाकारंगूहयंस्ततः  
देहद्रष्टास्मादाय दानचं समसादयत् । न चाबुध्यत तद्वृत्तं धीरको द्वाररक्षकः ॥ ७४ ॥  
सुमामोदिनं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानयेस्वरम् । दूतेन मास्तेनाशु बोधिता हिमशैलजा ॥ ७५ ॥  
तुत्वा वायुमुखादेयी क्रोधरक्ता बिलक्षणा । अपश्यद्भीरकं पुत्रं हृदयेनैव दूयता ॥ ७६ ॥

देव्युवाच ।

मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वं स्नेहबिह्वलम् ।

विहितायसरः स्त्रीणां शङ्करस्य रहोविधौ ॥ ७७ ॥

ज्ज्वाले मानुषे कक्षा जडा हृदयवर्जिता । गणेशाकारसदृशी शिलामाता भविष्यति ॥  
निमित्त एष विख्यातो धीरकस्य सुतादरात् । सम्भवैवक्रमेणैव विबिचाराण्या न संशयः  
पुलस्त्य उवाच ।

एवमुत्सृष्टापायां निरिषुभ्यामनन्तरम् । निर्जगाम मुखात्क्रोधः सिंहकपी महाबलः ॥  
स तु सिंहः करालास्यः सटाजटिलकन्धरः । ऊर्ध्वप्रोद्भूतलाङ्गूलो वंप्रोत्कटमुवाचतः  
व्यादितास्यो लम्बजिह्वः क्षामः कुक्षिवलाविपु ।  
भस्यास्ये वर्तितुं देवी व्यवस्थितवती तदा ॥ ८२ ॥

इत्या मनोगतं तस्या भगवांश्चतुराननः । आजगामाश्रमपदं सम्पदामाश्रयं यतः ॥  
भागम्योवाच देवेशो गिरिजां स्पृष्ट्वा गिरा ॥ ८३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

किं पुनः शत्रुकामासि किमलभ्यं ददामि ते ।

धिरम्यतामतिक्लेशात्तपसोऽस्मान्मदाश्रया ॥ ८४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तच्छुत्वोवाच गिरिजामुरोगीरयन्निवृत्तम् । धारयं वान्ना हरोद्गीर्णवर्णनिर्गमयाम्बुत्तम्

। देव्युवाच ।

तपसा दुष्करेणातः पतिर्वै शङ्करो मया । स मां श्यामलवर्णंति बहुशः प्रोक्त्वा ब्रह्म ॥ ८१ ॥  
तस्मादहं काञ्चनाभवर्णा तन्नामसंयुता । भर्तुर्भूतपतेरङ्गमेकतो निर्विषं भवेत् ॥ ८२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच जगदीश्वरः ॥ ८८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं भवत्यं भूयश्च भर्तुर्देहाद्वैचारिणी ॥ ८९ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततस्तस्याज तां कृष्णां कुल्लनीलोत्पलवचम् ।

त्यक्त्वा साप्यभयद्वीमा घण्टाहस्ता त्रिलोचना ॥ ९० ॥

नानाभरणसम्पूर्णा पीतकीशेयधारिणी । तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विष्णु ।  
ब्रह्मोवाच ।

निदो भूधरजादेहसम्पर्कात्त्वं मदाग्रया । सम्प्राप्ता कृतकृत्यत्यमेकानंशा पुरोह्यसि ॥ ९१ ॥  
य एषसिंहः प्रोदुभूतो देव्याः क्रोधाद्वरानने । सतेऽस्तु बाहनं देवि केतो चास्तु महाबल  
गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि । पञ्चालो नाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदमुप  
दत्तस्ते किङ्करो देवि मया मायाशतैर्युतः ॥ ९४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एतुका कौशिकी देवी विन्ध्यशीलं जगाम ह ।

उमाऽपि प्राप्तसङ्कल्पा जगाम निगिशान्तिकम् ॥ ९५ ॥

प्रविराजतीं तु तां द्वारादपहत्य समाहितः । दरोध धीरको देवीं हेमवेत्रलताधर ।  
तामुवाच च कोपेन रूपे ॥ ध्यमिचारिणीम् ॥ ९६ ॥

धोरक उवाच ।

प्रयोजनं न तेऽप्राप्ति गच्छ यावन्न भक्ष्यसे । देव्या रूपधरो दैत्यो देवं पञ्चिनुमागच्छ  
च द्रष्टुंऽर्हो स च देवेनधातितः । धातिते चाहमाजतो मीलकण्ठेनकोपिना

द्वारे त्वनवधानं ते यस्मात्प्रश्यामि वै ततः । भविष्यसि न तं द्वाःस्थो धर्मपूगाननेकशः

अतस्ते नात्र दास्यामि प्रवेशं गम्यतां द्रुतम् ।

एकां मुक्त्या गिरिसुतां मातरं स्नेहवत्सलाम् ।

प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने ॥ १०० ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एतुका तु तदा देवी चिन्तयामास चेतसा । नारी नैव स दैतेयो वायुर्मे यामभाषत ॥

वृषेय धीरकशतो मया क्रोधपरीतया । भकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमन्वितैः ॥

क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां ध्रियम् ।

अपरिच्छिन्नतत्त्वार्थां पुत्रं शापितवत्यहम् ॥ १०३ ॥

विपरीतार्थयुद्धीनां सुलभो विपदागमः । सञ्चिन्त्यैवमुवाचेदं धीरकं प्रति शैलजा ।

सज्जलज्जाधिकारेण वदनेनाम्बुजस्थिषा ॥ १०४ ॥

देव्युवाच ।

धर्हं धीरक ते माता न तेऽस्तु मनसो भ्रमः । शङ्करस्यास्मिदयिता सुता तुहिनभूभूतः

ममगात्रच्छविभ्रान्त्या मातङ्गुं पुत्रं धारय । तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना ॥

मया शतोऽस्यचिदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते । ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शङ्करे रहसि स्थिते

न निवर्तयितुं शक्यः शापः किन्तु प्रवीमि ते । शीघ्रमेप्यसिमानुप्यात्सर्वकामसमन्वितः

पुलस्त्य उवाच ।

शिरसा तु ततो वन्द्य मातरं पूर्णमानसः । उवाच साध्वीं पूर्णन्दुद्युतिं तुहिनशैलजाम् ॥

धीरक उवाच ।

नतसुरासुरमौलिलसन्मणिप्रवरकान्तिकरालिनशाद्गिरिके ।

नगसुते शरणागतपत्सले तथं नमोऽयनवार्तिचिनाशिनि ॥ ११० ॥

तपनमण्डलमण्डितकन्धरे पृथुसुवर्णनगद्युतिहारिके ।

विपममङ्गधिपङ्गमभीषितो गिरिसुते भवतीमहमाश्रये ॥ १११ ॥

जगति का प्रणताभिमतं ददौ ऋदिति सिद्धिमृते भवती यथा ।

जगतीकां प्रणमेच्छशिरोधरो भुवनभृन्भुवनयो भवती यथा ॥ ११२ ॥  
 विमलयोगविनिर्मितदुर्जये सुतनुतुल्यमहेभ्वरमण्डली ।  
 विदलितान्धकवान्धघसंहतिः सुरधरेः प्रथमं त्वमभिष्टुता ॥ ११३ ॥  
 सितसटापटलोद्धतकन्धरा भवमहामृगराजरस्यलिता ।  
 विमलशक्तिमुखानलपिङ्गलायसभुजौघनिपिष्टमहासुरा ॥ ११४ ॥  
 निगदिता भुवनैरतिचण्डिका जननिशुम्भनिशुम्भनिपूषिनी ।  
 प्रणतबिन्तितदाभवदानवप्रशमनैकरतिस्तरसा भुवि ॥ ११५ ॥  
 वियति वायुपथे उल्लसन्कुलेऽघनितले तव देवि च तद्वपुः ।  
 तद्वजिते प्रतिमे प्रणमाम्यहं भुवनमाविनि ते भवबलभे ॥ ११६ ॥  
 जलधयो ललितोद्धतवीचयो हुतयहो द्युतिदग्धचराचरः ।  
 फणसहस्रभृत्तत्र भुजङ्गमास्त्वमभिधास्यसि मामभयङ्कुरा ॥ ११७ ॥  
 भगवति स्थिरभक्तजनाश्रये प्रतिगतो भवती चरणाश्रयम् ।  
 करणजातिमहास्तु ममाद्य वै तव विलासमुखानुभवास्पदम् ॥ ११८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

सुप्रसन्ना ततो देवी धीरकस्येति संस्तुता । प्रविशेश शुभं भर्तुर्भयनं भूधरात्  
 द्वास्त्वयोऽपि धीरको देवान्दरदर्शनकाङ्क्षिणः । व्यसज्यतस्त्वकानेय गृहानादत्पूर्व-  
 नास्त्यत्रापसरो देवा देव्या सह धृषाकपिः । निभृतः कीडतीत्युक्ताय युस्तेवयथागम  
 गते चर्पसहस्रे तु देवास्त्वरितमानसाः ।

उत्थलनं चोदयामासुर्भ्रातुं शङ्करचेष्टितम् ॥ १२२ ॥

प्रविश्य पक्षिरन्ध्रेण शुक रूपो हुताशनः । ददर्श शयने सर्वं रतौ गिरिजया सह ॥ १२१ ॥  
 ददर्श तं च देवेशो हुताशांशुकरूपिणम् । तमुवाच महादेवः किञ्चित्कोपसमन्विष्टः ।

शर्व उवाच ।

निषिद्धमर्घं देव्यां मे धीर्यं च शुकचिप्रह । लज्जया विरतिभ्यास्य त्वमेधं पिव पावक  
 यस्मात् तु त्यक्त्यते विघ्नं तस्मात्स्वप्युपपद्यते ॥ १२६ ॥

पुनस्त्य उपाय ।

एतुः प्रात्रन्तरिद्विरपिच्छोऽयमाहितम् । तेनाप्नुनास्ततो देवास्तान्मुक्ता भूभयो यतः ॥  
विषादय जट्टरं तेषां रीर्यं माहेभ्वरं ततः । निष्कान्तं तत्तदेमामं चितने शङ्कराधमे ॥  
कर्मन्तरोमहाजातं विमलं यदुपोजनम् । प्रांतुदुदहेमकमलं नानाविहगनादितम् ॥

तच्छ्रुत्वा तु सरो देवी जातं हेममहामुजम् ।

जगाम कान्तुकाविष्टा तत्सदःकनकामुजम् ॥ १३० ॥

तत्र हृत्पा जलप्रीडां तद्वज्रहतादोषरा । उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सर्वावृता ॥  
पानुकामा च तत्तोयं स्थापुनिर्मलपटुजम् । अवश्यतृप्तिकास्तास्तपडर्कघृतिसन्निभाः  
पद्मपत्रेनुत्पारिगृहीत्पामलितागृहम् । हर्षात्सोपाचपास्यामि पद्मपत्रेक्षितं पयः ॥ १३३ ॥

ततस्ता ऊचुरगिष्टाः कृत्तिका हिमशीलजाम् ॥ १३४ ॥

कृत्तिका ऊचुः ।

दास्यामो दपितं गर्भं सम्भूतो यो भविष्यति ।

सोऽस्माकमपि पुत्रः स्यादस्मात्प्राता च वृत्तिमान् ।

त्रिषु लोकेषु पिब्यातः सर्वेष्वपि शुभानने ॥ १३५ ॥

पुनस्त्य उपाय ।

एतुकोपाय गिरिजा कथं मनुगात्रसम्भवेः । सर्वेष्वयवैर्युक्तो भवतीभ्यः सुतो भवेत्  
कृत्ता कृत्तिका ऊचुर्यिधास्यामोऽस्य वै ययम् । उत्तमान्युत्तमाङ्गनिययेधनुभविष्यति  
यका वै शीलजा प्राह भवत्प्रेषमनिन्दिताः । ततस्तुहर्षसम्पूर्णाः पद्मपत्रेक्षितं पयः  
तस्यै वदुस्तया चापि तत्पीतं क्रमशो जलम् ॥ १३८ ॥

पीते तु सलिले चैव तस्मिन्नेव क्षणे वरः । विषादय देव्याश्चतस्रो दक्षिणं कुक्षिमुद्गतः  
निश्चकामादुतो यालो रोगशोकविनाशनः । प्रमाकरकरवातप्रकारप्रकण्ठभुः ॥ १४० ॥  
गृहीतनिर्मलीवप्रशक्तिशूलाद्बुधोऽनलः । दीप्तो मारयितुं देत्यानुत्थितः कनकच्छविः

पतस्मात्कारणादेव कुमारश्चापि सोऽभयत् ।

वामं विदार्य निष्कान्तस्ततो देव्याः पुनः शिशुः ॥ १४२ ॥

स्कन्दोऽथवदनाद्ब्रह्मेः शुभ्रात्पद्मवदनोऽरिहा । रुत्तिकासलिलादेवशास्त्राभिः सविशेक

शाखाः शिवाः समाख्याताः पद्मसु वक्त्रेषु विस्तृताः ।

यतस्ततो विशाखोऽसौ ख्यातो लोकेषु वण्मुखः ॥ १४४ ॥

स्कन्दो विशाखः पद्मवक्त्रः कार्तिकेयश्च विभ्रुतः । पक्षे चैत्रस्य बहुले पञ्चदश्यामहावर्कं  
सम्भूतावर्कसदृशौ विशाले शरफानने । सिते पक्षे तु पञ्चम्यां तथैतौ पावकाननी ।  
घालकाभ्यां चकारैकं सन्ध्यायामेव भूतये । तस्यामेव ततः पष्ठ्यामभिषिको गृहः प्रभु  
सर्वैरमरसङ्घातैर्ब्रह्मोपेन्द्रेन्द्रभास्करैः । गन्धमाल्यैः शुभैर्धूपैस्तथाकीडनकैरपि ॥ १४८ ॥  
छत्रैश्चामरजालैश्च भूषणैश्च विलेपनैः । ममिषिको विधानेन यथावत्पण्मुखः प्रभुः ।  
सुतामस्मै ददौ शक्रो देवसेनेति विभ्रुताम् । पत्न्ययं देवदेवेशो ददौ विष्णुस्थापुषे  
यक्षाणां दशलक्षानि ददावस्य घनाधिपः । ददौ श्रुताशनस्तेजो ददौ वायुश्च वाहनम् ।  
ददौ कीडनकं त्यष्टा कुक्कुटं कामरूपिणम् । एवं सुरास्तु ते सर्वे परिवारमनन्तम् ॥

दुर्मुदितचेतस्काः स्कन्दायादित्यवर्चसे ।

जानुभ्यामघनौ स्थित्वा सुरसङ्घास्तमस्तु वन ॥ १५३ ॥

स्तोत्रेणानेन परदं वण्मुखं मुख्यशः सुराः ॥ १५४ ॥

देवा ऊचुः ।

नमः कुमाराय महाप्रभाय स्कन्दाय चास्फन्दितदानवाय ।

नपार्कविभ्याप्रतिमप्रभाय नमोऽस्तु गुहाय गुहाय तुभ्यम् ॥ १५५ ॥

नमोऽस्तु ते लोकभयापहाय नमोऽस्तु ते लोकहृषापराय ।

नमो विशालामललोचनाय नमो विशाखाय महाप्रताय ॥ १५६ ॥

नमो नमस्तेऽस्तु रणोत्कटाय नमो मयूरोज्ज्वलवाहनाय ।

नमोऽस्तु फेयूरधराय तुभ्यं नमो धृतोदप्रपताकिने ते ॥ १५७ ॥

नमः प्रभाषप्रणताय तेऽस्तु नमोऽस्तु घण्टाधरधैर्यशालिने ॥ १५८ ॥

कुमार उवाच ।

कं पः कामं प्रयच्छामि भवन्तो मूढ निर्गुताः ।

यद्यप्यसाध्यं कृत्यं नो हृदये चिन्तितं चिरम् ॥ १५६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

उकास्तु सुरास्तेन प्रोक्तुः प्रणतमौलयः । सर्वपथ महात्मानं गुहं मुदिमानसाः ॥  
देवा ऊचुः ।

दैत्येन्द्रस्तारको नाम सर्पामरकुलान्तकृत् । यलवान्दुर्जयस्तीक्ष्णो दुराचारोऽतिकोपनः  
एवैव अदि दुर्धनं दैत्यं सर्वविनाशनम् । उपस्थितः कृत्यशेषो हास्माकं च भयापहः ॥  
हिरण्यकशिपुश्चोदो ह्यप्यो देवतामणौ । यज्ञज्ञ पापकर्मा च येन ब्रह्मापि तापितः ॥  
एतौ हरस्व भद्रं ते तावकं च महायलम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

यमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सर्पामरपशुनः । जगाम जगतां नाथः स्तूयमानोऽमरेश्वरैः ॥  
तारकस्य वधार्थाय जगतां कण्टकस्य च । ततश्च प्रेषयामास शक्रो लम्बसमाश्रयः ॥  
दूतं दानवसिंहस्य परुषाक्षरधादिनम् ॥ १६५ ॥  
स तु गत्वाऽग्रथां दैत्यमभयो भीमदर्शनम् ॥ १६६ ॥

दूत उवाच ।

शक्रस्तस्माद् देवशो दैत्यकेतुं दिवस्पतिः । तारकासुरं तच्छक्त्या घटयस्य यथेष्टतया  
यज्ञगजज्वलमोहीतं किद्विषं च रक्षया कृतम् ।  
तस्याहं सावकस्तेऽद्य राजाऽस्मि भुवनत्रये ॥ १६८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

भुत्वैतद्वृत्तं वाक्यं कोपसंरक्तलोचनः । उवाच दूतं दुष्टात्मा नष्टप्रायविभूतिकः ॥ १६९ ॥  
तारक उवाच ।  
इदं ते पौरुषं शक्र शतशोऽद्य महारणे । निस्त्रयपत्मान् ते शान्तिर्विद्यते शक्र दुर्मते ॥

पुलस्त्य उवाच ।

यमुक्ते गते दूते चिन्तयामास दानवः । नालम्बसंश्रयश्शक्रो धक्तुमेवमिहार्हति ॥ १७१ ॥  
जातः स्कन्दोऽधुना शर्वाज्जायते समुपाश्रयः ।





तारक उवाच ।

प्रपाकरं भवेन्महां बलादस्मात्पलायनम् । यद्यहं हन्तुं ये यामि सोऽपि वै कमलाधितः ॥  
इत्वाऽहं बालकं चैनं दुस्स्पर्शः स्वयमकारणम् । यात धावत गृहीत योजयध्वं परधुनीम्

पुलस्त्य उवाच ।

कुमारं तारको दृष्ट्वा बभाषे भीषणाकृतिः ॥ १६१ ॥

तारक उवाच ।

किं बाल योऽनुकामोऽसि क्रोड कन्दुकलीलया ।

यैरसि त्वं विसृष्टोऽत्र सङ्गरे ते हि भीरवः ॥ १६२ ॥

बालवद्वध ते बुद्धिरेषं स्वल्पार्थदर्शिनी । कुमारोऽपि तमप्रस्थं बभाषे हर्षयत्तमम् ॥

कुमार उवाच ।

शृणु तारकास्त्रार्थं इह नैव निरूप्यते । शस्त्रैरर्था न दृश्यन्ते समरे निर्भरं भये ॥ १६३ ॥

शिगुरर्थं माघमंस्थामेशिशुः कष्टो भुजङ्गमः । दुष्प्रेक्षो भास्करो बालस्तथाहं दुर्गन्धः शिगुः

अल्पाक्षरो न मन्त्रः किं सस्फुरो दैत्य दृश्यते ॥ १६४ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

कुमारे प्रोक्तवत्येषं दैत्यबन्धिश्रेष्ठ मुद्वहम् । कुमारस्तं तु विच्छेद बभूवामोऽपचरंता ॥

तत्रबन्धिश्रेष्ठ दैत्येन्द्रो मिन्दिपालमयोमयम् । करेण तं च जग्राह कार्तिकेयोऽमरादिहा ॥

यदा मुमोच दैत्याय समुत्थाय सरस्वनम् । तथा हतस्ततोऽद्वैतध्वजोऽपलराट्पि ॥

मेने च दुर्गन्धं दैत्यस्तदा बालं मुदुःखम् । चिन्तयामास पुन्ययाये प्राप्ता कालो नमस्तदा ॥

वर्णितं च समालोक्य कालनेमि पुरोगमाः । सर्वे दैत्येभ्यश्च जघ्नुः कुमारं रणराजम् ॥

स तेऽप्रहारेऽस्पृष्टस्तथा क्रोशं महापुतिः । स बालो बलिभिर्वैरीषु भयदानये रवे ॥ २०१ ॥

रणयोगडाभ्य दैत्येन्द्राः पुनर्गन्धुः शिलीमुखैः । कुमारं समरे दैत्या बलिनां देवकण्ठजः ॥

कुमारस्य प्यथा नाभूद्वैत्यास्त्रनिहतस्य तु । प्रापान्तकरणं जानं देवानां रत्नपादयम् ॥

देवाधिप्रीडितान्द्रुहा कुमारः कोपमापिशम् ।

ततोऽरुचैर्दारयामास दन्तापातमनांकिनम् ॥ २०४ ॥



## सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

श्रीनृसिंहावतारवर्णनम् ।

भीष्म उवाच ।

नी धोतुमिच्छामि हिरण्यकशिपोर्यघम् । नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम्

पुलस्त्य उवाच ।

पुण ह्यतपुते राजन्हिरण्यकशिपुः प्रभुः । दैत्यानामाक्षिपुल्यश्चकार सुमहत्तपः ॥ २ ॥

दश पर्यसहस्राणि दशपर्यंशतानि च । जलघासी समभवत्स्नानमौनधृतप्रतः ॥ ३ ॥

वृत्तः शमदमारुपां च प्रह्वचर्येण चैव हि । प्रह्वा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥

ततः स्वयम्भूर्भगवान्स्वयमागत्य तत्र हि । विमानेनाकवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥ ५ ॥

प्रादित्यैर्यसुभिः सार्धैर्मरुद्भिर्दिवतेस्सह । रुद्रैर्यस्यसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ॥ ६ ॥

प्राग्भिश्चैव चिदिग्भिश्च नदीभिः सागरेस्तथा । नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेवरैश्च महाप्रहैः ॥

दैवैर्ब्रह्मर्षिभिः सादं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा । राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसांगणैः

चराचरगुहः श्रीमान्बृहः सर्वैर्दिवीकसैः । ब्रह्मा ब्रह्मविदो धेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥

ब्रह्मोवाच ।

प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसज्जेन सुमत । वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ १० ॥

हिरण्यकशिपुर्वाच ।

न देवा सुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः । न मानुषाः विशाखाश्च हन्युमी देवसत्तम ॥

मृत्यो मानवाः शापैर्नरपेयुः पितामह । यदि मे भगवान्प्रीतो वर एव वृत्तो मया ॥

न शास्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ।

न शुष्केण न चार्द्धेण न स्याच्चान्येन मे वधः ॥ १३ ॥

भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्ह्यतारुणः । सलिलं चान्तर्लिप्तं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥

अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ।

धनदध घनाभ्यक्षो यक्षः किम्पुण्याधिपः ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एष दिव्यो परस्तात मया दत्तस्तवाद्भुतः । सर्वैकामप्रदो घत्स प्राप्त्यसि त्वं न ।

पुलस्त्य उवाच ।

एषमुक्त्वा स भगवाञ्जगामाकाशमेव हि । वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवि

ततो देवाश्च गन्धर्वा अविमिः सह चारणाः । वस्त्रदानं धुत्वेयं पितामहमुत्तिष्ठ

देवा ऊचुः ।

पद्मदानाद्भगवन्पथिष्यति स नोऽसुतः । तत्प्रसादध्वं भगवान्वचोऽप्यस्यविविधं

पुलस्त्य उवाच ।

भगवान्सर्वभूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः । दद्याच्च हव्यकम्पानामभ्यर्च्यकृतिः न

सर्वलोकाहितं धारयं धुत्वा देवः प्रजापतिः । भाभ्यासयामास तदा द्युर्गादेर्वचनम्

ब्रह्मोवाच ।

मयदयं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं ततः पलम् ।

तत्सोऽन्तेऽस्य भगवान्वचं विष्णुः कल्पयति ॥ २२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

तत्पुत्रा विदुषां वाक्यं सर्वं पटुब्रजाननात् ।

स्वानि स्वानानि दिव्यानि विप्र आमुमुक्षुर्दिविषाः ॥ २३ ॥

अथमात्रे परे सोऽयं प्रजापतिर्वा भवाभ्यत । हिरण्यकशिपुर्देवो पराङ्मुखो नृपतिः

आधमेव महाभागप्रभुर्बन्धुः शक्तिप्रदान् । सत्यवर्मापराङ्मुखः प्रथमं वदामास देवैः

शक्तिमुत्तमं वदामास पण्डितैः महाशुभः । त्रैलोक्यं वदामास सर्वं वदति पण्डितैः

यदा वदतोऽसि कथां दितुः कथयामि नृपा ।

पञ्चवक्त्रकरो देवप्रपञ्चिर्वा देवताम् ॥ २४ ॥

अथ साभ्याम् विद्वे च वदतस्तथा । एष देवता यथा देवैः प्रपञ्चः

एतत् विष्णुमुत्तमं वदामास । देवैः वदतः कानुपैव वदामास । २५ ॥

घनदक्ष घनाध्यक्षो यज्ञः किम्पुरुषाधिपः  
ब्रह्मोवाच । -

एष दिव्यो वरस्तात मया दत्तस्तवाहुतः । सर्वकामप्रदो  
पुलस्त्य उवाच ।

एषमुक्त्वा स भगवान्भगवामाकारामेध हि । धैराजं ॥  
ततो देवाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह चारणाः । वरप्रदानं  
देवा ऊचुः ।

वरप्रदानाद्भगवन्वधिष्यति स नोऽसुरः । उत्प्रसादश्च मग  
पुलस्त्य उवाच ।

भगवान्सर्वभूतानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः । स्रष्टा च हव्य  
सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः । आभासयाम  
ब्रह्मोवाच ।

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम्  
आत्मोन्नेत्य भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति

तत्त्वार्थप्रामोऽव्यायः ] • वसिष्ठप्रादुर्भाषपूर्णम् •

षाकरनिभे दिध्ये दिव्यास्तरणसंस्तुते । हिरण्यकशिपुदत्त  
स्वेर्माहादैत्या हिरण्यकशिपुं तदा । दिव्यतालानि गीतानि

विश्वाची सहजन्वा च प्रालोचेति च पूजिता ।

दिव्याथ सौरभेयी च समीची पुञ्जिक्स्थली ॥ ६१ ॥

अकेशी च रम्भा च विश्रमा धृतिचिन्ममा । घातनेत्रा घृताची  
प्रसहस्रराश्यान्वा नृत्यगीतविहारदाः । उपातिष्ठन्त राजानं  
रासतेऽदितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा । बलिर्विरोचनस्तथा  
प्रादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः । सुरहन्ता दुःखकर्ता  
मोदरो महापार्श्वः कथनः पिठरस्तथा । विश्वरूपस्सुरूपश्च  
श्रीषश्च वाली च मेघवासा महासुरः । घटामो घटरूपश्च  
यदानवसङ्घास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः । स्रविणो घर्मिणः  
र्वे लब्धवराः शूरास्सर्वे विहितमृत्यवः । एते चान्ये च ग्रहयो  
रासते महात्मानं सर्वे दिव्यपरिच्छदाः । विमानैर्विविधाकारै  
इन्द्रवपुषः सर्वे चित्राङ्गदण्डवः । भूपिताङ्गादितेः पुत्रास्तस्य  
स्वयं दैत्यसिद्धस्य यथा तस्य महात्मनः । न श्रुतं नैव दृष्टं

उष्णे शीतानि तोयानि शीते घोष्णानि स  
 पुष्पिताग्रान्महाशाखान्प्रपालाङ्कुरधारिणः । लतापितान  
 गन्धयन्ति च पुष्पाणि रसयन्ति फलानि च  
 तानि शीतानि घोष्णानि तत्र तत्र सरंसि ।  
 भवश्यद्भूषतीर्थानि समायां तस्य स प्रभुः । नलिनीः पु  
 रक्तेः कुमलयैश्चेय कङ्कारैरुपलेस्तथा । नानाध्वर्यस  
 कारण्डवेक्ष्यघाकेः सारसैः कुररैरपि । विमलस्फटिक  
 बहुहंसोपगीतानि सारसानां स्तानि च । गन्धयुक्ताल  
 दृष्टवान्मगवान्दृष्टः खदिरान्वेतसार्जुनान् । चूतानिमघाना  
 प्रियङ्गुचः पाटलाख्याः शास्मल्यस्तदग्निधा  
 शालास्तालास्तमालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः ।  
 तथैवान्ये व्यराजन्त समायां पुष्पितादुमाः । पला ककु

दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तुते । हिरण्यकशिपुदत्त आस्ते ज्वलितकुण्डलः  
उपचेर्म्हद्वादैत्या हिरण्यकशिपुंतदा । दिव्यतालानि गीतानिज गुर्गन्धर्वसत्तमाः ॥

चिद्वाची सद्गज्या च प्रम्लोचेति च पूजिता ।

दिव्याय सौरमेयी च समीची पुञ्जिकस्थली ॥ ६१ ॥

मिश्रकेशी च रम्भा च विप्रमा धृतिविभ्रमा । आदनेत्रा घुनाची च मेनका घोर्घरी तथा  
रतासहस्राब्धान्वा नृत्यगीतचिरारवाः । उपातिपुन्त राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥  
उपासतेऽदितेः पुत्राः सर्वेल्लघवरास्तथा । बलिर्बिरोधनस्तत्र मरकः पृथिषीतुनः ॥  
प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च नविष्ठश्च महासुरः । सुरहन्ता दुःश्वकर्ता तुमनास्सुमतिस्तथा ॥  
पटोदरो महापार्श्वः कथनः विडरस्तथा । विश्वरूपस्तुरूपश्च विभ्यकायो महाबलः ॥  
शामीषश्च बाली ॥ मेघघाता महासुरः । घटामो घटरूपश्च ज्वलनद्वेन्द्रनापनः ॥  
दैत्यदानवसङ्घास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः । स्रग्विणो धर्मिणः सर्वे सर्वे च वरितप्रताः  
सर्वे लघवराः शूरास्सर्वेविहितमृतयवः । एते खान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम्  
उपासते महात्मानं सर्वेदिव्यपरिच्छदाः । विमानैर्विषिधाकारैर्भ्रांजमानैरिषामिभिः ॥  
महेन्द्रपुत्रः सर्वे विवित्राङ्गद्वयद्वयः । भूषिताङ्गादितेः पुत्रास्तनुपासत सर्वतः ॥ ७१ ॥  
येभ्यर्ष दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महारमनः । न धृतं नैव दृष्टं च कस्यापि भुपनत्रये ॥

रजतकनकविभ्रवेदिकायां परिवृत्तरत्नाविविधपीयिकायाम् ।

स ददर्श मृगाधिपः समायां सुदधिरजालगवाक्षसोमितायाम् ॥ ८१ ॥

कनकयलयहारभूषिताङ्गं दितिनयं स मृगाधिपो ददर्श ॥

द्विपसकरकाग्रमं ज्वलन्तं दितिजसहस्ररत्नैर्निरेण्यमाणम् ॥ ८२ ॥

ततो दृष्ट्वा महामार्गं कालचक्रमिषागतम् । नारसिंहपुण्ड्रं मध्यपुण्ड्रमिवाननम् ॥  
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान् । दिव्येन वज्रुवांसिदमवश्यदेवमागतम् ॥  
तं दृष्ट्वा रजमरीलामामपूषो तनुवाप्रितम् । विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च तः

प्रह्लादं वाच ।

मदाराज मदाबाहो दैत्यानामादिसम्यक् । न धृतं नैव मे दृष्टं नारसिंहमिदं वज्रु ॥ ८८ ॥



उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि सन्ति ये  
पुष्पिताग्रान्महाशाखान्प्रधालाङ्कुरधारिणः । लतावितामसंछुः  
गन्धयन्ति च पुष्पाणि रसयन्ति फलानि च ।

तानि शीतानि चोष्णानि तत्र तत्र सरांसि च ॥ १

अपश्यदुभूपतीर्थानि सभायां तस्य स प्रभुः । नलिनैः पुण्डरी  
रक्तैः कुचलयेश्चैव कङ्कारैरुपलैस्तथा । नानाध्वर्यसमापेर्त  
कारण्डवैद्यकवाकैः सारसैः कुररैरपि । विमलस्फटिकाभा  
बहुहंसोपगीतानि सारसानां स्तानि च । गन्धयुक्तालतास  
दृष्टवान्मगधान्दृष्टः खदिरान्वेतसार्जुनान् । चूतानिम्बानामवृ

प्रियङ्गवः पाटलाख्याः शाल्मल्यस्सहस्रिषाः ।

शालास्तालास्तमालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः ॥ २

तथैवान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पिताद्रुमाः । पला फकुभव  
मधकाः कोविदाराश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः । अञ्जनाशोकप

दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते । हिरण्यकशिपुदत्त आस्ते ज्वलितकुण्डलः  
उपचेर्महादैत्या हिरण्यकशिपुंतदा । दिव्यतालानि गीतानिज गुर्गन्धर्वसत्तमाः ॥

विद्यावी सहजन्या च प्रलोचेति च पूजिता ।

दिव्याय सौरभेयी च समीची पुञ्जिकस्थली ॥ ६६ ॥

मिथकेरी च रम्भा च विज्रमा ध्रुतिचिह्नमा । चालनेत्रा घृताक्षी च मेनका चोर्वरी तथा  
एतासहस्रशब्दान्या नृत्यगीतविशारदाः । उपातिष्ठन्स राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥  
उपासतेऽदितेः पुत्राः सर्वेलम्बधरास्तथा । बलिर्विरोचनस्तत्र गरकः पृथ्वीसुतः ॥  
प्रहादो चित्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः । सुरहन्ता दुःखकर्ता सुमनास्सुमतिस्तथा ॥  
घटोदरो महापार्श्वः ऋधनः विठरस्तथा । विश्वरूपस्तुक्रपञ्च विम्बकायो महाबलः ॥  
दशग्रीवश्च बाली च मेघवासा महासुरः । घटामो चिटरूपश्च उवलनश्चेन्द्रतापनः ॥  
दैत्यदानवसङ्कास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः । अग्विणो वर्मिणः सर्वे सर्वे च चरितप्रताः  
सर्वे लम्बधराः शूरास्सर्वेचिह्नितमृत्यवः । एते बान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम्  
उपासते महात्मानं सर्वेदिव्यपरिच्छदाः । विमानैर्विविधाकारैर्ग्राजमानैरियामिभिः ॥  
महेन्द्रवपुषः सर्वे चित्राङ्गदग्गद्वयः । भूषिताङ्गादितेः पुत्रास्तमुपासत सर्वतः ॥ ७६ ॥  
येभ्यं दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महात्मनः । न धृतं नैव द्रष्टुं च कस्यापि भुयनत्रये ॥

रजतकनकचित्रवेदिकायां परिकृतरत्नविचित्रपीपिकायाम् ।

स ददर्श भृगाधिपः समायां सुरचिरज्जालगवाक्षरोमितायाम् ॥ ८१ ॥

कनकवलयहारभूषिताङ्गं दितितनयं स भृगाधिपो ददर्श ॥

दिघसकरकरप्रभं ज्वलन्तं दितिप्रसहस्रशतैर्निषेव्यमाणम् ॥ ८२ ॥

ततो दृष्ट्वा महामार्गं कालचक्रमिवागतम् । नारसिंहचपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिषानलम् ॥  
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रहादो नाम वीर्यवान् । दिव्येन वपुर्वासिहमपश्यदेष्टमागतम् ॥  
तं दृष्ट्वा दनमशैलामामपूवं तनुमाश्रितम् । विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः

प्रहाद वाच ।

महाराज महाबाहो दैत्यानामादिसम्भव । न धृतं नैव मे द्रष्टुं नारसिंहमिदं वपुः ॥ ८६ ॥

अव्यक्तं परमं दिव्यं किमिदं रूपमागतम् । दैत्यान्तकरणं घोरं शंसतीव मनो मम ॥ ८३ ॥  
 अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितस्तथा । हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्ये कुलधराः  
 चन्द्रमास्सह नक्षत्रैरादित्यो रश्मिभिः सह । धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ।  
 मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः । नागायक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमपित्रमाः

ब्रह्मा देवाः पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति हि ।

स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानि तथैव च ॥ ८१ ॥

भवाश्च सहितोऽस्माभिः सर्वे द्रव्यगणैर्बृंहितः । विमानशतसङ्कीर्णं सर्वा या भवतः समाना  
 सर्वे त्रिभुवनं राजलोकधर्मश्च शाश्वतः । दृश्यन्ते नरसिंहेऽस्मिन् तथेदं निखिलं जगत्

प्रजापतिश्चात्र मनुर्महार्त्मा ब्रह्माश्च योगाश्च मही तमश्च ।

उत्पातकालश्च धृतिर्मतिश्च रतिश्च सत्यं च तपोदमश्च ॥ ८४ ॥

सनत्कुमारश्च महानुभाषो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे ।

क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो दर्पश्च मोहः पिताश्च सर्वे ॥ ८५ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

ब्रह्मादस्य पयः ध्रुवा हिरण्यकशिपुः प्रभुः । उवाच दानवान्सर्पाङ्गणाश्च सगणाश्च  
 हिरण्यकशिपुः पुराणम् ।

मृगेन्द्रो गृह्यतामेव अपूर्वा तनुमास्थितः । यदि वा संशयः कश्चित्पश्यतां वनगोष्ठम् ।  
 पुलस्त्य उवाच ।

ते दानवगणास्सर्वे मृगेन्द्रं भीमपित्रम् । परिक्षिप्तो मुदितात्मा तपामातुरोऽत्रमा ।  
 सिद्धत्वाद् विमुच्योऽयं नरसिंहो महाबलः । यमत्र तां समी सर्वा व्यादिताः स्यान्मृत्युः

— तायां भक्ष्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।

तेषाम्बानि सिद्धस्य वीर्यव्याकुललोचनः ॥ १०० ॥

दण्डमग्नं सुदाहणम् । कायवशः तथा घोरं विष्णुवशः तपाम् ।  
 त्रैलोक्यनिर्मितं महत् । विविचामराभिर्वैव शुक्लार्द्रनासिभ्यम् ।  
 कद्रुर्वा सुसर्तं तथा । अग्नं व्याशिष्येव ब्राह्मणं तदेव च ॥ १०१ ॥

नवचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ] • नृसिंहहिरण्यकशिपुयुद्धवर्णनम् •

४३१

पायणास्त्रमैत्रं च आग्नेयं शीशिरं तथा । घायव्यं मयनं चैव कपालमथ फिङ्गुरम् ॥  
याऽप्रतिहतां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च । मोहनं शोषणं चैव सन्तापनविलापने ॥

कम्पनं शासनं चैव महास्त्रं चैव रोधनम् ।

कालमुद्गरमक्षोभ्यं तापनं च महाबलम् ॥ १०६ ॥

पतनं मोहनं च तथा मायाधरं धरम् । गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम् ॥  
रवापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् । अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः ॥

एतान्यस्त्राणि दिव्यानि हिरण्यकशिपुस्तादा ।

मञ्जुवज्रसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिषाहुतिम् ॥ १०६ ॥

स्त्रीः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोद्सुरोत्तमः । विषस्वान्धर्मसमये हिमवन्तमिषाशुभिः ॥  
हमर्षानिलोद्भूतो दैत्यानां सैन्यसागरः । क्षणेनाप्लावयत्सर्वं मीनाकमिव सागरः ॥  
सैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा । घञ्जरशनिभिश्चैव बहुशास्त्रैर्महाद्रुमैः ॥  
दुर्गरैः कूटपाशैश्च शिलोलूखलपर्वतैः । शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ॥

ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रतुल्याशनिनुन्यवेगाः ।

समन्ततोऽभ्युपतथाहुकायाः स्थिताः स शीर्षा इव नागपोताः ॥ ११४ ॥

सुपर्णमालाकुलभूषिताङ्गाः सुनीक्षणद्रंष्टाः कुलवक्त्रगताः ।

स्फुरत्प्रमास्ते च सभृङ्गदेहाक्षीनांशुका भाग्नि यथैव हस्ताः ॥ ११५ ॥

सञ्जहानयो मायामग्निं पायुसमीरितम् । तमिन्द्रस्तोषदेः साधं सदप्राक्षोमहायुतिं  
हता तीक्ष्णैर्जलशमयामास पापकम् । तस्यां प्रणिहतायां तु मायायां युधि दानपः ॥  
सञ्जहोरसद्वाशं तमस्तीव्रं समन्ततः । तमसा संवृते लोके दैन्येष्वात्तागुपेषु च ॥  
पतेजसा परिवृतो दिवाफर इवोद्गतः । त्रिशिन्वा भ्रुकुटांमस्य ददृशुर्दानधारणे ॥  
लोहस्यां त्रिकूटस्यां गङ्गां त्रिपथनामिव । ततः सर्वासु मायासु हतामुदितिनन्दनाः

हिरण्यकशिपुं दैत्या विपण्णाश्शरणं ययुः ।

ततः प्रज्वलिताः क्रोधात्प्रवृद्धत्रिष तेजसा ॥ १२१ ॥

स्मिन्नुदेतुर्देत्येन्द्रेतमोभूतममुद्भगत् । भावहः प्रपहरन्नेव विषहोऽयं समीरणः ॥ १२१ ॥

परापहस्तसंधदध्वं वंददध्वं महाबलः । तथा परियहः श्रीमानुत्पातमयशेसिनः ॥ १२३ ॥  
 इत्येवं धुमिताः सप्त मस्तो गगनेवराः । ये ग्रहास्सर्वलोकस्य सये प्रादुर्भवन्ति हि  
 ते सर्वे गगने दृष्टा व्यचरन्ध यथासुखम् । अयोगतश्चाप्यचरन्धोमं निशि निशावतः  
 सप्रहः सहनक्षत्रैस्तारापतिररिदम् । धिवर्णतां च भगवानगतो दिवि दिवाकटः ॥ १२४ ॥  
 कृष्णः कथयन्ध तदा लक्ष्यते सुमहान्दिवि । असृजचासितां सूर्योधूमवन्तां विभावतु  
 गगनस्थध्वं भगवानभीक्ष्णं परियिष्यते । सप्तधूमनिभा घोराः सूर्या दिवि समुत्पि  
 सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गाः । वामे च दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पति  
 शनैश्चरो लोहिताङ्गो लोहिताङ्गसमद्युतिः । समं समधिरोहन्त सर्वे धै गगनेवराः  
 शृङ्गाणिशनकैर्धोरा युगान्तावर्त्तनग्रहा । चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ग्रहैः सह तमोबुधः ॥ १२५ ॥  
 चराचरयिनाशाय रोहिणीं नाम्यनन्दत । गृहीतोराहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्त्ये

उल्काः प्रज्जलित्वाश्चन्द्रे व्यचरन्त यथासुखम् ।

देवानामधिपोदेयः सोऽप्यचरन्तशोजितम् ॥ १२६ ॥

अपतद्गगनादुल्कायिद्युद्गुपा महास्वना । भकाले च दुमास्सर्वे पुष्पयन्ति च फलन्ति च ।

लताश्च सफलाः सर्वा या भाहुर्देत्यनाशिकाः ।

फले फलान्यजायन्तं पुष्पे पुष्पं तथैव च ॥ १२७ ॥

उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्ति प्रसृजन्ति च ।

विक्रोशन्ति च गम्भीरं धूमायन्ते ज्वलन्ति च ॥ १२८ ॥

प्रतिमास्सर्वदेवानां कथयन्त्यो महद्गुणम् । आरण्येः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपरिष्व

चुकुशुर्मैरयं तत्र मृगयुद्धउपस्थिते । नद्यश्च प्रतिकुलाः प्रवहन्ति फलुषोदकाः ॥ १२९ ॥

न प्राकाशन्त दिशो रक्तेणुसमाकुलाः । घानस्पत्या न पूज्यन्ते पूजनाहं कथञ्चन

धायुवेगेन हन्यन्ते भज्यन्ते प्रणमन्ति च । तथा च सर्वभूतानां छाया न परित्यजे

अपरेण गते सूर्ये सलोकानां युगक्षये । तदा हिरण्यकशिपोर्देत्यस्योपरि घोरमव

भाण्डागाय युधागारे निषिष्टममघन्माधु । असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च

विधिपोत्पाता घोरां घोरनिर्दोषाः । पने चान्ये च बहवो घोररूपाः समुत्पि

दैत्येन्द्रस्यविनाशाय दृश्यन्ते रणशंसिनः । मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना  
मदीधरा नामगणा निपेतुरमितीजसः ।

विषम्यालाकुलैर्येकत्रैपिमुञ्चन्तो हुताशनम् ॥ १४५ ॥

चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः । घासुकिस्तप्तकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयी  
पलामुखः कालियश्च महापद्मश्च धीर्यवान् । सहस्रशीर्षश्शुद्धाङ्गो हेमतालध्यजः प्रभुः ॥  
शैवोऽनन्तो महानागो ह्यप्रकम्प्यश्च कम्पिताः ।

दीप्यन्तेऽन्तर्जलस्थानि पृथिवीविषराणि ये ॥ १४६ ॥

सप्तदैत्येन्द्रकोपेन कम्पितानि समस्ततः । नानातेजोधराश्चापि पातालतलवारिणः ॥  
पातालेसहसा क्षुब्धे दुष्प्रकम्प्याः प्रकम्पिताः । हिरण्यकशिपुर्वैत्यस्तदासंसृष्टपागमहाम्  
सन्वद्यौष्ठपुटः शृङ्गो घराह इव पूर्वजः । गङ्गाभागीरथी चैव कौशिकी सरयूरपि ॥ १४७ ॥

यमुना चाथ कावेरी कृष्णावेणी च निम्नगा ।

तुङ्गा भद्रा महावेगा नदी गोदाधरी तथा ॥ १४८ ॥

चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः । मेलकप्रमथश्चैव शोणो मणिनिमोदकः ॥  
नर्मदा च शुमन्तोता तथा येत्रवती नदी ।

गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्वा सरस्वती ॥ १४९ ॥

महाकालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी । जम्बूद्वीपं रत्नवच्च सर्वरत्नोपशोमितम् ॥  
सुवर्णपुटकं चैव सुवर्णाकरमण्डितम् ।

महानदश्च लौहित्यशीलः काञ्चनशोमितः ॥ १५० ॥

पतनं कोशकाराणां कर्म च रजताकरम् । मगधाश्च महाग्रामाः पुण्ड्रा उग्रास्तथैव च  
क्षुब्धा मल्लः चिदेहाश्च मालवाः कामिकीसलाः ।

भवनं घनतेजस्य दैत्येन्द्रेणामिकम्पितम् ॥ १५१ ॥

कौलासशिखराकारं यत्कृतं विश्वकर्मणा । रत्नतोयो महामीमो लौहित्यो नाम सागरः ॥  
उदपश्च महाशील उच्छ्रितः शतयोजनम् । सुवर्णवेदिकः श्रीमान्मेषपृश्निकिनिषेवितः ॥  
प्राजमानोऽर्कसदृशीर्जातरूपमयैर्दुर्गैः । सालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पिनीः ॥



दी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तथा । जीमूतघननिर्घोषो जीमूत एष वेगवान् ॥  
वारिर्दितिजो द्रुतो नृसिंहं समुपाद्रवत् ॥ ॥ तु तेन ततस्तीक्ष्णमृगेन्द्रेण महानखैः ॥

त्तोद्गारसहायेन विदार्य निहतो युधिः ॥ १८५ ॥

मही च कालश्च शशी नमश्च ग्रहाश्च सूर्याश्च दिशाश्च सर्वाः ।

नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रसादं दितिपुत्रनभात् ॥ १८६ ॥

तः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः । तुष्टुयुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेवं सनातनम् ॥ १८७ ॥

तस्या विधूतं देव नारसिंहमिदं वपुः । एतदेवार्चयिष्यन्ति परापरविदो जनाः ॥ १८८ ॥

ब्रह्मोपाच ।

यन्महावह्मश्च महेन्द्रो देवसत्तमः । भवान्कर्ता चिकर्ता च लोकानां प्रभवोऽव्ययः

परां च सिद्धिं च परं च सत्यं परं रहस्यं परमं हविष ।

परं च धर्मं परमं यशश्च त्वामाहुरग्यं परमं पुराणम् ॥ १८९ ॥

परं च सत्यं परमं तपश्च परं पवित्रं परमं च मार्गम् ।

परं च यज्ञं परमं च होत्रं त्वामाहुरग्यं परमं पुराणम् ॥ १९० ॥

परं शरीरं परमं च ब्रह्म परं च धोमं परमं च वाणीम् ।

परं रहस्यं परमं गतिं च त्वामाहुरग्यं परमं पुराणम् ॥ १९१ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

मुक्त्वा तु भगवान्सर्वलोकपितामहः । स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ॥

नक्षत्रं तूर्यं नृत्पन्तीप्यप्सरस्तु च । क्षीरोदस्योत्तरं कुलं जगाम हरिरीश्वरः ॥

सिंहं वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तिमान् । वीराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः ॥

चक्रेण यानेन भूतियुक्तेन मास्यता । अन्यक्तप्रकृतिर्देवः स्वस्थानं गतवान्प्रभुः ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे नरसिंहप्रादुर्भाषो

नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।



## अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अन्यकागुरकधानकरणनम् ।

धीमीप्स उवाच ।

भारतिह्यमहात्म्यं विष्णुरेणव्ययेतिवम् । तया भवन्माहात्म्यं भीष्माद्याभिधीयते ।

पुत्रस्य उवाच ।

तस्यापि देवदेवस्य भृशं कर्म बोलसम् । भारतीदेवोऽन्यकोनाम भिक्षा प्रदत्तम् ।

तस्याः भवता युक्तोऽवश्यं विचरिष्ये कनाम् । स कदाचिन्महादेवं पार्श्वं गामद्विनेषि ।

ह्यहमन् तदा दृष्ट्वा हर्षं देवीं प्रयत्नम् । तया देवीं हरावप्य विग्रीमे मृगुनेन ।

ततः प्लिता मयिषी मे मायेवा भोजयामुर्वा । विभीष्टुं यावद्वर्त्मं यावत्कालम् ।

यदेवा म मेदेयायां जीविते किं प्रयो जनम् । तया मनिमयाकाला मयिषि सत्तमम् ।

अहं योर्गं समेवम्य सीमागमिममन् ॥ ४ ॥

अन्यक उवाच ।

अन्यदस्य स्यं स्यं त्रैवं देवमिष्टानम् । अविष्टे विद्वत्पत्नी विद्वत्पुत्रपुत्रीनाम् ।

हरिष्ये कर्मनाम्ना तया मेऽप्यहं मम ।

पुत्रस्य उवाच ।

अविष्टा तस्य, वाचता तस्य, वाचता तस्य ।

तस्याः पुत्रस्य, पुत्री तया देवः सत्तमम् ॥ ४ ॥

अन्यक उवाच । तस्याः पुत्रस्य, पुत्री तया देवः सत्तमम् । तस्याः पुत्रस्य, पुत्री तया देवः सत्तमम् ।

अन्यक उवाच । तस्याः पुत्रस्य, पुत्री तया देवः सत्तमम् । तस्याः पुत्रस्य, पुत्री तया देवः सत्तमम् ।

अन्यक उवाच ।

अन्यक उवाच । तस्याः पुत्रस्य, पुत्री तया देवः सत्तमम् । तस्याः पुत्रस्य, पुत्री तया देवः सत्तमम् ।

व्याधन स जाताति हतं पुत्रं महासुरः । तावत्तत्रस्थ पद्मायु हन्यतां मद्गयावहः ॥  
ह्रीलौल्यादानवः क्रूरः परमार्यापह्दारकः । सर्वथा घातनोयस्ते भवता सुरसत्तम ॥

पुलस्त्य उवाच ।

शक्तस्यैवं वचः ध्रुत्वा शरण्यः शङ्करस्तदा । ददावमयमेवासीं मामैरिति शतक्रतोः ॥  
इत्थामपोऽथ कैलासादाजगाम कुशस्थलीम् । घृतो भूतगणीरीशोवधार्थं चान्धकस्य ॥  
इत्था कर्पं महाकायं विश्वरूपं सुभैरवम् । सर्वैर्जलद्विर्चायद्विर्मोमं भीमभुजङ्गवत् ॥  
जटासट्टामिराकाशं फणिरत्नशिखार्चिषा । दहन्तीवतेजोभिः कालाग्निरिष संक्षये ॥  
मुचैर्द्राक्षुराद्वैध द्वितीयेन्दुकलोऽज्जलैः । पातालोदररूपामैर्मेखाराचनादिभिः ॥२०॥  
भुगैरनेकसाहस्रैर्बहुरास्त्रकृतप्रहः । बह्नामरणभूपाढ्यं रणे घोरनिनादिभिः ॥ २१ ॥  
सिंहवर्मपरीधानं व्याघ्रत्वगुत्तरीयकम् । गजाजिनकृताटोपं पतद्बृहन्नरपाकुलम् ॥२२॥  
इन्द्रपुंषिधावेशो दनुर्देव्यभयावहम् । अवातरम्महीं भीमो दनूनां क्षयकारकः ॥२३॥

अन्धासुरोऽपि दनुजः पुत्रं ध्रुत्वा हतं युधि ।

कोधेन तमसाविष्टो रजतूर्याण्यबोदयत् ॥ २४ ॥

संहत्यावहितः प्राप्तो यत्र ते त्रिदशाः स्थिताः । महत्या सेनया सार्द्धं रथवारणयुक्तया ॥  
ते दैवा वानधान्धीक्ष्ये महाहयकृतादरान् । व्यपयात् तनुत्राणाः शम्भुं शरणमन्वयुः ॥  
मामैरेति च तान्देवो देवानुवर्था त्रिलोचनः । गृहीत्वा शूलमातिष्ठद्द्राघधरो हवा ॥  
माधकेनाथः रुष्टे शतकोटिशरीरणाः । निहताश्चापि देवानां बहूनामेकता कृता ॥२८॥  
सत्कुलिङ्गार्चिषो बह्वैर्मुञ्चमानः पिनाकधृत् । शरैः समावृतं चक्रे अन्धकं रथं ततः ॥  
तुनायो रथस्थोऽथ शिथिलः शिथिलायुधः । निमग्न्य दानवान्सर्वान्स योद्धुमुपचमे  
शुधा तद्वत् भग्नचिन्धिषायुधयोधिभिः । युधि वीरैर्हतं देवैः स्थाणुनासह्यमाश्रितैः ॥  
रानवध्वान्धकः सैम्यं मित्तं दृष्ट्वा रुतं सुरैः । आत्मानं च महेशेन निरुद्धं बाणकोटिभिः  
पेहलीभूतदेहोऽसौ चैर्यमालम्ब्य केवलम् । पिनाकं चैव रुद्रस्य गृह्य रुद्रमताडयत् ॥  
पेनाकस्याभिघातेन रुद्रो भूमिमधायमत् । भूमी निपातिते देवे चलितं भुवनत्रयम् ॥  
अपह्नः सागरावेलां पर्वताः शिखराणि च । नक्षत्राणि चिद्योगीनि जग्मुर्मृत्कान्धनेकराः

पतिते भुवि देवेशे अन्धको गदया पुनः । जघान रुषितो नागं हत्वा तं पातय

शिवं त्यक्त्वा नागराजः प्रपलाप्यान्यतो गतः ।

मुहूर्त्ताञ्चेतनां लब्ध्वा उत्थितः परमेश्वरः ॥ ३७ ॥

गृहीत्वा परशुं दिव्यं दानवं नैव पश्यति ।

हत्वा तु तामसीं मायां मायाशतविशारदः ॥ ३८ ॥

तथा विमोहिते देवे क्व नु वै दानवो गतः । शम्भोर्मयमथो प्राप्य किं नु पापः करिष्यति

तमसाच्छादिता यावद्देवा व्याकुलतां गताः ।

सम्भ्रान्तमानसानीकास्तदोद्युः कार्यगौरवात् ॥ ४० ॥

पतस्मिन्नन्तरे सूर्यस्तेजोरूपो व्यपस्थितः । उत्तस्थौ नररूपेण कुर्यन्विति मित्रा दिग्  
मष्टे तमसि दृष्टाङ्गे खद्योते प्रकटस्थिते । देवामुद्गमवापुस्ते स्पष्टान्नविलोचनाः ॥ ४१ ॥

उद्दीप्तास्तु सुराः सर्वे गणाः स्कन्दपुरोगमाः ।

स्तुवन्ति विविधैः स्तोत्रैर्नररूपं दिवाकरम् ॥ ४३ ॥

अनौपम्यं जगद्ब्रह्मापि ब्रह्मविष्णुशिवात्परम् ।

त्रिगुणविद्रुमसच्छायं सिन्दूरारुणसप्रभम् ॥ ४४ ॥

प्रभासन्त तदा दृष्ट्वा पञ्चाङ्गलिङ्गितावनिः । पुनः प्रणामप्रवर्णं प्रणिधानपुरःसरम् ।  
आलोक्य स्निग्धया दृष्ट्वा देवदेवं त्रिलोचनः । उवाच स्निग्धगम्भीरयावा देवं शतैर्दशैः

हर उवाच ।

पूरयन्ति तेजोभिर्मगधान्मुषनप्रयम् । दैत्यमायामिपन्तातो दूरान्नाकुलचेतसाम् ।  
प्राणिनामिदमेवैकमविसंवादि दैवतम् ॥ ४७ ॥

अयमेव च संसारसागरात्सकलादपि । सत्यानुत्तारयन्दैवः कर्णधारायते प्रभुः ।

यजन्तो जन्तवो भक्त्या यं देवं विविधाः सदा ।

निःश्रेयसाय कल्पन्ते तं मनो भास्करं विभुम् ॥ ४९ ॥

यस्तु द्वात्रिंशत्तरे मुकुटायमानलीलागमस्तिमिरलं कुसुमप्रकाशः ।

व्याप्य स्पृहीधितिगणैः प्रदिशो दिशश्च देदीप्यते स सचिता विमलायलोके ।

प्रहोन्द्रमद्वन्द्वमुत्तपद्मिपायोनायप्रयोगनिपुणैश्च शरीन्द्रसङ्घैः ।  
 धेयोऽपिभिः प्रतिदिनं हिमसाङ्गरागेर्द्विष्याङ्गरागपरिलित्तमस्तदेहे ॥५१॥  
 पूर्यं वपुस्तप सदा प्रलये हि धेदेर्गोभिर्विचित्रपद्मण्डलमण्डिताभिः ।  
 ये त्वां स्तुवन्ति परसद्यनि सद्यहीना नित्यं प्रसारितकरा भुवि ते मयन्ति ॥  
 ये दद्रुमुषिदिकादिमिरर्दिताङ्गाः शीर्णतपचः कुजजिमद्वन्द्वुल्लेखपाशाः ।  
 देवेश तेऽपि तपपादनता मयन्ति सद्यो द्विरष्टशरदारुतयो मनुष्याः ॥ ५३ ॥  
 सामेति सामगगणा हि मपार्थकं त्वा मध्यर्षस्तृगितियद्वृत्तमुष्यपूपाः ॥  
 त्वामेवमार्थमितिकायविद्रोऽधिगन्तुं मागाश्च येति पितरोऽप्यथ सत्यगन्धम् ।  
 मायेति धोपनिषद्वर्कपदेपदेवा मर्यास्तपावयमिवेह उपासतेऽमी ।  
 गन्धर्वकिन्नराणाः सहचारणैस्तु क्वं तथा च मगधप्रतिपद्यसे त्वम् ॥  
 ये नार्थयन्ति सततं मयतोऽर्च्यमर्चिस्तेऽर्विष्यतापितदिग्गम्भरविच्छिन्नाः ।  
 धुन्क्षमामकण्डजतरा घटलर्पणेन मिक्षामटन्ति परचेष्टमसुतेऽर्च्यहीनाः ॥५६॥  
 उत्तुल्लकोक्तकोशमिशालनेत्रमीरद्विलासलुलिताञ्जितपिङ्गवाम् ।  
 कामं प्रशस्ततासुन्दरारम्भमुत्तुङ्गपीवरपयोधरभारखिन्नम् ॥ ५७ ॥  
 रम्भोपमोरुपुपीननितम्बविम्बानमृद्वणमभिरणद्रशनाकलापम् ।  
 घूर्मं ललाटतटकोटिपदान्तलम्बि हेमाञ्जलाञ्जितमुखं कुलपालिकानाम् ॥  
 कान्तं गृहेषु कलगद्गदमापितानो भङ्गुरनूपुरखेण विरावितानाम् ।  
 तेषां कृशानुकरमिन्दुसमानकान्तं वैरर्चितोऽसि मगधमघमोचनस्त्वम् ॥  
 प्रज्ञात्वमेव हरिरस्यनिलोऽनलोऽसिच्छ्रोऽन्तकोऽसिषरुणोऽस्यमराधिपोऽसि ।  
 सोमोऽसि वायुरसि भूरसि चेश्वरोऽसि यज्ञोऽसि चित्तवतिरस्यपराजितोऽसि ॥  
 ये सप्तसप्तिसुरषाद्वरणेन मुक्ता भूमावयेति तस्मै स्तवन्तरीताः ।  
 ष्योमैतदन्तरहितं परितो हि गत्वा गच्छन्ति न भ्रमपदं हि मनागपीमे ॥  
 ध्यानेकयोगनिराकाङ्क्षसमाधिभावाद्व्यात्वा पदं त्वं तुरीयमनन्तमूर्ते ।  
 मुक्तामयास्तनुभृतो ॥ मियामियुक्तास्तद्व्याख्याशश्वतमबन्धित्यमनायनन्तम् ॥

जन्मादिरोगरहितं परमं पुराणमीशं जरामरणशोकमपातिरिक्त्म् ।  
 स्थूलानुभावनगणानिजितं विशुद्धं वेदान्तवादिमिरलं परिमन्यते यत् ।  
 त्वामग्निपुञ्जपुषं तपसां निवासं याता दिवं सुचिरकालमुपास्य भक्ताः  
 भानो सुरासुरसमूहशिरोनिवृष्टपादारविन्दुयुगलमलवारमूर्ते ॥ ६४ ॥  
 भूतेशभूतपरदासहृदययात्मन्व्योमादृहास सवितर्भुवनेकदीप ।  
 मृक्क्षाममन्त्रयन्नुपामधिवास नाम सृष्टिस्थितिप्रलयकारणलोकपाल ।  
 दीनस्य देवकृपणस्य भवे भवे मे मग्नस्य बालदृष्टिचारमनोरधानि ।  
 शश्वद्यतीश्वरशशीकरकङ्कपोरोत्पातो जरामरणशोकदगान्तरस्य ॥ ६५ ॥  
 यः प्रातः सायमिदं मध्याह्ने वा पठेच्च दीप्तांशोः ।  
 सालोक्यं याति रवेः प्राप्नोति धर्मार्थकामाञ्च ॥ ६६ ॥

नेत्यं तस्माच्च सूर्याच्च मनसोऽभिहितं च यत् । नमस्ते देवदेवेश भक्तानाममर्षदुर ।  
 तुभ्यं नमस्तेऽस्तु सर्वदेवनमस्कृत । तिग्मांशो वै नमस्तुभ्यं जगत्त्रयुदेतमः ।  
 यमाकरनमस्तेऽस्तु भानो जय जगत्पते । अनेन वनुमुख्येन पीडितोऽहं जगत्पते ।  
 किं करोमि कथं चेनं घातयामि दिवाकर ॥ ७१ ॥

सूर्य उवाच ।

जय शूलेन पाविष्ठं मायाशतविशारदम् । जयं प्राप्नुहि देवेश हत्याशूलेन वाग्यम् ।  
 पुलस्त्य उवाच ।

गृह्य शूलं ततो दूरमाक्षिपत्तेजसा हतः । ततोऽग्न्यकलिशूलेनाताडयत्पापकर्महम् ।  
 तस्मिन्पुद्गे तथा रद्रे ह्यग्न्येनामिपीडितः । भुमोच वाणमहत्पुष्पं माम्ना पापुष्पं हि पृथ् ।  
 पिनाकमानम्यदोम्यां पिनाकी शङ्कृतः स्वयम् ।

रुद्रवाणचिनिर्मेदादुधिरादग्न्यकस्य तु । अग्न्यकाश्च समुत्पन्नाश्शतशोऽप्यसदृशः ।  
 तेषां पिदार्यमाणानां रुधिरादपरेषुनः । यभूषुरग्न्यकाघोरा वैव्यांतिमसिलं जगत् ॥ ७३ ॥  
 तं तु मायाविनं दृष्ट्वा देवदेवस्तदाग्न्यकम् । पानार्थमग्न्यकस्यास्य ॥ यज्ञे मातृकास्तथा  
 ... तथा प्राङ्गी शीरीषा वा वाडवी तथा । सौपर्णमथ वायव्यां शङ्खिनीनेतिरीतया

सौरीं सौम्यां शिवदूर्तीं चामुण्डामथ भारुणीम् ।

धारादीं नारसिंहीं च चैष्णवीं च विभाषरीम् ॥ ७६ ॥

शतानन्दांमगानन्दां पिच्छिलां भगमालिनीम् । बालामतिबलांरतां सुरभीं मुखमण्डिताम्  
मातृनन्दां सुनन्दां च बिहालीं शकुनीतया । रैवतीं च महापुण्यां तथैव शिखिपट्टिकाम्  
शूलेन च ततो दैत्यं विभेद त्रिपुरागतकः । निर्गतं रुधिरं तस्मात्पुस्तं मातरस्तदा  
नीरक्तो हि तदादैत्यशुष्कतां प्राप भूपते । शूलेप्रोतस्तदा दैत्यो दिव्यधर्मसहस्रकम् ॥  
महाबलेन रद्रेण विधृतोऽपि मृतो न हि । स्तुतस्तेन तदशम्भुर्भवत्या दैत्येन सुप्रत ॥

अन्धक उवाच ।

नमोऽस्तु शम्भो भयनाशहेतो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।

त्वं भूजलाग्नोरनमोऽर्कसोमयज्ञाष्टमूर्तिर्मवभाषतोऽलम् ॥ ८५ ॥

त्वां ये धाणो बहुवायेन तोष्य प्राप्तरवैश्यं स्वे पुरे तस्वरक्ष्यम् ।

रक्षोऽधीशो पाहुमिस्तोत्पशीलं युष्मत्क्रान्तक्षिप्ररूपो हर्नोषीत् ॥ ८६ ॥

प्राप्तोऽप्यैश्यं सर्वरक्षोगणानां पुत्रं चापि प्रोजितं शक्यन्धम् ॥ ८७ ॥

भयमयहर हर परमउदार मम सुखकरणमिच्छिन्मुरसार ।

जितमरुदमिमत्तथितरणवार त्वं पदकमलमिहारणसार ॥ ८८ ॥

सधेशपादपङ्कजं करोति यो नरोद्दिसद्रेशतस्यपाञ्चितं द्वास्तिमक्तिमापितः

मुनीश्वराःपुरा हरं भवन्तमेवमादरात्प्रपूज्यल्लङ्कृषिणं समापितामनोरधान्

भयोद्भवैकरूपिणं प्रपञ्चपञ्चकावृति विनित्यशुष्ककोटरस्थं वपञ्जीपञ्जीवनम्

भवेद्गपाद्मिचिन्तनात्सर्वकाम ईश्वर त्वदीयकिन्दुरान्विते पदे पदेसमागताः

मूढोऽहंतामि जानामि त्वां स्तोतुं भक्तवत्सल ।

सशीश्वरेण मनसाऽप्यनुकम्प्यो रणं गतः ॥ ८९ ॥

शुनस्त्य उवाच ।

इति स्तुतो महेशस्तु भक्त्या दैत्येन सादरम् ।

गणेशतां ददौ तस्मै नाम भृङ्गीष्टीति च ॥ ९० ॥

यत् ते महिमा भूप हरस्य भवहारिणः । कथितो विप्रविप्राख्यस्त्वरतायां मुखाय  
भीष्म उपाय ।

मनुष्यस्यापि देवत्वं सुखं राज्यं धनं यशः ।  
जयं भोग्यं तथारोग्यमायुर्विद्यां धैर्यं सुतम् ।  
यद्युपमेशियं सयं ब्रूहि मे विप्रसत्तम ॥ ६४ ॥

पुलस्त्य उपाय ।

पमिर्गुणैर्युतः श्रीमान्सदैव ब्राह्मणो मुवि । त्रैलोक्ये तु सदा मेध्यो विप्रदेवो पुनो पुनो  
पूजयित्वा द्विजान्देवाः स्युर्गं भुञ्जन्ति वाक्षयम् ।  
धरामयन्ति राजानो लोकाविष्टं सुखं शिष्यम् ॥ ६५ ॥  
लोके विप्रसमो नास्ति देवानामपि देवतम् । य धर्ममयः साक्षाद्भुविगुणितो मृत्यु  
लोकानां स शुभः पूज्यस्तीर्थभूतोऽनघो जनः ।  
सर्धदेवाल्लयः सन्धो निर्मितो ब्रह्मणा पुरा ॥ ६६ ॥  
इममर्थं पुरा पृष्टो नारदेन पितामहः । कस्मिन्सु पूजिते ब्रह्मप्रसन्नो माधवो भवेत्  
ब्रह्मोवाच ।

यस्य विप्राः प्रसीदन्ति तस्य विष्णुः प्रसीदति । तस्माद्ब्राह्मणगुणैः परब्रह्माऽधिगच्छति  
विष्णुर्ब्राह्मणदेहेषु सदा वसति नागवया ।  
तस्माद्ब्राह्मणपूजायां विष्णुस्तुष्यति सन्ध्यानाम् ॥ १०१ ॥  
विप्रायः पूजयेज्जित्यं दानमागार्धनादिभिः । कृतं कृतार्णं तेन विष्णुर्न प्रियरहितः  
ब्राह्मणस्य मुक्तं क्षेत्रमनूयमकण्टकम् । बाणयेत्सर्वपापानि सा हविर्मानं शक्तिं  
मनिगम्य तु यद्वत् यच्च दानं मनोरमम् । विदमेत्तागरम्यानां दानम्याजो न विदमे  
मनसापि न हिसन्ति भूदेवमात्राविनम् ।

मनोऽनुकूलं वाञ्छि देवैरपि न दुर्लभम् ॥ १०२ ॥

ये दानदानो विप्राग्नेयस्य भोग्यपुनः । सर्वपापसंशयस्य यशस्य सर्वसुखे ।  
काये देहे च दाने च विदे दानार्थदेवम् । तद्वत् दानार्थं विद्धि ज्ञानं तद्वत् विदुषि ।

॥ च दाक्षिण्यतामेति नानुरो न च कातरः । मनोऽनुकूलं प्रमदामर्चयित्वा द्विजांस्तुमेत्  
वृत्त्या साहसकर्माणि दद्याद्विप्रस्य पर्वसु ।

तद्दानं सुगुणं प्रोक्तममयं लाभस्य च ॥ १०६ ॥

विप्रपादस्तोत्रगुणैस्समीक्ष्यति यः करः । स करः श्रोकरो नाम मन्यः कर्मकरः करः ॥

विप्रपादरजः पूनाः पूतास्तज्जलपिन्दुभिः ।

विपद्भिश्च सदा पापैर्मुक्ता यान्ति त्रिविष्टपम् ॥ १११ ॥

विप्रपादरजः पूनाः शुचयोऽगृहवत्पराः । पुण्यक्षेत्रसमास्ते स्युः प्रशस्ता यशकर्मसु ॥

भार्गो ब्रह्ममुखाद्विप्रः समुद्रभूतः पुराणयः । वेदास्त्रैव सज्जाताः सृष्टिसंस्थितिहेतवः ॥

तस्माद्विप्रमुखे वेदाभ्यर्चिताः पुरुषेण हि । पूजार्थं सर्वलोकानां सर्ववह्नार्पतो ध्रुवम् ॥

पितृयज्ञे विषाहे च बह्विकार्येषु शान्तिषु ।

प्रशस्ताः प्राज्ञाना नित्यं सर्वस्वस्त्यग्नेषु च ॥ ११५ ॥

देवाः भुञ्जन्ति देव्यानि बलिं प्रेतादयोऽसुराः ।

पितर्यचैव कव्यानि विप्रस्यैव मुखाद् ध्रुवम् ॥ ११६ ॥

देवैर्यश्च पितृभ्यश्च यो दद्याद्यशकर्मसु । दानं होमं बलिं चैव विना विप्रेण निष्फलम्

भुञ्जन्ति चासुरास्तत्र प्रेता दैत्याश्च राक्षसाः ।

तस्माद् ब्रह्मणमाहूय तेषु कर्माणि कारयेत् ॥ ११८ ॥

काले देवो ॥ पात्रे च लक्ष्मकोटिगुणं भवेत् । श्रद्धया च द्विजं दृष्ट्वा प्रकुर्व्यादभिषादनम्

रीर्षायुस्तस्य चाप्येन चिरजीवी भवेन्नरः । भगमिषादनाद्विप्र द्वेषाद्भ्रष्टयापि च ॥

रायुः क्षीणं भवेत्पुंसां भूतिनाशश्च दुर्गतिः । आयुर्वृद्धिर्यशोवृद्धिर्वृद्धिर्विद्याधनस्य च

पूजयित्वाः द्विजान्प्रेष्ठो भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥ १२१ ॥

॥ विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिष्ठोपितानि ।

स्वादास्वधस्वस्तिविचर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥ १२२ ॥

नारद उवाच ।

कश्चपूज्यतमो विप्रो ह्यपूज्यो वाऽय को भवेत् ।



विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि यायातथ्यं गुरोरपि ॥ १२३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

पूज्यः श्रोत्रियको नित्यं सदाचारसमन्वितः । सद्रुचतः कलुषैर्मुक्तस्तीर्थभूतोज्जनोऽनघः  
नारद उवाच ।

जातः कः श्रोत्रियस्तात सत्कुले वाप्यसत्कुले ।

सदसत्कर्म कर्ता वा कः पूज्यो भुवि वाडयः ॥ १२५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

सच्छ्रोत्रियकुले जातो ह्यवियो नैव पूजितः । असरस्त्रेणकुले पूज्यो व्यासवैभाषिकौप्या  
क्षत्रियाणां कुले जातो विश्वामित्रोऽसि न मत्समः ।

वेश्यापुत्रो वसिष्ठश्च अन्ये सिद्धा द्विजादयः ॥ १२७ ॥

तस्मात्सच्छ्रोत्रियादीनां शृणु पुत्रक लक्षणम् । धरायां तीर्थभूतानां सर्वेषां पराधाय च  
जन्मना प्राह्वयो होयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ।

विद्यया याति विप्रतथं त्रिभिः श्रोत्रियलक्षणम् ॥ १२६ ॥

विद्यापूतो मन्त्रपूतो वेदपूतस्तथैव च । तीर्थस्नानादिभिर्मैथ्यो विप्रः पूज्यतमः स्मृतः  
नारायणे सदा भक्तः शुद्धान्तःकरणस्तथा । जितेन्द्रियो जितक्रोधस्समः सर्वज्ञैष च  
शुद्धेष्टातिथेर्भक्तः पित्रोः शुभ्रपणेरतः । परदारैर्भनो यस्य कदाचिन्नैव मोदते ॥ १२८ ॥

पुराणकथको नित्यं धर्मावधानस्य स भूततिः ।

अस्यैव दर्शनान्नित्यमभ्यमेधाद्रिजं फलम् ॥ १२९ ॥

संलापे गतिमेत्यस्य मागीरय्या ह्यवस्य च । यतैश्च विविधैः पूतो नित्यस्नानद्विजार्चनैः  
मित्रामित्रे दयालुः स्यात्समः सर्वज्ञेषु च । परस्त्वं न हरेद्यस्तु तृणमप्यर्थागतम् ॥

कामप्रलोभादिनिर्मुक्त इन्द्रियैरजितः पुमान् ।

परदारान्न गृह्णाति मनसाऽपि गृहागतान् ॥ १३० ॥

नारद उवाच ।

लक्षणं किं वा प्रत्येकाक्षरजंगुणम् । कुक्षिचरणगोत्राणां तस्याग्रहिषु निधयम्

ब्रह्मोवाच ।

छन्दो गायत्रीगायत्र्याः सचिता देवता ध्रुवम् ।

शुक्लवर्णा त्वग्निमुखा विभ्वामित्रशृपिस्तथा ॥ १३८ ॥

ब्रह्मणश्शिर आरुढा रुद्रविष्णुहृदि स्थिता ।

उपनयने नियोगः स्यात्साङ्ख्यायनसगोत्रजा ॥ १३९ ॥

त्रैलोक्यचरणा क्षेत्रा पृथिवीकुक्षिसंस्थिता । चतुर्विंशतिस्थाने च पादादीमस्तकान्तके  
चतुर्विंशत्यक्षरं न्यस्य ब्रह्मलोकं स विन्दति । प्रत्यर्णदेवतांश्चात्वा विष्णुसाधुज्यमाप्नुयात्  
अपरं च प्रवक्ष्यामि गायत्र्या लक्षणं ध्रुवम् । सप्त पञ्च तथा ब्रह्मा यजुरष्टादशाक्षरम् ॥  
ज्वलनाविहकारान्तं जले स्थित्या शतं जपेत् । उपपातककोट्या तु तथातिपातकैरपि

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्ता यान्ति ममालयम् ।

ॐ अग्नेर्याक्नुंति यजुर्वेदेन जुष्टात्सोमं पिब स्वाहा ॥ १४४ ॥

विष्णुमन्त्रं महामन्त्रं तथा माहेस्वरस्य च । देवीसूर्यगणेशानां तथा ऋतुभुजां सुत ॥  
यस्य कस्य कुले जातो गुणवानेव तेर्गुणीः । साक्षाद्ब्रह्ममयो विप्रः पूजनीयः प्रयत्नतः ॥  
दानं दद्याच्च विधियत्सदा पर्वणि पर्वणि । भक्षयं लभते दाता जन्मकोटिशतान्प्रति ॥  
स्वाध्यायमिरतो विप्रो यः पठेत्पाठयेत्परान् । धर्मच भ्रातृभ्यो लोके सदाचारं धृतिं स्मृतिम्

पुराणसंहितां नूनं तथैव धर्मसंहिताम् ।

भ्रातृवित्था ॥ लोकेषु भ्रातृवित्था द्विजातिषु ॥ १४६ ॥

उर्व्यां विष्णुसमः सोऽपि पूजनीयो नरैः सुरैः ॥ १५० ॥

पद्मवलं चाक्षयं तस्य तीर्थभूता नद्यस्य च । समानमर्चनं कृत्वा नरो यात्यच्युतालयेन  
कदाचित्कथ्यते पापं विप्रः पापैर्न लिप्यते । बाण्डालस्य गृहे निष्ठो भास्करज्वलनीयया

याजनाध्यापनाद्यौनात्तथा वा सत्प्रतिग्रहात् ।

विप्राणां न भवेद्दोषो ज्वलनार्कसमा द्विजाः ॥ १५३ ॥

तान्प्रतिग्रहजान्दोषान्प्राणायाममन्त्रस्थिताः । नाशयन्तीह पापानि चायुर्ममिषाम्भरे ॥  
गायत्री यो जपेन्नित्यं प्राणायामसमन्विताम् । प्रत्यक्षरमरैर्युक्तां स्वाह्वेविन्यस्यतामपि

सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो जन्मकोटिकृतादपि ।

ब्रह्मणः पदवीं प्राप्य स गच्छेत्प्रकृतेः परम् ॥ १५६ ॥

प्राणायामयुतां तस्माद्गुणायत्रीं जप नारद ॥ १५७ ॥

नारद उवाच ।

प्राणायामाः कथं ब्रह्मन्प्रत्येकाक्षरदेवताः । तेषां न्यासं तथाङ्गेषु यद् वात यथाक्रमम् ।  
ब्रह्मोवाच ।

शुद्धदेशोत्थपानः स्याद्बुधदिप्राणोऽस्तिदेहिनः । तस्माद्गुदंसमाकुञ्च्य प्राणेन सह योजयेत् ।  
पूरकेण तदा पुत्र वृत्त्या कुम्भकमुत्तमम् । प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्रीं सत्रपेयुजिष्येत् ।  
अनेनैव जपेद्यस्तु महापातकसञ्चयः । सहस्रद्व्यारितेनैव क्षयं यात्युपपातकम् ॥ १५८ ॥  
प्रतियर्णस्यरं ज्ञात्वा विग्नसेधः फलेष्वरे । स जनो ब्रह्मतामेति फलं यत्तु न शक्नुमः ।  
प्रत्यक्षरस्य यद्देयं शृणु पुत्र यदाम्यहम् । यज्जप्त्वा च पुनर्मातुः स्तनं न विवति त्रिजगत् ।  
भानेयं प्रथमं ज्ञेयं वायव्यं तु द्वितीयकम् ।

तृतीयं सूर्यदैवत्यं चतुर्थं वै (यु) तं तथा ॥ १५९ ॥

पञ्चमं यमदैवत्यं वायव्यं षष्ठमुच्यते । सप्तमं बार्हस्पत्यं तु पार्श्वम्यं वायव्यं विदुः ।  
येन्द्रं च नयमं ज्ञेयं गान्धर्वं दशमं तथा । पौष्णमेकादशं चिदि मैत्रं द्वादशकं हगृन्म् ।  
त्याघ्रं त्रयोदशं ज्ञेयं वासवं ॥ चतुर्दशम् । मारुतं पञ्चदशकं सौम्यं षोडशकं हगृन्म् ।  
आङ्गिरसं सप्तदशं वैश्वदेवमतः परम् । आदिपतेनैकोनविंशं प्राजापत्यं तु पितृव्यम् ।  
सर्वदेवमयं ज्ञेयमेकाविंशकमक्षरम् । तैत्तिरीयं द्वाविंशकं ज्ञेयं ब्राह्मं ज्ञेयमतः परम् ॥ १६० ॥  
वैष्णवं तु चतुर्विंशमेता अक्षरदेवताः । अपकाले तु सञ्चिन्त्य तासु सायुज्येनां प्रवेष्टुम् ।  
ज्ञात्वा तु देवतात्मन्य वाङ्मयं विदितं भवेत् ।

रिपाद्विनिर्मुक्तो ब्रह्मणः पदवीं प्रवेष्टुम् ॥ १६१ ॥

भारद्वाजसंहिता

यद्भारं कटिदेशे तु भक्तारं नाभिमण्डले । गोकारं जठरे न्यस्य देकारं स्तनयोर्न्यसेत् ॥  
षकारं हृदये न्यस्य स्थकारं करदेशतः । घीकारं वदने न्यस्य मकारं तालुके न्यसेत् ॥

ह्रिकारं नासिकाग्रे च धिफारं चक्षुषोर्न्यसेत् ।

योकारं ॥ सुषोर्मध्ये योकारं च ललाटके ॥ १७७ ॥

नः कारं तु मुखे पूर्वं प्रकारं दक्षिणे मुखे ।

खोकारं पश्चिमे न्यस्य दकारं खोसरे न्यसेत् १७८ ॥

यात्कारं मूर्ध्नि विन्यस्य सवर्णव्यापी व्यपस्थितः ।

पतान्यित्यस्य धर्मात्मा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ १७९ ॥

महायोगी महाहामी परं निर्वाणकं व्रजेत् । सन्ध्याकाले पुनर्न्यासं शृणु त्वं तद्यथार्थतः

ॐभूरिति हृदये न्यस्य ॐभुवश्चिरसि न्यसेत् ।

ॐस्वःशिखायै तत्सवितुर्वरेण्यमिति कलेवरे ॥ १८१ ॥

ॐमर्गोदेवस्य धीमहीति नेत्रयोः । भों धियो यो नः प्रचोदयादिति करयोर्न्यसेत् ॥

ॐभापोऽयोतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम् ।

इत्युदकस्पर्शमात्रेण पापात्पूतो व्रजेदरिम् ॥ १८३ ॥

ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यम् ।

ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ॐ भावो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम् ।

इति सन्ध्याहृति सप्रणवां दशोङ्कारां सन्ध्याकाले कुम्भकेन धारत्रयं जप्त्वा सूर्योप-

स्थाने सावित्री चतुर्विंशत्यक्षरां जप्त्वा महाविद्याधिको भवति ॥ ब्रह्मत्वं लभते ॥

पद्कुक्षिलक्षणां पुत्र गायत्रीशृणु यदातः । यां श्रुत्वा तु परं ब्रह्मस्थानं गच्छति वै द्विजः ॥

भोंतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १८५ ॥

अथ गायत्री पञ्चशीर्षं लक्षणम् ।

ॐभूः । ॐवः । ॐस्वः । ॐमहः । ॐजनः । ॐतपः । ॐसत्यम् ॥

ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १८६ ॥

सध्याहृति तु गायत्री पुनर्न्यासं ॥ कारयेत् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यतां यजेत् ॥ १८७ ॥

ॐ नमः पादाभ्याम् । ॐ भुवः जानुभ्याम् । ॐ स्वः कट्याम् । ॐ महः शरीरे ।

ॐ जनः हृदये न्यसेत् । ॐ तपः करयोः । ॐ सत्यं ललाटे ॥

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ इति शिवायम् ।

एवं विप्रो न जानाति स एव ब्राह्मणाद्यमः । न तस्य क्षीयते पापमा भवेद्गुणमिति ।

इमां यो वेत्ति गायत्री सत्यवीजसमन्विताम् ।

स वेत्ति यतुरो वेदाद्योगज्ञानं जगत्त्रयम् ॥ १८८ ॥

य एतां मेव जानाति सगुह्यस्तपतः स्मृतः ।

तस्यायूनस्य विप्रस्य न देवं स्मृत्सार्यणम् ॥ १८९ ॥

न ज्ञानात्तदः कश्चित्सर्वं निश्चलं यजेत् । विद्याविर्गं तथा ज्ञानद्विजस्य कारणात् ।

निश्चलं सकलं तस्य मेवं पुणं यथाऽगुर्वी । यतुर्वेदाद्य गायत्री पुरा ये तु विना सः ।

यतुर्वेदाद्यगुर्वी गायत्री सोऽस्य स्मृता । दशमिर्जगत्प्रतिनिधिं शरीरे यः पुरा ॥ १९० ॥

त्रियुगं तु सद्यमेव गायत्री हस्ति कटिवाम् ।

गायत्रीमस्तत्रालायां सार्यं प्राणाय यो ज्ञेयम् ॥ १९१ ॥

यतुर्वेदाद्य गायत्री कर्णं प्राप्नोत्यस्यमवम् ।

विस्तार्य यो ज्ञेयिष्यं गायत्री हायने विप्रः ॥ १९२ ॥

तस्य वर्यं सार्यं वारि ज्ञानमोहिममुद्रयम् । गायत्र्युपासनात्तं वाग्वेदाद्युपासनात् ।

व्यगं गायत्रीमस्तत्रालायां सार्यं प्राणाय यो ज्ञेयम् ।

यतुर्वेदाद्य गायत्री ज्ञेयानि ज्ञेयानि दिने दिने ॥ १९३ ॥

जगदेव हरेः वर्यं सः सद्यमेव विनाम् । यतुर्वेदाद्य गायत्रीमस्तत्रालायां सार्यं प्राणाय यो ज्ञेयम् ।

यतुर्वेदाद्य गायत्री कर्णं प्राप्नोत्यस्यमवम् । विस्तार्य यो ज्ञेयिष्यं गायत्री हायने विप्रः ॥ १९४ ॥

विस्तार्य यो ज्ञेयिष्यं गायत्री हायने विप्रः ।

यतुर्वेदाद्य गायत्री कर्णं प्राप्नोत्यस्यमवम् ।

घरदानात्समायान्ति सर्वाः सम्पत्तयस्तथा । विष्णुर्ब्रह्मण्यतामेति सदा विप्रप्रसादतः  
 नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ॥  
 मन्त्रेणैवं हरिं यस्तु पूजयेत्सततं नरः । प्रसादी च हरिस्तस्य विष्णुसायुज्यतां प्रप्तेन्  
 य इदं शृणुयात्पुण्यमाख्यानं धर्मचिप्रहम् । तस्य पापं क्षयं याति जन्मजन्महृत् न यत्  
 यः पठेत्पाठयेद्वाऽपि उपदेष्टा जनस्य च । न तस्य पुनरावृत्तिः स्वर्गमक्षयमस्तुमे ॥ २० ॥  
 धनं धान्यं लभेद्वा राज्यमोगानरोगिताम् । सत्सुखं च शुभां कर्त्तुं देववद्रमने दिवि ॥

इति श्रीपाद्पुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे ब्राह्मणसंस्कारो

नामाष्टसप्तत्यारिस्तमोऽध्यायः ।

## एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### पञ्चविधस्नानानि

नारद उवाच ।

नय प्रसादनो ग्रानो विप्रः पुण्यमगच्छ यः । यथा जानामि देवेरा विप्रया ब्रह्मजाधमम्

मूदि शीघ्रं सुरधेष्ठ यदि प्रीतिं मयीच्छति ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एतानैर्दशविधैर्मुक्तः स्वर्गैश्च तर्जनादिभिः । सङ्ख्यान्तं वमर्हतीत्यर्थः न एव ब्रह्मजाधमम् ॥ ३ ॥

देवब्राह्मणैर्मुक्तो यो देविद्यादिभिस्त्वया । स्वर्गशीलादिभिर्येव धोतजानामि नरं ॥

पञ्चस्नानानि विप्रानां कर्त्तव्यानि मर्हदिति । आनेयं वायवीयं वायव्यं दिग्देवैश्च

आनेयं मरुतास्नातमग्निर्वायुमुदरने । आपोहिष्ठेति ये ज्ञातं वायव्यं गौरश्च शृण्वन्

अद्विरागवर्षाभिर्दिप्यं स्नानमुदाहृतम् । एतेऽस्तु मन्त्रश्च ब्रह्मार्णवः शान्तिस्तु

मुत्तरीयवर्तलान् शालग्रामशिलास्तु च । गवां मृद्वोदकं श्वेदं विजराहोदकं च यत् ॥

गुरुजामेव मुक्तयानां पूज्यान्मृत्तमिति शृणुति ॥ ८ ॥

स्यागतीर्थादिभिर्यज्ञैर्धन्तहोमादिभिस्तथा । यत्फलं लभते धीरः स्नानैरेतैस्तु तत्फलम्  
 तर्पणैश्च विनिर्मुक्तः पितृणामेव नित्यशः । पितृहा नरकं याति सन्ध्याहीनस्तु विप्रः  
 मन्त्रप्रयतपिहीनश्च वेदविद्यागुणैरपि । यज्ञदानादिभिर्मुक्तो ब्राह्मणश्चाधमाधमः ॥ ११ ॥  
 यत्तार्थका देयलका नाक्षत्रा ग्रामयाचकाः । परदारस्तानित्यं पञ्चैते ब्राह्मणाधमाः  
 मन्त्रसंस्कारहीनाश्च शुचिसंयमवर्जिताः । मोघाशिनो दुरात्मानो ब्राह्मणाधमाधमाधमः  
 अपिस्तेयरतामूढाः सर्पधर्मविषर्जिताः । उन्मार्गगामिनो नित्यं ब्राह्मणाधमाधमाधमाः  
 धादादिधर्मरहिता गुरुसेवाविषर्जिताः । जन्मत्राभिन्नमर्यादा एते सर्वाधमाधमाः  
 न सन्माध्या इमे दुष्टास्सर्वे निरयनामिनः । अमेध्यास्ते दुराचारा भपूज्याश्च समस्ताः  
 यद्गोपजीविताः श्रेण्या गोघाहनरता द्विजाः । कादृष्टपुपजीवाश्च गणयामुर्विकाश्च ये  
 बालापण्यामिचाराश्च भगवत्प्राथम्याधिताः । हतप्राश्च गुरुप्राश्च एते सर्वाधमाः स्मृताः  
 ये घैवान्ये हताचाराः पाण्डवा धर्मनिन्दकाः । दूषकादेवभेदानामेते ब्रह्मद्विषो द्विजाः  
 तथापि ब्राह्मणश्चैव न हन्यथ्यः कदाचन । एनं हत्वा द्विजप्रेष्ठं ब्रह्महा पुण्यो मयेन  
 न हन्यथातिपु श्लेष्ठेषु तथाचाण्डालजातिषु । पतिनोपागमनोनिध्यां न हस्त्यः कदाचन  
 सर्वजातिस्त्रियं गत्वा सर्वाभक्ष्यस्य भक्षणात् । द्विजत्वं न विनश्येत्पुण्याद्विषो मयेनूनं  
 नारद उवाच ।

ईदं दुष्टं न हत्वा पश्चात्पुण्यं समाचयेत् । कां गतिं यात्यसौ विप्रः सर्वलोकनिगमः  
 ब्रह्मोपाय ।

हत्वा सर्वांश्च पापानि पश्चात्पुण्यं त्रिभिर्द्विवः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्ब्रह्मचर्यं च ।

शत्रु पुत्रकथां रम्यां विविधां च पुरातनीम् ।

कस्यचिद्ब्राह्मणस्यापि यौवनकथाः सुतोऽमरम् ॥ २५ ॥

कथां यौवनसमन्तमोहाच्च पूर्वचर्यम् । चाण्डालीमगमत्तपस्तप्ताः त्रिपत्तोऽमरम्  
 तस्यामुत्तादिदमन्तेन पुत्रा दुहितस्तथा । स्वदुष्टं वदित्वाय गृहे तस्याभितरितम्

अमरमहर्षे न कथ्यन्ति पुत्रया च सुतां स्वयम् ।

तमुवाच सदा सा च भगवत्पुत्रां सुरम् ॥ २६ ॥

तामुवाच तदा शौचं गदितुं नार्हसिप्रिये । उत्कारोजायते तस्याः श्रवणात्सततं मम ॥

एकदा ॥ मृगान्वेषाच्छांतः सुप्तो गृहे दिवा ।

गृहीत्वा सा सुरां तस्य हसित्वा च मुखे ददौ ॥ ३० ॥

ततो विप्रमुखादग्निः प्रजज्वाल समन्ततः । उवाचा तु सकुटुम्बां तामदहन् च गृहं घसु  
हाहाहृत्वा समुत्पाय विललाप तदा द्विजः । विलापान्ते च जिज्ञासा समारब्धाच तेन हि  
कुलधाम्निः समुद्रभूतो गृहे दाहः कथं मम । ततः खे तमुवाचेदतिजस्ते ब्राह्मणस्य च ॥  
कथिते तद्यथावृत्ते ब्राह्मणो विस्मयं गतः । विमृश्यायंमुवाचेद् पुनः खेऽस्य हितं वचः  
विप्रतटं सुतेजस्ते तस्मादर्धमचरो मय । ततो मुनिपराङ्मत्वा पप्रच्छात्महितं द्विजः ॥

तमुञ्जुर्मुनयः सर्वे दानधर्मे समाचर ॥ ३६ ॥

ब्रूय उचुः ।

पूयते सर्वपापेभ्यो ब्राह्मणा नियमैर्व्रतैः । नियमाञ्छास्त्रदृष्टांश्च पूतयार्थमुपाचर ॥

बान्द्रायणांश्च कृच्छ्रांश्च तप्तकृच्छ्रान्पुनः पुनः ।

भ्राजापत्यांश्च दिव्यांश्च दोषशोषाय सत्वरम् ॥ ३८ ॥

गच्छतीर्षानि पूतानि गोविन्दाराधनं कुरु । क्षयमेप्यन्ति पापानि नचिरेण समन्ततः ॥  
पुण्यतीर्थप्रभाषाच्च गोविन्दस्य प्रभाषतः । क्षयमेप्यन्ति पापानि ब्रह्मत्वं प्राप्स्यते मयान्  
गृणु तात यथावृत्तं कथयामः पुरातनम् । आहारार्थी पुरा यत्स गच्छेत् यिनतासुतः ॥  
पतङ्गोऽपि बहिः साक्षादण्डाग्निस्सूत्य शवकः । धुपार्थीमातरं प्राहमर्ध्वमेदीयतामिति  
ततः पर्यंतसङ्काशं गरुडं च महाबलम् । इडा माता महाभागा तनयं दृष्टमानसा ॥ ४३ ॥

विनतोवाच ।

क्षुधां ते वाधितुं पुत्र ॥ श्वनोमि समन्ततः । तव तातस्तपस्तेपे लीहित्यस्योत्तरेतटे ॥  
कश्यपो नाम धर्मात्मा साक्षाद्भोकपितामहः । तत्र गच्छ स्वपितरं पृच्छ कामं यथा तव  
अस्योपदेशस्तत्तात धुधा ते शम्भेप्यति ॥ ४५ ॥

ब्रूय उचुः ।

ततोमातुर्वचः श्रुत्वा घैनतेयो महाबलः । अगमत्पितुरभ्यासं समुत्तान्मनोजयः ॥



दृष्ट्वा तातं मुनिध्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम् । प्रणम्य शिरसा वाक्यमुवाच पितरं सगः ।

धैरतेय उवाच ।

भक्षार्थी समनुप्राप्तः सुतोऽहं ॥ महात्मनः । क्षुधया पीडितो नाथ भक्ष्यं मे दीयतां प्रभो ।

ऋषय ऊचुः ।

ततो ध्यानं समालम्ब्य ज्ञात्वा तं चिन्तासुतम् । पुत्रस्नेहाद्वयश्चेदं प्रोवाचमुनिसत्तमः ।

कश्यप उवाच ।

अनेकशतसाहस्रानिपादाः सरितां पतेः । तीरे तिष्ठन्ति पापिष्ठास्तस्मिन्मध्य सुखी नृपः ।

तीर्थमुत्सादयन्तिस्म तीर्थकाका दुरासदाः । विना विप्रं निपादैषु भक्षयत्वमलक्षितम् ।

ऋषय ऊचुः ।

इत्युक्तः प्रययौ पक्षी भक्षयामास तांस्ततः । अलक्ष्य भावोविप्रोऽपिगिलितस्तेनपक्षिणा ।

स तस्य गलके गाढं लालगीतिद्विजस्तदा । यमितुं गिलितुं चापि न शशाकद्विजोऽसमः ।

गत्याऽथ पितरं प्राह किमेतदिति मे पितः । लानं मे गलके सख्यं प्रतिकर्तुं न शक्नुयामि ।

ऋषय ऊचुः ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कश्यपस्तमुवाच ॥ ५५ ॥

कश्यप उवाच ।

मयोक्तं ते पुरा घटस्य ग्राहणोऽयं न बुध्यसे ॥ ५६ ॥

ऋषय ऊचुः ।

इत्युक्त्वा ॥ मुनिर्धोमान्द्विजं प्राह स धार्मिकः ॥ ५७ ॥

कश्यप उवाच ।

भागच्छ त्वं ममासन्नं हिनं ते प्रवदाम्यहम् ॥ ५८ ॥

ऋषय ऊचुः ।

तमुवाच तदा विप्रः कश्यपं मुनिपुङ्गवम् ॥ ५९ ॥

विप्र उवाच ।

सुहृदो नित्यं सर्वे सम्बन्धिनः प्रियाः । भयगुराः श्यालकाश्च तास्तथा दानवपतेः ।

एनेः सह प्रयास्यामि निरयं धापि वा शिषम् ॥ ६१ ॥

शृण्व ऊचुः ।

तस्य तद्वचनं धृत्या विस्मितः कश्यपोऽप्रवीम् ॥ ६२ ॥

कश्यप उवाच ।

द्विजानां च कुले जातश्चाण्डालैः पतितो भवान् ।

पुरयास्ते प्रतिवृन्ते घोरे च निलये ध्रुषम् ॥ ६३ ॥

राय निवृत्तिस्तेषां नैवास्तीदृक्पञ्चन । सर्वोश्चैव दुराचाराश्चाण्डालापापकारिणः

दोषास्त्ववपा नराः पञ्चारसुधी भवति नान्यथा ॥ ६४ ॥

महानाथदि वा मोहाद्वृत्त्या पापं मुदारुणम् ।

ततो धर्मं धरेद्यस्तु स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ६५ ॥

पह्ण धरेद्धर्मं पापे कुर्यान्मतिं पुनः । शिलानाथं यथाऽऽरुढः सागरे संनिमज्जति॥

चासर्पाणि पापानि तथा दुर्गतिस्तद्वयम् । उपशान्तो भवेत्पश्चात् क्षीरं शमयिष्यति

शृण्व ऊचुः ।

तमुपायं महाप्राज्ञं द्विजं मुनिवरोत्तमम् ॥ ६६ ॥

विप्र उवाच ।

देमां ॥ जहातीह जगः सर्वांश्चवान्धवान् । ततःप्राणं च त्यक्ष्यामि खगेमर्माघातिनि

नोधेरयजतु मे बन्धून्प्रतिष्ठा मे दृढात्मनः ॥ ७१ ॥

शृण्व ऊचुः ।

ततस्तादृश्यमुवाचेद् मुनिर्दक्षवधे भयात् ॥ ७२ ॥

कश्यप उवाच ।

उद्धमेतान्सपिप्रांश्च म्लेच्छानेतान्समन्ततः । बनेषु पर्वतान्तेषु दिक्षु तान्पतगेश्वर ॥ ७३ ॥

शृण्व ऊचुः ।

उद्धवाम ततः शीघ्रं दोषज्ञः पितुराज्ञया । ततः सर्वेऽभयव्यक्ता अकेशाः श्मधुवर्जिताः

यधनाभोजनप्रीताः किञ्चिच्छम्भुयुताश्च ये । अग्नीं च नानकाः पापादक्षिणस्यामवाचकाः

दृष्ट्वा तातं मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम् । प्रणम्य शिरसा धाम्यमुवाच पितरं स्वाम् ।  
चैनतेय उवाच ।

भक्षार्थी समनुप्राप्तः सुतोऽहं ते महात्मनः । शुचया पीडितो नाथ मध्यं मे दीयतां प्रभो ।  
शृणु उचुः ।

सतो ध्यानं समालम्ब्य ज्ञात्वा तं विनतासुतम् । पुत्रस्नेहाद्वचश्चेदं प्रोवाचमुनिसत्तम ।  
कश्यप उवाच ।

अनेकशतसाहस्रानिपादाः सरितां पतेः । तीरे तिष्ठन्ति पापिष्ठास्तत्सम्पदस्य सुखी मया ।  
तीर्थमुत्सादयन्तिस्म तीर्थकाका दुरासदाः । विना विप्रं निपादैषु भक्षयत्त्वमलक्षितम् ।  
शृणु उचुः ।

इत्युक्तः प्रययौ पक्षी भक्षयामास तांस्ततः । अलक्ष्य भावोविप्रोऽपिगिलितस्तेनपश्चिन्तितः ।  
स तस्य गलके गालं लालगीतिद्विजस्तदा । यमितुं गिलितुं चापि न शशाकद्विजोत्तम ।  
गत्याऽथ पितरं प्राह किमेतदिति मे पितः । लानं मे गलके सख्यं प्रतिफलितुं न शक्नुयाम् ।  
शृणु उचुः ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कश्यपस्तमुवाच ॥ ५५ ॥

कश्यप उवाच ।

मयोक्तं ते पुरा पतसः प्राह्मणोऽयं न बुध्यसे ॥ ५६ ॥

शृणु उचुः ।

इत्युक्त्वा च मुनिर्धौमाग्निर्जितं प्राह स धार्मिकः ॥ ५७ ॥

कश्यप उवाच ।

भागच्छ त्वं ममासन्नं दिनं ते प्रवदाम्यहम् ॥ ५८ ॥

शृणु उचुः ।

तमुवाच तदा विप्रः कश्यपं मुनिपुङ्गवम् ॥ ५९ ॥

विप्र उवाच ।

ममैते सुदृढो निःस्वर्गं सर्वे सख्यविवक्तः त्रिधाः । श्वशुराः श्यालकाः श्याताः सखायाश्च श्यावः ।

एनेः तद प्रयाम्यामि नित्यं वापि वा शिषम् ॥ ६१ ॥

श्रवण उचुः ।

तस्य तद्वचनं धृत्वा विस्मितः कश्यपोऽप्रर्षान् ॥ ६२ ॥

कश्यप उवाच ।

द्विजानी च बुद्धे जातश्चाण्डालैः पतिनो भवान् ।

पुरातन्ने प्रनिवृत्ते घोरे च निरर्थे ध्रुपम् ॥ ६३ ॥

यिराप निष्कृतिस्त्रेधां मैवाभ्सीदकचक्षुः । सर्वोद्दीव दुराचाराश्चाण्डालापापकारिणः

दोषांस्त्वत्पथा नरः पश्चात्सुखी भवति नान्यथा ॥ ६५ ॥

महामाद्यदि वा मोहाददृष्ट्या पापं कुरुष्वणम् ।

तनो धर्मं चरेत्सु ॥ गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ६६ ॥

पापद्वयं चरेद्धर्मं पापे कुर्यान्मति पुनः । शिलानार्थं यथाऽऽरुढः सागरे संनिमज्जति ॥

दृष्ट्वासर्पाणि पापानि तथा दुर्गतिस्तद्वचम् । उपशान्तो भवेत्पश्चात्तं दोषं शमयिष्यति

श्रवण उचुः ।

तमुपायं मदाप्राज्ञं द्विजं मुनिपरोत्तमम् ॥ ६६ ॥

विप्र उवाच ।

यदिमां न जहातीह रागः सर्वोद्भवान्धवान् । ततः प्राणं च त्यक्त्यामि खगेमर्माधघातिनि

मोचेरपञ्च मे वन्धून्प्रतिज्ञा मे दृढात्मनः ॥ ७१ ॥

श्रवण उचुः ।

ततस्ताश्चर्यमुपाचेद् मुनिर्द्वैतवधे भवात् ॥ ७२ ॥

कश्यप उवाच ।

उद्धमेतान्सपिमांश्च म्लेच्छानेतान्समन्ततः । वनेषु पर्वतान्तेषु दिक्षु तान्पतगेश्वर ॥ ७३ ॥

श्रवण उचुः ।

उद्धवाम ततः शीघ्रं दोषद्वयं पितुराश्रया । ततः सर्वेऽमवन्वयका अवेशाः श्मधुपर्जिताः

यपनाभोजनप्रीताः पिञ्जिच्छ्मधुमुताश्रये । अग्नीच नानकाः पापादक्षिणस्यामवाचकाः

घोराः प्राणिषधे प्रीता दुरात्मानो गवाशिनः ।

नैर्ऋते कुयदाः पापा गोप्राह्मणघघोचताः ॥ ७६ ॥

खर्पराः पश्चिमे पूर्वे निवसन्ति च दारुणाः । धायव्यां च तुरुष्काश्च श्मश्रुपूर्णागवाशिनः ।  
अश्वपृष्ठसमारुढा प्रयुद्धेष्वनिवर्तिनः । उत्तरस्यां च गिरयो म्लेच्छाः पर्वतवासिनः ।  
सर्पभक्षा दुराचारा घघयन्धरताः किल । ऐशान्यां निरयाः सन्ति कर्तृणां वृक्षवासिनः ।

एते म्लेच्छाः स्थिता दिक्षु घोरास्ते शस्त्रपाणयः ।

येषां च स्पर्शमात्रेण सचैलो जलमाविशेत् ॥ ८० ॥

एतेषां च कलौ देशोऽप्यकाले घर्मयर्जिते । संस्पर्शं च प्रकुर्वन्ति विस्रलोमात्समन्ततः ।  
म्लेच्छांस्तान्मोचयित्वा तु क्षुधया परिपीडितः ।

पुनराह द्विजस्तात क्षुधा मे बाधतेतराम् ।

अथदद्मरुडं तत्र कश्यपः कृपया हुतम् ॥ ८२ ॥

कश्यप उवाच ।

तिष्ठन्ती विपुली तत्र जिघांस् गजकच्छपी । अग्रमेयी महासर्षवी सागरस्पर्कदेशतः ।

तावप्सु च हुतं घत्स क्षुधां ते वारयिष्यतः ॥ ८३ ॥

श्रुय्य उचुः ।

स पितुर्वचनं धृत्वा तत्र गत्वाऽमिषय ती ।

नखैर्मित्वा कूर्मगजौ महासर्षवी महाजयः ॥ ८४ ॥

खमुत्पपात ती धृत्वा विद्युद्गमो महाशूलः । आघाततां न गच्छन्ति नगाश्चमन्दपादयः ।  
सती योजनलक्षे द्वे गत्वा मास्तरहसा । महत्यां जम्बुशाखायां निवपात महाशूलः ।

मग्ना सा सहसा शाखा तां पतन्तीं खगोभ्वरः ।

गोप्राह्मणघघाद्गीतो दधार तरसा बली ॥ ८५ ॥

धृत्वा तां दक्षिणदिगाद्दधन्तं खे महाशूलम् । गत्वा विष्णुरस्याचेदं नररूपयती इति ।

विष्णुरस्याच ।

चाकसो किमर्थं पतनोश्चर । विधत्त महतीं शापां महान्ती गजकच्छपी

तमुवाच द्विजस्तस्मिन्नरूपधरं हरिम् । गरुडोऽहं महाबाहो खमरूपः स्वकर्मणा ॥  
करयपस्य मुनेस्सुनुर्धिनतागर्भसम्भवः । पश्यैतो च महासत्त्वो महत्कार्यं मया धृतौ ॥

न धरा च ममाधारो न वृक्षा न च पर्वताः ।

मनेकयोजनागूढ्यं दृष्ट्वा जम्बूमहीरहम् ॥ ६२ ॥

मपतं तस्य शाखायां सहस्रौपरिमक्षितम् ।

मग्ना सा सहस्रा शाखा तां च धृत्वा ममाम्यहम् ॥ ६३ ॥

कोटिकोटिसहस्राणां व्रक्षणां गवां यथात् । अयं तत्र विषादो मे सहस्राप्रापिराहुर्बुध  
किं करोमि कथं यामि को मे वेगं सहिष्यति ॥ ६४ ॥

शृणु उचुः ।

रत्युक्तः पतगध्रेष्ठं प्रोवाचेद् हरिस्तदा ॥ ६५ ॥

विष्णुत्वाच्च ।

अस्मदुवाहुं समारुह्य भक्षेमौ गजकच्छपौ ॥ ६६ ॥

गरुड उवाच ।

ममाधारं न गच्छन्ति सागराश्च न गोतमाः । अथ चैवं महासत्त्वं कथं त्वं धारयिष्यसि  
अनेनारायणादन्यः को मां धारयितुं क्षमः । त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेद्योवेगं मे सहिष्यति  
हरित्वाच्च ।

स्वकार्यमुद्धरेत्प्राज्ञः स्वकार्यं कुरु साम्प्रतम् ।

हृत्वा कार्यं खगध्रेष्ठ विज्ञानीये च मां ध्रुवम् ॥ ६६ ॥

शृणु उचुः ।

महासत्त्वं च तं दृष्ट्वा विमृश्य मनसाखगः । एवमस्तिष्ठति चोक्त्वा च पपात ॥ महाभुजे  
न चञ्चल भुजस्तस्य सन्निपातखगेशितुः । तत्र स्थित्वा स तां शाखां मुमोच पर्वतालये  
शाखापतनमात्रेण सचराचरफानना । चञ्चल वसुधा चैव सागराः प्रवक्त्रिरे ॥ १०२ ॥

ततश्च खादितौ सत्त्वौ सहस्रा गजकच्छपौ ।

वृत्तिं ॥ प्राप्तवान्सोऽपि ध्रुवा तस्य न शाम्यति ॥ १०३ ॥

एतज्ज्ञात्वा तु गोपिन्दस्तमुवाच खगेश्वरम् ॥ १०४ ॥

विष्णुस्त्वाच ।

भुजस्य मम मांसं ॥ भक्षयित्वा सुखी मय ॥ १०५ ॥

शृणु ऊचुः ।

इत्युक्ते प्रभुरं मांसं भुजस्य तस्य तेन हि । खादितं क्षुधया पुत्र प्रणं तस्य न विप्रते ।

तमुवाच महाप्राज्ञश्चराचरगुरो हरिम् ॥ १०६ ॥

येनतेय उवाच ।

कस्त्वं किं वा प्रियं तेऽद्य करिष्यामि च साम्प्रतम् ॥ १०७ ॥

नारायण उवाच ।

यिदि नारायणं मां हि त्वत्प्रियार्थं समागतम् ॥ १०८ ॥

शृणु ऊचुः ।

रूपं स्वं दर्शयामास प्रत्ययार्थं च तस्य वै । पीतधस्त्रं घनश्यामं चतुर्भुजमतोहरम् ।  
शङ्खचक्रगदापद्मधरं सर्वसुरेश्वरम् । तं च दृष्ट्वा गरुडमांश्च प्रणम्य शिरसा हरिम् ।

येनतेय उवाच ।

प्रियं किं ते करिष्यामि घद नः पुरुषोत्तम ॥ १११ ॥

शृणु ऊचुः ।

तमप्रधीग्महातेजा देवदेवेश्वरो हरिः ॥ ११२ ॥

विष्णुस्त्वाच ।

मय मे वाहनं शूर सुखे त्वं सार्वकालिकम् ॥ ११३ ॥

शृणु ऊचुः ।

तमुवाच खगश्रेष्ठो धन्योऽहं विबुधेश्वर । सफलं जन्म मे नाथ त्वां च दृष्ट्वाऽद्यमे प्रमं  
प्रार्थयित्वा च पितरावागमिष्यामि तेऽन्तिकम् । प्रीतो विष्णुस्त्वाचेद्भुं मयत्पमज्जगाम  
अपथ्यः सर्वभूतेभ्यः कर्मतेजश्चामत्समम् । सर्वत्र ते गतिश्चास्तु निखिलं तु सुखं भुक्त्वा  
द्रुतं सपं यत्ते मनसि वर्तते । यथेष्टं प्राप्तिमाहारमकष्टेन प्रलप्स्यसे ॥ ११७ ॥

व्यसनान्मातरं सद्यो मोक्षयिष्यसि नान्यथा ।

एवमुक्त्वा हरिः सद्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ११८ ॥

असौऽपि पितरं गत्वा कथयन्नाखिलंततः । स तच्छ्रुत्वा प्रहृष्टात्मा तनयं पुनरप्रचीत्  
कश्यप उवाच ।

न्योऽहं च क्षगश्रेष्ठ धन्या ते जननीशिवा । धन्यं क्षेत्रे कुलं यैव यस्यपुत्रस्तपमीदृशः  
यस्य पुत्रः कुले जातो वैष्णवः पुरुषोत्तमः ।

कुलकोटिं समुद्रभृत्य विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥ १२१ ॥

विष्णुं यः पूजयेन्नित्यं विष्णुं ध्यायेत् गावति ।

अपेन्मन्त्रं सदा विष्णोः स्तोत्रं तस्य पठिष्यति ॥ १२२ ॥

साहं च मजेन्नित्यमुपवासं हरेर्दिने । क्षयाच्च सर्वपापानां मुच्यते नात्र संशयः ॥

तु त्रिपुति गोविन्दो मानसे च सर्वेषु हि । स एव नन्दार्द्रलो विष्णुलोके महीयते ॥

जले विष्णुः स्थितो नित्यं नम्यस्थाने च सत्पथे ।

गवि पित्रे सदा स्वर्गे ब्रह्मागारे शुनिर्गृहे ॥ १२५ ॥

पुं च अपेयस्तु स पुण्यः पुरुषोत्तमः । जगत्कोटिसहस्रेभ्यः कृत्वा सत्कर्मसञ्चयम्

क्षयाच्च सर्वपापानां विष्णोः किङ्करतां व्रजेत् ।

धन्योऽसौ मानवी लोके विष्णोस्सादृश्यमाव्रजेत् ॥ १२७ ॥

यःसुरपतेः पूज्यो लोकनाथोऽज्युतोऽध्ययः । सुप्रसन्नोमयेयस्य ॥ एव पुरुषोत्तमः

मिथ्यदुमिथर्ममस्तेनानाधिधैरपि । विष्णुर्नलभ्यते देवैस्तथाऽसौ विप्रलम्बने ॥ १२८ ॥

तर्नाव्यसनाक्षोरान्मातरं त्वं प्रमोक्षय । ततोयास्यसि देवेश हृत्वा मानुःप्रतिक्रियाम्

श्रूयय ऊचुः ।

शृहीत्या जनकस्याहं लब्ध्वा विष्णोर्वरं मदम् ।

अमयापार्ष्वं गतो हृष्टस्तौ व्रजन्व्याग्रजः स्थितः ॥ १३१ ॥

विनतोवाच ।

अमपद्मोत्तमं तेऽद्य पुत्रं कृष्टं विनापि च । विमर्षं वा विन्दम्यग्ने विन्मयाग्नित्पदम्



शृण्व ऊचुः ।

स मातुर्यचनं धृत्या गरुडः प्रहसन्निव । कथयामास वृत्तान्तं सा धृत्या विस्मिता ।  
चिनतोघाच ।

कथं च दुष्करं कर्म शिशुमाघात्त्वया कृतम् ।

धन्याऽहं मे कुलं धन्यं यस्त्वं विष्णुसखोऽभवः ॥ १३४ ॥

तद्व्या परं महारमानं दृष्ट्वा मे हृष्यते मनः । पौरुषेण त्वया यत्स उद्बुध्नं मे पुन्यं  
सुपर्ण उवाच ।

मातः किते करिष्यामि प्रियमेव तदुच्यताम् ।

कार्यं कृत्वाऽथ यास्यामि पार्श्वं नारायणस्य च ॥ १३६ ॥

शृण्व ऊचुः ।

एतच्छ्रुत्वा तु सा प्राह गरुडं चिनतासती । महद्बुध्नं च मे चास्ति कुलनात्प्रतिवि-  
भगिनी मे सपत्नी सा यजिताऽहं तया पुरा । तस्या दास्यमहं प्राप्ताफन्तारयतिमा-  
कृष्णं कृत्वा विनैर्दयं तस्या पुत्रैर्महोरगीः । उपःकालेऽथ दत्ता च भर्षोऽप्यं कृष्णता-  
ततोऽहमपदं तत्र सदा चार्यं कयासितः । मिथ्या ते यचनं मातः प्रतिज्ञां साऽकरो-  
तनोऽहमप्रयंकद्वं शपथं नागमातरम् । यदीमं कृष्णताम्येति हरेरश्वमहं ॥

कृता भवामि ते दासीत्यहमेतत्तदाऽवदम् ॥ १४१ ॥

ततस्तस्मिन्देरेक्ष्यं कृते कृष्णे च कृत्रिमेः । तस्याः पुत्रेभ्य धूर्तैश्च दास्यमिदमहं ।

यन्मिमकाले दामीष्टु तस्या हृष्यं ददाम्यहम् ।

तन्मिमकाले ददामीत्यं यास्यामि कुलजन्त ॥ १४३ ॥

गरुड उवाच ।

पृच्छ शीघ्रं च माज्ज्नां करिष्यामि प्रतिक्रियाम् ।

महाविष्यामि नाशानाम्प्रतिज्ञां मे यगार्थनः ॥ १४४ ॥

शृण्व ऊचुः ।

ननः कद्वमुपायेदं विज्जा दुःखिना मनी ॥ १४५ ॥

विनतोवाच ।

अभीष्टं वद कल्याणि येन मुच्येय कृच्छ्रतः ॥ १४६ ॥

शृणु ऊचुः ।

प्रवीत्सादुराचारा पीयूषं दीयतामिति । एतच्छ्रुत्वा तु वचनममपत्ता च निष्पन्ना  
ततः शनैरुपागम्य तनयं प्राह दुःखिता ॥ १४७ ॥

विनतोवाच ।

अमृतं प्रार्थयत्पापा तात किंवा करिष्यसि ॥ १४८ ॥

शृणु ऊचुः ।

धृत्वा पापकं गण्डमांश्च महाक्रोधसमन्वितः ॥ १४९ ॥

गण्ड उवाच ।

अमृतं चानयिष्यामि मातर्मा विमुञ्जी भव ॥ १५० ॥

शृणु ऊचुः ।

एवमुक्त्वा तु तरसा स वतः पितुरन्तिकम् ॥ १५१ ॥

गण्ड उवाच ।

अमृतं चानयिष्यामि मातुरर्थेऽधुनाऽनघ ॥ १५२ ॥

शृणु ऊचुः ।

स तस्य वचनं धृत्वा मुनिः प्राह एगैश्चरम् ॥ १५३ ॥

कश्यप उवाच ।

सत्यलोकरथ वै सोर्ध्वं दिश्यकर्मचिनिर्मिता । पुरीचाम्नि सम्रा वस्था देवानांदिनदेवते  
बहिनाकारदुर्लभ्या दुर्धर्मा चासुरैः सुरैः । वक्ष्ये निर्मिगो देवः सुरैस्तत्र मदायतः ॥

यं यं पश्यति षीटः स एष भस्मनां यत्रेत् ॥ १५४ ॥

सुपर्ण उवाच ।

नारायणाद्भरो हृत्पो भया च मुनिसत्तम । भयं नाभ्यर्ह मे तान् शुचशुचयपारनि ॥

शृणुय ऊचुः ।

तपमुत्तया गच्छमान्स उदुधृत्यसागराजलम् । जगामाकाशमाविश्य तगन्धोर्ध्वमनोज्ञः  
क्षपातेन तस्यैषरजः समुद्रगतं यदु । तस्यान्तिकं न च त्यक्तमगमस्य तपः ।  
तथा घञ्चूजलेनापि बहिर् निर्घापयदुपली । रजोमिः परिवूर्णाक्षो न सुरस्तं च पर्यणि  
तथान रक्षियगोस्तानमृतं चादरदुपली । मानयन्तं च पीयूषं खरं गत्वा शतत्रय ।

येतापतं समारुढो वाक्पमेतदुवाच ह ॥ १६२ ॥

इन्द्र उवाच ।

जगत्करधरः कस्त्यं पीयूषं हारसे यजान् । अग्निं सर्वदेवानां कृत्वा जीयेरितः वयम् ।  
विशिगैरग्निसद्भाशैर्नयामि यममन्दिरम् ॥ १६४ ॥

शृणुय ऊचुः ।

धृत्वा पावयं हरेः कोपादुपाय ॥ महाबलः ॥ १६५ ॥

गदह उवाच ।

नयामि तव पीयूषं दर्शय स्वयराजसम् ॥ १६६ ॥

शृणुय ऊचुः ।

यतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्जयान विशिलैः शिलैः । यथा मेदगिरेः शृङ्गं तोयवर्णेन तोय  
नक्षीरानिसद्भाशैर्विभेद गच्छो गच्छम् । मानलि च रथं चक्रं तथा देवानुत्तमान् ।  
ध्वजिनोऽसौ महाबाहुर्मांस्तर्जिर्वाजुर्द्वयः । विमुखाः पक्षपातेन सर्वे देवगणान्तराः ।  
तस्मिन् कोटिनो विष्णुर्जयान कुन्तिरेव तम् ।

कुन्तिरेव्यवधानेन न च सुखो महात्मनः ॥ १६७ ॥

स्वं मोघं मिदुर् दृष्ट्वा हस्तिमौलोऽम्बलदा । नन्विष्य ततो मुवाचनेवतापतेन  
सुतगामि गच्छन् वेगाद्भूज्यमानः । अश्वरथसु सुगन्धेष्टः सर्वदेवतापते ॥ १६८ ॥

इन्द्र उवाच ।

यदि कल्पयति त्वं नृपतिदात्री नारायणनि । मुञ्जगन्धर्वगः सर्वे विधाने हि भूयं त्वा  
न्निद्रा मे भवेच्छा न कलं जीविष्यसे मे । नन्दार्द्रं हस्तिनामि शम्भवेन त्वत्पते ॥

गरुडमानुषाच ।

यस्मिन्काले ह्यदासी सा माता मे दुःखिता सती ।

पिदिता सर्वलोकेषु हरेऽमृतं हरिष्यसि ॥ १७५ ॥

श्रुपय ऊचुः ।

एयमुक्तया महापीर्यो गत्वोषाच प्रसू तदा ॥ १७६ ॥

गरुड उवाच ।

भार्गीतममृतं मातस्तस्या एय प्रदीयताम् ॥ १७७ ॥

श्रुपय ऊचुः ।

मोक्षुल्लहदया सा च हृष्ट्या पुत्रंसहामृतम् । तामाह्वयामृतं दत्त्वा खादासीत्यं तदागता  
वृणकाब्जानि भूतानि पशवश्च सरीसृपाः । हृष्ट्या सविस्मयास्सर्वे देवा महर्षयस्तदा  
मौषयित्वा तु तामग्न्यां गरुडः सुपुङ्गां गतः । एतस्मिन्नन्तरे शक्रो जहारसहस्रासुधाम्  
निधाय गरुडं तत्र तया चानुपलक्षितः । ग्रहप्लहदया कद्रुः पुत्रानाहूय सम्भ्रमात् ॥  
तेषां मुखे दर्वी हृष्टा क्ष्वेडं खातुलक्षणम् । तानुवाच प्रसूः पुत्रान्युष्पाकं च कुलेसदा  
मुखे तिष्ठन्त्वग्मी देवा विन्दधस्तेन निर्वृताः ।

महर्षयस्ततो देवाः सिद्धगन्धर्वमानुषाः ॥ १८३ ॥

ऊचुः सन्तु कुले मातरस्माकं च प्रसादतः । नागैर्विसर्जिता देवाः ससिद्धा मुनयस्तथा  
जम्बुः स्थमालयं हृष्टा नागाः प्रमुदिताः स्थिताः ।

एतस्मिन्नन्तरे नागांश्चखाद गरुडो यलात् ॥ १८५ ॥

दिष्टुं पलायिताः शैवाः पर्वतेषु पनेषु च । सागरेषु च पाताले बिलेषु तरुकोटरे ॥ १८६ ॥

निभूतेषु निकुञ्जेषु स्थिताः सर्पाश्च निर्वृताः ।

भुजगास्तस्य भक्ष्याश्च सदैव विधिनिर्मिताः ॥ १८७ ॥

स खादयित्वानागांश्चसम्भाष्यपितरावथ । विबुधान्पूजयित्वा तु जगाम हरिमध्ययम्  
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सुपर्णचरितं शुभम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः सुरलोके मर्हायते ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे गरुडोत्पत्तिर्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

## पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कश्यपोपदेशेन चाण्डालपतितद्विजस्य संदाचाराचरणेन स्वर्गप्राप्तिः ।

ब्रह्मोवाच ।

तः परं तु विप्रये चाण्डालपतितो द्विजः । प्रलप्य च बह्वृच्छोकाङ्गगाम कश्यपमुनिम्  
त्योवाच मुनिश्रेष्ठ यदास्माकं हितं वचः । यथा पापाद्विमुच्येऽहं मुनिश्रेष्ठ तथा कुह  
ऋषय कथुः ।

तमुवाच महातेजा ईपदास्यः समन्ततः ॥ ३ ॥

कश्यप उवाच ।

सम्दर्शनाच्च म्लेच्छग्रानामुपशान्तोऽसि वै स्थयम् ।

गायत्र्याञ्च जपैर्होमैर्ग्रन्थैश्चान्द्रायणादिभिः ।

स्मर नित्यं हरेः पादमुपोष्य हरिषासम् ॥ ४ ॥

गृह्णन्ति शं हरेर्ध्यानं प्रणामं कुरु तं प्रभुम् । तीर्थज्ञानेन मन्त्रेण पशुस्यान्तं गमिष्यसि ॥  
तः पापक्षयादेव ब्राह्मणत्वं च लप्स्यसे । अतैर्बृषाधिकैर्मोक्षं नाशयन्कल्मषं द्विजः ॥  
ब्रह्मोवाच ।

पुनैस्तस्य वचः श्रुत्वा हतहृत्सोऽभवत्तदा । पुण्यं स विविधं हृत्वा पुनर्ब्रह्मत्यमाप्तवान्  
तस्तत्पथातपस्तीव्रं स्थलीकंचिरमभ्यगात् । सद्वृत्तस्याखिलं पारं क्षयं याति दिने दिने  
तसद्वृत्तस्य पुण्यं हि क्षयं यात्यङ्गनोपमम् । अनाचारादतो विप्र आचारात्सुखं ताम्रैः  
ततः कण्ठगतैः प्राणैराचारं कुरुते द्विजः । कर्मणा मनसाङ्गेन सदाचारं सदा कुह ॥  
कश्यपस्योपदेशेन सविनीतोऽभवद्द्विजः । आचारं तु पुनः हृत्वा तपस्तप्या दिवंगतः  
अनाचारी हतो विप्रः स्वर्गलोकेषु गर्हितः । आचारं तु पुनः हृत्वा सुखलोके महीयते ॥  
नारद उवाच ।

प्राप्नुवन्ति गतिं लोकाः पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ।

द्विजानां पीडनं कृत्वा मतिं गच्छन्ति कां प्रभो ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

प्रासन्ततदेहानां ब्राह्मणानां महात्मनाम् । मार्चयेच्छक्तितो मत्स्या स याति नरकं नरः ।  
तरेण कोशयित्वा क्रोधाद्यस्तु विसर्जयेत् । स याति नरकं घोरं महारौरवकृच्छकम् ।  
संनिवृत्तस्ततः कीटाघम्यजातिषु जायते । ततो रोगी दग्धिस्तु क्षुधया परिपीडितः ।  
नाशमन्येस्ततो विप्रं क्षुधया गृहमागतम् । न ददामीति यो ब्रूयाद्देवाग्निब्राह्मणेषु सः ॥  
तिर्यग्योनिशतंगत्या चाण्डाल्यमुपगच्छति । पादमुद्यम्य यो विप्रं हन्ति गां पितरीगुरुम् ।  
रौरवे नियतो वासस्तस्य नास्तीह निष्कृतिः ।

यदि पुण्याद् भवेज्जन्म स एव पण्डुतां व्रजेत् ॥ १४ ॥

मतिदीनो विषादी च दुःखशोकामिपीडितः । एवं जन्मप्रयं प्राप्य भवेत्तस्य च निष्कृतिः

मुष्टिचपेटकीलैश्च हन्याद्विप्रं तु यः पुमान् ।

तापने रौरवे घोरे कल्याणं सोऽपि तिष्ठति ॥ २१ ॥

अथ जन्म समासाद्य कुकुरः क्रूरचण्डकः । अन्त्यजातिषु जातोऽपि दग्धिः कुक्षिशूलयान् ।  
पादमुपगच्छते वा यस्तस्य वादे शिलीषदः । खड्गो वा मन्दजङ्घो वा खण्डपादो भवेन्नरः ।  
पक्षवातेन बाङ्गानि प्रकम्पन्ते सर्वे हि । मातरं पितरं विप्रं स्नातकं च तपस्थिनम् ॥

इत्वा गुरुगणं क्रोधात्कुम्भीपाके खिरं भवेत् ।

उपित्वा क्षेप जायेत कीटजातिषु तत्परम् ॥ २५ ॥

विरुद्धं परमं धारयं यो वदेदि द्विजातिषु । मष्टी कुष्ठाः प्रजायन्ते तस्य देहे दुर्दं सुत

विचर्चिकाऽथ दद्रुश्च मण्डलः शुक्तिसिन्धुर्वा ।

कालकुष्ठस्तथा शुकुस्तर्हणश्चातिदारुणः ।

ततो मियकप्रयोगे च पापात्पुण्यं पलायते । अपुण्याञ्जलरेखेव तेनेव निधनं व्रजेत् ॥

एषां मध्ये महाकुष्ठाख्य एव प्रकीर्तिताः । कालकुष्ठस्तथा शुक्लस्त्वर्हणश्चातिदारुणः

महापातकभाषाणां ज्ञानात्संसर्गतोऽपि वा । अतिपातकिनामेव त्रयो देहे भवन्ति वै ।

संसर्गात्सहस्रमयन्धाद्रोगः सञ्चरते नृणाम् । दूरतपरित्यजेद्वीरः स्पृष्ट्वा स्वानं समाचरेत्

पतितं कुष्ठसंयुक्तं चाण्डालं च गवाशिनम् ।

श्वानं रजस्थलां मिहं स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् ॥ ३२ ॥

दुरितस्यानुरूपेण देहे कुष्ठा व्यधस्थिताः । इहलोके परत्रैवाप्यत्र नास्ति तु संशयः ।  
न्यायेनोपाजितां वृत्तिं ब्रह्मस्वं हरते तु यः । अक्षयं नरकं प्राप्य पुनर्जन्म न विन्दते ।  
पिशुनोयस्तु विप्राणां रन्धान्येषणतत्परः । तं दृष्ट्वाप्यथवा स्पृष्ट्वा सचेलो जलमाविरे ।  
ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् । विक्लमेण तु भुञ्जानो दशपूर्णदशापरा ।  
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्थं विषमुच्यते । विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ।

मोहाच्च मातरं गत्वा ब्राह्मणीं च गुरोः स्त्रियम् ।

पतित्या रौरवे घोरे पुनरुत्पत्तिदुर्लभः ॥ ३८ ॥

पतन्ति पितरस्तस्य कुम्भीपाकेऽथ तापने । अधीचिकालसूत्रे च महारौरवतौरवे ॥ ३९ ॥

कदाचिदपि वा तेषां निष्कृतिं नानुमेनिरे ।

प्राणं हत्वा द्विजातीनां स्वयं यात्यपुनर्मवम् ।

पतन्ति पुण्यास्तस्य रौरवे च सहस्रशः ॥ ४० ॥

नारद उवाच ।

सर्वेषामेव विप्राणां घने च पातकं समम् । विषमं चाकुतस्तिष्ठेत्तस्यतो बहुमहति ।

ब्रह्मोवाच ।

हत्वा विप्रं ध्रुवं पुत्र पातकं यदुदाहृतम् । लभते ब्रह्महा घोरे घटव्यं चापरं शृणु ।  
लक्षकौटिसहस्राणां ब्राह्मणानां घर्षमजेत् । वेदशास्त्रयुतंहत्वा धोत्रिपं पिजितेन्निषम्  
विप्रं च यैष्णवं हत्वातस्मादशमृणोत्तयम् । स्वयंशान्यातयित्वा तु पुनर्जन्म न विन्दते

त्रिवेदं स्नातकं हत्वा यथस्यान्तं न विन्दते ॥ ४५ ॥

धोत्रिपं च सदाचारं तीर्थमन्त्रप्रपूतकम् । ईदृशं ब्राह्मणं हन्तुः पापस्यान्तो न विन्दते  
अपकारं समुद्दिश्य द्विजः प्राणान्परित्यजेत् । इश्यते येन चान्येन ब्रह्महा स मयेवैव

पचोमिः पच्यैवृत्तैः पीडितस्ताडितो द्विजः ।

यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तस्माद्ब्रह्मघातिनम् ॥ ४८ ॥

अथ यो मुनयो देवाः सर्वे ब्रह्मचिदस्तथा । देशानां पार्थिवानां च सा च वध्या भवेदिह  
अतो ब्रह्मवधं प्राप्य पितृभिः सह पच्यते ॥ प्रायोपवेशकं विप्रं बुधः संमानयेद् ध्रुवम्  
दोषैश्चापि विनिर्मुक्तमुद्दिश्य प्राणमुत्सृजेत् । स प्रलितो वधैर्घोरैर्न तु यं परिकीर्तयेत् ॥

भातमघातं द्रुमारोहं कोटरैरुपजीघनम् ।

यः कुर्यादात्मनो घातं स्वयंशो ब्रह्महा भवेत् ॥ ५२ ॥

घृणं च घातयेद्यस्तु शिशुं वा मातुरं गुरुम् । ब्रह्महा स्वयमेव स्यान्न तु यं परिकीर्तयेत्  
मारयेच्च सगोत्रं वा ब्राह्मणं ब्राह्मणाधमः । तस्यैवं तद्रुमवेत्पार्यं न तु यं परिकीर्तयेत्

पीडयित्वा द्विजं शूद्रः स्वकार्यं चापि साधयेत् ।

तत्रापापे च शूद्रस्य पातकं नान्यथा भवेत् ॥ ५५ ॥

सात्कालिकघर्थं हत्वा हन्तारमाततायिनम् ।

न च हन्ता च तत्पार्ष्णिप्यते द्विजसत्तम ॥ ५६ ॥

भाततायिनमायान्तमपि घेदान्तां रणे । जिघांसन्तं जिघांसे च न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥

अग्निदो गरवश्चैव धनहारी च सुतघः । क्षेत्रदारापहारी च वडेते ह्याततायिनः ॥ ५८ ॥

सलो राजघधोघोमी पितृणां च वधेरतः । अनुयायी नृपो राजभ्रष्ट्वारभ्याततायिनः ॥

तत्क्षणान्नमृतं विप्रं पुनर्हन्तुं न युज्यते । पुनर्हत्वा वधं घोरं ज्ञानात्प्राप्नोति निश्चिनम्

लोके विप्रसमो नास्ति पूजनीयो जगद्गुरुः । हत्वा तं गृह्येत्पार्यं तत्परं च न विघने

देववत्पूजनीयोऽसीं देवासुरगणैर्नरैः । ब्राह्मणस्य समो नास्ति त्रिपुलोकेऽपि निश्चिनम्

नारद उवाच ।

कां वृत्तिं समुपाश्रित्य जीवितव्यं द्विजेन हि । अयापेन सुखेष्ट सत्त्वतो यत्कर्महंसि ॥

ब्रह्मोवाच ।

अयाचिता च या मिक्षा प्रशस्ता सा प्रकीर्तिता ।

उच्छृत्तिस्ततो मद्रा सुमद्रा सर्ववृत्तिषु ॥ ६४ ॥

यामाश्रित्य मुनिध्रेष्ठा गच्छन्ति ब्रह्मणः पदम् । दक्षिणायकशेषाणां ब्राह्मण्यवगतेन हि ॥

पाठनं याजनं हत्वा ब्रह्मैतव्यं धनं द्विजैः ।



पाठयित्वा पठित्वा च कृत्वा स्वस्त्ययनं शुभम् ॥ ६६ ॥

पणानामिदं जीव्यं शिष्टावृत्तिः प्रतिग्रहः । शास्त्रोपजीविनो धन्या धन्यावृक्षोपजीविनः ।  
वृक्षलता जीव्या घाटीसस्योपजीविनः । भग्नजन्तुवधेपापं तस्य दोषोपशान्तये  
धान्यानिशस्तानि धिमेभ्यः सम्प्रदापयेत् । नचेत्प्राणिषधे ह्यत्रक्षीयन्ते वायुपोधुवम्  
माहवात्सुबहूनि पितृदेषद्विजातिषु । अमावात्क्षत्रियावृत्तिर्ग्राह्यैरुपजीव्यते ॥ ७० ॥  
ययुद्धेषु योऽक्षयं चरेद्द्वीघतं शुभम् । स तथा च द्विजो वृक्ष्या यद्धनं लभते नृपाद्  
नृयज्ञादिदानेषु मेध्यं तद्धनमुच्यते । समम्यसेद्धनुर्विधां वेदयुक्तां सदाऽनघः ॥ ७१ ॥  
केकुन्तगदाखड्गपरिघाणां समन्ततः । मभ्यारोहं गजारोहमैन्द्रजालममानकम् ॥ ७२ ॥  
भूमिगतं युद्धं युक्तं सर्वत्र कारयेत् । द्विजदैवधुवाणां च स्त्रीणां वृत्तं तपस्विनाम् ।  
धुसाध्वीगुरुणां च नृपाणां रक्षणादुधुवम् । यत्पुण्यं लभ्यते शूरैः कथं तद्ब्रह्मवादिभिः  
सर्वपापक्षयं कृत्वा सोऽक्षयं स्वर्गमश्नुते । संमुखे न्याययुद्धे च पतन्ति ब्राह्मणा रणे ॥  
प्रजन्ति परं स्थानं न गम्यं ब्रह्मपादिनाम् । धर्मयुद्धस्य यद्वृत्तं शृणु पुण्यं यथायतः  
मुखेन प्रयुध्यन्ते न च गच्छन्ति कातरम् । न भग्नं पृष्ठतो प्रतितिः शास्त्रं प्रपलायितम्  
युध्यमानं भीरुं च पतितं गतकल्मषम् । असच्छ्रेयं स्तुतिप्रोतिमाहवे शरणागतम् ॥  
कृत्वा च नरकं यान्ति दुर्बृत्ता जयकाङ्क्षिणः ।

एषा च क्षत्रिया वृत्तिः सदाचारैस्तु गीयते ॥ ८० ॥

तमाश्रित्य दिवं यान्ति सर्वक्षत्रियकुञ्जराः । धर्मयुद्धे शुभो मृत्युः संमुखे क्षत्रियस्य च  
अत्र पूतो भवेत् सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते । स तिष्ठेत्स्वर्गलोके च प्रासादे रत्नभूषिते ॥  
ताम्रनदमयस्तम्भे रत्नभूषितभूतले । इष्टद्रव्यैः सुसम्पूर्णं दिव्यधस्त्रोपशोभिते ॥ ८३ ॥  
पुरतः कल्पवृक्षाश्च तिष्ठन्ति सर्वदायिनः । वापीकूपतटाकाचैरुद्यानेरुपशोभिते ॥ ८४ ॥  
योषिताढ्याश्च सेवन्ते तं देवपुरं कन्यकाः । तस्याप्रतो मुदानित्यं नृत्यन्त्यप्सरसां गणाः  
गीतं गायन्ति गन्धर्वादेवाश्च स्तुतिपाठकाः । पयंकमेण कल्पान्ते सार्वभौमो भयं शृणुः  
॥ च नीरुद्धमग्नयविग्रहः । तस्य पत्न्यः प्ररूपाढ्याः सदैव योषनान्विताः  
धर्मशीलाः सुताः शुभ्राः समृद्धाः पितृसंमताः ।

एवं क्रमेण भुञ्जन्ति सप्तजन्मसु क्षत्रियाः ॥ ८८ ॥

अन्यायेन तु योद्धारस्तिष्ठन्ति नरके चिरम् । एवं च क्षत्रियावृत्तिर्वाह्यैरपजीव्यते ॥

वैश्यैः शूद्रेस्तथान्यैश्च अन्त्यजैर्मलच्छत्रातिमिः ।

ये च योधाः प्रयुध्यन्ते न्याययुद्धेन सर्वदा ॥ ८९ ॥

तेऽपि यान्ति परं स्थानं सर्वे वर्णाद्विजातयः । न शूरो यो द्विजो मोक्षस्त्रशस्त्रविषजितः

विपत्तौ वैश्यवृत्तिश्च कारयेद्द्विजसत्तमः । वैश्यवृत्तिं घणिम्भार्यं कृपिं चैव तथा परैः

कारयेत्कृपियाणिज्यं विप्रकर्म न च त्यजेत् ।

घणिग्भाषान्मृपात्युक्तौ दुर्गतिं प्राप्नुयाद् द्विजः ॥ ९० ॥

भार्यद्रव्यं परित्यज्य ब्राह्मणो लभते शिषम् । समुत्पाद्य ततो वृत्तिं दद्याद्विप्राय सर्वशः

पितृपते तथा खानीं शुद्धयाद्विधिवद्द्विजः । तुलेऽसत्यं न कर्त्तव्यं तुलाधर्मप्रतिष्ठिता

उलभायं तुले कृत्या नरकं प्रतिपद्यते । अतुलं चापियद्द्रव्यं तत्र मिथ्या परित्यजेत् ॥

एवं मिथ्या न कर्त्तव्या मृपा पापप्रसूतिका । नास्ति सत्पात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्

अतः सर्वेषु कार्येषु सत्यमेव विशिष्यते । अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् ॥

अश्वमेधसहस्राद्वि सत्यमेव विशिष्यते । योऽदेहसर्वकार्येषु सत्यं मिथ्या परित्यजेत्

स निस्तरति दुर्गाणि स्वर्गमक्षयमश्नुते । घाणिज्यं कारयेद्विप्रो मिथ्याऽवश्यं परित्यजेत्

इद्वि च निक्षिपेत्सीर्यं स्पर्शं शेषं तु भोजयेत् । देहेऽङ्गैरात्तसहस्रगुणं भयतिसर्वदा ॥

अर्धाजैनविधौ मर्यादा विशन्ति विप्रे जले । कान्तारमटर्षीचैव श्यापदेः सेविता तथा

गिरि गिरिगुहा दुर्गा म्लेच्छानां शस्त्रपातिनाम् ।

गृहं प्रतिभयं स्थानं घनलोभात्समन्ततः ॥ ९१ ॥

सुगदारान्परित्यज्य दूरगच्छन्तिलोमिनः । स्वल्पे भारे बहन्त्यन्ये सर्व्यां चक्रेनिपातनैः

क्षेपणीर्मर्महातु रैस्सदा प्राणव्ययेन च । अर्थस्य सञ्चयः पुत्र प्राणात्प्रियतरो महान्

एमिन्यायाजितं वृत्तं घणिग्भावेन यत्नतः । पितृद्वेष्टद्विजातिभ्यो दत्तंचाक्षयमश्नुते ॥

एतौ दोषौ महान्तौ च घाणिज्ये लामकर्मणि । लोभानामपरित्यागो मृगसमाश्रयः

एतौ दोषौ परित्यज्य कुर्यादर्धाजैनं बुधः । अक्षयं लभते दानाद्विजदोषेन लिप्यते ॥



आत्मेजः सम्भवो वेदो बहिरेष तथैव च । परतो गीस्तथाविप्रो जातश्चैव पृथक्पृथक्  
प्र सृष्टा मया चादौ वेदाश्चत्वार एकशः । स्थित्यर्थं सर्वलोकानां मुघनानां समन्ततः  
प्रिह्व्यानि भुञ्जीत देवहेतोस्तथा द्विजः । आर्यं गोप्रमथं विद्धि तस्मादेते प्रसूतकाः ॥

सन्ति यदि लोकेषु चत्वारोऽग्नौ महत्तपः । तदाखिलं च भुषणं नष्टं स्थापरजङ्गमम्  
एभिर्भूताः सदा लोकाः प्रतिष्ठन्ति स्वमावतः ।

समाधौ ब्रह्मरूपोऽसाधेने ब्रह्ममयाः स्मृताः ॥ १३० ॥

स्माद्वीः पूजनीयोऽसौ विप्रदेवासुरैरपि । उदारः सर्वकार्येषु जातस्तथ्योगुणाकरः ॥  
यदेवमयः साक्षात्सर्वसत्त्वानुकम्पकः । अस्य कार्यं मया सृष्टं पुरैव पोषणं प्रति ॥

त एव मया दत्तं परं चातिशुशोभनम् । एकजन्मनि ते मोक्षस्तथास्त्विति विनिश्चितम्  
अत्रैव ये मृता गावस्त्वागच्छन्ति ममालयम् ।

पापस्य कणमारत्रं तु तेषां देहे न तिष्ठति ॥ १३४ ॥

॥ गौर्धेनुका देवाश्चादिदेवी विशक्तिका । प्रसादाद्यस्य यशानां प्रमथो हि विनिश्चितः  
गर्वासर्वपवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत् । भूत्रं गोगोमयं क्षीरं दधिसर्पिस्तथैव च ॥  
अमीषां भक्षणे पापं न तिष्ठति कलेष्वरे । तस्माद्भूषणं दधिर्क्षीरं नित्यं लादयित्वा मिताः ।

विशिष्टं सर्वद्रव्येषु गव्यमिष्टं परं शुभम् ।

यस्यास्यै भोजनं नास्ति तस्य मूर्तिस्तु पूजिता ॥ १३८ ॥

भद्रार्थं पञ्चरात्रेण सप्तरात्रेण वै ययः । दधि विशतिरात्रेण धूतं स्यान्मासमेककम् ॥  
अगवैर्यस्तु भुङ्क्ते वै मासमेकं निरन्तरम् । भोजने तस्य मत्स्यस्य प्रेताः पराङ्मित्रेव हि  
परमान्नं परं गुह्यं स्थानं चातपतण्डुलैः । भुक्त्वा तु यत्कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत्  
अन्यथापि च यदुद्रव्यं दधिप्यं शास्त्रनिर्मितम् । तद्भुक्त्वा यत्कृतं कर्मसर्वं तद्गुणं भवेत्  
निरामित्रं च यत्किञ्चित्समाद्यत्पलं लभेत् । तस्माद्वीः सर्वकार्येषु शस्ता ये वायुगैः पुने

सर्वदा सर्वकामेषु धर्मकामार्थमोक्षदा ॥ १४३ ॥

भारद् उवाच ।

केषु कृपा प्रयोगेण परं पुण्यं प्रकीर्तितम् । यद् तत्सर्वतोभेदा यथा जानामि तत्पुनः

प्रहोवाच ।

सकृत्प्रदक्षिणं कृत्वा गोधनं चाभिवन्दयेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गं चाप्स्यमश्नुते ॥  
 सुराचार्यो यथा वन्द्यः पूज्योऽसौ माधवो यथा ।  
 सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा चैश्वर्यात्पाकशासनः ॥ १४६ ॥  
 कल्प उत्थाय गोमध्ये पात्रं गृह्य सहोदकम् । निविञ्चेद्यो गवां शृङ्गमस्तकेनैवतज्जम्  
 प्रतीच्छेत निराहारस्तस्य पुण्यं निबोध मे ।  
 श्रूयन्ते यानि तीर्थानि त्रिषु लोकेषु नारद ॥ १४८ ॥  
 सिद्धचारणयुक्तानि सेवितानि महर्षिभिः । अभिपेक्षस्तमस्तेषांगवांशृङ्गोदकस्य च ॥  
 प्रातःकृत्वाय यो मर्त्यः स्पृशेद्गं च घृतं मधु ।  
 सर्वपांश्च प्रियङ्गूंश्च कल्मषात्प्रतिमुच्यते ॥ १५० ॥  
 घृतक्षीरपदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्गवाः ।  
 घृतनद्यो घृताघर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ॥ १५१ ॥  
 घृतं मे सर्वगात्रेषु घृतं मे मनसि स्थितम् । गावो ममाप्रतो नित्यं गायःपृष्ठत एव च ।  
 गायश्च सर्वगात्रेषु गवांमध्ये पसाम्यहम् । इत्याचम्य जपेन्मन्त्रं सायं प्रातस्त्रिं शुक्तिः  
 सर्वपापक्षयस्तस्य स्वलोके पूजितो भवेत् । यथा गौश्चतया विप्रो यथाविप्रस्तथा हरिः  
 हरिर्यथा तथा गङ्गा एते महावृषाः स्मृताः । गावो वन्धुर्मनुष्याणां मनुष्या यान्धया गवाम्  
 गौश्च यस्मिन्गृहे नास्ति तद्वन्धुरहितं गृहम् । गोमुखे चाधिता ये दास्यन्तु पशून्ममाः ॥  
 शृङ्गयोश्च स्थितौ नित्यं सदैव हरिकेशवी । उदरेऽवस्थितः स्कन्दः शीर्षे प्रह्लादस्थितः सरा  
 वृषध्वजोल्लाटे च शृङ्गाग्रान्द्र एव च । कर्णयोरश्विनौ देवौ धनुशोऽशशिमास्करी  
 दन्तेषु गरुडो देवो जिह्वायां च सरस्वती । अपाने सर्वतीर्थानि प्रद्याये चैव जाह्नवी ।  
 शयनो रोमकूपेषु मुद्यतः पृष्ठनो यमः । धनदो धरुणश्चैव दक्षिणं पार्श्वमाधितौ ॥ १५० ॥  
 धामपार्श्वे स्थिता यक्षास्तेजम्यन्तो महाबलाः ।  
 मुपमप्येव च गन्धर्वा नासाग्रे पद्मगास्तथा ॥ १६१ ॥  
 गुराणां पश्चिमे पार्श्वेऽप्सरसश्च समाधिताः । गोमये यस्ते लक्ष्मीर्गोमूत्रे सर्वमङ्गला

पादमे खेबरा येदा दृग्माशब्दे प्रजापतिः । वरपादः सागराः पूर्णा धेनूनां च स्तनेषु वै

गां च स्पृशति यो नित्यं स्नातो भवति नित्यशः ।

भक्तो मातुः प्रपुष्टेऽनु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १६४ ॥

गपांरजः पुरोदुभूतं शिरसा यस्तु धारयेत् ।

॥ च तीर्पजदे स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १६५ ॥

नारद उवाच ।

गपां च दशपर्णानां कस्य दाने च किं फलम् । ब्रूहि तत्त्वं गुरुश्रेष्ठ परमेष्ठिनिग्रं यदि

प्रज्ञोवाच ।

श्रेतां गां ब्राह्मणे दत्त्वा मानपधेक्षरो भवेत् । प्रासादैवसते नित्यं भोगीचतुल्लभधते

पूजा तु स्वर्गकान्तारसंसारे पापमोक्षिणी । अक्षयं कपिलादानं कृष्णां दत्त्वा न सोदति

पाण्डुरा तुल्यमा लोके गौरी च कुलनन्दिनी । रत्नाक्षीरूपकामस्य धनकामस्य नीलिका

एका ॥ कपिलां दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

यस्तु बालवह्नं पात्रं धीपने धार्पके कृतम् ॥ १७० ॥

पात्रा कृतं कर्म हनं मनसा यत्प्रविशितम् । भगव्यागमनं चैव मित्रद्रोहे च पातकम्

मानकृतं तुलाकृतं कन्यामृतं गयामृतम् । सर्वं च नाशयेत्क्षयं कपिलां यः प्रच्छति ॥

दशयोजनविस्तीर्णा भद्रापात्रा भद्रानदी । नारा च जलकान्तारे प्रसृते चोदकार्णवे ॥

यापयत्तस्य ह्यौ पादौ मुखं यावन्नजायते । साध्वीः पृथिवी ज्ञेया यावद्गमं न मुञ्चति

सुवर्णभृङ्गीषस्त्रादयांसर्पालङ्कारभूषिताम् । ताम्रपृष्ठीरीष्यसुरांतया कांस्योपदोहनाम्

शोमितां गन्धपुष्पैश्च सर्पालङ्कारभूषिताम् । ईदृशीं कपिलां दद्याद् द्विजाती वेदपारमे

सर्वपापक्षयस्तस्य विष्णुलोकेऽच्युतो भवेत् ॥ १७७ ॥

तस्यां ॥ दुह्यमानायां भूमौ पतन्ति बिन्दवः ।

भारामादि पिजायन्ते बहुपुष्पफलोत्तमाः ॥ १७८ ॥

यत्रकामरुता वृक्षा नद्यः पायसकर्दमाः । प्रासादाद्यापि सौवर्णास्तत्र गच्छन्तिगोप्रदाः

दशधेनूश्च यो दद्यादेकं चैव धुञ्जयम् । समानं तु फलं प्रोक्तं ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥

एकं च दशमिर्दद्यात्सहस्राणां शतं फलम् । तस्यानुसारतो वेद्यं फलं नारद यत्नतः ।  
 पितृनुद्दिश्य यः पुत्रो वृषं च मोक्षयेद्बुधि । पितरो विष्णुलोकेषु महीयन्ते यथेष्टितम् ।  
 चतस्रो घत्सतयश्च एकस्यैव वृषस्य च । मोक्षयन्ते सर्वतः पुत्र विधिरेव सनातनः ।  
 याचन्ति चैव रोमाणि तस्य तासांचसर्वशः । ताघद्वर्षसहस्राणि स्वर्गं भुञ्जन्तिमात्नः ।

लाङ्गूलेन वृषो यच्च जलं चोत्क्षिपति ध्रुवम् ।

तत्तोयं तु सहस्राब्दं पितॄणाममृतं भवेत् ॥ १८५ ॥

धुरेण कर्षयेद्बुध्मि ततो लोष्टं च कर्दमः । पितृभ्यश्च स्वधा तत्र लक्षकोटिगुणंभवेत् ।  
 विद्यमाने च जनके यदि माता विनश्यति । चन्दनेनाङ्किता धेनुस्तस्याः स्वर्गाय दीयते ।  
 दाता चैव पितॄणां च प्रभुः चैव प्रमुञ्चति । अक्षयं लभते स्वर्गं पूजितो मघवा दया ।  
 सर्वलक्षणसंयुक्ता तरुणी गौः पयस्विनी । समा प्रसूतिका भद्रा सावर्गीःपृथिवीस्पृता ।  
 तस्य दानेन मन्त्रस्य पृथ्वीदानसमं फलम् । शतक्रतुसमो मर्त्यः कुलमुदरते शतम् ।  
 गवां च हरणं कृत्वा मृते गोरथघत्सके । कृमिपूर्णे स कूपे च तिष्ठेदाभूतेसमृद्धम् ।  
 गवां चैव बध्नं कृत्वा पितृभिः सह पच्यते । रौरवे नरके घोरे ताघत्कालं प्रतिक्रिया ।  
 गोप्रचारप्रमत्तश्च पण्ड्याहनयन्धनः । अक्षयं नरकं प्रायात्पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥ १८६ ॥  
 सहस्र धातयेद्यस्तु कथां पुण्यतमामिमाम् । सर्वपापक्षयस्तस्य देवैश्च सह मोक्षते ।  
 य इदं शृणुयाद्वापि परं पुण्यतमं महत् । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेतत्क्षणेन दि ।  
 इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिकण्डे गोमाहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

ब्रह्मतेजोवर्द्धनार्थकनित्यकर्मवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

केनाचारेण विप्रस्य ब्रह्मतेजो विवर्धते । केनाचारेण तस्यैव ब्रह्मतेजो विनश्यति ॥१॥

ब्रह्मोपाच ।

शयनीयात्समुत्थाय रात्र्यंशे द्विजसत्तमः । देवांश्चैव स्मरेन्नित्यं तथा पुण्यवतोऽधुपम्  
गोविन्दं माधवं कृष्णं हरिं दामोदरं तथा । नारायणं जगन्नाथं वासुदेवमजं विभुम् ॥  
सरस्वतीं महालक्ष्मीं सावित्रीं वेदमातरम् । ब्रह्माणं मातृकरं चन्द्रं दिक्पालांश्च ब्रह्मांस्तथा

शङ्करं च शिवं शम्भुमीश्वरं च महेश्वरम् ।

गणेशं च तथा स्कन्दं गौरीं भागीरथीं शिवाम् ॥ ५ ॥

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको जनार्दनः ।

पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥

अथत्यामा बलिर्ध्यासो हनुमांश्च विभीषणः । कृपः परशुरामश्च ससैते चिरजीविनः ॥

तान्यस्तु स्मरेन्नित्यं प्रातस्तथाय मानवः । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥

हिदुञ्चरिते तात सर्ववशफलं लभेत् । गवां शतसहस्राणां दानस्य फलमश्नुते ॥ ९ ॥

अथापि शुचीदेशे मलमूत्रं परित्यजेत् । दक्षिणामिमुखोरात्री दिवा कुर्वाद्दुश्शुभः ॥

तोदन्तकाष्ठं च तृणैरुतुड्वरादिभिः । अतः परं च सन्ध्यायां सर्वतश्च द्विजो भवेत् ॥

पूर्वाह्णे रक्तशर्णां तु मध्याह्ने शुक्लवर्णिकाम् ।

सायं सरस्वतीं कृष्णां द्विजो ध्यायेद्यथाविधि ॥ १२ ॥

समाधरैस्तान् यथाहानेन यत्नतः । अङ्गं प्रक्षालयित्वा तु मृद्धिः संलेपयेत्ततः ॥

शिरोदेशे ललाटे च नासिकायां हृदिध्रुवोः ।

बाह्योः पार्श्वे तथानाम्नी जाम्बीरङ्घ्रिद्वये तथा ॥ १४ ॥

गलिङ्गे गुदेतिष्ठस्तथा घामकरे दश । उभयोः सप्तदातव्यं मृदः शुद्धिममीप्सतां ॥

यकान्ते रथकान्ते विष्णुकान्ते वसुधरे । मृत्तिके हरि मे पापं यन्मया दुष्टतं कृतम्

अनेनैव ॥ मन्त्रेण मृत्तिकां यस्तनौ क्षिपेत् ।

सर्वपापक्षयस्तस्य शुचिर्मवति मानवः ॥ १७ ॥

तेनैव वेदपूर्वेण स्नानं कुर्याद्विचक्षणः । नद्रे मद्यांतदाकूपे पुष्करिण्यां तटाकके ॥ १८ ॥

जलराशौ च घने च घटस्नानं तद्योत्तरम् । कारयेद्विधिष्वनन्तर्यः सर्वपापक्षयाय च ॥



प्रातःस्नानं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् । यः कुर्यात्सततं विप्रो विष्णुलोके मने  
प्रातःसन्ध्यासमीपे च यावद्दण्डचतुष्टयम् । तावत्पानीयममृतं पितृवामुपलब्धम् ।

परतो घटिकायुग्मं यावद्यामैकमाहिकम् ।

मधुतुल्यं जलं तस्मिन्पितृणां प्रीतिवर्धनम् ॥ २२ ॥

ततस्तु सार्दयामैकं जलं क्षीरमयं स्मृतम् । क्षीरमिश्रं जलं तावद्यावद्दण्डचतुष्टयम् ।  
अतः परं च पानीयं यावद्धि प्रहरत्रयम् । तत्परं लोहितं प्रोक्तं यावदस्तं गतोक्तिः ।  
चतुर्थप्रहरे स्नाने रात्रौ वा तर्पयेत्पितृन् । ततोयं रक्षसामेव प्रहणेन विनाशितम् ।  
पानीयं सर्वसिद्धयर्थं पुरैवनिर्मितं मया । रक्षार्थं तस्य सोयस्य यक्षाश्चैव घृतायतः ।

न प्राप्नुवन्ति पितरो ये च लोकान्तरं गताः ।

दुष्प्राप्यं सलिलं तेषामृतेस्यान्मर्त्यवासिनः ॥ २३ ॥

तस्माच्छिष्यैश्च पुत्रैश्च पौत्रदौहित्रकादिभिः । यन्धुवर्गैस्तथा चान्यैस्तर्पणीयं विप्रैः  
नारद उवाच ।

जलस्य दैवतं ब्रूहि तर्पणस्य विधिं मयि । यथा जानामि देवेश तत्त्वतो वक्तुमर्हसि ।  
ब्रह्मोवाच ।

जलस्य दैवताविष्णुः सर्वलोकेषु गीयते । जलपूतो भवेद्यस्तु विष्णुस्तस्य पूतो मने ।  
जलंगण्डूयमात्रं तु पीत्वा पूतो भवेन्नरः । विदोषात्तु जलसंसर्गात्पीयूषादधिकं जलं ।  
सर्वदेवालयो दर्मो मयाऽयं निर्मितः पुरा । कुशामूले भवेदुपस्था कुशामये तु देव ।  
कुशामे शङ्खरूपिद्धि कुशापने प्रतिष्ठिताः । कुशदन्तः सप्तमेत्यस्तोत्रं मानवोदकी ।  
सर्वं शलगुणं प्रोक्तं तर्प्य सादृशमुच्यते । कुशाः कपशास्तथा दूर्वा वपयश्चाम्बिका ।  
पञ्चमा पुण्डरीकाक्ष्य कुशास्सप्तप्रकीर्तिताः । मानुपूर्वेण मेध्याभ्यु कुशानोदकीर्तिताः ।

विनामन्त्रेण यत्स्नानं सर्वं न निष्फलं भवेत् ।

अमृतान्नस्यानुनामेति संस्मर्याय तिलस्य च ॥ २४ ॥

तामाद्य तर्पयेन्नित्यं विप्रैः शिष्टैश्चैव । दशमिश्च शिष्टैस्तत्पितृणां प्रीतिवर्धनम् ।  
अग्निस्तस्य मया देवा न वेच्छन्त्यति विस्तारम् ।

स्तात्वा यस्तर्पयेन्नित्यं तिलमिधोदकैः पितॄन् ॥ ३८ ॥

स याति ब्रह्मणःस्थानं समुद्रधृत्यो भयंकुलम् । विशेषेण युगाद्यासुत्वमावास्यांतथैव च  
अक्षयं स्वर्गमाप्नोति तर्पयित्वातिलैःपितॄन् । नीलकण्ठविमोक्षेणतद्यमावास्यातिलोदकैः  
वर्षाषु दीपदानेन पितृनामनृणो भवेत् । यत्सर्वैकममायां तु तर्पयेद्यस्तिलैः पितॄन् ॥  
विनायकतयमाप्नोति सर्वदेवैः प्रपूज्यते । युगाद्यासु च सर्वासु यस्तिलैस्तर्पयेत्पितॄन् ॥  
उक्तं यद्वाप्यमायांतु तस्माच्छतगुणाधिकम् । अयने विपुषे चैव राकामायां तर्पय च  
तर्पयित्वा पितॄन्पूहं स्वर्गलोके महीयते । तयामन्यस्तारुवायामन्यस्यां पुण्यसंस्थितौ  
ब्रह्मे चन्द्रसूर्यस्य पुण्यतीर्थं मयादिषु ।

तर्पयित्वा पितॄन्याति माघवस्य निवेदनम् ॥ ४५ ॥

तस्मात्पुण्याहकंप्राप्यतर्पयेत्पितॄस्तञ्जयम् । तर्पणं देवतानां च पूर्ववृत्त्या समाहितः ॥  
अधिकारी भवेत्पश्चात्पितॄणां तर्पणेबुधः । आद्रे भोजनकाले च पाणिनैकेन दापयेत् ॥  
वामायां तर्पणेद्वाद्भिधिरैव सनातनः । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा शुचिर्ष्वै तर्पयेत्पितॄन् ॥  
तृप्यतामितिपाक्येन नामगोत्रेण च पुनः । अक्षणीर्षेस्तिलैर्मोहास्तर्पयेत्पितॄस्तञ्जयम् ॥  
भूम्यां ददाति यद्वरोदाताचैव जलेस्थितः । धूयातदीयते दानं नोपतिष्ठति कस्यचित्  
स्थलेस्थितया जलेयस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः । नोपतिष्ठेत्पितॄणां ॥ सलिलंतग्निरर्थकम्  
भार्द्रपासाजलेयस्तु कुर्यादुदकतर्पणम् । पितरस्तस्य तृप्यन्ति सहदेवैस्तदाऽनघ ॥ ५२ ॥  
रजकैःक्षालितंयत्त्रयशुद्धं कचयो विदुः । हस्तप्रक्षालनेकैव पुनर्वस्त्रं तु शुष्यति ॥ ५३ ॥  
शुष्कयासाःशुचीदेशे स्थानेषत्तर्पयेत्पितॄन् । ततोदशगुणेनैव तृप्यन्ति पितरो ध्रुवम् ॥

स्तानं सन्ध्यां च पापाणो खड्गे वा साधमाजने ।

तर्पणं कुप्यतेयस्तु प्रत्येकं च शताधिकम् ॥ ५५ ॥

रीप्यांगुलीयं तर्जन्यां धृत्वा यत्तर्पयेत्पितॄन् । सर्वं च शतसाहस्रगुणंभवति नान्यथा ॥  
तर्पेयानामिकायां ॥ धृत्वा स्थनींगुलीं बुधः । तर्पयेत्पितॄन्दोहं लक्षकोटिगुणंभवेत्  
अंगुष्ठदेशिनीमध्ये सव्यहस्तस्य कङ्कभम् । धृत्यानामिकयारत्नमञ्जलेरक्षयंपलम् ॥ ५८ ॥  
स्नानार्थमभिगच्छन्तं देवाःपितृगणैःसह । वायुभूतानुगच्छन्ति तृणतःसलिलाधिनिः ॥

प्रातःस्नानं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् । यः कुर्यात्सततं विप्रो विष्णुलोके महीपे  
प्रातःसन्ध्यासमीपे च याचद्दण्डवतुष्टयम् । तावत्पानीयममृतं पितृणामुपनिषे ।

परतो घटिकायुगलं याचयामैकमाह्निकम् ।

मधुतुल्यं जलं तस्मिन्पितृणां प्रीतिवर्धनम् ॥ २२ ॥

तनस्तु सार्द्धयामैकं जलं क्षीरमयं स्मृतम् । क्षीरमित्रं जलं सायद्यादण्डवतुष्टयम् ।  
अतः परं च पानीयं याचद्दि प्रहरत्रयम् । तत्परं लोहितं प्रोक्तं याचदस्तं गतोऽग्निः ।  
चतुर्थप्रहरे स्नाने रात्रौ वा तर्पयेत्पितॄन् । ततोयं रक्षसामेव प्रहणेन विनाशितम् ॥ २३ ॥  
पानीयं सर्वसिद्धयर्थं पुरैर्निर्मितं मया । रक्षार्थं तस्य तोयस्य यक्षाश्चैव घुराताः ।

न प्राप्नुयन्ति पितरो ये च लोकान्तरं गताः ।

दुष्प्राप्यं सलिलं तेषामृतेऽस्मान्मर्त्यपासिनः ॥ २४ ॥

तस्माच्छिष्यैश्च पुत्रैश्च पौत्रैश्चोद्दित्रकादिभिः । बन्धुपर्यन्तया चान्यैस्तर्पणीयं विप्रैश्च  
नारद उवाच ।

जलस्य दैवतं ब्रूहि तर्पणस्य विधिमपि । यथा जानामि देवेश तस्यतो यत्तुमर्हसि ।  
प्रक्षोषाच ।

जलस्य दैवताविष्णुः सर्वलोकेषु गीयते । जलपूतो भवेद्यस्तु विष्णुस्तच्छूद्रां भवेत् ।  
जलं मण्डूकमात्रं तु परं वा पूतो भवेद्भगः । विशेषात्कुर्यात्तर्पणं तर्पणीयूनादधिकं जलम् ।  
सर्वदेवाल्लयी दर्शयामास्यं निर्मितः पुरा । कुर्यात्तर्पणं यदुपश्रुत्वा कुर्यात्तर्पणं तु केनचित् ।  
कुर्यात्तर्पणं शङ्करं विद्धि कुर्यादने प्रतिष्ठितः । कुर्यादस्तं शशमैव्यः स्तोत्रं शम्भुं चैव ।  
सर्वं शतगुणं प्रोक्तं तर्प्ये सादृश्यमुच्यते । कुर्यात्कप्यास्तथा दूर्वा यथा वा पितृभ्यः ।  
यत्स्वमा पुण्डरीकाक्षः कुर्यात्समप्रकीर्णितः । आनुपूर्वेण मेध्या स्युः कुर्यात्तोके प्रतिष्ठितः ।

विनामन्त्रेण यत्स्वनात् तर्पणं निष्फलं भवेत् ।

अमृतान्ध्यादुनामैर्नि मन्त्राणां च निष्फलं च ॥ २५ ॥

तस्माच्च तर्पयेन्मित्रं विप्रं मित्ररज्यैर्बुधैः । इति विद्धि निवेद्य तन्निगुणं । प्रीतिरसमा  
प्रदियन्त्यस्य मया देवा न वेत्त्युच्यते विष्णुम् ।

स्नात्वा यस्तर्पयेन्नित्यं तिलमिश्रोदकैः पितॄन् ॥ ३८ ॥

स याति ब्रह्मणःस्थानं समुद्रधृत्यो मयंकुलम् । विशेषेण युगाद्यासुत्वमावास्यांतर्पयच्च  
अक्षयं स्वर्गमाप्नोति तर्पयित्वातिलैःपितॄन् । नीलखण्डविमोक्षेणत्वमावास्यातिलोदकैः  
वर्षासु दीपदानेन पितॄणामनृणो भवेत् । घत्सरेकममायां ॥ तर्पयेद्यस्तिलैः पितॄन् ॥  
वितायकत्वमाप्नोति सर्वदेवैः प्रपूज्यते । युगाद्यासु च सर्वासु यस्तिलैस्तर्पयेत्पितॄन् ॥  
एकं यद्वाप्यमायांतु तस्माच्छतगुणाधिकम् । अयने विपुषे चैव राक्षामायां तर्पेय च  
तर्पयित्वा पितॄन्पूर्वं स्वर्गलोके मदीयते । तथामन्वन्तराख्यायामन्यस्यां पुण्यसंस्थितौ  
ब्रह्मेण चन्द्रसूर्यस्य पुण्यतीर्थं गयाविषु ।

तर्पयित्वा पितॄन्याति माघवस्य निवेदनम् ॥ ४५ ॥

तस्मात्पुण्याहर्कंप्राप्यतर्पयेत्पितॄसञ्जयम् । तर्पणं देवतानां च पूर्ववृत्त्वा समाहितः ॥  
अधिकारी भवेत्पञ्चात्पितॄणां तर्पणेबुधः । धाद्रे भोजनकाले च पाणिनैकेन दापयेत् ॥  
अमास्यां तर्पणेद्याद्विधिरेव सनातनः । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा शुचिर्वै तर्पयेत्पितॄन् ॥  
शुष्यतामितिधावदेन नामगोत्रेण वै पुनः । अहर्ण्यैर्यत्तिलैर्मोहास्तर्पयेत्पितॄसञ्जयम् ॥  
शुष्यां ददाति यदपोदाताचैव जलेस्थितः । धूयातदीयते दानं नोपतिष्ठति कस्यचित्  
जलेस्थित्या जलेयस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः । नोपतिष्ठेत्पितॄणां तु सलिलंतन्निरर्थकम्  
गर्दपासाजलेयस्तु कुर्यादुदकतर्पणम् । पितरस्तस्य तृप्यन्ति सहदेवैस्सदाऽनघ ॥ ५२ ॥  
जकैःक्षालितंवलमगुडं कषयो विदुः । हस्तप्रक्षालनेचैव पुनर्वस्त्रं तु शुष्यति ॥ ५३ ॥  
शुष्कयासाःशुष्कीदेशे स्थानेयस्तर्पयेत्पितॄन् । सतोदशगुणेनैव तुप्यन्ति पितरो ध्रुवम् ॥

स्नानं सन्ध्यां च पापाणे खट्वे वा ताघ्रमाजने ।

तर्पणं कुरुतेयस्तु प्रत्येकं च शताधिकम् ॥ ५५ ॥

रौप्यांगुलीयं तर्जन्यां धृत्वा यस्तर्पयेत्पितॄन् । सर्वं च शनसाहस्रगुणंमघति नान्यथा ॥  
तर्पेयानामिकायां तु धृत्वा स्वर्णांगुलीं बुधः । तर्पयेत्पितॄसन्दोहं लक्षकोटिगुणंमघेत्  
अंगुष्ठदेशिनीमध्ये सव्यहस्तस्य अङ्गकम् । धृत्वानामिकवारत्नमञ्जरेरक्षयंपलम् ॥ ५८ ॥  
स्नानार्थमभिगच्छन्तं देवाःपितृगणैःसह । धायुभूतानुगच्छन्ति तृपाताःसलिलार्चिनः ॥

नेराशास्ते निपतन्ते धननिष्पीडनेन च । तस्मान्नपीडयेद्वस्त्रमकृत्या पितृर्तर्पणम् ।  
 तिस्रःकोटयोऽधंकोटी च यानिलोमानि मानुषे ।

अचन्ति सर्वतीर्थानि तस्मान्न परिपीडयेत् ॥ ६१ ॥

देवाः पियन्तिशिरसि श्मश्रुतः पितरस्तथा । चक्षुषोरपि गन्धर्वा अघस्तात्सर्वजन्तवः  
 देवाःपितृगणाःसर्वे गन्धर्वाजन्तवस्तथा । स्नानमात्रेण तुप्यन्ति स्नानात्पापं न विद्वे  
 नेत्यस्नानं च यःक्षुःपारसनरःपुरुषोत्तमः । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो नापलोके महीयते ।  
 स्नानं तर्पणपर्यन्तं देवामहर्षयोपि बुधः । अतः परं च देवानां पूजनं कारयेदुबुधः ॥ ६५ ॥  
 ाणेशं पूजयेद्यस्तु पिप्पलस्तस्य न जायते । आरोग्याय च सूर्यं च धर्ममोक्षाय माघवन्

शिवं च कृत्यकामाय सर्वकामाय चण्डिकाम् ।

देवांस्तु पूजयित्वा तु वैश्यदेवयलिं चरेत् ॥ ६७ ॥

रक्षिष्यं ततःकृत्या यज्ञं ब्राह्मणतर्पणम् । देवानां सर्वसत्त्वानां पुनस्त्रिषिष्टपञ्चजेत् ।  
 गतागतं स्थिरकृत्या कामान्मोक्षं सुखं दिवम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नित्यं कर्माणि कारयेत्

नारद उवाच ।

किमर्थं च जलं तात देवाः पितृगणैः सह । न प्राप्नुयन्ति सर्वं लभन्ते मानवा यथा ।  
 ब्रह्मोवाच ।

पुरासृष्टं मया तोयं सर्वदेवमयामृतम् । तस्यैव रक्षणार्थं च रक्षो यक्षाधनुर्धराः । ७१ ।  
 अजिते पितरं देवमस्मद्वाक्यान्तमानुषम् । पशवः पक्षिणः कीटा मर्त्यलोकेऽप्यवस्थिताः ।  
 मर्त्यजाताश्च देवा ये तथैव मानुषाश्च यम् । तर्पयित्वा गुहं नित्यं सुरलोके प्रतिष्ठिताः ।  
 अस्नायी च मलं मुहूर्ते अजपी पूयशोणितम् । अकृत्या तर्पणं नित्यं पितृदात्रोपजायते ।  
 ब्रह्महत्यासमं पापं देवानामप्यपूजने । सन्ध्याकृत्यमकृत्या च सूर्यं हन्ति च पापकृत् ॥

नारद उवाच ।

ब्राह्मणस्य सदाचारः कर्म ब्रूहि च कर्मणाम् । इतरेषां च वर्णानां प्रवृत्तमखिलं यत् ।  
 ब्रह्मोवाच ।

आचारालम्बते चायुराचारहम्बते सुखम् । आचारो हम्बतश्चक्षणम् ।

अनाचारो हि पुरुषो लोके मवति निन्दितः । दुःखमाप्ती च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च  
 न लोके नियतं धासो ह्यनाचारान्नरस्य च । आचाराच्च परलोकमाचारं शृणुत स्वतः ॥  
 गोमयेन गृहे नित्यं प्रकुर्व्यादुपलेपनम् । प्रक्षालयेत्ततः पीठं काष्ठं पात्रं शिलातलम् ॥ ८० ॥  
 भस्मना कांस्यपात्रं तु ताम्रमण्डलेन शुद्ध्यति । शिलापात्रं तु तैलेन फालं गोघालयेत्तु  
 स्थण्णरीप्यादिपात्रं तु जलमात्रेण शुद्ध्यति । अग्निनालोहपात्रं तु पाकप्रक्षालनेन तु ॥  
 ज्वननाद्वाहनाच्चैव उपलेपनधावनात् । पर्जन्यवर्षणाच्चैव भूरमेध्या विशुद्ध्यति ॥ ८१ ॥  
 तैजसानां मणीनाञ्च सर्वस्याश्ममयस्य च । भस्ममिर्मृत्तिका मिश्रं शुद्धिरुक्ता मया पुरा  
 शप्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमण्डलुः । आत्मनः कथिताश्शुद्धा न परेषां कदाचन ॥  
 न भुञ्जीतैकवस्त्रेण न स्नायादेकपाससा । न धारयेत्परस्वैर्बन्धान् कदाचन ॥  
 संस्कारं केवलं स्नानां प्रातरेव समाचरेत् । शुक्लां च नमस्कारं नित्यमेव समाचरेत् ॥  
 हस्तापादे मुखे चैव पञ्चाङ्गं भोजनं चरेत् । पञ्चाङ्गकस्तु भुञ्जानः शतं वर्षाणि जीवति ॥  
 देवतानां गुरोराज्ञां स्नातकाचार्ययोरपि । नाकामेत्कामतश्चायां विप्रस्य वीक्षितस्य च  
 गौगणं देवतं विप्रं घृतं मधुचतुष्पथम् । प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत प्रख्यातांश्च वनस्पतीन् ॥

गोविप्रावन्निविप्री च विप्री द्वौ दम्पती तथा ।

तयोर्मध्ये ॥ गच्छेत् स्वर्गस्थोऽपि वनेषु ध्रुवम् ॥ ११ ॥

उच्छिष्टो न स्पृशेदग्निं ब्राह्मणं देवतं गुरुम् । रक्षशीर्षं पुष्पवृक्षं च यज्ञवृक्षमधार्मिकम् ॥  
 ग्रीणि तेज्जांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन । सूर्यावन्म्रमसाधेयं नक्षत्राणि च सर्वशः  
 नैक्षेद्रिप्रं गुरुं देवं राजानं यतिनां वरम् । योगिनं देवकर्माणं धर्माणां कथकं द्विजम् ॥  
 नदीनां च प्रतीरे च पत्युश्च सरितां तथा । यज्ञवृक्षस्य मूले च उद्याने पुष्पपादके ॥  
 शरीरस्य प्रलटपागं न कुर्व्याद्धीवने तथा । विप्रस्यापतने गोष्ठे रथे राजपथेषु च ॥  
 न क्षीरं कारयेद्धीरः कुञ्जस्याह्नि कदाचन । मलं न धारयेद्दन्ते नयं न घटने शिपेत् ॥  
 तैलाम्यङ्गं न कुर्वीत वासरे रविर्मासयोः । स्वमात्रासनयोर्वायं गुरोरेकासनादनम् ॥  
 न हरेच्छ्रोत्रिपत्वं च देवस्यापि गुरोरपि । राक्षसपत्स्विनां चैव पद्मोत्थम्य योयिनः

पन्था देवो ब्राह्मणाय गोम्यो राजम्य पथ च ।

निराशास्ते निपतन्ते ध्वनिष्पीडनेन च । तस्मान्नपीडयेद्वस्त्रमदृष्ट्वा पितृर्तपः ।

तिष्ठःकोट्योऽर्घकोटी च यानिलोमानि मानुषे ।

अधन्ति सर्वतीर्थानि तस्मान्न परिपीडयेत् ॥ ६१ ॥

देवाः पितृशिरसि श्मश्रुतः पितरस्तथा । चक्षुरपि गन्धर्वा भयस्तात्सर्वज्ज्ञः ।

देवाः पितृगणाः सर्वे गन्धर्वा जन्तवस्तथा । स्नानमात्रेण तुप्यन्ति स्नानात्पापं न विदुः ।

नित्यस्नानं च यः कुर्यात्सनरः पुरुषोत्तमः । सर्वपापैर्धिनिर्मुक्तो नाफलोके महीयते ।

स्नानतर्पणपर्यन्तं देवामहर्षयोचिदुः । अतः परं च देवानां पूजनं कारयेद्बुधः ॥ ६२ ॥

गणेशं पूजयेद्यस्तु विघ्नस्तस्य न जायते । आरोग्यार्थं च सूर्यं च धर्ममोक्षाय माधवम् ।

शिवं च कृत्यकामार्थं सर्वकामाय चण्डिकाम् ।

देवांस्तु पूजयित्वा तु वैश्यदेवार्थं चरेत् ॥ ६३ ॥

षड्विकारं ततः कृत्वा यज्ञं ब्राह्मणतर्पणम् । देवानां सर्वस्त्वनानां पुनस्त्रिचिदंशं प्रजे ।

गतागतं स्थिरदृष्ट्वा कामान्मोक्षं सुखं दिधम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नित्यं कर्माणि कारयेत् ॥ ६४ ॥

नारद उवाच ।

किमर्थं च जलं तात देवाः पितृगणैः सह । न प्राप्नुवन्ति सर्वज्ञं लभन्ते मानसा यथा ।

ब्रह्मोवाच ।

पुरासृष्टं मया तोयं सर्वदेवमयामृतम् । तस्यैव रक्षणार्थं च रक्षो यक्षाधनुर्धराः ।

घ्नन्ति ते पितरं देवमस्मद्वाक्यान्मानुषम् । पशवः पक्षिणः कीटा मर्त्यलोकेऽप्यप्यस्थि ।

मर्त्यजाताश्च देवा ये तथैव मानुषाधुक् । तर्पयित्वा गुरुं नित्यं सुरलोके प्रतिष्ठितः ।

अस्नायी च मलं भुङ्क्ते अजपी पूषरोजितम् । अदृष्ट्वा सर्वेण नित्यं पितृहावोपजापः ।

ब्रह्महत्यासमं पापं देवानामप्यपूजने । सन्ध्याकृत्यमदृष्ट्वा च सूर्यं हन्ति पापहृत् ॥ ६५ ॥

नारद उवाच ।

ब्राह्मणस्य सदाचारं कर्म ब्रूहि च कर्मणाम् । इतरेषां च वर्णानां प्रवृत्तमखिलम् ।

ब्रह्मोवाच ।

आचाराद्भूते चायुराचाराद्भूते मुधम् । आचारो ह्यन्यथा ॥ ६६ ॥

अनाचारो हिपुरुषो लोकेभ्यतिनिन्दितः । दुःखमागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च  
नरकेनियतवासो ह्यनाचारान्नरस्य च । आचाराश्च परलोकमाचारं शृणुतस्त्वतः ॥  
गोमयेन गृहेनित्यं प्रकुर्यादुपलेपनम् । प्रक्षालयेत्ततःपीठं काष्ठं पात्रं शिलातलम् ॥८०॥  
मस्मना कांस्यपात्रं तु ताम्रमण्डेन शुद्ध्यति । शिलापात्रं तु तैलेन फालं गोघालकेन तु  
स्वर्णरौप्यादिपात्रं तु जलमात्रेण शुद्ध्यति । अग्निनालोहपात्रं तु पाकप्रक्षालनेन तु ॥  
वननादाहनाच्चैव उपलेपनधायनात् । पर्जन्यचर्वणाच्चैव भूरमेध्या विशुद्ध्यति ॥८१॥  
तैजसानां मणीनाञ्च सर्वस्याश्ममयस्य च । मस्ममिर्मुक्तिकाभिश्च शुद्धिक्का मया पुरा  
शय्या भार्या शिशुर्यत्नमुपवीतं कमण्डलुः । आत्मनः कथिताश्शुद्धा न परेषां कदाचन ॥  
न भुज्जीतैक्यस्त्रेण न स्नायादेकयाससा । न धारयेत्परस्वैयं स्नानवस्त्रं कदाचन ॥  
संस्कारं केशान्तानां प्रातरैव समाचरेत् । गुरुणां च तमस्कारं नित्यमेव समाचरेत् ॥  
हस्तपादे मुखेचैव पञ्चाङ्गैर्भोजनंचरेत् । पञ्चाङ्गकस्तु भुज्जानः शतं वर्षाणि जीयति ॥  
देयतानां गुरोराणां स्नातकाचार्ययोरपि । नाक्रामेत्कामतश्छायां विप्रस्य दीक्षितस्य च  
योगणं देयतं विप्रं पूतं मधुचतुष्पथम् । प्रदक्षिणं प्रकुर्यात् प्रदयाताश्च घनस्पतीन् ॥

गोविप्रावग्निविप्री च विप्री द्वौ दम्पती तथा ।

तयोर्मध्ये न गच्छेत् स्वर्गस्थोऽपि पतेद् भ्रुवम् ॥ ११ ॥

उच्छिष्टो न स्पृशेद्भिः प्राह्णं देयतं गुरुम् । रथशीर्षं पुष्पवृक्षं च यज्ञवृक्षमधार्मिकम् ॥  
प्रीणि तैजसि नोच्छिष्ट उदीक्षित कदाचन । सूर्यावन्मसावेवं नक्षत्राणि च सर्वशः  
नैशेद्विप्रं गुरुं देवं राजानं यतिनां धरम् । योगिनं देवकर्माणं धर्माणां कथकं द्विजम् ॥  
गर्दीनां च प्रतीरं च परयुञ्ज सरितां तथा । यज्ञवृक्षस्य मूले च उद्याने पुष्पपाटके ॥  
शरीरस्य मल्लयागं न कुर्याज्जीवने तथा । विप्रस्थापने गोष्ठे रम्ये राजपथेषु च ॥  
न क्षौरं कारयेद्धीरः कुजस्याह्नि कदाचन । मलं न धायेदन्ते नखं न वदने क्षिपेत् ॥  
तैलाम्बुद्धं न कुर्यात् घासरे रचिमौमयोः । स्वगात्रासनयोर्वाद्यं गुरोरेकासनादनम् ॥  
न हरेच्छोत्रियस्य च देयस्यापि गुरोरपि । राजस्तपस्विनां चैव पद्मोदन्धस्य योषितः

पन्था देयो प्राह्मणाय गोम्भ्यो राजम्भ्य एव च ।



रोगिणे मारुतक्षाय गुर्विण्यै दुर्बलाय च ॥ १०० ॥

पिपादं न च कुर्मोत नृपविप्रचिकित्सकैः ।

ब्राह्मणं गुरुपत्नीं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १०१ ॥

पतितं कुष्ठसंयुक्तं चाण्डालं च गघाशिनम् । निर्धूतं ज्ञानहीनं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥  
स्त्रियं दुष्टं च दुष्टं क्षामपचाद्मदायिनीम् । कुर्मकारिणीं दुष्टां सदैव ब्रह्महृदि ॥

प्रमत्तामधिकाङ्क्षीञ्च निर्लेज्जां बाल्यधारिणीम् ।

ध्ययशीलामनाचारां दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १०४ ॥

मलितं नामिषन्देत गुरुपत्नीं कदाचन । न स्पृशेतां च मेधावी स्पृष्ट्वा स्नानेन गुरुपति  
स तथा सह केलिं च वर्जयेद्य सदैव हि । शृणुयाद्य पयो नूनं न पश्येद्य गुरोः स्निग्धम्  
यद्युं पुत्रस्य भ्रातुश्च स्वपुत्रीं युवतीं ध्रुवम् । अन्यां च गुरुपत्नीं च नेष्टेरपरां न कारयेत् ॥

तामिः सह कथालापं तथा भ्रूमङ्गदरानम् ।

ब्रह्मं निरुपपां घाणीं सदैव परिवर्जयेत् ॥ १०८ ॥

न दद्याच्च सदापादं मुग्धाङ्गाराब्धिप्रस्मयु ।

कापांसाब्धिषु निर्मादयोचितिकाष्ठेचितौ गुरौ ॥ १०९ ॥

गुरुः प्रीतिं न महेत पूजितान्धिममेध्यकम् । विषयं वाग्यदुष्टिष्टं वाकार्यं वाग्विषयं  
न स्थानार्थं न गन्तव्यं क्षणमप्यसता सह । न निष्टेद्य क्षणधीरो दीपप्याये कनिष्ठे ॥

अन्यद्वैस्सह बालानं पतिनेः कुमिनेः सह ।

न कुर्यादक्षयमात्रं तु कृत्वा गच्छेद्य गौरवम् ॥ ११२ ॥

कनिष्ठं नामिषन्देत पितृव्यं मातृव्यं तथा ।

उत्थाय वासनं दद्यात्पुत्राङ्गुल्यग्रतः स्थितः ॥ ११३ ॥

नेत्राभ्यर्त्तं ततोऽप्युत्तमार्द्धवर्त्तं च गेगिणम् ।

पारावारमनोद्विजं बह्वर्त्तं नामिषन्देत् ॥ ११४ ॥

अप्युत्तमार्द्धवर्त्तं बह्वर्त्तं नामिषन्देत् ॥ ११५ ॥  
शिरः प्रक्षुब्धं बह्वर्त्तं वा अङ्गु मुष्टिर्द्वयोः वा ।

अहृत्पा पादयोः पूजां नाचामेदु दक्षिणामुखः ॥ ११६ ॥

उपवीतपिहीनश्च नम्रको मुक्तकच्छकः । एकपञ्चपिधानश्च माचान्तो नैव शुद्धयति ॥  
मप्यमामिर्मुक्षं पूर्वतिष्ठमिः समुपस्पृशेत् । अङ्गुष्ठदेशिनीभ्यां च नासां च तदनन्तरम् ॥  
अङ्गुष्ठानासिकाभ्यां च चक्षुरी समुपस्पृशेत् । कनिष्ठाङ्गुष्ठतन्मधोत्रे नाभिमङ्गुष्ठकेन तु  
तलेन हृदयं भ्यस्य सर्षाभिमस्तकोपरि । बाह्वघात्रेण संस्पृश्य ततः शुद्धी भवेन्नरः ॥  
अनेनावमनं कृत्वा मानयः प्रयतो भवेत् । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स्वर्गं चाक्षयमश्नुते ॥  
प्राणलिपुट्पङ्क्त्या च व्यानोऽपानश्च मुद्रया । समानस्तु समस्ताभिरुद्दानस्तर्जनीचिना  
नागःकूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः । उपग्रीणन्तु ते प्रीता येभ्यो भूमौ प्रदीयते ॥  
शयनं चार्द्रपादेन शुष्कपादेन भोजनम् । नान्धकारे च शयनं भोजनं नैव कारयेत् ॥  
पश्चिमे दक्षिणे चैव न कुपोदन्तघायनम् । उत्तरे पश्चिमेचैव न स्वपेदि कदाचन १२५ ॥  
स्वप्नादायुःक्षयं याति ब्रह्महा पुरुषो भवेत् । न कुर्वीत ततःस्वप्नंशस्तं च पूर्वदक्षिणम्

आयुष्यं प्राङ्मुखो मुंक्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।

धियं प्रत्यङ्मुखो मुंक्ते यशोर्मुक्त उदङ्मुखः ॥ १२७ ॥

प्राच्यां नरो लभेदायुर्याभ्यां प्रेतघमश्नुते । धारुणे च भवेद्भोगी आयुर्वित्तं तथोत्तरै ॥  
देवानामेकमुक्तं ॥ द्विमुक्तस्यान्नरस्य च । त्रिमुक्तं प्रेतदैत्यस्य चतुर्थंकीणपस्य तु ॥  
निरामिपं हविर्देवा मत्स्यमांसादि मानुषाः । पूतिपर्युषितं दुष्टमन्ये भुञ्जन्त्यनावृताः ॥  
स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये वसन्ति ।

दानं प्रशस्तं मधुरा च धाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥ १३१ ॥

कार्पण्यवृत्तिः स्वजनेषु निन्दा कुचेलता नीचजनेषु भक्तिः ।

अतीवरोधः कटुका च धाणी नरस्य चिह्नं नरकजातस्य ॥ १३२ ॥

नवनीतोपमापाणी करुणाकोमलं मनः । धर्मवीजप्रसूतानामेकप्रत्यक्षलक्षणम् ॥ १३३ ॥

दयादरिद्रहृदयं घचः क्रकचकर्कशम् । पापवीजप्रसूतानामेकप्रत्यक्षलक्षणम् ॥ १३४ ॥

आवयेच्छृणुयाद्वापि सदाचारादिकंनरः । आचारादेःफलंलब्ध्वा पापात्पूतोऽच्युतोदिधि

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे सदाचारवर्णनं नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ।

## द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः पित्रर्चाप्रशंसायां भूकारूपानम् ।

मीमा उवाच ।

यत्पुण्यमधिकंलोके सर्वदा सर्वसंमतम् । तद्वदस्येच्छया विप्र यत्कृतं पूर्वपूर्वकैः ।

पुलस्त्य उवाच ।

एकदा तु द्विजाः सर्वे व्यासशिष्यास्सहादरात् ।

व्यासं प्रणम्य पप्रच्छुर्धर्मं मां च यथा मवान् ॥ २ ॥

द्विजा ऊचुः ।

पुण्यात्पुण्यतमं लोके सर्वधर्मेषु चोत्तमम् । किं कृत्वा मानवाः स्वर्गं भुञ्जते चाक्षर्यया  
लभ्यं चाफलकं शुद्धं धर्मानां मर्त्यवासिनाम् । गुरुणां च लघूनां च साध्यमेककर्तुं वा  
यद्यत्कृत्वा च देवानां पूज्योभाके भवेन्नरः । तत्तद्वद च नो ब्रह्मन्प्रसादी भवधर्मतः ॥ ५ ॥

व्यास उवाच ।

पञ्चाख्यानं वदिष्यामि शृणुष्व तत्रपूर्वतः । पञ्चनामेककं कृत्वा विन्दामोक्षं विप्रं यथा  
पित्रोरर्चाऽथ पत्युश्च साम्यं सर्वजनेषु च । मित्राद्रोहो विष्णुमक्तिरैतेषां च महामकाः  
प्राक्पित्रोर्ध्या विप्रा यद्धर्मं साधयेन्नरः । न तत्कृतुशतैरेव तीर्थयात्रादिभिर्भुवि ।  
पिताधर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः । पितरि प्रीतिमापन्ते प्रीयन्ते सर्वदेवताः ।  
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च । तस्य मागीरथीस्नानमहायज्ञनि धर्मेन ।  
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता । मातरं पितरं तस्मात्सर्वयत्नेन पूजयेत् ॥ ११ ॥  
मातरं पितरं चैव यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणीकृत्वा तेन समद्वीपापमुन्धरा ॥

जानुनी च करी यस्य पित्रोः प्रणमतः शिरः ।

निपतन्ति पृथिव्यां च सोऽक्षयां लभते दिवम् ॥ १२ ॥

तयोश्चरणयोर्वापद्रजश्चिह्नानि मस्तके । प्रतीके ॥ विलग्नानि लापत्पूतः सुनस्तयोः ।

यः पित्रोः पिबनेसुतः । तस्य पार्य क्षयं याति जगमकोटिराग्निं च ॥

धन्योऽसौ मानयो लोके पूतोऽसौ सर्वकल्मषात् ।

पितायकृत्यमाप्नोति जन्मनैवेन मानवः ॥ १६ ॥

पितरौलङ्घयेयस्तु पचोभिः पुण्याधमः । निरये च वसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥

पित्रोरनघनं कृत्वा भुङ्क्ते यस्तु सुताधमः । कृमिकृपेऽयनरके कल्पान्तमुपतिष्ठति ॥

रोगिणं चापि वृद्धं च पितरं वृत्तिकर्षितम् । विकलं नेत्रकर्णभ्रष्टं त्यक्तवागच्छेद्यरौरयम्  
मत्स्यप्रातिपु म्नेच्छेद्य चाण्डालेष्वपि जायते । पित्रोरपोषणं कृत्वा सर्वपुण्यक्षयो भवेत्

नाराध्य पितरौ पुत्रस्तीर्षदेवान्मज्जनपि ।

तयोर्न फलमाप्नोति कीटपद्मते महीम् ॥ २१ ॥

कथयामि पुरा वृत्तविप्राः शृणुत परतः । यं धृत्वा न पुनर्मोहं प्रयास्यथ पुनर्भुवि ॥

पुराऽऽसीच्च द्विजः कश्चिन्नरोत्तम इति स्मृतः । स्वपितरावनादृत्य गतोऽसौ तीर्थसेवया

तन.सर्पाणि तीर्थानि गच्छतो ब्राह्मणस्य च । आकाशे स्नानचैलानि प्रशुष्यन्ति दिने दिने

अहङ्कारोऽविशक्तस्य मानसे ब्राह्मणस्य च ।

मत्समो नास्ति वै कश्चित्पुण्यकर्मा मदायशाः ॥ २५ ॥

एतुके वानने तस्य भद्रहृदय वक्रस्तदा । क्रोधाच्चैवेरितस्तस्य स शशापद्विजो वक्रम्

रपात् च वक्रः पृथ्व्यां स भस्मीभूतविग्रहः । मीर्द्धिमेन्द्रं महाभोहः प्राविशच्छान्तकर्मणि

तः पापाच्च विप्रस्य चैलं खे च न गच्छति । विपादमगमत्सद्यस्ततः खे तमुवाच ह ॥

देववाण्युवाच ।

एच्छ वाडय चाण्डालं मूर्खं परमधार्मिकम् । तत्र धर्मं च जानीषे क्षेमं ते तद्वचोभवेत्

व्यास उवाच ।

गच्छ तद्वचनं धृत्वा गतोऽसौ मूकमन्दिरम् । शुभ्रभस्तं च पितरौ सर्वारम्भान्दर्श सः

वृत्तं शीतकाले च सम्यगुष्णं जलं तपोः । तैलतापनताम्बूलं तथा तूलवर्षां पटीम् ॥

नेत्राशनं च मिष्टान्नं दुग्धसण्डंतथैव च । दापयन्तं वसन्ते च मधुमालां सुगन्धिकाम्

अग्न्यानि यानि भोग्यानि कृत्यानि विविधानि च ।

उष्णे चावीज्यत्सोऽपि नित्यं च पितरावपि ॥ ३३ ॥

तस्तयोः प्रचर्यां च कृत्यामुद्धृत्केऽथ सर्वदा । श्रमस्य धारणं कुर्यात्सन्तापस्य तथैव च

यमिः पुण्यैः स्थितो विष्णुस्तस्य गेहोदरे चिरम् ।

अन्तरिक्षे च क्रीडन्तमाधारस्तम्मवर्जिते ॥ ३५ ॥

तस्यापि भयने नित्यं स्थितं त्रिभुवनेश्वरम् । विप्ररूपधरं कान्तं नान्यैर्मृतं च सत्पाम्  
तेजोमयं महासत्त्वं शोभयन्तं च मन्दिरम् । दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो विप्रः प्रोवाचमूकम्  
विप्र उवाच ।

आसन्नं च समागच्छ त्वयैषेच्छामि शाश्वतम् । हितं मे सर्वलोकानां तत्त्वतो वक्तुमर्हति  
मूक उवाच ।

पित्रोर्खां करोम्यद्य कथमायामि तेऽन्तिकम् । अर्चयित्वा तु पितरौ कृत्यंते करपाणि वै  
तिष्ठ मे द्वारदेशे च आतिथ्यं ते करोम्यहम् ॥ ४० ॥

व्यास उवाच ।

इत्युक्ते धीम चाण्डाले चुकोप ब्राह्मणस्तदा ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

ब्राह्मणं मां परित्यज्य किं कार्यमधिकं तव ॥ ४२ ॥

मूक उवाच ।

किं कुप्यसि वृथा विप्र न यकोऽहं तवाधुना ।

कोपस्तिद्वयति ते तावद् वक्षेनाद्यत्र किञ्चन ॥ ४३ ॥

गगने स्नानशार्दीते न शुष्यति ॥ तिष्ठति । यत्नं खासतः धृष्ट्वा मनुगृहं बागतो भवान्  
तिष्ठ तिष्ठ धदिष्यामि नो चेद्गच्छपतिप्रताम् । तां ॥ दृष्ट्वा द्विजश्रेष्ठ दयितं ते कलिष्यति  
व्यास उवाच ।

ततस्तस्य गृहादिष्णुर्द्विजरूपधरो विभुः । विनिस्तृत्य द्विजं प्राह गेहं तस्याः प्रयाग्वरम्  
स पिमृश्यद्विजश्रेष्ठस्तेन सार्धं च चाल ह । गच्छन्तं तमुपाचेद् ददरि विप्रोऽतिविस्मिनः  
विप्र उवाच ।

\* च त्वया विप्र चाण्डालस्य गृहोदरे । सदा संस्थीयते तात यो नाजगत् न मुरा

हरिरुवाच ।

इदानीं मानसं शुद्धं न भूतं मघतो ध्रुवम् । पतिव्रतादिकं दृष्ट्वा पञ्चाङ्गास्यसि मां किल  
विप्र उवाच ।

पतिव्रता च का तात किं वा तस्याश्च्युतं महत् । येनाहंतत्रगच्छामि कारणं यद् मे द्विज  
हरिरुवाच ।

नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा प्रमदानां पतिव्रता । मनुष्याणां प्रजापालो देवानां च जनार्दनः ॥

पतिव्रता च या नारीपत्युर्नोत्थं हिते रता । कुलद्वयस्य पुरयानुद्धरेत्सा शतं शतम् ॥५२॥

स्यां भुनक्ति तापश्च यावदाभूतसम्पदम् । स्वर्गाद्भ्रष्टो भवेद्दास्याः सार्वभौमो नृपपतिः

अस्यैव महिषी भूत्वा सुखं विन्देदनन्तरम् । पुनः पुनः स्वर्गराज्यं तस्य तस्यान संशयः

एवं जन्मशतं प्राप्य भन्ते मोक्षो भवेदुभयम् ॥

विप्र उवाच ।

पतिव्रता भवेत्काषातस्या किं वा च लक्षणम् । ब्रूहि मे द्विजशार्दूल यथा जानामि तत्पतः

हरिरुवाच ।

पुत्राच्छतशुणं स्नेहाद्राजानं च मया दध । आराधयेत्पतिशौरिं वा पश्येत्सा पतिव्रता

कार्येदासी रती पेश्या भोजने जननीसमा । विपत्सु मन्त्रिणीभर्तुः सा च भार्या पतिव्रता

भर्तुराहा न लङ्घेद्यामनोघाताय कर्मभिः । भुक्ते पत्नी सदा खाति सा च भार्या पतिव्रता

यस्यां यस्यां ॥ शय्यायां पतिः स्वपिति यज्ञतः ।

तत्र तत्र च सा भर्तुरर्चो कर्तुं नित्यशः ॥ ६० ॥

नैव मत्सरमायाति न कार्यर्ण्यं न मानिनी । मानेऽमाने समानं च या पश्येत्सा पतिव्रता

सुखेयं वा नरं दृष्ट्वा न्नातरं पितरं सुतम् । मन्यते च परं साध्वी सा च भार्या पतिव्रता

गच्छ द्विजशार्दूल यद् कामं यथा तव । तस्य पत्न्योऽष्ट तिष्ठन्ति तन्मध्ये वरधारिणी

रूपयोगनसम्पन्ना दयायुक्ता यशस्विनी । शुमानामेति विख्याता गत्वा तां पृच्छते हितम्

ख्यात उवाच ।

यमुक्त्वा ॥ भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत । तस्यैवाद्दृश्यतां दृष्ट्वा विस्मितोऽब्रूद्विजस्तदा

स च साध्वी गृहं गत्वा पप्रच्छाद्य पतिव्रताम् ।

अतिप्रेर्वचनं श्रुत्वा गृहान्निःसृत्य सम्प्रमात् ॥ ६६ ॥

दृष्ट्वा द्विजं सती तत्र द्वारदेशस्थिता भवत् । तां च दृष्ट्वा द्विजश्रेष्ठ उवाच वचनं मुदा ।

विप्र उवाच ।

प्रियं मम हितं ब्रूहि यथादृष्टं त्वमेव हि ॥ ६८ ॥

पतिव्रतोवाच ।

साम्प्रतंपत्युरर्चास्ति नचास्माकंस्यतन्त्रता । पश्चात्कार्यं करिष्यामि गृहाणातिप्यमग्रै

विप्र उवाच ।

ममदेहे क्षुधा नास्ति विपासाद्य न च धमः । अभीष्टं यद् कल्याणि मोक्षेच्छासंश्रिते

व्यास उवाच ।

तमुवाच तदा सापि न यकोऽहं द्विजोत्तम । गच्छ धर्मतुलाधारं पृच्छ तं ते हितं द्विज

इत्युक्त्वा सा महामाता प्रययौ च गृहोदरम् ।

तत्रापश्यद्विजो विप्रं यथा चाण्डालप्रेमनि ॥ ७२ ॥

विमृश्य विस्मयापन्नस्तेन सार्धं ययौ द्विजः । तिष्ठन्तंच द्विजं तं च सोऽपश्यदुधूपमानसम्

॥ चोवाच मुदा विप्रं दृष्ट्वा तं तां सती च सः ॥ ७४ ॥

विप्र उवाच ।

देशान्तरेय यदुपृत्तं तथा च कथितं किल । कथं जानाति मदुपृत्तं चाण्डालोऽपि नित्यम्

अतो मे विष्मयन्नात किमाश्चर्यं परं महत् ॥ ७५ ॥

हरिकथाय ।

ज्ञायते कारणं तात सर्वेषां भूतमायनः । अतिपुण्यात्सदाचारायतस्थं विस्मयं गतः

किमुक्तश्च तथा त्वं च यद् तत्सामग्र्यं मुने ॥ ७६ ॥

विप्र उवाच ।

प्रपुं धर्मं तुलाधारं सा च मां समुपादिशत् ॥ ७७ ॥

हरिष्याच ।

मागच्छमुनिशार्दूल भद्रं गच्छामि तं प्रति । गच्छन्तं च हरिं ग्राह तुलाधारः क तिष्ठति  
हरिष्याच ।

जानां निकरो यत्र बहुद्रव्यसुषिक्तये । विक्रीणाति च क्रीणाति तुलाधारस्ततस्ततः  
जनो यथाग्रसं स्नेहं कृष्टमग्नस्य सञ्जयम् । सर्वं तस्य मुखादेव गृह्णाति च ददात्यपि ॥  
सत्यं त्यक्त्वाऽनृतं किञ्चित्प्राजान्ते समुपस्थिते । नोकं नरवरश्रेष्ठस्तेन धर्मतुलाधरः  
व्यास उवाच ।

एतुके तु तमद्राक्षीद्विक्रीणन्तं रसान्धकृन् । मलपङ्कधरं मर्त्यं दन्तकुङ्कुमलपङ्किलम् ॥

तत्र यस्तुधनोत्थां च भाषन्तं विविधां गिरम् ।

वृत्तं बहुविधैर्मर्त्यैः क्षीमिः पुग्निमध्व सर्वतः ।

कथं कथमिति ग्राह स तं मधुरया गिरा ॥ ८३ ॥

चित्र उवाच ।

धर्मस्य मे समुद्देशं यद् प्राप्नोऽन्तिकं हि ते ॥ ८४ ॥

तुलाधार उवाच ।

यावज्जनाः प्रतिष्ठन्ति ममैवसन्निधौ द्विज । तावन्मेस्वस्थतानास्ति यावच्चरात्रियाम्रकः  
तद्योपदेशमादाय गच्छ धर्माकरं प्रति । यकस्य मरणे दोषं खे च वस्त्राविशोषणम् ॥  
सर्वं तत्र च जानीये सञ्जनाद्रोहकं व्रज । तत्र तस्थोपदेशेन तव कामः कलिष्यति ॥

व्यास उवाच ।

एतुत्तथा तं तुलाधारः करोति क्रयविक्रयौ ॥ ८८ ॥

चित्र उवाच ।

तथा तात गमिष्यामि सञ्जनाद्रोहकं प्रति । तुलाधार समुद्देशान्न जानामि तदालयम्  
हरिष्याच ।

पद्मागच्छ गमिष्यामि त्वया सार्द्धं च तदुग्रहम् ।

अथ धर्मनि गच्छन्तमुवाच ब्राह्मणो हरिम् ॥ ९० ॥



विप्र उवाच ।

तुलाधारस्य न स्नानं न देवपितृर्तपणम् । मलदिग्धं च गात्रं तु सर्वं चैलमलक्षणम् ।  
कथं जानाति मधुवृत्तं देशान्तरस्तमुद्भवम् । अतो मे विस्मयस्तात सर्वं त्वं वद कारणम्  
हरिस्त्वाच ।

सत्येन समभावेन जितं तेन जगत्त्रयम् । तेनातृप्यन्त पितरो देवा मुनिगणैः सह ।  
भूतभक्ष्यप्रवृत्तं च तेन जानाति धार्मिकः । नास्तिसत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकंपरम्  
विशेषे समभाषस्य पुरुषस्यानघस्य च । अरो मित्रेऽप्युदासीने मनो यस्य सर्वं प्रतेज

सर्वपापक्षयस्तस्य विष्णुसायुज्यतां प्रजेत् ॥ ६५ ॥

एवं यो वर्तते नित्यं कुलकोटिं समुदरेत् । समो धर्मः समः स्वर्गः समं हि परमं तत् ।  
यस्यैष मानसे नित्यं समः स पुरुषोत्तमः ॥ ६६ ॥

सत्यं दमः शमश्चैव धैर्यं स्वैर्यमलोभता । अनाश्रयमनालस्यं तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्  
तेन वै देवलोकस्य नरलोकस्य सर्वशः । वृत्तं जानाति धर्मश्चस्तस्य देहे स्थितो हतिः  
लोके तस्य समो नास्ति समः सत्यार्जयेषु च ।  
स च धर्ममयः साक्षात्तेनैव धारितं जगत् ॥ ६७ ॥

द्विज उवाच ।

ज्ञातमे त्वत्प्रसादाद्य तुलाधारस्यकारणम् । अद्रोहकस्य यदुच्यते तदु मूढि त्वयदीत्यासि  
हरिस्त्वाच ।

पुरैष राजपुत्रस्य कुण्डली नवर्योयना । परनीष कामदैवस्य शचीष वासपत्न्य च ।  
तस्य प्राणसमा भार्या सुन्दरी नामसुन्दरी । मकस्मात्तर्हि वियश्चैष कार्यं गन्तुं तमुपमा  
मनसाऽऽलोचितं तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।  
कस्मिन्त्वाने व्यापयामि यतो रक्षा भवेद् ध्रुवम् ॥ १०१ ॥

न्यालोच्यैष सदसा त्वागतोऽस्य गृहंप्रति । उक्तं च तादृशं वाक्यं द्युत्पासपिरमर्षणम्  
अद्रोहक उवाच ।

न ताडस्ते न च भ्राता न धार्हं तप्य दान्धवः । पित्रमातृबुलस्यैव तस्या न हि पुत्राश्च

कथं च मदुगृहे तात स्थित्या स्वस्थो भविष्यसि ॥ ५ ॥

हरिरुवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे तेन चोक्तं धान्यं यथोचितम् ॥ १०६ ॥

राजपुत्र उवाच ।

लोके त्वत्सदृशो नास्ति धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः ॥ ७ ॥

हरिरुवाच ।

स बाहृतं च सर्वशं धत्तुं नार्हसिदूषणम् । त्रैलोक्यमोहिनीं भार्यां कः पुमाव्रक्षितुं क्षमः

राजपुत्र उवाच ।

धरण्यां परिचिन्ताय त्वामतोऽहं तवान्तिकम् ।

एषा तिष्ठतु तेऽगारे भजामि निजमन्दिरम् ॥ १०६ ॥

हरिरुवाच ।

एतुके स पुनःप्राह नगरेऽस्मिन्प्ररोभने । यदुक्तामुकसम्पूर्णं कथं रक्षामयेत् स्त्रियाः

स घोषाय पुनस्तं च कुट्ट रक्षां भजाम्यहम् ।

गृहस्यः सङ्कटादाह धर्मस्य राजपुत्रकम् ॥ १११ ॥

अद्रोहक उवाच ।

कतोन्पनुचितं कार्यं स्वदास्यमुचितं हितम् । सदाचैवेदृशी भार्या स्वातन्या मदुगृहे विनः

भारक्षा रक्षणे देव यदामीष्टं कुट्टप्रियम् । मम त्वत्प्रे मयासार्धं शयाना भार्यया तद ॥

मन्यसे दैवतं स्यं चेत्तिष्ठेन्नोचेत्तु गच्छतु ॥ ११३ ॥

हरिरुवाच ।

क्षणं विमृश्य तं प्राह राजपुत्रः पुनस्तदा ॥ ११४ ॥

राजपुत्र उवाच ।

षादमेतद्वचस्तात ययामीष्टं तया कुट्ट ॥ ११५ ॥

हरिरुवाच ।

ततो भार्यां जयादाय अस्य वात्स्यायिवाशिषम् ।

फलं न्येयं च न तै दीप आहूया मम मुन्दरि ॥ ११६ ॥

एतदुषत्यगतः सोऽपि भूपतेः शासनात्पितुः । मनन्तरं क्षपायां च यदुक्तं च तथा ब्रूम

योपितोर्मध्यगः सोऽपि नित्यं स्थितिं धार्मिकः ।

धर्माग्रचलने सोऽपि स्थमायां परमार्ययोः ॥ ११८ ॥

संस्पर्शात्स्वस्त्रियध्यास्य कामागमिलपितं मनः । तस्याः तैर्गततदस्य दुहितेय प्रमन्यते ।

स्तनौ तस्यास्तु पृष्टे च लग्नौ च पुनः पुनः । बालकस्येय पुत्रस्य स्तनौ मातुः समन्यते

तस्या भङ्गानि चाङ्गेषु लगन्ति च पुनः पुनः ।

ततो मातुस्तु तस्येय सोऽमन्यत दिने दिने ॥ १२१ ॥

तस्य योपासु संसर्गा निवृत्तस्तत्र मयत्ततः । एवं संवत्सरस्यादौ सत्पतिश्चागतः पुत्रम् ।

अपृच्छन्तं च लोके पुतस्यावृत्तमथोदितम् । केचिद्ब्रूवो धयन्तो युवानोऽपि तु विस्मिताः

केचिद्वाहुस्त्यया दत्ता तथा सादं स्वपितृसौ ।

स्त्रीपुंसोरेकसंसर्गान्छान्तता तु कथं भवेत् ॥ १२४ ॥

तस्यां यस्यामिलागोऽस्ति न पृष्टस्तपदेयुषा ।

लोकानां कुश्रुतिपार्ता तेन पुण्यबलाच्छ्रुता ॥ १२५ ॥

जनापपादमोक्षार्थं युद्धिस्तस्यामपच्युता । दारुणिष्वपमाहृत्याजिज्जलत्समहानलम् ।

एतस्मिन्नन्तरे तात राजपुत्रः प्रतापवान् । आगमत्तदुग्रहंस्रजः सोऽपश्यत्तां च योपिम्

प्रोत्पुल्लपदनान्तां प्रविषाद्गतं नरम् । मनयोर्मानसं ज्ञात्वा राजपुत्रोऽपदहवः ॥ १२८ ॥

राजपुत्र उवाच ।

किं न सम्प्रापसे मां च मित्रकं चिरमागतम् ॥ १२९ ॥

हरिश्चाच ।

अग्र्यात्सोऽपि धर्मात्मा राजपुत्रमनघेयीः ॥ १३० ॥

भद्रोदक उवाच ।

दुष्करं कर्म मया त्वद्वितकारणात् । सर्वं धर्ममहं मन्ये जनानां च प्रवक्ष्ये ।

अथ पद्मिहं यास्ये प्रपश्यन्तु नरास्तुराः ॥ १३१ ॥

हरिश्चन्द्र ।

इत्युक्त्वा स महाभागः प्रविशेश हुताशनम् । विशतस्तस्य बहौ ॥ कुसुमं विकुरालये  
नाङ्गमस्यानलोऽघाक्षीन्न च वस्त्रं न कुन्तलम् ।

ले च देवा मुदासर्वे साधुसाध्वीति चाग्रपन् ॥ १३३ ॥

अपतनुष्यवर्णाणि तस्यमूर्ध्नि समन्ततः । यैर्वैश्च दुष्कृतंवाक्यं गदितं तावुर्भोमति ॥  
तेषामुन्ने प्रजायन्ते कुष्टानि विविधानि च । तत्रागत्य च देवाश्चवह्नेराह्व्य तं मुदा  
अपूतयन्मुपुष्वैश्च मुनयो विस्मयंगताः । सर्वैर्मुनिवरैरेव मनुष्यैर्विविधैस्तदा ॥ १३६ ॥

अर्चयतेतु महातेजाः स च सर्वानपूजयत् । सज्जनाद्रोहकं नाम कृतं देवासुरैर्नृभिः ॥  
तस्यपादरजः पूता सस्यपूर्णाऽधरा भवत् । सुराश्चाहुश्च तं तत्र भार्या ते सम्प्रगृह्यताम्

एतस्य सद्गुणलोके न भूतो न भविष्यति ।

नास्तीति साम्प्रतं पृथ्वा कामलोभाजितः पुमान् ॥ १३६ ॥

देवासुरमनुष्याणां रक्षसां मृगपक्षिणाम् ॥

कीटादीनां च सर्वेषां कामय स दुर्जयः ॥ १४० ॥

कामाहोभास्तथाक्रोधानित्यं तस्येव जायते ।

संसारबन्धकः कामो ह्यकामो न क्वचिद्भवेत् ॥ १४१ ॥

मनेनेवजितं सर्वं भुवनानि चतुर्दश । अमुष्य हृदयेनित्यं वासुदेवोमुदास्थितः ॥ १४२ ॥

एवंस्पृष्टाऽय दृष्ट्वा तं मनुष्याः सर्वकल्मषात् । पूयन्ते ह्यनपाद्वैबलमन्ते चाहापादिषम्

एवमुक्त्वा गता देवा विमानैश्च दिवंमुदा । मनुष्याः प्रपयस्तुष्टा दम्पती स्वं गृहं तथा ॥

दिव्यं बभ्रुस्तदा तस्य वासीदेवस्त पश्यति ।

शैलोक्थस्य च वार्त्तां च जानाति लीलया मृशम् ॥ १४५ ॥

एतस्तस्य च पृथ्वा च दृष्ट्वेन सहैव सः ॥ यत्रच्छ मुदातं च धमदिशं दिनं यद् ॥

सज्जनाद्रोह उवाच ।

गच्छ पादय धर्मज्ञ वीष्णवं पुरुषोत्तमम् । तं च दृष्ट्वा त्वमीष्टं ते साम्प्रतं च पतिष्यति

यस्य निषण्णं गद्गापस्त्रस्याशोषणंतया । जानीषे वारोयश्च कामस्तेऽस्मिन्नुद्विष्टः

ध्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु पचनमागतो घैष्णवं प्रति । विष्णुरूपद्विजेनेष सार्द्धं तेन मुदा य  
अपश्यत्पुरुषं शुद्धं ज्वलन्तं च पुरः स्थितम् । सर्वलक्षणसम्पूर्णं दीप्यमानं स्वने  
अग्रधीत्स च धर्मात्मा ध्यानस्थं च हरेः प्रियम् ॥ १५१ ॥

विप्र उवाच ।

यद मो यच्चदृष्टं वै दूरात्त्वां आगतो ह्यहम् ॥ १५२ ॥

घैष्णव उवाच ।

प्रसन्नस्ते सुरधेष्टो दानधारीश्वरःसदा । दृष्ट्वा त्वां च मनोऽस्माकं दृष्यतीवाधुना  
कल्याणं चातुलं तेऽद्य फलिष्यति मनोरथः ।  
सुरधर्मनि ते निरयं चैलं शुष्यन्ति नान्यथा ॥  
दृष्ट्वा देवं सुरधेष्टं मम नेहे हरिं स्थितम् ॥ १५४ ॥

ध्यास उवाच ।

एतुक्ते घैष्णवेनाथ स तु मं पुनराग्रधीत् ॥ १५५ ॥

विप्र उवाच ।

कासौ विष्णुः स्थितो नित्यं दर्शयाद्य प्रसादतः ॥ १५६ ॥

घैष्णव उवाच ।

अस्मिन्देशगृहे रम्ये प्रविश्य परमेश्वरम् । तं दृष्ट्वा कितिषांक्षोरान्मुच्यसे जन्मबन्धना  
ध्यास उवाच ।

तस्य तद्वचनं ध्रुत्वा प्रविश्य सदनं प्रति । अपश्यतं द्विजं विष्णुं तिष्ठन्तं पद्मतलके  
शिरसेष प्रयन्त्याद्य जग्राह चरणौ मुदा । प्रसादी मयदेवेश न क्षातस्थं पुरामया  
शहामुत्र च देवेश तवाहं किङ्कुरः प्रभो । अनुग्रहश्च मे दृष्टो भवतो मधुसूदन ॥ १६० ॥  
रूपं ते द्रष्टुमिच्छामि यदि चास्ति कृपा मयि ॥ १६१ ॥

विष्णुरुवाच ।

अस्ति मे त्वयि भूदेव प्रियत्वं च सदैव हि । स्नेहात्पुण्यवतामेष दर्शनं कालिं मया

शर्नातस्पर्शनाद्धानात्कीर्तनाद्वापनात्तथा । संहृत्पुण्यवतामेव स्वर्गं वाक्षयामरुते ॥

नित्यमेव ॥ संसर्गात्सर्वपापक्षयो भवेत् ।

भुक्त्या सुखमनन्तं च महेहे प्रविलीयते ॥ ६४ ॥

नात्या च पुण्यतीर्थेषु दृष्ट्वा मां चैव सर्वतः । दृष्ट्वा पुण्यवतां देशागमदेहे विलीयते ॥

अपित्वा कथां पुण्यां लोकानामग्रतः सदा । स चैव नरशार्दूल महेहे प्रविलीयते ॥

उपोष्य घासरेऽस्माकं धृत्वा मच्चरितंघुषम् ।

रात्री जागरणं कृत्वा महेहे प्रविलीयते ॥ ६७ ॥

त्यन्तघोषणो नृत्यगीतवाचादिकैस्सदा । नामस्मरन्निजश्रेष्ठ महेहे प्रविलीयते ॥ ६८ ॥

दृक्तस्तीर्थभूतश्च त्वमेव यकमारणात् । यत्पार्थ तस्य मोक्षाय सखे स्थित्वाउवाच ह

वृक्ष मूकं महात्मानं तीर्थपुण्यवतां घरम् । मूकस्य दर्शनात्तात सर्वे दृष्ट्वा महाजनाः

रां च दर्शनादेव तथा सम्भावणान्मम । मम सम्पर्कमावाच्य मदगृहं चागतो भवान्

जन्मकोटिसहस्रेभ्यो यस्य पापक्षयो भवेत् ।

स मां पश्यति धर्मज्ञो यथा तेन प्रसन्नता ॥ १७२ ॥

पानुप्रहाद्वत्स महं दृष्टस्त्वयाऽनघ । तस्माद्वरं गृहाण त्वं यस्मै मनसि वर्तते ॥ १७३ ॥

विप्र उवाच ।

माकं सर्वथा नाधमानसं त्वयि तिष्ठतु । त्वद्वृत्ते सर्वलोकेश कदाचिन्न तु रोचताम्

माधय उवाच ।

मादेतादृशीभुविः स्फुरते ते सदाऽनघ । तस्मागमत्सदृशागमीगान्मदुगेहे संप्रलप्स्यसे

तु ते पितरौपूजामाप्नुतो न त्वयाऽनघ । पूजयित्वापुःपितरौ यश्चाद्यास्पतिमस्तनुम्

तयोर्निश्वासावातेन मन्थुना च भृशं पुनः ।

तपः क्षरति ते नित्यं तस्मात्पूजयती द्विज ॥ १७७ ॥

मन्थुर्निपतते यस्मिन्पुत्रे पित्रोश्च नित्यशः । तन्निरर्थं न बाधेऽहं न घाता न च शङ्करः

तस्मात्तु पितरौ गच्छ कुरु पूजां प्रयत्नतः ।

ततस्तु हि तयोरेव प्रसादान्मरपद् मम ॥ १७९ ॥

ध्यास उवाच ।

इत्युक्ते तु द्विजश्रेष्ठः पुनराह जगद्गुह्यम् ॥ १८० ॥

विप्र उवाच ।

प्रसन्नो यदि मे नाथ रूपं स्वं दर्शयाच्युत ॥ १८१ ॥

ध्यास उवाच ।

ततो द्विजप्रणयतः प्रसन्नहृदयो यशी । रूपं स्वं दर्शयामास प्रहृष्टो प्रहृष्टकर्मणे ॥ १८० ॥  
 शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं पुरुषोत्तमम् । कारणं सर्वलोकस्य तेजसापूर्यज्जगद् ॥ १८१ ॥  
 प्रणम्य दण्डवद्विप्र उवाच पुनरच्युतम् । अद्य मे सकलं जन्म अद्य मे बन्धुर्पी शिवे ।

अद्य मे च करौश्लाघ्यो धर्मोऽहं जगदीश्वर ।

अद्य मे पुरुषा यान्ति ब्रह्मलोकं समातनम् ॥ १८२ ॥

मन्दन्ति बान्धवा मेऽद्य त्यक्तप्रसादाज्जनार्दन । इदानीं च प्रसिद्धा मे सर्वे चैव मनोरथा  
 फि तु मे विस्मयो नाथ मूढादिशानिनो मृशम् ।

कथं जानन्ति मद्बुद्धं देशान्तर उपस्थितम् ॥ १८३ ॥

तस्य गेहोदराकाशे स्थितो विप्रोऽतिशोभनः । तथापतिव्रता गेहे तुलाधारशिखरि  
 तथा मित्राद्रोहकस्य त्वं च वैष्णवमग्निदे । अनुग्रहाद्य मे विप्र तत्पत्नी पत्न्युर्महति ।

श्रीमगणानुवाच ।

विप्रोर्मतः सदा मूकः पतिव्रता शुभा च सा । सत्यवादी तुलाधारः समः सर्वज्ञतेजुः  
 लोभकामजिद्वेदो मद्बुद्धो वैष्णवः स्मृतः । सखीतोऽहं गुणैरेषां तिष्ठाम्बापत्येनुर  
 भारतीकमलाम्बा ॥ सहितो द्विजसत्तम ॥ १८४ ॥

विप्र उवाच ।

महापातफिसंसर्गाभराद्यैवातिपातकाः । इति जल्पन्ति धर्मज्ञाः स्मृतिपात्रेष्वपि सर्वे  
 पुराणागमवेदेषु कथं त्वं तिष्ठसे गृहे ॥ १८५ ॥

श्रीमगणानुवाच ।

पत्न्याणानां च सर्वेषां कर्ता मूको जगत्त्रये ।

वृत्तस्थो योऽपि चण्डालस्तं देवा द्राक्ष्यन्ति चिदुः ॥ १६३ ॥

मूकस्य सङ्देशो नास्ति लोकेषु पुण्यकर्मतः । पित्रोर्मक्तिपरो नित्यजितं तेन जगत्त्रयम्  
तयोर्मक्त्या त्वहं तुष्टः सर्वदेवगणैः सह । तिष्ठामि द्विजरूपेण तस्य गेहोदरे च खे ॥  
तथा पतिव्रतागेहे तुलाधारस्य मन्दिरे । अश्रोहकस्य भवने चैष्णवस्य च वैश्वमनि ॥  
सः तिष्ठामि धर्मज्ञ मुहूर्तं न त्यजाम्यहम् । तेनपश्यन्ति मां नित्यं ये त्वग्येपापहृज्जना  
पुण्यत्याच्य त्वया दृष्टो ममानुग्रहकारणात् ।

पित्रोर्मक्तिपरः शुद्धश्चाण्डालो देवतां गतः ॥ १६४ ॥

तस्मात्तेन सह प्रीत्या तिष्ठामि तस्य मन्दिरे । पुनः पुनः कथालापं करोमि द्विजनन्दन  
तस्यैव मानसे नित्यं घर्तेऽहं भूतभाष्यनः । सतज्जनाति त्वद्वृत्तं तथा पतिव्रतादयः ॥  
तेषां वृत्तं वदिष्यामि गृणुत्वं चानुपूर्वशः ।

यच्छ्रुत्वा सर्वथा मर्त्यो मुच्यते जन्मयन्धनात् ॥ २०१ ॥

पितुर्मातुः परं तीर्थदेवदेवेषु नैव हि । पित्रोर्चाहता येन स एष पुरुषोत्तमः ॥ २०२ ॥  
पित्रोराह्वा च देवस्य गुरोराह्वासमं फलम् । आराधनादिषो राज्यं याधया रौर्यं व्रजेत् ॥

■ चास्माकं हृदिस्थोपि तस्याहं हृदये स्थितः ।

धापयोरन्तरं नास्ति परब्रह्म च मत्समः ॥ २०४ ॥

मदमे मत्पुरे रम्ये सर्वैश्च वाग्धवैः सह । स भुञ्जीताक्षर्यं भोगमन्ते मयि च लीयते ॥  
अत एव हि मूकोऽसी वात्सी श्रीलोक्यसम्प्रभाम् ।

जानाति नरयार्दूल एव ते विस्मयः कुतः ॥ २०६ ॥

द्विज उवाच ।

मोहाद्भान्तो वापि न हृत्था पितुर्वचनम् । ज्ञात्वा वा किं च वर्तव्यं सः सन्नगदीश्वर  
श्रीमगवानुवाच ।

दिनैकं मासपक्षौ वा पक्षार्धे वाच्यं वत्सम् ।

पित्रोर्भक्तिः कृता येन स च गच्छेन्ममालयम् ॥ २०८ ॥

कारयित्वा मनः कष्टमपश्यं नरकं व्रजेत् । न कृता वाहृता वास्वात्पित्रोर्चापरं पुरा ॥



वृषोत्सर्गं नरो हृत्वा पितृमक्तिफलं लभेत् ॥ २०६ ॥

अन्नं घस्त्रं तथा गव्यं मधुमांसादिसकृत् । दद्यादकुत्सितं धाद्वे वृषोत्सर्गफलं लभेत्  
धाद्वं दद्याद्द्विजाग्न्याय वेदशास्त्रानुभाषिणे । शान्तायघीतरागाय वृषोत्सर्गफलं लभेत्  
अन्नं घस्त्रं तथा गव्यं सामिधं च निरामिषम् । सर्वं लक्षगुणं प्रोक्तं ज्ञातिभ्यो यत्प्रदायते  
सर्वस्येन कृतं धाद्वं येन पुत्रेण धीमता ।

जातिस्मरत्वं प्राप्नोति पितृमक्तिफलं लभेत् ॥ २१३ ॥

श्राद्धात्परो महायज्ञस्त्रैलोक्ये न विद्यते । मत्र यद्दीयते किञ्चित्सर्वं वाक्ष्यमश्नुते  
अन्यस्मिन्नायुतं पिद्धि ज्ञातिभ्यो लक्षमुच्यते ।

पिण्डे कोटिगुणं प्रोक्तं द्विजायानन्तमुच्यते ॥ २१५ ॥

गङ्गाजले गयायां च प्रयागे पुष्करे तथा । वाराणस्यां सिद्धकुण्डे गङ्गासागरसङ्गमे  
अन्नपिण्डं प्रदद्याद्यस्तस्य मुक्तिर्मवेदधुषम् । पितरश्चाक्षर्यं स्वर्गं लभन्ते जन्मनः कल्म  
भागीरथ्यां विशेषेण यस्तु दद्यात्तिलोदकम् ।

मुक्तिमार्गं स चाप्नोति पिण्डदाने तु किं पुनः ॥ २१८ ॥

नदीतीरेषु साहस्रं नद्ये त्वयुतमिष्यते । सामान्यफलसंसर्गाच्छादं शतगुणं भवेत्  
अमायां च युगाद्यायां ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः ।

पार्यणं कुरते यस्तु सोऽक्षयं लोकमश्नुते ॥ २२० ॥

पितरस्तस्य तुष्यन्ति सर्वे समायुतं प्रति । आशिषंदयितं दत्त्वा भोग्यं चानन्तमात्मने  
सतः पर्यणि पुत्रैश्च कर्त्तव्यं पार्यणं मुदा । पित्रोर्यज्ञमिमं कृत्वा मुच्यते जन्मपन्थनाम्  
अहन्यहनि यच्छादं नित्यथाद्वमिति स्मृतम् ।

धनया कारयेद्यस्तु सोऽक्षयं लोकमश्नुते ॥ २२३ ॥

तथैवापरपक्षे च काम्यथाद्वं विधानतः । कृत्वा कामं स चाप्नोति यद्वा मनसि वर्तते  
वापादीमवधि कृत्वा यस्तु पक्षस्तुपञ्चमः । तत्रंथाद्वं प्रकुर्यात् कन्यामश्नुत वा न वा  
कन्यां गते सचित्तरे यान्यहानि तु योऽहम् ।

मनुमिस्तानि मृत्यानि समाप्तपरवृक्षिणैः ॥ २२६ ॥

काम्यभ्रातृ महापुण्यमिदं तस्यागतं शिवम् । अमावातृकृष्णपक्षादौ तुलायां कर्तुमर्हति  
अमावृक्षिकमायाति नैराशं पितरोगताः । पुनः स्थमपनं यान्ति शापं दत्त्वासुदारुणम्  
पितृशापेन पुत्रस्य नष्टं सर्वमिति स्मृतम् । धनं पुत्रा यशः काम्यमभीष्टमासुरेव च ॥

सर्पाण्येतानि लभ्यन्ते जन्मजन्मसु मानवैः ।

पितृणां च घरेणैव तस्मान्मनैः परित्यजेत् ॥ २३० ॥

विवाहप्रत्यक्षादौ कृत्वा नान्दोमुखं द्विजः । अक्षयं लभते पुण्यं गोत्रं तस्य प्रवर्द्धते ॥  
एतद्विपर्ययो यस्य स याति नरकं नरः । कुलक्षयो भवेत्तस्य स जीवो दुःखितो भवेत्  
ततस्तु पूजयेदने गणेशं शम्भुनन्दनम् । परंबोद्धरामातृञ्च तस्य भ्रातृपुत्रसञ्चयम् ॥ २३१ ॥  
नान्दीमुखेषु सर्वेषु प्रविशामहपूर्वकम् । नान्दीमुखे द्विजान्सर्वान्स्थापयेत्प्राङ्मुखान्मुषीः  
उद्यारयेन्नमोवाक्यं स्वघाचाग्यत्र योजयेत् । ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य दृष्ट्वा पिण्डोदकं नरः

अक्षयं लभते स्पर्शं पितृणां पुष्टिर्दमम् ।

तत्र स्नानं न कुर्याद्यः शक्यस्यापिण्डोदकं नरः ॥ २३२ ॥

न वदाति पितृणां तु चाण्डालत्वं स गच्छति ॥ २३३ ॥

सर्वं भूमिसमं दानं सर्वेष्व्याससमाद्विजाः । सर्वगङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते निशाकरे २३४  
इन्दोर्लक्षगुणं प्रोक्तं दशलक्षं तु भास्करे । गङ्गातोये तु सम्प्राप्त इन्दोः कोटीरवेर्दश ॥

गर्वां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ।

तत्फलं जाह्नवीस्नाने राहुग्रस्ते निशाकरे ॥ २४० ॥

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव अवगाहति जाह्नवीम् । सस्नातस्सर्वतीर्थेषु किमर्थमदत्ते महीम् ॥  
सूर्यग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा । श्रूङ्गामणिरिति ख्यातस्य भ्रामन्तफलं स्मृतम् ॥

समुपोष्य तयोः पूर्वं पुण्यतीर्थं तु यः पुमान् ।

दत्त्वा पिण्डोदकं दानं सत्यलोके प्रतिष्ठितः ॥ २४३ ॥

द्विजउवाच ।

पितुरेव महायशः भ्रातृ च भवतेरिति । सातापश्चिमकालादौ किंकर्त्तव्यं सुतेन हि ॥  
किं कृत्वा च परं श्रेयो जन्मजन्मसु लभ्यते । पुत्रेण धीमता देव यत्नतो यत्तुमर्हसि ॥

वृषोत्सर्गं नरः कृत्वा पितृमक्तिफलं लभेत् ॥ २०६ ॥

अन्नं घस्त्रं तथा गव्यं मधुमांसादिसरहृतम् । दद्यादकुत्सितं धाद्वे वृषोत्सर्गफलं  
धाद्वे दद्याद्विजाय्याय वेदशास्त्रानुभाषिणे । शान्तायर्षीतरागाय वृषोत्सर्गफलं  
अन्नं घस्त्रं तथा गव्यं सामिप्यं च निरामियम् । सर्वं लक्षगुणं प्रोक्तं ज्ञातिभ्यो यत्नतः

सर्वस्येन कृतं धाद्वं येन पुत्रेण धीमता ।

जातिस्मरत्यं प्राप्नोति पितृमक्तिफलं लभेत् ॥ २१३ ॥

आद्यात्परो महायज्ञस्त्रैलोक्ये तु न विद्यते । मन्त्र यहीयते किञ्चित्सर्वं बाह्यपरो

अन्यस्मिन्धायुतं पिद्धि ज्ञातिभ्यो लक्षमुच्यते ।

पिण्डे कोटिगुणं प्रोक्तं द्विजायानन्तमुच्यते ॥ २१५ ॥

गङ्गाजले गयायां च प्रयागे पुष्करे तथा । पाराणस्यां सिद्धकुण्डे गङ्गासागरसङ्गमे

अन्नपिण्डं प्रदद्याद्यस्तस्य मुक्तिर्भवेद्बुधम् । पितरश्चाक्षयं स्वर्गं लभन्ते जन्मनः फल

भागीरथ्यां विशेषेण यस्तु दद्यात्सिलोदकम् ।

मुक्तिमार्गं स चाप्नोति पिण्डदाने तु किं पुनः ॥ २१८ ॥

नदीतीरेषु साहस्रं नदे तद्युतमिष्यते । सामान्यफलसंसर्गाच्छादं शतगुणं भवेत्

भमायां च युगाद्यायां ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः ।

पार्वणं कुरुते यस्तु सोऽक्षयं लोकमश्नुते ॥ २२० ॥

पितरस्तस्य तुष्यन्ति सर्वे समायुतं प्रति । आशिषंदयितं दत्त्वा भोग्यं चानन्तमात्म

ततः पर्वणि पुत्रैश्च कर्त्तव्यं पार्वणं मुदा । पित्रोर्यज्ञमिमं कृत्वा मुच्यते जन्मबन्धना

अहन्यहनि यच्छादं नित्यश्चादमिति स्मृतम् ।

यद्यपि कारयेद्यस्तु सोऽक्षयं लोकमश्नुते ॥ २२३ ॥

तथैवापरपक्षे च काम्यश्चादं विधानतः । कृत्वा कामं स चाप्नोति यद्वा मनसि धर्तते

आपाद्रीमर्षि कृत्वा यस्तु पक्षस्तुपञ्चमः । तत्रश्चादं प्रकुर्वीत कन्यांगच्छतु वा न

कन्यां गते सपितरि यान्यहानि तु षोडश ।

प्रतुमिस्तानि तुल्यानि समाप्तचरदक्षिणीः ॥ २२६ ॥

अम्यभ्रातृं महापुण्यमिदं तस्यागतं शिवम् । अमावातृकृष्णपक्षादौ तुलायां कर्तुमर्हति  
/मावृश्चिकमायाति नैराशं पितरोगताः । पुनः स्वभगवं यान्ति शापं दत्त्वासुदारुणम्  
पितृशापेन पुत्रस्य नष्टं सर्वमिति स्मृतम् । धनं पुत्रा यशः काम्यममीष्टमायुरेव च ॥

सर्वाण्येतानि लभ्यन्ते जन्मजन्मसु मानवैः ।

पितॄणां च परेणैव तस्मान्मनैर्न परित्यजेत् ॥ २३० ॥

वेवाहयतयज्ञादी कृत्वा नान्दोमुखं द्विजः । अक्षयं लभते पुण्यं गोत्रं तस्य प्रयत्नैः ॥  
तद्विपर्ययो यस्य स याति नरकं नरः । कुलक्षयो भवेत्तस्य स जीवो दुःखितो भवेत्  
तस्तु पूजयेद्देवं गणेशं शम्भुनन्दनम् । परंपोद्धशमावृक्ष तत्पश्चात्पितृसञ्चयम् ॥ २३१ ॥  
नन्दीमुखेषु सर्वेषु प्रपितामहपूर्वकम् । नान्दीमुखे द्विजान्सर्वांस्तथापयेत्प्राङ्मुखान्सुभीः  
आर्येभ्यो वाक्यं स्वधाचार्य्यं योजयेत् । ग्रहणं चन्द्रसूर्यस्य दत्त्वा पिण्डोदकं नरः

अक्षयं लभते स्वर्गं पितॄणां पुष्टिर्दनम् ।

तत्र ज्ञानं न कुर्यात्तः शक्त्या पिण्डोदकं नरः ॥ २३२ ॥

न ददाति पितॄणां तु व्याण्डालत्वं स गच्छति ॥ २३३ ॥

त्वं भूमिसमं दानं सर्वव्याससमाद्विजाः । सर्वगङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते निशाकरे २३८  
दोर्लक्षगुणं प्रोक्तं दशालक्षं ॥ भास्करे । गङ्गातोये तु सम्प्राप्त इन्द्रोः कीटीरधेर्दश ॥

गयां शतसहस्रस्य सम्प्रदत्तस्य यत्फलम् ।

तत्फलं जाह्नवीस्थाने राहुग्रस्ते निशाकरे ॥ २४० ॥

न्द्रसूर्यग्रहे चैव अवगाहति जाह्नवीम् । तस्मात्तत्सर्वतीर्थेषु किमर्थमदत्ते महीम् ॥

सूर्यग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा । चूडामणिरिति स्थातस्तत्रान्तर्गतं स्मृतम् ॥

समुपोष्य तयोः पूर्वं पुण्यतीर्थं ॥ यः पुमान् ।

दत्त्वा पिण्डोदकं दानं सत्यलोके प्रतिष्ठितः ॥ २४३ ॥

द्विजउवाच ।

पितुरेव महायज्ञः धातुं च भवतेरिति । तातापश्चिमकालादौ किं कर्त्तव्यं तुनेति ॥

किं कृत्वा च परं धेयो जन्मजन्मसु लभ्यते । पुत्रेण धीमता देव यत्नतो वक्षतुमर्हसि ॥

थीमगपानुवाच ।

पूर्वेययसि सम्प्राप्ते पिता पुत्र इति स्मृतः । उत्तरे च सुतस्तातः पालनाग्ननु पूजनात् ।  
देवघटपूजयेत्तातं स्नेहं कुर्याच्च पुत्रघटम् । न लङ्घयेद्देवस्तस्य मनसाऽपि कदाचन ।

मातुरस्य पितुः पुत्रो यस्तु कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ।

सोऽक्षयं लभते स्वर्गं सदा देवैः प्रपूज्यते ॥ २४८ ॥

मुमूर्षोरपि तातस्य पश्यतो मृत्युलक्षणम् । कृत्या च यजनं पुत्रो देवानां तुल्यतां व्रजेत् ।

विधिनाऽनशनेनैव पितुः स्वर्गं ददाति यः ।

पुत्रस्य तस्य धीरस्य शृणु वक्ष्यामि यद्गुणम् ॥ २५० ॥

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । भवेदनशने पुण्यं तीर्थं कोटिगुणं तयोः ॥ २५१ ॥

भागीरथ्या जले चैव यो मृतः पुरयोत्तमः । पयोधररसं मातुर्नपियेन्मुक्तां व्रजेत् ॥

धाराणस्यां त्यजेद्यस्तु प्राणांश्चैव यद्वच्छया ।

अभीष्टं च फलं भुत्वा महेद्दे प्रविलीयते ॥ २५३ ॥

यागतिर्योगयुक्तानां मुनीनामूहर्षरैरुत्तमा । सा गतिस्त्यजतः प्राणान्ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु ।

लोहितस्य विशेषेण तीरोत्तरसमाश्रितः । विधिनायस्त्यजेत्प्राणाग्नौ च मत्समतां व्रजेत् ।

तस्यैव चोर्ध्वशीकेशो पुण्यतीर्थं द्विजोत्तम । मृतोत्पन्नः समाप्नोति सर्वदोषैर्न लिप्यते ॥

गृहस्थाभ्यन्तरे यस्य प्राणत्यागो भवेद् ध्रुवम् ।

याघद्रुमन्धिर्गृहेतिष्ठेत्ताघद्रुयन्धो भवेत्तनी ॥ २५७ ॥

हायने हायने चापि एकैकं परिहीयते । पश्यतां पुत्रबन्धूनां बन्धनेनास्ति निष्कृतिः ।

पर्यते कानने दुर्गे स्थाने वा जलवर्जिते ।

मृतो दुर्गतिमाप्नोति कीटादौ जायते पुनः ॥ २५९ ॥

संस्कारश्च भवेद्यस्य मृतस्य पर्यासरे । षष्टिर्वर्षसहस्रानि कुम्भीपाके प्रतिष्ठति ॥ २६० ॥

असृग्स्पर्शनादेव उच्छिष्टः पतितो मृतः । सुचिरं नरके स्थित्वा गलेच्छजातिपुत्रायते ।

तस्यैव बहुकोट्यु जायते सत्त्वजातिषु । तस्मान्नचिरकालेषु जानीयात्पुण्यपातकम् ॥

पुण्यात्पुण्यप्रयोगैश्च सर्वेषां मर्त्यवासिनाम् ।

मरणे वा गतिः पुंसां गतिर्मपति तादृशी ॥ २६३ ॥

पुण्यतीर्थं गृणो यस्तु पिण्डोर्नामानि चित्तयन् ।

पापादगृणो मन्त्रेभ्यर्गं सर्वदोषैर्न लिप्यते ॥ २६४ ॥

पितृभृत्यैश्च देहं तु पदेयस्तु शुभो यन्ती । पदे पदेऽक्षमेधस्य पञ्चप्राप्नोत्यसंशयम् ॥

प्राक्सर्गो वा पितृदेहे मुखाग्निकारयेत्तुतः । विधिना मन्त्रपूजेन पश्चादेहं दहेत्पुनः ॥

सौममौहसमायुक्तं पापपुण्यसमाश्रुतम् । ददेयं सर्वगात्राणि दिव्याहोक्तान्सगच्छतु ॥

दद्यात् वा लहुर्येषून्मोऽप्यन्यसमायुक्तं प्रणि । दशाहे समनुप्राप्ते चार्द्रयस्त्रं परित्यजेत्

उत्तरा वा लोहिते चैतं पादौ वायु जले शिपेत् ।

तदर्थैकादशाहे वा धादं कुर्वाद्विचक्षणः ॥ २६६ ॥

प्रेतस्य देहपुष्टयं प्राद्वर्णकं तु भोजयेत् । दानं दद्याच्च विधिवद्वस्त्रंघोष्ठं वा पादुकाम्

सर्षोपकरणैस्तुल्यं धरादिगजवात्रिकम् । कृष्णां वा वा प्रदद्यात्तु सर्वपापविमुक्तये ॥

चतुर्ग्राहे त्रिपदे वा षण्मासे चाग्निद्वैतया । द्वादशप्रतिमास्यानि धाद्वान्देवानि षोडश

यस्यैतानि न सन्तीह यथाशक्ति च धदया ।

विशाद्यर्थं स्थिरं तस्य दत्तैः धादशानैरपि ॥ २७३ ॥

भाद्रमप्युषट् दद्याद्दत्तं चाग्निशंसमुतम् । नित्यानित्यममपाच्च क्षणमासं समापयेत् ॥

सपिण्डीकरणधादं गते संपरसरे बुधः । पार्यणस्यविधानेन कारयेद्द्विजसत्तमः ॥

पितृभद्रमशौचं स्यान्मातुः षण्मासमेव । त्रिमासं तु स्त्रियश्चैव तदर्थं स्नातुपुत्रयोः ॥

सपिण्डानामशौचं स्याद्याधुनेहे स तिष्ठति ।

पुत्रस्य यन्निषिद्धं तु गृणु तात वदाम्यहम् ॥ २७७ ॥

प्रह्वचारी सदाचारी न गच्छेच्च स्त्रियं क्वचित् ॥ २७८ ॥

सप्तघट्याः परं चैव नवघट्याश्च पूर्वतः ।

स कालः कुतपो श्रेयः पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ २७९ ॥

धाद्वे श्रीणि पयित्राणिदोद्विजःकुतपस्तिष्ठतः । त्रिणिचात्रप्रशंसन्तिसत्यमकोधमत्वराम्

सायं सन्ध्यां परान्नं च पुनर्मोजनमीधुनम् । दानं प्रतिग्रहं चैव धादं-कृत्वाः विवर्जयेत्

भक्तव्यशतं कृत्वा कार्यं कुर्याद्विचक्षणः । तच्चकर्तव्यतामेति स्वयमुक्तं विरिञ्चिना  
पुत्र पुरावृत्तं यद्गतां च यदाम्यहम् । गुरोर्गोहननं कृत्वा ददुः धादं ययुर्दिवम्

तेषां च फीर्त्तनादेव धादं भवति चाक्षयम् ।

यसिष्ठस्य मुनेः शिष्या ब्राह्मणास्सप्त सुप्रताः ॥ २८४ ॥

पितृभ्रात्रे समायाते होमधेनुं गुरोः प्रियाम् । प्रार्थयित्वा गृह्णीत्वा सप्तभिर्भ्रातृभिर्मुं  
गव्यार्थं पितृयज्ञे तां धेनुं हत्वा विमृश्य च ।

दुर्गोमांसं च विप्रे च शेषं विप्रांस्त्वभोजयन् ॥ २८५ ॥

समाप्य पितृकर्माणि यत्सं सङ्गृह्य ते द्विजाः ।

गुरौ समर्पयामासुर्धेनुव्याघ्रेण भक्षिता ॥ २८६ ॥

ततस्तपोयलादेयहात्या तेषां च कारणम् । स शशापततः शिष्याभ्याण्डालाभ्रमविष्यथ  
वेपमानास्ततो विप्राः कृताञ्जलिपुट्टाः स्थिताः ॥ २८७ ॥

शिष्या ऊचुः ।

धेनोर्मांसप्रदातारः पितृहृत्ये सदानघ । भक्तव्यसहस्राणि महान्ति पातकानि च ।  
कुर्वन्तः पितृकार्येषु पापात्पूता दिवं गताः ॥ २८८ ॥

श्रुतं बहुविधं नाथ मुखात्ते च पुरातनम् । क्षन्तुमर्हसि धर्मज्ञ शापस्यान्तो विधीयताम्  
यसिष्ठ उवाच ।

शापो योऽथ यथा पाप्मा न तु धर्मविचारणात् ।

चाण्डालादी समुत्पन्नाः पुरा वृत्तं स्मरिष्यथ ॥ २८९ ॥

न च यो ज्ञानलोपश्च स्मृतिशास्त्रमनष्टकम् । पापयोनिं समुत्तीर्यपश्चात्तमोक्षं गमिष्यथ  
ततः प्राणान्परित्यज्य गुरुशापात्तु ते द्विजाः ।

जाताश्चाण्डालयोनी तु सर्वे ज्ञानसमन्विताः ॥ २९० ॥

स्तन्यंतेस्तु ॥ पीतं वै स्मरद्भिः पूर्वजन्म तत् । मृताजाता मृगाः सर्वे चक्रपाकाः पुनर्वपे  
हंसास्तुमानसे तीर्थं शुद्धा जाताः पुनर्द्विजाः । मुमुक्ष्वोर्महामागा मृतास्ते स्वेदकारणात्  
तस्मिन्काले महाराजो धर्मवेतरिति स्मृतः ।

ययौ स्नातुं ततस्तीर्थं सदारः सपरिच्छदः ॥ २६७ ॥

ततोहंसास्त्रयोमोहाद्राज्यंभोग्यं तु योपितः । भक्ष्याणिचिन्तयन्तश्चलोकान्तरमयुस्तदा

हात्वा चेदं च वेदाङ्गं मोक्षं यास्यामहे वयम् ।

चिन्तयन्तो गता अन्ये ततो लोकान्तरं प्रति ॥ २६६ ॥

अथ त्रयो नृपा जाताश्चत्वारो विप्रसत्तमाः । कुरुक्षेत्रे ततो वेदान्वेदङ्गानि समन्ततः

तपोयलाद्विदन्तिस्म घातां चामुत्र चेह च । त्रयो राजकुले जाता राजानो मदमोहिताः

ज्ञानलोपात्परं लोकं न जानन्ति हिताहितम् ।

ते च विप्राश्च सन्वेदादाह्वय सेटकं स्पृकम् ॥ ३०२ ॥

विप्रा ऊचुः ।

राहो गच्छ स्पृकार्पण्यात्पत्रं देहि च सम्भ्रमात् ॥ ३०३ ॥

सत व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालजरे गिरौ । चकवाकाः शरद्रीपे हंसाः सरसिमानसे

तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं किमवसीश्य ॥

धी भगवानुवाच ।

गृहीत्वाचेदको लेखं राहस्तुसमदर्शयत् । इद्वालेखं तु राजानोरार्यं त्यक्त्वाययुर्द्विजान्

धुत्वा धार्यं ततस्तेषां गतास्ते च तपोधनाः ।

अचिरेणैव कालेन मोक्षं याताश्च तैस्तद ॥ ३०७ ॥

य एवं शृणुयाच्छास्त्रे सप्तव्याधादिकं द्विज । भक्ष्यं खानपानं च पितृणामुपतिष्ठति ॥

द्विज उवाच ।

वित्तहीनस्य विप्रस्य पितृकार्यं कथं भवेत् ।

तपस्विनो यनस्यस्य गृहस्थस्य च वैराग्य ॥ ३०६ ॥

भगवानुवाच ।

एणकाष्टार्जनं हृत्वा प्रार्थयित्वा वराटकम् । करोति पितृकार्याणि ततो लक्षगुणंभवेत्

भक्तव्यशतं हृत्वा पितृश्राद्धं करोति यः । सर्वपापशयस्तस्य स्यार्थं याति च मानयः

सर्वाभावे पितृतिथौ गोम्यो घासं ददाति यः ।



फलं च पिण्डदानस्य सम्प्राप्त्यधिकं नरः ॥ ३१२ ॥

पुरा वैराटावप्ये रुरोदातीव दीनकः । पितृतिथौ स्वयं प्राप्ते सर्वाभावाद्य रोदिति ।

रुदित्वा सुचिरं सोऽपि पप्रच्छ कोचिदं द्विजम् ॥ ३१४ ॥

दीन उवाच ।

ब्रह्मन्पितृतिथापद्य किंस्थितृत्वा हितं भवेत् ॥ ३१५ ॥

वैराटकश्च मे नास्ति धनं ब्रह्मपिदां वर । उपदेशं च मे देहि येन धर्मं स्थितो रहम् ।

द्विज उवाच ।

गच्छ शीघ्रं धने तात मुहूर्ते कुतपेऽधुना । घासं पितरमुद्दिश्य गये देहोति सत्याम् ।

भगवानुवाच ।

सप्तस्तस्योपदेशेन गृहीत्वा घासपूजकम् । गये दत्त्वा यथा दृष्टाः पुष्ट्यर्थं पितृभ्यः ।

पतत्पुण्यप्रसादेन गतोऽसौ सुरमन्दिरम् ।

स्थगं च सुचिरं भुक्त्वा उत्पन्नो धनिनां कुले ॥ ३१६ ॥

धनयान्त पुरा पुण्यादिभूयज्ञस्य कारणात् । स ददाति पितुः पिण्डं सर्पत्येन धनेन ।

तथैकजगमनोऽध्यासाद्गतोऽसौ विष्णुमन्दिरम् ।

भुनक्तान्तसुर्यं तत्र सार्वभौमोऽभवन्मृगः ॥ ३२१ ॥

शिवज्ञात्परो यस्मादभौ नास्ति कथञ्चन । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शनया पुण्यान्ममत्

यः पट्टेद्धर्मसंगतान् जगानामग्रतो नरः । विष्णुपथा जये स्नानं प्रतिलोकं च सन्त्यजे ॥

जगमजगमृतो येन महापातकसञ्चयः । तत्सर्वं प्रलभ्य यानि साहसुयगिने धुने ॥ ३२४ ॥

इति श्री पद्मपुराणे प्रथमे वृष्टिखण्डे वृक्षाख्याने विष्णुमन्त्रितिरुपना नाम

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### पतिव्रतामाहात्म्यवर्णनम् ।

नरोत्तम उवाच ।

त्रिदशानां च देवानामप्येषां जगदीश्वरः । प्रभुः कर्ता च हर्ता च गोप्ता भर्ता पिताप्रभुः

अस्माकं वाक्छ्रमो विष्णोः कथनेनैव युज्यते ।

किंतु कीदृहलं मेऽस्ति पिपासा या धुघाऽपि वा ॥ २ ॥

कृतं पृच्छति येनैव घक्तव्यं तत्प्रियेण हि । अतीतं चैव जानाति कथं नाथ पतिव्रता ॥

किं वा तस्याः प्रभाषं च घक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ ४ ॥

भगवानुवाच ।

कथितं मे पुरा घत्स पुनः कीदृहलं द्विज । कथयिष्यामि तत्सर्वं यत्ते मनसि घर्तते  
पतिव्रता पतिप्राणा सदा पत्युर्हिते रता । देवानामपि साराध्या मुनीनां ब्रह्मपादिनाम् ॥

घयस्यैकस्य या नारी लोके पूज्यतमा स्मृता ।

तस्या संमानने गुपीं निभृता न भविष्यति ॥ ७ ॥

मध्यदेशे पुरा सात नगरी चातिशोभना । तस्यां च ब्रह्मजातीया सैव्या नार्नी पतिव्रता  
तस्या धर्मोऽमपरः कुप्रीं पूर्वकर्मघिरोधतः । गलद्रुमणस्य पर्युध निर्यं यथापरापणा  
यममनोरथं तस्य शक्त्या सा कुरुते भृशम् । अर्चयेद्देवघमित्यं स्नेहं कुर्यादमरसरा ॥

कदाचित्पथि गच्छतीं वेश्यां परममुन्दरीम् । इडाऽतीवामघमोहाग्ममयापिष्टेयतनः

निर्भवस्य सुतरां दीघं ततस्तु विमनामघत् ।

ध्रुवा गृहाद्विनिःसृत्य साध्वी पत्रच्छ तं पतिम् ॥ १२ ॥

साध्युवाच ।

उमनास्त्वं कथं नाथ निःश्वासस्ते कथं विमो ।

मूहिं मे पथ घर्तन्यमघर्तव्यं च यत्प्रियम् ॥ १३ ॥

दयितं ते करिष्यामि त्वमेको मे गुरुःप्रियः । अमीष्टं वद मे नाथ यथाशक्तिकरोम्यहं

भगवानुवाच ।

इत्युक्ते तामुवाचेदं वृथा किं मापसेप्रिये । न शका त्वं न चेवाहं मोघं वक्तुं न युज्यते

प्रष्टुं नाधिकरोषीति यथा दीर्घतरोः फलम् ।

भूर्भो स्थित्वा तु खर्वात्मा समुद्धर्तुं प्रधाञ्छति ॥ १६ ॥

तथा मे रमणीलोमान्मोहाद्यश्मिषाञ्छितम् ।

दम्पत्योरपि दुःसाध्यमपयानं वक्ष्याम्यहम् ॥ १७ ॥

पतिव्रतोवाच ।

ज्ञात्वा तु त्वन्मनोवृत्तं शक्ताऽहं कार्यसाधने । आदेशं कुरु मे नाथ कर्तव्यं देन केनचित्

यदि ते दुर्लभं कार्यं कर्तुं शक्नोमि यत्नतः ।

तदा मे त्यक्तिकल्याणं फलिष्यति परेत्विह ॥ १८ ॥

भगवानुवाच ।

इत्युक्ते परमप्रीतः स्थितो ध्वजमगव्रीत् । पापाभ्यासाद्य पाप्मानं प्रेच्छतीति विनिश्चयः

कुष्ठयुवाच ।

पथपस्मिन्समगच्छन्तीं वेश्यां परमसुन्दरीम् । सर्वतश्चानवधार्ही ब्रूया मे ददातेमनः ॥

यदि तां त्यक्तप्रसादद्य प्राप्नोमि नवयौवनम् । तदा मे सफलं जन्म कुरुसाध्यहितं मम

यदि मां कुण्डिनं दीनं पूसिगन्धं नवव्रणम् ।

न गच्छति धरातोहा तदा मे निधनं हितम् ॥ २३ ॥

भगवानुवाच ।

धुत्वा तेनेरितं धाक्यं साध्वी ध्वजमगव्रीत् ।

पतिव्रतोवाच ।

यथाशक्ति करिष्यामि स्थिरीमथ प्रमोऽधुना ॥ २५ ॥

भगवानुवाच ।

समालोक्य क्षपान्ते ह्यपसि द्रुतम् । गोमयं सह शोघन्यामृहीत्वासाययीपुरा

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ] \* सैव्यापत्तिवतायाः पतिशुभ्रपाकधानकम् \* ५४३

सम्प्राप्य गणिकाग्रेहं शोधयित्वा च चत्वरम् । प्रतोलीं धीयिकां चैव गोमयप्रददीमुदा

सा तूर्णमागता गेहे जनस्यालोकने मयात् ।

एवं क्रमेण सा साध्वी चरतिस्म दिनत्रयम् ॥ २८ ॥

अथ सा धारमुख्या च खेटिकाश्चेत्कानपि । अष्टच्छत्कस्य कर्माणि शोभनानि च चत्वरै

मयानोक्तैऽप्युपकाले कस्य मस्तिप्रयकारणात् ।

रुच्यकर्मणि दीप्यन्ते रद्या जस्वरधीयिकाः ॥ ३० ॥

परस्परेण सञ्जित्य धारमुख्यां च तेऽग्नयन् ॥ ३१ ॥

खेटका ऋतुः ।

अस्माभिर्न कृतं भद्रे कर्म खैतत्प्रमाज्जनम् ॥ ३२ ॥

भगवानुवाच ।

अथ सा विस्मयं गत्वा सञ्जित्य रजनीक्षये ।

तया च दूरयते सा च तथैव पुनरागता ॥ ३३ ॥

इहा तां महतीं साध्वीं प्राह्वयन्ति च पतिव्रताम् । धधार खरणे तस्या ह्यक्षमस्वेति मारिणां

गणिकोवाच ।

मायुर्वेहं च सम्पित्तये शोऽर्च्यः कीर्तिरेव च । पताशां मे घिनाशाय स्फुरसी च पतिव्रते ॥

यद्यत्प्रार्थयसे साध्वि नित्यं दास्यामि तद्गृहम् ।

सुवर्णं मणिरत्नं वा खैलं वा यन्मनोरथम् ॥ ३६ ॥

भगवानुवाच ।

तानुवाच ततः साध्वी न मे तार्थं प्रयोजनम् । अस्तिकार्यं च ते किञ्चिदशमि कुरये यदि

तदा मे हृदि सन्तोषः कृतं सर्वं त्वयाऽधुना ॥ ३७ ॥

गणिकोवाच ।

सत्यं सत्यं करिष्यामि कृतं वद पतिव्रते । कुर्येष्टं मातर्दुःखं कृत्यं च मे वद ॥ ३८ ॥

भगवानुवाच ।

अथानिहृतं धान्यं तस्यामुकं वरं प्रियम् । क्षणं विमृश्य सा चेश्यादृत्वा क्षान्तिमुवाच च

कुष्ठिनः पूतिगन्धस्य सम्पर्केदुःखितामृशम् । दिनैकंचकरिष्यामियद्यागच्छति मनुगृहम्  
पतिव्रतोपाय ।

भागमिष्यामि ते गेहमद्यरात्रौ च सुन्दरि । भुक्तमोग्यं पतिदृष्टं पुनर्नेष्यामि मनुगृहम्  
गणिकोपाय ।

गच्छ शीघ्रं महाभागे स्वगृहं च पतिव्रते । पतिस्ते चार्द्धरात्रे स भागच्छतु च मनुगृहम्  
यह्यो मे प्रियास्सन्ति राजानस्तत्समाधये । एकैको मनुगृहे नित्यं तिष्ठतोह निरुत्तमम्  
अद्याहं मे गृहं शून्यं करिष्यामि च त्वद्भुमयात् ।

स चागच्छतु ते भर्ता स चास्मान्प्राप्य गच्छतु ॥ ४४ ॥

भगवानुपाय ।

एतच्छ्रुत्वा तु सा साध्वी गताऽसौ स्वगृहे तथा ।

पत्नौ निषेद्यमास हृदयं ते फलितं प्रभो ॥ ४५ ॥

अथ रात्रौ च तदुग्रेहं गन्तुं उपातिं करोति सा । प्रभूताः पत्नयस्तस्यास्तथ कावो न विदधे  
विप्र उपाय ।

कथं वास्यामि तदुग्रेहं मयागन्तुं न शक्नवे । एतज्जाहत्या कुतः शान्तिः कृतं कार्यं कथं भवेत्  
पतिव्रतोपाय ।

स्वगृहस्थमङ्गं हृत्वा नेष्यामि तदुग्रेहं प्रति । सिद्धे ह्यर्थे न विष्यामि पुनस्तेनैव धर्मतः  
द्विजउपाय ।

अस्याजि त्वमृतेनैव सर्वं मे हृत्यमेष्यति । एतानां यत्कृतं कर्म त्रीन्नेराह पुस्तक  
भगवानुपाय ।

तन्मिथ्यं नगरे राज्ये नित्यं च धनितो गृहे । शीरेभ्यः प्रभूरं विलं हर्तुं राजा धूर्तः तदा ।  
धृष्ट्या सर्वान्निराकारानाहूय नृपती दया ॥ ५० ॥

नृतिप्रपाय ।

जीविन्तु यदि वो वाञ्छा शीरे प्रमाद्य दाम्भ्य ॥ ५१ ॥

भगवानुवाच ।

शृतेषां तु नृपस्यासौ यतोऽङ्गिपूतपादुके । चाग्नेश्चोरो शृहीतस्तेर्यलाचैव नृपाङ्गया ॥  
भगवतोपात्तदेशो यः पृथग्भूते धने धनं । समाधिस्थो मदतेजा माण्डव्यो मुनिपुङ्गवः ॥  
व्यतिष्ठद्विसद्वाशो योगिनां प्रचरो मुनिः । भन्तर्नाडो गतो वायुः किञ्चिन्न प्रतिमातिच  
तं वस्तुन्यं तिष्ठन्तं दृष्ट्वा बुधा मदामुनिम् । नोरोऽयमद्भुताकारो धूर्तस्तिष्ठति कानने ॥  
एवमुक्त्वा तु तं पापः यन्धुर्मुनिसत्तमम् । नोक्ताश्च नैक्षितास्तन पुङ्गवा भविदावणाः ॥  
ततो राजाऽपाचेर् सग्राप्तस्तत्करो मया । उपास्ते च पथिद्वारे कुक्ष्यं घोरदण्डनम्

माण्डव्यश्च मुनिस्तत्र पथिगूले च कीलितः ।

वायुदेशो यः तीर्त्तं दूढं पापञ्च मस्तकम् ॥ ५८ ॥

व्यास स च न जानाति दूढे पिङ्गतनुर्धमात् । अन्यैरपि दृष्टोदण्डः कृतस्तेस्तु मनाहितः  
तस्मिन्नन्तरे राजावन्धकारैः घनोन्नते । रूपपतिं पृष्ठतः कृत्वा प्रवधौ सा पतिवता ॥

माण्डव्यस्य तनौ तत्र कुप्टिमोऽङ्गं ललाग तम् ।

भग्नः समाधिस्तत्पैवं कुप्टिसंसर्गतोऽधुषम् ॥ ६१ ॥

माण्डव्य उवाच ।

सं येनाधुना कृच्छ्रं कारितं ग्राहयेद्वनम् । स एव भस्मतां यातु प्रोदिते च विरोधने

भगवानुवाच ।

माण्डव्येनैव मुक्तस्त पपात धरणीतले । ततः पतिवता चाह ग्रन्थो नोदयतु धुषम् ॥  
देवत्रयं दूढं नीत्वा शापादेश्च गता ततः । शयनीमे स्थितं रम्येधृत्वाऽतिष्ठत्पतिवता  
पत्न्या तं च मुनिप्रेष्टो गतो देशममीष्टकम् । सूरो नोदयते लोकेयावज्जैव दिनत्रयम् ॥

निखिलं व्यधितं दृष्ट्वा त्रैलोक्यं स चराचरम् ।

शतकर्तुं पुरस्कृत्य गता देवाः पितामहम् ॥ ६६ ॥

तं न्यवेदयन्त्यं पद्मयोनीं दिषीकसः । कारणं च न जानीमस्त्वं तु योम्यं विधेदिनः  
तिप्रताया यदुद्धृतं माण्डव्यस्य मुनेऽन्यत् । यथा नोदयते त्रैलोक्यं देवेष्वेदपत्  
नो देवाधिमानैश्च पुरस्कृत्य प्रजोपतिम् । गतोऽस्तिदन्तिकं चित्रं तूर्णं सर्वं च भूतलम्



मगधानुधाव ।

वदत्येवं विधौ सा च विमृश्य क्षणमेव च । चादमुक्त्वती सा च ततस्सूर्योदयोऽभवत्  
यमवद्वस्मरूपोऽसौ मुनिशापप्रपीडितः । भस्मनो मध्यतो जातो द्विजोमन्मथपीडितः  
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नाः सर्वे ते पुरषासिनः । मुदिता वैषसङ्गाश्च जगः स्वस्थतरोऽभवत्  
विमानेनाकंषणेन स्यल्लोकाद्गतेन च । पतिना सहसा साध्वी सूरैः साङ्गतावियम्  
पर्यं पतिव्रता यस्माच्छुभा चैवतु मरसमा । तेन वृत्तं च जानाति भूतं भव्यं प्रवर्तनम्  
य इदं ध्राययेद्दोके पुण्याक्यानमनुत्तमम् ॥ तस्य पार्यं क्षयं याति जन्मजन्मद्वतं च यत्  
मक्षयं लभते स्वर्गं विधुधैः सम्प्रयुज्यते । ब्राह्मणो लभते वेदं जन्मजन्मस्तु धाडव ॥

सहज्वृणोति यः पूतो दुष्कृतौघाद्भिमुच्यते ।

सुरालयमघाप्नोति स्वर्माद्भिप्रदो धनी भवेत् ॥ ६० ॥

इति श्रोपाशपुराणे प्रथमे सृष्टिलक्ष्णे पतिव्रतोपाख्यानं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

माण्डव्यस्य शूलारोपणे कारणवर्णनम् ।

द्विज उवाच ।

माण्डव्यस्य मुनेर्विष्णो शूलाघातः कथं तनी । पत्नी पतिव्रतायाश्च कथं दुष्टं कलेपरे  
हरिरुवाच ।

शिशुभाषाणमाण्डव्योमिहिकायाममानतः । वस्तिदेशेतृणंदस्वामोहात्सचमुमोचताम्  
तेनापवादोपेण धर्मस्याज्ञातुरेष च ।

महोत्तमं ध्यया कृच्छ्रा भुक्ता तेन द्विजन्मना ॥ ३ ॥

किन्तु समाधिना तेन न ह्यतं शूलसम्भवम् ।

कृच्छ्रं च मुनिना कृत्स्नं योगाभ्यासाद् भूरादपि ॥ ४ ॥



कुष्ठिनो ग्रहणो घातादजितेन्द्रियकारणात् । पूतिगन्धं तनौ कुष्ठं सञ्जातं द्वित्रसर  
पुरा विप्राय तेनैव दत्तं गौरीचतुष्टयम् । कन्यकात्रितयं विप्र तेन तस्य पतिव्रता ॥  
अस्यास्तु कारणादेव स च मत्समतां व्रजेत् । अत्र ते विस्मयः कुत्र वेदकर्म पुरात  
द्विज उवाच ।

कृत्या नारी न यस्यैव तस्य स्वर्गोभवेदुधुषम् । यद्यैतद्यत्तिं नाथ सर्वेषां शिवमिष्यते  
हरिश्वाच ।

सन्ति कृत्याः स्त्रियः काञ्चित्पुंसः सर्वस्वदस्य च । तत्राप्यरक्षणीयां च मनसापि न धारयेत्  
न स्त्रीणामप्रियः कश्चिरिप्रयोधापि न विद्यते । गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति न च तस्य  
पुमांसं चित्तहीनं च चिरूपं गुणयजितम् । अकुलो न च भृत्यं च कामिनी भजते ध्रुव  
भर्तारं च गुणोपेतं कुलो न च महाधनम् । सुन्दरं रतिदक्षं च त्यक्तया मीढं भजेद्भूः ।

उमानारक्षसां दमाख्यानं विद्धि भूषुर ।

येन विद्याः स्त्रियाश्चेष्टा विविधाः कृत्स्नशो द्विज ॥ १३ ॥

स्वभाषान्तरदोषिप्रविश्वजिज्ञासको मुनिः । स्यान्ते विमृश्याद्यगतः कैलासं गिरिमुत्तम  
वृषकेतुसदाख्यानसमप्रतिष्ठे हिमे गिरी । प्रणिपत्य महात्मा सै पप्रच्छ पार्वती मुनिः ।  
नारद उवाच ।

देवि सीमन्तिनीनां तु दुश्चेष्टां ज्ञातुमुत्सहे । कौतुकेन त्वया चर्यां पधूनां सम्प्रयुज्यते  
सर्पासामपि नारीणां स्यान्तं जानासितस्थितः । तस्मां कथय सर्वेषु विनीतमहमेव च ।  
देव्युवाच ।

मुषतीनां सदा चित्तं पुंसु तिष्ठत्यसंशयम् । अस्मित्योनी सुसंयोगे सङ्गतेषां प्यसङ्गते  
सुवेपं पुदयं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् । योनिः क्लियति नारीणां सत्यं सत्यं हि नार  
स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।

तेन नारद नारीणां सतीत्यमुपजायते ॥ २० ॥

गृन्तुम्भसमा नारी सताङ्गारसमः पुमान् । तस्माद्गुप्यं च बह्विधं नैकस्थाने च धारयेत्  
यथैवमसमातङ्गं एणिमुद्गरयोगतः । स्वयरां कुक्षे यन्ता तया स्त्रीणां प्रसङ्गकः ॥ २३ ॥

पिता रक्षति कीमारे भर्ता रक्षति यौवने । पुत्राञ्च स्याद्विरेभावे न स्त्री स्यात्तन्यमर्हति  
ततः स्वातन्यमावाधस्येच्छया च वराङ्गना । पुर्येणार्थिता धीरा प्रेरणादिवरी भवेत्  
प्ररक्षणाद्यथा पाकः श्वकाकधरागो भवेत् । तथैव युवतीनारी स्वच्छन्दादुदुष्टां व्रजेत्  
पुनरेव कुलं कुप्यं तस्यास्संसर्गतो भवेत् । परयीजेन यो जातः स च स्यादर्हणसङ्करः ॥

जारजः सङ्करः धापो नरके नियतं वसेत् ।

कीटजातो गता जाताः पुनः सर्वे महीतले ॥ २७ ॥

ततो म्लेच्छमुपासीतं कुलं स्याद्द्विजमन्दन । कुलक्षयो भवेत्तस्मात्तस्मादुदुष्टां न धारयेत्  
जात्यैव द्योयितां क्षीरं क्षमते यो नराधमः । क्व तिष्ठेन्निर्ये घोरे रौरवे पितुमिः सह ॥  
काचित्पातयते नारी काचिदुद्धरते कुलम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुलजामुद्धरेद् धुधः ॥ ३० ॥  
कुलद्वयं समा नारी समयित्वा तु विप्रति । साध्वी सारयते वंशान्दुष्टा पातयति धुधम्

दारैष्वधीनं स्वर्गं च कुलं बह्वं यशोऽयशः ।

पुत्रं दुहितरं मित्रं संसारं कथयन्ति च ॥ ३२ ॥

तस्मादेकां द्वितीयां वा वामामुद्वाहयेद्वयुधः । सन्तानार्थात्तुकामाश्च बहुदोषाधिताश्च सा  
। रजस्वलां च धनितां नावगच्छति यः पतिः ।

ब्रह्महा घूणहा सोऽपि दुर्गतिं वाधिगच्छति ॥ ३४ ॥

यो मोहाद् दुर्मगं कृत्वा साध्वीं त्यजति पापहृत् ।

तस्या घनेन यत्पापं तदुत्तथा नरकं व्रजेत् ॥ ३५ ॥

परदारान्यलाद्रत्वा धनैर्वासं प्रलोभयेत् । स याति नरकं घोरं प्रेत्येह च कलत्रहा ॥  
धनिताहरणं कृत्वा साण्डालकुलतां व्रजेत् । तथैव धनिताहनात्पतितो जायते नरः ॥

रप्तां विन्यस्य स्कन्धे च विरं यमपुरे वसेत् ।

मलमूत्रं शिरोदेशे नित्यं तस्य च सम्पतेत् ॥ ३८ ॥

एवं वर्षसहस्रोणि भारं वहति दुर्मतिः । पुनर्यावन्ति लोमान्तिषरस रौर्यं व्रजेत् ॥  
पुनः कीटेषु सन्तीर्णस्तदामानुषतां व्रजेत् । ततश्च कलहं शोकं प्राप्नोति पूर्वकर्मणात्  
एवं जन्मत्रयं प्राप्य मुच्यते पातकाग्रतः । एकालं नरकं भुक्त्वा सा ॥ कारकी तु यज्ञकी

कुष्ठिनो ब्रह्मणो घातादजितेन्द्रियकारणात् । पृथिव्यं तनौ कुष्ठं सञ्जातं ।  
पुरा विप्राय तेनैव दत्तं गौरीचतुष्टयम् । कन्यकाश्रितयं धिप्र तेन तस्य पतिव्रता ।  
अस्यास्तु कारणादेव स च मत्समतां प्रजेत् । अत्र ते विस्मयः कुत्र वेदकर्म पुरा

द्विज उवाच ।

कृत्या नारी न यस्यैव तस्य स्वर्गो भवेद्भुवम् । ययैतच्चरितं नाथ सर्वेषां शिवप्रिये

हरि उवाच ।

सन्ति कृत्याः स्त्रियः काश्चित्पुंसः सर्वस्यदस्य च । सत्राप्यरक्षणीयां च मनसापि न धारयेत्  
न स्त्रीणामप्रियः कश्चिरिप्रयोद्यापि न विद्यते । गाघस्तृणमिषारण्ये प्रार्थयन्ति न च नमस्कृत्य  
पुमांसं चित्तहीनं च धिरूपं गुणवर्जितम् । अकुलीनं च भृत्यं च कामिनी भजते धृष्टम्  
भर्तारं च गुणोपेतं कुलीनं च महाधनम् । सुन्दरं रतिक्षुं च त्यक्त्वा मीचं भजेत्तु

उमानारदसंघादमाख्यानं विद्धि भूसुर ।

येन विद्याः स्त्रियाश्चेष्टा विविधाः कृत्स्नशो द्विज ॥ १३ ॥

स्वभावात्नारदो विप्रपि भवजिह्वासको मुनिः । स्वान्तेष्विष्टयाधगतः कौलासं गिरिमुत्तमम्  
वृषकेतुसदाख्यानसप्रतिष्ठे हिमे गिरौ । प्रणिपत्य महारमा धौ पप्रच्छ पार्वती मुनि

नारद उवाच ।

देवि सीमन्तिनीनां तु दुश्चेष्टां ज्ञातुमुत्सहे । कौतुकेन त्वया चर्या घृतां सम्पुत्रैः  
सर्वासामपि नारीणां स्थान्तं जानासितरुषतः । तन्मां कथय सर्वेषु विनीतमश्नमेव ॥

देव्युवाच ।

युवतीनां सदा चित्तं पुंसु तिष्ठत्यसंशयम् । अस्मिन्योनौ सुसंयोग्ये सङ्गतेष्वप्यसुते  
सुवेयं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् । योनिः क्लियति नारीणां सत्यं सत्यं हि नार

स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।

तेन नारद नारीणां सतीत्यमुपजायते ॥ २० ॥

पुनरुज्जसमा नारी तताङ्गारसमः पुमान् । तस्मादुपुनं च बह्विध नैकस्थाने च धारयेत्  
यथैवमत्तमातङ्गं सृणिमुद्वरयोगतः । इयधरां कुरुते यन्ता तथा स्त्रीणां प्ररक्षकः ॥ २१ ॥

तस्मान्नित्यं च ध्योतव्यं पुराणं धर्मसञ्चयम् ॥ ५८ ॥

धावितव्यं प्रयत्नेन लोके पिण्डतनुं मजेत् ।

अन्यद्वा स्त्रीकृते दोषे यथायोगं भवेद्बुधम् ॥ ५९ ॥

निरामय प्रथक्ष्यामि सत्यतो द्विजनन्दन । सर्वयोग्यस्य दानेन साम्प्रकुम्भं महाफलम्  
दद्याद्विषाद्यपुण्याहे सद्यः पुनो भवेत्क्षणात् । सर्वघान्यादिकं योजं कालेष्टानुद्दिश्याते  
सर्वपापक्षयं कृत्वा भक्ष्यं स्वर्गमश्नुते ।

गुणं वक्ष्यामि विप्रैः सतीनां यादृशं इदम् ॥ ६० ॥

शुद्धवंशो भवेत्तस्या नित्यं हस्मीः प्रवर्तते । उभयवर्गशयोः स्वर्गो भर्तुरात्मन एव च  
पतिप्रतापुणो विप्र विस्मृतः पृच्छतस्तथ । पुनर्वक्ष्यामि योषाणां सर्वलोकहितं शुभम् ॥

उपित्या पूर्वकालं च पुण्यपुण्ये न योषितः ।

पश्चात्पतिप्रतापाच्च ताश्च गच्छन्ति मद्गतिम् ॥ ६१ ॥

पण्मासं वाच वर्षं वा अधिकं च प्रशस्यते । पतिप्रता भवेद्यः च यापयन्ता मजेद्विषम्  
सुराणं विप्रहन्तारं सर्वपापयुतं पतिम् । पट्टापूर्तं भवेत्स्वर्गं भर्तारं यानुगच्छति ॥

तिष्ठः कौट्योऽर्धकोटी च यापयितुमानि मानुषे ।

तापत्कालं वसेत्स्वर्गं भर्तारं यानुगच्छति ॥ ६२ ॥

कन्दर्पसदृशो भर्ता सा रतोव मनोरमा । जिष्णोरेव विरं लोके भुङ्क्तेऽनन्तमयं सुखम्  
पतिप्रता बलाया च पिदूरे स्वामिपालने ।

विहं लब्ध्या शृणा वही वापाबुद्धरते पतिम् ॥ ६३ ॥

पतिप्रता च या नारी देशान्तरगृहेषु । सा भर्तुश्चिह्नमाश्रय वही सुप्या दिवं मजेत्  
या लो ब्राह्मणजातीया शृणं पतिमनुमजेत् । सा स्वर्गमाश्रयानेनान्यामर्गं न पतिमनेत्

न ध्रियेन समं शरदा ब्राह्मणी ब्रह्मशासनान् ।

प्रमत्ता गतिमाप्नोति मरणादारमपातिनी ॥ ६४ ॥

१०० नरोत्तम उवाच ।

सर्वांसामपि ज्ञातीनां ब्राह्मणः सत्स्वस्थते । पुण्यं च द्विजमुच्येन भव विं वा विरगं वः

उच्छिष्टं भस्मं भुक्त्वा मानुषे विधवा भवेत् ।

यः पुनश्चान्त्यजां गच्छेन्नलेच्छां वा पुष्कसां नरः ॥ ४२ ॥

द्वित्रिचतुर्गुणं भुक्त्वा तत्र सञ्जीर्णवञ्चकः । मातरं गुरुभार्यां च ब्राह्मणीं महिषीं  
अन्यां वा प्रभुपत्नीं च गत्वा यात्यपुनर्ममम् ।

भगिनीं तत्पुत्रभार्यां तथा दुहितरं स्नुषाम् ॥ ४३ ॥

पितृभ्यां मातुलानीं तु तथैव च पितृष्वसाम् ।

मातृष्वस्त्रादिकामन्यां गच्छा नास्ति च निष्कृतिः ॥ ४४ ॥

ब्रह्महा स भवेदन्धोषचक्षा जडताम्रजेत् । कर्णयोर्वधिरो जातश्च्यवते नास्ति निष  
उक्त्वा अश्लीलमत्यर्घमसिलं स्त्रीहृतेन हि ॥ ४५ ॥

द्विज उवाच ।

एवं दुष्कृतमासाद्य कथं मोक्षो भवेत्पुनः । तत्समाचक्ष्व भगवन्प्रोतुमिच्छामि तव  
श्रीभगवानुवाच ।

साक्षाच्चगमनं कृत्वा तत्तां लोहस्यपुत्तलीम् । समालिङ्ग्यत्यजेत्प्राणं शुचिर्लोकान्तरं  
यो यं गृहाध्रमं त्यक्त्वा मच्चित्तो जायते नरः ।

नित्यं स्मरति गोविन्दं सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ५० ॥

ब्रह्महत्यायुतं तेन कृतं गुर्वङ्गनागमात् । शतं शतसहस्रं च वैष्टीमघस्य भक्षणात् ॥ ५१ ॥  
स्यर्णादेर्हरणं कृत्वा तेषां संसर्गकं विरम् । एतान्यन्यानि पापानि महान्तिपातकारि

भग्निं प्राप्य यथा तूलं तृणं शुष्कं प्रणश्यति ।

तस्मान्मन्त्रनाम गोविन्दं स्मृत्वा पूतो भवेन्नरः ॥ ५२ ॥

यो वा गृहाध्रमेतिष्ठेन्नित्यंगोविन्दधोषणम् । कृत्वा च पूजयित्वा च सपापात्सन्तरोमं  
भागीरथीतटे रम्ये क्षगस्य ब्रह्मणे शिवे । गद्यां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः ॥ ५३ ॥

तत्फलं समयाप्नोति सहस्रं चाधिकं च यत् । गोविन्दकीर्तने तातं मत्पुरे चाक्षयं वसे  
कामात्समघने स्थित्वा सार्वभौमो भवेन्नृपः । पुराणे मत्कथां ध्रुवा मत्सादृश्यं लभेन्न

कथयित्वा पुराणं च विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ।

तस्मान्नित्यं च श्रोतव्यं पुराणं धर्मसञ्चयम् ॥ ५८ ॥

धाषितव्यं प्रयत्नेन लोके विष्णुतनुं व्रजेत् ।

अन्यद्वा स्त्रीकृते दोषे यथायोगं भवेदु ध्रुपम् ॥ ५९ ॥

नेतामय प्रयक्ष्यामि सत्त्वतो द्विजनन्दन । सर्वबीजस्य दानेन साम्प्रकुम्भं महाफलम्  
[पाहिमायपुण्याहे सद्यः पुनो भवेत्क्षणात् । सर्वघान्यादिकं बीजं कालेद्घादुद्भिजातये  
सर्वपापक्षयं कृत्वा मह्यं स्वर्गमश्नुते ।

शुणं वक्ष्यामि विप्रैः सतीनां यादृशं वृद्धम् ॥ ६० ॥

युवशो भवेत्तस्या नित्यं लक्ष्मीः प्रवर्तते । उमयोर्वंशयोः स्वर्गो भर्तुरात्मन एव च  
तिष्ठतामुणो विप्र विस्मृतः पृच्छतस्तच्च । पुनर्वक्ष्यामि धोषाणां सर्वलोकहितं शुभम् ॥

उपित्या पूर्वकालं च पुण्यापुण्ये न योनिः ।

पञ्चापतिप्रतायाश्च ताश्च गच्छन्ति मद्गतिम् ॥ ६१ ॥

णमासं पाथ पर्यं वा अधिकं च प्रशस्यते । पतिप्रता भवेद्या च यावत्पूता मज्जेद्विषम्  
द्वारं विप्रहन्तारं सर्वपापयुतं पतिम् । पट्टात्पूतं नयेत्स्वर्गं भर्तारं यानुगच्छति ॥

तिस्रः कौटयोऽर्घकोटी च वापलोमानि मानुरे ।

तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति ॥ ६२ ॥

नर्पसदृशो भर्ता सा वतीव मनोरमा । त्रिण्णोदेव चिरं लोके भुङ्क्तेऽनन्तमयं शुभम्  
पतिप्रता बलाया च पिदूरे स्वामिप्राप्तये ।

चिह्नं लक्ष्या शृणा वही पापादुद्धरते पतिम् ॥ ६३ ॥

तिप्रता च या नारी देशात्तरुणेपती । सा भर्तुश्चिह्नमादाय वही शुण्या निषं व्रजेत्  
॥ इतो ब्राह्मणजार्ताया शृणं पतिमनुव्रजेत् । सा स्वर्गमाप्नोति नानामानं न पतिप्रदेत्  
न धिघेत स्वर्गं गन्वा ब्राह्मणी ब्रह्मशासनान् ।

प्रमत्ता गतिमप्योति मरणादारमपातिनी ॥ ६४ ॥

॥ ६४ ॥ - नरोत्तम उवाच ।

तर्वासामपि ज्ञातीनां । पुण्यं च द्विजमुण्येन अथ ।

॥ श्रीमद्भागवतपुराणम् ॥ अष्टादशोऽध्यायः ॥

प्राहण्यास्तादृशं कर्म नैव युक्तं कदाचन । निःशेषेऽस्या वर्धं दृष्ट्वा स नरो ब्रह्मणे  
तस्मादुप्राहणजातीया विप्रया न व्रतं चरेत् । प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं शृणु विप्रयवर्ध  
आपणान्तरमामिष्यं मक्षयेन्न कदाचन । मक्ष्यमेधसहस्राणां द्वापने फलमानुषा  
मर्हणं चेष्टदेवस्य हरेर्यतमनुत्तमम् । स्वामिनोऽपि जलं विण्डं सम्प्रदादमर्हणं  
युगफोटिसहस्राणि युगफोटिशतानि च । पतिना सहसा साध्वी विष्णुलोके पुनर्जन्तु  
ततो महाव्रतं प्राप्य निरये ब्राह्मणीघट्टः । उद्धरेदुभयोर्यंशाच्छतशोऽथ सहस्रतः ।  
मतो यन्धुजनैरेष पुत्रैर्घ्रात्रादिमिषुधैः । विनियम्य सदा तस्या व्रतलोपं न कारयेत्  
हरेश्चेद्वासरं प्राप्य विधया न व्रतं चरेत् । पुनर्येष्वप्यमायाति जन्मजन्मनि पुनरा ॥ ८० ॥

भोजनान्तरस्यर्मासस्य व्रतानां विप्रयोगतः ।

चिरं निरयमासाद्य शुभी भवति निश्चितम् ॥ ८१ ॥

दुष्टाया मैथुनं गच्छेद्विधया कुलनाशिनी । नरकाननुभूयाथ गृहिणी दराजगमु ॥ ८२ ॥  
द्विजन्मभेदेषा भूया ततो मानुषतां व्रजेत् । तथैव बालवैधव्या दासीत्वमुपगच्छति ॥ ८३ ॥

द्विज उवाच ।

कन्यादानमर्थं ब्रूहि यद् दास्याः पत्यं च यत् ।

विधानं च यथोक्तं च यदि मेऽनुग्रहः प्रभो ॥ ८४ ॥

धीमगवानुवाच ।

कन्यायां गुणसम्पन्ने कुलीने यौवनान्विते । समृद्धे वित्तसम्पूर्णे कन्यादानमर्थं शतम् ॥ ८५ ॥  
सर्वाभरणसंयुक्तां कन्यकां यो ददाति च ।

तेन दत्ता घरा सर्वा सार्थलवमकानना ॥ ८६ ॥

अर्द्धाभरणसम्पन्ने यत्नं दानुर्मवेदु भूषम् । जनाभरणव्याघाः यद्देवस्य यत्नं मेदे ॥ ८७ ॥  
यः पुनः शूद्रकमस्मात्ति स याति नरके नरः ।

विहीनः कन्यायां दूरो नरकस्य निवर्त्तते ॥ ८८ ॥

यन्मुद्रयच्छति । तीर्त्तनाहं यत्नं कन्यायाः च यत्नम्

पतय्य हि शुक्लं च जामातुर्न कदाचन । वृद्धाति मनसा ग्राहो यद्वत् तस्य चाक्षयम्  
भूमिं गो च हिरण्यं च धनं वस्त्रं च धान्यकम् ।

जामातुर्यौतकं दत्त्वा सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ १३ ॥

विवाहसमये पत्स सगोत्रपरगोत्रजैः । यौतकं दीयते किञ्चित्तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ॥  
दाता न स्मरते दानं प्रतिग्राही न याचते । उभौ सौ नरकं यातश्छिन्नरज्जुर्घटो यथा ॥  
अक्षयं यौतकं दानं दातव्यं सार्वधिकेन हि । अदत्त्वा नरकं प्राप्य दासीत्वमुपगच्छति  
मत्स्यासन्नेऽतिदूरस्थे वात्यादये चातिदुर्गते । कुलहीने च मूर्खे च पदसु कन्या न दीयते  
मति वृद्धे चातिहीने रोगिष्ठे देशवासिनि । अतिक्रुद्धेऽप्यसन्तुष्टे पदसु कन्या न दीयते  
पतेभ्यः कन्यकां दत्त्वा नरकं चाधिगच्छति ।

लौभात्संमानलाभाच्च कन्यका परिवर्तनात् ॥ १६ ॥

मुनीनाम्रेयसीं नारीयुषसीं कल्पशालिनीम् । सालङ्कारां च शय्यां च दत्त्वाऽनन्तकलं लभेत्  
मनयोद्य कलं तुल्यं युषसी कन्ययोरपि । वकाधराय दातव्या अपरा ग्राह्येणाय च ॥  
कीटा देवाय दातव्या धीरेणाकष्टकर्मणा । कल्पकालं भवेत्स्वर्गं मृपो वा कौ महाधनी  
प्रतिजन्म लभेतेप सुपत्नीं वरवर्जिनीम् । य इदं शृणुवाञ्छित्यं पुण्याख्यानमनुत्तमम् ॥  
सर्वपापक्षयस्तस्य सर्वशास्त्रार्थपारायः । लभेत् सोऽक्षयं स्वर्गं नारीणां बहुभो भवेत् ॥

क्षत्रियो विजयी चाप्य लोकनाथो भवेद्बुधम् ।

भुतं हरति पापानि जन्मजन्मकृतानि च ॥

सौभाग्यं लभते लोके तथैव च वराङ्गवाः ॥ १०५ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिस्रष्टे पञ्चाख्याने स्त्रीनामाख्याने नाम

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।



पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

तुलासाधनविनियोगः, मन्त्रपञ्चपञ्चाशत्तमः ।

विनियोगः ।

तुलासाधनविनियोगः । मन्त्रपञ्चपञ्चाशत्तमः ।

मन्त्रपञ्चपञ्चाशत्तमः ।

तुलासाधनविनियोगः । मन्त्रपञ्चपञ्चाशत्तमः ।

मन्त्रपञ्चपञ्चाशत्तमः ।

तुलासाधनविनियोगः । मन्त्रपञ्चपञ्चाशत्तमः ।

मन्त्रपञ्चपञ्चाशत्तमः ।

तुलासाधनविनियोगः । मन्त्रपञ्चपञ्चाशत्तमः ।

मन्त्रपञ्चपञ्चाशत्तमः ।

जानो बह्वंध्यान्ते ये च सिद्धा महर्षयः । ज्ञानिनो यतयश्चैव सर्वे सत्येऽप्युतामपन्  
स्मात्सत्यरतो लोके संसारोदरणक्षमः । तुलाधारो महात्मा चैव सत्यवाक्ये प्रतिष्ठितः

लोके तत्सदृशो नास्ति सत्यवाक्यस्य कारणात् ।

अथमेघसहस्रेण सत्यं तु तुलया धृतम् ॥ १८ ॥

अथमेघसहस्रादिं सत्यमेघं विमिश्रयते । सर्वं सत्याद्भवेत्साध्यं सत्यो हि दुरतिक्रमः  
सत्यवाक्येन सा धेनुर्वहुला स्वर्गमाप्तिनी । सर्वराष्ट्रं समाधाय पुनरावृत्तिदुर्लभा ॥  
याऽयं सर्वदा साक्षी श्रुया नास्ति कदाचन । बह्वर्धमल्पमर्थं च कथयिकथने सुधीः ॥

सत्यवाक्यं प्रशस्तं च विशेषात्साक्षिणो मयेत् ।

साक्षिणः सत्यमुक्त्वा च भक्ष्यं स्वर्गमाप्नुयुः ॥ २२ ॥

अथैकः समाप्राप्य सत्यं वदति वाचरतिः । सवाति ब्रह्मणो गेहं यश्चैरन्यैश्च दुर्लभम्  
भायां यो वदेत्सत्यमश्वमेधफलं लभेत् । लोमाद्द्वेषामृषीकृत्या च रौरवं नरकं व्रजेत्  
यसाक्षी तुलाधारो जनानां शूरपथ च । विशेषाद्भोमसन्त्यागात्राके निर्जस्तां व्रजेत् ॥

कश्चिच्छूद्रो महामागो न लोमे धर्तते क्वचित् ।

वृत्तिशराकेन दुःखेन तथा शिलोच्छ्रितो भूषाम् ॥ २६ ॥

जैरं वस्त्रयुग्मं च कटीगोत्रे च सर्वदा । सदापि लोमविरहो ऽ परस्वं गृहीतवान् ॥

तस्य जिह्वासयैवाहं गृहीत्वा वस्त्रयुग्मकम् ।

अथकोटि नदीतीरे स्थितस्संस्थाप्य सादरम् ॥ २८ ॥

इहा वस्त्रयुग्मं तत्रलोमे कुर्वते मनः । इतरस्य परिहाय तत्क्षान्त्या स्वगृहं वर्यो ॥

तो विचिन्तयित्वा ॥ हृदा स्वल्पमिति द्विज । उदुग्यरं हेमगर्भं मयातत्रैव पातितम्

कटे च नदीतीरे चिकीर्णे जनवर्जिते । तस्य या तस्य देशे तु दृष्टं तेन तद्भुतम् ॥

तं विधातमेतत्तु कृत्रिमं चोपलक्ष्यते । ब्रह्मणेषाधुना चास्य अलोमं नष्टमेव मे ॥ ३२ ॥

यैव रक्षणे कष्टमहं दुरपदं त्विदम् । यतो लोमस्तनो लोमो लामा लोमं प्रयच्छते ॥

अथस्तस्य पुंसश्च शाश्वतो निरयो मयेत् । यदि नो विगुणं विलं

७ मे दारपुत्राणामुन्मादो ह्युपपद्यते । उन्मादात्कामसञ्ज्ञात्



## पट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कामस्य दुर्जयत्वकथनेऽहर्षेन्द्रचरित्रम् ।

धोभगवानुवाच ।

भद्रोहकस्य खाख्यातो भद्रिमा लोकदुःसहः ।

एकतल्पगतां वामां क्षान्त्या सर्वजितोऽभवत् ॥ १ ॥

कानिनामपि दुःसाध्यं मुनीनां ब्रह्मचारिणाम् । सुरासुरमनुष्याणां पिपमंतत्समंगतः ॥

स्वभावाद्विषमं कामं जेतुं कः पुरुषः क्षमः । भद्रोहकमृते विप्र स एव भवजित्पुमान्

महत्याहरणादेष सुरेशस्य भगाङ्कुता । पुनर्देव्याः प्रसादाच्च सहस्राक्षेति विधुतः ॥

पिदितं सर्वलोके च त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ५ ॥

द्विज उवाच ।

कार्यं च देशदेशस्य महत्याहरणं प्रमो । भगाङ्कुत्वं च सम्प्राप्य सहस्राक्षः सुराधिपः

भगाङ्कोऽपि भगाङ्कुत्वं सम्प्राप्तस्सुरराट् कथम् । दुःधृतं सुरैकत्वं धोतुमिच्छामितरथा

धोभगवानुवाच ।

पुरा स्वान्तोद्वेषां कन्यां लोकेशश्च महामनाः । गीतमायदर्शधातालोकपालाप्रतोमुष

ततस्तुलोकपालानां मन्मथाविष्टैतसाम् । शचीपतेस्तु संमोहो हृदि शन्य इव स्थित

लोकपालानतिक्रम्य सुवेपा वरवर्जिनी । द्विजाय रत्नभूतेषां दत्ताकिं वा करोम्यहम् ।

इति संश्रित्य तस्यास्तु धर्तमाने च यौवने ।

पुनश्च मायया दृष्टं रूपं तस्यास्तुशोभनम् ॥ ११ ॥

पुनश्चिन्तयमानोऽसौ गीतमाधवासनंगतः । पश्चात्तु तस्य गमनाद्यदुवृत्तं तच्छृणुष्य मे

एकदा गौतमः स्नातुं गतोऽसौ पुष्करं प्रति । साध्वी च गृहशीचेव गृह्यस्तुनि तत्परा

प्रवृत्ता देशवास्तूनां बलिर्कर्तुं च तत्परा ।

इन्धनं वह्निकार्यं च नित्यकर्मानुसञ्चयम् ॥ १४ ॥

सङ्ख्या तेनापि वर्तेत भोग्यकालस्य घामिक ।

इत्युक्तेषु च देवेषु शूद्रो वचनमब्रवीत् ॥ ६८ ॥

शूद्र उवाच ।

कथं निर्ग्रन्थकस्यास्यः शानं चेष्टास्य भाषणम् ।

किं वा हरिहरो ब्रह्मा किं वा शक्तो बृहस्पतिः ॥ ६९ ॥

किं वा मच्छलनार्थाय साक्षाद्धर्म इहागतः ॥ ७० ॥

भीमगवानुवाच ।

इत्युक्ते क्षपणध्यासी स्मितो वचनमब्रवीत् ॥ ७१ ॥

क्षपणक उवाच ।

विज्ञातुं चैव यो धर्ममहं विष्णुरिहागतः । विमानेन दिवं गच्छ सनुदुग्धो महामुने ।  
मत्प्रसादाच्च युष्माकं सदैव नययौघनम् । भविष्यति महाप्राज्ञ भाग्यान्तर्त्यं प्रलप्स्य

भीमगवानुवाच ।

दिव्यामरणसंयुक्ता दिव्यवरप्रोपशोमिताः । गतास्ते सहस्रा नाकं सर्वैर्यन्धुजनैर्वृत्ताः  
पद्मं द्विजपरश्रेष्ठः लोमत्यागाद्युर्दिषम् । तुलाधारसत्त्वा धीमान्सत्यधर्मप्रतिष्ठितः  
येन जानाति तदुवृत्तं देशान्तरसमुद्रधम् । तुलाधारसमो नास्ति सुरलोके प्रतिष्ठितः ।

तस्मात्स्वमपि भूदेव समं गत्वा दिवं व्रज ॥ ७६ ॥

य इदं शृणुष्यामर्त्यः सर्वधर्मप्रतिष्ठितः ।

जन्मजगमाजितं पापं तदक्षणात्तस्य नश्यति ॥ ७७ ॥

सहस्रपठनमात्रेण सर्वयज्ञफलं लभेत् । लोकानां पुरतो विप्र देवानामर्च्यतां व्रजेत् ॥  
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमेऽष्टिखण्डे शूद्रस्यालोमाख्यानं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कामस्य दुर्जयत्वकथनेऽहस्येन्द्रचरित्रम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

भद्रोदकस्य खाण्यातो मद्विमा लोकदुःसहः ।

एकतल्पगतां यामां क्षान्त्या सर्वजितोऽभवत् ॥ १ ॥

गणितामपि दुःसाध्यं मुनीनां ब्रह्मचारिणाम् । सुरासुरमनुष्याणां विषमं तत्समं गतः ॥ २ ॥

त्रिमायाद्विषमं कामं जेतुं कः पुरुषः क्षमः । भद्रोदकमृते यिष स एव भवजित्पुमान् ॥

बह्व्याहरणादेव सुरेशस्य भगाद्भुता । पुनर्देव्याः प्रसादाच्च सहस्राक्षेति चिद्भुतः ॥ ४ ॥

यिदितं सर्वलोके च त्रैलोक्ये सचराचरं ॥ ५ ॥

द्विज उवाच ।

तर्प्य च देवदेवस्य बह्व्याहरणं प्रभो । भगाद्भुतं च सम्प्राप्य सहस्राक्षः सुराधिपः ॥

गाढोऽपि भगाद्भुतं सम्प्राप्तस्तुरराद् कथम् । दुःधुतं सुरैर्वै कल्पं भोतुमिच्छामि तत्त्वतः

श्रीभगवानुवाच ।

रा स्वान्तीद्वयां कन्यां लोकेशश्च महामनाः । गीतमायददीधाता लोकपालाप्रतोमुदा

तस्तु लोकपालानां मन्मथाविष्टचेतसाम् । शशीपतेस्तु संमोहो हृदि शल्य इव स्थितः

लोकपालानतिक्रम्य सुवेपा वरपर्णिनी । द्विजाय यत्नमूनेषा दत्ता किं वा करोम्यहम् ॥

इति संश्रित्य तस्यास्तु वर्तमाने च यौवने ।

पुनश्च मायया दृष्टं रूपं तस्यास्तु शोभनम् ॥ ११ ॥

नश्विन्तयमानोऽसौ गीतमाध्यासदंगतः । पश्चात्तु तस्य गमनाद्यदुवृत्तं तच्छृणुष्य मे

कदा गीतमः स्नातुं गतोऽसौ पुष्करं प्रति । साध्वी च गृहशीले च गृह्यस्तुति तत्परा

प्रवृत्ता देवचास्तूनां बलिकर्तुं च तत्परा ।

इदमनं धड्किकार्यं च नित्यकर्मानुसञ्चयम् ॥ १४ ॥

सङ्ख्या तेनापि वर्तेत भोग्यकालस्य घामिक ।

इत्युक्तेषु च देवेषु शूद्रो वचनमप्रवीत् ॥ ६८ ॥

शूद्र उवाच ।

कथं निग्रन्थकस्यास्यः क्षान् चेष्टास्य मायणम् ।

किं पा हरिहरो ब्रह्मा किं वा शको बृहस्पतिः ॥ ६९ ॥

किं वा मच्छलनार्थाय साक्षाद्धर्म इहागतः ॥ ७० ॥

धीमगधानुवाच ।

इत्युक्ते क्षपणश्चासौ स्मिन्तो वचनमप्रवीत् ॥ ७१ ॥

क्षपणक उवाच ।

विज्ञातुं चैव वो धर्ममहं विष्णुरिहागतः । विमानेन दिवं गच्छ सकुन्दुष्यो महामुने ।  
मत्प्रसादाच्च युष्माकं सदैव नवयौषनम् । भविष्यति महाराज भाग्यान्तर्यं प्रलप्स्य  
धीमगधानुवाच ।

दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यवस्त्रोपशोभिताः । गतास्ते सहस्रा नाकं सर्वैर्यथुजनेवृताः  
पर्यं द्विजवरधेष्टः लोमत्यागाद्युर्दिषम् । तुलाधारस्तथा धीमासत्यधर्मप्रतिष्ठितः ।  
येन जानाति तद्बुद्धं देशान्तरसमुद्भवम् । तुलाधारसमो नास्ति सुरलोके प्रतिष्ठितः ।  
तस्मात्स्वमपिः भूदेव समं गत्वा दिवं व्रज ॥ ७६ ॥

य इदं शृणुयान्मर्त्यैः सर्वधर्मप्रतिष्ठितः ।

जन्मजन्माजितं पारं संक्षणात्तस्य नश्यति ॥ ७७ ॥

सदृत्पटनमात्रेण सर्वयज्ञफलं लभेत् । लोकानां पुरतो विप्र देवानामर्च्यतां व्रजेत् ॥  
इति धीपामपुराणे प्रथमेऽष्टादशोऽध्यायः ।

## षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कामस्य दुर्जयत्वकथनेऽहल्येन्द्रचरित्रम् ।

धीमगवानुवाच ।

भद्रोदकस्य चाख्यातो महिमा लोकदुःसहः ।

एकतपगतां धामां क्षान्त्या सर्वजितोऽभवत् ॥ १ ॥

शान्तिनामपि दुःसाध्यं मुनीनां ब्रह्मचारिणाम् । सुरासुरमनुष्याणां यियमंतत्समंगतः ॥ २ ॥

स्वभावाक्षियमं कामं जेतुं कः पुरुषः क्षमः । भद्रोदकमृते विप्र स पय भवजित्पुमान् ॥

महत्प्राहरणादेव सुरेशस्य भगाङ्कुता । पुनर्देव्याः प्रसादाच्च सहस्राक्षेति विभ्रुतः ॥ ४ ॥

यिदितं सर्वलोके च त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ५ ॥

द्विज उवाच ।

कर्णं च देवदेवस्य महत्प्राहरणे प्रभो । भगाङ्कुत्थं च सम्प्राप्य सहस्राक्षः सुराधिपः ॥

भगाङ्कोऽपि भगाङ्कुत्थं सम्प्राप्तस्तुररभ्य कथम् । दुःभ्रुतं सुरवैकल्यं श्रोतुमिच्छामि न रघवः ॥

धीमगवानुवाच ।

पुरा द्वाग्तो द्वधा कन्या लोके शश्व महामनाः । गीतमायवदीधाता लोकपालाप्रतोमुश

ततस्तु लोकपालानां मग्नया विष्टे तसाम् । शचीपतेस्तु संमोहो हृदि शल्य इव स्थितः

लोकपालानतिक्रम्य सुवेपा वरपरिणी । द्विजाम रत्नभूतेषां दत्तार्कि वा करोम्यहम् ॥

इति सञ्चिन्त्य तस्यास्तु वर्तमाने च यौषणे ।

पुनश्च मायया द्रष्टुं रूपं तस्यास्तुरोभनम् ॥ ११ ॥

पुनश्चिन्त्यमानोऽसौ गीतमाध्यासर्नंगतः । पञ्चास्तु तस्य गमनाद्यदृष्टं तच्छृणुष्य मे

एकदा गीतमः स्नातुं गतोऽसौ पुष्करं प्रति । साध्वी च गृहशीचेव गृहस्थस्तु नि तत्परा

प्रवृत्ता देवधास्तूनां धर्तिकर्तुं च तत्परा ।

इन्धनं धद्विकार्यं च नित्यकर्मानुसञ्चयम् ॥ १४ ॥





मधवन्तं पुरो हृद्वा चुकोप मुनिपुङ्गवः ॥ ३१ ॥

मुनिरुवाच ।

यत्त्वयाचेद्दृशं कर्म भगव्यं छलसाहसम् । हृतं तस्मात्तवाङ्गेषु सद्व्यमगमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

भवत्पिह तु पापिष्ठ लिङ्गं ते निपतिष्यति ।

गच्छ मे पुरतो मूढ सूरस्थानं दिवौकसः ॥ ३३ ॥

पश्यन्ति मुनिशार्दूल नराः सिद्धास्सहोदराः ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

एषमुक्त्वा मुनिध्रेष्ठो रुदन्तीं तां पतिव्रताम् । पप्रच्छ किमिदानीं ते कर्मदारुणमागतम्

इत्युक्ता धेपमाना सा भीता पतिमुवाचह ॥ ३५ ॥

अहहयोपाय ।

अज्ञानाघत्कृतं कर्म क्षन्तुमर्हसि वै प्रभो ॥ ३६ ॥

मुनिरुवाच ।

परेणामितासि त्वममेध्या पापचारीणी । अस्थिरवर्मसमाविष्टा निर्मांसा नखप्राजिता ॥

चिरं स्थास्यसि चैकापि त्वां पश्यन्तु जनाः स्त्रियः ॥ ३७ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

दुःखिता तमुवाचेदं शापस्यागतो विधीयताम् ।

इत्युक्ते करुणाविष्टो मन्युनापि परिप्लुतः ॥ ३८ ॥

अगाद् गौतमो वाक्यं रामोदाशरधिर्यदा । वनमभ्यागतो विष्णुः सचिद्वामित्रलक्ष्मणः

हृद्वा त्वां दुःखितां शुष्कां निर्देहां पथि संस्थिताम् ॥

गदिष्यति च वै रामः कीशिकस्याग्रतो हसन् ॥ ४० ॥

किमियं शुष्ककृशा च प्रतिमास्थिमयी शुभा । न हृष्टं मे पुरा ब्रह्मपूर्णं लोकविपर्ययम्

ततो रामं महामार्गं विष्णुं मानुषविग्रहम् । यद्वृत्तमासीत्पूर्वं तत्कीशिकः कथयिष्यति

कीशिकस्य पथः श्रुत्वा रामो वक्ष्यति धर्मं पितृ ।

अस्या दोषो न चैवास्ति दोषोऽयं पाक्यासने ॥ ४३ ॥

३६—

एवमुक्ते ॥ रामेण त्यक्त्वा रूपं त्रुष्टुप्सितम् । दिव्यं रूपं समास्थाय मद्गृहं चागमि

शप्त्वा तु गीतमस्तां हि तपस्तप्तुं गतो वनम् ।

ततोऽत्यन्तं शुष्करूपा तथैव पथि संस्थिता ॥ ४५ ॥

रामस्य वचनादेव गीतमं पुनरागता । गीतमोऽपि तथा सार्द्धमयैवं दिवि ति

इन्द्रोऽपि त्रपयायुक्तः स्थितश्चान्तर्जले विष्णुः ।

स्थित्वा चान्तर्जले देवीमस्तौ दिन्द्राक्षिसंज्ञिताम् ॥ ४७ ॥

तुप्रसन्ना ततो देवी स्तोत्रेण परितोषिता ।

गत्वोषाच ततः सा च वरोऽस्मत्तो विगृह्यताम् ॥ ४८ ॥

ततो देवीमुवाचेद् शक्रः परपुरञ्जयः ॥ ४९ ॥

शक्र उवाच ।

स्वत्प्रसादाच्च मे देवि धैरूप्यं मुनिशापजम् । नश्येच्च देवराज्यं च लभेऽहं तु पुरा

श्रीभगवानुवाच ।

तमुवाच ततो देवी पापं तन्मुनिशापजम् । इन्तुं ब्रह्मादयो देवाश्शक्ता नाहं सुरे

किं तु बुद्धिं स्वजाम्यद्य येन लोकैर्न लक्ष्यते । योनिमध्यगतं हृदि सहस्रं ते भविष्य

सहस्राक्ष इति कथा तस्सुरराज्यं करिष्यसि ।

मेशण्डं तव शिश्नं च भविष्यति च भद्ररात् ॥ ५३ ॥

इत्युक्त्वा सा जगन्माता तत्रैवान्तरधीयत ।

शक्रो देवपतेः पूज्यो ह्यद्यापि दिवि वर्तते ॥ ५४ ॥

इन्द्रस्यैतादृशी कामादपस्या द्विजसत्तम ॥ ५५ ॥

इति श्री पद्मपुराणे प्रथमे खण्डे अष्टमोऽध्यायः ॥

## सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कामस्य दुर्जयत्वे परमहंसचरित्रम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

य प्रवक्ष्यामि कामेनाधिष्ठितस्य च । पुरा भगीरथोत्तीरे द्विजः परमहंसकः ॥ १ ॥

॥ सहस्राणां द्विजानां शान्तिदः परः । एकरण्डधरः साक्षात्कर्मवद्वर्णीस्थितः

केनः सतस्तस्य देवागारे विनिर्हृते । पर्युष्टं हात्परं गेहं गन्तुं सायं समुद्यता ॥

कस्माद्युयती नारीमिलितारूपधारिणी । दृष्ट्वा तां भगवान्विप्रो भगवत्स्य भयार्दितः

भगारजठरे कृत्वा स चैनो प्राक्षिपत्सगम् ।

भगैलं सादृष्टं कृत्वा देवागारे सुशोभने ॥ ५ ॥

तदाविदपि न द्वारादगन्तुं न ददाति ह । पर्यमृतः समाधिस्थः क्षरां क्षिप्त्वा विलप्यतः

विस्तप्येस्तां परारोहं द्वारि किं वा हनं मम ।

एष सञ्चिन्त्य तामाह द्वारं देहीह नः प्रिये ॥ ७ ॥

तिष्ठ परागः कान्ते द्युतिलने भविष्यति । तनस्तं प्रह सा विप्रं वृद्धं कामप्रलादसम्

नार्युवाच ।

भगव्यिता गिरस्तात धनुं त्वं नार्हेसि प्रभो ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

यासौ भगवान्प्राह प्रयुरं चास्तिमेव ह । तपदास्यामि कल्याणि प्रसन्नोदयकरादिकाम्

प्रमाह पुनः सा च त्वं ये मे धर्मं विता । मागच्छतुत्रिकां मौ च परपोषां च धार्मिक

मनसा ॥ समालोक्य सुविरेण पथा गृहाम् ।

बाहुनोदगाटयनेनैव गन्तुं चैव समुद्यतः ॥ १२ ॥

पुनर्धातुमार उक्तमाह सुसदृष्टे । प्रविष्टं न पुनरवेति वक्ष्यमममनसा ॥ १३ ॥

र कानेसमायाता रक्षितो ये चकिदृगाः । भद्रं नैव शर्वदृष्टा ताम्युक्तं च विप्रिना ॥

रक्षिण ऊचुः ।

कथं च निधनं त्वस्य सम्भूतं ब्रूहि सुन्दरि ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कथयित्वा तु तद्वृत्तमभीष्टं देशमागता । एवं कामस्यमहिमा दुर्निवारो जनेषु  
सर्वेषामपि जन्तूनां सुरसुरनृणां भवेत् । इद्वाऽमोघां वरारोहां सर्वलोकप्रिया  
च्युतवीजोऽभवत्तत्र लोहित्यसम्भवः स्मृतः । पुनाति सकलां होकां सर्वतीर्थमयो वि

यमाश्रित्य नरो याति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ १६ ॥

द्विज उवाच ।

कथञ्च ब्रह्मणोमोहो ह्यमोघा का वराङ्गना । उद्बधं शीर्षराजस्य श्रोतुमिच्छामि तव

श्रीभगवानुवाच ।

मुनिर्देवैः समाराध्यः पद्मयोनिसमप्रभः । शन्तनुश्चेति विख्यातः परनी तस्य पतिः  
अमोघेति समाख्याता रूपयौवनशालिनी । मस्याञ्च पतिमग्रेष्टुं यातो ब्रह्मा बतदुप  
तस्मिन्काले मुनिश्रेष्ठः पुण्याग्र्यं वनं गतः । सा तं दृष्ट्वा सुरभ्रेष्ठमर्च्यपादादिकं दरी  
दूरेऽभियादनं कृत्वा सा गृहं प्रविशेश्च । तां च दृष्ट्वाऽनवद्याङ्गीं धाता कामवशं गत  
स्त्रष्टात्मानं समाधायाचिन्तयत्तां पुरोगताम् । वीजं पपातलक्ष्म्यायां ब्रह्मणः परमात्म  
ततो ब्रह्मागतस्त्रस्तस्त्वरया परिपीडितः । अधायातोमुनिर्गोहं शुक्रं पीठे ददत्त  
तामपृच्छद्वारोहां कथाप्यत्रागतः पुमान् । तमुवाचततोऽमोघा ब्रह्मा ह्यत्रागतः के  
रयामेवाग्येपितुं नाथ मयात्सोऽत्र पीठकः । शुक्रस्य कारणं व्यात्र तवसा ज्ञातुमर्हति

ततो ध्यानात्पणिहृतं तेनैव च द्विजन्मना ॥ २६ ॥

शन्तनुश्वाच

ब्रह्मरेतः परंसाध्यः पालयस्य ममाश्रया । उत्पद्यते सुतस्ते तु सर्वलोककल्याण  
भाषयोः सर्वकल्याणं फलिष्यति मनोगतम् ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

ततः पतिप्रता तस्य आह्वामागृह्यसम्भवात् । पर्वारैतो महाभागा ब्रह्मणः परमात्मन

प्रायत इव सञ्जने रौद्रगर्भे इति स्फुरन् । प्रसोढुं नैव शक्ता सा शन्तुं चावधीत्ततः ॥  
अमोघोवाच ।

गर्भं धारयितुं नाथ न शक्नोम्यधुना प्रभो । किंकरिष्यामि धर्मज्ञ प्राणो मेसञ्चलत्यपि  
आज्ञापय महामाग गर्भं त्यक्ष्यामि यत्र च ॥ ३३ ॥

पत्युराज्ञां समादाय मुक्तो गर्भो युगन्धरे । पयस्तेजोमयं शुद्धं सर्वधर्मप्रतिष्ठितम् ॥  
तन्मध्ये पुरुषःशुद्धः किरीटी नीलवाससा । रत्नदाम्नाचबिद्धाङ्गोदुष्येक्ष्योऽयोतिर्गङ्गाः

ततो देवगणाः स्वर्गात्पुष्पवर्षमवाकिरन् ।

प्रसूतः सर्वतीर्थेषु तीर्थराज इति स्मृतः ॥ ३६ ॥

ततो राम इति उपातःप्रजातोऽहं भृगोः कुले । क्षत्रियान्पितृहन्तुंस्तुससैन्ययलपाहनान्  
हत्वा युद्धगतान्मीतान्पद्भैः सर्वैर्युतो ह्यहम् । प्रह्लादहत्यासनं घोरं मद्भुगोहे समुपस्थितम्

पङ्कयुक्तं कुठारं मे क्षालितं नैव शुद्धयति ।

ततः खेचागवह्वाणी राम मद्भवनं कुरु ॥ ३९ ॥

देवगानुवाच ।

यत्रतीर्थं कुठारं ते निर्मलं च भवेदिह । तत्र ते सर्वपापानां जातानां च क्षयोमयेत् ॥  
जनानां तत्र सर्वेषां हितार्थं तिष्ठमानद । अपलं गच्छ तीर्थानि सर्वाणि सुमहान्ति च ॥  
तेषामभ्ये महातीर्थं पर्शुः शुद्धो भवेद्यदि । तं च जानीहितीर्थेषु मुक्तिदं परिकीर्तितम् ॥

श्रीमगवानुवाच ।

तच्छ्रुत्वा जामदग्न्यस्तु तीर्थानि प्रययौ तदा । गङ्गां सरस्वतीं शुष्मांकावेरीं सरयूतथा  
गोदावरीं च यमुनां कङ्कं च घसुदां तथा ।

अस्यां च पुण्यदां रम्यां धीरीं पूर्वीं स्थितां शुभाम् ॥ ४४ ॥

गच्छतस्तस्य धीरस्य सदाजातिसमस्य च । क्षालितः सर्वतीर्थेषु न पुनर्निर्मलोऽमप्य  
ततो गिरिगुदां दुर्गां महारण्यं च पर्वतम् । गिरिकुटं च दुर्लभ्यं ययोतीर्थमसौ इति ॥

न च निर्मलतामेति कुठारस्तस्य तेन च । विषादमगमत्तत्र रामः परपुरत्रयः ॥ ४७ ॥

हादेति विविधं हत्वा क्षोपविश्य घरातले । प्रचिन्तामगमद्भीरस्तमुवाच पुनस्तथा ॥

देववांगुषाच ।

पूर्वस्यां दिशि देवेश तीर्थं चास्ति गुहोदरे ॥ ४६ ॥

धीमगवानुषाच ।

तच्छ्रुत्वा नरशार्दूलो गत्वा कुण्डं ददर्श सः । प्रदक्षिणं जलापतं शुभं पापहरं गुहम् ।  
तज्जलस्पर्शमात्रेण कुठारः शुद्धतां गतः । ततो रामोऽभिषेकं ॥ कृतवान्प्रमुखायि ।

शुद्धात्मनस्त्वपापस्य बुद्धिर्जाता प्रपाविनी ।

स रामः सुचिरं स्थित्वा तीर्थराजं प्रसाद्य तम् ॥ ५२ ॥

ततस्ततोऽबलारुप्य पुरं वेगसमन्वितः ।

कथानं कृत्वा ततश्चोर्ध्वा गतोऽसौ लयणार्णवम् ॥ ५३ ॥

अयं तीर्थवरः साक्षात्पितामहस्तोमुपि । सुखः सर्वतः शुद्धो मुक्तिमार्गप्रदः ।  
एवं कामप्रसाधं यः पिबिदुर्षाण्डुःसहम् । कामाज्जातं कृपणं प्रपुण्यं (१) पुण्यप्रदम् ।  
स जातश्चैव लौहित्योऽपि विज्ञेयश्चैव वीरसः । शान्तनोः क्षेपसन्नातस्य मोघागर्भप्रदः ।  
विरजिना जितः कामः शान्तनोरप्यमरसरान् । तस्याः पतिव्रतात्पायनीया तीर्थवती ॥

एवं यस्तु पटेन्नित्यं पुण्याख्यानमिदं शिषम् ।

शृणुवाद्वा मुदा शृण्व्या मुक्तिमार्गं स गच्छति ॥ ५८ ॥

इति धीमाग्वानुषाचं प्रथमे गृह्यवर्णे यज्ञाख्याने लौहित्योत्पत्तिर्नाम

सप्तवक्त्राख्यानोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कामाख्याने गन्धर्वादिर्नामिः मदं शिवर्त्रीद्वारननम् ।

धीमग्वानुषाच ।

अतिरम्यां कुटीं कृत्वा तामिः सह महेश्वरः ।

क्रीडां चकार सहसा मनोमवपरामव ॥ ३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे गीर्वाञ्चित्तमुदुञ्चान्तनां गतम् । अरश्यदुध्यानयोगेन क्रीडन्तजगदीश्वरम्  
स्त्रीभिरन्तर्गतं ज्ञात्वा रोषस्य धशगाऽमघत् । ततः क्षेमङ्कुरोरुपा भूत्वा च प्रविवेशसा  
व्योमैकान्तेऽतिदूरे च कामदेवसमप्रमम् । धामातिमध्यगं शुभ्रं पुरम् पुरुरोत्तमम् ॥ ६ ॥

स्त्रीभिः सह समालिङ्ग्य प्रक्रीडन्तं मुहुर्मुहुः ।

सुखान्तं निर्मेरं देवं हरं रागप्रपीडितम् ॥ ७ ॥

वृत्तं क्षेमङ्कुरी इष्टा निपपाताप्रतस्तदा । तासां केशेषु चाकृष्य चकार चरणाहतिम् ॥  
त्रपया पीडितरशार्धः पराङ्मुखमवस्थितः । केशेष्याकृष्य रोपात्ताः पातयामास भूतले  
स्त्रियः सर्षाधरां प्राप्य सहसा विहृताननाः ।

उमाशापप्रदग्धाङ्गा म्लेच्छानां पशमागताः ॥ १० ॥

ताश्चापङ्गालस्त्रियः यथाताम्रपथाघवसंयुताः । अद्याप्युमाकृतंशापंस्पर्शास्ताभ्रसमरनुयुः  
मधोमा शतधात्पं कृतधेशं सङ्गता तदा । एषं प्रमार्थं जानीहि कामस्य सततं द्विज ॥  
ततश्चिरात्तया सार्द्धं गतः कैलासमन्दिरम् ।

अतः क्षेमङ्कुरी इष्टा येऽमिनन्दन्ति मानवाः ॥ १३ ॥

तेषां वित्तद्विषिमथा भवन्तीह परत्र च । कुङ्कुमारकसर्वाङ्गि कुन्देन्दुधवलानने ॥ १४ ॥  
सर्वमङ्गलदे देपि क्षेमङ्कुरि नमोऽस्तुते । योगिनी साम्यं तेनैव सम्मुखा पिमुखापि वा  
इष्टा तां नामिषन्देयस्तस्य युजे पराजयः । राजशूहेषु विद्यायां नमस्काराजयो भवेत्  
एषं कामस्य मोहदम्भं भवो मोहवशं गतः ।

ममैव यादृशो मोहः सर्वलोकैः प्रणीयते ॥ १७ ॥

परलोहरणेशोपानमम दुर्गतिस्त्रयम् । यद्योदुभूतं प्रवक्ष्यामि जनेषु विदितं द्विज ॥  
गोपी पतिहिता काचित्काचिदुचाला तपस्थिनी ।

प्रौढा कात्पायनी वृद्धा काचित्सम्बन्धिनी यधू ॥ १६ ॥

मातां हरणदोषाच्च यदुवृत्तं तच्छृणुष्व मे । रणे पराजयं देन्यं शोकं पुत्रपिताराणम् ॥



सारथ्यं स्त्रीजने प्रापं चण्डालादेष विप्लवम् ।

शुक्लाङ्गं क्षयवृद्धिं च कल्पे शाश्वतमाप्नुयाम् ॥ २१ ॥

अयं देवासुराणां च क्षमया प्रभुतां गतः । अस्यैव सदृशो लोके न भूतो न भविष्यति ।  
रामामङ्गुस्थितां रम्यां क्षमा तल्पगतेन च । त्वत्तवैव साधिता लोकास्तुरासुरसुदुर्तमा-  
एवं वैष्णवमुत्पन्नं सुरासुराणां चितः । यो नो ददाति भुक्त्वायं शेषं च स्वयमस्ते  
पवमभ्यासधैर्येण क्षीर्यकाले सुखं गते । प्राक्सङ्गमात्स्वभार्यां च हृद्वा मां प्रददौ मुनिः ।

द्वादशान्दं प्रसङ्गुल्य प्राग्मोगो मयि धेशितः ।

तेन तस्य गृहे नित्यं तिष्ठामि गृहरक्षणात् ॥ २६ ॥

तथाधात्री फलस्यापि सदास्वरसमीहते । तस्मादुक्तो मयान्येषां वैष्णवानां च वैष्णवः  
पुरा ये विप्र मे भक्तास्तुरामत्पथगामिनः । तैरेव न कृतं यच्च तदनेन कृतं परम् ॥ २८ ॥

तस्माद्वैष्णवसर्वस्वं नामरम्यं मया कृतम् ।

अस्य धेशमनि तिष्ठामि सुदुर्तं न खलाम्यहम् ॥ २९ ॥

अतो ये चैव मद्भक्तास्तेष्वहं सुलभोद्भिज्ज । अस्माकंपद्वीं तेभ्यो ह्यप्यद्विष्यकारणम्  
आपयोर्विप्र सौजम्यं स्पृज्जमोज्यादिकं समम् ।

सायुज्यं च सखित्वं च पश्य भूदेव नान्तरम् ॥ ३१ ॥

ध्यास उवाच ।

ततोमूकादयस्सर्वे स्वागताहरिमीश्वरम् । गन्तुकामादिर्व पुण्यास्तदात्ताः सपरिवृष्टाः  
ये च तेषां गृहाम्बाशेऽप्यात्मनो गृहगोधिकाः ।

मानाकीटादयो ये च तेषामनुययुः सुराः ॥ ३३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवाः सिद्धाश्च परमरथः । प्रवक्ताः पुण्यवर्षाणि साधुसावित्र्यनाम्नः ।  
देवदुन्दुमयो नेदुर्विमानेषु वनेषु च । समाप्लाव्य रथं रथं रथं हरिबीधीपुरं ययुः ॥ ३५ ॥  
तदनुतं समालोक्य विप्रोऽबोचज्जगद्गर्भम् । उगदेशं च देवेश ब्रूहि मे मधुगूढम् ॥ ३६ ॥

धीमगवानुवाच ।

गच्छस्व पिनरीं तात शोकविह्वलमागतां ।

समाराध्य प्रयत्नेन मद्गृहं प्राप्स्यसेऽचिरात् ॥ ३७ ॥

पितृमातृसमा देवा न तिष्ठन्ति सुरालये । याम्यां सुगर्हितं देहं शिशुत्वे पालितं सदा  
अज्ञानदोषसहितं प्रपुष्टं चापि धर्चितम् ।

याम्यां तयोस्समं नास्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३८ ॥

व्यास उवाच ।

ततो देवगणास्सर्वे पञ्चभिस्तैर्मुदान्विताः । मायवं संस्तुषन्तश्च गतास्ते हरिमन्दिरम्  
खचितांश्च पुरीं रम्यां विश्वकर्मविनिर्मिताम् । रत्नाढ्यामिष्टसम्पूर्णां कल्पवृक्षादिमिर्युताम्  
शातकुम्भमयैर्गर्दैस्सर्वैरत्नैस्सकयुराम् । वज्रवैडूर्यसोपानां स्पर्शदीतोयसंयुताम् ॥ ४१ ॥  
गीतवाद्यादिसम्पूर्णां सर्वदुर्गसमाकुलाम् । कोकिलालाप्यदुलां सिद्धगन्धर्वसेविनाम् ॥

रूपाढ्यैः सुजनैः पूर्णां प्रयान्तीमिष श्रेयसीम् ।

ततः स्थित्वाऽच्युताः सर्वे सर्वलोकोर्ध्वतो भूवाम् ॥ ४४ ॥

द्विजोऽपि पितरौ गत्वा समाराध्य प्रयत्नतः ।

अचिरेणैव कालेन सङ्गुदुग्धो हरिं ययौ ॥ ४५ ॥

पञ्चाख्यानमिदं पुण्यं मया ते समुदाहृतम् । यः पठेच्छृणुयादापि तस्य मास्तीह दुर्गतिः

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्न लिप्येत कदाचन ॥ ४६ ॥

गयां कौटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः । तत्फलं समयाप्नोति पञ्चाख्यानापगाहनान् ॥

स्नानेन पुष्करे नित्यं मागोरध्यां च सर्वदा ।

यत्फलं तदवाप्नोति सहस्रश्रवणगोचरात् ॥ ४८ ॥

दुःस्वप्नं नाशयेत्क्षेत्रं तथारोग्यं प्रयच्छति । लङ्घ्यारोग्यकरं चैव तस्माच्छ्रीतम्यमेव हि

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे खण्डे पञ्चाख्यानं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## ऊनपष्टितमोऽध्यायः

### जलदानमाहात्म्यवर्णनम् ।

द्विजा ऊचुः ।

कीर्तिर्धर्मोऽथ लोकेषु सर्वाणि प्रवराणि च । वद नो मुनिशार्दूल यदि नोऽस्ति बभूवुः  
व्यास उवाच ।

यस्य खाते घने गाघस्तृप्यन्ति मासमेव च ।

यद्वा सप्तदिनात्पूतः सर्वदेवैः स पूजितः ॥ २ ॥

पुष्करिण्या विशेपेण पूताया यज्ञकर्मणा । यत्फलं जलदानेन सर्वमत्रास्ति तच्छृणु ॥  
हायने हायने चैव कल्पं कल्पं विधोयते । दानात्स्वर्गमवाप्नोति तोयदः सर्वदो मुनि  
मेघे घर्पति खाते च जायन्ते ये तु शीकराः । साधुर्धर्मसहस्राणि दिवमश्नोति मानवः ।  
तोयैरग्नादिपाकैश्च प्रसन्नो मानवो भवेत् । प्राणानां च विनान्नेश्च धारणं नैव जायते  
पितृणां तर्पणं शीघ्रं रूपं वै गन्ध्यनाशनम् ।

धीर्जं त्विहाजितं सर्वं सर्वं तोये प्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥

यत्नस्य धावनं दृढ्यं भाजनानां तथैव च । तेनैव सर्वकार्यं च पानीयं मेध्यमेव च ॥  
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वार्षीकूपतटाककम् । कारयेद्य बलैः सर्वैस्तथा सर्वधनेन च ॥  
ततो विनिर्जले देशे यो ददाति जलाशयम् ।

वासरे वासरे तस्य कल्पं स्वर्गं विनिर्दिशेत् ॥ १० ॥

त्रिविष्टपाञ्च्युतोपि प्रोयेदशाखार्घ्यपारणः । लोकबन्धुः स धर्ममातपस्तद्यादिर्धर्मज्ञः  
अथ जग्माष्टकं प्राप्य एकस्याह्वयमिष्यते । क्षत्रियाणां कुले जातः सार्वभौमोऽभवात्

विशोऽक्षयं धनं विद्या जग्मजग्मसु यत्प्रियम् ।

शूद्रादप्योऽन्त्यजाध्याये श्रमन्ते स्वर्गतिं मुहुः ॥ १३ ॥

चतुर्हस्तप्रमाणं तु : परमान् । परोपकारकं नित्यं कल्पं स्वर्गं तु हायने ।

द्विगुणेद्विगुणं विद्याच्छतं चैवचतुर्गुणे । विंशत्किष्कुप्रमाणां तु दद्यात्पुष्करिणीं तु यः  
विष्णोर्धर्मलभेतसोऽपि दिव्यभोगं तथैव च । अनन्तरनृपो जातो धनी धामीश्वरोभवेत्  
एवं द्विस्त्रिश्चतुर्धापि गुणतो भोग्यमिष्यते ।

विस्तीर्णे प्रचुरं विद्धि सदस्त्रेणाच्युतो दिवः ॥ १७ ॥

सहस्राद्विगुणेनैव सुरपूज्यो भवेन्नरः । जन्तवस्तत्र ये सन्ति याचन्तो जीवन्तं ययुः ॥  
तत्सङ्ख्याका जनास्तस्य किङ्कराः पृष्ठलग्नकाः । भवन्ति सततं गेहे पुरे जनपदैषु च ॥

विहाय पितरं भोग्या धने क्षीणे यथा धनम् ।

पश्चिणस्सूकरश्चैव महिषी करिणी तथा ॥ २० ॥

उपदेष्टा च कर्ता च पथेतेस्वर्गनामिनः । दिव्यं च पश्चिणां चैव शनं स्वर्गपिनिर्दिशेत्  
कोटौ धर्मसदृशं तु महिष्ययुतहायनम् । देवरूपं समास्थाय करिण्या लक्षमुच्यते ॥  
कोट्येकमुपदेष्टुश्च कर्तुं रक्षयमेव च । पुरा धनिसुतेनैव कृतः न्यायो जलाशयः ॥ २१ ॥  
अयुतधनप्यप्येनैव प्राणेनैव घलेन च । स्वर्गसंस्थोपकाराय शिषधद्रायुतेन च ॥ २४ ॥

कालेन कियता चापि क्षीणवित्तोऽमघरिकलः ।

कश्चिदर्थो धनी तस्य मूल्यदानाय खोद्यतः ॥ २५ ॥

विमृश्यपतिनाखोक्तं व्याहारं शृणुताधुना । वीनारस्यायुतं वातेदास्याम्यस्याश्चकारणान्  
लघ्वं ते पुष्करिण्याश्च पुण्यं लाभात्प्रमग्नसे ।

शक्त्या दत्त्वाऽथ मूल्यं तां स्वीयां कर्तुं श्यवस्थितः ॥ २७ ॥

एषमुक्ते ॥ तं ब्राह्म वासरेऽप्ययुतं पुनः । फलं भवति वै निम्बं पुण्यं पुण्यविशं विदुः  
एतस्मिन्निर्जले देशे शिथं खातं कृतं च मे । स्नानशानादिकं कर्म सर्वं कुर्वन्त्यर्माष्टनः

तस्माग्मेऽप्ययुतार्घस्य नैत्यकं फलमिष्यते ।

तनस्तस्यामवदुषास्यं तपे च समासदम् ॥ ३० ॥

हिवा च पीडितः सोऽपि बाक्यमेतदुपाचर । सत्यमेतद्वचोऽस्माकं वर्णितां बुद्ध धर्मनः  
मरसरात्स तु तं ब्राह्म शृणु ॥ यच्चनं पितः । वीनारायुग्मेतले दत्त्वा

पातविष्यामि ते खाते यथायोगं प्रमदितुम् ।

उन्मज्जति च यत्काले प्रस्तरः सन्तरत्यपि ॥ ३३ ॥

क्षयं यास्यति नो विसं नोचेन्मे धर्मतो हि सा ।

यादमुक्त्वा युतं तस्य गृहीत्वा स्वगृहं गतः ॥ ३४ ॥

साक्षिणामप्रतस्तेन प्रस्तरः पातितस्तथा । पुष्करिण्यां महत्यां च दृष्टं नत्सुपसृष्टे  
ततो धर्मतुलायां तु तुलितं धर्मसाक्षिणाः । दीनारायुतदानस्य पुष्करिण्याजलस्य तु

न समं तु दिनैकं तु जलस्य धर्मतो भृशम् ।

धनिनो मानसं दुःखं मोघार्थं च परेऽहनि ॥ ३५ ॥

शिलोच्चपोऽभयस्त्रीर्णो द्वीपपथ जलोपरि । तत्रः कोलाहलः शब्दो जनानां समुपस्थित  
तच्छ्रुत्वाद्भुतवाक्यं च मुदा तौ वागतौ ततः । दृष्ट्वा शैलं तथा भूतं कुरु तेनायुतं तत्  
ततः खाताधिपेनैव शैलं दूरे निपातितम् ।

पुण्यं खातस्य चोत्खाते प्रलुप्तस्य सुतेन हि ॥ ४० ॥

सौऽपि नार्कं समाख्या जन्मजन्मसुनिर्मुक्तः । गोत्रमातृगणानां च नृपाणां सुदृशं तत्र  
सखीनांबोपकर्तृणां खातं खातयाऽक्षयफलम् । तपस्थिनामनाथानां ब्राह्मणानां विद्वेष  
खातं तु जनयित्वा तु स्वयं वाक्षयमश्नुते ।

तस्मात्खातादिकं विप्राः शक्तितो यः करिष्यति ॥ ४३ ॥

सर्वपापक्षयात्पुण्यं मोक्षं यायात्र संशयः । य इदं ध्यायेत्लोके धर्माख्यानं महोत्कटम्  
सर्वखातप्रदानस्य फलमश्नाति धार्मिकः । ब्रह्मे भास्करस्यैव भागारण्यां तदे परे ।  
गयां कीटिप्रदानस्य फलं ध्रुव्या लभेन्नरः । न च दग्धतामेति न शोकं व्याधिसञ्चयम्

असंमानं महद्दुःखमुभयोर्नाधिगच्छति ॥ ४७ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिस्रष्टे खातादिकीर्तनं नामैकोनपञ्चमोऽध्यायः ।

## पष्ठितमोऽध्यायः

अश्वत्थादिवृक्षरोपणविधानफलवर्णनम् ।

ध्यास उवाच ।

शास्त्रिणामेवसर्पयो फलवक्ष्यामिवाह्वरात् । तच्छृणुष्व महाभागा रोपणे च पृथक्पृथक्  
यस्तु रोपयते तीरे पुण्यवृक्षान्समन्ततः ।

तस्य पुण्यफलं ज्ञातुं कथितं नैव शक्यते ॥ २ ॥

अन्यत्र रोपणं कृत्वा शास्त्रिणो यत्फलं लभेत् । ततो जलसमीपे ॥ लक्षकोटिगुणं भवे  
स्यैव पुष्करिणी तीरे स्थान्तं फलमश्नुते ।

तस्माच्छतगुणं भूमः शास्त्रिणो पुण्यकारिणाम् ॥ ४ ॥

अश्वत्थरोपणं कृत्वा जलाशयसमीपतः । यत्फलं लभते मर्त्यो न तत्क्रतुशतैरपि ॥  
पतन्ति यानि पत्राणि जले पर्वणि पर्वणि । तानि पिण्डसमानीह पितॄणामक्षयं य  
त्वाप्नोति पतगास्तत्र फलानि कामतो ध्रुवम् ।

प्रदत्तमक्षयसमं तस्य पुण्यं भवति चाक्षयम् ॥ ७ ॥

अश्वत्थेनैव वृक्षेण रोपणेनैव यत्फलम् । तद्वैक्रतुशतैर्नैव पुत्रैरेव शतैरपि ॥ ८ ॥  
उष्णे उष्णार्वाग्रगृह्णति गाधो देवद्विजातयः । कर्तुः पितृगणानां च स्वर्गो भवति चाक्षय  
कर्तुं स्थस्थस्य वै विघ्नमक्षयत्वाच्च शक्यते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोपयेद्वृक्षमाधवा  
एकं वृक्षं समारोप्य नरः स्वर्गान्न हीयते । तस्मादेव महावृक्षं रोपयध्वं द्विजोत्तमाः ।  
जलानां निकटे रज्ये रसानां क्रयविक्रये । मार्गे जलाशये वृक्षाश्रोपये ।

अश्वत्थादीन्समारोप्य स्वर्गं याति मनोरमम् ।

अर्चयित्वा तु यत्पुण्यं प्रवक्ष्यामि द्विजातयः ॥ १३ ॥

स्नात्वाश्चर्यं स्पृशेद्यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

अघ्रातो यः स्पृशेन्मर्त्यो लभते स्नानजं फलम् ॥ १४ ॥

उन्मज्जति च यत्काले प्रस्तरः सन्तरत्यपि ॥ ३३ ॥

क्षयं यास्यति नो विस्रं नोचेन्मे धर्मतो हि सा ।

बाढमुक्त्वा युतं तस्य गृहीत्वा स्वगृहं गतः ॥ ३४ ॥

साक्षिणामग्रतस्तेन प्रस्तरः पातितस्तथा । पुष्करिण्यां महत्यां च द्रष्टुं नरसुगणैः  
सतो धर्मतुलायां तु तुलितं धर्मसाक्षिणाः । दीनारायुतदानस्य पुष्करिण्याञ्जलस्य

न समं तु दिनेकं तु जलस्य धर्मतो भृशम् ।

धनिनो मानसं दुःखं मोघार्थं च परेऽहनि ॥ ३५ ॥

शिलोच्चयोऽभयस्त्रीर्णो द्वीपयश्च जलोपरि । ततः कोलाहलः शब्दो जनानां समुपसि  
तच्छ्रुत्वाद्भुतघोषं च मुदा तौ वागतौ ततः । दृष्ट्वा शैलं तथा भूतं कृतं तेनायुतं  
ततः खाताधिपेनैव शैलं दूरे निपातितम् ।

पुण्यं खातस्य चोत्खाते प्रलुप्तस्य सुतेन हि ॥ ४० ॥

सोऽपि नार्कं समारुह्य जग्मजग्मसुनिर्मुक्तः । गोत्रमातृगणानां च नृपाणां सुदरां  
सखीनांचोपकर्तृणां खातं खात्वाऽक्षयफलम् । तपस्विनामनाथानां ब्राह्मणानां पिशो  
खातं तु जनयित्वा तु स्वर्गं वाक्षयमश्नुते ।

तस्मात्खातादिकं विप्राः शक्तितो यः करिष्यति ॥ ४३ ॥

सर्वपापक्षयात्पुण्यं मोक्षं यायान्न संशयः । य इदं श्रावयेत्लोके धर्माख्यानं महोत्क  
सर्वखातप्रदानस्य फलमश्नाति धार्मिकः । ग्रहणे भास्करस्यैव भागारण्यां तद्वे  
गयां कीटिप्रदानस्य फलं भुत्वा लभेन्नरः । न च दक्षितामेति न शोकं व्याधितश्च यः

असंमानं महद्दुःखमुपयोर्नाधिगच्छति ॥ ४५ ॥

इति श्री पद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिसण्डे खातादिकीर्तनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

नाकमेति स चूतस्य समारोप्य सहस्रकम् । ततो द्वित्रिगुणेनैव न्यूने वा प्रचूटेऽपि वा  
भुङ्क्ते भुक्त्वा पुनः कुर्यान्नृपोऽथ सदीश्वरः ।

स्वर्गं भोग्यं ततो राज्यं कल्याणं मङ्गलं शुभम् ॥ ३३ ॥

आरोग्यं शौर्यं सम्पन्नमारामादेध जायते । फलानि यस्य खादन्ति जन्तवोऽथ सहस्रशः  
आश्रिताविहगाः कीटाः पतंगाः शलमादयः । छायाश्रिताश्च ये सत्त्वास्तत्संख्याताः पृथग्जना  
तस्य किङ्करतां यान्ति शतशो देवताचिताः ।

ये च वृक्षा महासत्त्वास्सर्वे ते देवरूपिणः ॥ ३६ ॥

तर्षां पितृवत्कार्यां शुभ्र्या जलपिण्डयत् । मर्त्यलोके च ते पुत्रास्तस्य जग्मनि जग्मनि  
सुरुपाः सुधिनीताश्च सदा पुण्यक्रियाः शुभाः ।

एवं गणेशतां याति जन्तवश्चूतलम्काः ॥ ३८ ॥

प्राप्ती हरीतकी खान्ये कटुतिक्ताम्लसम्भवाः । सर्वे चारामताः शुद्धाः फलदाः शिषदाः सदा  
रासाश्च यत्र सौवर्णाः सर्वरत्नविभूषिताः । सर्वाभरणसंपुक्ता विमानाश्चानिलोपमाः

शातकुम्भमया वृक्षाः सदैव सर्वदायिनः ।

सर्वतुलुखदाः सौम्या काम्यका अप्सरस्समाः ॥ ४१ ॥

गितनृत्यपराधीरास्तत्र तिष्ठन्ति वृक्षदाः । पुष्करिण्यो विशेषेण तातान्यन्यानि यानि च  
पुष्पोपलान्तरचिता नद्यः पायसकर्द्दमाः । पुनर्दुग्धसफेनाश्च भग्रादिषड्रसादिभिराः ॥

मर्त्यलोके यथामोग्यं पुनः स्वर्गे पुनर्भुवि ।

पुनरेव तद्भ्यासात्तात्प्रमामकं पुनः ॥ ४४ ॥

यथा पुण्यादिकं हत्वा स्वर्गमर्त्याधिपः पुमान् ।

भराकस्तु प्रप्रां हत्वा पुष्करिण्याः फलं लभेत् ॥ ४५ ॥

पायालक्षणं चात्र सर्वपापहरं परम् । सर्वभोगप्रदं शुद्धं स्वर्गापपार्गदं रिगरम् ॥

क्षणं च प्रयक्ष्यामि प्रपायाः कीर्तिवर्धनम् । निर्जलेऽप्यनि वृक्षे वस्थाने हृत्पायमण्डपम् ।

दुपान्धे समायाते प्रोप्सवर्गशरत्स्यपि । भगवत्कादिसौगन्ध्यं जलं पूर्णं स

रासनं चैव सागुलं . . . . . । एवं वरं नरे





न्तारे गोशिः स्थाप्य कान्था स्तेयं यतो ह्यसौ ।

गोपहरणं कृत्वा गृहस्थस्य च ते न हि ॥ ८ ॥

तत्र जनागच्छति परमनि । सर्वपापेकवादस्य सुखंभवति निश्चितम् ॥

गोशिरं गोशिः परम् । चान्द्रायणं च तत्तस्य कान्तारे संस्थितं शिरः

धोरस्य निधने चित्रगुप्तप्रणीतके ॥ ११ ॥

चित्रगुप्त उवाच ।

अं तु पठस्य च न विधेने । देवं पैतृकं कार्यं तीर्थस्नानं द्विजार्चनम् ॥

नं गुरुज्ञे मानं ज्ञानं परहितं शुभम् ।

नसा न कृतं तेन किंया च कथं पुनः ॥ १३ ॥

नं स्तेयं परदारानिमिश्रणम् । भूमिधरापथाई च साधुनिन्दापरं तथा ॥

थं शतसहस्रं तु तथा गोहरणं कृतम् ॥ १४ ॥

व्यास उवाच ।

ब्राह्म धर्मराजस्तु कालानलसमप्रभः ॥ १५ ॥

धर्मराज उवाच ।

पतनं पतनं शूरा दुर्गतिं चापुनर्भयम् ॥ १६ ॥

व्यास उवाच ।

तस्मिन्नन्तरेऽवोचचित्रगुप्तोऽनुकम्पकः ॥ १७ ॥

चित्रगुप्त उवाच ।

शिरः पुण्यं किंविनाथ क्षमापुना । भव्यपुनर्भयो नास्तिशर्मचात्रलवनहि

धन्तयित्वाच्यतां देव तत्पापस्य क्षमाय धी ॥ १८ ॥

व्यास उवाच ।

पिक्वयं लभेऽपुण्योऽयं श्रुती । तथाह धर्मराजस्तं

राज्यं च मुह्येष द्वादशवत्सरम् । यद्वृत्तं

सद्वृत्ता चापुनर्भयम् । ततः कृतज्ञस्तिरेवमुवाच

चोर उवाच ।

धर्मराजानुकम्पां च मध्येवं पापकारिणि । कुहनाथ त्वमाद्ये च जानामि प्रीतिपूर्वम् ।

व्यास उवाच ।

धर्मराजस्तु तं चाह वादमेवमितो वज्र । स्मरिष्यसिस्ववृत्तान्तं मत्प्रसादात्सुखिनि ।

एतस्मिन्नन्तरे चैव मोक्षितः शिङ्घरेण हि । तस्यजन्मामयत्की च दुर्विधे चातिमणि ।

मातृगमविधिं दुःखं भुक्तं पूर्वं विकर्मतः । भुक्तवाचलेशमहान्तं च एकविंशतिवारम् ।

तस्मिन्नाध्वे मृतो भूतः स्वकर्मपत्तिषिद्धितः ।

एतस्मिन्नन्तरेऽमारयैः समालोक्य सुमन्त्रिभिः ॥ २७ ॥

अनेकपरिमर्शस्तु पृथिव्यां भ्रमणं कृतम् । समावृण्वंश्च ते सद्यः सर्वेषां पुणो ह्यम् ।

ततो राज्याभिषेकश्च कृतस्तैस्तु विमरसैः ।

स च राज्यं च संश्रित्य धर्मराजधरेण च ॥ २८ ॥

भक्तरोदालिकं कर्म शिलायुद्धं च मृण्मयम् । सङ्कर्मं जलदुर्गं च तरणिं च तपनी ।

पार्ष्णीकृपतटाकानि प्रपाराममदीदृहम् । कृतवान्विविधं यज्ञं दानपुण्यमतः परम् ॥ २९ ॥

स्मरंश्च पूर्वकर्माणि सर्वपापक्षयाय धे ।

कृतं बहुविधं धर्मं जनानि विविधानि च ॥ ३० ॥

सुराणां ब्राह्मणानां च शुद्धां चैव तर्जनाम् । पापारूपानो ययौ गेहं धर्मराजस्य धनम् ।

स यान्त्वं ततो दृष्ट्वा श्रीधरलोक्षणोऽभवत् ।

स च तं प्रात्रलिः प्राह श्रीधरं बृहत्तारणम् ॥ ३१ ॥

विश्वगुप्तोऽग्रवीक्षाकृत्य धर्मगतसमापनः ॥ ३२ ॥

विश्वगुप्त उवाच ।

कर्मणा मनसा पूजो विष्णुमोक्षं स गच्छतु ॥ ३३ ॥

व्यास उवाच ।

स तच्छ्रुत्वा पुनश्चाह तस्य विज्ञाय कारणम् ।

विमनः प्रीत्या प्रसन्नोऽप्या गच्छ गच्छाच्छुण्डलयम् ॥ ३४ ॥

विमानं सुरलोकाच्च स्वामतं वर्णकर्तुम् ।

समाह्वय गतः स्वर्गं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ३८ ॥

त्विङ्कप्रमाणं हि दत्तयेनालिकपुरा । स तु राज्यान्वयंस्वर्गं महान्तं वानुगच्छति  
गोप्रचारं तु दत्त्वा स्वर्गान्न हीयते । यागतिर्गाप्रदस्यैव ध्रुवं तस्य भविष्यति ॥  
कं गोप्रचारं तु मुक्तं येन सुधीमता । तस्य स्वर्गं भवेदिष्टं किमन्यैः पुरुभाषितैः ॥

गोप्रचारं यथाशक्ति यो वै त्वजति हेतुना ।

दिने दिने प्रहस्योऽयं पुण्यं तस्य शताधिकम् ॥ ४२ ॥

होवाप्रचारं तु मुक्त्वा स्वर्गान्नहीयते । यश्छिनत्ति ध्रुवं पुण्यं गोप्रचारं छिनत्स्य वि  
तस्यैकविंशपुराः पश्यन्ते रौरवेषु च ।

गोवाधनं प्राप्तमोघः शक्तो ज्ञात्वा तु दण्डयेत् ॥ ४४ ॥

धर्मदृष्टाणां विशेषाद्गोप्रचार्यम् । तस्य दण्डस्तु तस्य तस्मात्तं दण्डयेत्तुसः  
प्रासादं कुरुते यस्तु विष्णुलिङ्गस्य मानवः ।

त्रिकाण्डं पञ्चकाण्डं च सुशोभं सुघटाश्रितम् ॥ ४६ ॥

भेकं तु योऽयाम्भृण्मयं वा हृण्मयम् । वसुवृत्तिसुपूर्णं ॥ सुरम्यं दिव्यभूतलम् ॥  
कर्मसम्पन्नं किङ्करादिमिवावृत्तम् । सुलिङ्गमिष्टदेवस्य विष्णोरेव विशेषतः ॥  
च विष्णुसायुज्यं समाप्नोति नरोत्तमः । तथैव प्रतिमां कृत्वा हरेरग्यतरस्य च ॥  
द्वैतद्वलं रम्यं 'याफलं' लभते नरः । न तन्मलसहस्रेस्तु दानैर्भुवि प्रतादिभिः ॥  
तेदिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । प्रासादे रत्नसंपुक्ते संपूर्णद्रव्यसङ्कुले ॥  
एकामगे यानि सर्वलोकमनोहरैः । स्वर्गाब्धयुतो भवेद्राजा सार्वभौमो गुणैर्यशी

शिखलिङ्गे ॥ प्रासादं कारन्वा स्वशक्तिः ।

यदुक्तं विष्णुलिङ्गे ॥ तज्ज्ञेयं शिखरेश्वरि ॥ ५३ ॥

भोगं महाभागा मनः शरैर्करं परम् । रामामिरामसम्पूर्णं स  
हस्रमोद्यानि नूरो पात्र महाधनी । हरस्य प्रतिमां यथा कृ-

सुलिङ्गां वा ॥

स्वर्गादुन्नष्टो भवेद्राजा धनी पूज्यतमोऽपि वा ॥ ५६ ॥

देवीं लिङ्गेषु सर्वेषु कृत्वा देवगृहं नरः । सुखं प्राप्नुयाद्भोके देव्यास्त्वर्गसु  
भृशमच्युततामेति सुखमेति निराश्रयः । स्तनसंसृष्टप्रासादे मणिकयुतमूले ।  
रामायुतप्रसन्नमोक्षे देवीसंसृष्टनिर्मये । नृत्यगीतपरे रम्ये सर्वेन्द्रियप्रनोमे ।  
रत्नमण्डलतालान्वये सर्वदा स्त्रीजनेस्ति । निर्मले सुखदे रम्ये रत्नानां सुगुणे गुरे ।

तथैव प्रतिमायाश्च देव्याः प्राप्तादमुत्तमम् ।

नियुक्तं कक्षकोटोनां स्थल्लोकमेति मानयः ॥ ६१ ॥

स्यर्गाद्भ्रष्टो भवेद्भूयो देवोमक्तिपरायणः । एवं च जग्मसाहस्रं स्मर एव मने  
प्रासादं गाणपत्यं च देव्या च। प्रातिमाग्नरः ।

हृत्पा सुरगणानो च पूजितां दिपि आवते ॥ ६३ ॥

तथैव राजतामेति भोग्यादेयीषुदे तथा । भविष्यं सर्वकार्येषु तदेव तज्जपो यः  
 भावा न स्पलित्वा तस्य सुखासुखनरेषु यः । तथैव सौराष्ट्रासादे कलमेति त्रोलसमा  
 भरागी सुप्रसन्नारामा कामदैवसमप्रमः । यत्तुः सर्वलोकेषु यथा तज्जगता हि

सुस्य प्रतिमायाः च गृहं कृत्वा रि लाभयम् ।

कश्यपादिनां मुहूर्त्तः स्वर्गमुपैत्यसौ मयेन ॥ ६७ ॥

विष्णुवादि सर्वशेषानामर्थनं यन्मृगशृङ्गम् ।

प्रत्येकं साधयिष्यामि जगतां हि देवदेव ॥ १८ ॥

सुप्रदीपं यो दद्यात्मासमेकमद्विजम् । दिव्यं वायुं न स्वर्गं भूतिं देवसमम् ।  
 सुप्रदानं तथा त्रिष्टुभः कुर्याद्भुविमानवः । अथकोटिसदृशानि मायिकं कर्म क  
 त्तिहरेः प्रदीपस्य तथाप्यस्याहं कथम् । मायिकं उद्वहस्य परमेश्वरम् ।

पुनरावेक न्यायस्य सारम् (द्विगुण) २ पृष्ठ ।

ਸ੍ਰੀਮਦ੍ਰਾਮਾਨੁਜਾਚਾਰਯ ਦਾਸੇ ਕਵੀਪਦਮੰ ਮਹਿੰਸਾ ੩ ੩੨ ॥

महाराष्ट्र राज्य सरकार : महाराष्ट्र - १. मांसे प्रत्यक्ष दवाया मार्गद्वारा मारण्यात येईल  
अथवा कदाचित् ।

दद्यात् न मेव स्तीर्णेन शक्त्या धत्तं दद्यात् यः ॥ ७३ ॥

तुरंस्तप्रमाणं च धर्म्येषु सुतोमनम् । विधानं धरणां च दद्यात् स्वर्गान्न हीयते  
शक्त्या स्वर्गप्रदानेन स्वर्गं पूज्यो मयेन्नरः ।

दद्यात्तनविस्तीर्णं मण्डपे कामागमे ॥ ७४ ॥

सुवर्णं तामसं युक्तं दद्यात् दशगुणं लभेत् । यज्ञवेद्यैर्नृणां दत्तमाणि क्वादीनर्था  
दद्यात् लिङ्गे विधानाच्च ब्राह्मणे वा यशस्विनि ।

शानयोऽनविस्तीर्णं मण्डपेऽधिपतिर्मयेत् ॥ ७५ ॥

यैव भुवि जातोऽपि सत्यं लोकप्रभनः । तुरमिद्रुददानेन धायदृक्कथं सुन्दरः ॥ ७६ ॥  
काम्यनमुकण्ठश्च पूज्यमानो भवेत् । दद्यात्तसीप्रदानेन नरः कल्पं वसेदिति ॥ ७७ ॥

दद्यात्तसीप्रदानेन उर्ध्वां जातो धनेश्वरः । तथैव भृत्यदानेन बहुभुज्यो मयेद्विधिः ।  
तायामस्तथा कृद्धिर्जगत्प्रमत्तु जायते । सत्यं पूज्यप्रदानेन गुणघातोकसम्मतः ॥ ७८ ॥

नृपगीतादिशास्त्रेण गन्धर्वाणां पतिर्मयेत् ।

दासीदासयुतः स्वर्गं धनेः स्त्रीमिदं र्युतः ॥ ७९ ॥

यैव गोप्रदानेन तापकालं वसेदिति । लिङ्गे दुग्धप्रदानाच्च नरः कल्पं वसेदिति ॥  
जा स्वानेन द्विगुणं धूनेन ॥ शानाधिकम् । अन्नं यद्वसत्युक्तं दद्यात् क्षितिपतिर्मयेत्

यैव पायसं दद्यात् मुनीनां प्रपरो भुवि । हविष्वान्नं मुदा दद्यात् वेदशास्त्रार्थपारगः ॥  
तमिप्रदानाच्च ब्रह्मचारी प्रती मयेत् । मधुदानाच्च सौभाग्यं मुनेन लब्धेन च ॥

कंठादिमिर्लापणं सत्यलोकेषु गीयते । देवानां शम्भुलिङ्गानामर्चां कृत्वा विधानतः ॥  
अनुक्रमेण स्वर्गादीं लोकानां स पतिर्मयेत् ।

लोकानां ॥ हितार्थाय देवास्तिष्ठन्ति सम्मुखाः ॥ ८० ॥

हृत्प्रदक्षिणं कृत्वा शम्भुलिङ्गेषु पण्डितः । दिव्यं धर्मशतं पूर्णं स्वर्गमेति नरोत्तमः ॥  
यमेव क्रमेणैव नमस्कारैः स्वयम्भुवः । लोकधन्यो यजेत्स्वर्गं तस्मान्नित्यं समाचरेत्

नृरूपस्य देवस्य यो धनं हस्ते नरः । स च रौरवमासाय हरेणात्कीटस्तं यजेत्  
. दातुः पूतां च लिङ्गार्थं हरेः शानाधिकम् ॥

कुलफोटिसहस्रेण नरकान्न निवर्तते ॥ ६३ ॥

जलपुष्पादिदीपार्थं घसु चान्यदुगृहीतवान् । पञ्चान्न दीयते लोभादक्षयं नरकं व्रजेत् ॥

दासीं हत्वा तु लिङ्गस्य नरकान्न निवर्तते ।

कामार्तो मातरं गच्छेन्न गच्छेच्छिष्यचेष्टिकाम् ॥ ६५ ॥

शिवदासीं ततो गत्वा शिवस्वहरणे तथा । भक्षणादन्नपानानां नरो दुर्गतिमाप्नुय  
अतो देवलविप्रो यो नरकान्न निवर्तते । तस्माद्वेश्याजनानां च दीप्यमेव हितं भवेत्  
अतस्तु गणिकांस्पृष्ट्वा नरः स्नानाद्विशुध्यति । मलिनां दुर्गतिं याति बहुपूज्यसंभ्रम  
वेश्या तपस्विनी या च देवार्चनरता सदा । पतिव्रतपरा शुद्धा स्वर्गं चाक्षयमश्नुते  
गणिकां मातृव्यस्तु सदासन्नां प्रपश्यति । देववत्सुरलोकेषु निखिलं भोगमश्नुते  
सुरासुरनराणां च चन्दनीयोयथाहरिः । तथार्होऽयं सर्वलोके सर्वभूतैकपायनः ॥ १०१ ॥  
देवदासः सदायस्तु देवहृत्येषु लोलुपः । स च गच्छति लोकेशो देवलोके महीपते

पतेपामेव लिङ्गानि कारयित्वा च मण्डपम् ।

शक्त्याऽयं लभते नाकं कालस्य निश्चयं शृणु ॥ १०३ ॥

हापनैकं तुणेतेषु शरकाण्डेन तच्छतम् । अयुतं त्वय्यकाण्डेन लक्षं खादिखावणा  
कोटिकोटि च पापाणोः सुदृढैर्यत्नसंयुतैः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मण्डपं कारयेद्व पुनः ।  
यावत्फाले घसेत्स्वर्गं नरोमण्डपकारकः । तावत्कालं ॥ हरणे नरो दुर्गतिमाप्नुय ॥

जनातां निचये रम्ये घस्तूनां क्रयविक्रये ।

आश्रये चाध्यगानां च नदीनदसमागमे ॥ १०७ ॥

देवानां मण्डपं कृत्वा यत्फलं लभते नरः । तत्फलं समपाप्नोति द्विगुणं विप्रमन्दिरैः  
अनाथस्य च दीनस्य श्रोत्रियस्य विशेषतः । कारयित्वा गृहं रम्यं नरः स्वर्गान्न दीपये  
य इदं शृणुयान्नित्यं पुण्याभ्यानमनुसमम् । भक्षयं लभते स्वर्गं प्राप्तादादेः पल्लभमेव

धनिनां चैश्वराणां च तथा पुण्यपतां पुनः ।

पाठयित्वा ॥ १११ ॥ दीपयेत् ॥ १११ ॥

देवानां ॥ १११ ॥ पठेद्यस्तु सदाविप्रो मोक्षमार्गं स गच्छति ॥

नृपाणामीदधराणां च धनिनां गुणिनां पुरः ।

पठित्वा मोक्षमाप्नोति श्रवणात्तत्फलं लभेत् ॥ १०३ ॥

द्विजा ऊचुः ।

सामान्येकः परः पुण्यो मर्त्यलोके द्विजोत्तम ।

सुलभो मर्त्यपूज्यस्तु मुनीनां च तपस्विनाम् ॥ १०४ ॥

षातुर्वर्ण्यश्रमाणां च पापपुण्यवतां नृणाम् । गुणगुणवतां चैव वर्णावर्णवतां तत्  
ख्यास उवाच ।

सर्वेषामेवभूतानां द्वादशेण युतो घरः । दर्शनाद्यस्य लोकानां पापराशिः प्रलीयते ।  
स्पर्शनाद्विषमश्नाति धारणाद्भुक्तां मजेत् । शिरस्युरलि बाहौ च द्वादशं धारयेत्तु यः  
स वैरागसमो लोके मखे सर्वत्र गोचरः । यत्र तिष्ठत्य सौ विप्रसुरेशः पुण्यवान्मपेत्  
तं दृष्ट्वाप्यथवा स्पृष्ट्वा नरः पूयेत कल्मषात् ।

यज्जप्यं तर्पणं दानं स्नानमर्चां प्रदक्षिणम् ॥ १०६ ॥

एतच्छ्रित्कुर्वन् पुण्यं निश्चितं तद्गन्तव्यम् । तोर्वाणां च महत्तोषं द्वादशस्वफलं द्विजाः  
मस्यैव धारणाद्देही पापात्पूतोऽतिपुण्यभाक् ।

गृहीत्वा चाक्षमालां च प्रह्वप्रन्धियुतां शिवाम् ॥ १०९ ॥

यज्जतं च हतं दानं स्तोत्रं मन्त्रं सुरार्चनम् । सर्वं चाक्षयतामेति पार्श्वे च क्षपमाप्नोति  
मालायां लक्षणं भूमः धूपतां द्विजसत्तमाः । तस्यास्तु रुक्षणे शात्वा शिवमार्गं प्रलप्स्यथ  
नेर्षो निवीटविद्धं च मन्त्रलिङ्गं यथाक्रमम् । अग्न्योर्ग्यं बीजलक्षणं च मालायां पत्तिर्जयेत्  
स्वयं च प्रथिता वा च श्लथान्योन्यप्रसजिता ।

शुद्धादिप्रथिताऽशुद्धा दूरात्तां पविर्जयेत् ॥ ११५ ॥

अथमालप्रकं बीजं जप्तव्यं च यथाक्रमम् । हस्तसम्प्रमणेनैव मेवांमर्शं पुनः पुनः ॥

मद्व्यातं यज्जपेन्मन्त्रमसङ्ख्यानं च निष्कलम् ।

सर्पैर्यामेध देवानां जपेन्मन्त्रं स्वमालया ॥ १२३ ॥

यतः सकले तीर्थे कोटिकोटिगुणं भवेत् । शुद्धायामेव भूम्यां तु



गोष्ठे चतुष्पथागारे विष्णोर्मन्त्रं शिषस्य च । गणपनेश्चसूरस्य लिङ्गेऽनन्तान्तमनो  
शून्यागारे शवस्याग्रे श्मशने च चतुष्पथे ।

देवीमन्त्रं जपेद्यस्तु सद्यस्सिद्धयनि साधकः ॥ १३० ॥

यापयावेदिकं मन्त्रं पौराणं चाममोद्वधम् । सर्वं रुद्राक्षमालायामीदितार्थप्राप्तम्  
रुद्राक्षम्रजं शुद्धं जलं शिरसि धारयेत् । सर्वस्मात्कल्मषात्पूतः पुण्यं भवति वासाय  
रुद्राक्षस्य च प्रयेकं याजं प्रत्येकनिर्जगम् ।

धारयेद्यस्तनो मर्त्यः सुराणां सत्तमो भवेत् ॥ १३१ ॥

द्विजा ऊचुः ।

रुद्राक्षस्तु कुतो जातः कुतो धामेभ्यतां गतः ।

किमर्थं स्थापरो भूमौ केनैव च प्रचारितः ॥ १३४ ॥

ध्यात उवाच ।

पुरा हनयुगे विमास्त्रिपुते नाम दानवः । सुराणां च सर्वं कृत्वा मातृक्षिपुते हि  
प्रजाशे सर्वलोकानां स्थितो महत्परेण च । शुभाय शङ्करा मोमं देवीतीतो निषेदित  
उतोऽजगदमासाय बाणमन्तकसन्निभम् । धृत्वा तं च जघानाद्य दृष्टं दिव्येन रुद्रम् ।  
स पपात महीपृष्ठे मदीयैव व्युत्थो दिवः । घटनङ्गाकुल्यादुद्रात्पतिताः ह्येह विनय ।  
तत्राभ्रपिपुनो जातो महारुद्राक्षकः क्षिप्तो ।

अस्यैव च पालं जीवा न जगत्पतिगुह्यतः ॥ १३६ ॥

कः कौलाशक्तिरे देवदेवं मदीयम् । मलय शिरसा भूमौ रुद्राक्षो वचनमब्रवीत् ।  
स्वाग्द उवाच ।

रुद्राक्षस्यजलं मय बाधुमिच्छतामिच्छयः । जप्येऽस्यधारणे श्रीव दशाने स्थापिते हि  
होतार उवाच ।

तप्तं तु दशानागुणं कौटिल्यं दशानेन च । दशकोटिरज्यं पुण्यं धारयन्नामने वा ।  
हस्तकोटिमर्यादामि दशकोटिनामि च ।

वचनं नाम धार्या विचारणा ॥ १४३ ॥

अच्छिष्टो वा विकर्मरूपो युक्तो वा सर्वपातकैः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो द्वाक्षधारणेन वै  
कण्ठे द्वाक्षमादाय श्वापदो म्रियते यदि । सोऽपि रुद्रत्वमाप्नोति किं पुनर्मानुषादयः  
ध्यानधारणहीनोऽपि द्वाक्षं यदि धारयेत् ।

सर्वपापघनिर्मुक्तः स याति परमं गतिम् ॥ १४६ ॥

कार्तिकेय उवाच ।

एकवक्त्रं द्वित्रिचतुःपञ्चदशवक्त्रमेव च । सप्ताष्टनववक्त्रं च दशैकादशवक्त्रकम् ॥

द्वादशैकादशास्यं च त्रयोदशमुखं तथा । चतुर्दशास्यसंयुक्तं स्वयमुक्तं च शङ्करम् ॥

तेषां च तन्मुखाणां च देवताः काक्ष्यं तद्वत् ।

गुणो वा कीदृशस्तेषां दोषो वा जगदीश्वर ॥ १४७ ॥

यदि मेऽनुग्रहो वास्ति कथयस्व यथार्थतः ॥ १५० ॥

ईश्वर उवाच ।

एकवक्त्रः शिवः साक्षादुग्रहृत्पादो व्यदोहति । तस्मात्तु धारयेद्देहे सर्वपापक्षयाय च

षट्कोक्तं स गच्छेद्य शिवेन सह मोक्षने । महता पुण्योमेन हरानुग्रहकारणात् ॥

एकवक्त्रं लभेत्मर्त्यः कैलासं च पदानन । देवदेवो द्विवक्त्रं च यस्तु धारयति नरः ॥

सर्वपापं क्षयं याति यद्गुह्यं गोपभादिकम् ।

स्वर्गं चाक्षयमाप्नोति द्विवक्त्रधारणात्ततः ॥ १५४ ॥

एकवक्त्रमनलः साक्षाद्यस्य देहे प्रतिष्ठति । तस्य अग्न्याजितं पार्यं दहत्यग्निरिवैगधनम् ॥

लीहत्याग्रहृत्पादभ्यां यदूर्णां चैव इत्यथा ।

यत्पापं लभते मर्त्यः सर्वं नश्यति तत्क्षणात् ॥ १५६ ॥

तलं बहिष्पूजायामग्निकार्यं घृताग्नौ । तत्फलं लभते धीरः स्वर्गं चानन्तमश्नुते ॥

त्रिवक्त्रं धारयेद्यस्तु स च प्रलसामो भुवि ।

निचितं दुष्टतं सर्वं दहेज्जन्मनि जन्मनि ॥ १५८ ॥

देवे भवेद्भोगो न चैवापदुर्तांश्चजेत् । पराजयं न लभते नाग्निना ---

एतान्यन्यानि सर्वाणि निवारणम् ।



प्रस्येध धारणादेय यत्पुण्यं तच्छृणुष्व मे । जन्मजन्मनमूर्धं स्यान्नातुरो न च नष्टधी  
मपिन्नं सर्वकार्येषु तस्यैध सततं भवेत् । नैपुण्यं लिपिकार्येषु महाकार्येषु कौशलम् ॥

सर्पारम्भादिकार्येषु क्षमं तस्य दिने दिने ।

अर्घकूटं तुलाकूटं सर्वकूटं तथैव च ॥ १८२ ॥

शिरोदरकरेणैव संस्पृशेद्वा गुरुस्त्रियम् । एषमार्दानि सर्वाणि हन्ति पापानि सर्वथा

अक्षयं त्रिदिवं भुक्त्वा मुक्तो याति परां गतिम् ।

शुणान्येतानि सर्वाणि भण्डवक्त्रस्य धारणात् ॥ १८४ ॥

नवास्यं मैरथं प्रोक्तं धारयेद्यस्तु बाहुन । कपिलं मुक्तिर्दं धृत्वा मम तुल्ययत्नां भवेत्

यक्षकोटिसहस्राणि ब्रह्महत्या करोति य । ताः सर्वा दहने शीघ्रं नववक्त्रस्य धारणात्

गुरुर्लोके सदा देवैः पूजितो मयया यथा । हरवह्नयेऽश्मस्थां गणेशो नात्र संशयः ॥

पन्नगाश्च पित्रदयन्ति दशवक्त्रस्य धारणात् ।

यक्त्रे चैकादशे धत्स रुद्राश्चैकादश स्मृताः ॥ १८८ ॥

शेषायां धारयेन्निरयं तस्य पुण्यफलं ऽष्टणु । अश्वमेधसहस्राणि यक्षकोटिशतानि च

गर्वां शतसहस्रस्य सम्पदस्तस्य यत्फलम् ।

तत्फलं शीघ्रमाप्नोति वक्त्रैकादशधारणात् ॥ १९० ॥

तस्य सहस्रो लोके पुनर्जन्म न विद्यते । रुद्राक्षं द्वादशाक्षं यः कण्ठदेशे तु धारयेत् ॥

वित्यस्तुष्यते तित्थं द्वादशाक्षे व्यवस्थितः । गोमेधं नरमेधं च कृन्वायफलमश्नुते

फलं शीघ्रमाप्नोति वज्रदिक्ष निवारणम् । नैव बह्वैर्मयं खैव न च व्याधि प्रवर्तते ॥

अर्पणं सुखं भुङ्क्ते ईश्वरो न इन्द्रिता । हस्त्यश्वनरमाजार्जमुपकाऽऽशकास्तथा ॥

व्यालदंष्ट्रिपृगालादीन्हत्वा व्याघातयत्वपि ।

मुच्यते नात्र सन्देहो वक्त्रद्वादशधारणात् ॥ १९५ ॥

त्रयोदशो रुद्रो रुद्राक्षः प्राप्यते यदि । शन्तमः स तु विनैयः सर्वकामफलप्रदः ॥

धारसायनं चैव धातुपादश्च पादुका । सिध्यन्ति तस्य वै सर्वे भाग्ययुक्तस्य वण्मुख

वृषित्वस्यसृष्टात्पुरुषाथ निहत्य च । मुच्यते सर्वपापेभ्यस्त्रयोदशास्यधारणात् ॥

अक्षयं लभते स्वर्गं यथा देवो महेश्वरः । चतुर्दशमुखं घत्स रुद्राक्षं यदि धारयेत्  
सततं मूर्ध्नि बाहौ वा शक्तिपिण्डं शिवस्य च । किं पुनर्वहुनोक्तेन वर्णितेन पु  
पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते पुण्यगौरवात् ॥ २०० ॥

कार्तिकेय उवाच ।

भगवच्छ्रोतुमिच्छामि यक्त्रे यक्त्रेयथाविधि । न्यसनंकेन मन्त्रेण धारणं वा ।  
ईश्वर उवाच ।

शृणु पण्मुख तत्त्वेन यक्त्रे यक्त्रे यथाविधि ।

अमन्त्रोच्चारणादेव गुणा ह्येने प्रकीर्तिताः ॥ २०२ ॥

यः पुनर्मन्त्रसंयुक्तं धारयेद्भुवि मानवः । गुणास्तस्य महत्त्वं च कथितं नैव श

रदानीं मन्त्रा आदिश्यन्ते । ॐ रुद्र एकयक्त्रस्य । ॐ हं द्वियक्त्रस्य ।

ॐ धुं त्रियक्त्रस्य । ॐ ह्रीं चतुर्यक्त्रस्य । ॐ हां पञ्चयक्त्रस्य ।

ॐ हूं षड्यक्त्रस्य । ॐ हः सप्तयक्त्रस्य । ॐ कं अष्टयक्त्रस्य ।

ॐ जूं नवयक्त्रस्य । ॐ क्षं दशयक्त्रस्य । ॐ धीं एकादशयक्त्रस्य ।

ॐ ह्रीं द्वादशयक्त्रस्य । ॐ क्षीं त्रयोदशयक्त्रस्य । ॐ व्रीं चतुर्दश

यक्त्रं मन्त्रा यथाक्रमं न्यस्तव्याः । शिख्युरसि मालां च गृहीत्वा यो मन्त्रेणतः

पदेपदेऽयमेधस्य फलमाप्नोति नाम्यथा ॥ २०४ ॥

सर्वेषामपि यक्त्राणां धारणे महत्तमो भवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रुद्राक्षं पुत्र

धारयित्वा तु रुद्राक्षं त्रिषते यः क्षितीनरः । सयाति मत्पुरं रस्यं सर्वदेवैः प्रदू

मददेशे पुनः घत्सवाणिभ्याम किलस्थले । गच्छन्वजिकसुतस्तात ततो मेताप्रसीदति

मतीनर्ति ततः मेता द्विजेन परमेशि च ॥ २०८ ॥

द्विज उवाच ।

का त्वं नृत्यसि दीनासि संनृता जीर्णपाससा ॥ २०९ ॥

ईश्वर उवाच ।

धृगम् । मया चारुनरस्येव पश्यतेन साधनम् ।

द्विपष्टितमोऽध्यायः } \* धात्रीमाहात्म्यवर्णनम् \*

५८६

निश्चितं निधनं चित्रं मद्दर्शनां मधिष्यति । एतस्मिन्नन्तरे नाकाद्वज्रं तस्य शिरोपरि  
पतत्तस्य पपातोर्व्यां रुद्राक्षस्यार्धखण्डके । ततो मम पुरात्पुत्र विमानं चापतद्गुह्यम् ॥

समायत्य ततः धामांस्तत्र तिष्ठति सञ्चरम् ।

ममांशकं समासाद्य ईश्वरः कौ घनी भवेत् ॥ २१३ ॥

एवं रुद्राक्षखण्डे ॥ मृतस्य सुगतिः सुत । ज्ञानेन धारिणः पुंसः फलं वक्तुं न शक्नुमः ॥

स शैषो वा भवेच्छाक्तो गणपरयोऽयं सौरकः ।

यो वधाति मृतो मालामेकं रुद्राक्षकं तु वा ॥ २१५ ॥

यः पठेत्पाठयेद्वापि श्रावयेच्चक्षुणेऽपि वा । सर्वपापात्प्रमुक्तात्मा सुखं स्वर्गं लभेत्कृत्वा

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमेऽष्टादशोऽध्यायः ।

## द्विपष्टितमोऽध्यायः

### धात्रीमाहात्म्यवर्णनम् ।

स्कन्द उवाच ।

परस्यापि पृच्छामि फलस्य पूततां तरोः । सर्वलोकहितार्थाय यद् नो जगदीश्वर ॥

ईश्वर उवाच ।

प्रीतिफलं परं पूतं सर्वलोकेषु विधुतम् । यस्यरोपान्नरो नाती मुच्यते जगद्वन्द्यताम्

यन्वासुदेवस्य फलप्रीतिकरं शुभम् । अस्य भक्षणमात्रेण मुच्यते सर्वकर्मपात् ॥

क्षणे च भवेद्दयुः पाने च धर्मसञ्चयः । भक्ष्यमाणाशनं स्नाने सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात्

यस्मिन्नृदे महासेन धात्री तिष्ठति सर्वदा ।

तस्मिन्नृदे न गच्छन्ति देता देतेयराक्षसाः ॥ ५

न गङ्गा न गोदा चैव न काशी न च

एकेव हि नृणां धात्री सम्प्राप्ते

अक्षयं लभते स्वर्गं यथा देवो महेश्वरः । चतुर्दशमुखं धत्सु ह्यद्रासं यदि यः  
सततं मूर्ध्नि बाहौ वा शक्तिपिण्डं शिवस्य च । किं पुनर्वहुनोक्तेन धर्जितेन  
पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते पुण्यगौरवात् ॥ २०० ॥

कार्तिकेय उवाच ।

भगवच्छ्रोतुमिच्छामि धक्त्रे धक्त्रेयथाविधि । न्यसनंकेन मन्त्रेण धारणं ॥  
ईश्वर उवाच ।

शृणु धण्मुख तत्त्वेन धक्त्रे धक्त्रे यथाविधि ।

धमन्त्रोच्चारणादेव गुणा ह्येते प्रकीर्तिताः ॥ २०२ ॥

यः पुनर्मन्त्रसंयुक्तं धारयेद्बुद्धिमानयः । गुणास्तस्य महत्त्वं च कथितं तैव शक्तौ ।  
इदानीं मन्त्रा आदिष्यन्ते । ॐ रुद्र एकवक्त्रस्य । ॐ हं द्विवक्त्रस्य ।  
ॐ धुं त्रिवक्त्रस्य । ॐ ह्रीं चतुर्यक्त्रस्य । ॐ हा पञ्चवक्त्रस्य ।  
ॐ हूं षड्वक्त्रस्य । ॐ हः सप्तवक्त्रस्य । ॐ फं अष्टवक्त्रस्य ।  
ॐ जूं नववक्त्रस्य । ॐ क्षं दशवक्त्रस्य । ॐ धीं एकादशवक्त्रस्य ।  
ॐ ह्रीं द्वादशवक्त्रस्य । ॐ क्षीं त्रयोदशवक्त्रस्य । ॐ प्रां चतुर्दशवक्त्रस्य ।  
एवं मन्त्रा यथाकर्म न्यस्तव्याः । शिरस्युरसि मालां च गृहीत्या यो धरेत्ततः ।

पदैपदेऽवमेधस्य फलमाप्नोति नान्यथा ॥ २०४ ॥

सर्वेषामपि धक्त्राणां धारणे मत्समो भवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रुद्राक्षं पुनः पुनः  
धारयित्वा तु रुद्राक्षं त्रिषते यः क्षितौ नरः । स पाति मत्पुरं स्वयं सर्वदेवैः प्रसूतम् ।  
मरुदेशे पुनः धत्सु वाणिज्याय किलस्थले । गच्छन्वणिक्सुतस्तात ततो मेनामरीचि  
नरोनर्ति ततः प्रेता द्विजेन परमेक्षि च ॥ २०८ ॥

द्विज उवाच ।

का त्वं नृत्यसि दीनासि संवृता जीर्णवाससा ॥ २०९ ॥

ईश्वर उवाच ।

अथ सा च द्विजं प्राह देवदूतान्मया धृतम् । मया धारितरस्येव धक्त्रपातेन सम्पन्नम् ।

नेत्रितं निघनं विप्र मद्गर्त्ता तु मविष्यति । एतस्मिन्नन्तरे नाकाद्वज्रं तस्य शिरोपरि  
नपतत्स पपातोर्व्यां रुद्राक्षस्यार्धखण्डके । ततो मम पुरात्पुत्र विमानं चापतद्दुतम् ॥

समारुह्य ततः श्रामोस्तत्र तिष्ठति सञ्चिप्य ।

ममांशकं समासाद्य ईश्वरः कौ धनी भवेत् ॥ २१३ ॥

यं रुद्राक्षखण्डे च मृतस्य सुगतिः सुत । ज्ञानेन धारिणः पुंसः फलं वक्तुं न शक्नुमः ।

स शैवो वा भवेच्छाको गाणपत्योऽथ सौरकः ।

यो दधाति मृतो मालामेकं रुद्राक्षकं तु वा ॥ २१५ ॥

यः पठेत्पाठयेद्वापि ध्यायेच्चकृणुनेऽपि वा । सर्वपापात्प्रमुक्तात्मा सुखं स्वर्गं लभेत्कृत्वा

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमेष्टितमोऽध्यायः ।

## द्विपष्टितमोऽध्यायः

### धात्रीमाहात्म्यवर्णनम् ।

स्कन्द उवाच ।

मपरस्यापि पृच्छामि फलस्य पूततां तरोः । सर्वलोकहितार्थाय वद मो जगदीश्वर ॥

ईश्वर उवाच ।

धात्रीफलं परं पूतं सर्वलोकेषु विभ्रुतम् । यस्यरोपागमरो नारी मुच्यते जन्मपन्थनात्

पावनवासुदेवस्य फलप्रीतिकरं शुभम् । अस्य भक्षणमात्रेण मुच्यते सर्वकर्मणात् ॥

मक्षणे च भवेदायुः पाने च धर्मसञ्चयः । भलहमीनाशनं रत्नाने सर्वैश्वर्यमपानुयात्

यस्मिन्नगृहे महासेन धात्री तिष्ठति सर्वदा ।

तस्मिन्नगृहे न गच्छन्ति देवा दैत्यराक्षसाः ॥ ५ ॥

न गङ्गा न गया चैव न काशी न च पुष्करम् ।

एकैव हि नृणां धात्री सम्प्राप्ते हरिषासरे ॥ ६ ॥



एकादश्यां पक्षयुगे धात्रीस्नानं करोतिथः । सर्वपापं क्षयं याति विष्णुलोके मरीचं  
 धात्रीफलं सदा सेव्यं मक्षणे स्नान एव च । नियतंपारणे विष्णोः स्नानमाचरेत्  
 संयते पारणे चैव धात्र्येकस्पर्शने नरः । भुक्त्वा तु लङ्घयेद्यस्तु एकादश्यां सिर्षं  
 एकेनैवोपधासेन हृत्तेन तु पद्मानन । सप्तजन्ममृतात्पापान्मुच्यते मात्र संक्षयः ।  
 अक्षयं लभते स्वर्गं विष्णुसायुज्यमायजेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धात्रीमयं सम्यक्

धात्रीद्रवेण सततं यस्य केशाः सुरजिताः ।

न विदेत्स पुनर्मातुः स्तनं कश्चित्पद्मानन ॥ १२ ॥

धात्रीदर्शनसंस्पर्शान्नाम उच्चारणेऽपि वा । वरदः सन्मुखो विष्णुः सन्मुखो मरीचिक  
 धात्रीफलं च यत्रास्ते तत्र तिष्ठति केशवः । तत्र प्रज्ञास्थिरापन्ना तस्मात्तां तु शृणुमहे  
 अलक्ष्मीर्नश्यते तत्र यत्र धात्री प्रतिष्ठति । सन्तुष्टास्सर्वदेवाश्च न त्यजन्ति सां तु  
 धात्रीकलेन नैवेद्यं यो ददाति महाधनम् । तस्यानुष्टो भवेद्विष्णुर्नामैः कृतुर्नामैः  
 स्नात्वा धात्रीद्रवेणैव पूजयेद्यस्तु माधवम् । सोऽभीष्टफलमाप्नोति यदा भवति हस्ति

तथैव लक्षणं मृ-या पूजयित्वा पत्येन तु ।

सुवर्गं शनसद्वयं कथमेति नरोत्तमः ॥ १८ ॥

वा गतिर्वातिनां क्वम् शुनीनां योगरोविनाम् ।

गतिं तां सम्यक् प्राप्तिं धात्रीमेवागतो नरः ॥ १९ ॥

सर्वसंवागिगमने मरीचं विविधेभ्यः । सा गतिर्लब्धये तुतां धात्रीकृतपुनीम् ।  
 मरीचं सर्वदेवाणां देवतां तां गमय्य च । सन्मुखं वादास्नाने धात्रीकृतं मरीचं  
 महापुष्टाश्च ये केविदुषाश्च देवगणमाः । सर्वे न पुष्टां यासि धात्रीकृतपुनीम्  
 सर्ववर्जेषु कार्येषु कर्मण्युक्तकृतम् । सर्वदेवकृतपुनीं यत्र विद्यां विदुः  
 तस्माद्भिरिदं तत्त्ववार्तां च विदुः । धात्रीकृतपुनीं सार्वं पूज्य विदुः

यस्तु कृतं तस्मात्पुनीं धात्री च विदुः ।

सन्मुखं कृतं कृतं विदुः ।

सन्मुखं कृतं कृतं विदुः ।

नवायां चाप्यमायां च धार्त्री दूरात्परित्यजेत् ॥ २६ ॥

सङ्क्रान्त्यां तु मवेद्रोगी मलशमीर्भृगुचासरे । अनपत्यं यदालक्ष्यान्वचम्पामागुषःक्षयः  
दरापात्री समायोगात्सर्वनाशं विनिर्दिशेत् ॥ २७ ॥

नासिकाकर्णानुण्डेषु मृतस्य बिभुरेषुवा । तिष्ठेदुधात्रीफलं यस्य स यातिविष्णुमन्दिरम्  
घात्रीसङ्कर्षं नात्रेण मृतो यात्यङ्गुनालगम् । सर्वपापक्षयस्तस्य स्वर्गं याति रथेन तु ॥  
घात्रीद्वयं तरोल्लिप्त्वा यस्तु स्नानं सनाचरेत् । पदेपदेऽश्वमेधस्यफलं प्राप्नोति धार्मिकः  
मरुत्पर्वानमात्रेण ये वै पापिष्ठजन्तवः । सर्वे ते प्रपलायन्ते ग्रहा दुष्टाश्च दारुणाः ॥ ३१ ॥

पुरैकः पुनःकसः स्कन्द मृगयार्थं घनंगतः । मृगपक्षिगणान्दत्त्वा सुपया परिपीडितः ॥  
धुपयाऽमलकोवृक्षं पुरः पीनफलाग्नितम् । इडा संख्य सहस्रा चत्वारः फलमुत्तमम् ॥  
ततो दैवात्सङ्घस्राग्नाः शिरपात महीतके । घेदनागाढसंचितः पञ्चत्वमगमत्तदा ॥ ३४ ॥  
ततःप्रेतगणाः सर्वे रक्षोभूतगणास्तथा । तनुबोडुं मुदा सर्वे ये वै शमनसेवकाः ॥ ३५ ॥

न शक्नुवन्ति चाण्डालं मृतं द्रष्टुं महाबलाः ।

अन्योन्यं विप्रहस्तेषां ममायमिति भाषताम् ॥ ३६ ॥

यदीदं चापि नेतुं च न शक्तास्ते परस्परम् । ततस्ते तु समालोक्य गता मुनिगणाग्रति  
प्रेता ऊचुः ।

किमर्थं मुनयो घोराश्चाण्डालं पापकारिणम् ।

प्रेक्षितुं न वयं शक्ता न चापि यमसेवकाः ॥ ३८ ॥

येन ते पातिना ये च स्थिरैर्युद्धपराङ्मुखाः । साहसैः पातिनाभीतावज्ञाग्निकाष्ठ रोडिताः  
प्रेतस्याप्रद्वनामर्त्या वराभैर्वाजलमनुभिः । जलमयलस्थिताः प्रेता वृक्षपर्वतपातिताः ॥  
गुपक्षिद्वता ये च कारागारे गरे मृगाः । आत्मघातमृता ये च धादादिकर्मयजिताः ॥  
दकर्ममृता धूर्ता गुरुविप्रनृपद्विपः । पापण्डाः कीलिका क्रूराः गरदाः कूटसाक्षिणः  
आशौचान्तरा मोक्षार्थं प्रेतमोग्या न संशयः ।

ममायमिति भाषन्तो नेतुं तं च न शक्नुमः ॥ ४३ ॥

मादित्य इव दुष्प्रेक्ष्य किंवा कस्य प्रभावतः ॥ ४४ ॥

ततो देवालयान् पूर्णं रथः पीनः सुशोभनः । मागतस्ते समाख्या सवाण्डालपिशाच  
 गतास्ते त्रिदिवं पुत्र मतेत्येवैः सुदुर्लभम् ॥ ७४ ॥  
 स्कन्द उवाच ।

धात्रीमक्षणमात्रेण पुण्यं लब्ध्वा दिव्यगताः । तद्भक्षिणः कथं स्वर्गं न गच्छन्ति ॥  
 ईश्वर उवाच ।

पूर्वं ते ज्ञानलोपाय न जानन्ति हिताहितम् ।  
 उच्छिष्टं श्वमिच्छस्पृष्टं स्त्रेष्ममूर्धं शकृत्तु वा ॥ ७५ ॥

मरवा च मोहिता भेषु प्रेतादन्ति सदैव हि । शकृच्छीयं जलं वान्तं यन्मिच्छातुं  
 मृतकेषु तके जप्यं न त्वत्तं येन केनचित् । तस्याग्रं च जलं प्रेताद्यादन्ति तु सर्वे  
 दुर्दान्ता गृहिणी यस्य शुचि संयमपरिता ।

गुरुनिस्सारिता दुष्टा सन्ति प्रेताश्च तत्र ये ॥ ७६ ॥  
 भयङ्कराः दुर्लभास्तथा बलोत्साहविवर्जिताः । अधिराज्यं वृत्तादीनां पिशाचाः बर्मा  
 क्षणं च मूलं नास्ति दुर्गादेष्टुनाभृशम् । तेनैव विहृताकाराः सर्वयोगवि  
 नम्रका रोगसन्तप्ता मृता बह्ना मन्त्रीमसाः ।

एते बाण्ये च दुष्टाणां सदैव प्रेतजालयः ॥ ७७ ॥  
 तेन कर्मविषादेन जायन्ते काममोदराः । विदुमान्गुह्यज्ञां च देवनिन्दारण्य  
 पाण्ड्याः कीर्तिनाः पाण्ड्ये प्रेताः कर्मजानुवि । गलगाभीर्जनेः

इहोहे च ते प्रेताश्चान्द्रादिषु मरमवा ।  
 मन्त्रपञ्चाङ्गमन्त्रयैव पाण्ड्यमगृह्यते ॥ ७८ ॥  
 मन्त्रपञ्चाङ्गमन्त्रयैव ते प्रेताश्चान्द्रादिषु मरमवा ।  
 शक्तिपञ्चाङ्गमन्त्रयैव ते प्रेताश्चान्द्रादिषु मरमवा ।  
 शक्तिपञ्चाङ्गमन्त्रयैव ते प्रेताश्चान्द्रादिषु मरमवा ।  
 शक्तिपञ्चाङ्गमन्त्रयैव ते प्रेताश्चान्द्रादिषु मरमवा ।

प्रेता ऊचुः ।

न भवन्ति कथं प्रेताःकर्मणा केन वा द्विजाः । हिताय तूष्णं वद नः सर्वलोकहितं परम् ॥

द्विजा ऊचुः ।

येन चैव कृतस्नानं जलेतीर्थस्य धीमता । नमस्कृतं परंलिङ्गं न प्रेतो जायते मरः ॥६१॥  
एकादश्यामुपोष्येद्यद्वाद्दश्यां च विशेषतः । पूजयित्वा हर्मित्याःप्रेतत्वं न मज्जति तै  
वेदाक्षयसूतेऽथ स्तोत्रमग्न्यादिभिस्तथा । देवानां पूजने रक्ता न वै प्रेता भवन्ति ते ।

धृत्या पौराणिकं वाक्यं दिव्यं च धर्मसंहिताम् ।

पाठयित्वा पठित्वा च पिशाचत्वं न गच्छति ॥ ६४ ॥

मनैश्च विविधैःपूजाःपद्माक्षघातैस्तथा । जप्या पद्माक्षमालायां प्रेतत्वं नैव गच्छति ।

धाम्नीफलद्रवैःरनात्वा नित्यं तद्भक्षणे रताः ।

तेन विष्णुं सुसम्पूज्य न पच्छन्ति पिशाचताम् ॥ ६६ ॥

प्रेता ऊचुः ।

सतांसादर्शनात्पुण्यमिति पौराणिकाविदुः । तस्मान्नोदर्शनंजातं दिनंनःकर्तुमर्हथ ॥

प्रेतमावायधामुक्तिःसर्वेषां नो भविष्यति । भूतोपदेशकं धीरा युष्याकंशरणागताः ॥

ईश्वर उवाच ।

ततो दयालयःसर्वे तानूचुर्द्विजसत्तमाः ॥ ६६ ॥

द्विजा ऊचुः ।

धाम्नीणां भक्षणं शीघ्रं कुर्यतां मुक्तिहेतवे ॥ ७० ॥

प्रेता ऊचुः ।

धाम्नीणांदर्शने विप्राद्यर्थस्थानुं न शक्नुमः । कथं तेर्वाफलानां च शक्ता धी भस्तेऽपुना

द्विजा ऊचुः ।

मस्माकं पथनेनात्र धाम्नीणां भक्षणं शिषम् । कलिष्यति परलोकं तस्माद्भानुं समर्हथ

ईश्वर उवाच ।

मय तेभ्यो परंलब्ध्या धाम्नीवृक्षं पिशाचकैः । समारह्य पत्रंप्राप्य भक्षित्वं स्वीत्वा तदा

ततो देवालयान्तरां रथःपीनः सुशोभनः । आगतस्तं समाख्या सत्पाण्डालपिशाचकः ।

गतास्ते त्रिदिवं पुत्र व्रतैर्यज्ञैः सुदुर्लभम् ॥ ७४ ॥

स्कन्द उवाच ।

धार्त्रीमक्ष्णमात्रेण पुण्यंलब्ध्वा दिवंगताः । तद्गतिः कथं स्वर्गं न गच्छन्ति नरा ।

ईश्वर उवाच ।

पूयं ते ज्ञानलोपाद्य न जानन्ति हिताहितम् ।

उच्छिष्टं श्वमिहस्पृष्टं स्तेप्समूत्रं शङ्खु वा ॥ ७५ ॥

मत्वा च मोहिताः श्रेष्ठ प्रेतादन्ति सदैव हि । शङ्खुञ्जीचं जलंवातं बलिपुङ्खपुङ्खे ।

मृतकेतून्के जप्यं न त्यक्तं येन केनचित् । तस्यान्नं च जलं प्रेताद्यादन्ति ॥ सर्वे हि

दुर्वाग्ता गृहिणी यस्य शुचि संयमघर्जिता ।

गुरुनिस्सारितादुष्टा सन्ति प्रेताश्च तत्र वै ॥ ७६ ॥

अपुङ्गवाः कुलैर्जात्या बलोत्साहविषजिताः । यचिराश्च कृशादीनाः पिशाचाः कर्मजला

क्षणं च मङ्गलं नास्ति दुःखैर्देहयुताभृशम् । तेनैव विहताकाराः सर्वमोगविषजिताः ।

नम्रका रोगसन्तता मृता रुक्षा मलीमताः ।

एते व्याधे च दुःखार्ताः सदैव प्रेतजातयः ॥ ८२ ॥

तेन कर्मविपाकेन जायन्ते काममोदृशाः । पितृमातृपुरुषां च दीपनिवापराश्च वै ॥ ८३ ॥

पापण्डाः कौलिकाः पापान्ते प्रेताः कर्मजामुषि । गलपारोर्जलेः शस्त्रैर्गालैरामयन्तः ।

इहलोके च ते प्रेताद्याण्डाद्यादिषु सामयाः ।

अन्त्यजैः पतिनार्षैव पापयोगमृताश्च वै ॥ ८५ ॥

अन्त्यजैर्पान्तिनायुधैः ते प्रेतानिधितामुषि । महापातकर्मपुङ्खा विषादे च बहिष्कृता ।

शौर्यात्साहसिका हि च ते प्रेताः कर्मजामुषि । शस्त्रप्रोदकताये च शत्रूणां प्रोदकता ।

ध्यानाध्ययनार्हताश्च मनेर्देवायंतादिभिः । आत्मनः शान्तनादाश्च गुरुजीममेव ।

तदेव बान्धवप्रभृतिषु दुर्मानामु च सङ्गताः । मृताः क्रूरपराधीन म्लेच्छोद्देशादिना ।

म्लेच्छमानामुषाः शूराश्च म्लेच्छोद्देशादिभिः ।

अनुवर्तन्ति ये स्लेच्छान्ध्रीधनैरुपजीवकाः ॥ ६० ॥

स्त्रियोपेक्ष न रक्षन्ते ते प्रेता नात्रसंशयः । भुधासन्तस्तदेहं तु धान्तं चिप्रंगृहागतम् ॥

गुणपुण्यातिथिं त्यक्त्वा पिशाचत्वं भजन्ति ते ।

विक्रीणन्ति च ये गावश्च स्लेच्छेषु च गवाश्विषु ॥ ६२ ॥

प्रेतलोके सुखं स्थित्वा ते च यान्त्यपुनर्ममम् ।

अशौचान्यन्तरे ये च जाताश्च पशवो मृताः ॥ ६३ ॥

चिरप्रेताःपिशाचाश्च मृताजातापुनःपुनः । जातकर्ममुषैश्चैव संस्कारैर्वै विपरिमिताः ॥

एकैकस्मिन् संस्कारे प्रेतत्वं परिहीयते । स्नानसन्ध्यासुरार्चामियेंदयङ्गप्रताप्तरैः ॥

आजन्मपरिमिताः पापास्ते प्रेताश्चापुनर्ममाः ।

भोजनोच्छिष्टपात्राणि यानि देहमलानि च ॥ ६६ ॥

निपातयन्ति ये तीर्थे ते प्रेता नात्रसंशयः । क्षान्तमानार्चनेनैव वैर्षिया भुवि तपिताः ॥ ६७ ॥

वित्तोशुष्यश्चैव प्रेतास्ते कर्मजाभूताम् । पतित्यनवा च या नार्यो वसन्ति येनरेर्जनैः ॥

प्रेतलोके चिरं स्थित्वा जायन्ते धान्त्यपोनिषु ।

पतिं च पश्यित्वा या विषयेन्द्रियमोहिताः ॥ ६९ ॥

मिष्टं वादन्ति याःपापास्तास्तु प्रेताश्चिन्मुवि । विष्मूत्रमक्षका ये च ब्रह्मन्पमक्षणेस्ताः

अमक्ष्यमक्षकाश्चान्ये ते प्रेताश्चापुनर्ममाः ।

बलाद्ये पश्यस्तूनि शृण्वन्ति न ददत्यपि ॥ ७० ॥

अतिधीनयमगम्यन्ते प्रेता निरयमारिधताः । तस्मादाग्रतर्की भुनक्ता आत्मा तस्य द्रव्येण च

सर्वपापादिनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नेषयामन्तर्की शिवाम् ॥

य इदं शृणुयान्मिदं पुण्याख्यानमिदं शुभम् ।

सर्वपापप्रपूनात्मा विष्णुलोके महीयते ॥ ७४ ॥

आश्चर्येस्तत्र लोके वैष्णवेषु विशेषतः । सर्वानि विष्णुतायुज्यमिनि योगानिकाविदुः

स्फुटं उवाच ।

महीयन्तर्लं ज्ञानं प्रपूतं द्विषिर्धं प्रमो । इदानीं धोनुमिच्छामि पत्रं पुण्यं सुयोगतरम् ॥

ईश्वर उवाच ।

सर्वेभ्यः पत्रपुष्पेभ्यः सत्तमा तुलसीशिवा । सर्वकामप्रदा शुद्धा वैष्णवी विष्णु  
भुक्तिमुक्तिप्रदामुक्थ्या सर्वलोकपरा शुभा । यामाश्रित्य गताः स्वर्गमक्षयं मुनिसा

द्वितीयं सर्वलोकानां विष्णुना रोपिता पुरा ।

तुलसीपत्रपुष्पं च सर्वधर्मप्रतिष्ठितम् ॥ १०६ ॥

यथाविष्णोः प्रिया लक्ष्मीर्यथाऽहं प्रियवच च । तथेयं तुलसीदेवी वतुषो मोप  
तुलसीपत्रमेकं तु शतहेमफलप्रदम् । नान्यैः पुष्पैस्तथा पत्रैर्नान्यैर्गन्धानुलेपनैः

तुष्यते दैत्यहा विष्णुस्तुलस्याश्च वलैर्विना ।

अनेन पूजितो येन हरिर्नित्यं पराशया ॥ ११२ ॥

तेन वचं हुतं हातं हृतं यक्षप्रतादिकम् । जन्मजन्मनि भासित्वं सुखं भाग्यं यथा  
कुलं शीलं कलत्रं च पुत्रं दुहितरं तथा । धनं राज्यमरोमत्थं ज्ञानं विज्ञानमेव च ॥

वेषवेदाङ्गशालं च पुराणागमसंहिताः । सर्वं करगतं मये तुलस्याभ्यर्चने हरेः ॥  
यथागङ्गा पवित्राङ्गी सुरलोके विमोक्षदा । यथा भागीरथी पुण्या तथेयं तुलसी मि

किं च गङ्गाजलेनैव किं च पुष्करसेवया । तुलसीदलमिन्ध्रेण जलेनैव प्रमोचते ॥  
माधवः समुज्जोयस्य जन्मजन्मसु धीमतः ।

तस्य श्रद्धा भवेच्छ्रुत्वा तुलस्या हरिर्भक्तिं तुम् ॥ ११८ ॥

यो मञ्जरीदलैरेव तुलस्या विष्णुमर्चयेत् । तस्य पुण्यफलं स्कन्द कथितं नैव शक्यं  
तत्र केशवसन्निध्यं यत्रास्ति तुलसीवनम् । तत्र ब्रह्मा च कमला सर्वदेवगणैः स

तस्मात्तां सन्निरुद्धे ॥ सदा देवीं प्रपूजयेत् ।

स्तोत्रमन्त्रादिकं यद्वा सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥ १२१ ॥

ये च प्रेताश्च कृष्माण्डाः पिशाचा ब्रह्मराक्षसाः । भूतदैत्यादयस्तत्र पलायन्ते सर्वे  
अलक्ष्मीनां शिनी पूर्णा या डाकिन्यादिमातरः । सर्पाः सद्बुवितायान्तिद्रुष्टा तुलसीद

ब्रह्महत्यादयः पापव्याधयः पापसम्पदाः । कुमन्त्रिणा हृता ये च सर्वतश्चरन्ति तत्र  
भूतले चापि ते येन ॥ १२५ ॥ हृतं वतुषतं तेन विधिवत्प्रियदक्षिणम् ॥

हरिलिङ्गेषु चान्येषु शालग्रामशिलासु च ।

तुलसीप्रदणं कृत्वा विष्णोः सायुज्यमाव्रजेत् ॥ १२६ ॥

नन्दन्ति पुरुषास्तस्य माधवार्यं क्षितौ तु यः । तुलसीं रोषयेद्धीः स याति माधवालपम्  
पूजयित्वा हरिदेवं निर्माल्यं तुलसीदलम् । धारयेद्यः स्वशीर्षं तु पापात्पूतो दिवं व्रजेत्  
पूजने कीर्त्तने ध्याने रोषणे धारणे कलौ । तुलसी दहते पापं स्थगं मोक्षं ददाति च ॥

वपदेशं विशेषस्याः स्वयमाचरते पुनः । स याति परमं स्थानं माधवस्य निकेतनम् ॥  
हरिः प्रियकरं यच्छ सग्मे प्रियतरं भवेत् । सर्वेषामपि देवानां देवीनां च समन्ततः ॥

आद्रेषु यज्ञकार्येषु पर्णमेकं यज्जानन । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तुलसीसेवनं कुरु ॥ १२७ ॥  
तुलसीसेविता येन तेन सर्वं तु सेवितम् । शुकं विप्रं देवतीर्थं तस्मात्सेवय पशुख ॥

शिखायां तुलसीं कृत्वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ।

दुष्कृतौघाद्विनिर्मुक्तः स्वर्गमेति निरामयम् ॥ १२८ ॥

राजसूयादिभिर्बन्धैर्धर्तैश्च विविधैर्वैमैः । या गतिः प्राप्यते धीरैस्तुलसीसेविनां भवेत् ॥  
तुलसीदलेन चैकेन पूजयित्वा हरिं नरः । वैष्णवतत्त्वमपाप्नोति किमन्यैः शास्त्रपिस्तरेः

न पिबेत्स पयो मानुस्तुलस्याः कीदृशइक्ष्यकैः ।

भर्चितः केशवो येन शास्त्रामृदुलपल्लवैः ॥ १२९ ॥

भावयेत्पुरुषान्मर्त्यैः शतशोऽप्य सहस्रशः । पूजयित्वा हरिं नित्यं कोमलैस्तुलसीदलैः  
प्रधानतो गुणास्तात तुलस्या गदिता मया । निखिलं पुरुकालेन गुणं यत्तु न शक्नुमः  
यस्त्विदं गृणुयान्नित्यमाध्वानं पुण्यसञ्चयम् । पूर्वजन्मकृतात्पापान्मुच्यते जन्मवन्धनात्  
सहृदपठनमात्रेण बह्विष्टो मयः फलमेतत् । न तस्य व्याघयः पुत्र मूर्खतयं न कदाचन ॥

सर्वदा जयमाप्नोति न गच्छेत्स पराजयम् ।

लेखस्तिष्ठेद्गृहे यस्य तस्य लक्ष्मीः प्रवर्तते ॥ १३० ॥

न चापयो न च प्रेता न शोका न च मानसा । न तिष्ठन्ति क्षणे तत्र यत्रैवं वर्तने त्रिपिः  
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे तुलसीमाहात्म्यं नाम द्विपष्टितमोऽध्यायः ।



## त्रिपष्टितमोऽध्यायः

### तुलसीस्तोत्रवर्णनम् ।

द्विजा ऊचुः ।

तुलसीपुष्पमाहारम्यं धृतं त्वत्तो हरेः शुभम् ।

तस्याः स्तोत्रं कृतं पुण्यं धोतुमिच्छामहे वयम् ॥ १ ॥

व्यास उवाच ।

पुरास्फन्दपुराणे च यन्मया कीर्तितं द्विजाः । कथयामि पुराणं च पुत्तो मोक्षं

शतानन्दमुनेःशिष्याः सर्वे ते संशितव्रताः । प्रणिपत्यगुरुं विप्राः पप्रच्छुःपुण्यतो द्विज

शिष्या ऊचुः ।

पूर्यं ब्रह्ममुक्त्वान्नाथ यच्छ्रुतं तुलसीस्तवम् । तद्वयं धोतुमिच्छामस्त्वत्तो ब्रह्मविदा व

शतानन्द उवाच ।

नामोच्चारे कृते तस्याःप्रीणात्यसुरदर्पहा । पापामि विलयं याप्ति पुण्यं भवति वासप

सा कथं तुलसी लोकीः पूज्यतेघन्यते न हि । दर्शनादेयस्यास्तु वामं कोटिगर्भामवे

धन्यास्ते मानवा लोके यद्वृष्टे विद्यते कलौ ।

शालग्रामशिलार्थं ॥ तुलसी प्रत्यहं क्षितौ ॥ ७ ॥

तुलसीं ये पिचिन्वन्ति धन्यास्ते कर्णहृषाः । केशवार्थं कलौ ये च रोपयन्तीह भूत

किं करिष्यति संरष्टो यमोऽपि सह किङ्करैः । तुलसीदलेन देवेशः पूजितो येन दुःख

तीर्थयात्रादिगमनैः फलैः सिध्यति किन्नरः ।

स्नाने दाने तथा ध्याने प्राशने केशवार्चने ॥ १० ॥

तुलसी दहते पापं कीर्तने रोपणे कलौ । तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ।

केशवार्थं चिन्तोमि त्वां वरदा भव शोभने ।

त्वदङ्गसम्भवेर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम् ॥ १२ ॥

तथा कुह पवित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि । मन्त्रेणानेन यः कुर्याद्विचित्रं तुलसीदलम् ॥  
पूजनं वासुदेवस्य लक्ष्मणकोटिगुणं भवेत् । प्रभावं तद्य देवेशि गायन्ति सुरसत्तमाः ॥  
मुनयः सिद्धगन्धर्वाः पाताले नागराट् स्वयम् । नते प्रभावं जानन्ति देवताः केरावाहूते  
गुणानां परिमाणं तु कल्पकोटिरतिरपि । कृष्णमन्दातसमुद्भूता क्षीरोदमधनोद्यमे ॥

उत्तमाङ्गे पुरा येन तुलसी विष्णुना धृता ।

प्राप्येतां त्वया देवि विष्णोरङ्गानि सर्वशः ॥१७॥

पवित्रता त्वया प्राप्ता तुलसीं त्वां नमाम्यहम् ।

त्पद्मसम्ममैः पद्मैः पूजयामि यथा हरिम् ॥१८॥

तथा कुरुष्व मेऽविज्जं यतो यामि परां गतिम् ।

रोपिता गोमतीतीरे स्वयं कृष्णेन पालिता ॥१९॥

जगद्धिताय तुलसी गोपीनां हितहेतवे । वृन्दावने पिब्रता सेविता विष्णुना स्वयम्  
गोकुलस्य विष्टदपर्यंकस्य मिथनाय च । वसिष्ठवचनात्पूर्वं रामेण सरयूतटे ॥२१॥  
राक्षसार्ता वधार्थाय रोपिता त्वं जगत्प्रिये ।

रोपिता तपसो वृद्धये तुलसीं त्वां नमाम्यहम् ॥२२॥

पियोगे वासुदेवस्य ध्यात्वा त्वां जनकात्मजा । भशोकयनमध्ये तु प्रियेण सह सह  
शङ्करार्थं पुरा देवि पार्वत्या त्वं हिमालये ।

रोपिता तपसो वृद्धये तुलसीं त्वां नमाम्यहम् ॥ २४ ॥

सर्वाभिर्देवपत्नीभिः किन्नरैश्चापि नन्दने । दुःस्वप्ननाशनार्थाय सेविता त्वं नमोऽस्तुते  
धर्मरूपे गयायां च सेविता पितृभिः स्वयम् ।

सेविता तुलसी पुण्या भात्मनो हितमिच्छता ॥२६॥

रोपिता रामचन्द्रेण सेविता लक्ष्मणेन च । पालिता सीतया भवया तुलसीदण्डके ॥  
त्रैलोक्यव्यापिनी गङ्गा यथा शास्त्रेषु गीयते । तथैव तुलसीदेधी दृश्यते सचराचरे ॥  
शृण्वमूके च वसता कपिराजेन सेविता । तुलसी पालिताशाय तारासङ्गमहेतवे ॥  
प्रणम्य तुलसी देधी सागरोत्कमणं हृतम् । हृतकार्यः प्रहृष्टश्च हनूमान्पुनरागतः ॥

## त्रिपष्टितमोऽध्यायः

### तुलसीस्तोत्रवर्णनम् ।

द्विजा ऊचुः ।

तुलसीपुष्पमाहारम्यं धृतं त्यक्तो हरेः शुभम् ।

तस्याः स्तोत्रं कृतं पुण्यं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ १ ॥

व्यास उवाच ।

पुरास्कन्दपुराणे च यन्मया कीर्तितं द्विजाः । कथयामि पुराणं च पुरतो मो  
शतानन्दमुनेःशिष्याः सर्वे ते संशितप्रताः । प्रणिपत्यगुरुं विप्राः पप्रच्छुःपुण्या

शिष्या ऊचुः ।

पूर्यं ब्रह्मसुखान्नाथ यच्छ्रुतं तुलसीस्तवम् । तद्वयं श्रोतुमिच्छामस्तवसी ब्रह्म  
शतानन्द उवाच ।

नामोच्चारं कृते तस्याःप्रीणात्यसुरदर्पहा । पापानि धिलयं यान्ति पुण्यं भवति  
सा कथं तुलसी लोकेः पूज्यतेवन्द्यते न हि । दर्शनादेवयस्यास्तु दानं क्रोदि  
धन्यास्ते मानवा लोके यद्वृष्टे विद्यते कलौ ।

शालग्रामशिलार्थं ॥ तुलसी प्रत्यहं क्षितौ ॥ ७ ॥

तुलसीं ये पिबिन्वन्ति धन्यास्ते करपल्लवाः । केशवार्थं कलौ ये च रोपयन्ती  
किं करिष्यति संश्रुते यमोऽपि सह किङ्करैः । तुलसीदलेन देवेशः पूजितो येन  
तीर्थयात्रादिगमनैः फलैः सिध्यति किन्नरः ।

स्नाने दाने तथा ध्याने प्राशने केशवार्चने ॥ १० ॥

तुलसी दहते पापं कीर्तने रोपणे कलौ । तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केश  
वेशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने ।

त्वदङ्गसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम् ॥ १२ ॥

तथा कुह पवित्राङ्गि कलौ मलघनाशिनि । मन्त्रेणानेन चतुर्थादिकित्य तुलसीदम् ॥  
पूजनं वासुदेवस्य लक्ष्मणोदियुणं भवेत् । प्रभावं त्व देवेशि गायन्ति सुखसमाः ॥  
मुनयः सिद्धगन्धर्वाः पाताले नामराट् स्वयम् । नते प्रभावं जानन्ति देवताः केचन  
गुणानां परिमाणं तु कल्पकोटिशतैरपि । कृष्णानन्दात्समुद्भूता क्षीरोदमगनीष

उत्तमाङ्गे पुरा येन तुलसी विष्णुना धृता ।  
प्राप्यैतानि त्वया देवि विष्णोरङ्गानि सख्यया ॥१७॥

पवित्रता त्वया प्राप्ता तुलसी त्वां नमाम्यहम् ।

त्पद्मसम्मयैः पद्मैः पूजयामि यथा हरिम् ॥१८॥

तथा कुह्य मेऽविघ्नं यतो यामि परां गतिम् ।

रोपिता गोमतीतीरे स्वयं कृष्णेन पालिता ॥१९॥

जगद्धिताय तुलसी गोपीनां हितहेतवे । वृन्दावने चिचरता सेविता विष्णुना स्वर  
गोकुलस्य विबुद्धघर्षकंसस्य निघनाय च । पसिष्ठवचनात्पूर्वं रामेण सख्ययुते ।  
राक्षसानां धधार्थाय रोपिता त्वं जगद्विषये ।

रोपिता तपसो वृद्धयै तुलसी त्वां नमाम्यहम् ॥२०॥

वियोगे वासुदेवस्य ध्यात्वा त्वां जनकात्मजा । भशोकघनमध्ये ॥ त्रियेण सह र  
शङ्करार्थं पुरा देवि पार्वत्या त्वं हिमालये ।

रोपिता तपसो वृद्धयै तुलसी त्वां नमाम्यहम् ॥ २४ ॥

सर्षामिर्वैषण्वीभिः किन्नरैश्चापि नन्दने । दुःस्वप्ननाशनार्थाय सेविता त्वं नमोः  
धर्मारण्ये गयायां च सेविता पितृभिः स्वयम् ।

सेविता तुलसी पुण्या आत्मनो हितमिच्छता ॥२६॥

रोपिता रामचन्द्रेण सेविता लक्ष्मणेन च । पालिता सीतया भक्त्या तुलसीदण्डं  
त्रैलोक्यव्यापिनी गङ्गा यथा शास्त्रेषु गीयते । तथैव तुलसीदेवी दृश्यते

ऋष्यमूके च घसता कपिराजेन सेविता । तुलसी चालिनाशाय च

प्रणम्य तुलसी देवीं सामरोत्कमणं कृतम् । कृतकार्यः प्रहृष्टश्च च

तुलसीप्रदणं कृत्वा विमुक्तो याति पातकैः । अथवा मुनिशार्दूलं गृह्णाहत्यां व्यपो  
तुलसीपत्रगणितं यस्तोयं शिरसा घहेत् ।

गङ्गास्नानमवाप्नोति दशधेनुफलप्रदम् ॥ ३२ ॥

प्रसीद देवि देवेशि प्रसीद हरिषल्लभे । क्षीरोदमधनोदुभूते तुलसि त्वां नमाम्यहं  
द्वादश्यां जागरे रात्रौ यः पठेत्तुलसीस्तवम् । ह्यत्रिशदपराधांश्च क्षमते तस्य केशव

यत्पार्ष्ण्यं यौघने पाह्ये कौमारे पार्दके कृतम् ।

तत्सर्वं विलयं याति तुलसीस्तवपाठतः ॥ ३५ ॥

प्रीतिमायाति देवेशस्तुष्टो लक्ष्मीं प्रयच्छति ।

कुरुते शत्रूनाशं च सुखं विद्यां प्रयच्छति ॥ ३६ ॥

तुलसी नाममात्रेण देवा यच्छन्ति घाञ्छितम् ।

गर्वाणामपि देवेशो मुक्तिं यच्छति देहिनाम् ॥ ३७ ॥

तुलसीस्तवसन्तुष्टस्तुखं वृद्धिं ददाति च । उद्भूतं हेलया विद्धि पार्ष्ण्यं यमपथे स्थितं

पस्मिन्गृहे च लिखितो विद्यते तुलसीस्तवः ।

नाशुभं विद्यते तस्य शुभमाप्नोति निश्चितम् ॥ ३८ ॥

सर्वं च मङ्गलं तस्य नास्ति किञ्चिदमङ्गलम् ।

सुभिर्भक्षं सर्वदा तस्य धनं धान्यं च पुष्कलम् ॥ ४० ॥

निश्चला केशये भक्तिर्नवियोगश्च वैष्णवैः । जीयति व्याधिनिर्मुक्तो नाथमे जायते ।

द्वादश्यां जागरे रात्रौ यः पठेत्तुलसीस्तवम् । तीर्थकोटिसहस्रेस्तु यत्फलं लक्ष्मकोटि

तत्फलं समवाप्नोति पठित्वा तुलसीस्तवम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे तुलसीस्तवमाहात्म्यं नाम त्रिपष्टितमोऽध्यायः

## चतुःषष्टितमोऽध्यायः

गङ्गामाहात्म्यकथनम् ।

द्विजा ऋषुः

गङ्गायाः दास्यते पापं क्षयं याति सुनिश्चितम् । महापातकमन्यच्च तदादेशं यदस्य नः ॥१॥  
पापात्पूनीऽक्षयं नाकमश्नुते दिवि शक्यत् । तुरयोनेन हानिः स्यादुपदेशं यदस्य नः  
अत्र भोग्यं परं सर्वं मृते स्वर्गे सुरोत्तमः । कलिपापहतानां च स्वर्गसोपानमुच्यते ॥

ध्यास उवाच

गतिं विलयतां विप्रास्तूर्णं सामान्यजन्मनाम् ।

स्त्रीपुंसामीक्षणाद्यस्माद् गङ्गा पापं व्यपोहति ॥४॥

गङ्गेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम् । कीर्तनादलिपापानि दर्शनाद्गुरुरप्यत्मनम् ॥

स्नानात्पापानाञ्च जाह्नव्यां विनृणां कर्णपातया ।

महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने ॥६॥

अग्निना दह्यते तूलं तूर्णं शुष्कं क्षणाद्यथा । तथा गङ्गाजलस्पर्शात्पुंसां पापं दहेत्क्षणात्

सम्प्राप्नोत्यक्षयं स्वर्गं गङ्गास्नानेन वैश्रवम् ।

यसौ राज्यं लभेत्पुण्यं स्वर्गमगते परां गतिम् ॥८॥

पितृनुद्दिश्य गङ्गायां यस्तु पिण्डं प्रयच्छति ।

विधिना वाक्यपूर्वेण तस्य पुण्यफलं भूणु ॥९॥

अन्तेनेन तु साहस्यं परं पूज्यः सुरालये । तिलेन द्विगुणं विद्धि तथा मेल्यकलेन च ॥

गव्येन विधिना विप्राः स्वर्गस्यान्तो न विद्यते ।

एवं पिण्डप्रदानेन नित्यं कतुरातं भवेत् ॥११॥

पितरो निरपस्था ये धन्यास्ते मर्त्यधासिनः । धनपुत्रयुतायोग्यस्तुल्यसम्मानयिजाः ॥

रसातलगता ये च ये च कीटा महीतले । स्थापरे पक्षिसङ्घाद्विभक्त्या धनिनो नृपाः ॥



पुण्ये स्नात्वा तु गङ्गायां कुलकोटि समुदरेत् ।

शुक्लपक्षे दिवा मर्त्या गङ्गायामुत्तरायणे ॥३१॥

घन्या देहं विमुञ्चति हृदिस्ये च जनार्दने । अनेन विधिना यस्तु भागीरथ्या जले शुभे  
प्राणास्त्वयस्था यजेत्स्वयं पुनरावृत्तिवर्जितम् ।

यो गङ्गानुगतो नित्यं सर्वदेवानुगो हि सः ॥३३॥

सर्वदेवमयो विष्णुर्गङ्गा विष्णुमयी यतः । गङ्गायां पिण्डदानेन पितॄणां ये तिलोदकैः  
नरकस्या दिवं याति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः । परदारपरद्रव्ययाधाद्रोहपरस्य च ॥  
गतिर्मनुष्यमात्रस्य गङ्गैव परमा गतिः । वेदशास्त्रविहीनस्य गुहमिन्दापरस्य च ॥३६॥

समयाच्चाहीनस्य नास्ति गङ्गा समा गतिः ।

किं यत्तैर्यदुविताढ्यैः किं तपोभिः सुदुष्करैः ॥३७॥

स्वर्गमोक्षप्रदा गङ्गा सुखसौभाग्यपूजिता । नियमैः परमैर्नित्यं किं योगैश्चिन्तरोधकैः ॥  
मुक्तिमुक्तिप्रदा गङ्गा सुखमोक्षाग्रतः स्थिता । अनेकजन्मसङ्कलतपापं पुंसां विनश्यति ॥

स्नानमात्रेण गङ्गायां सद्यः स्वात्पुण्यभाक् नरः ।

प्रभासे गोसहस्रस्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥४०॥

भते यत्फलं दाने गङ्गास्नानाद्दिने दिने । इष्ट्वा ॥ हरते पापं स्पृष्ट्वा तु लभते दिवम्  
प्रसङ्गादपि सा गङ्गा मोक्षदा त्वयगाहिता ।

सर्वेन्द्रियाणां चापदयं वासनाशक्तिसम्भयम् ॥४२॥

पूजत्वं ततो गङ्गा दर्शनात्प्रविनश्यति । परद्रव्यामिकाङ्क्षित्वं परदारभिलाषिता ॥  
धर्मं क्विञ्चैव दर्शनादेव नश्यति । बहुच्छालाभसन्तोषस्त्वधर्मेषु प्रवर्तते ॥४४॥  
वैभूतसमर्थं च गङ्गायां भजनाद्भवेत् । यस्तु गङ्गां समाश्रित्य सुखंतिष्ठति मानवः ॥

जीवन्मुक्तस एवेह सर्वेषामुत्तमोत्तमः ।

गङ्गां संश्रित्य यस्तिष्ठेत्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ ४६ ॥

हृत्कृत्यस्सर्वे मुक्तो जीवन्मुक्तश्च । यज्ञो दानं तपो जप्यं ध्यायं च  
गङ्गायां तु हृतं । गुणं भवेत् ।



अन्यस्थाने कृतं पापं गङ्गातीरे चिनश्नति ॥ ४८ ॥

गङ्गातीरे कृतं पापं गङ्गास्नानेन नश्यति । आत्मनो जन्मनश्च ज्ञेयाह्वीसङ्गते

नरः स्नात्वा तु गङ्गायां स्वकुलं च समुदरेत् ।

आदरेण यथा स्तौति घनघन्तं सदा नरः ॥ ५० ॥

सहस्रगङ्गां तथा स्तुत्वा भवेत्स्वर्गस्य भाजनम् ।

अथद्वयापि गङ्गाया योऽसौ नामानुकीर्तनम् ॥ ५१ ॥

करोति पुण्यघाहिन्यास्स वै स्वर्गस्य भाजनम् ।

क्षितौ भाषयतो मर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यथः ॥ ५२ ॥

दिशि तारयते देवान्गङ्गा त्रिपथगा स्मृता ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कामतोऽकामतोऽपि वा ॥ ५३ ॥

गङ्गायां च मृतो मर्त्यः स्वर्गं मोक्षं च विन्दति । या गतिर्योग्यकस्य सत्यस्यस्यमेव

सा गतिस्त्यजतः प्राणान्गङ्गायां तु शरीरिणः ।

चान्द्रायणसहस्राणि यश्चरेत्कायशोधनम् ॥ ५५ ॥

पानं कुर्याद्यथेच्छं च गङ्गाम्भःसं विशिष्यते । ताघटप्रभावस्तीर्थानां देवानां तु विशेष्ट

ताघटप्रभावो वेदानां यावन्नाप्नोति जाह्नवोम् ।

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरथवीत् ॥ ५७ ॥

द्विषिभुज्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि । विष्णुपादाज्जसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि

धर्मद्रयेति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि । विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता ।

त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् । अथवा धर्मसम्पूर्णं श्रीमत्तारजसा ॥ ५९ ॥

अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनोहि माम् ।

त्रिमिःश्लोकपरैरेमिर्यः स्नायाज्जाह्नवीजले ॥ ६१ ॥

जन्मकोटिहृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । मूलमन्त्रं प्रवक्ष्यामि जाह्नव्या हरिमन्त्रिणम्

सहस्रपात्रैः पूजो विष्णुदेहे प्रतिष्ठति ॥ ६३ ॥

मन्त्रधायम् । ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमोनमः ॥ ६४ ॥

धनुःपष्टिमोऽध्यायः ] • गङ्गासाहस्यवर्णनम् •

ब्राह्मीनीरसम्भूतो मृदं मूर्ध्ना विमर्ति य । सर्वपापविना नो गङ्गासाहस्यवर्णनम् ॥ १ ॥  
गङ्गाजलोमिनिधूतपवनं कृशाने यदि । स पुन कन्मगादन्तः ॥ २ ॥

पापदक्षिणमुप्यस्य गङ्गानोये प्रतिष्ठिते ।

तापद्वयसहस्राणि स्वर्गलोके मत्वायेन । ॥ ३ ॥

विशेषं शुभलानां च भनाथानां गुणैरपि । गङ्गायामर्षिभ्यामपि ॥ ४ ॥

गङ्गां प्रतिपदेत्पुनः पितृनामस्मरणद्वयम् । पदेत्पुनः पुनः ॥ ५ ॥

ध्याया जानपदा ये च पशवः पक्षिणश्च ।

स्यादस्य जङ्गमाश्चान्ये गङ्गानीरसमाधत्ता ॥ ६ ॥

कोशान्तराणां ये च जाह्नव्या द्विजसन्तमा । मानवा देवता ॥ ७ ॥

गङ्गाजले स्नानं कृत्वा सर्वपापविना । स न कदापि ॥ ८ ॥

गङ्गाजले प्रयाग्यति न जायते पुनः ये मृता ।

कीटाः पक्ष्याश्चान्ये वाद्यान्येन गङ्गाजले ॥ ९ ॥

ये च शक्तिः सगुणो गङ्गां प्रतिजल द्विजा । ते च गङ्गा ॥ १० ॥

जाह्नवी ये च निहन्ति पापपदं नरेण । ते गङ्गा ॥ ११ ॥

दुर्गायै गारि कमारिण्यं गङ्गां विष्णुं च । ॥ १२ ॥

गङ्गागङ्गेति यो ब्रह्माणां जगतामपि ।

मुच्यते सर्वपापिण्यो विष्णुलोका ॥ १३ ॥

गङ्गायां वृक्षानि च वृषाश्चान्यमुद्रका । गङ्गायां ॥ १४ ॥

न कीर्तयन्ति ये गङ्गां जलपुत्रा मत्वायम् । ॥ १५ ॥

न पठन्ति जना ये च नैवां गङ्गायां विष्णुम् ।

गङ्गापुत्रपुत्रां विष्णुं वृषिपुत्रं च ॥ १६ ॥

पठन्ति जना ये च पठन्ति गङ्गायां च ।

गङ्गायां ते विष्णुं श्रीगङ्गायां च ॥ १७ ॥

गङ्गायां गङ्गायां च गङ्गायां च गङ्गायां च ॥ १८ ॥



तथैव सर्वशास्त्रेषु धर्मोद्देशं करोति सा । विज्ञानं कलहं शोकं मोहामोहं शिष्याशिष्यम्  
तथा चिना जगत्सर्वं यात्यतत्त्वमिति स्मृतम् ।

कमलासम्पद्यश्चैव धत्तभूषणसञ्चयः ॥ ६६ ॥

तुल्यं राज्यं त्रिलोके तु ततः सा हविषलुभा । उभया हेतुना शम्भोर्ज्ञानं लोकेषु ६

काममाता च सा ज्ञेया शम्भोरर्धाङ्गचासिनी ।

वर्णिका शक्तिरत्युक्ता सर्वलोकप्रमोहिनी ॥ १०१ ॥

सर्वलोकेषु लोकाणां स्थितिसंहारकारिणी ।

दैव्या च निहती पूर्णमसुरी मधुकैटभौ ॥ १०२ ॥

रुद्रापि हतो घोरः सर्वलोकपरिधुतः । सर्वदेवैकजेतारं सा जप्ते महिषासु  
निहता लीलायादैव्या येऽसुरा दैत्यपुङ्गवाः । एवं यलानि दैत्यानां निहत्य सर्वदा  
पालितं मोदितं चैव हृत्स्नमेतज्जगत्त्रयम् । धर्मद्रव्यस्वरूपा च सर्वधर्मप्रतिष्ठिता ।

महती तां समालोक्य मया कमण्डली धृता ।

विष्णुपादाब्जसम्भूता शम्भुना शिरसा धृता ॥ १०६ ॥

मत्सामिध्रिभिर्मुक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः । धर्मद्रवा परिख्याता जलरूपा कमण्ड  
बलिपद्मेषु सम्भूता विष्णुना प्रमविष्णुना । छत्रना छलितः पूर्वं बलिर्बलपतां  
ततः पादद्वयेनैव क्रान्तं सर्वमहीतलम् । नमः पादौ ब्रह्माण्डं भित्त्वा मम पुरः सि

मया सम्पूजितः पादः कमण्डलुजलेन वै ।

प्रक्षाल्यैवावितात्पादादेमकृतेऽपतज्जलम् ॥ ११० ॥

यत्कृदाच्छङ्कुरं प्राप्य क्षमते सा जटास्थिता । ततो भगीरथेनैव समावाप्य शिर्यं ध्रु  
वानीयाराधितो निर्व्यं तपसा गजपुङ्गवः ।

तेन भित्त्वा नगं धीर्यातित्रिमिदन्तेः हृत् पितम् ॥ ११२ ॥

तत्रलियिलगा यस्मात्त्रिस्रोता लोकविधृता । हविर्ब्रह्महृदयोनात्पूना लोभस्य पापनं  
समासाय च तां देवीं सर्वधर्मजलं लभेत् । पाटयज्जपरेः सर्वमंग्रहोमसुगर्धनेः ॥ १११ ॥  
सा गतिर्नमयेज्जन्तोर्गङ्गासंसेवया च या । धर्मस्य साधनोपायो ह्यनः परो

त्रैलोक्यपुण्यसंयोगात्तस्मात्तां व्रज नारद ॥ ११६ ॥

गङ्गातोयास्थिसंयोगात्सुतास्ते सगरस्य च । स्वर्गताः पितृमित्रैव स्वर्गार्थाय ॥

ध्यास उवाच

ततो ब्रह्ममुखाच्छ्रुत्वा नारदो मुनिपुङ्गवः । गङ्गाद्वारे तपः कृत्वा ब्रह्मणासङ्गोऽ-

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा । गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरासङ्गमे-

त्रिरात्रेणैकरात्रेण नरो याति परां गतिम् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सद्यो मुक्तिं विचिन्तयेत् ॥ १२० ॥

ततो गच्छत धर्मज्ञाः शिष्या भागीरथोमिह । भविरेणैव कालेन रघवं मोक्षं प्राप्नुवन् ।

विशेषात्कलिकाले च गङ्गा मोक्षदा नृणाम् ।

कृच्छ्राच्च क्षीणसत्यानामनन्तः पुण्यसम्भवः ॥ १२२ ॥

पुलस्त्य उवाच

ततस्ते ब्राह्मणा हृष्टाः श्रुत्वा ध्यासाङ्गिरं शुभम् ।

गङ्गायां तु तपस्तप्या मोक्षमार्गं ययुस्तदा ॥ १२३ ॥

य इदं शृणुयामर्त्यः पुण्याख्यानमनुत्तमम् । सर्वं तरति दुःखौघं गङ्गास्नानफलं हरेत् ।

सहस्रदुःखारतिं चैव सर्वयज्ञफलं लभेत् । दानं जप्यं तथा ध्यानं स्तोत्रं मन्त्रमुत्तमम् ।

तत्रैव कारयेद्यस्तु स चानन्तफलं लभेत् । तस्मात्तत्रैव कर्तव्यं जपहोमादिकं यतः ।

अनन्तं च फलं प्रोक्तं जन्मजन्मसु लभ्यते ॥ १२७ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे खण्डितखण्डे गङ्गामाहात्म्यं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ (४) ॥

पञ्चपण्डितमोऽध्यायः

गणपतेरग्रपूज्यतावर्णनम् ।

सञ्जय उवाच

देवानां पूजनोपायं कर्म ब्रूहि सुनिश्चितम् ।

अग्रे पूज्यतमः कोऽसौ को मध्ये नित्यपूजने ॥ २ ॥

अन्ते च पूजा कस्यैव कस्य को वा प्रमादकः ।

किं वा कं च फलं ब्रूह्यन्पूजयित्वा लभेन्नरः ॥ ३ ॥

व्यास उवाच

गणेशं पूजयेद्ग्रे त्वयिप्रार्थं परे स्थितः । विनायकत्वमाप्नोति यथा गौरीसुतो हि सः  
पार्वत्यजनयत्पूर्वं सुतो महेन्नरादिभ्यो । सर्वलोकधरो शूरो देवो स्कन्दगणाधिपः ॥

तौ दृष्ट्वा तु सुरास्तस्यैव श्रद्धया परयान्विताः ।

सुधयोत्पादितं दिव्यं तस्यै प्रादुस्तु मोदकम् ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा तु मोदकं ताम्प्यार्मायता जगमी तदा । ततस्तु विस्मिता देवी सुतावेवमभाषत

पार्वत्युवाच

तु मोदकं पुत्री देवैर्दत्तं मुदाश्रितेः । महाबुद्धीति विख्यातं सुधया परिनिर्मितम् ॥

गुणं चास्य प्रवक्ष्यामि शृणु तं तु समाहितो ।

अर्येवामात्रमात्रेण जगत्तस्यै लभेद्भुषम् ॥ १ ॥

यैशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रार्थकोविदः । निपुणः सर्वतन्त्रेषु लेखकश्चित्रवृत्तगुपीः ॥

नयिज्ञानतत्त्वज्ञः सर्वज्ञो मात्र संशयः । पुत्री धर्मादधिकतां प्राप्य सिद्धिर्न मजेत्

यस्तस्य वै ब्रह्मास्यामि पितुस्ते सम्मतं स्थितम् ॥ १२ ॥

व्यास उवाच

या मातृमुखादेयं ययः परमकोविदः । स्कन्दस्तोत्रं ययौ सयः सर्वत्रिभुवनस्थितम्

वर्दिनीं स्व्यं समारत्नं त्वमिषेकः कृत्वाः शनान् ।

पितरौ प्रदक्षिणं कृत्वा लम्बोदरधरस्तुर्ध्याः ॥ १४ ॥

एष मुदा युतः पित्रोरेवाग्रजः स्थितः । परतश्च तथा स्कन्दो मे देहोति ब्रूयन्स्थितः

ततस्त तौ समीप्याथ पार्यतो विस्मिताः ॥ १६ ॥

पार्श्वेत्युवाच

सर्वतार्थाभिपेक्षैस्तु सर्वदेवेर्नतरेतया । सर्वयज्ञयतेर्मन्त्रैर्यमित्यैर्यमेतया ॥ १३ ॥

पित्रोरर्चापरस्यैव कलां नार्हति षोडशीम् ।

तस्मात्सुगशतादेवोऽधिकः शतगुणैरपि ॥ १८ ॥

अतो ददामि हेरम्ये मोदकं देवनिर्मितम् । अस्यैव कारणादस्य ममे पूजामशेषु च ।

वेदशास्त्रस्तथाश्रौ च नित्यं पूजाविधासु च ॥ १९ ॥

पार्वत्या सह भूनेशो ददौ तस्मै घरं महत् ॥ २० ॥

महादेव उवाच

अस्यैव पूजनादमे देवास्तुष्टा भवन्तु च ॥ २१ ॥

सर्पासामपि देवानां पितॄणां च समन्ततः । तोषो भवतु नित्यं च पूजितेऽमे गणेश्वर ।

व्यास उवाच

ततः सर्वेषु यज्ञेषु पूजयेद्गणपं द्विजः । कोटिकोटिगुणं तेषु देवदेवीपते यथा ।  
वृत्त्या सर्वगुणं पुण्यं देवदेव्या तथा मुदा । कृतं गणाधिपत्यं च सर्वदेवास्तत्प्राप्तम् ॥

तस्मात्प्राप्त्येषु यज्ञेषु स्तोत्रेषु नित्यपूजने ।

गणेशं पूजयित्वा तु सर्वसिद्धिं लभेन्नरः ॥ २५ ॥

एवं ज्ञात्वा तु देवैस्तु दयितप्राप्तिकाम्यया ।

पूजितध्याय सर्वैस्तु रथगंगोक्षार्चतो ध्रुवम् ॥ २६ ॥

नकाहारश्चतुर्थ्यं ॥ पूजयित्वा गणाधिपम् ।

लिङ्गे वा प्रतिमा चित्रे देवः पूज्यो भवेद्यदि ॥ २७ ॥

गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद ।

उमातन्दप्रद प्राप्नोति मां भवसागरात् ॥ २८ ॥

हरातन्दपर ध्यायन्नामपिज्ञानद प्रभो । विद्याराज नमस्तुभ्यं प्रसन्नो मय सर्वदा । ॥ २९ ॥

हृत्तोषपासो गणपं पूजयेद्यो नरो मुदा । सर्वपापविनिर्मुक्तः सुरलोके नृजीवने ॥ ३० ॥

स्तोत्रं तस्य प्रवक्ष्यामि नाम द्वादशकं शुभम् ।

ओं नमो गणपतये मन्त्र एव उदाहृतः ॥ ३१ ॥

गणपतिर्विघ्नराजो लम्पतुण्डो गजाननः । द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः ॥ ३२

पिनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः ।

द्राक्षीतानि नामानि प्रातस्तथाय यः पठेत् ॥ ३३ ॥

पिश्वं तस्य भवेद्दृश्यं न च विघ्नं भवेत्कचचित् ।

महाघोताशमं घान्तिं धीक्यते कशाधिभिर्न च ॥ ३४ ॥

सर्वपापाग्निमुंक्तो ह्यक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥ ३५ ॥

इति धीपापपुष्टौ प्रथमे खण्डिखण्डे गणपतिस्तोत्रं नाम षट्पष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

## षट्पष्ठितमोऽध्यायः

गणपतेरन्यत्स्तोत्रवर्णनम् ।

व्यास उवाच

पुनरन्यत्र प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं गणाधिपस्य च । सर्वसिद्धिकरं पूर्णं सर्वामीष्टफलप्रदम् ॥ १

एकदन्तं महाकायं सप्तकाञ्चनसन्निभम् ।

लम्बोदरं विशालाक्षं चन्द्रेऽहं गणनायकम् ॥ २ ॥

सुजहन्नाजिनधरं नामयन्त्रीपधीतकम् ।

यातेऽनुकलिकामौलिं चन्द्रेऽहं गणनायकम् ॥ ३ ॥

सर्वविघ्नहरं देवं सर्वविघ्नविघर्जितम् । मूषकोत्तममारुह्य देवास्तुष्टमहाहवे ॥

योऽसुकारं महायाहुं चन्द्रेऽहं गणनायकम् ॥ ४ ॥

शिवकाहुद्यामर्धं भास्वकापविष्टितम् । भक्तिप्रियं मदीन्द्रसं चन्द्रेऽहं गणनायकम् ॥

चित्ररत्नविचित्राङ्गं चित्रमालाविभूषणम् ।

कामरूपधरं देवं चन्द्रेऽहं गणनायकम् ॥ ६ ॥

नवकथं सुरधेष्ठं चारुकर्णविभूषितम् । पाशाङ्कुशधरं देवं चन्द्रेऽहं गणनायकम् ॥ ७ ॥



यशकिप्ररगन्धयैः सितविद्याधरेस्तदा ।

स्मृतमानं महादेवं यन्नेऽहं गणनायकम् ॥ ८ ॥

गणायकमिदं पुण्यं भक्तितो यः पठेन्नरः । सर्वसिद्धिमवाप्नोति स्मृतलोके महीप  
न निभ्यनो लयाभ्येति शतशतमस्तु मानवः । य इदं पठते तस्य महाप्राप्ति मी

यस्य करोति त्रैलोक्यं यदनाच्छ्रवणादपि ।

स्मृतो वा महापुण्यं गणनायकं महात्मनः ॥ ११ ॥

इति धीमाद्युक्तोक्तं प्रथमं शृष्टिशब्दे गणयतिस्मोत्रं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

## सप्तपञ्चिनमोऽध्यायः

नान्दीमुखादिषु प्रथमं गणेशपूजनार्थनम् ।

आसुत उवाच

नान्दीमुखादिषु सर्वेषु वृत्तेषु नामाधिराम । तस्य सर्वार्थसंग्रहः पूज्यं भवति यथा  
गणेशपूजेति मन्त्रेण सर्वव्यापकम् ॥ सर्वसिद्धिमवाप्नोति भवति मन्त्रेण सर्वव्यापकम्  
मृगमते प्रविश्यात् ॥ त्रिंशे चान्न दुष्कृतम् । इति श्रुत्वा तस्य च त्रैलोक्यं त्रैलोक्यं  
अनादिमन्त्रे देहेषु सर्वत्र वृष्टिर्भवेत् । इत्युवाच ॥ इति श्रुत्वा तस्य च त्रैलोक्यं त्रैलोक्यं

अथ नान्दीन विदुर्गतिं वृष्टिर्भवेत् त्रैलोक्यम् ।

न विदुर्गतिं त्रैलोक्यं विदुर्गतिं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यम् ॥ १२ ॥

त्रैलोक्यं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यम् ।

अथ नान्दीन विदुर्गतिं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यम् ॥ १३ ॥

अथ नान्दीन विदुर्गतिं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यम् ।

अथ नान्दीन विदुर्गतिं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यं त्रैलोक्यम् ॥ १४ ॥

न राजा कुप्यति गृहे न च मारी प्रवर्तते ।

न दौर्मिक्ष्यं न दौर्वल्यं पूजयित्वा विनायकम् ॥ ६ ॥

अभिप्रेतार्थसिद्धयर्थं पूजितो यस्सुरैषि ।

सर्वधिप्रच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ १० ॥

मन्त्रध्यायम् ॥ ॐ नमो गणपतये ॥

नारायणप्रियैः पुण्यैरन्वैध्यापि सुगन्धिभिः । मोदकैः फलमूलैश्च द्रव्यैः कालोद्वयैस्तथा  
दधिदुग्धैः प्रियैर्घाघैरपि धूपसुगन्धिभिः ।

पूजयेद्गणपं यस्तु सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

विशेषास्तस्य लिङ्गेतु यो ददाति घसुप्रियम् । पूजोपकरणं धत्स्व सर्वं लक्षगुणं भवेत् ॥  
देशे च भारते वर्षे घनितापूर्वसन्निधौ । लौहित्यदक्षिणे तीरे लिङ्गरूपो विनायकः ॥  
दण्णोरीसमादेशाद्देवानां सम्मतेन च । स्थितो लोकप्रशान्त्यर्थं सर्वधिप्रविनाशनात् ॥

पूजयित्वा तु तं देवं शक्तितो द्रव्यसञ्चयैः ।

विनायकत्वमाप्नोति वेदशास्त्रार्थपाठयः ॥ १६ ॥

सहस्रप्रदक्षिणं कृत्वा द्वाद्विंशत्युपमानयः । अक्षयं लभते स्वर्गं सदा देवैः प्रपूज्यते ॥

संसर्गिणां च ग्लेच्छानां नश्यत् सुतपस्विनाम् ।

पुत्रार्थं सर्वलोकानां तत्र शम्भुर्विनायकः ॥ १८ ॥

कृत्वाऽभिपेक्षं लौहित्ये स्पृशेद्यस्तु गणाधिपम् ।

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १९ ॥

न वैधव्यं न कार्पण्यं न शोकं न तु मत्सरम् ।

विनायकं समासाद्य जन्मजन्मनि संलभेत् ॥ २० ॥

पुनः सिद्धिं पुनर्मोक्षं पुनः कीर्तिः पुनर्वलम् । पूजयित्वा तु गणपं नरस्य नात्र संशयः  
नस्य पूजामकृत्वा च सर्वार्थमाप्तं विनश्यति । तत्र देवाश्च सुर्यस्ता प्रद्वयिष्णुहरादयः  
गोदादुन्नत्या च ॥ कृतदक्षिणाऽस्पृशार्चनं पुनः । लोविघ्नं समुत्पन्नं देवराजस्य धीमताः  
। विरहितस्य च ।



करिष्यामि हिताय वै तूष्णं कामं समुच्यताम् ॥ ३८ ॥

व्यास उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे सूरिः सुराणां याज्ञकः सुधीः । उवाच घनं स्मर वृहस्पतिर्विनायकम्  
वृहस्पतिरुवाच ।

दोषं महर्षिदेवानामिन्द्रस्य च विनायक । यत्ते पुरार्चनं यज्ञं न कृतं तत्क्षमस्य नः ॥

व्यास उवाच ।

सुराचार्यगिरिः श्रुत्वा गणपो वाक्यमग्रवीत् ॥ ४१ ॥

गणेश उवाच ।

युष्मामिषियतां देवा धरो मत्तो हि वाञ्छितः ॥ ४२ ॥

व्यास उवाच ।

ततः शक्रादयः सर्वे वृहस्पतिपुरोगमाः । ऊर्चुर्गणपतिं देवा जयोऽस्माकं भवति ॥

देवानां घनं श्रुत्वा गणेशोऽवाक्यमग्रवीत् ॥ ४४ ॥

गणेश उवाच ।

पादमेव सुरधेष्ठा जयो वो भवतु द्रुतम् ॥ ४५ ॥

व्यास उवाच ।

तो देवगणास्तर्धे हर्षनिर्भरमानसाः । गणेशं पूजयामासुर्गन्धसारैस्तु मण्डनैः ॥ ४६ ॥

रेव्यधूयैः सुवस्त्रैश्च कुसुमैर्मन्दनोद्भवैः । पारिजातादिभिः पुष्पैरम्यैर्द्वयमनोहरैः ॥ ४७ ॥

पूजितो गणपो देवैरुवाच सुरस्ततमान् ॥ ४८ ॥

गणेश उवाच ।

च्छब्धं विबुधा देवविष्णुमद्भुतसाहसम् । सविधास्यति वः कामं वाञ्छितं गततः सुराः

व्यास उवाच ।

यं स्थं स्थं समारद्य गतास्ते हरिमन्ययम् । पीताम्बरं नमस्तृण्य ऊर्चुर्देवगणा गुराः

देवा ऊचुः ।

रात्मजं तु सम्प्राप्य पूजयित्वागणाधिपम् । आगतास्तपस्सकारांश्चै

अथासुरैर्महावीर्यैर्हिण्याक्षमुलै रणे ॥ २४ ॥

मघथा तु जितो धीर्याद्विरण्याक्षेण वै तदा । ततस्सुराश्च निर्घोर्या यावद्रथान् पुनः  
दैवासुरे महायुद्धे सुराणां च पराजयः । ततो देवाधिदेवे तु शिवे देवनिर्देहिम्

देवा ऊचुः ।

भगवन्सुरैर्ना हि जितं राज्यं गता मलाः ॥ २७ ॥

ध्यास उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरं शम्भुर्देवान्यचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥

शम्भुरुवाच ।

हेरम्भाय यतो दत्त उमया प्रीतया मया । पूजया ते परासिद्धिर्देवादीनां भवन्ति  
अपजानाति यो मोहात्पुरुषस्तु महोरसये । न भवेत्तस्य सिद्धिश्च रणे वापि एतस्मिन्

महामलेन युष्मामिः पूजा गणपदेः कृता ।

हेलया ॥ कृता मोहात्तस्मात्प्राप्तः पराजयः ॥ ३१ ॥

शीघ्रं गच्छत वै पुण्यां गणपस्य महात्मनः । पूजां कुरुत धर्माश्च जपस्तूत्रं भवन्ति  
ऋशस उवाच ।

ततो ह्यमुखाच्छ्रुत्वा ययः क्षेमपरं दितम् । ग्रहणा विबुधास्तर्पे गणपस्य गुरुः सिद्धि  
देवा ऊचुः ।

गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वदेवैकपालक । स्वर्गमोग्रप्रदं श्रोत्र्या हेराय त्वां नमः ॥ ३४ ॥  
जपदं सर्वयुद्धेषु सिद्धिदं सर्वकर्मसु । महामाये महाकार्य हेराय त्वां नमः ॥ ३५ ॥

एकदन्तं महाप्राज्ञं लम्बनुपुण्ड्रं विनायकम् ।

देयं महर्षिदेवानामिन्द्रस्य च नमः स्मद ॥ ३६ ॥

ध्यास उवाच ।

यताः श्रुत्वा गिरान्तेषां त्रिदशानां महात्मनाम् । विभिन्नगणयो देवानिर्बलान्तरैः  
गन्ध्या उवाच ।

कृतो मे तरसा स्तोत्रं पूजां कुरुत साध्यम् ।

मधुरवाच ।

जेष्यामि ॥ हरिं राजन्सहायं मे नियोजय । जितेनारायणे देवाः समयास्त्रिदशाः  
तस्मान्नारायणोऽस्माकं भागः सर्वपुरञ्जयः ॥ ६६ ॥

ध्यास उवाच ।

ततो धुन्धुब्ध सुन्दब्ध कालकेयो महाबलः । सहायाश्च मधोस्तस्य जेष्यामो माधवं  
सर्वदैत्यपते मुनयाश्चत्वारो बृहद्विक्रमाः । कालमृत्युसमाधीराः सर्वास्त्रविधिपार  
फलस्तत्राप्रवीक्षाकथं यस्मिञ्जय उपस्थितः । तं च जेष्यामि जिष्णुं च प्रतिज्ञा मे बृहदा  
नमुचिश्च मुचिश्चैव भ्रातरौ बलद्विती । ऊचनुस्तौनृपं ह्यायं जेष्यामो वै बलाबुध  
जम्भश्चैवाप्रवीक्षापमिन्द्रमिन्द्रपुरोगमान् । जेष्यामिनात्र सन्देशो दैत्या भयत विजय  
त्रिपुराश्चाप्रवीक्षाकथं जेष्यामि च विनायकम् । तावदूचेऽथ सेनानीर्मयो देवान्तको य  
शूरेरं प्रतिरक्षोमिः सर्वाश्चैव हिरण्यकान् । यतस्मिन्नन्तरे तत्र नारदो मुनिसत्त

गत्योवाच हिरण्याक्षं जिष्णुदूतोऽहमागतः ।

राज्यं त्यजस्य वाचा नः प्राणेषु यदि ते हितम् ॥ ७४ ॥

न चेदुध्यस्य मामद्य न वा गच्छ रसातलम् ।

ततः कौपादुवाचेद् नारदं मुनिसत्तमम् ॥ ७५ ॥

दैत्यराज उवाच ।

अहिंस्यस्त्वं ब्राह्मणाय गच्छ तूर्णं ममाग्रतः । देवानां च विपत्तिं च कश्चन निधनं पु  
पश्य विप्र क्षणेनार्तं प्राप्तं हरिहरादिकम् ॥ ७६ ॥

ध्यास उवाच ।

एषमुचया ॥ दैत्येन्द्रो बलाध्यक्षानुवाचह ॥ ७७ ॥

दैत्यराज उवाच ।

सज्जीकृत्य बलं सर्वाग्रथांश्चानयत द्रुतम् ॥ ७८ ॥

ध्यास उवाच ।

दैत्यराजवचः श्रुत्वा बलाध्यक्षा समन्ततः । बलान्यह्वय सहसा सन्त्रस्तास्तूर्णमागताः

व्यास उवाच ।

पतच्छ्रुत्या तु देवानां वचनं हरिरव्ययः । यथातथमुवाचेद् हनिष्ये दैत्यपुङ्गवम् ।

श्रुत्वा घागमृतं देवा नारायणमुत्तान्च्युतम् ।

दृष्ट्वाश्च तं मुदाऽऽविष्टा द्रव्यैरिष्टैः समर्चयन् ॥ ५३ ॥

पुनर्विरुणुवाचेद् देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ५४ ॥

विष्णुस्त्वाच ।

सर्वं सर्वं यत्नं समाहृत्य सज्जोमवत विज्यराः । हनिष्ये तान्दुराचारान्बलं वैयसमनस ।

अल्लवृन्दं तु संगृह्य यूयं तिष्ठत निर्मयाः ॥ ५५ ॥

व्यास उवाच ।

माधवस्य वचः श्रुत्वा प्रगताः सुरपुङ्गवाः । विमानानिसमारुह्य सर्वे दिव्यास्त्रधादि ।

देवानां हर्षवाक्यानि दैत्यचाराः श्रुतानि वै ।

राजानं कथयामासुर्हिरण्याक्षं महाबलम् ॥ ५७ ॥

श्रुत्वा दैत्यपतिस्तत्र चुकोपातिमहाबलः । सचिवांस्तु समाहूय कुन्दो वचनमब्रवीत् ।

दैत्यराज उवाच ।

अधुनेन्द्रादिदेवाश्च निखिलाः क्रूरयुद्धयः । माधवं च परोक्षस्तः शम्भोऽसर्वमवेदम् ।

कथं जयं च लप्स्यामो दैत्यवृन्देऽतिदारुणे ।

त्रिपुरारिरुवाचेद् गणेशं यज्ञतामराः ॥ ६० ॥

पूजयित्वा तु तं देवं जेष्यथासुरदानवान् । ततो देवगणैर्दृष्टैः पूजितो गणनायकः ।

गणाधिपेन तुष्टेन क्रूरो दत्तो वरो महान् ।

जेष्यथाद्यासुरान्सर्वास्ततो देवाः मुदान्विताः ॥ ६२ ॥

हरिं नियेदयामासुरस्मद्वधपरीप्सवः । हरेर्बाढमुपश्रुत्य रयिनः शस्त्रपाणयः ॥ ६१ ॥

युद्धार्थमधि तिष्ठन्ति निर्जरास्त्वभयामयि । यस्य या शक्तिरस्तीह देवास्त्रेण वरन्वन् ।

व्यास उवाच ।

ततो राजो वचः श्रुत्वा मधुर्धनमब्रवीत् ॥ ६५ ॥

लोहितं प्रचुरं पीतं रक्षोमिश्रं वृकादिभिः ॥ ६६ ॥

अन्यैर्महागणैरेव क्षतजं पवनान्वितम् । खादितं प्रीतिमद्भिश्च फेरुघ्नगणैर्मुदा ॥ १०० ॥

एतस्मिन्नन्तरे सूरिः सुरपूज्यो बृहस्पतिः । मृतसञ्जीवनीविद्यां सुराणां सञ्जयाप ह ॥

विशाल्यकरणीं दिव्यां ब्रह्मविद्यां महाबलाम् ।

ततो धन्वन्तरिर्चिद्वांसुरवेद्यो मनोजघः ॥ १०२ ॥

धीपयैस्तत्प्रयोगैश्च रणे पर्यटते मुदा । तत्र देवाश्च जीवन्ति ये मृताश्च महादवे ॥

अग्रणा बलसम्पन्नाः प्रयुध्यन्ति भृशं पुनः ।

एवं शतसहस्रं तु वणं दैत्यस्य खोदतम् ॥ १०४ ॥

पतितं पुण्ययोगाच्च शरैर्निर्मिन्नकण्धरम् ।

ततस्तु जयशब्देन गन्धन्ति सिद्धचारणाः ॥ १०५ ॥

श्रुत्यः खेचराध्याये ये खैवाप्सरसां गणाः । गीर्तिगायन्ति गन्धर्वाः शशंसुः परमर्षयः

अथ क्रुद्धो महातेजा दैत्यमुख्यो महाबलः ।

कालकेय इति क्वातः सेनामीर्दैन्यपस्य च ॥ १०७ ॥

स्यन्दनस्यो महावीर्यो धनुराशय तत्र च । जघान सुरसङ्घास्ताम्रवर्तयामास भूतले ॥

निरन्तरशरौघेण च्छादितं गगनं तदा । निपतन्ति शरा सेन्ये कोटिकोटिसहस्रशः ॥

निपतन्ति ततो देवाः संयुगेष्वनिवर्तिनः । रुधिरोद्गारिणस्सर्वे सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ॥

विशिखैः पीडिता देवा निपेतुर्धरणीतले । केचिच्छृण्वन्तेर्मिन्तास्सहस्रैर्युतेक्षया ॥

पेतुर्ख्यां महावीर्या ये रणे सुरपुङ्गवाः ।

व्यथिताश्चाभयन्सर्वे स्यन्दनस्था दिवीकसः ॥ ११२ ॥

शरैः प्रव्यथितास्ते ॥ स्थातुं शक्ता न सम्मुखे । सेनाधमाहितं सैन्यं गजेनेव सरोपनम्

शरैस्तस्पादिता देवा बभ्रानलसमप्रभैः ।

न शुकुः समरे स्थातुं मघवन्तं ययुस्तदा ॥ ११४ ॥

चित्ररथ इति क्वातो देवशस्त्रभृतां वरः । ययो स्यन्दनमारुह्य युद्धं प्रति धनुर्धरः ॥

अग्रवीद्वचनं सोऽपि सेनान्यं तु महासुरम् ॥ ११६ ॥



कोटिकोटिसहस्राणिअक्षौहिण्यो बलानि च । एकैकस्य च वीरस्य बाह्वानिमहान्ति  
स्यन्दनानि विचित्राणि गजोद्गाधवखरानपि । सिंहव्याघ्रलुलापांश्च समारूढा यमुस्त  
वायैः सर्वैश्च भूयिष्ठैः सिंहनादैर्मयानकैः । दिशस्तु पूरयामासुस्तिन्धुवेला बलाय  
सर्वलोकाश्च वित्रेसुः समुद्राश्च चक्रिपरे । देवदुन्दुमयो नेतुः सर्वदेवैः समीरितः ।  
वायैश्च विधिधैरन्यैर्वायुपूर्णैर्घनस्यनैः । सर्वलोका मयअस्ता ये च प्रैलोकवासिनः ।

अष्टकामा गताकाशं घोरं तीव्रं महाहवम् ।

परिघैः पाशशूलैश्च खड्गयष्टिपरश्चघैः ॥ ८५ ॥

शरैश्च निशितैर्घोरैर्जम्बुरन्योन्यमाहवे । शस्त्रास्त्रैर्वहुधा मुक्तैर्दिशः सर्वा निरुत  
विगृहेषु धरण्यां च पर्वतेषु जलेषु च । देवस्थाने तथाकाशे पर्वताग्रेषु सानुषु ॥ ८६ ॥  
गह्वरेषु महारण्ये तयोर्मुद्गरमघर्तत । पुष्कलादिघनानां च वर्षधाराजलं यथा ॥ ८७ ॥

पतन्त्यस्त्राणि सैन्येषु शतशोऽथ सहस्रशः ।

केचित्पेतुः पृथिव्यां तु शरैः सन्निभविग्रहाः ॥ ८८ ॥

शक्तिभिर्मुसलैश्चान्यैश्चशूलपरश्चघैः । पतिताः सन्मुखे शूरा युद्धेषु ग्रायपतिनः ।  
गच्छन्ति सुरसन्धानि स्वाम्यर्थं ये त्वभीरवः । ये चान्ये कातराः पापा हन्तारोविमुक्ताग्रैः  
अन्यायैर्वै च योद्धारस्ते यान्ति यममन्दिरम् ।

त्रिदिवक्षा गजारोहाः सैन्धवस्थास्तथापरान् ॥ ८९ ॥

रथस्त्रांश्च रथारोहाः पद्गांश्च पदातयः । परस्परं विनिघ्नन्ति शूरा युद्धाभिरुहितः  
मुदिताः सत्यसम्पन्ना धर्मिष्ठा बलसंवृताः । केपांचिदुयाहयश्लिभा मुसलैर्मिर्ममलकाः

केशादिशरांसि बलानि निपेतुर्धरणीतले ।

मध्यच्छिन्नास्तथा मिन्नाः पेतुर्ध्वान् महाबलाः ॥ ९० ॥

खड्गपातैस्तथाचोम्रैश्छिन्नमिन्नाः परश्चघैः । गामेष पतिता धीरा दिग्पालद्वारभूषिताः  
प्रदीप्तोऽमूढरादेशो धीरैर्नागेर्हये रथैः । विविधामरणैर्नष्टैः पताकाभिश्च केतुभिः ।  
ततो घमुन्धरा सर्वा सशैलपनकानना । कधिरौघप्लुता तत्र विबुधासुरयोर्वृषि ॥ ९१ ॥

क्रय्यादैर्वहुमिस्तत्र आदितो द्रव्यसञ्चयः ।

जघान शूलमुर्धोस्थस्ततो गन्धर्वसत्तमम् ॥ १३३ ॥

विचकर्त्त त्रिभिर्बाणैः शूलं चित्ररथो यत्नी । शूलं च नष्टकं दृष्ट्वा दृढभोगमियोगम्  
गृहीत्वा मुद्गरं घोरं प्रदुद्राव सूरं यत्नी । समुद्गरं समाधानं दैन्यमेनाभिः तदा  
विचकर्त्त शिरोदेहादर्धचन्द्रेण सम्प्रमात् । स पपात महीपृष्ठे सञ्जनात् पशुत्था ।

ततो दैत्यगणाः सर्वे विमुक्त्वा विप्र द्रुद्रुषुः ॥ १३७ ॥

इति धीपाद्यपुराणे प्रथमे ऋष्टिखण्डे कालकेयवधो नाम सप्तपष्टितमोऽध्यायः ।

## अष्टपष्टितमोऽध्यायः

जयन्तेन कालेयवधः ।

ध्यास्त उपायः ।

घातरं निहतं दृष्ट्वा कालेयो नाम दानवः । चित्ररथं प्रदुद्राव धूम्रा बाणं सक्कामुंभम् ॥

दृष्ट्वाऽसुरं पिपापमत्तं कालमृत्युसमप्रमम् ।

भरौरर्त्तात्तं महावीर्यो जयन्तः पाकशासनः ॥ २ ॥

मप्रवीच्य महानेजा दैतेयं सुरसत्तमः । तथ्यं धर्माभिसंयुक्तं स्थावद्वह्निं भूषम् ॥ ३ ॥

जयन्त उपायः ।

शस्त्राभिघानदुःखानं कदमलं धाम्यत्संयुतम् ।

प्रमानं च निरस्त्रं च यो हन्ति स च बान्धिरः ॥ ४ ॥

सुखिरं रौरवं भुङ्क्ता सत्य दातो मयेष्टिम् ।

तस्मात्तमाऽमुं प्रमुष्यस्य युद्धधर्मनिशी मव ॥ ५ ॥

ध्यास्त उपायः ।

जयन्तमप्रपीडाकथं कालेयः मोघमूर्च्छितः ॥ ६ ॥

कालेय उपायः ।

निहत्य सानृदन्तामव त्वां हन्मि स्तामम् ॥ ७ ॥

चित्ररथ उवाच ।

यथा हंसि महाशूर सुरसेनां मुदान्वितः । स त्वं प्रशंसनीयश्च शूरोऽसि सुरसंनतः ।  
हिरण्याक्षप्रियं कर्मकृतं युद्धे त्वयाऽधुना । इदानींमम वाणीश्च गच्छस्व यममन्दिरम् ।

व्यास उवाच ।

ततश्च कालकेयस्तु स्मितो वचनमब्रवीत् ॥ ११६ ॥

कालकेय उवाच ।

पुरैष विजितो देवगणःसर्वः प्रलीलया । इदानीं तु स्थितं युद्धे यत् सर्वं तु हेतुः ।

यदि ते निधने प्रीतिरस्तीह सुरपुङ्गव ।

एभिस्त्वां निशितैर्वाणैर्नयामि यममन्दिरम् ॥ ११७ ॥

व्यास उवाच ।

इत्युक्त्वा परमक्रुद्धो वाणमन्तकसन्निभम् । जघान समरे वीरस्त्रिमिधच्छेद सोऽनृतः ।

पुनर्वाणांश्च समरे योजयित्वा द्रुतं हया ।

जघान प्रचुराद्दैत्यांस्तांश्चकर्त्त स लाघवात् ॥ ११८ ॥

ततोऽभ्योन्यं शरैस्तीक्ष्णैः कालान्तकसमप्रभैः । युद्धे धनुष्मतां धेष्टश्चिच्छेद भुविदेव ।

तद्युद्धममघद्देवदैत्ययोर्धर्मतो भृशम् । द्रष्टुकामागताः पार्श्वमृषिदेवाः सुरोत्तमाः ।

एवं शतसहस्राणि वाणानां विधृतानि च । अभ्योन्यं समरे वीरैः विजयाय विरेजतु ।

अथ क्रुद्धो महातेजा गन्धर्वाणां पतिस्तदा । त्रिमिर्बिभेदवाणीश्च ललाटे हृदिपञ्च ।

सप्तभिर्जडरैर्नामो वस्तौ तस्यसप्तश्रमिः । शरैःसम्पातितो दैत्यो मुग्धः कर्मललाटेऽपि ।

शिघिलीहृतचापश्च लेभे संज्ञां विरादुयली ।

लम्घ्यसंघस्त्रिमिर्वाणैस्स विभेद सुरोत्तमम् ॥ १२६ ॥

धकर्त्त धनुरास्त्रैश्च दैत्यराजस्य पश्यतः । ततो वाणसहस्रेस्तु कालान्तकसमप्रभैः ।

विभेद दैत्यसिंहं तु सुराणामुत्तमो बली । हतचेनाः सदैत्येन्द्रो यदुतो जितसंघः ।

यिहलो यदुवाणार्तः शूलं जग्राह दानवः । शूलहस्तस्य तस्यैव धनुर्मिन्सुराणाम्भरैः ।

हत्वा च पातयामास त्रिमिर्यन्तारमेघ च ।

# उत्तरविंशतमोऽध्यायः

इष्टं च वदन्मुचित्रघः ।

ध्यास उवाच ।

एतत्तु मातु र्देवेन्द्रो हिरण्याक्षो महाबलः ।  
संयुक्तैः शक्तैः समुद्रादिदेवैः ॥ १ ॥

हिरण्याक्ष उवाच ।

अतः कल्पानि युद्धाद देवानां विजिघांसया ।  
कल्पानि न युद्धयन्ते तेन मार्गाद्विशन्तिवतः ॥ २ ॥

ध्यास उवाच ।

एतत्तु मातु बभूव सौम्यैः देवैः स्वगजाग्रिभिः ।  
दुष्टैश्च जन्तु र्घैः शूलैः शस्त्रैः शस्त्रैः विजिताः ॥ ३ ॥  
न हि विजितं तदा शत्रुगुणैरिति । निरालम्बं तदाऽऽपत्तौ प्रवृत्त्युपपत्त्यादिति ॥  
अतः शत्रुगणैः विजितैः स्वगजाग्रिभिः ।  
अथ शत्रुगणैः विजितैः शस्त्रैः शस्त्रैः विजिताः ॥ ४ ॥  
देवैः शत्रुगणैः च हराः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ ५ ॥  
अथ शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ ६ ॥  
अथ शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ ७ ॥  
अथ शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ ८ ॥  
अथ शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ ९ ॥  
अथ शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ १० ॥

अथ शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ ११ ॥  
अथ शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ १२ ॥  
अथ शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ १३ ॥  
अथ शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ १४ ॥  
अथ शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः शत्रुगणैः । अतः शत्रुगणैः शत्रुगणैः ॥ १५ ॥

व्यास उवाच ।

ततस्तं चासुरध्रेष्टं कालानलसमप्रभम् । जयन्तो निशितैर्बाणैर्जघानसुरसत्तमः ॥ ८१ ॥

निचकर्त्त शरान्सोऽपि त्रिमिर्विक्रयाद्य चासुरः ।

ततः कोपसमाविष्टो नाराचैर्दशमिस्तथा ॥ ८२ ॥

शरांश्चिच्छिदतुस्तत्र विमिदतुश्च परस्परम् ।

स्वन्दनाच्च तयोरेव बहुसुखाद्य शोणितम् ॥ १० ॥

यथा वृष्टिगणं प्राप्य नदी नैरिक्वाहिनी । तथा तौ च महावीर्यौ न क्षीणौ न च कलौ

न शर्म परिलेभाते परस्परजयैविणौ । अथ तस्य च दैत्यस्य धनुश्चिच्छेद वेपुनः ।

यन्तारं पञ्चमिराणैः पातयामास भूतले । अष्टमिर्निशितैर्बाणैश्चतुरोऽजघानपातयन् ।

शक्तिं सङ्गृह्य भूमिष्ठः कुमारं च जघानह । आयातर्त्तौ बह्विकूटामां शरैश्चिच्छेद पञ्चमि

गदामादाय वेगाच्च जयन्तं स जघान ह ।

गदया पीडितं साश्वं सपथ्यं सकुब्रम् ॥ १५ ॥

पातयित्वा धरण्यां च सिंहनादं ननादह । लाघवात्स धरां गत्या गदापानिरुपस्थितः ।

वज्रपाताद्यथा शब्दो लोकानां दुःसहो भवेत् ।

तथा तयोर्गदापाते शब्दः स्यात्तु मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥

एवं तयोर्गदायुद्धं यावद्व्यचतुष्टयम् । प्रमत्ने ते गदे खस्थौ राक्षसमधरायुर्मौ ॥ १८ ॥

तदा पदातिनोर्पुण्ड्रमद्भुतं लोमहर्षणम् । दृष्ट्वा च विस्मयं जमुर्देवास्तुरमहोरगाः ॥ १९ ॥

खड्गपातैर्मुहूर्तान्ते तयोश्छिन्ने ॥ धर्मणी । मरुवाः खड्गयुद्धं च तयोर्पुण्ड्रातिर्गदितोः ।

दधार चिकुरे तस्य जयन्तो भीमविक्रमः । शिरश्छित्त्वाऽस्य खड्गेन पातयामास भूतले

ततस्तु जयशब्देन देवाः सर्वे मनन्दिरे ।

प्रमत्ता दैत्यसङ्गाश्च दिशः सर्वाः प्रहृष्टाः ॥ २२ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे प्रथमे सुष्टुखण्डे कालेदवधौ नामाष्टपष्टितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

# अनसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्रेण बलनमुचिवधः ।

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षो मदाबलः ।

सरोपधातिताम्राक्षो ह्यसुरानादिदेश ह ॥ १ ॥

हिरण्याक्ष उवाच ।

स्वयं गच्छामि युद्धाय देवानां चित्रिचांसया ।

नागच्छन्ति न युद्धयन्ते तेन मार्गाद्विशन्तिपतः ॥ २ ॥

व्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शोवा दैत्यमणाधिपः ।

युद्धाय प्रययुः सर्वे शूलपाशातिवण्डिताः ॥ ३ ॥

पिकं पूर्णसैन्याय तथा शनगुणैरपि । निरन्तरं तथाऽऽकार्यं प्रययुर्दक्षार्शिनः

ततो द्वास्तसताध्याश्च विश्वेच वसवस्तथा ।

स्कन्दश्च गजपद्वीय पिप्पुजिष्णुपुरोगमाः ॥ ४ ॥

वै योद्धुं गतास्ते च दृष्टा रजसमुरमुक्ताः । एतन्निमग्नतरे युद्धं देवज्ञपयोरपि ॥ ५ ॥

न भूतं न धृतं पूर्वं सर्वशोकमगङ्गुरम् ।

शत्रोरुचैर्धुष्या युतः शक्तिरेणेव बाननम् ॥ ६ ॥

धरां स्वर्गोक्तं माकारं मरुत्य युद्धमाधर्मा ।

मन्योर्गं जप्नुराकाशे तथाऽन्योऽस्य महीतन्दे ॥ ७ ॥

दमिभुंसनैर्मज्जेयैर्दुमिः शरवृष्टिमिः । दारुणैः मरुतवानिभ्य तथा वक्रशस्त्रैः ॥ ८ ॥

मन्यायुधैश्च पिपिथैर्निजं जप्नुस्ते वरस्वरम् ।

अमन्योरुपपि धराकाशेऽध्वपानि च ॥ ९ ॥

कोटिकोटिसहस्राणिअक्षौहिण्यो बलानि च । एकैकस्य च घोरस्य बाह्वानिमहाक्ति  
स्यन्दनानि विचित्राणि गजोद्गाधवस्त्रानपि । सिंहव्याघ्रबुलायांश्च समाह्वय युष्मदा  
पायैः सर्वैश्च भूयिष्ठैः सिंहनादैर्भयानकैः । दिशस्तु पूरयामासुस्तिग्धुवेला बलाघातः ।  
सर्वलोकाश्च वित्रेसुः समुद्राश्च चक्रम्पिरे । देवदुन्दुभयो नेदुः सर्वदेवैः समीरिताः ।  
घाघैश्च विविधैरन्येषां युष्मैर्धनस्थनैः । सर्वलोका भयत्रस्तः ये च वैलोक्यवाक्त्रिः ।

अष्टकामा गताकाशं घोरं तीव्रं महाहयम् ।

परिघैः पाशशूलैश्च खड्गयष्टिपरश्वधैः ॥ ८५ ॥

शरैश्च निशितैर्घोरैर्जञ्जुरन्योन्यमाहवे । शस्त्रास्त्रैर्वहुधा मुक्तैर्दिशः सर्पा निरन्तराः ।  
विगृहेषु धरण्यां च पर्वतेषु जलेषु च । देवस्थाने तथाकाशे पर्वताग्रेषु सानुषु ॥ ८६ ॥  
गह्वरेषु महारण्ये तयोर्युद्धमघर्तत । पुष्कलादिघनानां च वर्षधाराजलं यथा ॥ ८७ ॥

पतन्त्यस्त्राणि सैन्येषु शतशोऽथ सहस्रशः ।

केचित्पेतुः पृथिव्यां तु शरैः सम्भिन्नप्रविग्रहाः ॥ ८८ ॥

शक्तिभिर्मुसलैश्चान्यैश्च शूलपरश्वधैः । पतिताः सम्मुखे शूरा युद्धेषु ग्राह्यपतिनः ।  
गच्छन्ति सुरसन्तानि स्वाम्यर्थे ये त्वमीरवः । ये चान्ये कातराः पापा हन्तारो विमुखात्रे  
अन्यायैर्ये च योद्धारस्ते यान्ति यममन्दिरम् ।

त्रिविधस्या गजारोहाः सैन्यवस्थास्तथापरान् ॥ ८९ ॥

रथसांश्च रथारोहाः पदगांश्च पदातयः । परस्परं विनिघ्नन्ति शूरा युद्धाभिराह्वितः ।  
मुदिताः सत्यसम्पन्ना धर्मिष्ठा बलसंवृताः । केषांविदुबाहवश्चिह्ना मुसलैर्भिन्नमलकः  
केशाशिशरांसि यस्त्राणि निपेतुर्धरणीतले ।

मध्यच्छिन्नास्तथा मिन्ताः पेतुर्द्वया महाबलाः ॥ ९० ॥

खड्गपातैस्तथाचोमैश्छिन्नमिन्ताः परश्वधैः । गामेय पतिता धीरा दिग्बालद्वारमूर्ति  
प्रदीप्तोऽमूढरादेशो घोरैर्नागैर्हवै रथैः । विविधामरणैर्नष्टैः यत्ताकामिभ्यः केतुभिः ।  
ततो यमुन्धरा सर्पा सशैलवनकानना । रुधिरौघप्लुता तत्र विबुधासुरयोयुधि ॥ ९१ ॥  
प्राप्यादैर्बहुमिस्तत्र आदितो द्रव्यसञ्चयः ।

विद्युधैरदिता दैत्याः शेषाः पर्वतमाश्रिताः ॥ २८ ॥

प्रजामुभय दिराः सर्पाः कातरारणमीरवाः । दैत्यव्यूहे प्रभन्ने च बलो गाम महाबलः ॥  
मर्दयामास दैवांश्च संवय्यामिसमैः शरैः । तस्य बाणार्दिता देवा बहवो बलदर्पिताः ॥  
पनिता घरणीपृष्ठे केचिद्गमा रणाजिरे । दृष्ट्वा तस्य महत्कर्म दारुणं लोकभीषणम् ॥  
शरामुर्ध्वपयो देवास्तत्रशिष्टाः प्रचुक्कशुः । अथ क्रुद्धो महातेजाश्शतकतुररिन्दमः ॥  
जघान शस्त्रन्दोर्द्वैलं बलपतांघरम् । सोऽपि क्रुद्धो बलियुद्धे तथा शकं ससम्भ्रमः ॥  
धिरैणावसिकाङ्गो प्रसूनेन महाबलो । तौ यथा माधवे मासि पुष्पिणी किशुबहुमौ  
रुक्मानि ॥ सहस्राणि शूलानि मुसलानि च । निचजान रणे शक्त खपले बासुरोत्तमः

तानि वक्राणि शूलानि निचकर्त्त शरोत्तमैः ।

सुरराट् सहसा भ्रान्तो लीलया समरे बली ॥ ३६ ॥

स च दैत्यो महातेजाः शसया खंघ पुनर्दरम् ।

निजघान तदा तूर्णं गजार्थं च स्तनान्तरे ॥ ३७ ॥

या विनिहतः शक्रः प्रवचाल गजोपरि । लब्धसंज्ञां गले जिष्णुर्विभेद दनुजं क्षणात् ॥  
पसंस्य हस्तौ च घनुक्षिच्छेद वेदुणा । चर्मतीक्ष्णं ध्वजं तस्य शरैर्षीकेन धीरहा ॥  
घनुमिनिशितैर्षाणीर्विव्याध च दुरो हयान् ।

शरैर्षीकेन घनस्य शिगक्षिच्छेद तदक्षणात् ॥ ४० ॥

छिनधग्या हस्तरथो हताब्धो हस्तसागधिः ।

निरत्य मूर्च्छितः पृथ्वा मुहूर्तामृत्युमाप सः ॥ ४१ ॥

अथ क्रुद्धो महादैत्यो नमुचिः सुरदर्पहा । गदामादाय सहसा ॥ जघान महागजम् ॥  
यथा मेदगिरैः शृङ्गे वज्रपातो मधेक्षु ध्रुवम् । तथैव च महाशब्दो ह्यमबलमहर्षणः ॥ ४३ ॥  
प्रहारेणार्दिताः पद्मा सञ्चाल स विह्वलः । धिरैणावसिकाङ्गो विमुखो वेदनातुर्य ॥  
शक्रान् विधावन्ति शतशोऽथ सहस्रश । अर्धचन्द्रेः क्षुरग्रैश्च विच्छेद पाकशासनः ॥  
जन्तुमिस्तस्य मायामिरर्दितास्सुरपुङ्गवा । भूमौ निपतिताः केचित्केचित्सुता रथोपरि  
दृष्ट्वा तस्य महत्कर्म माधवो विशिखांस्तथा ।



शस्त्रैः शरीरसूक्ष्मातोः कट्टुचायसजम्बुकैः । यथा मुसलधाराभिर्घना घर्षन्ति लोहिम् ।

तथैव क्षतजैः स्रस्तैस्वाङ्गाद्य देवदानवाः ।

केचित्पतन्ति मुह्यन्ति स्खलन्ति च हसन्ति च ॥ १२ ॥

मुञ्चन्ति चार्तनादांश्च सिंहनादं मुहुर्मुहुः ।

केवांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नपादास्तथापरे ॥ १३ ॥

छिन्नपादार्थोदराः केचिन्निपेतुः शतशोभुवि । कोटिकोटिसहस्राणि गजपाशसुतार्णव  
अपतन्धरणीपृष्ठे रक्तौघे बहुधा भुवि । ततस्तु धरणीपृष्ठे स्वमथतोदितार्णवः ॥ १४ ॥  
विपरीतास्ततो नद्यः सद्यस्तत्र विसुस्रुयुः । तृणकाष्ठपरस्तत्र शक्यो दासञ्चरः ।

मुद्गरा मुसलाः शूला मकराद्या भवन्ति च ।

जयन्तिका ध्वजामीनाः कमठाधर्मकायकाः ॥ १५ ॥

शरादिमिर्महोद्ग्रेश्च निरुद्धाः प्रद्युरेस्तथा । केशचामरौघालाः सम्पूर्णास्तास्तनूनाः ।  
पतद्भिश्च तथान्यैश्च विविधैः क्षतजार्णवः । तदा वसुन्धरा सर्वा सशैलवनकानना ॥ १६ ॥  
वधिरौघा महाघोरा सर्वलोकमथङ्करा । स्कन्दस्य शक्तिपातेन गता दैत्या यमसङ्गरा ।  
पर्शना परमेणैव भग्निनाऽग्निशिखैः शटेः । वरुणस्य च पाशेन यदा ममा यमस्य ॥ १७ ॥  
येषां पुत्रैश्च गोत्रैश्च पुरोगैः सन्निवैस्तथा । निपातिताश्च दैतेयाः शरशङ्खद्विद्विनिः ।  
ग्रहैश्च भ्यसनैरेव यज्ञगन्धर्वकिन्नरैः । महत्या गदया शैव कुदरेण च घातना ॥ १८ ॥  
गनानां निर्वरैर्वज्रेस्तुषारैर्विधुनेरिति । वज्रगान्धर्विणैर्वारैर्देव्याः सेतुधराभले ॥ १९ ॥

अग्नौ च विविधैर्देवैः कोटिकोटिसहस्रतः ।

पातिना प्रथयुस्सर्वे धरण्यां नु गतासयः ॥ २० ॥

देवास्त्यक्त्वा दिवं यान्ति केचिद्य यममन्दिरम् ।

केचिद् गच्छन्ति पातालं पुण्यानुष्यप्रयोगतः ॥ २१ ॥

एतन्निगन्तव्यं वेदाश्रय्यः परमर्षयः ।

स्यन्त्यन्तु ब्रह्मणेभ्यश्च गोभ्यः क्लीम्यस्तास्विभ्यु ॥ २२ ॥

प्रपुण्यमानेष्वग्रेषु गामर्षेण सर्वेऽग्नयु ।

ततो जघान दशमिस्त्रिंशमैरावर्णत्रिमिः । सप्तमिमांतलि छिन्वा नादेरन्नेनंतादृष्ट ॥१॥

शवं प्रति पुनर्देत्यो भ्रामयामास सम्प्रमान् ।

आयसीं तां गदां कोषान्महाफलपराक्रमः ॥ ७ ॥

यस्तु लाघवाच्छको जघान कुलिशेन हि । मिदुरस्पावशनेन गतासुनिशान ॥ ८ ॥

इनुत्स्य प्रशनेन सञ्चवाल घसुन्धरा । देवाः प्रवक्तुं त्वानि दानया पिप्रददुः ॥९॥

इति धीपाप्रपुराणे प्रथमे खण्डिखण्डे मुचिषयो नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥१०॥

## एकसप्ततितमोऽध्यायः

पठाननेन तारयवधः ।

ध्यास उपायः ।

परेषो घनसम्पन्नः शक्रमुन्यपराक्रमः । जघान चिशिरोस्त्वम् विनृपानिनमादयं ॥१॥

ततस्त्वन्महो महाबाहूर्देगुन्यपराक्रमः ।

यि वक्तुं शतं स्तां स्तामिन्विनेद् शतेनमैः ॥ २ ॥

सहैत्यस्तदसा स्त्वम् छान्दयामास मार्गणीः ।

असम्पन्नः प्रविष्टोऽपि पिशाचां विशिरोऽग्नरा ॥ ३ ॥

परेषोऽग्निशरैः स्त्वम् जघान वनमूर्धनि । चिशिर्षं मिदुरस्त्वम् वसाम हरमार्गने ॥४॥

भ्रामणेन वेनार्मास्तत्र सञ्चयंवाचयन् । गीदुमर्षं पुनर्देत्यः प्रवयामास तं प्रति ॥५॥

अपिराम् हनं तेन बाणेनाच्छादितेन च । अघोरं प्राक्षिपदेत्यो योरवधं गुराणम् ॥

भूषणं बिट्प्रागिहात्मन्या सार्धद्वयः शरा ।

धावन्ति पार्दमोतुत्रं कोटिबोदितरग्नरा ॥ ७ ॥

छिन्वा तांस्तु शारास्त्वन्महो विनेद् देत्यनुवृत्तम् ।

आहारं शोचंयदंशं शरीरमदधंमन्त्रिने ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा शरा मत्ता देदे देत्यवधेर्भूतम् । देहने चक्रेण च यदा हन्तुं शक्तेः

जन्तुभूतान्स चक्रेण चिच्छेद देहलग्नकान् ॥ ४७ ॥

ततो जिष्णुस्त्रिमिर्याणीः पातयामास मृतले ।

पृथिव्यां पतितो दैत्यो मूर्च्छितः स्खलितः पुनः ॥ ४८ ॥

द्रुधार मुदुगरं घोरं शकं हन्तुं समुद्यतः । ततो जघ्रान् मघवा कुलिशेन महाभुजः ।

स पपात महीपृष्ठे क्षतवक्षा महायलः । साधुसाध्विति देवाश्च सिद्धार्चनं दर्शनं ।

अपूजयन्तदा शकं यदुभिः पुष्पवृष्टिभिः । ततो दैत्यगणाः सर्वमीतास्तत्र प्रमुदुः ।

गीतं गायन्ति गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५२ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिस्रष्टे यत्नमुचियधो नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥

## सप्ततितमोऽध्यायः

इदं ण नमुचिवधः ।

ध्यास उपाय

यत्नं च निहन्तं दृष्ट्वा नमुचिं च स्वकाग्रजम् ।

मुचिस्तत्राग्र्याद्वाक्यं उपेष्टो मे सूक्ष्मस्त्वया ॥ १ ॥

परोक्षेणाधुना त्वां च शरैर्नैष्यामि भास्करिम् ॥ २ ॥

ध्यास उपाय ।

तमग्र्यान्महामन्त्राः शक्रः सर्वसुरारहितः ॥ ३ ॥

शक्र उपाय ।

स्रानुष्मे धर्मव्याप्तमिदानीं लप्स्यसे भूयम् ।

यद्वा दण्डमविनाशाय प्रमोहाच्छूलमा यथा ।

सदमा प्रविशन्त्यग्निं तथा मां वोदुषुमिच्छसि ॥ ४ ॥

ध्यास उपाय ।

एवं वाक्प्रमिदं च जघ्रान् विष्टिनेत्रिमिः । तत्र विष्टेर् त्रिमिर्याणीः शक्र उपायः ॥

## द्विसप्ततितमोऽध्यायः

यमेन देवान्तकदुर्धपदुर्मुखस्रवधः ।

उवाच उवाच ।

ततो देवाग्नको दैत्यो व्यनक्षत्समंप्रति । रणं चकार धर्मेण सन्दर्शोष्ठुदो बली ॥ १ ॥

त गत्वा साग्रवीद्वाक्यं सर्वलोकविगर्हितम् ॥ २ ॥

देवान्तक उवाच ।

न जानासि महद्भयं दुष्टमोहाद्यथाक्रमम् । पापपुण्यप्रयोगेण निग्रहानुग्रहे प्रभुः ॥ ३ ॥

महं च निर्मितो धाम्ना करोमि तव शासनम् । न जानासि यतो धर्मं कालमृत्युपुरःसरः

न रोगो न जरा कालो न मृत्युर्न च किङ्करः ।

धर्मात्प्रचलितः कर्मो कष्टं याति दिवानिशम् ॥ ५ ॥

उवाच उवाच ।

उक्त्वा खैवं महावीर्यं यमं धर्मैकसाक्षिकम् । स जघान त्रिमिर्याणैः कालमृत्युसमप्रभैः

प्रविच्छेद स धर्मात्मा ते त्वन्यैर्विशिष्येस्त्रिभिः ।

ततस्तूष्णैः शरैः प्राञ्चैर्युगान्तामलसप्रभैः ॥ ७ ॥

निजघान यमं सङ्ख्ये स विच्छेद शरैः शरान् । एतस्मिन्वन्तरे क्रुद्धो परस्परप्रद्वेषिणौ

जग्रतुः समरेऽभ्योन्यं महाबलपराक्रमौ ।

महोरारं तयोर्युद्धमपर्त्तत सुरादणम् ॥ ९ ॥

एतस्मिन्वन्तरे क्रुद्धः शङ्खया प्रशमनं रथा । विभेद् दैत्यशार्दूलो हाहूरायुतो बली ।

तामेवाप रथा धर्मा गृहोत्था शक्तिकां द्रुतम् ।

निजघान तपैषामुं स्तनयोन्तरे भृशम् ॥ ११ ॥

सचिह्नलितसर्पाङ्गो मुखाग्रगतशोणितः । ततः क्रुद्धो महातेजा धृत्वा दण्डं सुरादणम्

अमोघं पातयामास तस्य दैत्यस्य विग्रहे । साक्षं रथं तथा सूर्णं धोदार् शस्त्रसम्यपम्

तस्य देहात्ततश्चैव बहुसुखाय शोणितम् । यथा च माघवे मासि पुष्पुष्पदामीतर ।

स्यन्दनाघञ्जराभ्वाश्च शिशिरे भूमिलग्नकाः ।

अथ क्रुद्धो महादैत्यः शूलं भीमं च दारुणम् ॥ ११ ॥

धृत्वा त प्रतिचिक्षेप कालमृत्युसमप्रमम् । पार्वतीनन्दनेनापि शूलं पाशुपतेन ॥ १२ ॥

क्षिप्रं तेन कृतं दग्धं मुहूर्तेन रणाजिरे । पुनः शक्तिं मुमोचाय दृष्टदत्तान्तु दानवः ॥ १३ ॥

शूलं प्रति जघानाय शतकूटसमप्रमम् । ततोऽस्त्रे वज्रसङ्काशे जघटाते विपर्ययि ॥ १४ ॥

तपोस्तवीर्ययोरस्त्रे धरण्यां प्रणिपेततुः ।

ततो दैत्यपतिः स्कन्दं शरैरग्निशिलोपमैः ॥ १५ ॥

भर्दयामास सहसा घनधारेण पर्वतम् । तांस्तुच्छित्त्वा महाबाहु सेनानीध्यापमस्य वै ।

विचकर्तार्धचन्द्रेण तथा यन्तुः शिरो महत् । तथाभ्वाग्यहुमिर्याणीः पातयामास भूमी

गृहीत्वा मुसलं घेगासदुद्राय स्थले शुद्धम् । जघान तेन दैत्येन्द्रः शिखिर्नशिबिषादनम्

ततो मोहं गतो यर्हो प्रचकम्पे मुहुर्मुहुः ।

ततः स्कन्दः पुनस्तं च जघानाशुरपुङ्गवम् ॥ १६ ॥

प्रविच्छेदयतिना घेगासमुसलं चातिदादनम् ।

तारेयः शक्तिमादाय जघान कौञ्जदारणम् ॥ २० ॥

सोऽपि शक्तिं मुमोचाय भमोषां दुष्टघातिनीम् ।

ततः समग्रं सा शक्तिर्विदम्बयकारिणी ॥ २१ ॥

यमदण्डसमा तं च मित्वा पुनर्गुहं गता । स गतातुः पपातोऽर्थां कालवधवसुपात्र

पुष्पधूपादिभिः स्कन्दः सर्वदैवैः प्रपूजितः ॥ २३ ॥

इति धीपाद्यपुराणे प्रथमे अष्टादशोऽध्याये नामैवराजनिर्गमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## द्विसप्ततितमोऽध्यायः

यमेन देवान्तकदुर्धपदुर्मुखवधः ।

उवाच उवाच ।

ततो देवान्तको दैत्यो ह्यनश्नत्समरंप्रति । रणं चकार धर्मेण सन्दृष्टीष्ठुटो बली ॥ १ ॥

ततश्चावाग्रधीद्वार्यं सर्वलोकधिगदितम् ॥ २ ॥

देवान्तक उवाच ।

न जानासि महर्षमं दुष्टमोहाद्यथाक्रमम् । पापपुण्यप्रयोगेन निग्रहानुग्रहे प्रभुः ॥ ३ ॥

महं च निर्मितो धाम्ना करोमि तव शासनम् । न जानासि यतोधर्मं कालमृत्युपुरःसरः

न रोगो न जरा कालो न मृत्युर्न च किङ्कटः ।

धर्मात्प्रवर्तितः कर्मो कष्टं याति दिवानिशम् ॥ ५ ॥

उवाच उवाच ।

उपस्था खैवं महाधीर्यं यमं धर्मैकसाक्षिकम् । स जघानत्रिमिर्बाणैः कालमृत्युसमग्रमैः

प्रविच्छेद स धर्मात्मा ते त्वग्वैर्विशिलैस्त्रिमिः ।

ततस्तूष्णेः शरैः प्राज्यैर्युगान्तानलसग्रमैः ॥ ७ ॥

निजघान धर्मं सङ्ख्ये स विच्छेद शरैः शरान् । एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो परस्परजपैरिजौ

जघ्नतुः समरेऽन्योग्यं महाबलपराक्रमौ ।

महोरात्रं तयोर्युद्धमवर्त्तत सुदारुणम् ॥ ९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः शक्त्या प्रशमनं कृत्वा । विभेद् दैत्यशार्दूलो हाहकारयुक्तो बली ।

तामेवाप्य कृत्वा धर्मा गृहोत्था शक्तिकां द्रुतम् ।

निजघान तयैवामुं स्तनयोन्तरे मृशम् ॥ ११ ॥

सविह्वलितसर्षाङ्गो मुखादग्गतघोणितः । ततः क्रुद्धो मद्गतेजा धृत्वा दण्डं सुदारुणम्

अमोघं पातयामास तस्य दैत्यस्य विग्रहे । सार्वं रथं तथा सूर्तं योद्धारं शस्त्रसङ्घम्

चकार भस्मसाक्षं च शमनः क्रोधमूर्च्छितः । पतिते च तथा दैत्ये दुर्घर्षो नाम दानवः  
 शमनं शूलहस्तस्तु प्रदुद्राव जिघांसया । शूलहस्तं समाशान्तं घडघातलसन्निभम्  
 भाससाद रणे मृत्युः शक्तिहस्तोऽतिनिर्मयः ।

स च दृष्ट्वाऽसुरो मृत्युं शूलेनैव जघानह ॥ १६ ॥

शक्तिं चैष ततो मृत्युः प्रविक्षेप रणाजिरे । संदह्य सहसा शूलं बहिकूटसमप्रभम् ।  
 दैत्यस्य हृदयं भिस्था गता सा च घरातलम् । सरयः स पपातोर्न्या शक्तिजर्जरविप्रभः  
 अधान्यो दुर्मुखो मृत्युं शूलचपापो महाबलः । लङ्गचर्मधरः कालो रथ एष गतोऽभवत्  
 दृष्ट्वा तं विशिलैः प्राञ्चैर्जघान स यमं रणे ।

स चाप्लुत्य रथादेधो ह्यसिना च सकुण्डलम् ॥ २० ॥

शिरश्चिच्छेद सहसा पातयिरथा च भूतले । हतशेषं बलं सर्वं प्रदुद्राव दिशो दश ।  
 इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे देवान्तकदुर्घर्षदुर्मुखघधो नाम  
 द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥

## त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्रेणान्यनमुचिरघः ।

ध्यास उवाच ।

अधान्यो नमुचिः क्रुद्धः स्यन्दनस्थो दिर्घोक्तः ।

विशिलैर्द्वयामास घोरेराशीविषोपमैः ॥ १ ॥

ततस्तु संयुगेदेवाः सिद्धकिप्रत्यगमाः । न शक्नुयन्ति याजानो घेगं सोढुं समन्ततः ।  
 रथमुद्येयधोऽश्वेन युक्तं मातलिनेरितम् । पुरस्कृतः समास्थाय प्रागमक्षं महाबलम् ।  
 दृष्ट्वा शत्रुं महापीर्यं नमुचिर्दत्तपुङ्गवः । अप्रपीदासधं संख्ये यचनं सानुगे तदा ॥ ४ ॥  
 नमुचिरुवाच ।

प्राहृतं निर्जरं

न च प्रियम् ।

न लाभकृतकं वापि ॥ जयस्तु पुरन्दर ! ॥ २ ॥

तस्मात्त्वयि हतेऽत्रैव सर्वं भवति शाश्वतम् ।

देवराज्यं प्रलप्स्यामि सुखं भोग्यं सुरालये ॥ ६ ॥

श्यास उवाच ।

तमद्रवीन्महातेजाः शकः परपुरञ्जयः ॥ ७ ॥

इन्द्र उवाच ।

स्तावाक्पमात्रेण सर्वत्र सुलभा भवेत् । महापराक्रमं यद्वा भरति ते दानवाधम ! ॥

वरापस्वाहये धीर्यं पुरं नेष्यामि मास्करे ॥ ८ ॥

श्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा महातेजाश्चुकोप दैत्यपुङ्गवः ।

पञ्चभिर्निशितैर्याणैर्जघान सुरसत्तमम् ॥ १० ॥

स्तु विच्छेद् मघवा ध्रुवमैः पञ्चभिर्दुर्लभम् । जग्मतुस्ती महाधीर्यो समरे विजयैषिणो

अन्योन्यं सहसा वेगाच्छरैश्चिच्छिन्नतुः शरान् ।

विमिदातेऽथ गात्राणि विशिखैर्मिदुरोपमैः ॥ १२ ॥

यपूर्वं कृतं कर्म ताभ्यामेव रणे भृशम् । लाघवं शरसन्धानप्रहमोक्षेषु दुर्लभम् ॥

द्यातु विस्मयं जग्मुर्देवा सुरगणास्तदा । एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो मायास्त्रं प्रमुमोच ह ॥

विशिषाः शतशस्तत्र विनिश्चेदस्समन्ततः ।

शकः कोपात्पुनः शीघ्रं धनुष्यन्य धीर्यवान् ॥ १५ ॥

जघान विशिखैरमैः सर्वगात्रेषु सङ्घवलन् ।

ततो मार्गणसाहसैरष्टमिस्त्रवधिकं तथा ॥ १६ ॥

विमिदाते ततोऽन्योन्यं चिच्छिदाने परस्परम् ।

शरैर्निगतराकाशं ददृशुस्तत्र संयुगे ॥ १७ ॥

निपतन्ति घराशृष्टे सङ्गृहातैः सहस्रशः । यथं सुदीर्घकाले तु गते तस्मिन्महादये ॥ १८ ॥

मायास्त्रं दर्शयामास क्रूरहृत्प्रमुचिस्तदा । तामसं त्रिषु लोकेषु हृतं स्यात् निन्ततम् ॥



परस्परं न पश्यन्ति देवासुरगणा भृशम् । सूर्यचन्द्रप्रहाणां च वङ्गीनां च दिवौकसान् ।  
वस्मिस्तमसि दुष्पारे गमस्तिनैव दृश्यते । दैत्यस्य च ततस्तूणं शरैर्मिश्रितोपमे ।

धिमानाः सर्वदेवाश्च शक्रश्चरणसंमुखे ।

शरैर्विमिश्रदेहास्तु निपेतुर्धरणीतले ॥ २२ ॥

प्रमग्नाश्चापरेशूरास्संयान्ति च दिशो दश । कूटं तस्य पच्छिाय सर्वदेवावितो इति ।

सौम्यमस्त्रं मुमोचाथ दिवि सूर्यशतप्रमम् ।

विलम्बितं समालोक्य शक्या च बहुघण्टया ॥ २४ ॥

जघानोरसि दैत्यस्य स पपात व्यघान्वितः ।

विराट्संलभ्य संज्ञां च दैतेयः क्रोधमूर्च्छितः ॥ २५ ॥

गत्वावेगात्सुरध्रेष्ठमैराघतं दधारह । त्रासयामास सुतरामिन्द्रस्य द्विर्यं दया ॥ २६ ॥

धृत्वा स तु गजं सेन्द्रं मुमोच धरणीतले । ततो भूमिगतः शक्रः कश्मलं च क्षणं मत्

अप्लुत्य स दैत्येन्द्रो गजवन्तान्तरस्थितः ।

शक्रं प्रहीतुकामस्य वधार्थं यूथपस्य सः ॥ २८ ॥

असिनाऽसुरमुख्यस्य शिरश्छिन्वा न्यपातयत् ।

सर्वे प्रजङ्घयुर्देवा गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ २९ ॥

मुदितास्ते च मुनयः स्तुवन्ति सुरसत्तमम् ॥ ३० ॥

इति धीपामपुराणे प्रथमे खण्डे द्वितीयनमुविषयो नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

विष्णुना मधुदैत्यवधः ।

ध्यात उपाच ।

दिव्यं त्वं समारणाय धनुर्दंस्तो बन्धैर्वृतः । गत्वा च माधवं सद्भ्येदेवासुरगणामृतः ।  
क्रोधेन महताविष्टो मधुनिर्गम्यदंनः । अग्रपीत्पुनर्यं पाकपमथ्ययं हरिमीभ्यतम् ॥ १ ॥

नारायण न जानासि युद्धधर्ममितः कथम् ।

अन्याथाद्दुर्वधोपायं कृत्वा नष्टो न शोचसि ॥ ३ ॥

अनेन पट्टयोगेन व्ययहारे कृतस्य च ।

सुरत्वं धोषनष्टं स्यादन्यसृष्टिं करोम्यहम् ॥ ४ ॥

स्थामेव निदनिष्यामि सह देवगणैर्विह । इत्युक्त्वा घनुरादाय जघान विशिष्टैर्विभुम् ॥

माधवस्तान्विभेदाथ शरैर्वज्रसमप्रभैः । बहुमिस्सर्वगात्रेषु जघान च मधुं ततः ॥ ६ ॥

माययाच्छादितः सोऽमूदैत्यरतं सुरसत्तमाः ।

ये वै शूराश्च रुद्राद्यास्त्रिदशास्सत्त्वधारिणः ॥ ७ ॥

देव्यो नानाविधाश्चापि सायुधा बाह्वान्विताः ।

सैनान्यो गणपा देवा लोकेशहरविष्णवः ॥ ८ ॥

अन्ये प्रहादयो देवाः सर्वे सुध्यन्ति सङ्गताः । विनष्टाश्च तदा देवा मधोर्वैमायया ध्रुपम्

संमुखे विमुखे चैव शस्त्राचपृष्टिबृष्टिभिः । पतन्ति सहसा देवा भूमौ शस्त्रामिषीडिताः

पतस्मिन्नन्तरेविष्णुर्गृहीत्वा च सुदर्शनम् ।

असुरान्मायया देवाज्जघान रणमूर्धनि ॥ ११ ॥

अथ तेषां शिरांस्येव च्छित्त्वा चैव सहस्रशः ।

पातयामास देवेशो दैत्यानां च दुरात्मनाम् ॥ १२ ॥

एवमन्यान्विभुर्दैत्यान्द्राघयामास सङ्गरात् ।

तं हृष्ट्वा मुनयो देवाः सर्वे विस्मयमाययुः ॥ १३ ॥

कर्णे कर्णे प्रजल्पन्ते देवा मुनिगणास्तथा ॥ १४ ॥

मुनिदेवा ऊचुः ।

सदा देवैकगोप्ता च हरिरव्यय ईश्वरः । सर्वसाक्षी त्वयं देवो दैत्यजिष्णुर्गुणेषु ॥ १

कथं हन्ति सुरान्सर्वान्ब्रह्मन्तं सह जायते ॥ १६ ॥

व्यास उवाच ।

पतस्मिन्नन्तरे दूरे मधुर्मायां प्रयोजिता । हररूपधरो भूत्वा अश्वरीद्धरिमप्ययम् ॥ १

परस्परं न पश्यन्ति देवासुरगणा भूयाम् । सूर्यचन्द्रप्रहाणां च वंहीनां च दिवौकसाम् ।  
तस्मिंस्तमसि दुष्पारे गमस्तिनैव दृश्यते । दैत्यस्य च ततस्तूणं शरैरग्निशिखो

चिमन्नाः सर्वदेवाश्च शक्राभरणसंमुखे ।

शरैर्विभिन्नदेहास्तु निपेतुर्धरणीतले ॥ २२ ॥

प्रमग्नाश्चापरेशूरास्संयान्ति च दिशो दश । कूटं तस्य परिज्ञाय सर्वदेवानितो ॥

सौम्यमस्त्रं मुमोचाथ दिवि सूर्यशतप्रभम् ।

विलम्बितं समालोक्य शक्त्या च बहुघण्टया ॥ २४ ॥

जघानोरसि दैत्यस्य स पपात व्यथान्वितः ।

चिरात्संलभ्य संज्ञां च दैतेयः क्रोधमूर्च्छितः ॥ २५ ॥

गत्पाथेगात्सुरश्रेष्ठमैराघतं दधारह । आसयामास सुतरामिन्द्रस्य द्विरर्धं रथा ॥

धृत्वा स तु गजं सेन्द्रं मुमोच धरणीतले । ततो भूमिगतः शक्रः कश्मलं च क्षणं

अपप्लुत्य स दैत्येन्द्रो गजदन्तान्तरस्थितः ।

शक्रं प्रहीतुकामस्य पथार्थं यूथपस्य सः ॥ २८ ॥

असिनाऽसुरमुख्यस्य शिरश्छिन्वा व्यपातयत् ।

सर्पे प्रजहृदुर्द्धवा गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ ३० ॥

मुदितास्ते च मुनयः स्तुयन्ति सुरसत्तमम् ॥ ३० ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे खण्डिकण्डे द्वितीयनमुचिवधो नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

विष्णुना मधुदैत्यवधः ।

ध्यास उपाच ।

दिव्यं रथं समास्थाय धनुर्दस्तो बलेयुतः । गत्वा च माधवं सङ्ख्येदेवासुरगजाग्र  
क्रोधेन महताविष्टो मधुर्निर्जन्मवर्धनः । अग्रवीत्पुरुषं बाणयमध्वर्य हरिमीश्वरम् ॥ १

नारायण न जानासि युद्धधर्ममितः कथम् ।

मन्यायाद् दुर्वधोपायं कृत्वा नष्टो न शोचसि ॥ ३ ॥

अनेन पङ्कयोगेन व्यवहारे कृतस्य च ।

सुरत्वं चोपनष्टं स्यादन्यसृष्टिं करोम्यहम् ॥ ४ ॥

स्यामेव निहनिष्यामि सह देवगणैर्निह । इत्युक्त्वा घनुरादाय जघान विशिखैर्विभुम् ॥

माघवस्ताम्रिमेक्ष्य शरैर्ध्वजसमप्रभैः । यदुमिस्सर्वगात्रेषु जघान च मधुं ततः ॥ ६ ॥

माययाच्छादितः सोऽभूदैत्यस्तं सुरसत्तमाः ।

ये वै शूराश्च रुद्रापास्त्रिदशास्सस्वचारिणः ॥ ७ ॥

दैव्यो मानाविधाभ्यापि सायुधा बाहनाम्बिताः ।

सेनान्यो गणपा देवा लोकेशाहरविष्णवः ॥ ८ ॥

मन्ये प्रहादयो देवाः सर्वे युष्यन्ति सङ्गताः । विनष्टाश्च तदा देवा मधोर्वैमायया ध्रुपम्

तंमुले विमुले ख्ये शरशक्त्यृष्टिबृष्टिभिः । पतन्ति सहसा देवा भूमौ शस्त्रामिपीडिताः

पतस्मिन्नन्तरेविष्णुर्गृहीत्वा च सुरदर्शनम् ।

असुरान्मायया देवाजघान रणमूर्धनि ॥ ११ ॥

अथ तेषां शिरांस्येव क्षिप्त्या ख्येव सहस्रशः ।

पातयामास देवेशो दैत्यानां च दुरात्मनाम् ॥ १२ ॥

एवमन्यान्विभुर्दैत्यान्प्रापयामास सङ्गरात् ।

तं हृष्ट्या मुनयो देवाः सर्वे विस्मयमाययुः ॥ १३ ॥

कर्णे कर्णे प्रजल्पन्ते देवा मुनिगणास्तथा ॥ १४ ॥

मुनिदेवा ऊचुः ।

रा देवैकगीता च हरिरथ्यथ ईश्वरः । सर्वसाक्षी त्वयं देवो दैत्यजिष्णुर्गुणैर्युगे ॥ १५ ॥

कथं हन्ति सुरान्सर्वान्कल्याणत इह जायते ॥ १६ ॥

व्यास उवाच ।

स्मिन्नन्तरे दूरे मधुर्मायां प्रयोजिता । हररूपधरो भूत्वा अत्रवीक्षरिमव्ययम् ॥ १७ ॥

मधुरुषाच्च ।

दैत्यानामग्रतः पाप रणे देवान्समन्ततः ।

हत्या किं ते शिवं चाद्य धर्मकीर्तिर्यशोगुणाः ॥ १८ ॥

महतोन्मत्तभावेन न जानासि परान्स्वकान् ।

अतस्त्वां निशितैर्याणैर्नयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥

व्यास उवाच ।

पद्ममुषस्थाशरैरुग्रैर्जघान केशवं रणे । निषकर्त शरांस्तांस्तु माधवो वाक्पद्मप्रवीणः ।

माधव उवाच ।

जानामि त्वां रणे दैत्यं हररूपधरं प्रियम् । शूरं शूरबिकर्माणं मधुं मायानियोजितम् ।

मिथ्यालोकं प्रदास्यामि पातयित्वा रणाजिरैः ॥ २० ॥

व्यास उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे तीक्ष्णैः शरैर्विध्याधसंयुगे । जटिलं घृणकेतुं च घृणमस्थं महेश्वरम् ।

तयोर्युद्धमतीयासीद्देवदानवयोस्तदा । परस्परं मिन्दतोश्च प्राप्तान्प्राप्ताऽछराश्वरैः ॥ २१ ॥

धुरप्रेण धनुस्तस्य विच्छेद हरिरव्ययः । ततश्च पातयामास घोटकं घृणरुपिणम् ॥ २२ ॥

स दैत्यश्शूलहस्तोऽथ प्रदुद्राव जगत्पतिम् ।

स्त्रामयित्वा ततः शूलं जघान परमेश्वरम् ॥ २३ ॥

त्रिमिथिच्छेद वाणैश्च शूलं कालानलप्रभम् ।

ततः क्रूरो मदाबाहुर्मधुर्मायातिमायिकः ॥ २४ ॥

दर्पीरुपं समास्थाय सिंहस्थः प्रययौ हरिम् । शरैर्वहुविधैर्विष्णुं जघानैवाप्रवीणवः ॥ २५ ॥

मधुरुषाच्च ।

स्वामी तु मे सुगन्धेष्ठ त्वदेव पातितो युधि ।

महं त्वां च दनिष्यामि सुगौ स्वान्दधिनायकौ ॥ २६ ॥

व्यास उवाच ।

उत्तमनं च दैतेयं जघा नष्टदुर्माणैः । स पपात महीपृष्ठे गतागुलदितोद्गुणितः ॥ २७ ॥

पितरौ निहतौ हृष्ट्वा मायाबद्धो महाबलः ।

स्कन्दः शक्तिं समादाय प्रायाद्योधयितुं हरिम् ॥ ३१ ॥

ततो घाताऽग्रघोद्वान्वयं स्कन्दं मोहप्रपीडितम् ॥ ३२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

पश्य त्वं पितरौ दूरे पश्यन्तो युद्धमीदृशम् ।

मन्तरिक्षे भ्रमन्तो च संस्थितौ लोकसाक्षिणौ ॥ ३३ ॥

व्यास उवाच ।

पतच्छ्रुत्वा ततो हृष्ट्वा तत्रैवाग्निरधीयत । ततो धुन्धुञ्च सुन्धुञ्च भ्रातरौपतिद्विपितौ ॥

वधं प्रतिहरैर्युद्धे पेततुर्गच्छोपरि । खड्गहस्तं च धुन्धुं च सगदं सुन्धुमेघ च ॥ ३५ ॥

विच्छेदं मन्वकेनैव गदयाऽसाद्यत्परम् । पेततुस्तौ धरापृष्ठे प्रवीरौ क्षतविक्षतौ ॥

मधुस्तदागतस्तूर्णमग्नध्वानं तमोवृतः । पातयामास विष्णोर् च मायया शतपथतान् ॥

ततस्तान्पर्वतांश्छित्त्वा तमसोऽन्तर्गतो युधि ।

क्रौघात्सुवर्शमेनैव शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥ ३८ ॥

तौ ब्रह्मादिभिर्देवैश्शम्भुना त्रिदशैरपि । मधुसूदन इति क्यातिर्विष्णोर्लोकेषु कारिता ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे मधुघधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥३४

## पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्रेण वृत्रासुरवधः ।

व्यास उवाच

तौ वृत्रौ महातेजा दैत्यानां प्रचरो युधि । दिग्गजाद्वयं समाकृढः प्राद्वपद्वयलसूदनम् ॥

गच्छन्तं ततो वृत्रं शरैः कालानलप्रभैः । विव्याध सर्वगात्रेषु द्विरदस्यो महादधे ॥२॥

तौ वृत्रस्तु शीघ्रं च जिष्णोरेध पतन्निषा । विव्याध सहसा तेन स चचालमहाबलः

**मधुर्याच ।**

दैत्यानामग्रतः पाप रणे देवान्समन्ततः ।

हृत्प्या किं ते शिवं चाद्य धर्मकीर्तिर्यशोगुणाः ॥ १८ ॥

**महतोन्मत्तभावेन न जानासि परान्स्थकान् ।**

अतस्स्थां निश्चितैर्वाणैर्नयामि यमसादनम् ॥ ११ ॥

### ਭਾਸ਼ਾ ਉਪਾਧਿ :

पयमुपस्थाशरैरुपैर्जघान केदारं रणे । निष्कर्तुं शरांस्तास्तु माधवो बाणमप्रवीणः ।

**माध्यम उपाय ।**

माधव उवाच ।  
जानामि त्वां रणे दैत्यं हररूपधरं प्रियम् । शूरं शूरविकर्माणं मधुं मायानिपोत्तमम् ।

मिथ्यालोकं प्रदास्यामि पातयित्वा रणजिरे ॥ २२ ॥

**व्यास उवाच ।**

पतन्मिन्नन्तरे तीक्ष्णैः शरैर्विधायसंयुगे । अटिलं वृषकेतुं न वृषभस्य प्रवेष्टव्यम् ।

तयोर्बुद्धमतीपासीद्वेदानययोस्तदा । परस्परं भिन्दतोऽप्राप्ताप्राप्ताच्छास्त्रैः ॥१७॥

क्षुरमेण घनुष्मन्म्य विष्टेह दगिरव्ययः । तनञ्च पानवामास घोटकं गृह्णन्तिम् ॥<sup>११</sup>

स वैत्यशुभदम्नोऽथ प्रदुद्राथ जगत्पतिम् ।

स्वामयित्वा ततः शुद्धं ज्ञानं वामेश्वरम् ॥ ५१ ॥

त्रिमिश्रितेद् वाणैश्च दृष्टं कालानुक्रमम् ।

ततः शूरा महाबाहुर्मनुमावातिमायिकः ॥ २७ ॥

देवीहर्षं समाख्याय सिद्धयः प्रयथा दग्धिम् । शरीरैर्दुर्विधैर्विष्णुं प्रपारिषाम्युत ।  
मयाध्यायम् ।

मधुपराय ।

इदमां तु मे सुप्रभेष्ट त्वदेव शान्तिना मुपि ।

अथ त्वां च हनिष्यामि शुभो कथञ्चिन्मायसी ॥ २॥ ॥

अथवा अथवा ।

॥ १ ॥

पितरौ निहतौ हृष्ट्या मायाबद्धो महाबलः ।

स्कन्दः शक्तिं समादाय प्रायाद्योद्ययितुं हरिम् ॥ ३१ ॥

ततो धाताऽब्रवीद्वाक्यं स्कन्दं मोहप्रपीडितम् ॥ ३२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

पश्य से पितरौ दूरे पश्यन्तौ युद्धमीदृशम् ।

मन्तरिक्षे स्रमन्तौ च संस्थितौ लोकसाक्षिणौ ॥ ३३ ॥

व्यास उवाच ।

तच्छ्रुत्वा ततो हृष्ट्या तत्रैवान्तरधीयत । ततो धुम्धुञ्च सुग्धुञ्च भ्रातरौपतिद्वितीयौ ॥

अपि प्रतिहरैर्युद्धे पेततुर्गच्छदोपरि । खड्गहस्तं च घुग्धुं च सगदं सुग्धुमेघम् ॥ ३५ ॥

विच्छेदं गदकेनैकं गदयाऽसादयत्परम् । पेततुस्तौ घरावृष्टे प्रवीरौ क्षतविशतौ ॥

मधुस्तदागतस्तूर्णमन्तर्धानं समोद्धतः । पातयामास चिष्णीं मायया शतपर्यन्तम् ॥

ततस्तान्पर्यन्तांश्छित्त्वा समसोऽन्तर्गतो युधि ।

क्रोधात्सुदर्शनेनैव शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥ ३८ ॥

ततो ब्रह्मादिभिर्देवैराभुना त्रिदशैरपि । मधुसूदन इति कथातिथिं प्लोलोकेषु कारिताः ॥

इति धीपामपुराणे प्रथमे खण्डिकण्ठे मधुवधो नाम खनुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

## पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्रेण वृत्रामुरवधः ।

व्यास उवाच

ततो वृत्रो महातेजा दैत्यानां प्रकरो युधि । दिग्गजादयं समाकृतः प्राद्वपदृष्यगूरवम् ॥

भाग्यघ्नस्तं ततो वृत्रं शरैः कालानलप्रभैः । विष्याथ सर्वगात्रेषु क्षिरदण्डो मदन्धः ॥ २ ॥

ततो वृत्रस्तु शीघ्रं च त्रिष्णोरेव पतन्निष्ठा । विष्याथ सहस्रं तेन स कालमदाकृतः ॥



आत्मानं च समाश्वास्य धनुस्त्रयं धीर्यवान् ।

ध्वर्यं शरध्वरेण तस्य दैत्यस्य विग्रहे ॥ ४ ॥

शरांश्छित्त्वा विभेदाशु शरैराशीविषोष्मैः । शतक्रतुं महावीर्यः सर्वदेवाधिपं युधि ।  
ततः शरसहस्रेस्तु दैत्यं विव्याध देवराट् । परस्परं शरा यान्ति हेमरत्नविमूषिताः ।  
सञ्चरन्ति यथा घाता वृत्ताश्शतसहस्रशः । वियत्पथि शरा यान्ति यथा सप्ताश्वरश्मयः

एवं शरसहस्रेस्तु विभिदाते परस्परम् ।

मनोजयसमाः शीघ्रा गाढाः शिखरिणो यथा ॥ ८ ॥

घडघानलसंस्पर्शाः खगाघञ्जारभेदकाः । तयोर्धनुष्मतोर्युद्धे शरास्तुल्यगुणान्विताः ।  
एवं क्रमेण युद्धे च महोरात्रमवर्तत । महेन्द्रो द्विर्यं तस्य शूलेनैव जघान ह ॥ १० ॥

स निपत्य महीपृष्ठे लाघवात्स्वरथं ययौ ।

रथस्थस्तस्य देवस्य शक्त्या चैरावणं दृढम् ॥ ११ ॥

विभेद लाघवेनाशु घञ्जेगेय महागिरिम् । शुरुभे कम्पमानस्तु सेन्द्रः स च महागजः ।  
ततः शक्तिं समादाय आविध्य मघयाऽसुरम् । विभेदोरसि दैत्यस्य स पपात रथोपरि

क्षणारसंज्ञां समालम्ब्य स घिनय पतत्रिणा ।

विभेद समरे शक्तं ॥ ततः कश्मलं गतः ॥ १४ ॥

इन्द्रःसंज्ञां पुनः प्राप्य जघान विशिखैःशितैः । शतकोटिसमैर्वाणीरक्षितो वपयान्वितः  
ततो घृत्रो महाशूलं प्राक्षिपन्निर्जरेश्वरे । शाम्भवास्त्रेण देवेशो घैष्णवास्त्रं मुमोच ह  
वमपोरम्परे व्यास्त्रे षड्विकृतसमप्रभे । अन्योन्यं जघनतुस्तत्र स्फुलिङ्गानि विमुञ्चती ॥

स्पर्शानि च स्फुलिङ्गानामुभयोः सेनयोर्मताः ।

न शकाः सम्मुक्ते स्वातुं शलमा ज्वलने यथा ॥ १८ ॥

दग्धाः पेतुः पृथिव्यां च दिशस्सर्वाः प्रदुद्रुतुः । देवदानवयोर्धोराः शून्यस्तत्रामयद्रवः  
स्यंस्यमस्त्रं समाहूय ध्वजतुः सुभृशंतथा । अस्त्रं निरस्तकं दृष्ट्वा सदैत्यः क्रोधमूर्च्छितः

मायया शीलसन्देशमस्त्रं शक्ने मुमोच ह ।

यार्णाघैः शीलसद्गुहं प्रविच्छेद रणे हृदि ॥ २१ ॥

अधोरं प्रासृजदैत्यः पुच्छते महाबले । कोटिकोटिसहस्राणि जन्तूनां प्रवराणि च ॥  
सिंहशार्दूलभल्लूकवृकव्याघ्रमहागजाः । दग्धशूकादयः सत्त्वाः प्रधायन्ति तृणतृणम् ॥  
धुम्रैरधचन्द्रेभ्य महैः शिलीमुखैस्तथा । असम्प्राप्तान्प्रसिच्छेद मधया पश्यामहे ॥ २२ ॥  
ततो वृत्रो महाबाहुर्धनुरुग्रस्य धीरधान् । विभेद शरसाहस्रैर्वज्रकल्पै शतजतुम् ॥

छित्वा धुम्रैरशक्यं धनुस्तस्य चक्रेत च ।

सूतं चाश्वान्पृथिव्यां च पातयामास तत्क्षणम् ॥ २३ ॥

सकण्टकां गदां भीमां सम्पूज्यासुरसत्तम ।

जघान पद्मिनः शीघ्रं मोहाहन्तो क्षितिं ययौ ॥ २४ ॥

लग्नः सर्वदैवेशो धरणीं समुपस्थितः । ततस्तयोर्गदायुद्धमपतत मुहुर्मुहुः ॥ २५ ॥

तयोः प्रहरतोः शब्दो गदापातोद्गमो ध्रुवम् ।

भाषतं परिषतं च चक्रतुस्तौ पुनः पुनः ॥ २६ ॥

मघ ऊर्ध्वं प्रहारं च पार्श्वयोरतिभीषणम् । बभूवैव तयोर्मुहं लोकालोकमपहृत्म् ॥

दृष्ट्वा देवगणाः सिद्धा दानवा विस्मयं गताः ।

पुत्रपुत्रमानी तु तौ धीमौ मृत्युसंशयमागतौ ॥ २७ ॥

दैवज्ञानपरीराध्य द्रष्टुं नैव तर्हि शिरे । ईशप्रह्लादकः खे तु स्थिता द्रष्टुं तदनुत्तम ॥ २८ ॥

तयोर्दुःकारशब्देन गदापातध्वनेन च । ऊर्ध्वोर्ध्वमगच्छन्तौ हरानेकावजायने ॥ २९ ॥

गने गदे द्वयोरेव काः सञ्पुटितस्तयोः । परं खेदार्थं यमेन तयोरेकत्र निवेनतुः ॥ ३० ॥

तस्मिन्महते धीमौ सङ्गमर्मधमौ तदा । प्रतियोद्धुं महाघोरमादये सङ्गयेतुः ॥ ३१ ॥

नेत्रिभ्यां विपुलकामौ तयोर्गात्रे च मर्मजा । हृदये सर्वलोकेभ्य लाघवादिस्मयंगमैः

वेष्टितानि तयोरेव चर्मणी बभूवर्णके । भीष्मकं बभूवुर्ध्वं च तयोरेव प्रपतने ॥ ३२ ॥

रण्डलं चक्रध्वं च लाघवं च पशितुम् । वृत्रघातपयोर्मुहं वृत्रघातपयोरिव ॥

केरान्पुत्रस्य उतपुत्रस्य सङ्गभृश्यासिना दुग्म् ।

शिरश्चित्तेऽ सहसा मधया रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥

पराङ्मुखस्तपासीदेवानां च समन्ततः । प्रोत्पुलकदया देवा मघकन्यमपूजयन् ॥ ३४ ॥

आत्मानं च समाधास्य धनुस्त्यम्य धीर्यवान् ।

पवर्ष शरघर्षेण तस्य दैत्यस्य विग्रहे ॥ ४ ॥

शरांश्छित्त्वा विभेदाशु शरैराशोचिपोपमैः । शतक्रतुं महावीर्यः सर्वदेवाधिपं युधि ।  
ततः शरसहस्रेस्तु दैत्यं विव्याध देवराट् । परस्परं शरा यान्ति हेमरत्नविभूषिताः ।  
सञ्चरन्ति यथा घाता वृत्ताश्शतसहस्रशः । वियत्पथि शरा यान्ति यथा सत्तावत्परमः ।

एवं शरसहस्रेस्तु विभिदाते परस्परम् ।

मनोजयसमाः शीघ्रा गाढाः शिखरिणो यथा ॥ ८ ॥

पडवानलसंस्पर्शाः खगापञ्जारमेदकाः । तयोर्धनुष्मतोर्युद्धे शरास्तुल्यगुणान्विताः ।  
एवं क्रमेण युद्धे च महोरात्रमवर्तत । महेश्चो द्विस्त्वं तस्य शूलेनैव जघान ह ॥ १० ॥  
स निपत्य महीपृष्ठे लाघवास्परस्य ययौ ।

रथस्थस्तस्य देवस्य शक्त्या चौराघणं दृढम् ॥ ११ ॥

विभेद लाघवेनाशु पञ्जेगेव महागिरिम् । शुशुभे कम्पमानस्तु सेन्द्रः स च महागजः ।  
ततः शक्तिं समादाय भाषिष्य मघवाऽसुरम् । विभेदोदसि दैत्यस्य स पथान् रथोपै  
क्षणारसंज्ञां समालम्ब्य स विनय पतत्रिणा ।

विभेद समरे शक्तं स ततः कश्मलं गतः ॥ १४ ॥

इन्द्रःसंज्ञां पुनः प्राप्य जघान विशिखैःशितैः । शानकोटिसमैर्वागीरक्षितो वृद्धवान्निज  
तनो वृद्धो महाशूलं प्राक्षिपन्निर्यजेश्वरे । शाम्भवास्त्रेण देवेशो वैष्णवास्त्रं मुमोच ॥  
जमपोरम्बरे चास्त्रे बह्निवृत्तसमप्रमे । अग्न्योर्ग्वं जघननुस्तत्र स्फुलिङ्गानि विमुञ्च्य ॥

स्पर्शने च स्फुलिङ्गानामुमयोः सेनयोर्मटाः ।

न शम्भाः सम्मुभे क्थानुं शब्दमा उवलने यथा ॥ १८ ॥

एषाः पंतुः पूगित्वा च दिशस्तर्षाः प्रतुमुषु । देवदानवयोर्धोराः शून्यमनवाप्तप्र  
स्वस्वमस्त्रं समाहूय यजन्तुः सुधृशंगया । अस्त्रं निरस्तकं दृष्ट्वा सरेत्यः क्रोधान्मुञ्चन्

मापया शैलसमोद्गमस्त्रं शस्त्रं मुमोच ह ।

बालोपेः शैलसद्गतं प्रविष्टेद् रणे हृदि ॥ २१ ॥

भयोरं प्राचुर्नदैत्यः पुण्ड्रते मदाबले । कोटिकोटिमह- ॥ इना प्रवरणि च ॥  
 सिंशार्द्रमल्लूकपृक्क्याग्रमहागजाः । दन्दशकाटय ॥ १२ ॥ वन्ति मृगेष्वरम् ॥  
 क्षुप्रैरर्धचन्द्रैश्च भूतैः शिलीमुखैस्तथा । असम्प्रामान्प्रचन्द ॥ १३ ॥ पद्मोऽष्टा ॥ १४ ॥  
 ततो वृत्रो महाबाहुर्धनुरुग्रस्य धीर्यवान् । विभेद शस्त्राहम् ॥ १५ ॥ शतकतुम् ॥ १६ ॥  
 छित्वा क्षुप्रैश्चाक्र ॥ धनुस्तस्य चकनं च ।  
 सूरं चारुपाण्डुधियां च पातयामास ॥ १७ ॥  
 सकण्टकां गशं भीमां सम्पूज्यासुरसत्तम ।  
 जघान पद्मिनः शीघ्रं मोहादन्तो क्षिति ययो ॥ १८ ॥  
 सगदः सर्वदैवेशो धरणीं समुपस्थितः । ततस्तयोर्मन्दायुद्धमवर्तत मुहुर्मुहुः ॥ १९ ॥  
 तयोः प्रहरतोः शब्दो गदापातोद्भूयो ध्रुवम् ।  
 भावतं परिपतं च चक्रतुस्तौ पुनः पुनः ॥ २० ॥  
 यथ ऊर्ध्वं प्रहारं च पार्श्वयोरतिभीषणम् । बभूवैवं तयोर्गुह्यं लोकालोकमयङ्करम् ॥  
 दृष्ट्वा देवगणाः सिद्धा दामघा विस्मयं गताः ।  
 मुहुर्धमानी तु तौ धीरा मृत्युसंशयमागता ॥ २१ ॥  
 ईवदामघयीराश्च द्रष्टुं नैव तदीशिरः । ईशप्रह्लादयः खे तु स्मिता द्रष्टुं तदनुत्तम ॥ २२ ॥  
 तयोर्दुःकायाश्चैन गदापातध्वनेन च । ऊर्ध्वोर्ध्वमगमच्छब्दो ह्यशनेश्चापजायते ॥ २३ ॥  
 मने गदे द्वयोरैव काः सम्पुटितस्तयोः । एवं खेवार्धशमेन तयोरन्त्रे निपेततुः ॥ २४ ॥  
 रतस्मिन्मस्तरे धीरां लङ्घनमधरी तदा । प्रतियोद्धुं महाघोरमाहवे सम्प्रसेतुः ॥ २५ ॥  
 निर्लिप्तौ विद्युदुत्कामी तयोर्गात्रे च चर्मणी । दृश्यते सर्वलोकैश्च लाघवाद्भिस्मयंगतैः  
 विचित्राते तयोरेव चर्मणी यदुवर्णके । भीष्मकं बल्युद्धं च तयोरेवं प्रवर्तते ॥ २६ ॥  
 मण्डलं चकधन्यं च लाघवं च पणिप्लुतम् । वृत्रवासवयोर्युद्धं वृत्रवासवयोरिव ॥  
 केशान्वृत्रस्य उत्प्लुत्य सम्पृथ्व्यासिना दुग्म् ।  
 शिरस्त्रिच्छेद सदसा मघघा रणमूर्धनि ॥ २७ ॥  
 यथादत्ततस्त्वासीद्देवानां च समन्ततः । प्रोत्पुल्लहदया देवा मघवन्तमपूजयन् ॥ २८ ॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः । गीतं गावन्ति भन्धर्वा मुनयः स्तुतिपा

मीताः पलायिताः सर्वे दैत्यास्त्यक्तायुधा दिशः ॥ ४२ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिलखण्डे वृत्रासुरखघो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

## पट्सप्ततितमोऽध्यायः

गणेशेन त्रैगुणिवधः ।

ध्यास उवाच ।

द्युर्मुस्तुरगैर्जुष्टं रथं सूर्यसमप्रमम् । त्रैपुरिः संदरोहायाग्रवीर्याख्यं गणाधि  
त्रैपुरिख्यास ।

पिता मे निहतः पित्रा तव यस्माद्रणाधिप ।

तस्मात्त्वामद्य विशिष्येनं वामि यमसादनम् ॥ २ ॥

ध्यास उवाच ।

ततस्तमग्रवीर्देवो गणेशस्त्रिपुरारमजम् ॥ ३ ॥

गणेश उवाच ।

तप सातेन दुष्टेन शुराणामदितं पुरा । कृतं कर्म महत्पापं धुनं नो जनकेन दि ।  
पापकर्मरतं दुष्टं ह्यात्वा ज्ञानबलेन च । भवर्षीत्तं शरकेन विनर्तं ते वनेन च ।

पट्कात्प्रतारितो मोहात्प्रेगिनो यममन्त्रिरम् ।

तयो व्याहं तत्पथं दैत्य प्रेषयामि क्षणादिह ॥ ६ ॥

ध्यास उवाच ।

अनूपन्नं मदाप्राञ्चं शुराणां ॥ गणाधिपम् । विश्वाचक्षामिस्तीक्ष्णैः कामान्नतमम्

ततः शम्भुदम्भेस्तु दैत्यं विश्वाच साहसम् ।

यमदग्दसमैर्बाणैः शुभ्रैश्च शिरीषाणुणैः ॥ ८ ॥

कटुप्रमैर्महालीङ्गैर्यज्ञानलसमप्रमैः । विषकर्म शरीरस्य लभ्योदरः सुरार्चितः ॥ ६ ॥  
पुनर्विष्याथ विशिखीः सहसा मिथुरोषमैः । शरीरं दितसर्वाङ्गो मूर्च्छितस्तपतुषुचि ॥

ततो मद्रश्च सौमद्रो भीषणो निर्जरागतकः ।

स्यो स्यो गदो समादाय बुद्धुपुष्पं विनायकम् ॥ ११ ॥

युगरते गदापातैर्निजध्नुर्गणनायकम् । लाघवात्तु कृषा हन्त्या गदास्तेषां महायत्नः ॥

मद्रकस्य तु शीर्षे बाह्वन्यपरगुणा तदा । सौमद्रस्योत्तमाङ्गं ॥ भस्तिनामे निपातितम् ॥

भीषणस्य बुद्धारेण शङ्केन निर्जरागतकम् ।

पातयित्वा च देवयो महागिरिसमांस्तदा ॥ १४ ॥

पुनरो गणमुक्त्वाश्च भग्याश्चापातयदुद्विगः । ततः संज्ञां समालभ्य त्रैपुरिध्वासुरोत्तमः

मायया रथं स्वं च जपान सुरसत्तमम् । विशिखीर्यगन्द्रीश्च ध्रुवैर्महकैस्तथा ॥ १६ ॥

ताङ्गु विच्छेद धर्मात्मा पुनर्विष्याथ तं शरीः ।

चतुर्भिः सैन्धवांश्चैव शरीरेण च सारधिम् ॥ १७ ॥

तैः सङ्गतयामास धरण्यां गणनायकान् । लाघवात्तु रथं व्याप्य गत्वा त्रिपुरनन्दनः

शिखीर्यजसदुर्गः संधिमेद गणाधिपम् । हृदिरेणावसिकाङ्गो रुषा घोरयमप्रमः ॥

रुगटे च त्रिभिर्बाणैस्सप्तमिश्च स्तनान्तरे । चतुर्भिर्नाभिदेशे च पञ्चभिर्मुष्टिमस्तके ॥

संधिमेद महाप्रोषो बलिर्न शम्भुनन्दनः । शरीरं दितसर्वाङ्गः स देवयो रणमूर्धनि ॥

करमलं परमं गत्वा सङ्गपात रथोपरि । ततः सूनेन धीरेण गपनीतो रणाजिरात् ॥

विमुक्तं नाहनच्छूरो विनायकः सुरार्चितः । विराट्संज्ञां समालभ्य यन्तारं व्याप्रवीद्वचः

त्रैपुरिदवाच ।

गच्छ, सूत रणे भीरुं विनायकं ह्यारभजम् ॥ २४ ॥

व्यास उवाच ।

ततो यत्ताऽप्रवीक्षाभयं सत्यं पथ्यं च कोमलम् ॥ २५ ॥

सारधिरुवाच ।

ह्यारभजशरान्सौद्रं कस्समर्थो रणाजिरे । तस्मान्मोहगतस्त्वं च मयानीतः प्रभासुतः

एतज्ज्ञात्वा त्विदानीं भो यदुक्तं तद्विधीयताम् ॥ २७ ॥

ध्यास उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे राक्षा प्रेरितः कविसत्तमः । औषवादिप्रयोगेण गजः संज्ञामवो

अकारयच्छतगुणप्राणं च जयमादिशत् ।

प्राजलं मन्त्रितं दत्त्वा करोघास्याङ्गकत्रणान् ॥ २८ ॥

स गजोदशनेरैव स्फोटयामास चै गिरिम् । पर्यंशतसहस्राणि सैन्यानि सैन्यप

पातयामास समितौ गजः परमदुर्जयः ।

सदैत्यस्तस्य पृष्ठस्थः शरैः कालानलप्रभैः ॥ २९ ॥

हत्वा त्वपातयन्नोर्वा मुखयमुख्यान्सुराधिपान् । शरैस्तस्य तदा देवायमदपडस

निपतन्ति महावीर्या रुधिरौघपरिप्लुताः ।

यस्मिन्यस्मिन् मार्गे तु सर्वेत्यः सगजो गतः ॥ ३० ॥

तत्र तत्र चकाराशु भीषणं सञ्चितं शरैः । गजेन पातिताः केचिद्गजारोहेण च

ध्वेगेन ध्रमणेनैव सुराः केचित्प्रतापिताः । एवं सुरगणाध्यक्षाः शास्त्रास्त्रैर्विविधैश्च

स गजं युद्धमिमीता निजध्वुर्वहुभिः शरैः ।

तथापि तद्गजं योद्वधुं न शक्तास्ते महाबलाः ॥ ३१ ॥

क्षिप्रं तास्तु गजो दन्तैस्त्रैपुटोऽपातयच्छरैः । न गता ये धरण्यां च देवा जर्जरवि

धरण्यां गणपं जग्मुर्मितास्ते वेदनातुराः ।

देवानां कर्त्तुं दृष्ट्वा गणाधीशः प्रतापधान् ॥ ३२ ॥

स गजं ताडयामास वज्रानलसमैः शरैः । स गजोद्येगसंलब्धः शरेण च समुत्थित

अथो तौ द्वौ शरैरेव विमिदाते परस्परम् ।

उमौ तौ नर्दमानौ च अन्योन्यं जययैच्छताम् ॥ ३३ ॥

शोणितैर्लिप्तकर्पाङ्गौ धीरमुख्यौसुरासुरौ । अणान् स गजो मत्तो विभेद दशाने.स्य

मासुनाऽग्निद्रुतो नागो धीरयुद्धं तयोः परम् ।

अयोध्यं संविभागे च चतुर्मिषुं दमद्भुतम् ॥ ३४ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ] • देवदैत्यानां द्वन्द्वयुद्धम् •

६४१

स शर्वं तुमुलं युद्धं सर्वलोकमयङ्कुरम् । दशनेर्दशनैरेव शरैरेव शरोत्तमैः ॥ ४३ ॥  
तद्गोष्ममघयुद्धं देवदानवसङ्गरे । आशुको मेदयाञ्चक्रे महानागं महावृत्तम् ॥ ४४ ॥  
पशुनावृष्टवंशाग्रे स्थित्वा तेनाह्नन्त्पुनः । दैत्यस्य दशनद्वारे हृदिस्कन्धेऽथ लाघवात् ॥

स गजः सत्पातोर्न्यां गतामुल्लोहितं धमन् ।

शरांसुर्मूनयो देवास्साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥ ४६ ॥

अपं पुष्पगन्धैश्च गन्धधूपैरपूजयन् । दुद्रुवुर्दैत्यसङ्गाश्च मीताश्च प्राणकातराः ॥ ४७ ॥

तथैव सह पार्वत्या सुरानाह महेश्वरः ॥ ४८ ॥

महेश्वर उवाच ।

जान्येऽस्मैरमोघैश्च दैत्यानाजघ्नुराहये । यावत्तु सेनयोर्नैव जययुद्धं समापयेत् ॥  
इति धीपाद्यपुराणे प्रथमे सृष्टिलण्डे त्रैपुरविमर्दे नाम पद्मसप्ततितमोऽध्यायः ।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

देवदैत्यानां द्वन्द्वयुद्धम् ।

व्यास उवाच ।

धृष्ट्या महेश्वराद्वाक्यं देवाः शक्रपुरोगमाः । दुद्रुवुर्दैत्यसङ्गास्तामस्तर्षे सर्चन्तिमन्तलः ॥  
मात्रगाम महाबाहुः कुम्भो नाम महासुरः ॥ नैर्ऋतो यक्षराजानं गद्या चादनव भृशम्  
शुभवेशो गदापातैर्जघान भृशमुत्तमम् । ततोऽन्योन्यं गदायुद्धममघर्षीयणं तयोः ॥ ३ ॥

चक्रवर्धं महावर्धं पुरो बध्य निबन्धनम् ।

प्रासुरं मीयणं यानं स्फोटनेलामिधास्तिकम् ॥ ४ ॥

तेन हृत्वा महायुद्धमवसाने घनेश्वरः । पातयामास तं स्फोटं तस्य कुम्भस्यभोरसि ॥  
मघर्षं प्लुतलः कुम्भो निरपात महीतले । स्पन्दनस्थो महावीर्यो जगमो हृदिदयं तदा ॥  
अघान शरसद्वैश्च तथैवैरायणं भृशम् । वासवो मिदुरेणैव समिधभेदासुरोत्तमम् ॥ ५ ॥



सपपात धरापृष्ठे गतासुर्लोहितोक्षितः । तथारण्यं सुघोरं च अघोरं घोरमेव च ॥ ८ ॥  
चतुरो गणमुख्याश्च शतया विभेद संयुगे । सेनानीदत्तैव प्रत्येकं पातयामास टायवात्  
सीरभं शरसङ्घैश्च जयन्तो वशमानयत् । शक्तिहस्तं च संहारं यमदण्डं नरान्तकम् ॥

इत्या च पातयामास स भस्मीकृतचिग्रहः ।

कालश्च खड्गपातेन पातयामास वाम्रवम् ॥ ११ ॥

शतया मृत्युर्विभेदाश्च तथानिर्घृणकं रणे । भग्निना दह्यमानाश्च सतैते च महाबलाः ॥  
भद्रबाहुर्महाबाहुः सुगन्धो गन्ध एव च । भौरिको पल्लिको भीम एते सेनाप्रणामिनः  
रणे सन्ध्यादेहाश्च पेतुर्गर्वा गतासवः ।

पाशयज्ञा महाधीर्या घट्टणस्य महारत्ननः ॥ १४ ॥

पेतुर्गर्वा महासखाः शूराः शूरमयानकाः । शूरस्य रश्मिजालेन निहताः पञ्चदानवा  
तुल्यतुल्यगुण्ठुर्मेषस्साधकासाधकामिथाः । क्रूरकौञ्चरणेशानमोदसम्मोदपण्मुखाः ॥ १६ ॥  
शरेर्निपातिता दैत्याः संयुगे मातरिद्विजना । नैर्ऋतो गदया भीमं पातयामास भूजले ।  
शूलपातैश्च रुद्राणां शतशो दैत्यदानवाः । निपेतुः संयुगे भीताः संमुखा रणपण्डिताः

घसूनां शरपातैश्च शूराणां रश्मिमालिनाम् ।

मैघानां करकामिश्च घञ्जपातैस्तुदारुणैः ॥ १६ ॥

निपातिता रणे दैत्याः शतशो बलशालिनः । कुबेरस्य गदापातैर्निपतन्ति ॥ ह्यशः ॥  
शक्रस्य भिदुरेणैव भेदिता दैत्यपुङ्गवाः ।

असङ्ख्याताः पन्तत्युर्ध्वा स्कन्दशक्त्या तथाहताः ॥ २१ ॥

गणेशपशुपातेन पतन्ति मुख्यमुख्यकाः । वैकुण्ठकरमुक्तेन चक्रेण सीमकर्मणा ॥ २२ ॥  
दैत्यानां प्रघराणां च शिरांसि निपतन्ति कौ । रामनो यमदण्डेन कोटिकोटिसदृशः

अपातयत्तदा भूम्यां कालः खड्गेन दानवान् ।

मृत्युशक्त्या तथा दैत्यान्पाश्रीपाशेन चापरान् ॥ २४ ॥

पातेन सप्तकादीनां सुधांशोः शिशिरेण च ।

अन्वारोहो अरो मन्यो हनिपाशस्तथा गजान् ॥ २५ ॥

परिधेण गजं कुम्भे देत्यानां नाशयत्ततः । एवमश्वान्गजांश्चैव लाघवात्स न्यपातयन्  
 एवं सिद्धैश्च गन्धर्वैरुत्सरोभिर्महाकतैः । अन्याभिर्देवताभिश्च समानृगणनायकैः ॥ २७ ॥  
 निषानिता महोघोरा ये ॥ प्रलयदानवाः । शरैश्च पङ्कगपातैश्च शूद्रशक्तिगणैश्च ॥  
 पट्टिपरिधकुन्तैश्च पातयन्त्यसुरगन्धुराः । एवं संक्षीयमाणेषु दैन्यराट् समपश्यन् ॥ २८ ॥  
 वादित्परयसद्वाशं रथं रत्नचिभूषितम् । शातकुम्भमयं दिव्य घण्टाभासभूषितम् ॥  
 लाकाध्यजसम्पूर्णं रथं शक्रयोषमम् । समारहा महार्थारो हिम्पवाक्षोऽनुगधिप ॥  
 पान शरजालैश्च हुर्निधायः सुरासुरैः । ससैन्यानि गजान्वारो गन्धाश्च सहस्रैर्धवान्

पातयामास भूमौ च शतशोऽप्य सहस्रशः ।

एवं चरन्सधृन्देषु निखिलेषु दिषोकसाम् ॥ ३३ ॥

पातयामास दैत्येन्द्रः शरीघान्मृत्युसन्निभान् ।

क्रमेण समरे बाध देवसैन्यान्धमन्धत ॥ ३४ ॥

श पुष्करिणीधृन्दे गजः कञ्चनं शिनैः । शरपातैरथो वेगारिसदृगादेः पुनः पुनः ॥  
 त्स्यां पतिता वेगासक्ता देवैश्चरस्य च । दशभिश्च सुरतीक्ष्णामैर्जयन्तं ॥ जगानद ॥  
 न पञ्चमियाणैः शक्रः पञ्चदशेन तु । चित्ररथं विशतिभिः पञ्चविंशतिभिर्गुहम् ॥  
 न्य त्रिशरेणैव यत्वारिशच्छरैर्यमम् । तथैव कालं मृत्यु च पाणिना त्रिगुणेन च ॥  
 कौशं जगरमाणं दशभिर्दशभिः शरैः । बह्वभिश्च सप्तभिश्चैव रत्नान्सर्वाङ्गपट्टपङ्क-  
 त्सर्वाश्च सरारैः सिद्धगन्धर्वपन्नगान् । दशाष्टदशभिः पद्मिपुंसे देवाभिर्नरवक्त्र-  
 शीघ्रादतिधीर्यास्तु शीघ्रलाघवदर्शनात् । आण्डप्रस्ताः सुरामीत्या प्रतिष्णुनं वेद्वराः  
 गगनसद्गुरोः शरैर्मर्मविभेदिभिः । ताडिता निर्जरायुदे मूर्च्छिता धरणी ययुः ॥

तस्यैव संमुखे स्थानुं न शक्नुः प्रयरास्तुराः ।

ततो देवा विनिधूनास्त्रिदिशेदीन संयुताः ॥ ४३ ॥

यं ते हरिं तत्र शरणं ताडिता ययुः । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः प्रादृष्टिपुं नरोत्परम्  
 विष्णुदधान् ।

अधुना यच्छ दैत्यस्य सम्मुखं रणमर्धनि ॥ ४५ ॥

व्यास उवाच ।

नाशाय स ततस्तूर्णं गतस्तस्यान्तिकं जघात् ।

सरथं मार्गर्णोर्मित्वा विष्णुमारोघयज्जघम् ॥ ४६ ॥

रथस्य सममुखे दैत्य उवाच विष्णुमन्ययम् ॥ ४७ ॥

दैत्यराज उवाच ।

अन्यसृष्टिं करोम्यद्य हत्वा त्वां च सनिर्ज्जरम् ॥ ४८ ॥

व्यास उवाच ।

ततो विष्णुरवाचेद् गर्जन्तं दैत्यपुङ्गवम् ॥ ४९ ॥

विष्णुरवाच ।

शक्तस्त्वं स्पृष्टं मे पाप यदि युद्धे स्थिरो मय ॥ ५० ॥

व्यास उवाच ।

तः शर्यातैरेव जघान विष्णुमन्ययम् । असम्भ्रान्तः स विष्टेद् यमदण्डनिमाग्न्यात्  
पुनः शरसदद्यानि प्रेरयामास तं रणे । -

तांश्च धिष्ठया शरैः शौरिस्तं च विज्याय मार्गर्णोः ॥ ५१ ॥

गौत्याद्दद्यामिः संस्पर्शाद्वाहयानलैः । शरैश्च भेदकेस्तोक्ष्णैः शगमैश्च मनोहरैः ॥

प्रापयान्तेऽशयास्त्रस्य तूलगुल्फकृणोपमैः । हेमैः शरसश्मेस्तु ताडिनो दैत्यपुङ्गव ॥

प्रापयाम्यर्दितः क्रुद्धो धृत्वा शिखरिणं रणे । जघान माधवं त्रेणाद्रिरण्याशो महद्वज्रं ॥

तं च सन्मूर्णयामास गदया ह्रीलया हरिः । पथं पर्वतराह्यं पानिनं तु क्रमेण वि ॥

तथैव प्रापयाम्यूर्णं हरिणा दानवाणिना ।

पुनर्बाहुसदद्यानि हत्वाऽसौ दानवोत्तमः ॥ ५२ ॥

तैः शक्तिनिरत्युग्रैः शृङ्गैः परशुधादिभिः । सपथं बहुमिर्विशृणुं क्रोधाभिरेव वीरता ॥

प्रैस्तु तेनैव ग्रहिणांश्चिष्टेद् सुरसन्तमः । शरैर्देतिर्दंष्ट्राघोरैस्तुशाला मन्दहूतैः ॥ ५३ ॥

विज्याय सर्वगात्रेषु ह्यमुगुह्योपमैस्तैः । दानवाणिनिं सङ्ख्ये दानवो हरिर्नृप ॥

तं च बद्धमन्त्रा गन्ध्या सर्वशक्तिमनुजाम् ।

कालजिह्वोपमां घोरोमष्टघण्टासमन्विताम् ॥ ६१ ॥

हरेरसि पीने च विद्रुत्या पातयद्बुद्धुतम् । शुशुमे स सुराष्ट्रेस्तडित्थत्सान्द्रमेघम् ॥

ततश्च चुक्रुशुर्देत्या जयेति साधुधादिनः ।

ततश्चक्रं दैत्यसैन्ये दानघारिर्व्यसर्जयत् ॥ ६३ ॥

तेषां शिरांसि सञ्छिद्य माघयं पुनरागमत् ।

सदैत्यं शक्तिपातेन पातयामास वै रणे ॥ ६४ ॥

चिरात्सहां समालम्ब्य बह्विधाणेन केशवम् ।

निजघान रणे क्रुद्धो हरिः कौघेरमाक्षिपत् ॥ ६५ ॥

ततो मुमोच मायास्त्रं चासुरं चातिदाहणम् । सिंहव्याघ्रलुलायांश्चतुर्द्विपसरीमृषान्

जघान समरे विष्णुं हिरण्याक्षः प्रतापवान् ।

ततो मायास्त्रसम्भूताञ्छस्त्रास्त्रौघान् रणे हरिः ॥ ६७ ॥

प्रविच्छेद शरैरेष शूलेनैषमताडयत् । सविह्वलितसर्वाङ्गस्तत्क्षणलोलितोक्षितः ॥ ६८ ॥

विबर्क्य हरन्विष्णुरसृग्विप्लुतविग्रहः । तच्छूलं च त्रिमिर्षाणीः प्रविश्याध तुराधिपः

वधयं सध्यजं केतुं रथं चीवातपत्रकम् । यन्तारं च प्रविच्छेद दशभिश्च हरिः शरैः ॥

पातिने च रथे दैत्यः समलुप्त्याथ रथपरम् । आरुरोह सदैत्येन्द्रः सम्मुरं चाकरोदुपली

ततो युद्धं महाघोरममघलीमहर्षणम् । हिरण्याक्षस्य च हरेर्लोकविस्मापनं मदम् ॥

मरुत्युद्धं तथान्योन्यं हतप्रतिहृत्नं च तत् । ततो नियुद्धे सततं दिव्यपर्यशनं गतम् ॥

ततो दैत्यो महासस्त्रो पवृधे वामनो यथा ।

मुखेन जग्राह दग्धं त्रैलोक्यं ससरावरम् ॥ ७४ ॥

मूमण्डलं समुद्धृत्य धिवेश च रसानलम् । शेषाश्च विविशुर्देत्वास्त्रानुप्रातिसंयुताः ॥

पत्नी विष्णुर्महातेजा क्षारया दैत्यबलं महत् । दधार कथं पाराहं दैत्यरात्रिपातया ॥

धृत्वा कोढतनूं विष्णुर्धिवेश तमनुद्रुतम् ।

तत्र गत्वा रसामूले रसानलगतां मर्हाम् ॥ ७७ ॥

इहा स्वदंष्ट्रयोर्दग्धे लोकाधारां वसुन्धराम् ।

तां धृत्वा गच्छतस्तस्य विष्णोरमिततेजसः ॥ ७८ ॥

जगाम दैत्येन्द्रो धृष्टं धामिस्तुदन्नम् । मायाक्रोडतनुर्विष्णुर्दुर्वशांसि सहस्रा ॥

जलोपरि दधारेमां धरां भूधर एव च ।

तस्यां न्यस्य स्वसत्त्वं च स चकार तदाऽचलाम् ॥ ८० ॥

ततः पश्चात्स संलग्नो दैत्यराट् समुपस्थितः ।

क्रोधेन महताविष्टो जघान गदया हरिम् ॥ ८१ ॥

मायया सूकरो विष्णुस्तां गदां समघञ्जयत् ।

योगयुक्तो यथा मृत्युं कौमोदस्वाहनश्च तम् ॥ ८२ ॥

पुनः ख्याविष्टो हिरण्याक्षो महाबलः । मुष्टिना प्राहरद्देवं दक्षिणे तु भुजे प्रभोः

युद्धं महाघोरं सव्यासख्यं गतागतम् । परिभ्रमणविशेषं कृतानुकरणं तथा ॥ ८४ ॥

ततो ब्रह्मादयो देवा युद्धं पश्यन्ति स्ते स्थिताः ।

स्थस्ति प्रजाभ्यो देवेभ्य ऋषिभ्यश्चेति चाब्रुवन् ॥ ८५ ॥

ऊचुश्च देवदेवेशं विष्णुं धाराहरूपिणम् ॥ ८६ ॥

ब्रह्मादय ऊचुः ।

मा क्रोड बालवद्देव जहामुं देवकण्ठकम् ॥ ८७ ॥

व्यास उवाच ।

विष्णुर्महातेजा मायाधाराहरूपधृक् । ब्रह्माद्यनुमतिं प्राप्य चक्रे प्राक्षिपदुत्थणम्

दृष्टसूर्यसङ्काशं सहस्रारं महाप्रभम् । दैत्यान्तकरणं रौद्रं प्रलयाग्निसमप्रभम् ॥ ८९ ॥

तद्यकं विष्णुना मुक्तं हिरण्याक्षं महाबलम् ।

चकार भस्मसात्सद्यो ब्रह्मादीनां च पश्यताम् ॥ ९० ॥

यान्तकरणं रौद्रं चक्रं चागमदच्युतम् । ततो ब्रह्मादयो देवाः शक्रमुण्याश्च लोका

दृष्ट्वा च विजयं विष्णोः स्तुवन्ति स्म समागताः ॥ ९१ ॥

देवा ऊचुः ।

मताः स्म विष्णुं जगदादिमूर्तं सुरासुरेन्द्रं जगतां प्रपालकम् ।

यन्नामिप्यार्तिकलपद्मयोर्निर्यभूच तं वै शरणं गताः स्मः ॥६२॥

नमो नमो मत्स्यवपुर्देवाय नमोऽस्तु ते कच्छपरूपधारिणे ।

नमः प्रकुर्मंश्च नृसिद्धरूपिणे तथा पुनर्धामनरूपिणे नमः ॥ ६३ ॥

नमोऽस्तु ते क्षत्रविनाशनाथ रामाय रामाय दशाम्यनाशिने ।

प्रत्यावहन्त्रे शितिवाससे नमो नमोऽस्तु बुद्धाय च दैत्यमोहिने ॥ ६४ ॥

स्लैच्छान्तकायापि च कल्किनाम्ने नमः पुन क्रोड्यपुर्धराय ।

जगद्धितार्थं च युगे युगे भवान्निर्मतिं कथं रघुसुगमवाय ॥ ६५ ॥

निपूदितोऽयं ह्ययुना किल त्वया दैत्यो हिरण्याक्ष इति प्रगल्भः ।

यश्चेन्द्र मुण्यान्मिललोकपालान्संहृत्या चैव तिरश्चकार ॥ ६६ ॥

स वै रघवा देवहितार्थमेव निपातिनो देवपर प्रसीद ।

त्वमस्य विश्वस्य विसर्गकर्ता ब्राह्मेण रूपेण च देवदेव ॥ ६७ ॥

पाता त्वमेवास्य युगे युगे च रूपाणि घटसे सुमनोहराणि ।

रघुमेव कालाग्निहरश्च भूत्वा विश्वं क्षयं नेत्यसि चान्तकाले ॥ ६८ ॥

अतो भवानेव च विश्वकारणं न तेऽपरं जीवमजीयमीश ।

यत्किञ्च भूतं च भविष्यरूपं प्रघर्त्तमानं च तथैव रूपम् ॥ ६९ ॥

सर्वं त्वमेवासि धराचराकथं न भाति विश्वं त्वदृते च किञ्चित् ।

अस्तीति नास्तीति च भेदनिष्ठं त्वध्येषभातं सदसत्स्वरूपम् ॥ ७० ॥

ततो भवन्तं कतमोऽपि देव न क्षातुमर्हत्स्वविषयव्युत्थिः ।

अन्ते भवत्पादपरावर्णं जन्म तेनागताः स्मश्रुशरणं शरण्यम् ॥ ७१ ॥

ख्यास उवाच ।

ततो विष्णुः प्रसन्नात्मा उवाच त्रिदिशोकसः ॥ ७२ ॥

विष्णुस्वाच ।

तुष्टोऽस्मि देवा भद्रं धो युष्मत्स्तोत्रेण साम्प्रतम् ॥ ७३ ॥

एवं प्रपठेद्भक्त्या विजयस्तोत्रमादरात् । न तस्य दुर्लभं देवास्त्रियु स्तोत्रेण किञ्चन ॥

गयो शतसहस्रस्य सम्यक्दत्तस्य यत्फलम् ।

तत्फलं समवाप्नोति कीर्तनाच्छ्रवणान्नरः ॥ १०५ ॥

सर्वकामप्रदं नित्यं देवदेवस्य कीर्तनम् । अतः परं महाज्ञानं न भूतं न भविष्यति ।

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिक्षण्डे देवासुरसंग्रामसमाप्ती विजयस्तोत्रं नाम

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥

## अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

रणे मृतानां दैत्यानामुत्तमगतिप्राप्तिः ।

संजय उवाच ।

येऽसुराश्च मृता युद्धे सम्मुचे विमुचेऽपि वा । नर्ति तेनामर्हप्रत्यक्षोऽनुमिच्छामि नराः ।

असङ्ख्यानां इमे दैत्यास्त्रैलोक्ये समरागरे ।

अद्याप्यासन्नगाः कुत्र एतन्मे शंस भोगुरो ॥ २ ॥

ध्यास उवाच ।

ये मृतास्मंमुचे मृता दैत्यानां प्रवरा रणे ।

स्वयं प्राप्य च दैवस्थं योग्यमश्नन्ति शाश्वतम् ॥ ३ ॥

यासां वा यत्र बाधनां नाशस्तच्चिमुचिताः । सर्वकामप्रदा मृताः स्वर्गदीनोपगमुताः ।

स्योन्मत्तानुबद्धारिगन्धार्थी गवयुष्मतेः । क्षिप्रमुपायमपरेषां मृता वृकगिरी मृताः ।

सर्पवदाम्बुजा मर्देव मयरीवनाः । यत्र नर्ति स्त्रियो दिव्याः शर्वास्त्रमूर्तिनाः ।

यत्र शार्प्यं प्रचूर्णन्ति मर्देव समुद्रागरे । सर्वं प्रमादुर्ध्वं प्राप्य चरितोऽप्यशमन्ति ।

सर्वमंमुचगात्रेण दिव्यमग्निशायनम् । विमुच्यते कालरा भोगा ये च प्रावापिनो रणे ।

ये चैव चैव चैव विजयिनः । नर्ति सर्वदुर्गं मद्रमद्रोद्रागदरे ।

ये चैव चैव चैव विजयिनः । नर्ति सर्वदुर्गं मद्रमद्रोद्रागदरे ।

ये चैव चैव चैव विजयिनः । नर्ति सर्वदुर्गं मद्रमद्रोद्रागदरे ।

अष्टमतिमोऽध्यायः ] \* मनुष्ययोनिगतदैत्यानांभ्यभावतोदैत्यव्यवर्णनम् ॥ ६५६

राशौ वा विपिने नष्टे चोरास्सहसकारिणः । सर्वमशरता मृदा म्देच्छामोऽद्भ्यग्नकाः  
बुधवकाः परेस्लेच्छा एते ये कूटयोनयः । तेषां वैशाचिका भाषा लोकाचारोऽपिपदे  
नास्ति शौचं तपो ज्ञानं न देवपितृवर्णम् ।

दानध्यादादिकं यज्ञे सुराणां च प्रपूजनम् ॥ १३ ॥  
मृत्पां च न शुभ्रया द्विजदेवतपस्विनाम् । ज्ञानलोपादत्तस्नेषां मन्त्रशीर्षं न पिपदं ॥  
मातरं मणिनीं चान्यां गृहिणीं कामयन्ति च ।

सर्पो विपर्ययो लोकारसदाचारो मलीमसः ॥ १५ ॥  
साहस्योऽद्भ्यमनानां च भग्येषां गौत्रपासिनाम् ।  
कुलजातास्सदा दैत्या येषां पुण्यमकारणम् ॥ १६ ॥

दुर्गतिं च मृता यान्ति द्विजव्याशिशुचातिनः । गपाशिनो दुरात्मानोऽहमक्षयभक्षणेताः  
कीटयोनिं मज्जन्त्येते तत्पथश्च पिपीलिकाः । न मन्त्रेषु न देवेषु न वरुणं न सुरादिषु ॥  
ममजः सहजस्नेषां स दुद्दो माययुसयः । सोमकेशप्रणेताः कल्पमशरता भुवि ॥  
माहमं च मत्तं दानं ज्ञानं यज्ञादिकं न धम् । मन्मयमांसादिषु प्रीता भूयाश्चकनमानिनः  
सदा कामास्सदा लोमास्सदा क्रोधमदान्विताः ।

पथकण्वरतोद्वेगा घ्नन्सर्पूनि सन्निध्याः ॥ २१ ॥  
बुभुक्षाः कुञ्जनप्रीताः पूतिगन्धराता मराः । न देवेषु न विजेषु न धर्मधर्मिषु च ॥  
स्नोत्रमग्नादिके पुण्ये यथाकार्येष्वभिधवाः । बहुरागाधिरोपाश्च बहुद्वयविरुद्धाः ॥  
नरजानिषु दैत्यानां विद्वान्प्रेतानि भूतानि । न जानन्ति परं शोकं न सुरैर्गर्वं न वागम्  
गर्भरूपमिच्छन्ति नातिथिं न शुक्रमिच्छन् । न देवं न सुतं तोर्वं न मित्रं न च वरुणम्  
स्यजे दानं ॥ जानन्ति भक्षणादविरुद्धम् ।

गौपायन्ति धर्मं यस्मान्ने यथा नरकदिनः ॥ २६ ॥  
जानन्तिऽपि धर्मं बिबिधमिदानीं च राजानि । न ददातुर्गन्धिपथधनार्थं दानम् ॥  
नरानां स्नानं यद्भार्यलोकाविगर्हितम् । श्रोत्रं च पुण्यं च मृत्पुण्यं च दानम् ॥  
यद्दुपपा मित्रं सान्परीषदिवर्जिताः । दानदुपपादकानां बहुतो मत्तमश्नः ॥



गृहपीडादिपात्राणां स्रष्टृच्छोचं न रोचने ।

॥ पश्यन्ति सुखं स्त्रीणां विशन्ति कानने द्रुतम् ॥ ३० ॥

विधसोच्छिष्टपूतीनां भक्षणेऽभिरता भुवि । अन्नपानं च शयनमन्धकारेषु रोचते ॥

कदाचित्स्वस्थता नास्ति कचिद्वा शुचिता तनो ।

लक्षणं नरलोकेषु प्रेतानामीदृशं किल ॥ ३२ ॥

हिताहितं न जानन्ति मित्रामित्रं गुणागुणम् ।

पापपुण्यादिकं स्थानं ज्ञानं देयद्विजार्चनम् ॥ ३३ ॥

परिमित्रमुदासीनं न विदन्ति स्वमावतः । मर्त्यस्याः पशवस्ते च ज्ञायन्ते पुद्गिसंमतेः  
पुद्गुध्या नानात्वभाषाश्च घ्नन्ति च मृयाभुवि । यक्षरूपा नरास्ते च सर्वकर्मेयहिम्नताः

एषां भेदं प्रवक्ष्यामि लक्षणं धरणीतले । विजाता मर्त्यलोकेषु पापस्यैवानुक्षणः ॥

मलीमसभुवि प्रस्थं नागरं छद्मरूपिणम् । विघसादि प्रभोक्तारं काकमादुर्दनीषिणः ॥

ममक्ष्ये निरतः पापः कुपकुरः पूतिसंप्रियः । प्रवृत्तस्तर्षगुह्येषु भक्ष्याभक्ष्यसमीधनः ॥

भूयसां पश्यादियोनिनां कुलेषु प्राप्तसम्भवाः ।

शुनो विगृह्य हस्तेन ग्लेच्छानां भक्षणप्रियाः ॥ ३६ ॥

वेशीयास्सूकराणां च तथा धरणयोधिनाम् । पोषणेभक्षणेप्रीताः पूतिगर्ह्येषसाधुषु ॥

तर्पते करणाग्रहेः काष्ठसञ्चयसङ्ग्रहे । विज्ञेयास्ते सदाग्लेच्छाः क्षत्रियाणामपाकुलाः

लोकानां नष्टधर्मे च सदा शौचविषर्जिते ।

कुलीनानां तदा ग्लेच्छा भविष्यन्ति च दस्यवः ॥ ४२ ॥

तेषां संसर्गतोऽग्नये-च सम्यग्धावन्नमोजनात् ।

मैद्युनात्तस्य योयासु तद्धार्यं तु व्रजन्ति ते ॥ ४३ ॥

अस्मिन्काले जनास्सर्वे दुःखरोगप्रतापिताः । दुर्मिश्रान्नपरा मूढाः सदा रात्रप्रगोष्ठिनाः

अत्रासद्ये रता मर्त्याः सर्वशौचविषर्जिताः । न धूयन्ते जनेरेव पुराणागमसंहिताः ॥

मघमांसप्रियाः पापास्सर्वमक्षास्तुदादजाः ।

दादजावारनिरता नित्यं छलपरायणाः ॥ ४६ ॥

। पुष्पन्ति सुतास्तातं प्रसुचं च गुरुनपि । न शुश्रूषन्तिवै भृत्याःस्वामिनंगुणशालिनम्  
तारिं न स्त्रियः काश्चिच्छ्वशुरौ च स्वमातरः । नित्यकष्टा नरास्तत्र कलहश्च गृहेगृहे

नृषा म्लेच्छाः सुरापाश्च तथा मन्त्रिपुरोहिताः ।

मनुष्यैश्च बलिस्तेषां मत्स्यैर्मांसैर्निरामिषः ॥ ४६ ॥

पापण्ड्यासाधोगेभ्यः प्रधाना गुणवार्तयोः ।

धनिकैः कोकिलैर्मन्वेर्ध्यातं तैस्तु मक्षीतलम् ॥ ५० ॥

ततोऽग्नौन्यं प्रिया मृदा बने घानगरेषु च । मक्ष्याभक्ष्यंसमश्नन्तिमरस्यमांसादिकंनराः

एनै द्विजातयश्चान्ये भुञ्जन्ते खानुपापकम् ।

भक्तिमन्तं पशुं खान्यत्सर्वे यान्त्यपुनर्भयम् ॥ ५२ ॥

पातयन्ति पितृगपापाः सर्वे ते पूर्वदेवकाः ।

पिशाचा राक्षसा ये च मर्त्यका शुल्लका भुवम् ॥ ५३ ॥

एते खादितयप्रीता न देवा न च मानुषाः ॥ ५४ ॥

संजय उवाच ।

कथं च मरत्यभावेषु लक्षं जानन्ति तास्विकाः ।

एतं मे संशयं नाथ दूरीकुरु ततस्ततः ॥ ५५ ॥

व्यास उवाच ।

तपापानुरूपास्तु द्विजातिष्यन्यजातिषु । असुरा राक्षसाः प्रेताः स्वभार्य ॥ त्यजन्तिने

जाता ये चासुरा मर्त्ये सदा ते कलहोत्सुकाः ।

कुहकाः कचराः क्रूराः पित्रेया राक्षसा भुवि ॥ ५७ ॥

नोद्विग्रादिकं वानं तथा देवार्चनं भुवि । उग्रमावाहनं लब्ध्वा राज्यं भुञ्जन्तिशाश्वतम्

न शौर्यादिकं पुण्यं पुनः पापक्षयं व्रजेत् । एषमुर्व्यां तथा नाके नागलोके यमालये ॥

येन तपसा काश्चित् सुररथं लभते दिवि । वामुदेवं समाराधय ग्रहादः सुरपूजितः ॥

तयानघको दैत्यः स्तुत्वा तत्सम्यकोऽभवत् । तस्यैव गणमुख्यत्वंलेभेभूर्ध्वप्रदायकः

ते चान्ये च यक्षोबलिरिन्द्रो भविष्यति । गच्छन्ति सद्गतिं तात । दामुश्च च सर्वदा

शुद्धपीठादिपात्राणां सहस्रच्छोचं न रोचने ।

न पश्यन्ति सुखं स्त्रीणां पिशन्ति कानने द्रुतम् ॥ ३० ॥

विद्यसोच्छिष्टपूतीनां भक्षणेऽभिरता भुवि । भग्नपानं च शयनमन्धकारेषु रोते ।

कदाचित्स्यस्यता नास्ति क्वचिद्वा शुचिता तर्को ।

लक्षणं नरलोकेषु प्रेतानामीदृशं किल ॥ ३२ ॥

दिताहितं न जानन्ति मित्रामित्रं गुणागुणम् ।

पापपुण्यादिकं स्थानं स्नानं देयद्विजार्चनम् ॥ ३३ ॥

अरिमित्रमुदासीनं न विदन्ति स्वभाषतः । मर्त्यस्थाः पश्यन्ते न ज्ञापन्ते बुद्धिसंमत्तं

युद्धया नानात्वभाषाश्च क्षमन्ति च मृगानुवि । यक्षरूपा नरास्ते च सर्वकर्मवद्विभूता

पपां भेदं प्रवक्ष्यामि लक्षणं धरणीतले । विज्ञाता मर्त्यलोकेषु पापस्वैवानुरूपः ।

मलीमसभुवि प्रस्थं नागरं छन्नरूपिणम् । विद्यसादि प्रभोक्तारं काकमादुर्गतीन्ति ।

अभक्ष्ये निरतः पापः कुक्कुरः पूतिसंम्रियः । प्रवृत्तस्सर्वगुह्येषु भक्ष्याभक्ष्यसंज्ञितः ।

भूम्यां पश्वादियोनिनां कुलेषु प्राप्तसम्भवाः ।

शुनो विग्रहा दस्तेन ग्लेच्छानां भक्षणप्रियाः ॥ ३६ ॥

विशेषात्सूकराणां च तथा खरणयोधिनाम् । पोषणेभक्षणेप्रीताः पूतिगर्होषसंभुज

पर्यते करणाद्गृहेः काष्ठसञ्चयसङ्ग्रहे । विज्ञेयास्ते सदाग्लेच्छाः क्षत्रियाणां प्रपातुः

लोकानां नष्टधर्मं च सदा शौचविपरिजिते ।

कुन्तीनामां तद्ग्लेच्छा भविष्यन्ति च दस्यवः ॥ ४२ ॥

तेषां संसर्गतोऽग्रे च सम्बन्धादस्माभोजनात् ।

मैथुनात्तस्य योपासु तद्वायं ॥ प्रजन्ति ते ॥ ४३ ॥

तस्मिन्काले जनास्सर्वे दुःखरोगप्रतापिताः । दुर्भिक्षान्नपरा मृदाः सप्त रात्र्यन्तेऽपि

तत्रासत्ये रता मर्त्याः सर्वशौचविपरिजिताः । न भूयन्ते अनेरेष पुराणागममन्त्रितः ।

मघमांसप्रियाः पापास्सर्वभक्ष्यास्सुदारुणाः ।

दारुणाचारनिरता नित्यं छलपरायणाः ॥ ४६ ॥

न पुष्पन्ति सुतास्तातं प्रसुवं च गुरुनपि । न शुश्रूषन्तिवै मृत्याःस्वामिनं गुणशालिनम्  
मर्तारं न स्त्रियः काश्चिच्छ्वशुरी च स्वमातरः । नित्यकष्टा नरास्तत्र कलहश्च गृहेगृहे

नृपा भ्लेच्छाः सुरापाश्च तथा मन्त्रिपुरोहिताः ।  
मनुष्यैश्च बलिस्तेषां मत्स्यैर्मांसैर्निरामिष ॥ ४६ ॥

पापण्ड्यायासथोमेभ्यः प्रधाना गुणघातयोः ।  
धनिकैः कोकिलैर्मन्दैर्व्यासं तैस्तु महीतलम् ॥ ५० ॥

ततोऽन्योन्यं प्रिया मूढा धने चानगरेषु च । मश्याभक्ष्यंसमश्नन्तिमरत्यमांसादिफलराः  
धने द्विजातयश्चान्ये भुञ्जन्ते खानुपापकम् ।

मक्तिमन्तं पशुं खान्यत्सर्वे यान्त्यपुनर्मयम् ॥ ५२ ॥  
पातयन्ति पितृगपापाः सर्वे ते पूर्यदेवकाः ।

पिशाचा राक्षसा ये च मर्त्यका गुह्यका ध्रुवम् ॥ ५३ ॥  
एते चापि मयप्रीता न देवा न च मानुषाः ॥ ५४ ॥

संजय उवाच ।  
कथं च मर्त्यभावेषु लक्षं जानति तास्त्विका ।

एतं मे संशयं नाथ दूरीकुरु ततस्ततः ॥ ५५ ॥  
व्यास उवाच ।

एतपापानुरुपास्तु द्विजातिधन्यजातिषु । भसुरा राक्षसाः प्रेताः स्वभार्य न त्यजन्तिने  
जाता ये वासुरा मर्त्ये सदा ते कलहोत्सुकाः ।

गुह्यकाः कचराः क्रूराः पित्रेया राक्षसा भुवि ॥ ५७ ॥  
नोद्विजादिकं दानं तथा देवार्चनं भुवि । उग्रभाषाद्धनं लब्ध्वा राज्यं भुञ्जन्तिराज्यतम्

अथ शौर्यादिकं पुण्यं पुनः पापक्षयं व्रजेत् । पथमुर्व्यां तथा नाके नागलोके यमात्ये ॥  
येन तपसा कश्चित् सुरार्चं लभते दिवि । वासुदेवं समाराध्य ग्रहादः सुरपूजितः ॥

तत्तपान्यको दैत्यः स्तुतया तत्सम्यकोऽभवत् । तस्यैव गणमुख्यत्वंलेभेधूर्ध्वमहावनः  
ते वाग्ये च महवीर्यलिखितो भविष्यति । गच्छन्ति सदुर्गतिं तात श्दामुत्र च सर्वदा

केचिद्वैत्यकुले जाताः पृथिव्यां सुरसत्तमाः ।

भाषयन्ति पितृन्सर्वाञ्छतशोऽथ सदृशशः ॥ ६३ ॥

केनापि सुपुत्रेण कुलत्राणं च धीमता । एकोऽपि वैष्णवः पुत्रः कुलकोटिं समुद्धरेत्  
ययन्ते पुण्यतीर्थेषु मुक्तिक्षेत्रे चह्वानतः । ब्रह्मज्ञानविदो ये ते तारयन्ति तरन्ति च ।

एका पतिव्रता नारी कुलकोटिं समुद्धरेत् ।

जितेन्द्रियोऽपि धर्मात्मा द्विजदेवार्चने रतः ॥ ६६ ॥

ये धम कलौ शेषे पुरे जनपदेषु च । एको रक्षति धर्मात्मा पुरे ग्रामं जनं कुलम् ।  
वंशातृमेदुरं चासीदुग्रहणाणां पुरं महत् । तत्र सर्वे द्विजाः शश्वत्सन्ध्यापासनतत्परा  
दपाठरता धीरा देवातिथिद्विजार्चकाः । यज्ञव्रतान्निकर्माणः पट्टकर्मपरिनिष्पदाः ।  
तिष्ठच्छ्रेयं च तेषां वै न पापे वर्तते मनः । कुर्वन्ति सततं धीरा व्रतं यत् सनातनम् ।

कदाचिद्वैद्ययोगाच्च गृहस्थश्च स कोविदः ।

बह्वो जुहोति विप्रर्षिराज्यं मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ ७१ ॥

तस्मिन्काले च तस्यैव मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ।

तत्प्रोञ्जितुं गतः सोऽपि रक्षार्थं स्थाप्य खेटिकाम् ॥ ७२ ॥

तस्यास्तनयधानेन शुना चाज्यं च भक्षितम् ।

मिया तथा ततः पार्श्वस्थीवमूत्रेण सम्भृतम् ॥ ७३ ॥

मसंलक्ष्या जुहोदानीं सविप्रस्त्वरया ततः । आध्ययं च ततो बह्वो लक्षितं तेन तत्क्षणात्  
कृत् वैममयं साक्षारस्पर्शं जाम्बूनदप्रभम् । गृहीत्या तन्मुदा विप्रः पापयोगं यथाह ।  
प्रच्छ पिस्मयादासी कथमेतद्वद प्रिये । मुदा तत्र यथावृत्तं कथितं तु तथा विप्र ।  
ततो निरयं यथाकालं तच्च तस्य प्रवर्तते । समृद्धिरुता मेहे लोकविस्मयकारिणी ।

रया सर्वदेव च तत्पुरे । कृतं कर्मदुराचारं धृत्या लोमादसाधुभिः

पट्टं विराट्यपि । पट्टादेव भयाग्मोद्दामतिघ्नोऽभवत्ततः

दग्धमेव पुरं च तत् । स्त्रियो दुष्टाः जना दुष्टाः सर्वे पापवन्ताः

यै न गतिं ददन् । तस्य भार्या तदा सार्धं पुण्डुःश्वेन संपु

मर्तारं कृच्छ्रसन्तप्ता पुरकार्यं जगाद् सा ॥ ८२ ॥

ब्राह्मण्युवाच ।

कष्टं मे वर्तते नाय दृष्ट्वा त्वां दुःखसंयुतम् । ग्रामाचारमिमं यद्वाऽप्यपरं कर्तुमर्हसि ॥

व्यास उवाच ।

तत्स्तत्र च दोषहः स्मित्वा धनमप्रधीत् ॥ ८४ ॥

द्विज उवाच ।

स्तु जीवति पापेन त्यक्त्वा धर्मं परं हितम् । स दैवेयो महाभागेऽप्यनुत्पन्नमवम्

एतं विद्या तुराबाराः सद्गारास्तपस्विच्छदाः ।

भतिपातकयोगाच्च महापातकसंमताः ॥ ८६ ॥

इपापेन महता प्रयास्यन्ति रसातलम् । मन्तेऽपुनर्मेवं प्राप्तापराधान्तो न विद्यते ॥

महमेकोऽत्र तिष्ठामि स्वपुण्यपरिरक्षणात् ॥ ८८ ॥

व्यास उवाच ।

ततस्सा तमुवाचेद् लोकहास्यं वक्षस्तव ।

वक्तुमर्हसि नद्यात्रे न पुरोऽन्यस्य कस्यचित् ॥ ८९ ॥

द्विज उवाच ।

[ यास्यामिचान्यत्र इतोऽहं तत्क्षणातिप्रिये । सवितैः स्वजनेरेष पुरोपास्यत्यधोगतिम्

व्यास उवाच ।

एयुक्त्वा परमप्रीतः सङ्गृह्य च धनं स्वकम् । क्षिप्रं सचतया सार्धं यथोसीमान्तरं द्विजः

स्थित्वाऽपश्यत्पुरीं तावत्स्थिरा तिष्ठति पूर्ववत् ॥

सा खाद तं पतिं साध्वी पुरीं चेयं न नश्यति ॥ ९२ ॥

विमृश्य तामुवाचेद् विप्रवर्यस्तु विस्मितः । किं नु तिष्ठति तत्रैव द्रष्टव्यमस्मदुद्गृह्यद्द्विजः

विचार्य सा धवं प्राह मया सान्त्वा उपानहो । नानीते तिष्ठतस्तत्र धारयिष्यामि चिनुये

एवमुक्त्वा पतिं साध्वी गृहीत्वा त्रि उपगता । पत्युरभ्यगतां दृष्टं पुरं निर्ध्वयनं गतम्

लो विप्रादयो वर्णाः कथराः पुरवासिनः । तिष्ठन्ति मरके घोरे दुःखिताभ्यापुनर्मे ॥

कृच्छ्रायमपुरं यान्ति नास्ति तेषां च निष्कृतिः ।

पूतिगन्धं ततोऽमेध्यं वर्जनीयं प्रकीर्तिनम् ॥ ६७ ॥

पूर्ववद्वक्षणे प्रीतो ह्यद्य पापं करोति च ।

स्तेयशीलो निशाचारी बुधेर्ज्ञेयस्स वञ्चकः ॥ ६८ ॥

अबुधः सर्वकार्येषु अज्ञातः सर्वकर्मसु । समयाचारहीनस्तु पशुरेव सत्रालिप्तः ॥ ६९ ॥

एषमुष्ट्राक्षस्तस्मिन् भक्षादिनकुलादयः । हिंस्रो ज्ञातिजनोद्वेगी रणे युद्धे च कातरः

विघ्नसाक्षिप्रियो नित्यं नरः श्या कीर्तितो बुधैः । चौर्यकर्मरतो नित्यं द्युमित्रप्रवञ्च

मिथुने कलहो नित्यं मर्त्यस्तु परिकीर्तितः । प्रकृत्या चपलो नित्यं सदा भोजनवञ्च

प्लवगः काननप्रीतो नरः शास्त्रामृगो भुवि ।

सूचको भाषया बुद्ध्या स्वतन्त्रोऽन्यजनेषु च ॥ १०३ ॥

उद्वेगजनकस्याद्य स पुमानुरगः स्मृतः । बलवान्क्रान्तशीलश्च सततं घातपत्रपः ॥ १०४ ॥

पूतिमांसप्रियो भोगी नृसिंहस्समुदाहृतः ।

सतस्यनादेव सीदन्ति भीता अन्ये दृकादयः ॥ १०५ ॥

द्विरक्षदि नरा ये च क्षायन्ते दूरदर्शिनः । एवमादिक्रमेणैव विजानीयान्तरेषु च ॥ १०६ ॥

सुराणां लक्षणं धूमो नररूपं व्यवस्थितम् । द्विजदैवातिधीनां च गुरुसाधुतपस्विनाम् ।

पूजातपो रतो नित्यं धर्मशास्त्रेषु नीतिषु । क्षमाशीलो जितकोधः सत्यपार्श्वीतिनेन्द्रिय

अलुब्धः प्रियपाकशान्तो धर्मशास्त्रार्थसंप्रियः ।

दयालुर्दण्डितो लोके रूपवान्मधुरस्वरः ॥ १०६ ॥

षागीशः सर्वकार्येषु गुणी दक्षो महायशः ।

साशरद्धाणि विद्वांश्च गीतनृत्यार्थतत्त्ववित् ॥ ११० ॥

आत्मपिपादिकार्येषु सर्वतन्त्रास्वरैषु च । हविष्येषु च सर्वेषु गःष्येषु च निराग्निरे ॥

सयोगास्वादद्रव्ये च प्रत्यग्रे चातिशोभने । गन्धमाल्येषु वस्त्रेषु शास्त्रेष्व्यामरणेषु च

सम्प्रीतध्यातिर्यो दाने पार्यणादिषु कर्मसु ।

स्नानदानादिभिः कार्ये ग्रन्थैः सुरार्चनैः ॥ ११३ ॥

कालो गच्छति पादेष्व न क्लीयं वासरं भवेत् । अयमेवमनुष्याणां सदाचारो निरन्तरम्  
 देवपूजानवाचारोगीयने मुनिसत्तमैः । किन्तुसत्त्वाधिको देवो मनुष्यो भीत एव च  
 गर्भाः सर्वदा देवः सदैव मानवो मृदुः । दयोऽस्तुन्या च सम्प्रीतिर्न देत्यादी भवेत्किल  
 प्रीतिमात्रं परं सौख्यं सौहृदं सुखं शुभम् । देवमानुषयोरेव दैत्यराक्षसयोस्तथा ।  
 प्रेतादीनां च प्रेतेषु पश्यां प्रीतिः पशोरपि ।

• काकादयः स्वजातो च तथान्ये च स्वजातिषु ॥ ११८ ॥

तिष्ठन्ति चाप्रीता पिपा तेषां च लक्षणम् । एवं पुण्यविशेषेण सविशेषास्तुजातिषु  
 प्रियाप्रियं पिजानीयात्पुण्यापुण्यं गुणागुणम् ।

दम्पत्योर्न सुखं किञ्चिज्जातिभेदान्तरां भुवि ॥ १२० ॥

ज्ञातिषु भवेत्प्रीतिर्मुक्तौ वा निरयेऽपि वा । मतिपुण्याल्लभेदायुः शोभनाः पुण्यकारिणः  
 पापात्मानो लभन्तेऽन्तं ये च दैत्यादयो नराः ।

इते जाताः सुग भूमौ न दैत्याश्चान्यजातयः ॥ १२२ ॥

गयानेकपादं च द्विपदं द्विपरे युगे । सन्ध्यायां च कलेरेव सर्वपादं च सङ्कुलम् ॥  
 दीनां भवेत्जातं भारतं यत्प्रवर्तितम् । ये ते दुर्योधनस्यैव योधाः सैन्यादयस्तथा

• य दैत्यादयः सर्वे ये च कर्णादयो भुवि । गान्धेयो वसुमुखश्च द्रोणो देवमुनिः प्रभुः  
 पश्यतामा हरः साक्षाद्दर्शनं कुलोद्भवः । पञ्चेत्राः पाण्डवा जाता विबुरो धर्म एव च

गांधारी द्रौपदी कुन्ती चैता देव्यो धरातले ।

देवदेत्याः कलेर्मध्ये दैत्याश्शेये च मानवाः ॥ १२७ ॥

उत्पत्त्यन्ते सदाप्रेताः कव्यादाः पशुपक्षिणः ।

तेषां च कुलटा दासी नित्यकष्टा यधीयसी ॥ १२८ ॥

नित्यं ब्रह्मेण सम्प्रीत्या तेषामाचारभाषिणी । कित्तिवेषु च सर्वेषु कलहेऽन्यायकर्मणि  
 रता दैत्यादयो ये ते सर्वे निरयगामिनः ॥ १२९ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

दैत्यादीनां मृगामाघातसुखं न सुखलयम् । कथं भोग्यं कथं सौख्यमारोग्यं बलसञ्चयम्



अज्यमायुस्तथाकीर्तिरमीष्टं दयितं बलम् । नीतिविद्यादिकं भाव्यं जन्मवृद्धं सनातन  
 [नाध्ययनकर्माणि यज्ञादि च कथं प्रभो । एतदासाय शिष्याय मह्यं मो वक्तुमर्हति

व्यास उवाच ।

दैत्यानां साइसादेव तपो भवति निश्चितम् ।

प्रतं यज्ञादिकं चैव सम्प्रीतिः स्वजनस्य च ॥ १३३ ॥

गो दान्तो त्वगुणैर्मुक्तो नीतिशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः । एतैश्च विविधैः पूतः समवेत्सुरलक्षण  
 दुराणागमकर्माणि नाकेष्वन च वै द्विज । स्वयमाचरते पुण्यं सधरोद्धरणभूषः ।  
 पः शौषोषैष्णवध्वाण्डः सौरो गाणप एष च । तारयित्वापितृन्सर्वांस धरोद्धरणभूषः  
 विशेषाद्वैष्णवं हृद्वा प्रीयते पूजयेच्च यः । विभुक्तस्सर्वपापेभ्यस्सधरोद्धरणभूषः ।  
 यत्कर्मनिरतो विप्रः सर्वयश्चरतस्सदा । धर्माख्यातप्रियो नित्यं सधरोद्धरणभूषः ।

विश्वासघातिनो ये च कृतघ्ना मतलोपिनः ।

द्विजदैवेषु विद्विष्टाश्शातयन्ति धरां नराः ॥ १३४ ॥

ये च मघारताः पापा घूहकर्मरतास्तथा । पापण्डवतितालायाः शातयन्ति धरां नराः ।  
 सुकर्मरहिता ये च नित्योद्वेगाश्च निर्मेयाः ।

स्मृतिशास्त्रार्थकोद्विष्टाश्शातयन्ति धरां नराः ॥ १३५ ॥

निजवृत्तिं परित्यज्य कुर्यन्ति बाधमां च ये । गुरुनिन्दारता द्वेषाच्छातयन्ति धरां नराः ।  
 दातारं ये रोधयन्ति पातके प्रेरयन्ति च । क्षीनाभायाग्नीडयन्ति शातयन्ति धरां नराः ।

एते चाग्रे च बहवः पापकर्मकृणो नराः ।

गुरुगणपातयिषा तु शातयन्ति धरां नराः ॥ १३६ ॥

य इदं शृणुयाद्रम्यं गुहादुगुह्यं परं हितम् । न तस्य दुर्मतिर्दुःखं धौर्भाग्यं क्षीना भुवि  
 न दैत्यादौ भवेज्जन्म स्वलोकः शाश्वतं सुखम् ।

नाकाले मरणं तस्य न च पापैः प्रलिप्यते ॥ १३७ ॥

रह सर्वजनाध्यक्षस्त्रिदिवे त्रिदिशेश्वरः । कल्पं कल्पं दिवं मुक्त्वा मोक्षमार्गं प्रपश्ये  
 श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सर्षट्पण्डे पुण्यव्यक्तिर्माहात्म्यसत्तत्त्वमोऽध्यायः ।

## उन्नाशीतितमोऽध्यायः

सूर्यमाहात्म्यवर्णनम् ।

धैराम्पायन उवाच ।

प्रमथत्ययमाकाशे नित्यं द्विजवर प्रमो ।

कोऽयं को वा प्रमाथोऽस्य कुत्रजातो घृणीश्वरः ॥ १ ॥

किं करोति हि कार्यं वै यतो रश्मिमयोभृशम् । देयमुनिपरैस्सिद्धैश्चारणैर्देत्यराक्षसैः

निखिलैर्मानुषैः पूज्यः सदैव ब्राह्मणादिभिः ॥ २ ॥

व्यास उवाच ।

त्वं ब्रह्मणस्तेजो ब्रह्मदेहाद्विनिस्सृतम् । साक्षादुग्रहामयं विद्धि धर्मकामार्थमोक्षरम्  
पूर्वैर्निर्मलैः कूटमस्तिवर्णं सुदुःसहम् । इहा मनुदुर्बुधैः करैश्चण्डैः प्रपीडिताः ॥

ततश्च सागराः सर्वे धारयन्त्यो नदादयः ।

शुष्यन्ति जन्तवस्तत्र त्रियन्ते चातुराग्रवाः ॥ ६ ॥

यश्चाक्षुषो देवा ब्रह्माणं समुपागताः । इममर्थं तदा प्रोक्षुर्द्विषांश्च पिबिष्यन्तीत् ॥

ब्रह्मोवाच ।

निर्गन्तव्योर्देवाः सत्त्वगो जगदः प्रभुः । अयं रजोमयः साक्षारसुधांशुरतनुमध्यगः ॥

यताम्नां पालितालोकास्त्रैलोक्ये सचराचराः ।

दिव्योपपादका देवा येऽत्रैव जरायुजाः ॥ ६ ॥

एतास्त्वेदं ब्रह्मैव ये चाऽत्रैवोद्भिज्जादयः । सूर्यस्यास्यप्रभार्यं तु यत्तुमेव न दृक्नुमः

नारिणां लोका जनिता पालिताध्रुवम् । अस्यैवसद्वतो नास्ति सर्वेषां परिरक्षणम्

इहाप्युपः काले पापराशिः प्रलीयते । तमाराध्य जना मोक्षं साधयन्ति द्विजातयः

सन्ध्योपासनकाले तु विप्रा ब्रह्मविद् बिल ।

उदुबाहवो मध्वनयेव ते च देवप्रयुजिताः ॥ १३ ॥

अस्यैव मण्डलस्थां च देवीं सन्ध्यास्वरूपिणीम् ।

समुपास्य द्विजास्सर्वे लभन्ते स्वर्गमोक्षकौ ॥ १४ ॥

वरायांपतितोच्छिष्टाः पूतास्तेचास्परश्मिभिः । सन्धयोपासनमात्रेण कल्मषात्पूतानि  
दृष्ट्वा चाण्डालकं गोघ्नं पतितं कुष्ठसङ्गतम् । महापातकसङ्कीर्णमुपपातकसंवृतम्  
पश्यन्ति ये नरास्सूरं ते पूता गुरुकिल्बिषात् । अस्योपासनमात्रेण सर्वरोगात्प्रमुक्तः  
नाश्वर्यम् ॥ च दारिद्र्यं न दुःखं न च शोच्यताम् ।

लभते च इहामुत्र समुपास्य विरोचनम् ॥ १८ ॥

मृदुषा नैव लोकैश्च देवा हरिहरादयः । ध्यानरूपप्रगम्यास्ते दृष्टो देवो ह्ययं स्मृतः ॥ १९ ॥

देवा ऊचुः ।

अस्तु प्रसादनाराध्यध्यास्तूपासनपूजनम् । अस्यैव दर्शनं ब्रह्मप्रलयानलसंमितम् ॥ २० ॥  
सर्वे मरादयस्सत्त्वा मृतायस्थांगता भुवि । अस्य तेजः प्रभावेण प्रनष्टास्सागपाद  
न समर्था वयं सोढुं कथमन्ये पृथगजनाः । तस्मात्तवप्रसादाच्च पूजयामो यथा रवि  
यजन्ति च नरा भक्त्या तदुपायो विधीयताम् ॥ २२ ॥

ध्यास उवाच ।

देवानां वचनं श्रुत्वा गतो ब्रह्मा खगेश्वरम् । गत्वा स्तोतुं समारम्भे सर्वलोकहिताय ॥  
ब्रह्मोवाच ।

देवार्थं सर्वलोकस्य चक्षुर्मूर्तो निरामयः । ब्रह्मरूपधरः साक्षाद्दुष्प्रेक्ष्यः प्रलयानलः ॥  
सर्वं देवस्थितस्त्वं हि सदा वायुसलस्तनौ । भद्रादिपावनं त्यक्तो जीपनं च भवेदुभयम्  
उत्पत्तिप्रलयौ देव त्वमेको भुवनेश्वरः । त्वद्वृत्ते सर्वलोकानां दिनेकं नास्ति जीपनम्  
प्रभुस्त्वं सर्वलोकानां प्राप्ता गोप्ता पिता प्रभुः ।

चराचराणां सर्वेषां त्वत्प्रसादाद्भूतं जगत् ॥ २५ ॥

देवेषु त्वत्समी नास्ति मगर्वस्त्यखिलेषु च । अन्तर्देहेषु बाह्येषु सर्वेषु मुख्येषु च ॥ २८ ॥  
सर्वत्र तेऽस्ति सद्भाषस्त्ययैतद्वारितं जगत् ।

रूपगन्धादिकारी त्वं रसानां स्यादुता त्वया ॥ २९ ॥

एवंविश्वेश्वरः सूर्यो निखिलस्थितिकारकः । तीर्थानांपुण्यक्षेत्राणां मत्तानां जगतःप्रभोः  
त्वमेकः प्रपद्यते हेतुस्सर्वसाक्षी शुष्माकरः । सर्वज्ञः सर्वकर्ता च इत्यां पाता सदोत्सुकः  
आन्तपङ्कामपद्मश्च दारिद्र्यदुःखनाशनः । प्रेत्येह च परो बन्धुः सर्वज्ञः सर्वलोचनः ॥  
त्यदृते सर्वलोकानामुपकारी न विद्यते ॥ ३३ ॥

भादित्य उवाच ।

पितामह महाप्राह विश्वेन्द्र विश्वभाषक । ब्रूहि शीघ्रं परं यत्ते करिष्यामि मत्तं विधे  
प्रहोषाच ।

सूक्तस्तोऽतिवण्डश्च लोकानामतिदुःसहः । ययैष मृदुतामेति तथा कुरु सुरेश्वर ॥ ३५ ॥

भादित्य उवाच ।

किरणाः कीटिकोटिर्मे लोकनाशकराः पराः ।

न चामीष्टकरा लोके प्रयोगा च्छिन्धि सान्प्रभो ॥ ३६ ॥

व्यास उवाच ।

तेविरिञ्चिता तूर्णं रविषाक्यवशाद्बुधम् । आहूयविश्वकर्माणंहृत्वा वज्रमयींभ्रमिम्  
त्यच्छेद् च रवेर्भानूग्रलयानलसन्निभान् । तीरेष रचितं तत्र विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ॥  
भ्रमोर्धं यमदण्डं च शूलं पशुपतेस्तथा ।

कालस्य च परः कङ्कशकिर्गुरुप्रमोदिनी ॥ ३७ ॥

वण्डिकायाःपरं शस्त्रं विवित्रं शूलकंतथा । चक्रेग्रहाऽऽहयाशीश्च विश्वकर्मा तु तेन वै  
सहस्रकिरणं शिष्टमन्यथैव प्रशान्तिम् । भ्रमनोपाय भावेन पुनश्च कश्यपान्मुने ॥ ४१ ॥  
अक्षिर्नैर्मसञ्जात भादित्य इति वै स्मृतः । अयं च रतिविश्वान्ते मेरुदृक् भ्रमत्यपि ॥

सदोर्ध्वं दिनरात्रं च धरण्या लक्ष्ययोजने ।

प्रहाश्चन्द्रादयस्तत्र चरन्ति विधिनीदिताः ॥ ४३ ॥

सप्तमते मासान्द्वादश द्वादशात्मकः । सङ्क्रमादस्य सङ्क्रान्तिः सर्वरेष प्रतीयते  
यदा फलं भूमौ लोकानां निखिलं मुने । धनुर्मिथुनमीनेषु कन्यायां वडशीतथः ॥  
अश्विर्गुरुमेपु सिधे विष्णुपदी स्मृता । तर्पणं चाक्षयं विद्धि दानं देवार्चनं तथा ॥

पडशीतिसहस्राणि पडशीतौ फलं भवेत् ।

विष्णुपद्यां तु लक्षं तु अयने कोटिकोटिकम् ॥ ४७ ॥

विष्णुपद्यां तु यद्दानमक्षयं परिकीर्तितम् । दातुर्वदामि सान्निध्यं सदा जन्मनि जन्मनि  
शीते तूलपटीदानान्न दुःखं जायते तनौ । तुलादाने तल्पदाने द्वयोरेवाक्षयं फलम् ॥

सर्वोपकरणां शय्यां यो ददाति विमत्सरः ।

वर्णमुत्थाय विप्राय स राजपद्मी लभेत् ॥ ५० ॥

तथैवाग्निं जलं दत्त्वा नदीतीरे पथि प्रगे । दत्त्वा च तैलताम्बूलमुर्व्यां भधिपतिर्भवेत् ॥  
सत्यमाषाढद्विजं नत्वा धनी चाक्षयतां व्रजेत् । माघे मास्यसिते पक्षे पञ्चदश्यामर्च्यते  
पितृं स्तिलजलैरेष तर्पयित्वाऽक्षयो द्विषि । सुलभणां च गां दत्त्वा हेमशृङ्गाणि प्रभाम्  
रौप्यधुत्पद्देशां च तथा कांस्यसुदोहनाम् ।

एतां दत्त्वा द्विजाग्राय सार्धभीमो भवेन्नृपः ॥ ५४ ॥

दशवान्नाभरणं राजा मण्डलेशो धनेश्वरः । तिलधेनुं तु यो दद्यात्सर्वोपकरणान्विताम्

सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो नाकेऽक्षयो भवेत् ।

भोजवान्नं ग्राहणे दत्त्वा भक्षयं स्वर्गमश्नुते ॥ ५६ ॥

धान्यवस्त्रं तथा भृत्यं गृहपीठादिकं च यत् । यो ददाति द्विजाग्राय तं च लक्ष्मीर्भवेत्

यत्किञ्चिद्दीयते दानं स्वयं वा यदि वा यद्वृ ।

भक्षयं परलोकेषु युगाद्यासु तथैव च ॥ ५८ ॥

यद्वा देवार्चनं स्तोत्रं धर्माभ्यामप्रतिश्रवः । पुनातिसर्वपापेभ्यो द्विषि पूज्यो भवेत्तसौ ॥

माघमासस्य सित्ता मन्थन्तरा स्मृता । तस्यां यद्दीयते दानं सर्वमहाप्रमुद्यते ॥

धनं भोग्यं तथा राज्यं माकं कल्पान्तरस्थितम् ।

तस्माद्दानं सर्वं पूजा प्रेत्यान्तफलप्रदा ॥ ६१ ॥

तु माघे स्यात्सप्तमी या सिनेतरा । तिथिः पुण्यतमा प्रोक्तापुराणैरमिरक्षिता  
पक्षे सप्तमी कोटिमास्करा । तामुपोष्य नरः पुण्यां मुच्यते नात्र संसृज

सूर्यप्रदणतुल्या हि शुद्धा माघस्य सप्तमी ।

ऊनमीलिमोऽध्यायः ] • संक्रान्त्यादिषु वामादिविधिः •

मरणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ॥ ६४ ॥

तत्र कृतं पापं मया सासु जन्मसु । तस्मै रोगं च शोकं च भारकरी दग्धुतायाम् ॥  
जनी सर्वभूतानां सात्मी सासतिके । सात्मायाभुविते देवि नमस्ते वसिमण्डले ॥ ६५ ॥

मर्त्यं यथा पुण्यं सुगन्धबन्दीफलम् । तत्पत्रे ताप्रवात्रे वा शुतजाम्नीय तण्डुलम् ॥  
यत्तद्वत् सतिन्दूरं वस्त्रा चार्घ्यं सुशोभनम् ।

सर्वं पापं क्षयं याति रातजगमकृतं च यत् ॥ ६६ ॥

तस्यै पीडयते तापद्रोहोः पात्रेभ्यः पुःस्वदेः । हविष्यं भोजयेत्तन् शुभमातपतण्डुलम् ॥ ६७ ॥  
त्रैवेण शिलापुष्टं भूतप्रेतं तु शाककम् । कोरनृपकवर्षं च रत्नाच्छात्रीयुक्तं तथा ॥

तत्कीटादिकं पश्यंमुत्तमोदस्नानमेवम् । अल्पपीडादिकं सर्वं मते शूरस्य मर्त्येयम् ॥ ६८ ॥  
यद्येवाचरेत्तत्र धर्मयुक्तो विनामसी । सौरमते महापुण्यं पुराभीरमिभग्नितम् ॥ ६९ ॥

सर्वकोटिसहस्राणि धर्मकोटिशतानि च । आदित्यस्य रागं भोग्यं लभते विविशाशनाम् ॥  
सर्वं स्वर्गाशयादेव राजा भूमौ महाधमी । मर्त्यलोके पुराऽभ्यासात्करोति भारकरजनाम् ॥

तथा स्वयं सुगं भोग्यं लभते विवि शाशनाम् ।  
मारोग्यं रात्रयं जग्मी भारकरस्य मरणात्तः ॥ ७० ॥

रविपारे मयेवा च सार्वा माघशुक्ले । महाजयेनि विख्याता भारवज्र विजया वशुता ॥  
विजया कीदृश्या स्वाध्वमर्गं व्यागमहाजया ।

तत्रैवेन मर्त्येयं सुख्यं जगमपमानम् ॥ ७१ ॥

मर्यादागुणं च रत्नसूत्रं च धामवकम् । द्वादशमासकालीत्या वसुधैव कुटुम्बकम् ॥  
सर्वं मेदं प्रवक्ष्यामि भूतु विप्र यथार्थम् । उत्तमागर्भोऽयुक्तं रात्रां भो द्वादश ॥

समुद्रैरुत्तमिर्जुषा भूमिर्गन्धर्वविजिताम् ।  
लभेद्रूपान्तरे मर्त्यमन्त्रेनैकापिषो मर्त्यम् ॥ ८० ॥

मर्त्यं च यथाहं वृत्तमेवाऽप्यहम् । हेममार्गं विमार्गं चां वक्षिणादिदिना वृत्तैः ॥  
मर्त्यं मर्त्यं च हेमोव हृतं च यत् । स्वर्गं वा कैवल्यं वस्त्रा विविधपनेत्स्वम् ॥  
मर्त्यं च यथाहं च यथाहो चः प्रवक्ष्यामि ।

स्वर्गोर्व्योरीशतामेति न तं लक्ष्मीर्चिमुञ्चति ॥ ८३ ॥

अरोगी सुप्रसन्नात्मा दस्युजेता प्रतापवान् । याचतप्रभासते  
माघादौ द्वादशीं मायां सप्तमीं कारयेत्सतु । इहामीष्टफलं भुक्त्या सुरैश्चैव  
अर्काङ्गसप्तमीव्रतं कृत्वा च विधिबद्धबुधः । पापात्पूत

लक्षणं च प्रवक्ष्यामि मासि मासि च यो विधिः ।

व्रतस्यास्य प्रसादाच्च सुराणामर्चितो दिधि ॥ ८७ ॥

शुक्लपक्षे रविदिने प्रवृत्ते चोत्तरायणे । पुंनामधेयनक्षत्रे पृथ्वीयात्सप्तमीव्रतम्  
हस्तो मैत्रं तथा पुष्यः अथो मृगपुनर्वसू । पुंनामधेयनक्षत्राप्येतान्याहुर्मन

पञ्चम्यामेकभक्तं तु पष्ठ्यां नक्तं प्रकीर्तितम् ।

सप्तम्यामुपवासं च भद्रम्यां पारणं भवेत् ॥ ९० ॥

अर्काग्रं शुचि गोमयं सुमरिचं तोयं फलं चाश्लुते,

मूलं नतमुपोषणं च विधिवत्कृत्यैकभक्तं तथा ।

क्षीरं चाप्यशनं घृताकमिति च प्रोक्ताः क्रमेणामुना,

कृत्वापासरसप्तमीं दिनकृतः प्राप्नोत्यमीष्टफलम् ॥ ९१ ॥

अर्काग्रं ग्रामात्पूर्वाक्षरदिगताकं विटपस्य-

शाखामस्थितं विशिष्टं सूक्ष्मपत्रद्वयं सतोयं दन्तैरस्पृष्टं पातय्यम् ॥

शुचि गोमयं भूमापपतितं मध्याङ्गुष्ठाम्यां वलमात्रं दन्तैरस्पृष्टं सतोयं पात

सुमरिचमद्यणमपुरातनं स्थूलमयशुष्कमेकं दन्तैरस्पृष्टं सतोयं पात

तोयं ब्रह्मपित्रङ्गुलीमूलप्रसरं पातय्यम् ।

पत्रं अजूरनारिकेलानामन्यतमं दन्तैरस्पृष्टं पातय्यम् ।

घृताकमिति आहारं मयूरहिम्नपरिमाणम् । घृतमपि तद्वपरिमाणम् ॥

भाग्यमनो द्विगुणं छायां यदा कुर्वीत मास्करः ।

निशिमोजनम् ॥ ९३ ॥

मद्यदानं ततः कुर्याद्विध्युत्परिमाणकम्





अशीतितमोऽध्यायः

सूर्यस्यानेकव्रतवर्णनम् ।

यैशम्पायन उवाच ।

अगर्थस्त्यतः प्रसादाच्च धृतं मे पावनं व्रतम् ।

अपरं भोतुमिच्छामि ब्रह्मस्य च प्रियं च यत् ॥ १ ॥

ध्यात उवाच ।

कौटारशिरसरे वन्द्ये तु न्यासीनं महेश्वरम् । प्रणम्य शिरसा भूमीं स्वकाशे वप

अर्काङ्गावपि विविक्तस्थितो मयैव विस्तराच्छ्रुतः ।

पारादेवैतच्छ्रुत्वा नाथ भोतुमिच्छामि तत्पथतः ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

तन्पुण्यैर्येषां तेषां दद्यादुपनीतः । नन्वाहारं हविष्यान्नं हृत्वा स्वर्गाच्च द्वीप

तन्मयाश्च सादाचारं सर्वमेवाकंवासादे । कुर्वन्तः प्रीतिमाप्नोति रागलः पामेत्य

हृत्स्य सद्गुणं यानि निश्चिन्ताभ्यः पादनाम् । एतेन साणवत्यस्य सांख्यगूरी नम

सर्वकामार्थं पुण्यमैश्वर्यं रोगनाशनम् । स्वर्गाच्च मोक्षार्थं पुण्यं रथेषां सर्वद्विगुण

रथिचारेण सद्गुणाभ्यां वानवा लक्ष्मिं शिवे । मन्त्रादिकं सर्वं सर्वं वासना

वादिभ्यः सादे श्रुते महाभिरश्रुतम् । प्राणादहनवचनं नि रार्णं मादृशी न्य

विमुक्तं वक्तव्यं तुगलं वक्तव्यं सर्वं वक्तव्यं वक्तव्यं ।

हन्त्याभ्यां पुण्यं विदुर्न सहस्रायैसायै विदुर्न ॥ १० ॥

वादिभ्यः विदुर्न मादृकाय धीमदि । तन्मो मातुः प्रचोदयान् ।

तन्मो सुवर्तितेन विदुर्न च विदुर्नम् । विदुर्नम् तन्मो सुवर्तितेन च विदुर्नम्

प्रचोदयान् च विदुर्न तन्मो वादिभ्यः विदुर्नम् । तन्मो तन्मो विदुर्नम् तन्मो तन्मो

तन्मो तन्मो विदुर्नम् तन्मो तन्मो तन्मो तन्मो तन्मो तन्मो तन्मो तन्मो

मम ब्रह्मघादो<sup>१</sup>रं कपालं करलग्नकम् । खेस्तस्य प्रसादात्तु मुक्त धाराजसोत्पटे ॥ १५॥  
खेः परतरं देवं प्रेलोषये तु न विद्यते । यस्य प्रसादतो घोरान्मुक्तोऽहं गुरुकिन्त्रिणात्  
स्कन्द उवाच ।

धृत्वा त्वत्तो गिरं नाथ चिस्मयो मेऽमघत्प्रभो ।

त्वदभ्योऽस्ति न को देवः कथं ब्रह्मघघस्त्वयि ॥ १७ ॥

त्वं च हानीश्वरो योगी लोके भोक्ताऽक्षरोऽप्ययम् ।

देवानां गुरुरेकस्त्वं व्याप्तरूपी महेश्वरः ॥ १८ ॥

सर्वज्ञो धरदो नित्यं सर्वेषां प्राणिनां प्रभुः । दुःकृतं ते कुतो नाथ तथा कोभोपिशंयत  
शिष उवाच ।

लोकानां च द्वितार्थाय पृथग्भूता युगे युगे । सर्वं कुर्मो वयं पुत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥  
नास्मार्कं पन्थमोक्षो न नाकार्यं कार्यमेव वा ।

तथा लोकस्य रक्षार्थं वरामो विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥

सर्वं च परमं चैव सर्वविघ्नविनाशनम् । सर्वरोगप्रशमनं सर्वार्थप्रतिसाधकम् ॥ २२ ॥

एकोऽसौ बहुधा भूया कालभेदादनिन्दितः ।

मासे मासे तु तपति एको द्वादशतां प्रजेत् ॥ २३ ॥

मित्रो मार्गशिरे मासि योगे विष्णुः सनातनः ।

षडगो माघमासे ॥ सूर्यो वै फाल्गुने तथा ॥ २४ ॥

चैत्रे मासि तपेद्भानुर्वैशाखे तापनः स्मृतः । ज्येष्ठमासे तपेदिन्द्र आषाढे तपने रवि ॥

शमलिः श्रावणे मासि यमोमाद्रपदे तथा । हिरण्यरेताश्चयुक्ति कार्तिके ॥ दिवाकरः ॥

एतैर्द्वादशैर्दित्यामासिमासिप्रकीर्तिताः । उरूपासमहातेजायुगान्तावलपचंसः ॥ २७ ॥

य इदं पठने नित्यं तस्य पापं न विद्यते । न रोगो न च दारिद्र्यं नावमानोमघेन्मघचिन्

भक्ष्यं लभते स्वर्गं सुखं राज्यं यशः क्रमान् ।

महामन्त्रं प्रपद्यामि सर्वप्रीतिकरं परम् ॥ २६ ॥

ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमोनिमः । नमस्ते पद्महस्ताय चण्डनाय नमोनमः ॥

नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमोनमः । नमः सहजजिह्वाय भानये च नमोनमः ।

एवं ॥ प्रह्लाद एव च विष्णु रक्षस्त्वयं च नमोनमः ।

रथमग्निः सर्वभूतेषु वायुस्त्वयं च नमोनमः ॥ ३२ ॥

सर्वगः सर्वभूतेषु न हि किञ्चित्त्वया पिता । चराचरे जगत्पतिमसर्वदेहे व्यप

इति जप्त्वा लभेत्कामं स्वर्गमोग्यादिकं क्रमात् ।

आदित्यो भास्करः सूर्यो भर्को मानुर्दिवाकरः ॥ ३४ ॥

सुपर्णरेता मित्रश्च पूषा रवणश्च ते दश । स्वयम्भूस्तिमिराशश्च द्वादशः पति

नामाग्नेयानि सूर्यस्य शुचिर्यन्तु पदेधरः । सर्वपापाश्च रोगाश्च मुक्तो याति प

पुनरप्यग्रप्रक्ष्यामि भास्करस्य महारमनः । रक्ताक्ष्या ये रक्तनिता हिरानूरादम

यानि नामानि मुनयानि तच्छृणुष्व पञ्चानन ।

सप्तमस्तापनश्चैव कर्णा हर्षा महेश्वरः ॥ ३८ ॥

शोकसार्थी त्रिलोकेषु ह्योमाधिपो दिवाकरः ।

भस्मिगर्भो महाविप्रः स्वर्गः सप्तार्यपादनः ॥ ३९ ॥

पञ्चदशममोमेदी आग्नेयो यजुस्नामगः । कालप्रियं पुण्डरीकं मूलभानं नमो

यः समेध सदाभक्त्या तस्य रोगमयं कुलः । शृणु कान्तिकं यामैव सर्वपापहरं पु

न सग्देहो मनावकार्यं आदित्यस्य महारमने । ॐ इन्द्राय नमः ॐ विष्णवे नमः

एव जप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनेष्व च । सर्वपापविनाशश्चैव सर्वविघ्नविनाश

महादेवसर्वरोगाश्च शृणाविष्णोदकादिकात् ।

कामदादिकर्षणाश्च ये रोगार्थेव दारजाः ॥ ४४ ॥

इतिदिक् अर्धदिक् च अर्धं मानुर्दिक् तथा । कुप्टं रोगं हर्षं रोगं हृदि रोगं ज

अप्यग्रप्रक्ष्यामि भास्करस्य महारमनः ।

.. रोगा हि रोगा नर्मसामवाः ॥ ४६ ॥

.. अर्दिना केनजप्यकार । विष्णुं याति ते सर्वं आदित्यो कर्षणे

रोगेनमनेषु च । इत्यर्थं याति ते सर्वं अर्दिने तु दिवाकरः ॥ ४६ ॥

मूलमन्त्रं प्रपश्यामि सर्वकामार्थसाधकम् ।

भुक्तिमुक्तिप्रदं नित्यं भास्करस्य महात्मनः ॥ ४१ ॥

स्थापयम् । ॐ हां हीं सः सूर्याय नमः । जनेन मन्त्रेण सदा सर्वसिद्धिर्भवेदुद्यम् ॥

धनो वै न चाधन्ते न वानिष्टमर्थं भवेत् । सूर्यावर्तोदकं यस्तु शृङ्गीरवा तु क्रमेण तु

स्य प्राशनमात्रेण नरो रोगात्प्रमुच्यते । न दातव्यं न ख्यातव्यं जप्तव्यं च प्रयत्नतः ॥

न कोप्यनपत्येषु पापण्डुलोकिनेषु च । ऋतुनैलसमायुक्तं नश्ये पाने च दापयेत् ॥

सूर्याग्नेर्ब्रह्मं पुत्रं सर्वरोगादिमुच्यते ।

मूलमन्त्रस्तु जपतः सन्ध्यायां होमकर्मसु ॥ ५४ ॥

अप्यमाने तु नश्यन्ति रोगाः मूलग्रहास्तथा ।

किमप्येवंभूमिः शास्त्रैर्मन्त्रैर्वा बहुविस्तरैः ॥ ५५ ॥

शान्तिरियं वरस्तु सर्वार्थप्रतिसाधिका । नास्ति काय न दातव्या देवप्राज्ञानमिन्दके

रथाय दातव्या नात्येभ्योऽपि कदाचन । प्रातस्तथाय यो नित्यं कीर्तयिष्यतिमानवः

ः हृतप्रकश्चैव मुच्यते सर्वपातकैः । शरीरारोग्यकृद्देव धनवृद्धियशस्करः ॥ ५८ ॥

आपने नात्र सन्नेहो यस्य तुभ्येद्विपाकरः ।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव च ॥ ५९ ॥

यः पठेत्प्रितान्निध्ये सोऽमीष्टं फलमाप्नुयात् ।

पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत् ॥ ६० ॥

गौ लभते पिपां धनार्थी लभते धनम् । शृणुयत्संयुतो भक्त्या शुद्धाचारसमन्वितः

रयिनिर्मुक्तस्वर्गलोकां व्रजयति । भास्करस्य व्रते यथा प्रताचारमलेषु च ॥ ६१ ॥

पुण्यस्थानेषु तीर्थेषु पठेत्कोटिगुणं भवेत् ।

ग्रहे मीनयेषु पूजायां ब्रह्ममोक्षे द्विजाग्रतः ॥ ६३ ॥

इत्ये विप्रस्तस्यानन्तफलं भवेत् । तपस्विनां च विप्राणां देवानामग्रतः सुधीः ॥

यः पठेत्पाठयेद्वापि सूरलोके महीयते ॥ ६५ ॥

। श्रीपादपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे सूर्यशान्तिर्नोमाशीतिलमोऽध्यायः ।

## एकाशीतितमोऽध्यायः

एष्यमाहात्म्यप्रसंगाद्भद्रेश्वरनामकमप्यदेशनूपतिकथानक्रमः ।

व्यास उवाच ।

अध्यदेशो ह्यराद् सप्राद् मन्त्रेश्वर इति भूतः । तयोर्गिर्यदुग्धिः पूनो मनीर्तातापिधैरि ॥

देवांस्तु पूजयेन्निरत्यं सुभावेन सदा बभूवुः ।

तस्य सत्येऽमपत्युत्थं करे श्येतमजायत ॥ २ ॥

ततो मित्यत्रयोगादय लक्षणं दृश्यते पुनः । माहृत्य द्वित्रिगुणर्वाधमन्त्रिणः सोऽप्युपपन्नः

रात्रोपायः ।

किद्विधं मे करे विप्रा दुःमहं लोकागर्हिणम् ।

तन्मात्पुण्यं महाभूतं यत्र त्यक्ष्यामि विप्रदम् ॥ ४ ॥

आद्यात्यत्र धर्मज्ञाः परलोकहिनाय ये । यशहीनस्य मे धीराः श्रेण्यामुत्र दिवं च वत् ॥

तद् भूतं शुभसम्पत्ता मउद्दिष्टं यत्करोम्यहम् ॥ ६ ॥

विज्ञा उचुः ।

यत्किञ्चिदं त्यया रात्रौ धर्मशीलेन धीमता । नतं जगद्दिवं रात्रं जगन्मात्रो बभूवर्हि ॥

अयमस्य मनीषातो ह्यस्मान्निषण्णस्यने । नृवं मन्त्रैर्महादेवं यत्तादाराय व्रमो ॥ ८ ॥

रात्रोपायः ।

केतोर्नदेन विदेन्द्रात्मनोऽविध्यामि भास्करम् । अमेत्येनाय बुद्धेन लोकातां गर्दित्रे च

मदृग्यः सर्वमृतातां गर्दिनोऽस्मि विज्ञातयः ।

हि कश्चिदपि रात्रं च किञ्चनरात्रयेन नु ॥ १० ॥

विज्ञा उचुः ।

अत्र विष्णुश्च ब्रह्माणे नु सप्ततानय निरायनम् ।

अनुप्य किञ्चिन्नरात्रयैर्नमोर्वां च लययती ॥ ११ ॥

ध्यास उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु राजेन्द्रः प्रणिपत्यद्विजोत्तमान् । अकार्षोत्तस्य सूर्यस्य परमाराधनं वयत्  
नित्यपूजां तथा मन्त्रैरुपहारैर्विलेपनैः । फलेर्नानाविधैरर्घ्यैश्क्षतातपतण्डुलैः ॥ १३ ॥  
जपापुष्पाकर्पणैश्च करधीरकरज्जकैः । रक्तकुङ्कुमसिन्दूरैस्तथा घासन्तिकादिभिः ॥  
सुगन्धकदलीपत्रैस्तत्फलैः सुमनोहरैः । अर्घ्यमौदुम्बरे कृत्वा सदा सूर्याय पार्थिवः ॥  
आदित्यसंमुखो दत्ते सशमन्निप्ररोहितैः । महिषोमिस्तथाचार्यो भोगिमीभिः समन्ततः  
सर्वैरन्तःपुरस्थैश्च सपत्नीकैश्च रक्षिभिः । चैट्यर्णैस्तथाऽग्न्यैश्च दीपतैर्घाँ दिने दिने ॥  
मर्कशान्तिमिररपुमैःस्तोत्रमन्त्रादिभिः परैः । मूलमन्त्रान्य मन्त्रैश्च यजन्ति स्म दिवाकरम्  
तथा कान्ताग्रतः धाम्यत्कृतं तैस्सुसमाहितैः । क्रमात्समां समासाद्य रोगस्यान्तंगतो नृपः  
बाधिते धामये घोरे स राजा निखिलं जगत् । नियम्य कारवामास कल्पेधया जनघ्नतम्  
एवमेव जपापुष्पं सुगन्धं कदलीफलम् । बाणैर्जायामिरालभ्य मर्कपर्णान्यपुष्पकम् ॥  
एवमेव महापुष्पं कृत्वा सर्वजनप्रियम् । हविष्याघो निराहारो जनो यजति भास्करम्  
एवमेव त्रिभिर्वर्गैर्वर्चितस्तैर्विभाकरः । सन्तुष्टो भूपमागन्व कृपया च प्रवीद्वचः ॥ २३ ॥  
सूर्य उवाच ।

वरं वरय चाभीष्टं यत्ते मनसि वर्तते । सर्वेषां बोधितार्थाय साऽनुगः पुरधासिनाम् ॥  
राजोवाच ।

यदीच्छसि वरं दातुं सर्वलोचनमतिप्रियम् । सर्वेषां नः परं स्वर्गं त्यक्तकाशे भवत्स्थिति  
सूर्य उवाच ।

भमात्यास्ते द्विजा विप्राः सद्गारास्तपस्त्रिच्छदाः ।

गर्धानयोचनाः शुद्धा यावदामृतसम्प्लवम् ॥ २६ ॥

तिष्ठन्तु मत्पुरे रम्ये सर्वभोगैर्निरामयाः । सुरदुमैः सुसम्पूजैः प्रासादैर्दुर्मकल्पकैः ॥  
प्रमदाभिर्महाभाग नृत्यगीतादिभिः परैः । पञ्चकल्पान्तरे राजा मन्वादी त्वं भविष्यसि  
अमी ते मनुजा भूप पुरस्थाश्च पुरोचसः । तथा जनपदस्थाश्च विद्वांसोऽचनितो भराः ॥  
तत्र मत्तो वरं लब्ध्वा सुखं स्वर्गमवाप्स्यथ ॥ ३० ॥

ध्यास उवाच ।

पद्ममुत्तवा जगद्यभ्युस्तत्रैवान्तरधीयत । ततोभद्रेभ्यरो राजा स पुरो द्विपि मोक्षे

तत्र क्रीडादयो ये च तेऽपीताः ससुतादयः ।

स्वर्गे देवदुमे मोक्षं कुर्यन्ति महद्दुतम् ॥ ३२ ॥

पद्ममेव नृपा विना मुनयश्चोसितव्रताः । ये ॥ क्षत्रादयो वर्णास्तूरस्यर्गं यमुदुत्तम

कैश्चिदभ्यर्पितं वृत्तं पुत्रदारास्तथापरीः । सुतं स्वर्गं तपारोग्यं भास्करस्य प्रसादतः

पुण्यकृदमिदं भद्रं यः पश्येत्मानयः शुचिः । तर्पणवापक्षयस्तस्य ह्यपरपूजितोभुवि

सर्वसाक्षी भवेत्स्वर्गे चन्द्रो भास्करश्चिवः ।

शृणोति-संवतो मर्त्यः सोऽमीष्टं पश्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

पारणः सर्वपावानां भास्करस्यैव संसृति । पापदूको भवेत्तत्त्वं भयनात्पुण्यवाचनी

इदं शृणोतिगुणं च भास्करेण प्रचारितम् । इत् यमाय कपिलं क्षितौष्णारौन कीर्ति

इति धीपाद्युपाणे प्रथमे सृष्टिरवष्टे भद्रेक्षराक्यानं नामैकार्शातिथ्यमोऽध्यायः ।

हृद्यशोतितमोऽध्यायः

स्यपूजाविधिवर्णनम् ।

वीरभद्राय नमः ।

भूतो भद्रेश्वरस्येन प्रमादमन्त्रसादनः । यथाहोमं प्रज्ञातां च साधनं नो ॥ १ ॥

के नैवमन्त्रवर्णनं कथं तेषां कथं विधम् ।

काटे देवो नु साधयेत् दर्शनं तद्विद्यवाचितम् ॥ २ ॥

ध्यास उवाच ।

॥ वेतोके नु मुञ्चन्ति पुण्यान्कम् । सिवागिर्न च कुर्यन्ति सिद्धयन्त्रजम् ॥

तिग्मसौम्याच्च योगात्स निग्रहानुग्रहे प्रभुः ॥ ४ ॥  
 ब्रह्मावाच तस्यैव सन्तोषं निगदाम्यहम् । उदुम्बरपल्लवाभ्यां पल्लवाभ्यां जुहोति यः  
 बाहूष्णेनेति मन्त्रेण मूलकेनाथ शान्तये । जुहुयादज्ययुक्ताभ्याममोष्टकलहेतवे ॥ ६ ॥  
 शान्तये सर्वरोगाणां वधवन्धविमोचने ।  
 एकैकेन तु मन्त्रेण होतव्यं च शतं शतम् ॥ ७ ॥  
 शितं च दद्यात्सर्वं दद्यात्सूरायादित्ययासरैः । मोक्षयेद्ब्रह्माक्षयान्छतया हृदयकण्ठैर्मनोहरैः  
 सप्तम्यां च सिते पक्षे पञ्चदश्यां तथैव च ।  
 रोगादिमुच्यते रोगो न रोगात्कृष्णमेत्यति ॥ ८ ॥  
 परमधामरं सर्वमाश्रयन्तम्यमात्रके । ब्रह्माण्डे चाणुमात्रे च सूरः सम्भावयिष्यते ॥  
 संहारान्तं क्रमात्सर्वमुत्पत्तिस्थितिकारणात् । प्राणसर्गे जनानां सपाताविश्वरस्तनौ  
 मृत्युकाले तनोर्मध्यात्प्राणेन सह गच्छति ।  
 शीर्षान्तस्थः सः चन्द्रो क्षिरष्टकलया युतः ॥ १२ ॥  
 बह्वर्निशं सुषाङ्गि देहे धर्पत्यघोमुखः । जन्तवस्तेन जीयन्ति महासत्त्वानुमात्रकाः ॥  
 उर्यो सस्यानि पुज्जाति तथा स्वावरजद्गमात् ।  
 एताभ्यां पुष्पवद्भ्यां च धारितं जगितं जगत् ॥ १४ ॥  
 सपोरापनात्पुष्टिः सः पुण्यापरादिका । साधयेत्सर्वकार्याणिसाधकः सर्वदायुविः  
 न पूतयति यो मोहात्सुधांशं मातवाधमः ।  
 आयुस्तस्य क्षयंयाति नरकं चाधिगच्छति ॥ १६ ॥  
 निष्कलङ्कलाधार गङ्गाधर शिरोमणे । द्वितीयायां जगन्नाथ तुभ्यं चन्द्र नमोऽस्तुते  
 तिथिमश्यामनुप्राप्य नमस्कारं विधोरपि ।  
 प्रकरोति नरो यस्तु सोऽमीष्टं फलमाप्नुयात् ॥ १८ ॥  
 मन्त्रिनेन्द्रोद्भवध्रीमन्क्षीरोदमघ्नोद्भव । मदेशमुकुटावास तुभ्यं चन्द्र नमोऽस्तुते ॥ १९ ॥  
 दिव्यरूपनमस्तुभ्यं सुपाकरजगत्यने । शुक्लपक्षे तथाहृष्णे त्रियामायां विदुषुंषाः ॥  
 ॐ हां हो सोमाय नमः इति जप्यमन्त्रः । प्रभाते जपनीयः ।



एवं यः पूजयेत्सोमं ध्रावयेच्च शृणोति वा ।

स पीयूषसमो लोके भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ २२ ॥

एवं सहस्रनाम्ना यः स्तोति पूजयते मुनि । सोऽक्षयं लभते स्वर्गं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

इति सोमपूजा ।

पित्तले भाजने कांस्ये दधिपूर्णे घृणे शिवे ।

न्यूनोऽधिकस्तु चिमयाच्छ्रुत्वा कर्मविमर्शतः ॥ २३ ॥

स्वर्णे वा राजते धारे सौम्ये कृष्णमवेबुधम् । संस्थाप्य सर्वसंस्थाने दद्याद्बहुमुताप्य

परं भवति सौभाग्यं पीयूषादधिकभृशम् । स्त्रीणां च पुरुषाणां च न सौभाग्यं कदाचन

रूपसौभाग्यकामोऽहं दधिपूर्णं च भाजनम् ।

इदामि कांस्यपात्रस्थं देहि सौभाग्यरूपकम् ॥ २६ ॥

द्विजाय पाक्यपूर्वेण दद्याद्विमत्सरो नरः । शक्तितो दक्षिणा देया तथा यस्त्रादिकं न वम्

भोज्यान्मं सर्वसंपूर्णं ताम्बूलं सुमनोह्रम् । पुष्पमालादिकं दद्याद्रूपसौभाग्यदेतये ॥

एवं यः कुरुते दानं सोमोद्दिष्टं द्विजातये ।

स्वलोके नरलोके वा रूपसौभाग्यभुग्भवेत् ॥ २६ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिलग्नौ सोमार्चनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।

## त्र्यशीतितमोऽध्यायः

शम्भोः सकाशात् भौमग्रहस्योत्पत्तिवर्णनम् ।

वैशम्पायन उवाच ।

उद्भवं लोहिताङ्गस्य सन्तोषं तु जनेषु च । प्रभावं धैर्यं तेजः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः

व्यास उवाच ।

... देवः कुत्रागतः पृथिवीसुतः । सत्यस्थस्सत्यसंपूर्णशृङ्गः शक्तिपरो भुवि

॥ प्रतापवान् । कुमारो कर्मरथो विदुषाञ्जनयन्तुः  
अप्यादा ये सुराणि ।

दद्विःत्राः पञ्चश्रिणः ॥ ५ ॥

सैश्यायन द्वायः ।

महीमुक्तः । अश्वेदेवः कथं कुरु एतदिच्छामि वंतिरुन्  
 त्रिदा । शुभे मयातमामे तु वद निष्पत्तयं सुखम्  
 ध्यास दवाव ।

इण्वां च पार्थिवः ।

॥ सर्वसुखदायक ॥ ३ ॥

गन्तव्यः । तेनैवतिष्ठिता देशास्मिन्नाः शत्रुनुच्छिन्नान्  
दृष्टवन् । प्रायस्कैश्च चास्माकं हृत्तं गन्तव्यं सुखं नमः  
प्यतां तद्विधापयन्त ।

तान्द्य ख नैधम्य ॥ १० ॥

यस्य च मङ्गलम् ।

॥ परिमर्षो द्रवम् ॥ २२ ॥

॥ विविचिक्ता नृ तयैव सपञ्चाङ्गिणस्तुते  
। तस्य ज्ञानं हि तस्य ।

३ वैद्व्यानां मयैव ॥ १३ ॥

ति । एषमुक्त्यप्रमाणशक्त्यां कालसमन्वितम्  
प्रति । तत्रोचितेति कालसमन्वितम् इति  
न । तत्राभावाद्युक्त्यां वैशेष्यं दिवकार  
तन्निमित्तम् ।

॥ धर्मशास्त्रम् ॥ २३ ॥

३। दत्ता सं कोट्यन्तरं कृत्वा देवमन्त्रमन्त्रः

इंश्वरस्यान्तिकस्या च ग्रहीतुं तां ससार सः ।

ततः कामविचेताश्च उन्मत्ती कृतचेतनः ॥ १६ ॥

न जहाति शिषां धार्त्रीं पार्वतींदैत्यपुङ्गवः । ततोऽध्यानात्समागम्य मिलितः पार्वतीं ध्याय

द्रष्टा तं च ॥ दैत्येन्द्रः प्रगतस्तु स्वमालयम् ।

सज्जीकृत्य स्वयोधांश्च शम्भुं जेतुं समुत्सुकः ॥ २१ ॥

गौरीमेव समानेतुं काममोहादचेतनः । एतच्छ्रुत्वा तु त्रिदशा गत्वा तं नन्दिनेरिताः

अकुर्वन् महद्युद्धं घोरं लोकमयङ्कुरम् । दैत्याग्रणे मृतास्तत्र दैत्याचार्यो ह्यर्जीषयत्

एतद्वृत्तं ॥ कैलासे सर्वे चैव न्यवेदयन् । क्रोधाच्छम्भुस्तदा धार्य नन्दिनं निजगात्वा

शम्भुत्वाच ।

गच्छ दैत्यालयं धीर हुतमेव ममाह्वया । पश्यतां सर्वदैत्यानां दैत्येन्द्रस्य च संसदि

गृहीत्या विकुरेऽत्यर्थं भार्गवं तं दुरात्मकम् ।

लब्ध्वा चास्मत्सकारां धौ विह्वलं चानपत्क्षणात् ॥ २६ ॥

ध्यास उवाच ।

ततो नन्दीश्वरः धीमान्पार्वतीपतिनेरितः ।

कार्प्यं तं कुन्तले धृत्या दैत्यानां पुरतो बलात् ॥ २७ ॥

मानयन्तं च तं दैत्या जघ्नुः प्रहरणीः शरैः । न शोकुस्ते कृतां कर्तं नन्दिनो बलशालि

दैयानामग्रतो मन्थी गृहीत्या तं च कुन्तले ।

हरस्य पुरतो ह्यष्टः सह तेन समापयो ॥ २८ ॥

गृहीत्या भार्गवं शम्भुरसुराणां शुद्धं रथा । अग्निलव्णोद्भूतोऽसौ कालान्तकसमः प्रभुः

ततो दैत्यपतिः मृदः सर्वसैन्यवृत्तो बली । दुष्टाश्च शङ्करं तत्र घोरैः प्रहरणादिभिः

त्रिदशाश्च तथा मृदास्ततो विघाथरादयः । प्रययुः समरं तत्र दैत्यानां च भृशं रथा

घोरं युद्धं मीढं समुत्थितम् । दैवदानपयोरेव सर्वलोकमयङ्कुरम्

ततः प्रत्ययिताश्च देवा निष्पन्ति दानधान् ।

दनुजा निजगांस्तत्र विनिष्पन्ति मदादये ॥ ३४ ॥

अथशीतितमोऽध्यायः ] • अङ्गारकचतुर्थ्यां भौमपूजनविधिचर्चनम् ॥ ६७५

शातकुम्भमयाङ्गैस्ते शरीर्यन्नसमानकीः । विमिदू रत्नपुङ्खैश्च परस्परजयैषिणः ॥ ३५ ॥  
दीपयन्ति भृशं कान्तेस्तद्वात्राणि नमांसि च । धीर्यवन्तो महादैत्यानमोघैरस्त्रसञ्चयैः  
हत्वा च पातयामासुः काश्यपाः सुरसत्तमाः । जगद्व्याप्तं महासैन्धवं बलायुधसुसंवृतम्  
नीतं क्षयं सुरैः सर्वैः शस्त्रैः प्रत्ययितैः क्षणात् ।

स्वयं च युध्यमानेन महादेवेन यत्नतः ॥ ३८ ॥

शूलोद्भूतोऽपि सुचिरमपिनष्टोऽयन्नघ्नीः । मन्धकोगणतां नीरथा हतोभृङ्गीरिद्विज्ज  
सतोदैवान्समामाप्य शुक्रमुद्रगीर्णवाञ्छितः । भूमौनिपतितो गर्भस्ततो भौम इतिस्मृतः  
शुक्रशिर्यंसमामाप्य गतो दैत्यान्मुक्षान्वितः । पर्वभौमस्समुत्पन्नो हरांशो भूतमुद्भवः  
तस्य पूजा चतुर्थ्यां तु भौमधारे च सुप्रतीः ।

दशापरिष्टे च तथा गोचरेऽनिष्टराशिगे ॥ ४२ ॥

त्रिकोणे मण्डले चैव रंकपुष्पानुलेपनैः । एवं च पूजितो भौमः प्रयच्छति मर्ति धनम्  
पुत्रान्सुखं यशश्चैव किं भूयःश्रोतुमिच्छसि । एतद्वः कथितं शिष्या धर्माख्यानं गुमापहम्  
पच्छत्या न पुनर्मूयो जायते त्रियतेऽपि वा ।

द्विजातीनां पुण्यदं च संसेव्यं च शुभेभ्युभिः ॥ ४५ ॥

यथासुखं च गच्छेत्तु हतकृत्या ममाकृया ॥ ४६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवंविधाव्य भगवान्यासः सत्यवतीसुतः । निर्णायधर्मं विधिधं शम्पाप्राप्तमगात्सुत  
स्वमपिभद्रया परत हात्वा तत्सर्वं यथासुखम् । विहरस्व यथाकालं गापमानो हरिं मुखा  
लोकान्धर्मं चोपदिशन्भीणपद्मगतां शुक्लम् ॥ ४८ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तः प्रथमो भूय नारदो गन्धमादनम् । नारायणं मुनिवरं द्रष्टुं वदरिकाश्रमे ॥ ४९ ॥  
इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिलण्डे भौमोत्पत्तिपूजनं नाम अथशीतितमोऽध्यायः ।

ईश्वरस्यान्तिकस्या च ग्रहीतुं तां ससार सः ।

ततः कामपिचेताश्च उन्मत्ती कृतचेतनः ॥ ६६ ॥

न जहाति शिषां धात्रीं पार्वतीदैत्यपुङ्गवः । ततोऽध्यानात्समागम्य मिलितःपार्वतीं च

दृष्ट्वा तं च स दैत्येन्द्रः प्रगतस्तु स्वमालयम् ।

सज्जीरत्य स्वपोधांश्च शम्भुं जेतुं समुत्सुकः ॥ २१ ॥

गौरीमेव समानेतुं काममोहादचेतनः । पतच्छ्रुत्वा तु त्रिदशा गत्वा तं नन्दिनेरितः

मकुयंश्च महद्युद्धं घोरं लोकमयङ्कुरम् । दैत्याग्रणे मृतांस्तत्र दैत्याचार्यो ह्यर्जाययम्

एतदुद्युतं तु कैलासे सर्वे चैवम्यवेदयन् । क्रोधाच्छम्भुस्तदा वाक्यं नन्दिर्ननिजगाथ

शम्भुस्त्वाच ।

गच्छ दैत्यालयं धीर व्रुतमेव ममाश्रया । पश्यतां सर्वदैत्यानां दैत्येन्द्रस्य च संसर्गि

गृहीत्वा चिकुरेऽत्यर्थं मार्गयं तं दुरात्मकम् ।

लब्ध्वा चास्मत्सकाशां चै विह्वलं बालपरक्षणात् ॥ २६ ॥

व्यास उवाच ।

ततो नन्दीश्वरः श्रीमान्पार्वतीपतिनेरितः ।

काव्यं तं कुन्तले धृत्वा दैत्यानां पुरतो बलात् ॥ २७ ॥

भानयन्तं च तं दैत्या जङ्घुः प्रहरणैःशरैः । न शोकुस्ते राज्ञां कर्तं नन्दिनोबलशालि

देवानामप्रतो नन्दी गृहीत्वा तं च कुन्तले ।

हरस्य पुरतो दृष्टः सह तेन समाययौ ॥ २८ ॥

गृहीत्वा मार्गयं शम्भुरसुराणां शुर्व. रथा । भगिलद्रौद्रपूर्वोऽसौकालान्तकसमःप्रभुः

ततो दैत्यपतिः मुद्गः सर्वसैन्यवृत्तो यत्नो । दुद्राव शङ्करं तत्र घोरैः प्रहरणादिभिः

त्रिदशाश्च तथा क्रुद्धास्ततो विद्याधरादयः । प्रययुः समरं तत्र दैत्यानां च भृशं रथा

एतस्मिन्नन्तरं घोरं युद्धं ग्रीष्मं समुत्थितम् । देवदानवयोरेधं सर्वलोकमयङ्कुरम्

ततः प्रत्यपिताश्च देवा निष्पन्ति दानवान् ।

दनुजा निर्जरास्तत्र विनिष्पन्ति महाहये ॥ ३४ ॥

अशीतितमोऽध्यायः । • महारक्षतुर्ध्यां भीमपूजनविधिघर्षनम् • ६७५

शातकुम्भमयाङ्गैस्ते शरीर्यञ्जसमानकीः । विमिदू रघुपुङ्गव परस्परजयेषिणः ॥ ३५ ॥  
दीपयन्ति भूदां कान्तेस्तद्गात्राणि नर्मांसि च । वीर्यपन्तो महादित्यानमोघैरक्षसञ्चयेः  
इत्या च पातयामासुः काश्यपाः सुरसत्तमाः । जगद्व्याप्तं महासैन्यं बलायुधसुसंवृतम्  
मोते क्षयं सुरैः सपैः शस्त्रैः प्रत्ययितैः क्षणात् ।

स्ययं च युध्यमानेन महादेवेन परमतः ॥ ३८ ॥

प्लोलोदुधृतोऽपि सुचिरमयिनष्टोऽयनप्रधीः । मन्धकोगणतां गीरधा हतोभृङ्गीरिटिद्विज  
जोदेवान्समामाध्य शुनमुदुगीर्णपाञ्चिवः । भूसीनिपतितो गर्भेस्ततो भीम हतिस्कृतः  
पुनरिदम्यसमामाप्य गतो दैत्यामुदात्तितः । पर्वमौमस्तमुत्पन्नो ह्यशो भूतमुद्वहः  
तस्य पूजा चतुर्ध्यां ॥ भीमपारे य सुमतेः ।

दरापरिष्टे च तथा गोचरेऽनिष्टराशिने ॥ ४२ ॥

एकोणे मण्डले चैव रंकपुण्यानुलेपनैः । यथं वै पूजितो भीमः प्रयच्छति मर्ति धनम्  
वात्सुर्लयाश्चैव किं भूयःभोतुमिच्छति । पतद्गः कथितशिष्या धर्माध्यानशुभापहम्  
यच्छत्वा न पुनर्मूयो जायते त्रियतेऽपि वा ।

द्विजातीनां पुण्यदं च संसेव्यं च शुभेभ्युभिः ॥ ४५ ॥

यथासुखं च गच्छेत्तु हतहत्या ममाज्ञया ॥ ४६ ॥

प्रक्षोपाय ।

विधाप्य भगवान्पासः सत्यपतीमुतः । निर्णीयधर्मं विधिर्धं शम्बाप्राप्तमगात्सुत  
रपिभद्रया परस हात्वा तत्त्वमयासुखम् । विहरस्वयधाकालं गायमानो हरिं भुवा  
लोकारधर्मं शोपदिशन्भीषणवज्रगतां शुभम् ॥ ४८ ॥

कः प्रययौ भूप नारवो

॥ ४८ ॥

## चतुरशीतितमोऽध्यायः

चण्डिकानुग्रहादवशिष्टदैत्यानां रसातलम्प्रतिगमनम् ।

भीष्म उवाच ।

चण्डिकानुग्रहाद्वैत्या गताश्शिष्टा रसातलम् । तद्वदस्व महाप्राह्, चण्डिकापूजने  
यथा सम्पूज्यते देवी तुष्टा यच्छति यत्फलम् । श्रोतुं कौतूहलं मेऽप्य तद्वदस्वसवि

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्व नृपशार्दूल चण्डिकापूजने फलम् ।

यत्कृत्वा स्वर्गभुङ्क्ष्वर्यः पञ्चाङ्गमोक्षं लभेद् ध्रुवम् ॥ ३ ॥

यत्पूजने फलं देव्या न तत्कलुशतरिपि । लभ्यते नितरां तात सीर्यदानवरादिभिः ।  
चण्डिकां पूजयेद्भक्त्या यो नरः प्रत्यहं नृप । न क्षमस्तत्फलं वक्तुं साक्षाद्देवः पिता  
मातुर्देव्याः प्रसादेन सुलभं सर्वमेव हि । भवमेव सहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥  
चण्डिकाम्यर्चनस्यैते लक्षांशेनापि नो समाः । स दाता स मुनिर्यथा स तपस्वी सती  
यः सदा पूजयेद्दुर्गां नानापुष्पां नुलेपनैः । धूपैर्दीपैस्त्यामोऽग्नैः प्रणमेद्वापिमादि

स योगी स मुनिः श्रीर्मास्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ।

वर्गमेकं तु यो दुर्गां पूजयेद्विजितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

एकादारो महाबाहो सोऽग्निष्टोमफलं लभेत् । पौर्णमास्यां नवम्यां च क्षीरेर्णवमयाधि  
स्तापयित्वा शुभां दुर्गां वाजपेयफलं लभेत् ।

शुक्लपद्मे नवम्यां तु भद्रम्यां परमेश्वरीम् ॥ ११ ॥

त्रिकालं पूजयेद्यस्तु चतुर्दश्यां नराधिप । स गच्छति परं स्थानं यत्र देवी द्यपस्थिता  
कीडयित्वा चिरं कालं राजा भवति भूतने ।

नवम्यां सोपपासस्तु यः पूजयति चण्डिकाम् ॥ १३ ॥

दशानामभ्युपधानां फलं प्राप्नोति मानवः ।

जितेन्द्रियो ब्रह्मचारी शुचिर्मूढा तु यो नरः ॥ १४ ॥

चण्डिकां पूजयेद्भक्त्या स याति परमां गतिम् ।

स्तानोपवासमियमैः पूजाजामरमार्जनेः ॥ १५ ॥

पर्वकालेषु सर्वेषु चण्डिकां यः प्रपूजयेत् । विमानं वरमाद्या ध्वजमालाकुलं नृप ॥

महालोके नरो गत्वा मोक्षे शाश्वतीः समाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यथाविभवविस्तरैः

पूजयेत्सततं दुर्गां महापुण्यकलेच्छया । भयने विपुषे चैव पदशान्तिमुखे नृप ॥ १८ ॥

मासैश्चतुर्मिर्येषु पुण्यं विधिना पूज्य चण्डिकाम् ।

तत्फलं लभते धीर नवम्या कार्तिकस्य तु ॥ १६ ॥

मासि चाश्वयुजे धीर शुक्लपक्षे त्रिशून्तिर्नाम् । नवम्या पूजयेद्यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु

भयमेव सद्दृष्टस्य राजसूयशतस्य च । यत्फलं तत्तमेद्धीर दिवि देवगणैर्घृतः ॥ २१ ॥

मासि मासि नरो भक्त्या पूजयेद्यस्तु चण्डिकाम् ।

लभेत्पाप्मासिकं पुण्यं नवम्या तु न संशयः ॥ २२ ॥

मैत्र्यर्पतनुत्योऽपि राशिः पाप्मस्य कर्मणः । चण्डिकां वैद्यमासाद्य क्षीयते दुष्टरोगयत्

दुर्गार्चने रतो नित्यं महापातकसम्भवैः । दोषैर्न लिप्यते धीर पद्मपत्रमिषाम्भसा ॥

छिरया भिरया च भूतानि हृत्वा सर्वमिदं जगत् ।

प्रणम्य शिरसा देवीं न पापैर्भुवि लिप्यते ॥ २५ ॥

सर्वायस्थां गतो वापि युक्तो वा सर्वपातकैः ।

दुर्गां दृष्ट्वा नरः सोऽपि प्रयाति परमं पदम् ॥ २६ ॥

स्थांस्तिष्ठत्यजन्मार्गे प्रलयमोजने रतः । स्मरते सततं दुर्गां ॥ च मुख्यतः बन्धनात्

तद्देशे न च दुर्मिशं न च दुःखं प्रवर्तते । न कश्चिन्निघते राजन्पूजयेत् यत्र चण्डिका ॥

यो दुर्गां पूजयेन्नित्यं श्वपचो वा जितेन्द्रियः ।

भायेन च समायुक्तः सोऽपियाति परां गतिम् ॥ २६ ॥

पूजयित्वा ॥ तां भक्त्या ध्याया सर्वमङ्गलम् ।

प्रयाति परमं स्थानं यत्र सा सर्वमङ्गला ॥ ३० ॥



धृतामिषेकं यः कुर्याद्दुहोरात्रं नराधिपः । सुसुमधारेण साधनेन भगवतया विचक्षणः ॥

मासि चाश्चयुजैर्धीर सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

कार्तिके पौर्णमास्यां यः सोमधारेऽर्चयेदुमाम् ॥ ३२ ॥

सोऽग्निष्टोमफलं पिबेत्सूर्यलोकं च गच्छति ।

भाषाटे पौर्णमास्यां तु योऽर्चयेदग्निं नरः ॥ ३३ ॥

सोपवासो महामाग स याति परमां गतिम् ।

पौर्णमास्यां तु यो माघे पूजयेदग्निं पच्छिमाम् ॥ ३४ ॥

सोऽश्चमेघमघाज्जोति विष्णुलोके महीयते । अयने दक्षिणे यस्तु पूजयेदग्निं नृप ॥

सहस्रगन्धोदकैः पुण्यैर्गन्धैस्तर्पेत्तमे वसेत् । पञ्चमस्य ततः क्षिप्रया पञ्चयुजायते वरीम् ॥

भाषःक्षीरं कुशामाणि तण्डुला दधिरक्षताः । सह सितार्थका दूयाः कुङ्कुमा रोचनामपु ॥

अर्घ्योऽयं कुशान्दूल द्वादशाङ्ग उदाहृतः । अनेन पूजयेद्यस्तु स याति परमं परम् ॥ ३८ ॥

दारपेणाश्वपात्रेण दत्त्वाभ्यर्चयेदग्निम् । देव्यैस्तु महाराज अग्निष्टोमवत् सर्वमेव ॥

अध्वमेव ज्ञातं दिव्यं राज्ञो लोके महीयते ।

गन्धानुलेपनं कृत्वा ज्योतिष्टोमवत् सर्वमेव ॥ ४० ॥

चन्दनेन च लिप्यायां अग्निष्टोमवत् सर्वमेव । विलिप्य कृष्णागरजा वाज्रमेव सर्वमेव ॥

कुङ्कुमेन विलिप्यायां गोसहस्रवत् सर्वमेव । चन्दनागरजान्तूरैः तृणमयीः शङ्खुमैः ॥

दुर्गाभालिप्य विधियन्त्यस्मिन् ज्योतिर्वसेदग्निः । अग्निहोत्रपदे चित्ते धेनुयेनाङ्गपात्रे ॥ ४३ ॥

सुवर्णां सुवर्जानां शने हने तु पात्रेभ्यम् ।

तन्वत् सर्वमेव राज्ञोऽपि नृपाम् । वाग्विक्रामम् ॥ ४५ ॥

मन्त्रया कित्यन्त्राणां नवम्यां मुष्मुलेन च । मालाप्रयेऽसम्पूज्य दुर्गां देवीं नराणि ॥

वित्तनृक्षस्य पत्रैर्वा राज्ञोऽपि सर्वमेव ।

वर्षाण्यस्य च अग्निः पूजयेद्यस्तु अग्निहोत्रम् ॥ ४९ ॥

वाज्रमेवस्य वज्रस्य चर्तं प्राचीनि मन्त्रयः ।

होत्रपूज्यस्य च अग्निः पूजयेद्यस्तु अग्निहोत्रम् ॥ ५१ ॥

राजस्यफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ।

पूजयित्वा ॥ राजेन्द्र धनया विधिपूर्वकम् ॥ ४८ ॥

धन्यपुष्पस्य मालामिः पितृलोके महीयते ।

शमीपुष्पस्य च खगिरार्या सम्पूज्य भक्तिः ॥ ४९ ॥

गोतक्षफलं लब्ध्वा विष्णुलोके महीयते । सर्वपापेषु पुष्पाणां प्रवरनीलमुत्पलम् ॥

नीलोत्पलसहस्रेण यस्तु मालां प्रदच्छति ।

दुर्गायै विधिबद्धीर तस्य पुष्पफलं शृणु ॥ ५१ ॥

वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च । दिव्यमूर्तिधरो भूत्वा रत्नलोके महीयते ॥

सर्वासां पुष्पजातीनां यत्फलं परिकीर्तितम् ।

तस्माच्छतगुणं प्राप्य दुर्गालोके महीयते ॥ ५२ ॥

नीलोत्पलसहस्रैस्तु पूजयेद्यस्तु चण्डिकाम् । बाजयेद्यफलं प्राप्य रत्नलोके महीयते ॥

मलामे पुष्पजातीनां पत्राण्यपि निवेदयेत् । पत्राणामप्यलामे तु भोवधीस्तु निवेदयेत् ॥

भोवधीनामभावे तु भक्त्या भगवती जिता ।

प्रत्येकमुक्तपुष्पेषु कुशेष्वपि फलं नृप ॥ ५६ ॥

माङ्गिरसेषु तेष्वेव द्विगुणं काञ्चनस्य तु । मलिकामुत्पलं पत्रं शमीपुष्पागचम्पकम् ॥

कर्णिकारमशोकं च श्लोणपुष्पं विशेषतः । खन्दनं च जपापुष्पं नागकेसरमेव च ॥ ५८ ॥

यः प्रयच्छति पुष्पात्मा पुष्पाण्येतानि भावतः ।

चण्डिकायै नरश्रेष्ठ स च प्रोक्तफलं लभेत् ॥ ५९ ॥

सम्प्राप्य कालाद्राजत्वं चण्डिकानुचरो भवेत् ।

अथ पुष्पविशेषाणां फलं वक्ष्येऽम्बिकावर्णे ॥ ६० ॥

शत्रुकालोद्भवैः पुष्पैर्मलिकाजातिकुङ्कुमैः । सितरक्तैस्तथापुष्पैर्नीलपुष्पैस्तु पाण्डुरैः ॥

किंशुकैः करवीरैश्च विकटैश्चमुक्ताम्पकैः । शकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरण्टकैः ॥

कर्णिकारार्कपुष्पैश्च निम्बजैश्चापराजितैः । घट्टूरकालिमुक्ताश्च मल्लभागस्तिसम्भवेः ॥

दमनैः सिन्दूरैश्च सुरभीमार्कयैस्तथा । लतामिर्बहावृक्षस्य दूर्वाङ्कुरैश्च कोमलैः ॥ ६४ ॥

मञ्जरीमिः कुशानां च विल्वपत्रैः सुरोमनैः । मत्स्यां युक्तस्तथाजुकैर्नलजैः स्थलसम्पदैः  
पत्रैः पुष्पैर्यथा लाभं सर्वोपधिमयैः शुभैः । वन्यानां सर्वपत्रैश्च पुष्पैश्चैव प्रपूजयेत् ॥

पद्माकृति ॥ यः कुर्यान्मण्डलं चण्डिकागृहे ।

स ब्रह्मणः पुरे गत्वा मोदते ब्रह्मणा सह ॥ ६७ ॥

शङ्खचूर्णं तु यः कुर्यान्मण्डलं विधिपन्नप । स दिव्यं यानमाप्नोत्यब्रह्मलोकमवाप्नुयात्  
नानाघर्णेन चूर्णेन कृत्वा मण्डलमुत्तमम् ।

गत्वा माहेश्वरीलोकं मोदते शार्वतीः समाः ॥ ६८ ॥

वज्राकृति वज्रचूर्णयः कुर्यान्मण्डलं नृप । पेरापतसमाकृत् शङ्खाणीलोकमाप्नुयात् ॥

यः करोति नरो भक्त्या दुर्गायाः पुरतो महत् ।

श्वेतकृष्णैः सितैर्युग्मैः धीपत्साङ्कितमुत्तमम् ॥ ७१ ॥

मण्डलं स नरो धार विमानपरमाश्रितः । सेव्यमानोऽप्सरोग्रातैर्मजेच्छीलोकमुत्तमम्

यः करोति नरो भक्त्या मण्डलं हाम्पिकागृहे ।

रमते किन्नरैः साधं यापदाभूतसम्प्लवम् ॥ ७३ ॥

घृतपिष्टप्रदीपादीं घृतमिधितपल्लवैः । ओषधीमिध मेध्यामिः सर्ववीजैयथादिभिः ॥

नवग्र्यां सर्वफाले तु यात्राकाले विशेषतः । यः कुर्याच्छ्रद्धया धीर दिव्यं नीराजनं नरः

शङ्खमेर्यादिमिर्घावैर्महद्भिर्देवधादितैः । नताशेषविनिर्घांपेजपशप्यैश्च पुष्कलैः ॥ ७६ ॥

यापन्तो दिपसा देव्याः पूजने यास्ति वै नृणाम् ।

तापत्कल्पसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७७ ॥

यस्तु कुर्यात्प्रदीपेन शिवलोकं स गच्छति ।

लपणेनाक्षतैः कृत्वा देव्या नीराजनं शुभम् ॥ ७८ ॥

तापत्कल्पसहस्राणि विष्णुलोके महीयते । सुवर्णदीप्यवर्णैश्च कृत्वा नीराजनं नरः ॥

मगधस्य महाराजः प्रह्लादलोके महीयते । त्रिकालं यो नरः कुर्याद्दुर्गायाः पुरतो नृप ॥ ८० ॥

नृत्यं गीतं च धादित्रं तस्य पुण्यफलं शृणु ।

यापत्यभ्यानि कुरुते नृत्यं गीतं च धादित्रम् ॥ ८१ ॥



यद्यगोधूमजैश्चूर्णैर्घर्षयेच्छाकरेण च । घृतेन पयसा दध्ना स्नापयेच्चण्डिकां ततः ॥

बिल्वपत्रैः सुगन्धाढ्यैर्घर्षयेद्यत्नतः पुमान् ।

गोसहस्रशते दत्ते यत्फलं पुष्करे स्मृतम् ॥ १०१ ॥

तत्फलं लभते घोर देव्या उद्धर्तने कृते ।

दत्त्वाऽर्घ्यं विधिवद्भवत्या दुर्गायै पद्मधारिणा ॥ १०२ ॥

सम्पूज्यमानो गन्धर्वै रमते दिधि देवघत् ।

कृत्योपघासं विधिवत्सुमोगी पुत्रघान्मवेत् ॥ १०३ ॥

उत्तरे त्वयने यस्तु सोपघासो यजेन्निवाम् ।

बहुपुत्रो बहुधनः स नरः कीर्तिमात्रमवेत् ॥ १०४ ॥

कृत्योपघासं विधिवद्विपुषे योऽर्चयेन्निवाम् ।

शक्तिमात्र्यहुपुत्रश्च स भवेद्बलवान्नरः ॥ १०५ ॥

योऽर्चयेद्विधिवदुर्गां ब्रह्मे चन्द्रसूर्ययोः । कृत्योपघासं विधिवत्स भवेत्पुत्रघान्नरः ॥

शान्तिकामो नरो यस्तु राहुग्रस्ते दिधाकरे । सोपघासोऽर्चयेद्देवीं स गच्छेत्परमं पदम् ॥

इत्येते कथिता घोर पूजाकाला मनीषिभिः । दुर्गायाः कुरु शार्दूल येषु पूज्य दिवंभजेत् ॥

दुर्गाया दर्शनं पुण्यं दर्शनादमिषन्दनम् । वन्दनात्स्पर्शं पुण्यं स्पर्शनादमिपूजनम् ॥

पूजनाल्लेपनं श्रेष्ठं लेपनात्तर्पणं स्मृतम् । तर्पणान्मांसदानं तु महिषाजनिघातनम् ॥

अहम्यहनि यो दुर्गां पूजयेदुधिरादिभिः । कुलामां शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते ॥

घटं प्राणपरित्यागः शिरसः कर्तनं धरम् ।

नवा (नाना) पूजयेद्भुञ्जीत चण्डिकां चण्डरूपिणीम् ॥ ११२ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखण्डे देवीपूजाकथनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥



धारिजां शोभनां देवीं पूजयन्त्यसुरोत्तमाः । धारिजाश्च महात्मानस्तेन तेऽमितचिन्माः

अपुसीसमयीं देवीं यजन्ते पितरः सदा ।

पितृत्वं प्राप्य ते सर्वे सम्पूज्याश्च जगत्त्रये ॥ १६ ॥

तथा लोहमयीं देवीं पिशाचाः पूजयन्ति ताम् ।

तेन सिद्धियलोपेताः प्रयान्ति परमं पदम् ॥ १७ ॥

त्रिलोहिनीं सश देवीं यजन्ते, गुह्यकादयः । तेन भोगयलोपेताः प्रयान्तीश्वरमन्दिरम्

यजन्लोहमयीं देवीं यजन्ते भूतयोनयः । तेनमुक्ताः सुरस्यं च लभन्ते सततं दिवि ॥ १८ ॥

देवास्तथा यूयमपि यदीच्छथ परां गतिम् ।

शिवां मणिमयीं पूज्य लभध्वं ममसेप्सितम् ॥ २० ॥

यश्च देव्या गृहं निस्थं संमार्जयति भक्तिः । स भवेद्युल्लसान्देवाः सर्वसम्पत्तिर्नयुतः

देव्या गृहं तु यो देवा गोमयेनानुलेपयेत् । स्त्रीपुमान्वा यथावश्यपण्मासाभ्यन्तरे ततः

स लभेदीप्सितान्कामान्देवीलोकं च गच्छति ॥ २२ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

स्तानकाले महाराज नानायादिभ्रमङ्गलैः । जयशब्दैश्च यो दुर्गां स्नाप्यमानांजलादिभिः

सम्पूजयति भक्त्या च गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।

स कीडते दिवं गत्वा गन्धर्वाप्सरसांगणैः ॥ २४ ॥

वक्रैर्वा शतसङ्ख्यैस्तु क्षीरवृक्षसमुद्भवैः । हेमजैश्चापि कलशैर्जलक्षीरघृताग्नितैः ॥ २५ ॥

मनेकपर्णसंयुक्तैरक्षतैर्नीरस्तण्डुलैः । यः करोति नरो भक्त्या चक्राकारं तु मण्डलम्

चण्डिकायाः पुरो राज्ञश्चण्डिकायाश्च मन्दिरे ।

स दिव्ययानगो भूत्वा गमते वैष्णवे पुरे ॥ २७ ॥

दुर्गं धाप्य शुभं पापि फलं पुष्पं निवेदयेत् । भक्त्या युक्तो नरः सर्वसचदेवत्वमाप्नुया

नानाकुसुममालामिमण्डपं चण्डिकोपरि । यः कुर्याद्विधिवद्भक्त्या विष्णुलोके महीय

कुर्यात्पुष्पगृहं भक्त्या विधिवच्चण्डिकोपरि ।

नवम्यां पर्यकाले, याः प्रविशन्कुसुमगोशयलम् ॥ ३० ॥





देव्यै यः सकुलोऽथासौ सूर्यलोके महीयते । गुदखण्डघृतानां च तथाशर्करयान्प ॥

दत्ते चोद्धर्तनं देव्यै स याति ब्रह्मणः पदम् ।

शाल्योदनं रसानां च प्रपानं घिरजं तथा ॥ ४८ ॥

यः प्रयच्छति दुर्गायै स च गच्छेच्छिवालम् । दुर्गामुद्दिश्यपानीयंकेतकीगन्धवासितम्

यः प्रयच्छति राजेन्द्र सगणाधिपतिर्मवेत् । आन्नं च नारिकेलं च खजूरं भीजपूरकम्

यः प्रयच्छति दुर्गायै स गच्छेत्परमं पदम् ।

घृतदीपप्रदानेन योऽर्चयेच्चण्डिकां नरः ॥ ५१ ॥

सोऽभ्यर्च्य फलं प्राप्य चण्डिकाऽनुचरो भवेत् ।

तैलदीपं च यो दद्यात्पूजयित्वा तु चण्डिकाम् ॥ ५२ ॥

नागलोकं समासाद्य क्रीडते सह किन्नरैः । मात्मदेहवसादीपं प्रस्थाप्य चण्डिकाप्रतः

निषेदयेन्नरो भक्त्या मोदते सोऽम्बिकालये ।

यः कुर्यात्कार्तिके मासि शोभनां दीपमालिकाम् ॥ ५४ ॥

चण्डिकायतने भक्त्या ससूर्यालयमावजेत् । धूनेन कुरुशार्ङ्गल ममायां च स्थशक्तिः ॥

विशेषतो नवम्यां च भक्तिभ्रष्टासमन्वितः । तावद्वयंसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥ ५६ ॥

नरमसारमयं कृत्वा नानादीपसमन्वितम् । दीपवृन्दं समुद्बोध्य दुर्गायाः पुरतो नृप

नरः कल्पायुतं साम्रं दुर्गालोके महीयते । चन्द्रांशुनिर्मलं छत्रं मणिमणिक्पमूर्षितम् ॥

अर्पयतः शोभनं कृत्वा नानापुष्पाञ्जुलेपनैः । दुर्गायाः पुरतो धत्ते स याति परतां गतिम्

रामरै र्धदया देव्यै दद्याच्च धनयान्वितः । राजसूयफलं प्राप्य हंसलोके महीयते ॥

रूपप्रसारितदेहो यो दण्डघटपतितो भुवि । चण्डिकापुरतो धीर स याति परमांगतिम्

जपसगृध्रोपपातेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।

तत्फलं लभते धीर प्रणम्य शिरसा शिषाम् ॥ ६२ ॥

गर्गापूजोपकरणं स्वयं वा यदि वा वटु । कृत्वा विस्तानुसारैर्न खल्लोके महीयते ॥

चण्डिकां पूजयित्वा तु ब्रह्मप्रेतान्तरात्मना ।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ ६४ ॥



प्राप्नुयान्निलिलान्कामान्सोमसूनुप्रसादतः ॥ ७ ॥

लोक्ष पूजनं प्रोक्तं पट्टसाकारमण्डले पीतवर्णैः सुनिष्पन्नैश्चूर्णैराजसुशोभनैः ॥  
तैर्गन्धयुतैः पुष्पैर्वस्त्रैर्होमना च पूजयेत् । दशागोचरयोर्दोष्ट्ये दानं दद्याच्च शक्तिः ।  
नक्तद्विदलंचैव पीतवस्त्रं सुवर्णकम् । पुष्परामं तु विप्राय दद्यान्धारिष्ट शान्तये  
रूपते सुराचार्यं सर्वशास्त्रविशारद । दानेनानेन संतुष्टो भवसौम्यो ममाधुना  
एवं कृते तु राजेन्द्र स्वानुकूलो भवेद्गुरुः ।

सर्वान्कामानपाप्मोति नरो गुरुसमर्चनात् ॥ १२ ॥

भार्गवस्यापि वक्ष्यामि पूजनं नृपतेऽधुना ।

यत्कृत्वा सर्वकामाप्तिः सम्भवपुंसां प्रजायते ॥ १३ ॥

द्विकोणं समुद्दिष्टं मण्डलं भार्गवस्य तु । चूर्णकैः श्वेतवर्णैश्च विधिना सुधियाकृतं  
वेतगन्धैश्च पुष्पैश्च वस्त्रैश्चापि सितैस्तथा । पूजयेद्भार्गवं मत्स्या नराध्वजासमन्वितः ।  
र्ष्यं च दक्षिणादानं यथाशक्ति प्रकीर्तितम् । दशाग्ररिष्टे चोत्पन्ने सितमश्वप्रदापयेत्  
ण्डुलाः श्वेतवस्त्रं च रौप्यं चन्दनमेव च । कर्पूरं च सुगन्धादयं देवं दानं द्विजातये ॥  
गुपुत्र महाभाग दानवानां पुरोहित । दानेनानेन संतुष्टो भव सर्वानुरार्चित ॥ १८ ॥

इति मन्त्रं समुच्चार्य दद्याद्दानं यथोदितम् ।

तस्य तुष्टो भवत्याशु भार्गवः कुटुम्बनन्दन ॥ १९ ॥

नैश्वरस्य पूजायं मण्डलं च नराकृति । कृत्वा चूर्णैः कृष्णवर्णैः पूजयेत्तत्र भा  
कृष्णैर्गन्धैश्च पुष्पैश्च वस्त्रैश्चापि तथाधिपैः ।

लोहं च दक्षिणा दानं पिण्याकं च तिलस्य ॥ २१ ॥

दानं शनैश्चरारिष्टे कृष्णांगां कृष्णवस्त्रकम् । सुवर्णं च यथाशक्ति दद्यान्नालमा  
रुपसूतो महाभाग छापापुत्र महाबल । यथो द्रष्टे भव शनैः प्रसन्नोऽस्मात्प्रदा  
पयं स्तुत्या शनिं भक्त्या यद्य दद्यात् द्विजातये ।

स्वानुकूलो भवेत्तस्य शनिः पापे च गोचरे ॥ २४ ॥

सर्वं शनिघ्नमण्डलं तथा । सर्वाङ्कारं समुद्दिष्टं तत्र पूजाऽङ्कयत्



प्राप्नुवानिपिलान्कामान्सोमसुनुप्रसादतः ।  
 गुरोश्च पूजनं प्रोक्तं षट्साकारमण्डले पीतवर्णैः सु-  
 पीतेर्गन्धयुतैः पुष्पैर्यस्त्रैर्हस्ता च पूजयेत् । दशाणां च  
 घणकद्विदलंचैव पीतवर्णं सुवर्णकम् । पुष्परामं च  
 धृष्टस्पते सुराचार्यं सर्वशास्त्रविशारदम् । दानेनानेन  
 पयं कृते ॥ राजेन्द्र स्वानुकूलो भवेद्गुरुः  
 सर्वान्कामानपाप्नोति नरो गुदसमर्चनात्  
 भार्गवस्यापि वक्ष्यामि पूजनं नृपतेऽधुना  
 यद्वृत्त्या सर्वकामाप्तिः सम्पद्यपुंसां प्रज-  
 पञ्चकोणं समुद्दिष्टं मण्डलं भार्गवस्य तु । चूर्णकैः  
 श्वेतगन्धैश्च पुष्पैश्च घर्लैश्चापि सितैस्तथा । पूजये-  
 रौप्यं च दक्षिणादानं यथाशक्ति प्रकीर्तितम् । दशा-  
 तण्डुलाः श्वेतवस्त्रं च रौप्यं चन्दनमेव च । कर्पूर-  
 भृगुपुत्र महाभाग दानधानां पुरोहित । दानेनानेन :

इति मन्त्रं समुच्चार्य दद्याद्दानं यथोदितं  
 तस्य तुष्टो भवत्याशु भार्गवः कुरुनन्द-  
 शनैश्चरस्य पूजार्थं मण्डलं च मराकृति । कृत्वाचूर्णं  
 कृष्णैर्गन्धैश्च पुष्पैश्च घर्लैश्चापि तथापि  
 लोहं च दक्षिणा दानं पिण्याकं च तिल-  
 दानं शनैश्चरारिष्टे कृष्णांगां कृष्णवस्त्रकम् । सुव-  
 सूर्यसूतो महाभाग छायापुत्र महाबल । अधो ह-  
 पयं स्तुत्वा शनिं भक्त्या यश्च दद्याद्-  
 स्वानुकूलो भवेत्तस्य शनिः पापे च  
 राहोर्वर्णादिकं सर्वं

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

## पद्मपुराणस्य-सृष्टिखण्डस्य शुद्धिपत्रम्

श्लोकाः

पङ्क्तिः

अशुद्धपाठः

शुद्धपाठः

८

१५

सर्पपेश

सर्पपेश

६

१३

प्रधानतत्त्वेन

प्रधानतत्त्वेन

१२

५

ब्रह्मविदांवर

ब्रह्मविदाम्बरः

११

१७

सङ्ग

राङ्ग

१६

६

मात्रमानाश्च

मात्रमाणाश्च

४६

२१

पतिरो

पितरो

६०

११

कमफलं

कमफलं

५१

७

विमानेऽपि

विमानेऽपि

५२

२५

निमाच्छृणु

निमाच्छृणु

६३

१३

साक्षाताभिः

साक्षाताभिः-

६३

७

पिपीलिकलापं

पिपीलिकालापं

६३

१८

विलम्ब

विलम्ब

६४

५

पुनः

पुनः

६४

१०

क्षेप्यति

क्षेप्यति

७३

२१

पूरोर्वशं

पूरोर्वशं

७३

१०

पशुरुक्म

पशुरुक्म

७३

१४

भवद्वायां

भवद्वायां

७३

५

प्रतापवान्

प्रतापवान्

पङ्क्त्याः	पङ्क्तिः	अङ्गदशाङ्कः	सुदशाङ्कः
५०	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
५१	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
५२	११	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
५३	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
५४	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
५५	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
५६	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
५७	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
५८	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
५९	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
६०	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
६१	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
६२	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
६३	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
६४	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
६५	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
६६	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
६७	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
६८	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
६९	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
७०	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
७१	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
७२	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
७३	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
७४	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
७५	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
७६	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
७७	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
७८	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
७९	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय
८०	३	रथभङ्गाय	रथभङ्गाय

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०४	१०	आदेह पानाद्ये	आदेहपतनाद्ये
१०७	६	वृक्षे	वृक्षै
११०	८	वेदोक्तावधानवित्	वेदोक्तविधानवित्
११२	४	मोक्षार्थ	मोक्षार्थं
११२	७	सुमीष्टारी	सुमिष्टारी
११२	१४	दैवत्यं	दैवत्यं
११३	६	चान्द्रायणादिभिः	चान्द्रायणादिभिः
११४	१०	प्रसन्निधौ	सन्निधौ
११४	१२	धर्मपरायणाः	धर्मपरायणाः
११४	२२	वेदाध्ययन	वेदाध्ययन
११४	२३	सर्वकामा	सर्वकामा
११६	२१	सुहेर्नैव	सुमहेर्नैव
११६	२२	ब्रह्मलोक	ब्रह्मलोका
११६	२२	विष्णुलीका	विष्णुलोका
११६	१०	नानरज	नानारज
११६	११	गुणैरन्य	गुणैरन्यै
११८	१३	नराधा	नरा
११६	७	१७६	२७६
१२०	३	गुरोर्मुखात्	गुरोर्मुखान्
१२४	६	ब्रह्मणामिहिता	ब्रह्मणाभिहिता
१२६	१३	शतारूपा	शतरूपा
१२७	१८	उद्गात्रंभो	उद्गात्रंभो
	२	त्रिरैः	त्रिरैः



श्लोः	पङ्क्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
२७	१६	सद्वत्त	सद्वृत्त
३०	१६	वाक्ष्य	वीक्ष्य
३४	२	कन्याका	कन्यका
४०	१४	भयप्यसि	भयिप्यसि
४०	१४	शत्रुभिर्षद्	शत्रुभिर्षद्दो
४३	१६	जपेच्छृणु	जपेच्छृणु
४६	१५	प्रीताः	पीताः
४७	६	सरोऽपि	सारोऽपि
४६	२२	पूणमा	पूर्णमा
५३	६	भृगु	भृगु
५६	२	चित्पाथ	चिन्तयाथ
५७	६	नाम्न	नाम्ना
५७	१६	नृत्यति	नृत्यति
५८	१६	नेनम्मा	नैनम्मा
५९	१२	द्वयोपेना	द्वयोपेना
५९	२	कण्टकाकीर्ण	कण्टकाकीर्णे
५९	१६	भ्रवं	भ्रुवं
५९	८	चञ्चिता मया	चञ्चिता मया
६८	१८	इन्द्रार्घ्यं	इन्द्रार्घ्यं
७३	२	मुष्टार्द्रमि	मुष्टार्द्रमि
७३	१२	मीर्षंरुद्रं	मीर्षंरुद्रं
-	६	कानिशी	कानिशी
-	११	सावित्रा	सावित्री



पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
२१३	६	दिवाकरो	दिवाकरो
२१३	१६	संयुत	संयुतः
२१४	१४	पर्वतामा	पर्वताना
२१४	२४	रघम	रघमः
२१६	२६	घतार्चि	घृतार्चि
२१८	६	द्रजता	द्रजता
२१६	१६	तद्वद्वृत्ताचकणिकाम्	तद्वद्वृत्ताश्चकणिकाम्
२२०	२३	यजितः	यर्जितः
२२१	१६	कल्मष	कल्मष
२२३	१४	भास्कारायेति	भास्कारायेति
२२३	१७	कणिकायाम्	कर्णिकायाम्
२२६	६	न्यासेत्	न्यसेत्
२२६	१४	अशोकायै न	अशोकायै
२३२	११	पटाघृताम्	पटाघृताम्
२३४	२	घर्णा	घर्णा
२३६	१४	चाष्टाभि	चाष्टाभि
२३६	१६	मौनतेन भुञ्जीवत	मौनप्रतेन भुञ्जीव
२३६	२१	वित्तशाठ्ये न	वित्तशाठ्येन
२३६	२४	वायुतत्रयम्	वर्षायुतत्रयम्
२३८	३	पुण्डरीकाक्षं	पुण्डरीकाक्षं
२३८	१८	कणिकाम्	कर्णिकाम्
२३८	२६	विर्यक्ता	विधैर्यक्ता
	१६	पुणरीकाक्ष	पुण्डरीकाक्ष



पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
२७६	१८	मन्त्रौपधै	मन्त्रौपधै
२७६	२५	तः	ततः
२७७	८	मिष्कान्ता	निष्कान्ता
२७८	७	भीमं	भीमं
२७६	१५	शूलाग्र	शूलाग्रै
२७६	२१	पुरतोऽ भिसुखी	पुरतोऽ भिसुखी
२८१	१४	दुर्लभं	दुर्लभं
२८३	२१	यच्छुत्वा	यच्छुत्वा
२८४	६	यक्ष	युक्त
२८६	६	कृतैर्नित्यं	कृतैर्नित्यं
२८६	८	परिभाषिता	परिभाषिताः
२८६	२०	स्तपोभिश्च	स्तपोभिश्च
२९०	२१	जाह्नवा	जाह्नवी
२९०	२१	वियुधा	वियुधाः
२९१	८	देवा	देवी
२९१	१२	ब्राह्मणो	ब्राह्मणो
२९१	१६	किं	किं
२९२	२	त्रिविष्टम्	त्रिविष्टम्
२९२	१७	मुक्तेवा न च वा मुक्ते दिवा वा	मुक्ते वा न च वा मुक्ते दिवा वा
२९२	२३	सरस्वरती	सरस्वती
२९२	२५	मन्दकिन्या	मन्दाकिन्या
३	५	धृपध्वजः	धृपध्वजः



पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
३२०	२	पाद्यमाचनीयं	पाद्यमाचमनीयं
३२१	२	सतो	सती
३२२	१४	क्रमयोगेन	क्रमयोगेन
३२३	६	यस	यस
३२३	१६	अतीवस्पर्धने	अतीव स्पर्धते
३२३	१७	स्त्वर्द्धानि	स्वर्द्धानि
३२८	२६	प्रज्जोत्यनामयम्	प्राज्जोत्यनामयम्
३३६	१८	शान्ति	शान्ति
३३६	२६	क्षत्	क्षुत्
३३७	१०	नप	नृप
३३८	११	पूणिमा	पूर्णिमा
३३६	३	क्षमरमा	क्षमस्या
३४१	७	प्राप्तायां	प्राप्तयां
३४३	२५	अधर्मश्रान्तं	अधर्मश्रातुर्न
३४६	३	मुष्मागु	मुष्मागु
३४७	१२	माजना	मज्जिता
३६४	८	पृथर्वी	पृथिवी
३६६	१५	विनिजिग्य	विनिजिग्य
३६७	३	सुधीवेनीव	सुधीवेनीव
३६७	११	मरुदेश	मरुदेशो
३६८	२१	द्राक्षामाद्ये	द्राक्षमाद्ये
३७०	१४	कान्दकुत्रे	कान्दकुत्रे
	१३	विरिञ्चनं	विरिञ्चनं

( ११ )

पञ्चाङ्काः

पङ्क्तिः

अशुद्धपाठः

शुद्धपाठः

३५२

१४

विरिञ्चनं

विरिञ्चिनं

३७३

२२

नैगामा

नैगमा

३७४

१६

किमीणां

कृमीणां

३८२

२३

हंसस्ततः

३८२

१६

क्षुब्धस्य

क्षुब्धस्य

३८३

१६

ब्रह्माणं

ब्रह्माणं

३८६

२३

स्तपोघोरं

स्तपोघोरं

३८७

८

समुत्पादिषा

समुत्पादित्वा

३८७

२२

महामना

महामनाः

३८७

२३

सखा

सखा

३८८

१६

कन्या

कन्या

३८८

२०

चष

चैष

३९०

४

स्मृता

स्मृताः

३९३

१४

प्रभवोऽप्य

प्रभवोऽप्यय

३९३

६

स्तथो

स्तस्यौ

३९६

१०

सौऽप्यारोह

सोऽप्यारोह

३९६

२१

दधार

दधारा

३९६

७

निर्घोषं

निर्घोषं

३९७

६

जनं

जननं

३९७

१४

भृष्ट

भृष्टे

३९७

१७

वस्रण

वस्रेण

३९८

२०

मुनीनां

मुनीनां

३९८

दन्तोदूखलिन

दन्तोदूखलिन



क्रमांकः	परिच्छेदः	अष्टपदाः	मुद्रपाठः
१६६	४	अत्रायययी	अत्रायययी
१६६	२६	गुणम	गुणम्
४००	१४	इत्ययननय	इत्ययननय
४१०	२०	दुरमदा	दुरामदा
४२१	२६	निधायी	निधायी
४२६	८	टोरे	टोरे
४२६	१४	निधायी	निधायी
४२६	४	पूर्णमास	पूर्णमास
४२६	८	नारदवर्णन	नारदवर्णन
४२६	२०	गुणम	गुणम्
४२६	०	निधायी	निधायी
४२६	६	अत्रायययी	अत्रायययी
४२६	०	अत्रायययी	अत्रायययी
४२६	१६	नारदवर्णन	नारदवर्णन
४२६	१२	गुणम	गुणम्
४२६	१८	निधायी	निधायी
४२६	२०	अत्रायययी	अत्रायययी
४२६	०	अत्रायययी	अत्रायययी
४२६	१०	अत्रायययी	अत्रायययी
४२६	१८	अत्रायययी	अत्रायययी
४२६	८	अत्रायययी	अत्रायययी
४२६	८	अत्रायययी	अत्रायययी



पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
४६६	२	दत्य	दैत्य
४६६	३	गीतानिज गु	गीतानि जगु
४६६	७	एता	एतास्
४७०	८	दत्य	दैत्य
४७१	८	स्तादा	स्तादा
४७२	६	विभाषसु	विभाषसुः
४७२	१६	आरण्यैः	आरण्यैः
४७२	२१	पूजनाह्वा	पूजनाह्वाः
४७३	१६	गामती	गोमती
४७५	१४	परमं	परमं
४७६	४	भैरवास्या	भैरवस्या
४७७	३	घातनाथ	घातनीय
४७७	१०	भूपाद्वी	भूपाद्वीः
४७७	१८	देवाना	देवाना
४७७	२०	मुपचमे	मुपचमे
४७८	४	लब्धा	लब्धा
४७८	१३	शुश्रूषाम	शुश्रूषाम
४८१	१४	धनौपीन्	धनौपीन्
४८१	११	भूजन्मप्रा	भूजन्मप्री
४८२	२४	न्या	न्या
४८६	१४	वे	वे
४८७	२४	इ वः	इ वः
४९०	१३	हन्यध्वः	हन्यध्वः



पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
५५२	२३	शुद्धमश्नानि	शुद्धमश्नाति
५५५	२	वहव	वहव
५५५	२३	प्रपर्वते	प्रवर्तते
५५८	२	धामिक	धार्मिक
५६०	४	मुनिवेषधरा	मुनिवेषधरो
५६०	१०	प्रभा	प्रभो
५६४	५	दुनिवारो	दुर्निवारो
५६५	१७	तेषाम्मध्ये	तेषाम्मध्ये
५६६	५	तच्छ्रुत्वा	तच्छ्रुत्वा
५६७	३	पराभव	पराभवः
५६७	५	क्षेमह्वरा	क्षेमह्वरी
५७२	६	धर्मसाक्षिणाः	धर्मसाक्षिणा
५७२	८	भागाख्या	भागीख्या
५७३	४	सर्वपा	सर्वपा
५७५	२	प्रचूरे	प्रचुरे
५७७	३	ते न	तेन
५७७	१८	चित्रतुम	चित्रगुप्त
५७८	०	चोर	चौर
५७८	२४	तच्छ्रुत्वा	तच्छ्रुत्वा
५७८	१	चोराख्यान	चोराख्यान
५८६	३	श्मशाने	श्मशाने
५८४	१४	पुण्ययोगेन	पुण्ययोगेन
५८५	१०	तस्मात्सं	तस्मात्सं



प्रताङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६०८	६	त	तं
६२८	१०	महाबाहु	महाबाहुः
६०८	१७	शक्ति	शक्ति
६०६	०	दुर्धन	दुर्धन
६३४	२६	लोहितो	लोहितो
६३७	१६	मन्त्रवे । सुः	मन्त्रवेतुः
६४१	१३	दुर्गीपणं	दुर्गीपणं
६४३	१८	गन्धर्व	गन्धर्व
६४३	२६	मर्धनि	मूर्धनि
६४४		व्यगमैत्र	
६४६	७	महतावित्रो	महतावित्रो
६४६	८	गूढो	गूढो
६४६	१८	नर्त	नर्त
६४८	१०	निष्ठाभि	निष्ठाभि
६४८	०	भोगाः	भोग
६५०	०	महृण्णोषं	महृण्णोषं
६५०	१०	वर्दि	वर्दि
६५१	१	देवन्वः	देवन्व
६५०	८	भम	भम
६५३	१३	मन्त्रे	मन्त्रे
६५६	११	दुष्टता	दुष्टता
६५६	७	वृष्टता	वृष्टता
	६	दि	दि





श्रुतार्थाः	परिधिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
३८०	१०	यार	पीर
३८०	१२	यवादिभिः	यवादिभिः
३८३	४	बुद्धि	बुद्धि
३८४	११	गुरुनयन्या	गुरुनयन्या
	५	दशमाधर	दशमाधर

पञ्चगव्यं मृष्टिमात्रं शुद्धाशुद्धिर्न ममात्म

शुभम्भरु

ॐ नमोदक्षिणायामाय

—

